आधुनिक यूरोप का इतिहास

(१७८९ से १९५२ तक)

प्राक्कथन-लेखक —

पुरातत्त्व और इतिहास-विशेषज्ञ,

श्रद्धेय डा० श्री मथुरालाल शर्मा, एम. ए. डी. लिट्

अध्यक्ष, राजस्थान शिक्षा-विभाग, जयपुर

लेखक :—

श्री रमेन्द्र नाथ चौधरी, एम. ए. (इति., इङ्ग.)

इतिहास-विभाग, महाराजा कालेज, जयपुर

और

आचार्य श्री मंडन मिश्र शास्त्री, (साहित्य-रत्न)

महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर

संस्थापक

श्री भारतीय साहित्य विद्यालय, जयपुर

प्रकाशक :—

रमेश बुक डिपो,

त्रिपोलिया बाजार, जय[पुर]

प्रकाशक—
सोहन लाल अजमेरा
रमेश बुक डिपो
त्रिपोलिया बाजार, जयपुर (राजस्थान)

मूल्य ≈।।।)

मुद्रक—
श्री मोती लाल शास्त्री
बालचन्द्र – यन्त्रालय
किशन पोल बाजार, जयपुर

ॐ श्रीमते रामानन्दाय नमः

आत्म-निवेदन

"सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम्"

आर्यावर्त्त के महान् साधकों की साधना से हिन्दी आज राष्ट्र-भाषा के पद पर समासीन है—भारत के प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह गौरव का विषय है और हमारी स्वतंत्रता का [illegible] प्रतीक है। पर इसी में हमारे कर्तव्य की इति श्री नहीं हो जाती। आज हमारे दायित्व और भी अधिक बढ़ गये हैं। अभी भी इस विशाल राष्ट्र में करोड़ों व्यक्ति ऐसे हैं—जो हिन्दी नहीं जानते। आज भी हमारे सामने अनेक ऐसे महत्वपूर्ण विषय हैं जिनमें हमारी इस भारती का भंडार सर्वथा शून्य है। अपनी राष्ट्रीयता की रक्षा और नैतिकता के पालन के लिए अपने रचनात्मक कार्यक्रमों द्वारा इन दोनों अभावों की पूर्ति करना हिन्दी प्रेमियों का परम धर्म है।

हिन्दी अपने ललित साहित्य (काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी) के कारण संपन्न प्रतीत होती है—पर केवल इसी के आधार पर बीसवीं शताब्दी का कोई राष्ट्र जीवित नहीं रह सकता। मस्तिष्क की क्रियात्मकता और जीवनीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हमें विज्ञान, नियम, दर्शन, इतिहास आदि की अध्ययनीय विषयों से सम्पन्नता देनी होगी, पर दुःख से कहना पड़ता है कि हमारा साहित्य इस ओर समृद्ध नहीं है। [illegible] हिन्दी के [illegible] के रहते हुए यह दरिद्रता एक [illegible] है। [illegible] राष्ट्रभाषा-अनन्य राष्ट्र के प्रति [illegible] की दृष्टि से इसने [illegible] किया है—[illegible] [illegible] विद्वानों की कृपा का निर्भर है।

संस्कृत-प्रचुरता:—हिन्दी में उपर्युक्त नवीन विषयों को स्थानान्तरित करते हुए नवीन नवीन शब्दों की रचना या कल्पना करनी होती है—जिसके लिए किसी सम्पन्न भाषा की शरण अपेक्षित है। बड़े बड़े लेखक भी इस दिशा में एकमत नहीं हो पाये हैं—सबके पृथक्-पृथक् दृष्टिकोण हैं और भिन्न भिन्न प्रयोग। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है—हम यह मानते हैं कि हिन्दी संस्कृत की संतति है और उसे फलने फूलने के लिए अपनी मां का वरद्-हस्त प्राप्त होना अनिवार्य है। इसी मंतव्य को हमने इसमें प्रायोगिक रूप दिया है—यही कारण है कि इसकी भाषा कहीं कहीं अतिशय प्रौढ़—इसीलिए आज के विद्यार्थियों के लिए क्लिष्ट हो गई है। हम यह जानते हैं कि इससे ग्रंथ के प्रचार में कुछ बाधायें आयेंगी, आर्थिक हानि भी होगी, फिर भी जब हमने यह प्रयत्न किसी निम्न स्वार्थ (पैसा) के उद्देश्य से न कर राष्ट्रभाषा के वाङ्मय की विवृद्धि के लिए किया है, तो उसे विषय के साथ साथ भाषा की दृष्टि से भी प्रौढ, प्रभाव-पूर्ण और शाश्वत स्वरूप देना हमारे लिए स्वाभाविक था। उच्च श्रेणियों के विद्यार्थी, अध्यापक पुस्तकालय और जिज्ञासु इस पुस्तक के क्षेत्र हैं, इस दृष्टि से भी इसकी भाषा में प्रौढिमा अनिवार्य थी।

इसके अतिरिक्त दूसरी कठिनता पारिभाषिक शब्दावली की है। इसका संकलन कितना कष्टसाध्य है, यह वही जानते हैं, जो इस कार्य को करते हैं। कतिपय गण्य मान्य विद्वानों द्वारा कोशों का सकलन कर इस ओर प्रशंसनीय पथ प्रदर्शित किया गया है, किन्तु उसे प्रायोगिक रूप देते हुए अनेक व्यावहारिक संकट उपस्थित होते हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में अनेक ऐसे शब्द आये हैं—जिनका प्रयोग प्राय: एक ही अभिप्राय से होता है, फिर भी हमने उनमें विलक्षणता दिखाने का उद्यम किया है।

उदाहरणार्थ—

१—Estate General or Council of State राज्य-परिषद्
२—Constituent Assembly राष्ट्रीय-परिषद्
३—Convention or National Assembly राष्ट्रीय-संसद्
४—Legislative Assembly विधान-सभा
५—Federal Assembly संघ-सभा

इन्हीं प्रयोगों को आप लीजिये—अनेक महानुभावों ने इन्हें एकार्थक रूप मे प्रयुक्त किया है—पर वस्तुतः ऐसा नहीं है। अत एव हमने इनका पृथक् पृथक् नामकरण (उपर्युक्त पद्धति से) कर अंतर स्पष्ट किया है। इस प्रकार के जितने भी पारिभाषिक शब्द हमने अपनाये हैं—ज्ञानकी सुविधाके लिए उनकी सूची परिशिष्ट में लगादी है। पुस्तक के मध्य में अंग्रेजी व अन्य भाषाओं को स्थान देकर हमने भाषा की खिचड़ी बनाना उचित नहीं समझा है। आशा है, इससे होने वाली कठिनाइयों को पाठक हमारी विवशता का ध्यान रखते हुए क्षमा करेंगे।

यूरोप के इतिहास की महत्ता:—वैदिक काल से ही इतिवृत्त का हमारे विद्या—स्थानों में गणनीय भाग रहा है। इसकी महत्ता प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और आज तो प्रत्येक मानव इस तथ्य से सुपरिचित है कि उसके निर्माण में इतिहास का कितना बड़ा हाथ है। इस दिशा मे भी अन्य सामान्य ग्रथों की अपेक्षा आधुनिक यूरोप का इतिहास एक विशिष्ट स्थान रखता है। वह एक साहित्यिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक जन—जागृति का इतिहास है—जिसका प्रभाव किसी एक क्षेत्र मे नहीं, अपितु सारे विश्व में व्याप्त है। एक दृष्टि से हम उसे विश्व की भौतिक प्रगति, और मानव की उन्नति का इतिहास कहें, तो कोई अत्युक्ति नहीं। प्रत्येक राष्ट्र का इतिहास

इससे संबद्ध है। इसीलिए शिक्षा के क्षेत्र में जितनी इसकी महत्ता है—उतनी ही अधिक इसके लिखने में क्लिष्टता है। अनेक राष्ट्रों के ऐतिहासिक तथ्यों का संकलन इसमें आवश्यक होता है एव उसके लिये पर्याप्त श्रम अपेक्षित है। विशेषत: १९३९ से अग्रिम भाग अधिकृत पुस्तक के रूप में अप्राप्य है, इसी लिए हमें इसके लिए प्रामाणिक लेखों और संवाद-पत्रों (Current History) पर निर्भर होना पड़ा है। चित्रों तक की रचना स्वय ने की है एवं परिशिष्ट, वंश-वृक्ष और ग्रंथ-सूचिका का भी संचय किया गया है। फिर भी भगवती सरस्वती की अनुकपा और विद्वानों के आशीर्वाद से हम इन कष्टों पर अधिकार कर सके हैं—यह हमारा सौभाग्य है। इस प्रयास में हम अनेक स्थानों पर स्खलित हुए हैं। हमारी प्राकाशनिक त्रुटियां तो हम गिना नहीं सकते—इसीलिए हम विद्वद्वर्ग के लिए अभियुक्त हैं और उससे पथ-प्रदर्शन की आशा एव अग्रिम संस्करण तक के लिए क्षमा-प्रार्थी हैं।

हमारी इस साधना की पूर्ति में राजस्थान शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष, श्रद्धेय, इतिहास-पुरातत्त्व-विशेषज्ञ, महामना डा० श्री मथुरा लाल शर्मा का आशीर्वाद हमें सतत प्रेरणा देता रहा है—इसका प्राक्कथन लिख कर तो उनने हमारे उत्साह को और भी बढा दिया है—इसके लिए उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना हमारा परम कर्तव्य है। उन सब महापुरुषों के प्रति भी हमारी श्रद्धांजलि है—जिनकी लेखनी से इस यज्ञ में हमें प्रवृत्ति और सहायता प्राप्त हुई है। प्रकाशक श्री राधाकृष्ण जी अजमेरा एव अन्य प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष सहयोगी भी धन्यवाद के पात्र हैं।

हमारे इस प्रयास से यदि राष्ट्रभाषा के वाङ्मय की थोड़ी सी भी श्रीवृद्धि हुई, तो हम अपने श्रम को सफल समझेंगे।

विनयावनत:—

जयपुर। — रमेन्द्र नाथ चौधरी

२०-९-५२ ई. — मडन मिश्र

[illegible]

[illegible]

साम्यवाद का जन्मदाता मार्क्स था । फ्रांस और बेल्जियम के वातावरण में उसके विचार पुष्ट हुए थे और इंग्लैण्ड में उसने अपने मन्तव्य की घोषणा की थी । रूस ने उसके सिद्धान्तों को

अनुसार सरकार स्थापित हुई और उसकी विचारधाराएं अब संसार के कोने कोने में पहुंच चुकी हैं।

इस प्रकार वर्त्तमान संसार का अध्ययन यूरोप का अध्ययन है। यूरोपीय राजनीति, यूरोपीय अर्थनीति, और यूरोपीय साहित्य, विचार और आलोक संसार का परिवर्त्तन कर रहे हैं। अतः यूरोप के इतिहास का वर्त्तमान शिक्षा में बड़ा महत्व है।

मैंने इस पुस्तक का यत्र तत्र अवलोकन किया है। इससे मुझे हर्ष है कि श्री रमेन्द्र नाथ चौधरी ने श्री पं० मंडन मिश्र के सहयोग से एक उपयोगी ग्रंथ तैयार किया है। बी० ए० परीक्षा के विद्यार्थियों के लिए यह विशेषतः उपयोगी है।

एम० ए०, डी० लिट्
संचालक, राजस्थान शिक्षा-विभाग
जयपुर (राजस्थान)

२०-६-५२
जयपुर।

विपय-सूची

परिशिष्ट

—×—

चित्र सूची

—×—

ॐ श्रीमते वायुनन्दनाय नमः

आधुनिक यूरोप का इतिहास

१—प्रस्तावना

आज सारे विश्व में हमें एक नया चैतन्य, नवीन जागृति और अद्भुत प्रकाश दिखाई दे रहा है। चारों ओर स्वतन्त्रा की लहरें लहरा रही है और मानव दिन दिन स्वयं को शक्तिशाली, योग्य और प्रभुतातक का सर्वाधिकारी समझ रहा है। उसकी बौद्धिक शक्ति विकास की चरम-सीमाओ पर पहुँचने के लिए लालाथित है। उसके मस्तिष्क की गति महान् विशालता की ओर उन्मुख है, जो उसे विज्ञान जैसी अनुपम संपत्तियो, इतिहास जैसी गौरव-गाथाओ, भूगोल जैसी निधियो एवं प्राच्यप्रतीच्य विद्याओ का अधिपति बना रही है। उसका विश्व अब पूर्व की तरह संकीर्ण, ससीम एवं संक्षिप्त नहीं रह गया है, अपितु वह अपनी कूपमंडूकता से निकल कर आज एक महान् स्वतन्त्र विश्व का सदस्य है, जिसकी असीम सीमाएँ और सहस्रों निजी समस्याएँ हैं। आज उसका स्थान महनीय विचार-लोक मे सुरक्षित है, जिसमे वह अपनी चिन्तना-शक्ति के माध्यम से विचरण करता है। उसकी धार्मिक कट्टरताएँ आज सहिष्णुताओं, सहानुभूतियो, प्रेम और शान्ति के रूप में परिणत हैं। उसके अन्धविश्वास के स्थान पर आज तर्कशक्ति विराजमान है। वह एक परम प्रवाह का साथी है, जिसकी धारा अनवरत एवं अक्षुण्ण रूप से बहती हुई आ रही है। केवल मानव जीवन ही नहीं, उसका रहन सहन ही नहीं, अपितु

प्रकृति तक प्रगति के इस महान् पथ से पिछड़े हुए नहीं रहे हैं। मानव की सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक समानताएँ आज असीम हो रही हैं, जिनने वस्तुतः विश्वबन्धुता के चिरंतन स्वप्न को प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया है। इन सब कारणों के आधार पर आज का मानव सारे संसार के प्रति स्वयं उत्तरदायी है, तथा उसके भाग्य-विधान में उसका बड़ा भारी हाथ है। सार्वदेशिक परिवर्तन के इस युग ने विश्व को एक प्रगति के राजमार्ग पर ला कर खड़ा कर दिया है।

परिवर्त्तन का यह महान् युग संसार की स्मरणीय घटनाओं में से है, जिसने उसके इतिहास पर अपनी दिव्य और अमिट छाप लगा दी है। पश्चिम के प्रदेश विशेषों द्वारा प्रवर्त्तित होने पर भी वह सारे संसार की संपत्ति बना हुआ है और आज सारा संसार उसके चमत्कार को नमस्कार करता है। जगत् परिवर्त्तन शील, एवं विशाल रगमच है, जिस पर एक न एक दृश्य आता है और चला जाता है, किन्तु उसके ये परिवर्तन यंत्र की तरह सहसा बटन दबाते ही लागू नहीं होते। वह तो एक प्रकार का विशाल सागर है, जो असंख्य रत्नों व अमूल्य निधियों का भंडार होने के साथ २ मगर और महामीन जैसे हिंसक जन्तुओं तक का भी आगार है। पाप-पुण्य, सुख-दुःख, राग-द्वेष, प्रकाश-अन्धकार, रात-दिन, संपत्ति-दारिद्रय, प्रभुता-दासता, सत्य-असत्य, शिव-अशिव, सुन्दर-असुन्दर, देवत्व-दानवत्त्व, मानवता-पशुता, धर्म-अधर्म आदि ऐसा कोई अच्छे से अच्छा और बुरे से बुरा तत्त्व नहीं, जो किसी समय भी किसी न किसी रूप में भी यहाँ न रहा हो। राम-राज्य जैसे पवित्र काल में भी धोबी जैसे धूर्त्त हो सकते हैं, तो कलियुग के इस विस्तृत साम्राज्य में भी गांधी जैसे सत्य के सूक्ष्म द्रष्टा जन्म ले सकते है। अन्तर इतना ही है कि किसी समय इन

तत्त्वों की अधिकता, तो कभी किसी सीमा तक इनकी न्यूनता हो जाती है। संक्षेप मे हरेक प्रकार की विचारधाराएँ यहां हर समय में अवश्य विद्यमान रहती हैं, उनके लिए अनेक शताब्दियों से आन्तरिक क्षेत्र तैयार होता रहता है, एवं उपयुक्त अवसर, संपन्न साधन व सफल नेतृत्त्व प्राप्त करते ही उनमें से एक दूसरे की अपेक्षा अधिक उभर आती हैं, जिस प्रकार विभाव, अनुभाव और संचारी भावो के संयोग से जागृत होते ही स्थायी-भाव रस का रूप अपना लेता हैं, तथा लगी हुई छोटी सी चिनगारी सहसा ज्वाला के रूप मे प्रकट हो जाती है। जन-समुदाय इनके आकस्मिक परिणाम का प्रत्यक्षीकरण होते ही चकाचौंध में पड़ जाता है, और लोग उसे परिवर्त्तन का युग कहने लगते हैं।

इस प्रकार की सार्वदेशिक क्रान्तियों, एवं जन-जागृतियों का श्रीगणेश किसी संकीर्ण देश-बन्धन और नियत-काल में नहीं होता। जिस प्रकार उत्पत्ति के अनन्तर एक शिशु कब बड़ा होता है, किस प्रकार व किस समय उसकी शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक अभिवृद्धि उसे युवा और वृद्ध बना देती है, इसका नियत-ज्ञान न होने पर भी व्यवहार के लिए परम्परा क्रमशः २५ व ५० वर्ष की नियत सीमा निर्धारित करती है, उसी प्रकार इन क्रान्तिकारी सुधारो के लिए भी ऐतिहासिक दशाब्दियों में से महत्त्वसम्पन्न संवत्सर को उदय-काल के रूप में ग्रहण करते हैं। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि निर्धारित-काल से पूर्व उनकी स्थिति ही नहीं थी, अपितु वह एक प्रकार के प्रत्यक्ष-दर्शन, तथा अनुभव का सबसे पहला अध्याय है, जहाँ पर लगी हुई उस आंतरिक ज्वाला को हम दृश्यलोक मे पहले बार अस्तित्त्वमय देखते हैं। इसी तरह देश भी इस प्रकार की सर्वजनप्रिय विचार-धाराओं के लिए संकुचित नहीं होता।

विभिन्न देशो में इनका आन्तरिक विकास होता रहता है और उसके विभिन्न भागो मे पहले ही से इनके स्वागत का आयोजन होने लगता है। उस देश-समुदाय में भी जो एक गौरवपूर्ण अंश इसे व्यक्त और मूर्त करने का सबसे पहला साहस करता है, उसे ही श्रीगणेश का श्रेय प्राप्त होता है, उसका नाम इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों में लिखा जाता है, और अन्य देश उसके शाश्वत ऋणी होते हैं।

इन दोनो ही दृष्टिकोणो के आधार पर सबसे पहले सम्पूर्ण यूरोप में, व उसके द्वारा विश्व में स्वातंत्र्य की भावनाओ के जन्मदाता और इस गणनीय युग के प्रवर्त्तक के रूप में पश्चिम के एक गौरव-सम्पन्न प्रदेश फ्रांस को पाते हैं। इसीलिए आधुनिक यूरोप का इतिहास आज केवल यूरोप का इतिहास नहीं है, अपितु एक महान् परिवर्त्तन के युग का इतिवृत्त है, जिससे केवल यूरोप की जनता का ही नहीं, सारे संसार का सम्बन्ध है। प्रगतिशील विश्व की निर्निमेष आँखें आज भी उससे प्रगति के पथ-प्रदर्शन की आशाएँ रखती हैं और आज के अध्ययनीय विषयों में मानव की प्रत्यक्ष जिज्ञासा शान्त करने के लिये उसके इतिवृत्त का सर्वोच्च स्थान है। जहां इस 'जन-स्वातंत्र्य' की भावना के श्रीगणेश स्थान के रूप में हम फ्रांस को आदृत करते हैं, वहां इन विचारधाराओं के मूर्त्तीकरण का श्रेय ऐतिहासिक परम्परा काल के रूप में सन् १७८६ को प्रदान करती है। संक्षेप में जहाँ हम फ्रांस को इन भावनाओं के जन्म देने का श्रेय दे सकते है, तो सन् १७८६ को इस महान् परिवर्त्तन के श्रीगणेश का समय कह सकते हैं। यहीं से आधुनिक यूरोप के इतिहास का एक प्रथम अध्याय प्रारम्भ होता है, जो यूरोप को प्राचीन परम्पराओं से निकाल कर विश्व के एक पथप्रदर्शक के रूप से हमारे सामने रखता है।

१७८९ से प्रारम्भ होने वाले इस युग के १८१५ तक के विस्तृत समय को यूरोप के इतिहास में परिवर्त्तन का युग कहा जाता है। फ्रांसीय विप्लव भी इसी समय हुआ; और नेपोलियन का उत्थान भी। इन दो महान् घटनाओं ने नवीन युग और नूतन २ सिद्धांतों को जन्म दिया। समाज और शासन-पद्धति मे अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन हुए, एवं मानव-जाति उत्कर्ष की ओर बढ़ी। विप्लव ही वस्तुतः इस उत्थान की पृष्ठभूमि है, जिसने सहस्रो वर्षों की चली आती हुई परम्पराओं को चुनौती दी, और यूरोप मे चारो ओर स्फूर्त्ति का संचार किया। उसकी देन अगणनीय है, जिनका संक्षिप्त वर्गीकरण हम निम्न-रूपो मे कर सकते हैं:—

(क) प्रजातंत्रवाद की स्थापना

सबसे पहला मूल सिद्धांत जिसकी घोषणा विश्व के इतिवृत्त में सर्वप्रथम विप्लव ने, की वह था-प्रजातन्त्रवाद। प्रजातन्त्रवाद का अर्थ है कि शासन-संचालन की सम्पूर्णशक्ति शासित वर्ग मे निहित हो और उसके संचालन-सूत्र जनमत के ही प्रतीक हो। न्यायाधीश एवं उच्च से उच्च सत्ता पर प्रतिष्ठित शासक एक प्रकार से प्रजा ही के सेवक और जनता के प्रति उत्तरदायी हों। तत्कालीन राजनैतिक-दार्शनिको और नियामकों ने एक-स्वर से यह स्वीकार किया कि शासन का प्रत्येक अङ्ग लोक-हित का प्रतीक और जन-प्रियता का भंडार हो। फ्रांस-निवासियों ने सबसे पहले इस सिद्धान्त को घोषित ही नहीं किया, अपितु क्रियान्वित भी किया, जिससे यूरोप के अन्य राष्ट्र-समुदाय भी अत्यन्त चमत्कृत व प्रभावित हुए। १८१५ ई० में वियाना-कांग्रेस ने यद्यपि इस सिद्धांत को ठुकरा दिया, परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी मे यह सिद्धान्त धीरे २ यूरोप के चारों

ओर पनपने लगा और भरसालिस (१६१६ ई०) की संधि के समय से "प्रजातंत्रवाद" आदर्श सभ्यता का एक प्रमुख आधार माना जाने लगा।

(ख) समानता

दूसरा सिद्धान्त जो कि विप्लवने संसार को प्रदान किया वह था-समानता का प्रचार। विप्लव से पूर्व फ्रांस के समाज में समानता नाममात्र को भी नहीं थी। मुख्यरूप से उसके तीन विभाग थे। जिनमे कुलीन व पादरी (प्रथम दो वर्ग) श्रेणियों को अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए विशेष अधिकार प्राप्त थे। अवशिष्ट निम्नवर्ग सब प्रकार की सुविधाओ से तो वंचित था ही, पर साथ २ शासन और उच्च दो वर्गों की विलासिता के संचालन का सम्पूर्ण व्यय भी उसी पर था, जिसे वह अनेक प्रकार के करों, भेंट पूजाओं व दक्षिणाओ द्वारा जमा कराता था। इसके विरुद्ध विद्रोहियों ने समानताओं की भावनाओं को एक धार्मिक-सिद्धान्त के रूप में प्रचारित किया। नेपोलियन ने इस सिद्धान्त को अपने कोड में सम्मिलित किया, जिसे फ्रांस डच, पश्चिम, जर्मनी रियासतो, स्विटजरलैण्ड और इटली में लागू किया गया। यहीं तक नही, प्रॅशिया और आस्ट्रेलिया, जो कि फ्रांस के शत्रु थे-तक ने भी क्रमशः १८०६ एवं १८४६ ई० में इस सिद्धांत को मान्यता प्रदान की। इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि अगर ईसाई धर्म ने हरेक मनुष्य को धार्मिक समानता प्रदान की, तो विप्लव ने भी विश्व के प्रत्येक मानव को नागरिक-समानता का भागी बनाया।

(ग) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता

समानता से भी बढ़कर तीसरा मूल सिद्धांत विप्लव ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के रूप में दिया। एकतंत्रवाद के काल में-जो

कि उस समय सम्पूर्ण यूरोप मे ही प्राय: व्याप्त था—केवल हॉलैंड और स्विट्जरलैंड को छोड़कर न व्यक्ति को प्रत्येक कार्य ही में स्वतन्त्रता दे रखी थी, न लेखन, भाषण और प्रकाशन मे ही। जो गरीव व दीन हीन जातियां थीं, वे शासक या व्यवसायियों द्वारा हर समय पद-दलित की जाती थी। इन सब संकीर्ण-बन्धनो से विप्लव ने प्रत्येक मानव को मुक्त कर दिया। एकतंत्रवाद के उपासक होते हुए भी वियाना कांग्रेस तक इसकी वास्तविकता से प्रभावित हुए विना नहीं रही, और उसने भी इसे आंशिक स्वीकृति प्रदान की। संक्षेप में आधुनिक शासन की आधार-भूमि आज व्यक्तिगत स्वतन्त्रताएँ है, और वे फ्रांसीय विप्लववादियो की देन हैं।

(घ) राष्ट्रीयता

विप्लव ने अपनी चतुर्थ देन के रूप मे हमें राष्ट्रीयता का सिद्धान्त दिया। जिसका अभिप्राय यह हुआ कि प्रत्येक राष्ट्र अपने शासन–संचालन मे स्वतन्त्र और हस्तक्षेप रहित हो, वह अपने बहुमत की स्वीकृति पर शासन-पद्धति और नियम निर्धारित करे। परिवर्त्तन के इस मूल मंतव्य को कुचलने के उद्देश्य से नेपोलियन ने जर्मनी और स्पेन मे पूर्ण प्रयत्न किये। वियाना कांग्रेस ने भी राष्ट्रीय अधिकारों को मान्यता देने से अस्वीकार कर दिया। परन्तु यह तो असंख्य दलित–जातियों के हृदय की संपत्ति ही क्या, सर्वस्व बन चुका था। इसलिए इसे जितना अधिक शान्त करने का यत्न किया गया, उतना ही अधिक उसका विकास हुआ, और इसी की प्रतिक्रिया–स्वरूप नेपोलियन को पतन का मार्ग देखना पड़ा। १९ वीं शताब्दी में धीरे धीरे इसकी मान्यताओं की सीमाएँ बढ़ने लगीं, एवं इसी के परिणाम स्वरूप इटली, जर्मनी, वेल्जियम, ग्रीस, बुल्गेरिया, सर्विया,

रूमानिया, मोएटीनिग्री आदि प्रमुख राष्ट्रों ने पारस्परिक संगठन स्थापित किये, जिनसे इसकी विजय-पताका लहराने लगी। यह विजय सहज रूप में ही नहीं हो पाई, अपितु इसके लिए स्वेच्छाचारी, स्वार्थी, पुरातन एकतंत्र सिद्धान्तवादी प्रतिबंधक शक्तियों से पर्याप्त संघर्ष करने पड़े, और रक्तक्रान्ति का भी आश्रय लेना पड़ा।

(ङ) राजनैतिक परिवर्त्तन

इसी समय अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भी अनेक महत्त्वपूर्ण घटनायें व परिवर्त्तन हुए। प्रजातंत्र-शासनपद्धति अमेरिका, जर्मनी, रूस, इटली, और ब्रिटिश साम्राज्य में प्रवर्त्तित हुई। आस्ट्रिया एवं तुर्की के पतन, जर्मनी के उत्थान, व इसी प्रकार पोलैएड के डेन्मार्क, स्वीडेन और स्पेन के पतन के साथ २ चारों ओर एक नवीन युग की सृष्टि हुई। राजनैतिक, सामाजिक, और आर्थिक क्षेत्रों में १६ वीं शताब्दीका संसार एक नवीन क्षेत्र में पदार्पण करता है। इस नवीन क्षेत्र की पृष्ठभूमि तैयार करने का काम एक लम्बी श्रृङ्खला के रूप में १८ वीं शताब्दी ने प्रारंभ किया। इन्हीं में नहीं, भौगोलिक ज्ञान में भी इस समय अभूतपूर्व प्रगति हुई। भौगोलिक अनुसंधान के परिणाम-स्वरूप "न्यू साउथ वैल्स" एवं अफ्रीका के वे आंतरिक प्रदेश-जो कि अंधकार में थे, विदित हुए। न्यूजीलैंड से समुद्री यातायात, प्रारंभ हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय यातायात, कूटनीति और पारस्परिक सम्बन्धोंमें भी नवीनतायें आईं। इसी समय इंग्लैंड ने भी भारत पर आधिपत्य स्थापित किया। इतने ही नहीं, वर्त्तमान जगत के वे आधुनिकसाधन और जीवनचर्यायें-जिनका प्रतिनिधित्व मोटरकार, हवाईजहाज, सिनेमा, तारघर, बेतार, ग्रामोफोन नारी-जागरण-व सशक्त प्रकाशन आदि करते हैं, सब इस परि-

वर्त्तन के उत्कृष्ट प्रतीक हैं—जो १९ वीं शताब्दी के लोगों को आश्चर्य के सागर मे डालते है।

धार्मिक एव सांस्कृतिक क्षेत्रों मे भी एक जागरण दिखाई पड़ा। धार्मिक असहिष्णुताओं के स्थान पर प्रेम का संचार हुआ, व दासत्त्व की शृङ्खलाओ को तोड़ने में इंग्लैड का प्रातःस्मरणीय विलवरफोर्स सबसे पहले अग्रेसर हुआ। सांस्कृतिक-क्षेत्र में भी यूरोपीय जातियों ने कार्लमार्क्स, हैगल जैसे दार्शनिकों व न्यूटन आदि वैज्ञानिकों के प्रताप से आशातीत उन्नति प्राप्त की। इसी सम्बन्ध मे प्रोफेसर केटिलबी कहना है कि "१८ वीं और १६ वीं शताब्दी में पुनरुत्थान और धार्मिक सुधार को ही प्रमुख माना गया, और अन्तिम शताब्दी मे ये तूफान की तरह बढ़े। इसी से हम इनके क्रमिक विकास का अनुमान लगा सकते है और कह सकते हैं कि १६ वीं शताब्दी का विप्लव १८ वीं शताब्दी के सिद्धान्तो में से ही आविर्भूत हैं।

इन महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तनों के अनुसार यदि हम यूरोप के इतिहास का अध्ययन करें, तो हमें उसकी महत्ता का सहज ही अनुमान हो सकता है। अन्य राष्ट्रों के इतिहासों की अपेक्षा हमें इसमें समय २ पर विभिन्न प्रवृत्तियो, व अत्यधिक शक्ति के प्रयोग देखने में आते हैं। उन सब में १८७६ सन् तो और भी गणनीय स्थान रखता है, जिसने पृथ्वी के इतिहास के चारों कोने हिला दिये। विशेषता यह है कि इसमें हम सिद्धान्तों के विजय की गाथा पाते हैं—जिसके सम्बन्ध में विटरयुगो ने सच ही कहा है कि "फ्रांसीय विप्लव ने यूरोप की सब जातियों का भविष्य निर्धारित कर दिया, और सिद्ध

कर दिया कि सैनिक आक्रमणों की अपेक्षा सैद्धान्तिक आक्रमण अधिक प्रबल होते है"।

इन्हीं उपर्युक्त मूल सिद्धान्तों के आधार पर १६ वीं शताब्दी में यूरोप उन्नति के शिखर पर चढ़ा, जिसका श्रेय फ्रांसीय विप्लव को है। संक्षेप में फ्रांसीय विप्लव वस्तुतः विचारों को, समाज की, और राजनीति की विजय है—जो कि फ्रांस की जनता ने पुरातन पद्धति, स्वेच्छाचारिता, और स्वार्थों के विपरीत प्राप्त की है। जिसका प्रभाव केवल फ्रांस तक ही सीमित नहीं, अपितु सारे संसार मे व्याप्त है। हैज़न कहता है—"फ्रांसीय विप्लव ने एक नवीन और महत्त्वपूर्ण युग की सृष्टि केवल फ्रांस के इतिहास के लिए ही नहीं, अपितु सारे संसार के लिए की"। इसीलिए विप्लव ही आज के यूरोपीय इतिवृत्त की प्रस्तावना है और यही एक इस प्रकार का संक्रमणकाल है, जहाँ एक सभ्यता का अस्त और दूसरी का उदय होता है और यहीं का फ्रांसीय औद्योगिक विप्लव १८ वीं और १६ वी शताब्दी को पृथक् करता है।

विप्लव द्वारा प्रवर्त्तित यह प्रगतिशील युग इतनी तेजी से बढ़ रहा है कि हम लोग अपने प्राचीन पुरुषों और पुराण-सभ्यता को एक धूमिल रेखा की भाँति देख रहे हैं। आज के सम्पूर्ण क्षेत्रो मे निजी विशेषताएँ हैं। वर्त्तमान आडम्बर-प्रधान काल ने अर्थ को जीवन का प्रमुख माप-दंड निर्धारित किया है। भगवान् पर श्रद्धा, गुरु मे भक्ति, बच्चे में वात्सल्य, अनुचरो से सहानुभूति, धर्म में आस्था आदि सभी वस्तुएँ वर्तमान युग मे नवीन आधारों पर स्थापित हुई हैं और हम अपने पूर्व-पुरुषो से बहुत ही दूर हो गये है। इसके साथ २ एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों, और मानव मानव के अधिक

निकट आ गया, एवं एक दूसरे के सापेक्ष और निर्भर हो गया। साधारण उत्पत्ति इतनी बढ़ गई कि जीवन-यात्रा का एक नया प्रवाह पहले की अपेक्षा अधिक सुख और चाकचक्यमय हो गया। इसी औद्योगिक क्रान्ति ने आर्थिक उत्थान के प्रति सचेष्ट इंग्लैण्ड को एक "दुकानदार राष्ट्र" बना दिया। इन सार्वदेशिक प्रगतियो के सम्बन्ध मे प्रो॰ केटिलबी कहते है—"१६ वीं शताब्दी के विज्ञान औद्योगिक क्रान्ति और प्रजातन्त्रवाद इन तीनों के संमिश्रण ने पाश्चात्त्य विश्व को ही नहीं, अपितु प्राच्यदेशसमूह को भी प्रभावित कर दिया"। जाति-पाँति एवं कुल-परम्पराओ के नियमों को तोड़ मरोड़ कर किनारे कर दिया, दासो को मुक्त किया, बेगार-प्रथा को बंद किया, निर्बल को बल दिया, पूँजीपतियो की पूँजी पर नियन्त्रण कर उसे समाज-हित मे लगा दिया, एवं सामुदायिक रूप से मानव को इतनी शक्ति व स्फूर्त्ति प्रदान की कि आज का मानव प्रगति की ओर बढ़ने से अपने आपको रोक नहीं पाता। विप्लव की इन्हीं देनों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के उद्देश्य से हैजन ने कहा है—"फ्रांसीय विप्लव ने एक नवीन राष्ट्र की धारणा, राजनैतिक व सामाजिक नवीन जीवन का आदर्श, एवं एक नवीन विश्वास आशा-प्रदीप के रूप में संसार को दिया, जिसने कि एक विशाल और कठोर संघर्ष के अनन्तर दलितो के दुःख और बाधाओं का अवसान किया।

सारांशतः फ्रांस का यही विप्लव एकतन्त्र की इतिश्री, प्रजातन्त्र की पृष्ठभूमि, समानता की भूमिका, आधुनिक यूरोप के निर्माण की दृढ़भित्ति, व प्रस्तुत इतिहास की प्रस्तावना है।

——:❀:——

२—विप्लव का प्रादुर्भाव

(क) साधारण-परिचय

भरसालिस के प्रासाद में विप्लव-काल से १५ मास पूर्व तत्कालीन महान् शासक पञ्चदश लुई का मई सन् १७७४ ई० में चेचक के कारण देहावसान हुआ। अपने अन्तिम समय में पञ्चदश लुई ने एक सच्चे भविष्यवक्ता के रूप मे घोषणा की कि मेरी मृत्यु के बाद महान् प्रलय आरहा है। उसकी यह भविष्यवाणी उस काल की स्थिति का अनुमान सहज ही मे करा देती है। इसके अवसान से महारानी और आश्रित-जीवियो के अतिरिक्त और किसी को दुःख नहीं हुआ। इसी ने नहीं—इसकी महारानी ने भी यह कहा था—कि "भयावह और विप्लवकारी समय आगे आ रहा है"। इस कथन का एक एक अंश अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ। इसके अनन्तर विंशति-वर्षीय लुई षोडश—जो कि उसका पोता था, राज्य का अधिकारी बना। राज्याभिषेक के समय दर्शक-समूह में से एक षोडशवर्षीय बालक स्कूल से दौड़ा हुआ राजा बनने की प्रक्रिया को देखने के निमित्त आया, और १८ वर्ष के बाद डेन्टन के नाम से उसी व्यक्ति ने सम्राट् को राज्यच्युत करने के आन्दोलन का कुशलता के साथ संचालन किया, और अतिशय सफलता प्राप्त की। उस अवसर पर यह तो कोई सोचता तक न था कि इसी राजा की क्रान्तिकारियो के हाथ से बलि दी जायेगी।

यूरोप के प्रगतिशील देशों में फ्रांस सबसे आगे बढ़ा हुआ था। भरसालिस पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता के केन्द्र के रूप में चारो ओर इतना प्रकाश फैला रहा था कि प्रत्येक

व्यक्ति उस ओर आकर्षित होता था। सामाजिक स्तर में भी फ्रांस का मध्यम वर्ग यूरोप के अन्य भागों से अधिक उन्नत था और उनके कृषकों की व्यक्तिगत स्वाधीनता भी ऑस्ट्रिया और प्रशिया के दासों की अपेक्षा अधिक विस्तृत थी। चारों ओर से प्राथमिक वर्गों मे विलासिताएँ ताण्डव नृत्य कर रही थीं और आनन्द व भोग की सरिताएँ लहरें ले रही थीं। इसीलिए तो तालेरां ने कहा है—"१७८९ से पूर्व जो फ्रांस में नहीं रहा, वह जीवन के आनन्द को नहीं पहचान सकता"। आर्थिक स्थिति भी इतर क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक उन्नति की ओर उन्मुख थी—जिसकी ओर संकेत करते हुए विख्यात पर्यटक आर्थर यंग लिखते हैं—"१७८९ में फ्रांसीय व्यवसाय १७६३ से दुगुना हो गया था, और वैदेशिक व्यवसाय में फ्रांस को पर्याप्त मात्रा मे लाभ हो रहा था"। यूरोप के विभिन्न राष्ट्रों में नवीन २ शासन-पद्धतियां स्थापित हुईं, व प्रत्येक राष्ट्र की सीमाओं, परिमाणों एवं जनगणनाओं में भी महान् परिवर्त्तन हुए। राजनैतिक स्थिति अनेक रूपों में विस्तृत थी—रूस, ऑस्ट्रिया, फ्रांस और प्रशिया में स्वेच्छाचारी प्रजातंत्र, टर्की में निरंकुश व निष्ठुर राजतंत्र, इंग्लैड में वैधानिक राजतंत्र, एवं पोलेण्ड, हॉलैण्ड और स्विट्ज़रलैण्ड में गणतंत्र शासन था। राजनैतिक एकता तो नाम-मात्र को भी नहीं थी। सभ्यता का विकास दिनो दिन हो रहा था और इस वातावरण में दलित और त्रस्त जनता अपने पर पड़े हुए असंख्य भारों को सहन करने में असमर्थता बता रही थी। संक्षेप में विलासिता की कृत्रिम चमाचम के नीचे क्रांति की ज्वाला धधक रही थी।

(ख) विप्लव के कारण

संसार की प्रत्येक वस्तु नश्वर है, एवं यही नश्वरता संसार

की प्रमुख विशेषता है। इसी विनाश में उत्पत्ति, और उत्पत्ति में विनाश अंतर्हित है। इसी प्रकार उत्थान की पराकाष्ठा अवनति का, एवं अवनति की पराकाष्ठा उदय का आह्वान करती है। विप्लव के पूर्व तक अनेक परम्पराएँ व पद्धतियाँ इतनी अधिक मात्रा में अपनी चरम सीमाओं पर पहुँच चुकी थीं, जिनका अधःपतन होना संसार के सामान्य नियम के अनुसार अनिवार्य था। फिर फ्रांसीय विप्लव तो एक असाधारण क्रान्ति थी, जिसके लिए अनेक शताब्दियों से सामग्रियां संचित हो रही थीं। उन्हीं सबने इस ज्वाला को उग्रता प्रदान करने में घृत और ईंधन के संयोग का काम किया। संक्षेप मे हम उनका वर्गीकरण निम्न-समुदायों में कर सकते हैं—

(१) राजनैतिकः—विप्लव को निमंत्रण देने का सब से बड़ा कार्य उस काल की स्वेच्छाचारितापूर्ण एकतंत्र शासन-प्रणाली और राजनैतिक अराजकता ने किया। एक ही व्यक्ति मे केन्द्रीभूत शक्ति, उसी की इच्छा के अनुगामी नियम, सामन्तशक्ति और अधिकार, प्रादेशिक स्वाधीनता एवं व्यक्तिगत भेदभाव उस काल के फ्रांस की राजनैतिक विशेषताएँ थीं। प्रायः कर मुक्ति के साथ २ कुलीन और पादरी वर्गों के पास अधिकार-शक्ति, एवं विशेष सुविधायें थीं। उनकी निष्क्रियता सीमा से बाहर निकल चुकी थी। उनकी विलासिता और राज्य-संचालन के व्यय भार से आक्रान्त तृतीयवर्ग इस ओर सर्वथा घृणात्मक हृदय रखने लगा था। फ्रांस की प्रचलित भाषा में प्रसिद्ध यह लोकोक्ति—"*उच्चकुल लड़ते हैं, पादरी प्रार्थना करते है, और निम्नवर्ग पैसे देते हैं" इस पर प्रकाश डालने के लिए पर्याप्त है। लोगों की धारणाएँ इसलिए और भी बिगड़ गई थीं कि शासक

*"The nobles fight, the clergy pray and the people pay"

उच्च कुल की सुविधाओ और अधिकारों को ध्यान में रखकर ही शासन चलाता था। इस राजनैतिक असमानता का क्षेत्र यहीं तक सीमित नहीं था, अपितु कानूनो में और नियुक्तियों में भी इसका साम्राज्य था। इसने व्यापक रूप से समाज में वर्गभेद की सृष्टि की। प्रो० केटिलबी इस सम्बन्ध में कहते हैं—"गरीब किसान उचित कर का त्रिगुणित कर देते थे। राजा को कर देते थे, सामन्त प्रभुको भेट और गिरिजा को दक्षिणा चढ़ाते थे"।

(अ) राजकीय कर—मुख्य रूप से राष्ट्र के कर दो प्रकार के होते थे—१-प्रत्यक्ष, २-परोक्ष। प्रत्यक्ष कर "टेली" कहलाता था और एक प्रकार का संपत्ति अथवा जनकर होता था-जो कभी ५३% तक लिया जाता था। परोक्षकर दूसरा प्रकार था—जो नमक आदि पर लगता था।

(आ) गिरिजा की दक्षिणा—यह वर्ष में भिन्न २ अवसरों पर अनेक बार देनी होती थी। भूमि में उत्पन्न द्रव्य का $\frac{1}{12}$ से $\frac{1}{20}$ तक भाग मात्रा के रूप मे निर्धारित था, जिसे नहीं देने वाले अपराधी और दण्डनीय घोषित किये जाते थे।

(इ) सामन्त प्रभु की भेंट—सामन्त-प्रभु अनेक प्रणालियों मे विभाजित थे, इसीलिए उनकी भेट भी ठिकाने ठिकाने के अनुसार पृथक् पृथक् रूप में होती थीं। साधारणतया भेट के साथ २ तृतीय श्रेणी को दो दो तीन तीन दिन की बेगार भी देनी पड़ती थी। अनेक प्रकार के व्यावसायिक, औद्योगिक, औत्पत्तिक, आखेट सम्बन्धी, नदी, नाले व पुल पार करने के करों के साथ २ अच्छी फसल के होने पर अतिरिक्त कर भी देना होता था। विचारा निम्नवर्ग करों की शृङ्खलाओं मे जकड़ा

हुआ था। इतना ही नहीं—किन्तु कृषक के लिए यह भी अनिवार्य था कि वह अपने उत्पन्न किये हुए अंगूर सामन्त प्रभु की सुरा के निमित्त उसी की मदिरा-निर्माणशाला में जमा करायें, और उन्हीं की चक्की में आटा पिसवायें। यही राजनैतिक अराजकता फ्रांस के पुरातन राजतंत्रवाद के अवसान का प्रमुख कारण थी।

(ई) *शासक की हीनता*—तत्कालीन शासक षोडश लुई एक दुर्बल राजा ही नहीं, अपि तु एक पत्नी के इशारे पर नाचने वाला शासन पद्धति से अपरिचित और अनुभव हीन व्यक्ति था। उसके पास विस्तृत राजकीय अधिकार थे। वह कानून भी बना सकता था, नवीन कर भी लगा सकता था, युद्ध या शान्ति की घोषणा एवं राजकीय कोष से स्वेच्छाचारिता के साथ व्यय भी कर सकता था। राजकीय सलाहकार समिति भी उसी के द्वारा निर्मित थी—जो "इन्टेन्डेन्ट्स" के नाम से प्रादेशिक गवर्नरों (राज्यपालों) की नियुक्तियां करती थी। इसी के तत्त्वावधान मे छोटे छोटे १२ शहरों में १३ लोकसभाएँ शासन चलाती थीं—जिनमें सामन्तवर्ग के लोग होते थे। राज्य परिषद् भी थीं—पर इसने उसे कभी आमंत्रित ही नहीं किया। इतने व्यापक अधिकारों के रहते हुए भी इनके उपयोग करने का सामर्थ्य उसमें नहीं था। अपने शासन-कार्य के प्रारम्भिक ७ वर्षों में अपनी रानी के साथ इसने उत्साह के साथ राज्य चलाया, एवं गभीर दायित्त्व और सहानुभूतिपूर्ण, गुणशील व सरल प्रकृतिशाली व्यक्तित्व का परिचय दिया। पर इस आने वाले उत्तरदायित्त्व के भार से वह स्वयं को बड़ा आक्रान्त सा समझता था—इसीलिए शासन सँभालते हुए उसने कहा था—"ऐसा प्रतीत होता है कि इस विशाल संसार का बोझा मेरे सिर पर गिर रहा है, हे ईश्वर! यह इतना भारी

बोझा है, जिसे वहन करने में मैं समर्थ नहीं हूँ"। इसके हृदय की दुर्बलता के कारण यह दूसरे से अत्यन्त शीघ्र प्रभावित हो जाता था, मानवीय चरित्र को समझ नहीं पाता था, न फ्रांस और यूरोप की समस्याओं के समझने का ही यत्न करता था। संक्षेप मे इसके पास अपना कुछ भी नही था। इसीलिए नेकर ने एक बार सच ही कहा था कि—"आप अपनी धारणा दूसरे को ऋण दे सकते हैं, किन्तु उसे कार्यरूप मे परिणत करने के लिए इच्छा-शक्ति नहीं दे सकते"। इन्ही हीनताओं की ओर संकेत करते हुए नेपोलियन ने कहा था—"जब किसी देश के राजा दयालु होते हैं, उनके राज्य असफल होते ही है" षोडश लुई इसका उदाहरण है"। इन्हीं से बचने के लिए उसकी चाची उसे समय २ पर प्रेरणाएँ देतीं थी कि—"मन की इच्छा को प्रकट करो, क्रोध दिखाओ, संसार मे कुछ कोलाहल अवश्य करो, यदि तुम्हें कृतकार्य होना है"। पर इन सबके समन्वय से भी उसकी उदासीनताएँ नष्ट नहीं हुई और उनने जनता को जागरण का पर्याप्त अवसर दिया। इससे तो अच्छा होता-यदि वह स्वेच्छा से ही विप्लव से पूर्व जैसा कि कई बार इसने अपने दरबारियो से कहा था, राज्य-त्याग कर चला जाता, तो यह फाँसी से ही नहीं, परन्तु महान् अनादर से भी बच जाता।

(उ) रानी का आधिपत्य—विप्लव के निमन्त्रण और लुई षोडश के पतन मे सब से बड़ा हाथ उसकी महारानी मेरिया आन्टाय का था। षोडश लुई जितना अधिक सरल था, रानी उतनी ही अधिक कुटिल थी, अतएव उसने सरल राजा को अतिशय प्रभाव से लाकर उसी पर नहीं, अपितु पूरे के पूरे साम्राज्य पर एकाधिपत्य स्थापित कर लिया था, जिससे वह और दुर्बल बन गया। इसकी विलासिता और आमोद प्रमोद का व्यय बहुत बढ़ा हुआ था और चारो ओर हर समय इसके

प्रति लोगों में घृणात्मक भावना का प्रचार बढ़ता ही जा रहा था। यह एक अभिमानी, परम सुन्दरी व चिडचिड़े मिज़ाज की स्त्री थी। इन सबके साथ विशेषता यह थी कि इसने प्रगतिशील समय की गति को समझने की चेष्टा नही की एवं जितना ही समय भयावह बनता गया—इसने राजा को छल और कपट करने के परामर्श दिये। इसीलिए लोग इसे एक षड्यन्त्र-कारिणी व राष्ट्रद्रोहिणी समझते थे। समसामयिक लेखकों ने भी इसके सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डाले हैं—वे कहते हैं कि "राज्य-परिषद् व जनता ने समय २ पर इसको अत्यन्त अपमानित व लज्जित किया, परन्तु जितनी अधिक अवज्ञा की गई, यह उतनी ही अधिक अभिमानिनी साहसिका व विपत्तियों से टक्कर लेने के लिए सन्नद्ध हो गई"।

राजा को उच्च-परम्पराओं की सुविधा के लिए यह सतत प्रेरित करती रहती थी। उसके इसी आधिपत्य की सूचना देते हुए महान् लोकनायक मिराबुआ ने कहा है—"राजा के पास एक ही व्यक्ति है—वह है उसकी स्त्री—जो कि फ्रांस के भविष्य की निर्मात्री है"। इसीलिए राजा को यह "बेचारा गरीब" कह कर सम्बोधित करती थी।

(ऊ) शासन की शिथिलता—उस काल की शासन-प्रणाली इतनी अधिक शिथिल व निरंकुश थी कि उसका पतन अवश्यंभावी था। राजनैतिक अराजकता को दूर करने के लिए केन्द्रीभूतशक्ति ने स्थानीय शासन को ४० चालीस छोटे २ भागों मे जो एक प्रकार से प्राचीन सामन्तयुग के शेष थे, विभाजित किया, परन्तु उनमें किसी एक समान नियम का अनुसरण नहीं किया गया। ये शासक केवल कुलीनवर्गों की सुविधाओं की रक्षा के लिए सचेष्ट रहते थे, उन्हे सम्मान व सम्पत्तिपूर्ण पद देते थे, एवं राजकीय 'परामर्शदात्री' समिति द्वारा नियुक्त होने के

नाते स्वयं को भी शासक से कम नहीं समझते थे। इनके द्वारा दिए हुए ये राजकीय पद और संमान इतनी अधिक सख्या में फैल गये कि उनकी सुरक्षार्थ शासन के पास उतनी मात्रा में द्रव्य नहीं रहा, जिसके परिणाम स्वरूप उनका विक्रय किया जाने लगा, व "पैसे की आवश्यकता" का नारा बुलन्द किया जाने लगा। इतनी सुविधाओं तथा विशेष अधिकारों के भागी होते हुए भी इनके लिए कोई कर्त्तव्य निर्धारित नहीं थे और न राजा के पास कर्मचारियों के कर्त्तव्यों के विभाजन और निरीक्षण के लिए ही समय था।

न्याय और नियम की भी स्थिति इस तरह डाँवाडोल थी। न्यायाधीश वंश-परम्परागत होते थे, इसलिए योग्यता और क्षमता का तो प्रश्न ही नहीं था। ३८४ प्रकार के अनेक नियम रोमन सिद्धान्तों के आधार पर प्रवर्त्तित थे, परन्तु उनकी नियतता नहीं थी। इसीलिए उत्तर फ्रांस के तत्कालीन समीक्षक वाल्टेयर ने कहा है कि—"लोग नियम को बदलते थे, जैसे कि डाक के घोड़े बदले जाते हैं"। एक वर्गविशेष द्वारा प्रयुक्त और पक्षपात-प्रणाली से संपन्न होने के कारण फ्रांस की जनता के हृदय में नियम के प्रति श्रद्धा और आदर की भावना तो दूर रही, अपितु घृणात्मक धारणाएँ जम गई थीं। ये संपूर्ण नियम केवल एक विषय में एक मत थे—कि किसी भी व्यक्ति को राजनैतिक और नागरिक स्वतन्त्रताएँ प्राप्त न हों। इससे हम व्यक्तिगत-स्वाधीनता के अभाव का भी अनुमान लगा सकते हैं।

(ए) सामन्तों की सत्ता—जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है—राजनैतिक अराजकता को दूर करने के लिए सामन्त-पद्धति का जन्म हुआ। अत्यन्त शीघ्र इस पद्धति का विकास हो गया और चारों ओर इनकी धाक जम गई। इनके अनेक प्रकार थे, और संमान और संपत्ति के अनुसार अधिकार भी पृथक् २ थे।

ये अपने २ प्रदेशों के स्वतन्त्र अधिपति थे तथा अपनी शक्ति व सीमा की रक्षा के निमित्त शासक से साक्षात् सम्बन्ध रखते थे। आवश्यकता होने पर ये राजा को पद और प्रतिष्ठा के अनुसार सैनिक सहायता देते थे। धीरे धीरे इनके अधिकार इतनी अधिक मात्रा में बढ़ गये कि राजा वैधानिक शासक-मात्र ही रह गया। इन दो पृथक् २ संघठनो से देश मे दो शक्तियाँ हो गईं—(१) राजकीय, (२) सामन्तसत्ता। ये दोनों ही वर्ग आन्तरिक रूप से परस्पर एक दूसरे को आधीन और लज्जित करने का प्रयास करने लगे—जिसके परिणाम स्वरूप जनता को अधिक दलित होकर कष्टों का सामाना करना पड़ा और सूक्ष्मदर्शी महाकवि के इन शब्दों में—

दुसह दुराज प्रजान को, क्यों न बढे दुखद्वन्द्व।
अधिक अँधेरो जग करत, मिलि मावस रविचंद॥

यह द्वैध शासन प्रजा को उत्पीडित करने का एक साधन बन गया। संक्षेप मे यह पद्धति—जो कि अराजकता की निवृत्ति के उद्देश्य से स्थापित की गई थी, उलटे उसे बढ़ाने और प्रजा को त्रस्त करने में सहायक हुई। इनका संघटन कराने में धर्मयुद्ध (क्रूसेड) एक सुन्दर माध्यम बना, इसी लिए हम उस धर्मयुद्ध को-जो कि टर्की के साथ हुआ था, इनकी एकता का मूल-मन्त्र कह सकते हैं।

(२) सामाजिक

उस काल के समाज की स्थितियाँ भी शान्तिपूर्ण नही थीं, चारो ओर अव्यवस्थाओ और वर्ग-भेद का बोलबोला था। समाज के प्रमुख तीन भाग थे— १. कुलीनवर्ग. २. पादरी या पुरोहितवर्ग, ३. निम्नवर्ग। इनमे प्रथम और द्वितीयवर्ग की जनसंख्या संमिलित रूप से ३ लाख से भी न्यून थी, व तृतीय वर्ग की मात्रा दो करोड़ थी।

(अ) *कुलहीनवर्ग*— इस वर्ग की संख्या इतनी अधिक बढ़ गई थी कि एक अमीर का भार (२५०) ढाई सौ जन-साधारण पर पड़ता था। यह एक प्रकार का असह्य भार था, जिससे त्रस्त होकर प्रजा में यह सार्वजनिक धारणा बन गई थी कि "कुलीन का जन्म केवल जनता को कष्ट देने के लिए है और यही उसके जीवन का प्रयोजन है"। इसके संमान और पद विभिन्न प्रकार के थे, जिन्हें सरलता की दृष्टि से हम दो भागो में बाँट सकते हैं। पहला योद्धावर्ग, दूसरा विलासिता-वर्ग। इनमें प्रथम-वर्ग प्रशासनिक-सेवाओं से मुक्त रहता था, उच्च पदो से उदासीन था एवं वंशपरम्पराओं के अनुसार सम्राट् की रक्षा व राजकीय सेना मे नियुक्त होता था। यह भी तत्कालीन शासनप्रणाली मे असंतोष के कारण परिवर्त्तन का अभिलाषी था, ताकि उसे भी संमान-संबन्धी उन्नतियो का अवसर मिले। द्वितीय वर्ग एक प्रकार से उत्तमवेश-भूषावाला समुदाय था, जिसे विशिष्ट सज्जित और नागरिकता के कारण विलासिता-वर्ग कहा जा सकता है। इसका चरित्र भी अत्यन्त कलुषित होता था। विशेषतः यह न्यायाधीशों व शासन-संचालन का कार्य करता था।

ये दोनो ही वर्ग पारस्परिक ईर्ष्या और द्वेष से भरे हुए थे और किसी भी प्रकार के व्यवसाय और उद्योग को घृणा की दृष्टि से देखते थे। विलास और आनन्द का जीवन बिताते थे। अपनी सामंतीय शक्ति का प्रयोग कर बलात्कार के द्वारा गरीबों से कर-संचय करते थे। अपने ठिकानों को छोड़ कर पेरिस जैसे बड़े २ शहरों मे आकर रहते थे एवं अपने २ कामदारो को नियमित समय पर नियत धन भेजते रहने के लिए विवश करते थे। ये भूमिकर, मार्गकर व अनिवार्य सेना-प्रवेश से मुक्त थे, किन्तु उनकी इस कर्त्तव्य विमुख शक्ति के प्रयोग ने उन्हे

प्रकृति की दृष्टि में घृणित बना दिया। इसी लिए लॉज ने कहा है कि—"फ्रांसीय विप्लव की ध्वंसात्मक-शक्ति सामन्तप्रणाली के विरुद्ध नहीं थी, अपितु उस प्रणाली के अवशिष्ट अंश जिसके द्वारा नृशंस व निष्ठुर कर्म किये जाते थे—के विपरीत थी"।

(आ) पादरी या पुरोहित वर्ग—प्रथमवर्ग के अनन्तर दूसरा-वर्ग-जो कि जनता से ऊपर उठा हुआ था, वह था पुरोहितों या पादरियों का। इसके भी दो विभाग थे। १-उच्च श्रेणी २-साधारण श्रेणी। इनमे प्रथम के वैभव शासक के समान थे, पर बेचारे दूसरी श्रेणी के लोग कृषक-वर्ग में से लिये जाते थे और इनका वेतन-मान इतना न्यून होता था कि ये उच्च श्रेणी की अपेक्षा अत्यन्त हीन दृष्टि से जीवन-यापन करते थे। अत्यन्त कर्त्तव्यपरायण, साधु, सन्यासी और भावुक थे, व उत्तम पादरियों के दमन के लिए विप्लव से पर्याप्त आशाएँ रखते थे।

इनके ठीक विपरीत पादरियों की उत्तम श्रेणी के पास असीम अधिकार और सम्पत्ति थी। वे राज्य के भाग्य-विधाता होने के कारण स्वयं की सत्ता को राज्यसत्ता से भी अधिक उच्च समझते थे। गिरिजा के लिए समस्त फ्रांस का ⅕ भाग देवत्त्व संपत्ति के रूप मे दिया गया था, जिसके सर्वाधिकारी होने के साथ २ ये लोग कर से भी सर्वथा मुक्त थे। गिरिजा की भूमि में उत्पन्न वस्तुओं से लाभ उठाते थे, जो कृषक इनकी जमीन में बसते थे—उन से सामन्तीय कर वसूल करते थे। इस प्रकार से प्राप्त अर्थ का सद्व्यय राष्ट्र की आध्यात्मिक उन्नति के लिए न कर, कुलीन वर्गों के लड़के लड़कियों पर किया जाता था। उनका रहन सहन या दिनचर्या इतनी घृणित, कलुषित और हेय थी कि जनसाधारण में धर्म के प्रति जो श्रद्धा थी—वह भी धीरे धीरे कम ही क्या, समाप्त हो गई। इनके नैतिक पतन से तंग आकर जन-समुदाय इस परिणाम पर पहुँच गया कि

"गिरिजा लोगों का खून चूसती है, और अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करती"। संक्षेप में गिरजा के पतन और सामाजिक क्रान्ति के आह्वान में इनके हीनचरित्र ने अतिशय जागृति प्रदान की।

(इ) *साधारण वर्ग*—तीसरा वर्ग अधिक संख्या में था, जिसमें सामान्यरूप से श्रमिक, कृषक, और छोटी २ दुकानदारी करने वाले लोग सम्मिलित थे। इनमें भी कृषकवर्ग जिनकी मात्रा सब से अधिक बढ़ी हुई थी, तत्कालीन शासन प्रणाली से सब से अधिक असन्तुष्ट थे। क्योंकि उन्हें मुख्यरूप से अपनी आयका ⅘ भाग शासन को कर के रूप में व इसके अतिरिक्त भी गिरिजा की दक्षिणा एवं सामन्त-प्रभु की भेंट चढ़ाना पड़ता था। यहीं तक नहीं, अपितु अनेक प्रकार की बेगार प्रथम-वर्ग उनसे लेता था और जिसके प्रत्युत्तर मे विभिन्न यातनाये देता था। उनकी इसी स्थिति और दयनीय दशा पर प्रकाश डालने के निमित्त फ्रांसीय लेखक लाब्रियर लिखते हैं—

"मानो कि भयावह हिसक जन्तु सम्पूर्ण भूमि पर बिखरे हुए थे, फ्रांस की आन्तरिक दशा भी दुर्दशा-पूर्ण थी। धूप मे काम करते २ कृषकों का शरीर जल सा गया था और जब ये खड़े होते थे—तभी उनकी ओर देखने से विदित होता था कि यह प्राणी हिंसक जन्तु नहीं, किन्तु मनुष्य है। सम्पूर्ण दिन महान् श्रम करने के अनन्तर इन्हें काली रोटी, पानी और उपमूलो के द्वारा उदरपूर्ति करनी होती थी"। महान् विद्वान् के इस विवरण से हम उनकी दलित अवस्था का सहज ही अनुमान लगा सकते हैं। इनकी अपेक्षा छोटे २ व्यवसायी लोग शिक्षित और चतुर थे, किन्तु प्रथम दो वर्गों के प्रति उनका भी असंतोष कम नहीं था।

इस प्रकार फ्रांस के समाज की भित्ति असमानता पर आधारित थी। विशेष अधिकार विशेष सुविधाये और माफी ये ही थीं फ्रांस की सामाजिक पृष्ठभूमियाँ, नियम अथवा कानून नहीं। कोई अभीष्ट सिद्धान्त नहीं था, अपितु केवल राजा की नीति ही सब कुछ थी। प्रथम दो वर्गों की कर्त्तव्यहीनता और अंतिम वर्ग की कर्त्तव्य के प्रति जागरूकता एक मौलिक अंतर था। वस्तुतः कुलीन वर्ग ने मातृभूमि की रक्षा के लिए लड़ना छोड़ दिया था, पादरी लोग ईश्वराराधना बहुत पहले ही भुला चुके थे, परन्तु श्रमजीवियों ने इन्हे कर चुकाने में नही भुलाया था। यह थी उस काल के समाज की आंतरिक स्थिति।

(३) आर्थिक—

राजनैतिक और सामाजिक स्थिनि की अपेक्षा भी अधिक गंभीर और डॉवाडोल दशा आर्थिक क्षेत्र की थी। शासन संचालन का व्यय अत्यन्त बढ़ा हुआ था और राष्ट्रीय आय का आधा भाग राष्ट्रीयऋण के सूद चुकानेमात्र मे ही व्यय हो जाता था। व्यय आय से बहुत ही अधिक था—परिणामतः वार्षिक घाटा क्रमशः बढ़ता ही जारहा था,-जिसे पूर्ण करने के लिए प्रतिवर्ष नया ऋण लेना होता था। ऋण को मिटाने के उद्देश्य से नित्यनवीन करों की सृष्टि होती थी जो शासन की की अलोकप्रियता के मूल कारण थे। इस स्थिति पर अधिकार करने के लिए उच्च पदो का विक्रय, व्यय में न्यूनता, करों द्वारा आयकी वृद्धि आदि अनेक नीतियों का अनुसरण किया गया, किन्तु सब असफल रहा।

आय का सबसे प्रमुख स्रोत प्रत्यक्ष नमक कर था, जिसे "गलेल" कहा जाता था। नमक ही एक ऐसी अनिवार्य वस्तु है, जिसकी आवश्यकता प्रत्येक के लिए प्रतिदिन होती है। साधारण-जनता इससे अधिक आक्रान्त हुई। इसके

संचय करने का अधिकार सरकारी कर्मचारियों को न देकर ठेकेदारो को दिया गया था, जिनने ७ वर्ष से ऊपर वाले प्रति–व्यक्ति के लिए ७ पौंड नमक कम से कम खरीदने का अनिवार्य नियंत्रण कर रखा था। ये ठेकेदार स्वेछा–चारिता के साथ इसके मूल्य में वृद्धि और न्यूनता भी कर सकते थे। इसके अतिरिक्त आबकारी–कर भी मोमबत्ती, कोयला, मदिरा आटा आदि छोटी २ वस्तुओं तक पर लगा हुआ था। मदिरा बड़ा भारी राष्ट्र का आर्थिक उद्योग था, जिस पर केवल बनाते समय ही नहीं, अपितु—यातायात और विक्रय के अवसर पर भी कर लगता था। जकात की बाधाओं से व्यवसाय ही मे नहीं, भोजन–सामग्री तक के प्राप्त होने में विलम्ब होता था। संक्षेप मे इस काल की यह कर–प्रणाली–जो कि राष्ट्रीय आयका प्रमुख स्रोत थी, असमानता अपूर्णता व अव्यवस्था से संपन्न, अतएव उद्योग के लिए हानिकारक थी।

आर्थिक अवनति की यह धारा युद्धों के कारण विशेष रूप से चतुर्दशलुई के काल से ही अनवरत चली आ रही थी। पंचदशलुई ने भी व्यय के सम्बन्ध मे उसी का अनुकरण किया था। सन् १७८८ ही मे राष्ट्रीय व्यय आय से अत्यधिक बढ़ गया था। षोडशलुई ने जब शासन सँभाला, तो राजकीय कोष अर्थ से शून्य था और दिवालिया होने जा रहा था। प्रतिवर्ष आर्थिक अभावों की पूर्त्ति के लिए ऋण अत्यधिक सूद से लेना पड़ता था। सन् १७८८ व ८६ के मध्य आने वाले दुर्भिक्ष और विचक्षण लोगो के तत्कालीन असहयोग ने स्थिति को और भी गंभीर बना दिया था। फिर भी लुई षोडश ने इस ओर सुधार के प्रयत्न किये उस निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासक को भी इस हीन दशा को देखकर

विस्मित होना पड़ा। उसने विशिष्ट आर्थिक नियामक नियुक्त किये, जिनमें तुर्गत और नेकर के नाम उल्लेखनीय हैं।

(अ) *तुर्गत* (१७७४ से १७७६)—लुई द्वारा नियुक्त साधारण आर्थिक नियामक तुर्गत ने सबसे पहले इस सिद्धान्त को स्वीकार किया कि भूमिकर ही राष्ट्रीय आय का प्रमुख स्रोत है और भूमि से उत्पन्न वस्तु पर ही कर नियत करना चाहिए। उसने मदिरा व अन्न सम्बन्धी व्यवसायों के प्रतिबन्धों को तोड़ दिया। कौर्वो नामक कर को अमान्य कर उसके स्थान पर एक इस प्रकार का भूमि या भूमि अधिपति कर प्रारम्भ किया, जो प्रत्येक भूमि-अधिपति को देना होता था। आर्थिक हानि पर काबू पाने के लिये किसी भी प्रकार के नये ऋणों और करों को मान्यता न देने के साथ २ उसने बजट के घाटे को पूरा करने की दृष्टि से शासन-व्यय पर संभव नियन्त्रण किये व निरर्थक पदों व पेन्शनों को समाप्त कर दिया। तुर्गत के इन प्रशंसनीय प्रयत्नों से राष्ट्र को लगभग डेढ़ वर्ष के अनन्तर एक करोड़ दस लाख का लाभ हुआ। परन्तु उसके इन क्रान्तिकारी संशोधनों से जिनके द्वारा विशेष सुविधाशाली वर्ग को भी कर का भागी बनाया गया था, विशेष अधिकार प्राप्तवर्ग इतना अधिक असन्तुष्ट हो गया कि उसके आक्षेपों से शासक ने तुर्गत को पदच्युत कर दिया और इस प्रकार राष्ट्र को दीवालियापन से रोकने के लिए अन्तिम प्रचेष्टा की इतिश्री हो गई। प्रवीण ऐतिहासिकों का मत है, कि "यदि तुर्गत को और थोड़े समय के लिए इस पद पर रखा जाता, तो शायद विप्लव नहीं होता"।

(अ) *नेकरः*—तुर्गत के उत्तराधिकारी और साधारण अर्थ-नियामक के रूप में हम नेकर को पाते हैं। नेकर तुर्गतकी तरह

दूरदर्शी व्यक्ति नहीं था। उसके काल में इंग्लैण्ड के साथ युद्ध होने से फ्रांस को अत्यधिक धन ऋण के रूप में लेना पड़ा, व घाटे को पूरा करने के लिए अत्यन्त कठोर होना पड़ा। व्यय के व्यापार में नियंत्रण करने की प्रचेष्टा में ही इसे त्याग-पत्र देने के लिए बाध्य होना पड़ा। परन्तु फ्रांस के इतिहास में इसका शासन-काल दो प्रमुख घटनाओं के लिए चिर-स्मरणीय हो गया—उनमें सबसे पहली घटना इसके द्वारा यह हुई कि इसने राज्य की आय और व्यय का विवरण जनता के समक्ष समाचार पत्रो के माध्यम से प्रस्तुत कर दिया, जिससे वह जन-समुदाय-जो कि आर्थिक क्षेत्रों की दृष्टि से अन्धकार मे था प्रकाश मे आ गया एवं ऋणदाताओं ने राज्य की इस डाँवाडोल स्थिति से अवगत होकर ऋण देने से इन्कार कर दिया। दूसरी घटना—कर के सम्बन्ध में उस नये सिद्धान्त के प्रचार से घटी जिसके आधार पर कर को जन-साधारण की इच्छा पर निर्भर, किया गया था। इसी तरह राज्य-परिषद् के आमंत्रण में भी इसने अग्रणी का कार्य किया।

ये ही ऐसी अनेक महत्वपूर्ण घटनायें हैं, जिनने फ्रांस के इतिहास में तुर्गत और नेकर का स्थान महत्वपूर्ण बना दिया।

यहीं तक नहीं, लुई षोडश ने इन दोनों से भी आगे फिलौनी और केलौनी को भी अर्थविशेषज्ञ के रूप में क्रमशः नियुक्त किया, किन्तु आर्थिक उत्थान की अपेक्षा इनने राष्ट्र को दीवालिया बना दिया। इससे घबरा कर साधारण नियामक ब्रियन ने भी कुलीन-वर्ग पर कर लागू करने का प्रस्ताव रखा, परन्तु आर्थिक संकट का हल ढूँढने के लिए आमंत्रित पेरिस की लोक सभा और पादरियों की समिति ने उसे अमान्य कर दिया। शासक बेचारा चारों ओर से निरुपाय और निराश्रय हो गया, जिसे विवश होकर १७५ वर्ष की लम्बी सीमा के बाद राज्य-परिषद् का प्रथम

वार अधिवेशन आमंत्रित करना पड़ा। ऐतिहासिको की संमति है कि "परिषद् का यही आमंत्रण निरंकुश शासन की असफलता जनता की विजय और विप्लव के निमंत्रण का शीघ्रतम प्रतीक था।

(४) विद्रोही साहित्य

समाज की आन्तरिक स्थिति के अशान्त रहने के कारण लेखको का एक इस प्रकार का वर्ग बन गया, जिसने वास्तविक दुर्बलताओं की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। विख्यात जर्मन दार्शनिक हैगिल का कथन है कि "राष्ट्रीय चैतन्य के विना विप्लव असंभव है"। शिक्षा प्रचार राष्ट्रीय जागृति मे एक विशेष स्थान रखता है। कृषकों के कष्ट, श्रमजीवियो की विपत्तियाँ, और अनीतिपूर्ण निरंकुश शासन ये सभी सामुदायिक रूप से विप्लव के लिए प्रमुख कारण तो थे ही, परन्तु "विप्लव उसी समय आता है, जब सिद्धान्तवादी मानव अशिक्षित जन-समुदाय को एक ध्येय की प्राप्ति के लिए प्रेरणा प्रदान करता है"।

विशेषतः अट्ठारहवीं शताब्दी के फ्रांस में इस प्रकार के सिद्धान्तवादी मनुष्यों की कमी नहीं थी। समाज, गिरिजा और राष्ट्र इन सव का नग्न चित्रण करने के लिए अनेक लेखक प्रस्तुत थे, जिनकी सशक्त लेखनी द्वारा कराये गये वास्तविक दिग्दर्शन ने जनता को प्रभावित ही नहीं किया, अपितु प्रतिक्रियाशील भी बना दिया। वस्तुतः लेखनी की शक्ति इसीलिए असिधारा से भी प्रवल मानी जाती है और साहित्य में ही वह शक्ति है-जो सोई हुई जनता में स्फूर्त्ति का संचार कर सकती है। किसी राष्ट्र की उन्नत्ति व अवनति का वही एक मात्र नायक होता है-इसी लिए तो कहा गया है:—

"अंधकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं है ।
है वह मुर्दा देश जहाँ साहित्य नहीं है" ॥

इस दृष्टिकोण के आधार पर यदि विद्रोही साहित्य ने जनता को इस ओर अग्रेसर बना दिया तो यह कोई नई बात नहीं थी। सैकड़ों लेखक इस ओर लगे हुए थे, जिनके प्रतिनिधियों के रूप में हम "१-माण्टेस्को, २-वॉल्टेयर, ३-रूसो, ४-डिडेएट, ५-एलिम्बर्ट, ५-क्विस्ने को गिन सकते हैं।

(अ) माण्टेस्को (१६८६ से १७५५)

माण्टेस्को एक प्रतिभाशाली विद्वान व नियम विशेषज्ञ था। उसने प्रत्येक प्रकार की विभिन्न सांसारिक शासन-पद्धतियो का पूर्ण अध्ययन किया एवं अपनी पुस्तक "स्पिरीट आफ लॉज" में उसी के निष्कृष्ट रूप में दो नूतन सिद्धान्तो को व्यक्त किया, जिनका कि १७४८ सन् मे प्रचार किया गया था। इन्हे लोगों ने इतना अधिक संमानित किया कि केवल १८ मास मे ही इस पुस्तक के २२ संस्करण प्रकाशित हुये। यह पुस्तक राजनैतिक दर्शन के अध्ययन के लिए पूर्ण सहायक व माण्टेस्को की लेखनी की प्रभावशालिता की परिचायक है। इस युग-प्रवर्त्तक पुस्तक मे आविष्कृत प्रमुख दो सिद्धान्तो में प्रथम यह था कि—"राजा के कायकलाप एक प्रतिनिधि सभा द्वारा नियंत्रित होने चाहिए एवं एक ही व्यक्ति मे सम्पूर्ण सत्ता केन्द्रीभूत नहीं रहनी चाहिए"। दूसरा सिद्धान्त यह था कि—"वैधानिक राजतन्त्र ही सबसे उत्तम शासनप्रणाली है, जिसके तीनों प्रमुख आधारो १—कार्यकारिणी-सभा, २—विधान निर्मात्री-सभा, ३—न्यायमण्डल का संगठन पृथक् होना चाहिए"। इन दोनों सिद्धान्तो के प्रति संमान प्रदर्शित करते हुए हैजन ने कहा है कि—"वैधानिक राजतन्त्र का यह नूतन दृष्टि-

कोण ही–जो कि निरंकुश शासन से कई गुणा अच्छा था व राजकीय शक्ति को (उपर्युक्त) तीन भागों में बाँटता था—१७८६ के अनन्तर आने वाली फ्रांसीय शासन-प्रणाली का प्रवर्त्तक था"। अतएव हम कह सकते हैं कि मांटेस्को की यह सर्वोत्तम पुस्तक ज्ञान ही का भंडार नहीं थी, वरन् यह उस काल के विचारकों के लिए वादविवाद, समालोचना व चर्चा का प्रमुख आधार बन गई थी।

(आ) वॉल्टेयर (१६६४ से १७७८)

वॉल्टेयर की कार्य-प्रणाली समकालीन यूरोपीय इतिहास में एक अभूतपूर्व देन थी। इसने जनसाधारण को विचार स्वतन्त्रता प्रदान की, इसीलिए जनमत ने इन्हे "राजा" की पदवी से संमानित किया। वॉल्टेयर स्वयं बन्दी रहे और निरंकुश शासन के भुक्तभोगी होने के कारण ही वे उससे अतिशय घृणा करने लगे एवं कानूनी असमानता अन्याय व अत्याचार के विरुद्ध मौन न रह सके। अपनी लेखनी के बल पर इनने लोगों के मन से अन्याय, अन्धविश्वास और अज्ञान को निकाल कर उनके स्थान पर समानता वास्तविकता और ज्ञान को प्रतिष्ठित किया। वह धार्मिक आडम्बरों को भी तुच्छ दृष्टि देखता था व गिरिजा के प्रति क्रोध और घृणात्मक दृष्टि रखता था। उसने कहा है—"सबसे अधिक घृणित और नीच व्यक्ति पादरीवर्ग है—उनमे भी सबसे अधिक अपराधी ईसाईधर्म के पादरी हैं"। किन्तु भगवान् की वास्तविकता मे इसे विश्वास था, इसीलिए इसने कहा कि—"अगर किसी स्थान पर भगवान् नहीं है, तो हम भगवान् को बना सकते हैं व भगवान का बनाना आवश्यक है"। २३ वर्ष की आयु मे ही वॉल्टेयर का यश चारों ओर फैल गया।

इसे राजा के विरुद्ध निन्दा-प्रचार के अपराध में बैस्टील दुर्ग में बन्दी रखा गया एवं विप्लव के समर्थक ही नहीं, प्रवर्त्तकों में से प्रमुख होने के कारण फ्रांस तक से निर्वासित कर दिया गया। फिर यह जर्मनी में गया और वहाँ के राजा "फ्रेडरिक दे ग्रेट" ने इसे अपनी राजसभा के प्रतिष्ठित पद पर समासीन किया। वहाँ से वापस फ्रांस आने के पश्चात् ८४ वर्ष की आयु व सन्यासावस्था में इसका देहावसान हो गया एवं विप्लव के १२ वर्ष बाद इसकी समाधि को खोद कर पुनः रूसो के साथ नया रूप दिया गया। इसकी जीवनसंबन्धी मुख्य अध्ययनीय घटनाओं के लिए प्रत्येक छात्र को इनकी आत्मकथा पढनी चाहिए। वस्तुतः वॉल्टेयर की मृत्यु एक शोकपूर्ण दुर्घटना थी, जिसने अपनी मृत्यु से लोगों के मन मे एक सुन्दर विज्ञान का संचार कर स्वयं को शाश्वत और अमर संसार का सदस्य बना दिया।

वॉल्टेयर प्रजातंत्र की अपेक्षा प्रजापालक एकतंत्र में अधिक विश्वास और आस्था रखते थे। उनका सिद्धान्त था कि समाज के अनुशासन की रक्षा के लिए किसी प्रकार के भी कठोर अधिकार की आवश्यकता है। ये लोकतंत्र की अव्यवस्थाओं से घबराते थे। सबसे बड़ा कार्य इसने गिरिजा की त्रुटियों को जनता के सामने रख कर किया—जिससे गिरिजा का प्रभुत्त्व नष्ट हो गया। वॉल्टेयर की इन्हीं प्रेरणाओं से प्रभावित हो कर के तो ऐतिहासिक उस काल को "वॉल्टेयर युग" कह कर पुकारते हैं।

(३) जीनजाक्विस रूसो (१७१२ से १७७८ ई.)

रूसो उपर्युक्त दोनों व्यक्तियों से सर्वथा विलक्षण थे। यह घृणित जिनेवा शहर के एक घड़ीसाज का लड़का था, जिसकी

बाल्यावस्था आवारागर्दी में ही व्यतीत हुई थी। इसने कहीं भी नियमित शिक्षा प्राप्त नहीं की—जो भी कुछ पढ़ा, स्वयं ने ही। प्रारंभ से ही इसकी जीवनचर्या एक महान् भावी दार्शनिक के समान थी—एक देश से दूसरे देश में व एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय में परिवर्त्तित होते रहना तो इसका स्वभाव था। पदाति सैनिक, अध्यापक और सचिव का काम किया, जूते के फीते बनाये, सङ्गीत का अनुकरण किया, जूआ खेला, रसोई-दारिणियों (पाचिकाओं) व अमीरो की बालिकाओं के पीछे घूमा, नाट्यशाला स्थापित की एवं नवीन "एनसाइक्लोपीडिया" में लेख दिये। इन सब विवरणो मे हम इसकी विचित्रताओं का सहज ही आभास पा सकते हैं।

इतना होते हुए भी वह एक महान् दार्शनिक, विख्यात साहित्यकार और विश्व का प्रतिष्ठित शिक्षा-शास्त्री है, जिससे हम उसके व्यक्तित्व का अनुमान कर सकते हैं। उसने ६ साहित्यिक पुस्तकें लिखीं, जिनमे "एमिली" नामक पुस्तक-जो कि शिक्षाविषयक रचना व "मास्टर ऑफ एजुकेशन" की पाठ्यपुस्तक है, आज भी इसकी शिक्षाविशेषज्ञता प्रमाणित कर रही है। दूसरी पुस्तक "नोबिल हिलायस" अपने काल की सबके अधिक विकने वाली, अतएव जनप्रिय पुस्तक रही है। इसी की लिखी हुई "सोशलकॉन्ट्रैक्ट" तो विप्लववादियो के लिए एक बाइबिल थी, जिसका प्रथम वाक्य यह है—"मनुष्य जन्म से ही स्वतन्त्र हैं, किन्तु वे सर्वत्र शृङ्खलाबद्ध पाये जाते हैं"। मानव किस प्रकार इन शृङ्खलाओ में बँधता है—प्रस्तुत पुस्तक इसी समस्या का एक मनोवैज्ञानिक हल है। इस पुस्तक में प्रकटित निम्न मुख्य सिद्धान्तों के आधार पर हम रूसो की विशालता का परिचय पा सकते हैं—"समाज व्यक्तिगत समष्टि का ही संगठन है, व प्रत्येक मानव स्वतन्त्र व समान है। किसी

भी प्रकार के शासन का सब से पहला कार्य प्रत्येक व्यक्ति के अधिकारो का संरक्षण है। राष्ट्र वस्तुतः मनुष्यों द्वारा अपनी इच्छा से बनाया हुआ एक संगठन है, व मनुष्य की नैतिक शक्ति एक प्रकार का सामाजिक बंधन है, जिसमे से जनता के संपूर्ण प्रभुत्त्व और राजनैतिक एकता का आविर्भाव होता है" रूसो द्वारा प्रवर्त्तित ये नवीन सिद्धान्त फ्रांस के इतिहास मे ही नहीं, सारे स[illegible] में रूसो की अभूतपूर्व देन हैं। इसीलिए रूसो को विप्लव का भविष्यवक्ता कहा जाता है।

अपने प्रथम दो साथियो से यह सिद्धान्त और उनके कार्यान्वित करने की प्रणाली मे विभिन्नताएँ रखता था, यह संकेत हम कर चुके है। यदि मॉटेस्को विघातक और स्वप्नद्रष्टा थे, तो रूसो निर्माता और यथार्थवादी थे। युक्तियों अथवा तर्कशक्ति के द्वारा प्रजातंत्र के प्रचार, व नूतन समाज की रचना मे रूसो से अग्रणी थे। वॉल्टेयर और मांटेस्को राजनैतिक सुधारों के माध्यम से व्यक्तिगत स्वाधीनता प्राप्त कराना एवं अन्याय और अत्याचार का दमन करना चाहते थे, किन्तु रूसो समाज के आमूल परिवर्त्तन के पक्षपाती थे। इनकी दृष्टि में व्यक्तिगत स्वाधीनता राजनैतिक सुधार से ही संभव नहीं थी, अपितु समाज के पुनर्निर्माण पर आधारित थी। इन्हीं स्वतन्त्र विचारधाराओं, व लेखनी की अभेद्य शक्ति के कारण रूसो आज भी विश्व के इतिहास में महान् विचारक का स्थान रखता है।

उसकी इसी स्वतंत्रविचारधारा के कारण तत्कालीन लेखक डी० एलिस्बर्ड लिखते हैं—"रूसो वन्य-जन्तु है और इसे पिजरे के अन्दर से ही देखना चाहिये" उसके सिद्धान्तो की महनीयता के सम्बन्ध में महान् लेखक लार्डमॉर्ले कहते हैं—"रूसों ने (अपनी पुस्तक" एमिली मे) प्रथमतः जो शब्द कहे है, कोई

महत्तम विचारक भी उन्हे काट नहीं सकता। उनके द्वारा उसने इस प्रकार का एक आशादीप जलाया है, जिसे कोई बुता नहीं सकता। उसने लोगों के मन में न्याय्य अधिकारों और अत्याचारों के विपरीत एक शाश्वत आत्मविश्वासको जन्म दिया, जिसके अभाव मे तत्कालीन समाज और सभ्यता अन्याय एवं अत्याचारों की कहानी बन गई थी"। ये ही दूसरे स्थान पर कहते हैं—"रूसो ने फ्रांस के जीवन में एक अभूतपूर्व और असीम शक्ति प्रदान की, व मूक जनता को जागृत कर उसे आवाज दी"। संक्षेप मे उस विशाल जन-समुदाय को मृत्यु के द्वार से वापस लाने काम इस महात्मा ने किया।

इनके अतिरिक्त भी ऐसे और बहुत से लेखक समाज पतनोन्मुख-शासन. व गिरिजाओ की दुर्बलताओ का नग्नचित्र अंकित करके जनसाधारण को नवीन प्रगति पथ की ओर ले जा रहे थे। डिडिराट और एलिम्बर्ड ने इन्हीं विषयों पर संमिलित रूप से २८ भागों में "एन् साइकुल् ओपिडिया" नामक पुस्तक लिखी, जो विश्वजीवन के आवश्यकीय ज्ञान का अनुपम भंडार है। यह पुस्तक अज्ञान और अंध-विश्वास को दूर करने के लिए अमोघ अस्त्रसिद्ध हुई।

(ई) *क्विस्ने*—क्विस्ने ने-जो कि "फिजोक्रियोटिक स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स" के संस्थापक थे—विश्वास प्रकट किया कि—"सृष्टिके प्रारंभिक काल मे प्रत्येक मानव के अधिकार समान थे' व अपने लाभ के लिए शारीरिक शक्ति और मेधाके विकास मे स्वतंत्र था। इसीलिए इसने औद्योगिक व्यावसायिक और कृषिसंबन्धी स्वाधीनताओ का प्रचार किया, व इसके पूरक सुधारो की मांग की।

इन लेखकों की इसी प्रशंसनीय राष्ट्र भक्ति एवं सशक्त लेखनी की विशेषताओं की ओर संकेत करते हुए प्रो० कैटिल बी०

कहता है—"फ्रांस मे-जहां लोक सभा नहीं थी, वहाँ लेखको का समुदाय राजनैतिक बनने का प्रयत्न करता था। इसी संबन्ध में हैजिन कहता है—"तत्कालीन साहित्य भविष्य का एक उज्जवल स्वप्नद्रष्टा था। कोई भी राष्ट्र इतने सुन्दर और रंगीन स्वप्नो का समावेश इतने कम समय मे नहीं कर पाया"। साहित्यिको की ये विचारधाराएँ इतनी सरल और सहज थीं कि प्रत्येक पाठक को केवल पढ़ने मात्र के लिए ही नहीं, अपितु वास्तविक रूप से कर्तव्य की और अग्रसर होने की प्रेरणा देती थीं। इस विचारधारा में केवल निन्दनीय, घृणात्मक एवं वैप्लविक तत्त्व ही नहीं थे, परन्तु जनता में महान् आत्म-विश्वास जागृत करने की शक्ति भी अंतर्हित थी। इसीलिए हम उसे ध्वंसात्मक के साथ २ ही रचनात्मक भी कह सकते है।

किन्तु इसका यह अभिप्राय नही है कि लेखको व उनके साहित्य ने ही फ्रांसीय विप्लव को जन्म दिया। कुछ एक ऐतिहासिक "फ्रांसीय दार्शनिको के प्रभाव को ही विप्लव का जन्मदाता कहते है", किन्तु चारों ओर फैली हुई असमानताओं, अव्यवस्थाओं, व अराजकताओं की उपेक्षा कर लेखकों को ही इसका उत्तरदायी बनाना युक्तिसंगत नहीं है। हां, इतना अवश्य है कि—जनता मे बिखरी हुई इन अनीतियों से बचने के लिए प्रजा को आत्मरक्षा का पाठ पढाया, एक महान् आत्मबल प्रदान किया, व सार्वदेशिकशक्ति प्रदान की। इसीलिए साहित्य को जन्म दाता तो नही, पर इतना श्रेय अवश्य दे सकते है कि उसके पथ-प्रदर्शन के विना विप्लव का पदार्पण इतने शीघ्र नही होता।

(५) अमेरिका की क्रान्ति के प्रभाव:—

सन् १७७४ मे अमेरिका निवासियो ने व्यक्तिगत अधिकारो की घोषणा की, जिसमें रूसो के "सोशलकांट्रैक्ट" के मूल

सिद्धान्त निहित थे। उस अवसर पर फ्रांस की ओर से लॉफ्रायत के नेतृत्त्व मे एक सेना इंग्लैण्ड के विरुद्ध अमेरिका की सहायता के लिए गई थी, वह जब लौटी, तो अपने साथ गणतंत्रवाद और क्रान्ति के सिद्धान्त भी ले आई। तत्कालीन पर्यटक आर्थर्यंम ने इस सम्बन्ध मे लिखा था-कि "अमेरिका की क्रान्ति ने फ्रासीय विप्लव के वीज बो दिये हैं। यदि सरकार इस ओर ध्यान नही देगी तो विप्लव अवश्यंभावी है।" फ्रांसीय जनता भी स्वाधीनता के लिए लालायित हो गई, क्योंकि इसकी सहायता से ही अमेरिका के निवासियो ने पृथ्वी के इतिहास मे सवसे पहले स्वतंत्रता प्राप्त की, व गणतंत्रवाद की स्थापना-की। इसलिए यह कहना अनुचित नहीं कि "विप्लव की धारणाएँ एटलांटिक समुद्र के उस पार से फ्रांस में फ्रांस के निवासियो ने ही अर्जित की। इन भावधाराओं के आनयन मे नोवालिस, लमेथ व लॉफ्रायत का प्रमुख भाग है।

लॉफ्रायत की कुशेलता के संबन्ध में लार्ड एक्टन ने कहा है- "लॉफ्रायत एक नूतन पथ-प्रदर्शक था। इसीने सबसे पहले यह घोषणा की कि विरोध ही सबसे पवित्र कर्तव्य है और इसीके द्वारा इस शास्त्रीय सिद्धान्त का उद्भव हुआ है कि-राजनैतिक शक्ति वही से आती है, जहाँ उसका प्रयोग किया जाता है। मनुष्य का अतीत ही इसके लिए एक प्रकार की चेतावनी है"।

(६) सैनिक असंतोषः—

उपर्युक्त सब कारणो के अतिरिक्त विप्लव के आह्वान में सैनिक असंतोष सब से प्रमुख था, जिसकी चर्चा करते हुए ८ जुलाई सन् १७८६ को विधानसभा के एक सदस्य ने कहा कि "राजा के पास मानसिकशक्ति नही है और संगीन की शक्ति का भी लोप हो चुका है"। विप्लव के इतिहास का

सिंहावलोकन करने से यह प्रतीत होता है कि—सैनिकों के हाथ में संगीन थी, अधिकारियो के हाथ मे तलवार थीं, पर इनके प्रयोग करने की इच्छा नहीं थी। १७८८ में एक उच्चपदस्थ राज्य कर्मचारी ने घोषणा की कि—"सैनिकों पर आंतरिक शांति के लिए निर्भर रहना असम्भव है"। इसी प्रकार राज्य-परिषद्–जब पैरिस में सम्मिलित हुई–तो नेकर ने कहा कि—सैनिको का कोई निश्चय नहीं है–न हम उन पर निर्भर ही रह सकते है"। इन सभी उदाहरणो से इस तत्कालीन सैनिक-असन्तोष और उसके प्रभाव का अनुमान लगा सकते हैं।

इतने पर भी उच्चपदस्थ सैनिक अधिकारी अयोग्य थे, क्योंकि उनकी नियुक्ति केवल वंश-परम्परा के आधार पर होती थी। किसी ने ठीक ही कहा है—"ये माँ के पेट मे ही कर्नल बन जाते थे"। इसीलिए योग्यव्यक्ति उदासीन रहते थे, और ये उन्हें नियन्त्रित करने मे असमर्थ थे। इसके अतिरिक्त १७८१ मे एक इस प्रकार का नियम घोषित किया गया–जिसके आधार पर सैनिको की उन्नति का मार्ग रुक गया एवं इसी के परिणाम स्वरूप कुछने नौकरी छोड़ दी, मुराट आदि ने त्याग पत्र देकर राज्य के विरुद्ध प्रचार–प्रारम्भ कर दिया और शेष अन्तर ही अन्तर मे असन्तोष की भावना को शनैः २ बढ़ाने लगे। थोड़े दिन बाद जो प्रविष्ट किये गये–वे बुद्ध व अनुशासनहीन थे—जिनके नियंत्रण के लिए एक कठोर शासक की आवश्यकता थी, जिसका अभाव पहले ही से था।

इन्ही तर्कों के आधार पर हम कह सकते हैं कि यदि सैनिक-असन्तोष नहीं होता, तो संभवतः विप्लव इतना उग्ररूप धारण नहीं करता।

संक्षेप में यह विप्लव असमानता की भावना के विरुद्ध जागृत जनता के उद्दीप्त गर्व का परिणाम था, इसीलिए

नेपोलियन ने स्वयं ही प्रश्नोत्तर में कहा है—"विप्लव कैसे हुआ ? गर्व से स्वाधीनता तो एक निमित्तमात्र थी"। फौबुअत ने कहा—"विप्लव असमानता के विरुद्ध अधिक था, राजकीय एकतन्त्र के कम"।

(ग) फ्रांस में ही विप्लव क्यों हुआ ?

इन सब कारणो के होते हुए भी, फ्रांस में ही कुछ ऐसी विशेष परिस्थितियाँ थीं, जिनके कारण सबसे पूर्व वहीं विप्लव का श्रीगणेश हुआ। उनकी चर्चा करते हुए महान् विचारक मोरिटफन्स कहता है—१—"फ्रांसीय कृषक जर्मनी और रूसियों की अपेक्षा अधिक स्वाधीन, सम्पत्तिशाली व शिक्षित थे, यही कारण था कि उनके प्रभुओ के राजनैतिक व सामाजिक अधिकारो से ये घृणा करते थे, व अतिरिक्त कर की वसूली से भी अत्यन्त असन्तुष्ट थे"।

२—"फ्रांस के शिक्षित ज्ञान के प्रकाश से आलोकित एवं नवीन सिद्धान्तों से ओतप्रोत मध्यमवर्ग ने श्रमजीवियों और कृषकों को विप्लव के प्रारम्भिक काल मे नेतृत्त्व प्रदान किया"।

३—"फ्रांसीय जनता अन्य देशो की अपेक्षा अधिक मात्रा मे व्यक्तिगत स्वाधीनता का आस्वाद कर चुकी थी एवं राजनैतिक स्वतन्त्रता व सामाजिक समानता के लिए संघर्ष करने को प्रस्तुत थी"।

इसी विषय में रिटफिन्स कहता है—"फ्रांसीय विप्लव मुख्यत: राजनैतिक और आर्थिक कारणों से हुआ, सामाजिक व साहित्यिकों से नहीं। इसकी प्रगति यूरोप निवासी जातियों की निष्क्रियता व ऐतिहासिक कारणो से हुई"।

पाकुई विलेने कहा है—"विप्लव के लिए प्रत्येक राष्ट्र की आन्तरिक अवस्था निम्न से निम्न स्तर तक ही जानी चाहिए, यह अनिवार्य नहीं है।

षोडश लुई के सुधार-प्रयत्नों ने विप्लव को भड़काने का काम किया, जैसा कि कीचड़ को छेड़ने से वह ऊपर उठता है, दुर्गन्ध हिला देने से अधिक फैलती है। जनता मे व्यापक असंतोष फैल गया, आर्थिक अवनति के कारण सेना को वेतन नहीं मिला और वह भी जनता के साथ इस विद्रोह में सम्मिलित हो गई। स्थिति इतनी भयावह हो चुकी थी कि राजा को अपने अङ्गरक्षकों तक की संख्या कम कर देनी पड़ी। संक्षेप मे तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व साहित्यिक परिस्थितियाँ एक प्रकार से संगठित बारूद थी, जिसमें चिनगारी लगाकर विस्फोट करने का काम राजा की दुर्बलता ने किया।

३—फ्रांसीय विप्लव

(क) फ्रांस की राष्ट्रीय परिषद् (मई १७८६ से सितंबर १७६१)

(१) राज्य परिषद् का अधिवेशन—५ मई १७८६ को पेरिस से १० मील दूर प्रसिद्ध भरसालिस नगर में "राज्य-परिषद्" का अधिवेशन हुआ, जिसमें २८५ कुलीन, ३०८ पादरी, ६२१ निम्नवर्ग के प्रतिनिधि संमिलित हुए। ये प्रतिनिधि फ्रांस की जनता द्वारा बालिग मताधिकार (२५ वर्ष से ऊपर) के आधार पर निर्वाचित थे, जो अपने आपको विधान-निर्माता मानते थे। इनमें से प्रत्येक अपने साथ अपने प्रदेश से जीवन की अनिवार्य समस्याओं व आवश्यकताओं के संबन्ध में विस्तृत विवरण (शिकायत पत्र) लाता था, जिसे "काहियर्स" कहा जाता था। उपर्युक्त तीनो श्रेणियों के सदस्य पृथक् २ रूप में संगठित हो कर मत देते थे, जिनमें दो वर्गों द्वारा संमानित सिद्धान्त ही स्वीकृत समझा जाता था। मतदान एक एक वर्ग के हिसाब से होता था। व्यक्ति के हिसाब से नहीं। अतएव सुविधाओं से वंचित तृतीयवर्ग अधिवेशन के प्रारंभ से ही एक विरोधी-दल बन गया, जिसका नेता ओबिसाइज़ था। प्रारंभ में ही राज्य-परिषद् के सामने दो प्रमुख प्रश्न उपस्थित हुये— १. क्या तीनो वर्ग समान समान प्रतिनिधि रखेंगे, अथवा तृतीय वर्ग के अधिक प्रतिनिधि होंगे ? २. क्या तीनों वर्ग सामूहिक रूप से मत देंगे, अथवा व्यक्तिगत रूप से ? यहीं से संघर्ष की जागृति हो गई।

२—संघर्ष का पहला अध्याय

उपर्युक्त प्रश्नों के समाधान के रूप में स्वाभाविकतया तृतीय वर्ग ने योग्य मिराबुआ के नेतृत्त्व मे सर्व-प्रथम यह माँग
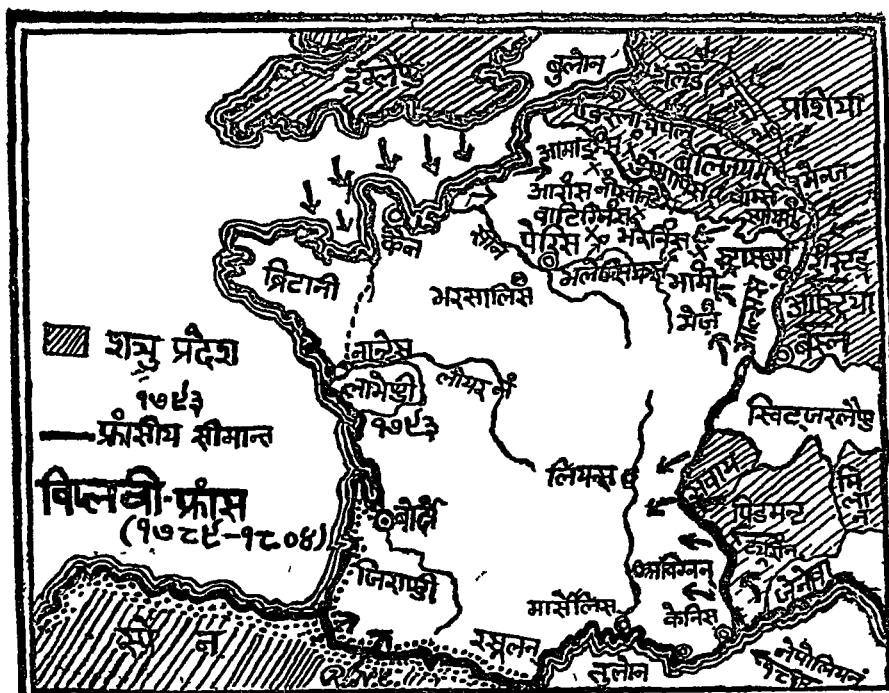
विप्लवी-फ्रांस (१७८९-१८०४)
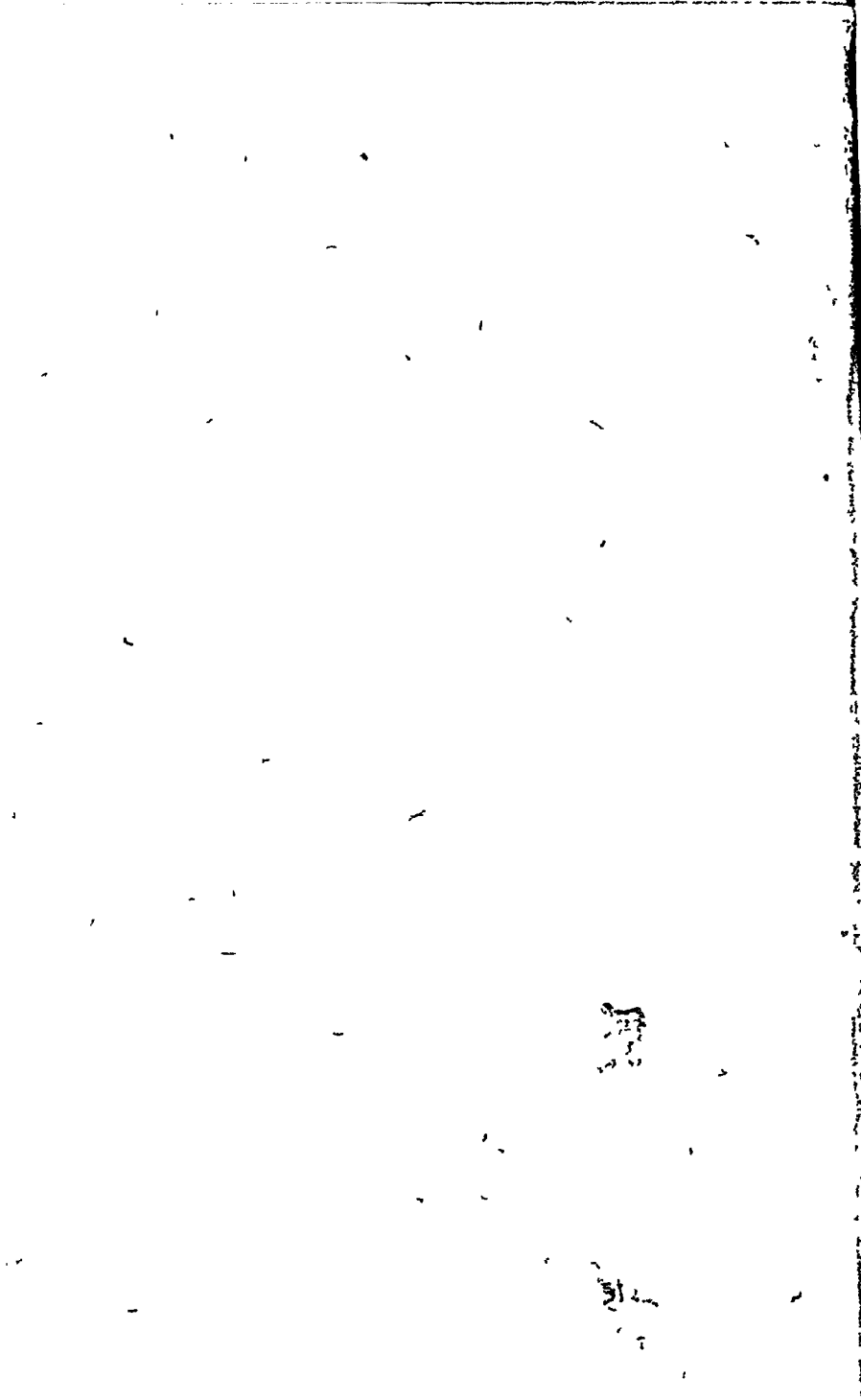
प्रस्तुत की कि मत वर्गगत न होकर व्यक्तिगत होना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसने एक राष्ट्रीय विधान-सभा का आमंत्रण तत्कालीन समस्याओं के सुलझाने के उद्देश्य से अनिवार्य बताया। उनमें से अधिकांश व्यक्ति एक विधान और राजा की प्रभुता को समाप्त करने की अपेक्षा सीमित करना चाहते थे। परन्तु अधिकांश द्वितीयवर्ग ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। षोडश लुई ने—जिसकी सहानुभूति कुलीनो की ओर थी, इस मॉग को ठुकरा दिया। इस पर भी सबसे बड़ी त्रुटि यह हुई कि इसके स्थान पर तृतीयवर्ग की इस समस्या के हल का वह कोई दूसरा मार्ग न दे सका। इतना ही नहीं, अपितु उसने २० जून १७८९ को तृतीयवर्ग के सदस्यो पर विधान-सभा में प्रवेश का प्रतिबंध तक लगा दिया। उसका यह क्रियाकलाप समसामयिक लेखकों के शब्दो में संघर्ष का महान् उद्दीपक हुआ। इसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप तृतीयवर्ग के सदस्यो ने प्रसिद्ध पादरी लेखक एबिसाइज के नेतृत्त्व में भवन त्याग कर दिया व टेनिस मैदान में जाकर एक राष्ट्रीय संगठन की स्थापना करते हुए निम्न शपथ ग्रहण की—"हम सब आपस में संगठित होकर रहेगे व जिस प्रकार परिस्थितियां बदलेंगी, उसी प्रकार हम अपने कार्यक्रम बदलेंगे—जब तक कि हमारे राज्य का संविधान नहीं बनेगा"। इनकी भावनाओं और आकाङ्क्षाओं का परिचय हम एबिसाइज की "थर्ड स्टेज" नामक पुस्तक के इस प्रश्नोत्तर से पा सकते हैं—

प्रश्न—१. "तृतीय श्रेणी क्या है"? उत्तर—"कुछ नहीं"।
२. "क्या होनी चाहिए"? "सर्वाधिकारी"।

इन नेताओं की इन्हीं प्रेरणाओं ने फ्रांस की तृतीय श्रेणी के बच्चे २ में चैतन्य और स्फूर्त्ति का संचार कर दिया। इन्हीं के संगठन और साहस का परिणाम था कि इनने पादरियों की

सुधार-प्रणाली के सुझावों को अमान्य कर दिया। राजा को इन सब घटनाओं का विवरण मिलने पर उसने सेना नायक "कॉन्टेडी ऑटायस" को भेजा, जिसने उन सदस्यों को उस उद्यान से शान्ति व अहिंसापूर्ण उपायों से बहिष्कृत कर दिया।

३—राष्ट्रीय परिषद् की स्थापना

इस घटना के तीन दिन पश्चात् राजा का आदेश प्राप्त हुआ कि "प्रत्येक श्रेणी अपने निर्धारित समिति-कक्ष में केवल कर के संबन्ध में समालोचनाएँ करे, संविधान की रूपरेखा, सामन्तसंपत्ति व प्रथम दो वर्गों की सुविधाओ के संबन्ध मे नहीं"। इसके अतिरिक्त राजा की यह भी कामना थी कि साधारणवर्ग के प्रतिनिधि परिषद् से चले जायें"। अपनी इस इच्छा को व्यक्त कर जब राजा ने भवन त्याग किया, तो तृतीय श्रेणी के नेता मिराबुआ ने उठ कर राजा के प्रतिनिधि ड्यूस-ब्रिज से कहा—"महोदय ! आप अपने प्रभु से कह दीजिये-कि हम यहाँ जनता की इच्छा से एकत्रित हुए हैं व बन्दूक एवं संगीन के धक्के के बिना नहीं जायेगे"। प्रतिनिधि ने जब यह सूचना राजा को दी, तो राजा ने कहा—"अच्छा उन्हे रहने दो"। इस घटना के सम्बन्ध मे फ्रांसीय लेखक ने लिखा है—"यह विप्लवियों की पहली विजय हुई"। इतना होते हुए भी राजा और उच्चवर्ग का अपमान नहीं किया, परन्तु अपनी शक्ति को संगठित करके राजनैतिक विषयों में हस्तक्षेप स्थापित किया। चार दिवस के अनन्तर स्वयं लुई षोडश ने लिखा कि—"मैं चाहता हूँ-तीनों वर्ग मिल जुल कर राज्य की बहुल समस्याओं का समाधान करें", इसी का क्रियात्मक परिणाम राष्ट्रीय परिषद् का उदय हुआ।

४—संघर्ष का द्वितीय अध्याय

विप्लव का दूसरा अध्याय पेरिस से प्रारंभ हुआ। राजधानी में पहिले से ही अनेक विद्रोही संस्थाएँ गुप्त रूप से प्रजा को सम्राट् के विरुद्ध भडकाने का काम कर रही थी, जिनमें चोर, गुंडे, बदमाश, नशेबाज, कृषक व कुछ विद्यार्थी भी संमिलित थे-जो अपने निम्न-स्वार्थ सिद्ध करना चाहते थे। इनका प्रमुख नेता कैमुली डेस्मोलिन्स था—जिसने जनता को उत्तेजित करते हुए कहा—"शिकार अब जाल मे फँस गया है, आओ हम सब अब उसे पकड़े। पृथ्वी के इतिहास में इतना बड़ा शिकार कभी जनता के हाथ में नहीं आया"। इसी प्रकार एक विद्रोह-समर्थक ने कहा—"अब ४० हजार विलासिताओं के प्रासाद, उद्यान व गांवों के रमणीय प्रदेश साधारण जनता मे बाँटे जायेंगे"। जुलाई-मास मे इसी प्रकार लोगो में आतंक फैल गया, दुर्भिक्ष का भय बढने लगा और ११ जुलाई को राजा ने जनता के प्रिय परम-हितैषी नेकर को पदच्युत कर दिया। जिसके विरोध-प्रदर्शन के लिए १२ जुलाई को डेस्मोलिन्स ने पेरिस नगरी के राजकीय उद्यान में एक सभा की और जन-समुदाय को संबोधित करते हुए कहा—"आओ अपने अस्त्र शस्त्र संचित करें। अब हमे एक क्षण का भी दुरुपयोग व शैथिल्य नहीं करना चाहिये। राजा ने नेकर को पदच्युत कर दिया है। आज रात को ही जर्मन और स्विस् सेना जनता में हत्याकाण्ड मचायेगी। हमारे लिए अब एक ही मार्ग रह गया है—वह है—लड़कर मरना"। इन प्रेरणाओं से प्रभावित होकर उपस्थित जन समुदाय ने उद्यान के पत्तों को ले लेकर अपने प्रतीक (बैजेज) बनाये व नेकर की मोम से बनी हुई मूर्त्ति को लेकर प्रासाद की ओर पदार्पण किया। अनेक विशिष्ट

सेनानायक (राजकीय) जनता में सम्मिलित हो गये व सम्पूर्ण नगर मे एक अराजकता फैल गई। १२ जुलाई की रात्रि में ही २० से ४० हजार तक विद्रोही शहर मे एकत्रित हो गये, व बलात्कार से शस्त्र संचित करने लगे। १४ ता० तक विप्लवियों के पास पर्याप्त रसद, ५० हजार बल्लम, ३२ हजार बन्दूकें इकट्ठी हो गईं—जिनमे दो चॉदी की तोपें भी थीं—जो कि श्याम क बादशाह ने फ्रांस के राजा को भेंट के रूप मे दी थीं। इसी अवसर पर एक बवंडर फैल गया कि "बैस्टील दुर्ग में बारूद है", इसीलिए विद्रोही नेताओं का उस पर आक्रमण करना स्वाभाविक हो गया। शताब्दियों से 'बैस्टील' एक अत्याचारी और निरकुश शासक का बन्दीगृह था—जिसकी ८ ऊँची २ मीनारे सदा ही लोगो के मन में उस आतंक और निष्ठुरता का सचार करती थीं—जो कि इस दुर्ग के बंदियो के साथ की जाती थी। इस दुर्ग के अध्यक्ष डिलाउनी के पास संमान प्रदर्शन के रूप मे कुछ तोपें, ६५ पेन्शनर व ३० स्विस गार्ड थे-किन्तु उसने दुर्बलता से अपना बचाव किया। दुर्ग को ध्वस्त व बन्दियो को मुक्त कर दिया गया। डिलाउनी ने—"अब एक भी व्यक्ति पर अत्याचार नहीं किया जायेगा" यह कहते हुए जनता के संमुख आत्मसमर्पण किया। परन्तु मार्ग में विप्लवी नेता जब उसे "होटल डी० विले" की ओर ले जा रहे थे, तो क्रुद्ध जनता उस पर टूट पड़ी व उसके टुकड़े २ कर दिये। एक खानसामा ने उसका सिर काट लिया व उसे एक बल्लम में लगाकर प्रदर्शन करते हुए होटल तक ले गया। इस घटना से छोटे २ बच्चे व महिलाएँ भी विजय-नृत्य करने लगीं और जनता ने रक्त का स्वाद लिया। दो चार दिन पश्चात् नेकर की पदच्युति के अनन्तर नियुक्त किये हुए फूलन और बर्थियार नामक दो मन्त्री भी जनता द्वारा नृशंसता के

साथ कुचल दिये गये व इसी तरह उनके भी छिन्न मस्तकों की प्रदर्शिनी की गई।

५—पेरिस का विद्रोह

समसामयिक लेखक की दृष्टि में बैस्टील दुर्ग का पतन एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। फॉक्स लिखते हैं—"इससे बड़ी घटना पृथ्वी के इतिहास में अत्यन्त विरल है"। यह सब राष्ट्रीय परिषद् ही का दायित्त्व था—जिसने इस संघर्ष को राजनैतिक रूप दिया और एक महान् रक्त-क्रान्ति की प्रति-शोधात्मक भावना से भर दिया। लोग अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध मूक न रह कर उभर पड़े और रक्त-क्रान्ति के उपासक हो गये। पेरिस के समुदायविशेष द्वारा सत्ता अधिकृत कर लेने के कारण चारो ओर असंतोष फैल गया और लोगो के मन में यह धारणा हो गई कि—जब एक राजा था तो लोगों को रोटी मिलती थी, पर अब १३०० व्यक्ति जब शासक हो गये हैं, तो जनता को रोटी मिलना भी दुर्लभ हो गया है। इस असन्तोष के दमन के लिए तृतीय श्रेणी के सदस्यों व पेरिस के समुदाय विशेष में सधि हो गई, जिसके आधार पर लॉफायत को राष्ट्रीय रक्षादल का अध्यक्ष बना दिया गया व राजा ने भी इस निर्णय को मान्यता प्रदान की। १७ जुलाई को राजा तीन चतुर्थांश परिषद् के सदस्यो के साथ बड़े भारी जुलूस के रूप में पेरिस की ओर चला। पेरिस पहुँचने पर शहर के प्रमुख नागरिकों ने उसके स्वागत का महान् आयोजन किया। सम्राट् ने हँसते हुए तृतीयवर्ग के तिरगे झडे को अपना लिया-व जनता खुशी से पुकारने लगी—"राजा अब तृतीयवर्ग मे सम्मिलित हो गया"। कुछ लोग इस प्रकार का अप्रिय सत्य भी कहने लगे—"राजा ने अपने मृत्यु-संदेश पर हस्ताक्षर

कर दिये"। जनता के अनुरोध पर सम्राट् ने यह स्वीकार किया कि जहाँ पहले बैस्टील दुर्ग था, वहाँ अब उसकी प्रतिमा स्थापित की जाये"। इस संवन्ध में मैडेलिन कहता है—"इस प्रकार एक विशाल असत्य में से एक नवीन और सत्य युग का जन्म हुआ—जिसके जन्म होते ही लोगों में स्वाधीनता की स्फूर्त्ति आ गई"। तृतीयवर्ग के कार्यकलाप जनता व राजा के द्वारा स्वीकृत एवं प्रोत्साहित हो गये—जिसका परिणाम यह हुआ कि एक अभूतपूर्व अराजकता एवं अत्याचार के युग की सृष्टि हो गई।

(क) प्रदेशों पर प्रभावः—इस प्रधान नगर की जनता ने ही जब विद्रोह प्रारम्भ कर दिया, तो फ्रांस के आंतरिक प्रदेशों में भी इसका प्रभाव बढ़ा। दमन के शिकार कृषक भी अब सशस्त्र होकर राजा के विरुद्ध शस्त्र प्रयोग के लिए संघवद्ध होने लगे। उनने पेरिस की घटना को अतिरंजित करके चारों ओर वातावरण को अशान्त कर दिया व कहने लगे—"स्वयं राजा ने कुलीनों की समाप्ति के लिए उनसे सहायता माँगी है"। जो मैनेजर, कामदार व करसंचेता इनसे असहयोग करने लगे, उन्हें नष्ट किया गया व उनकी ही नहीं, सामन्त प्रभुओं तक की संपत्ति छीन ली गई और अन्नागारों को भी जला दिया गया। सरकारी कर्मचारी जान बचा बचा कर शहरों में भाग आये, शासनयन्त्र सर्वथा शिथिल हो गया। स्थान २ पर विद्रोहियों ने छोटे २ जातीय संगठन स्थापित किये, जिससे अराजकता की धारा अप्रतिहत रहे।

(६) समानताकी ओर

राष्ट्रीय-परिषद् भी इस समय चुपचाप नहीं थी, उसके बहुत से सदस्यो की आत्मा विप्लव से अत्यन्त दुःखी थी। कुछ

एक कट्टर धारणा के सदस्य इससे आह्लादित थे, एवं जनता को और भी अधिक प्रेरित और प्रोत्साहित करने के पक्ष में थे। प्रमुख लोकनायक मिराबुआ का यह ध्यान था कि राष्ट्र अपनी शिकार को नष्ट करे, प्रतिशोध लें, अन्यथा वह स्वयं आन्तरिक ज्वाला से भस्म हो जायेगा। जब ऐसी ही परिस्थिति थी—तो ४ अगस्त को रात्रि काल में (जिसे फ्रांस के इतिहास में ठगों की रात्रि कहा जाता है) एक दरिद्र कुलीन नवयुवक नॉलिस उठ कर कहने लगा—"यह जो अराजकता और अशान्ति फैली हुई है, इसका मूलकारण गरीब जनता पर सामन्तप्रभुओं की असाधारण भेंट का बोझा है—जिसका शीघ्र ही अवसान होना चाहिए"। इस आत्मनिवेदन का इतना प्रभाव हुआ कि स्वतः ही कुलीनवर्ग में स्वार्थत्याग की धारा लहराने लगी। उनने स्वयं ही अपनी भेंट परम्पराओं व पादरियों ने दक्षिणाओं को अस्वीकार कर दिया। सुविधावादियों ने स्वेच्छा से ही अपनी सुविधाओं को समाप्त कर दिया। इसी अवसर पर तीस विशेष कानून बनाये गये, जिन्हे इतिहास ने "स्वार्थत्यागी" नियम कह कर व्यवहृत किया। इनसे साधारणवर्ग को बेगारी, सामंत अधिकार, उच्चपदों का विक्रय एवं असमान करों से मुक्त कर दिया गया। प्रातःकाल होते होते आँसू–हँसी, व्यंग्य–खुशी के संमिश्रण में महत्त्वपूर्ण सामाजिक परिवर्त्तन हो गये। सभा के अन्त में एक अमीर ने लुई षोडश के प्रति धन्यवाद-प्रस्ताव प्रस्तुत किया, जिसमें उसे फ्रांसीय स्वाधीनता का जन्मदाता बताया गया। वस्तुतः यही था—प्रादेशिक जनता के विद्रोह के प्रति राष्ट्रीय परिषद् का क्रियात्मक उत्तर।

(७) नवीन संविधान

सदस्यों का मुख्य कार्य अब विधान–निर्माण रह गया था।

लॉफ़ायत के प्रस्तावानुसार सदस्यों ने यह निर्णय किया कि विधान के मूलसिद्धान्त अमेरिकावासियों की तरह जनता के समक्ष प्रस्तुत किये जायें। इसी अवलम्ब पर १२ अगस्त को मानव के आधारभूत अधिकारों की घोषणा की गई—जिसमें यह अभिप्राय निहित था कि—"प्रत्येक मनुष्य देश व समय के लिए विश्व के उदाहरण स्वरूप यह घोषणा की जा रही है कि प्रत्येक मनुष्य जन्म से समान है, तथा इसीलिए उसके अधिकार भी समान होने चाहिए"। यह प्रचार राजसत्ता व प्रभुता के विरुद्ध था। यही दृढ़ कार्यक्रम सर्वप्रथम राष्ट्रीय-परिषद् के संमुख उपस्थित हुआ, जिसके समर्थन के लिए सारे विप्लवी एक हो गये। परन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि राजनीति या शासन संचालन के सम्बन्ध में प्रजातंत्र या गणतंत्र हर समय के लिए लाभदायक नहीं है। इसकी सफलता मे विलम्ब भी होता है और इसीलिए इस आधारभूत-अधिकार को कुछ लोग ग़लत मार्ग भी कह देते हैं।

इसीलिए मिराबुआ सर्वप्रथम कहते हैं:—"इसका परिणाम अच्छा होता कि हम नागरिक अधिकारों की अपेक्षा नागरिक कर्त्तव्यों का प्रचार या घोषणा करते"। आगे चल कर कहते हैं:—राष्ट्रीय-परिषद् के सदस्यों में इसने एक इस प्रकार की आशा का उदय किया—जिसको क्रियान्वित करना कठिन ही नहीं, असंभव भी था। प्रो० कैटिलबी० कहते हैं:—"जब तक कि एक सर्वांङ्ग सम्पन्न संविधान न बन जाये व उस अधिकार की रक्षा के लिए पूर्ण प्रबन्ध न हो जाये—मनुष्य के अधिकार गुप्त रहने चाहिए"। अत एव मलौवथ ने पुनः यह मॉग की कि "यदि शासक को शान्ति स्थापित करना है, तो उसे मानव को अधिकार के मादक स्वप्नाकाश से नीचे उतारना ही होगा। फिर हम उमे क्यों उत्तेजित कर अधिकारों के पहाड पर

जा॰ँ, जब कि पुनः जमीन पर आना आवश्यक है। फिर भी यदि ऐसा किया गया, तो असंतोष अनिवार्य है" । इस प्रकार आधारभूत अधिकारों की घोषणा और नूतन संविधान मे आगामी ४ वर्ष तक के लिए संघष चलता रहा, क्योंकि संविधान की रूपरेखा क्रियात्मक एवं अधिकारो की घोषणा आदर्शात्मक थी—जिनका समन्वय असंभव था। इस घोषणा ने नाटकीय-यवनिका का उत्थान कर स्वाधीनता के वैभव का प्रदर्शन किया, किन्तु संविधान की रूपरेखा ने उस उठे हुए पट को प्रायोगिकता के अभाव में पुनः पतित कर दिया।

८—निषेधाधिकार व स्त्रियों का प्रदर्शन

राष्ट्रीय परिषद् जब संविधान की पूर्णता मे व्यस्त थी, उसी समय एक विद्रोह की झलक परिषद् स उठी—वह यह प्रश्न था कि नूतन संविधान मे राजकीय निषेधाधिकार रखना चाहिए या नहीं ? पेरिस के उग्र विरोधी दल को जनता को उभाड़ने का यह स्वर्ण सुयोग मिला। मिराबुआ इस अशान्ति के साम्राज्य में सम्पूर्ण शक्ति अपने में केन्द्रित करना चाहते थे, एवं उग्र विरोधी दल द्वितीय क्रान्ति की आवश्यकता व महत्ता में विश्वास रखता था। वस्तुतः ये ही दो आन्तरिक कारण पेरिस से भरसालिस तक आने वाले स्त्रियो के जुलूस के जन्मदाता थे—जिनने राजा द्वारा दिये गये सैनिक प्रीति-भोज, व उससे उत्पन्न अन्नाभाव को बाह्यनिमित्त बना लिया था। स्त्रियां इस विक्षोभ की शिकार हो गईं। इसीलिए ४ अक्टूबर से ६ अक्टूबर तक भरसालिस मे राजकीय प्रासाद और राष्ट्रीय-परिषद् महिलाओं के जमघट से घिर गये—जिनमें संख्या बढ़ाने के उद्देश्य से अनेक पुरुष भी स्त्रियो की वेष-भूषा मे सम्मिलित हो गये थे। ये सब रोटी की मांग करते हुए पेरिस से आये थे। राजकीय

प्रासाद पर इनने संमिलित रूप से आक्रमण किया और अंग-रक्षको ने तितर वितर कर बचा लिया अन्यथा ये रानी के भी टुकड़े २ कर देते। राष्ट्रीय परिषद् के सदस्य पुनः पेरिस के इस उग्रदल के आधीन हो गये। लॉफायत भी-जो कि राष्ट्रीय रक्षा दल का अध्यक्ष था, पेरिस से जुलूस के साथ आया था, पर उसने अपनी दुर्बलता के कारण यह संमति दी कि सभी स्त्रियां "रोटी वाले" (राजा)"रोटी वाले की स्त्री" (रानी) व लड़के को लेकर पेरिस लौट जायें। एक विदूपक ने सूचित किया कि राज-प्रासाद अब किराये पर दिया जायेगा, एवं उसी दिन से राजा को पेरिस की जनता के आधीन बन्दी का सा जीवन बिताना पड़ा। १० दिसम्बर को गजा के साथ २ राष्ट्रीय परिपद् भी—उस क्रुद्ध जनता के संपर्क मे आगई, जिसके वल्लभ व संघ की शक्ति वे प-ले ही अनुभव कर चुके थे। जनता की विजय अब सम्पूर्ण हो गई।

(६) राष्ट्रीय परिषद् की देन

राष्ट्रीय परिपद् ने सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवतन किये। उसने सबसे पहले प्रथम दो वर्गों की विशेष सुविधाओं का अन्त कर दिया, संपूर्ण वर्गों के लिए आर्थिक और राजनैतिक समानता की घोषणा की, सामन्तय-प्रथा और दासत्त्व-प्रणाली का अवसान किया। विशेषता यह थी कि ये सब परिवर्तन बहुमत से हुए और इनसे किसान को सबसे अधिक लाभ हुआ। उसके कर एक साथ कम हो गये और वह अपने प्रभु की भूमि का स्वामी बन गया। अनेक कर और व्यावसायिक महसूलों से आक्रान्त निम्न श्रेणी के दुकान-दारों को भी मुक्ति मिली और वे अपने व्यावसायिक एवं राजनैतिक क्षेत्र मे पूर्ण अश लेने लगे।

(क) *आर्थिक सुधार :*—राष्ट्र का आर्थिक पुनर्गठन परिषद् की एक सबसे बड़ी समस्या थी। देश-भक्ति से अनुप्राणित कतिपय कुलीनों ने स्वार्थत्याग तो किया, किन्तु उससे कोई अधिक फल नहीं हुआ। ऋण का अनुरोध भी विशेष फल-प्रद नहीं रहा और अब केवल एक ही केन्द्रबिन्दु रह गया—वह थी गिरिजा की सम्पत्ति-जो भी अब राष्ट्र के अधिकार मे आ गई। परन्तु यह भूसंपत्ति इतनी विशाल थी—जिसे आर्थिक रूप में परिणत करना सहज कार्य नही था। इसके हलके लिए नवीन प्रकार के नोटों का "एसिग्नेट" के नाम से परिचालन किया गया—जो गिरिजा की भूसंपत्ति की जमानत पर दिया जाता था। परन्तु इन अतिरिक्त नोटो का प्रचलन इतनी अधिक मात्रा में हुआ कि इनका कोई मूल्य नहीं रह गया-और विवश होकर प्रत्यक्ष कर पुनः लागू किया गया। धार्मिक-संपत्ति का राष्ट्रीय-करण करके उन गरीबों को-जो गिरिजा के सहारे जीवनयापन करते थे और भी आर्थिक संकट में डाल दिया गया। सन् १७६० में इनकी संख्या ४ करोड़ थी, जो ६ वर्ष बाद ४५ करोड़ तक पहुँच गई। इनके लिए परिषद् ने राष्ट्रीय उद्योग-शालाओं का संचालन किया—जिनमे (मई १७६०) प्रथम ११८०० श्रमिकों को काम दिया गया, व छै मास के बाद इनकी संख्या १८८०० तक पहुँच गई। ड़ेढ़ लाख लीवर उन पर व्यय किया गया।

(ख) *पादरियों के लिए संविधान :*—विशेष सुविधाओं व गिरिजाकी संपत्तियो से वंचित, अत एव दुर्दशाग्रस्त पादरियो की जीवन यात्रा का प्रश्न एक जटिल समस्या थी—जिसके सुलझाने के लिए परिषद् ने पादरियो पर भी जनसंविधान का प्रयोग (जनता द्वारा निर्वाचनप्रणाली) किया जिससे वे पोप के अधिकार से बाहर रहे और राष्ट्र उन्हे वेतन दे। इस माध्यम

से धार्मिक सहिष्णुता को सर्वथा दृढ़ कर दिया गया, एवं जिनने जन संविधान का विरोध किया, उन्हे राष्ट्र का शत्रु घोषित कर समुचित दंड दिया गया।

(ग) संविधान की व्यवस्था :—

(अ) विधान सभा :—१७८९ के अन्त में नूतन संविधान निर्माण का कार्य संपूर्ण हो गया और वैधानिक अधिकार प्रत्यक्ष करदायी (अपनी तीन दिन की मजदूरी के समान) बालिग नागरिकों द्वारा दो वर्ष के लिए चुनी जाने वाली एक विधान सभा को सौंपे गये, जिसकी सदस्यसंख्या ७४५ होगी। इस निर्वाचन मे ७० लाख नागरिको में से ४० लाख ही मताधिकार रखते थे, एवं उनमें से भी केवल ४३ हजार को प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया गया। साधारण जन-समुदाय मताधिकार से वंचित किया गया। जो व्यक्ति कम से कम ५० लीवर कर के रूप में राष्ट्र को देते थे, जायदाद व जमीन के मालिक थे—वे ही उम्मीदवार हो सकते थे—राजा के भूतपूर्व व वर्तमान मंत्री भी नहीं। ये नागरिक अधिकार केवल कैथोलिकों को ही नही, अपि तु प्रोटेस्टेण्ट, यहूदी व फ्रांसीय उपनिवेशवासियों को भी दिये गये। साधारण लोग किसी भी प्रकार से जीवनयात्रा निर्वाह में स्वतन्त्र हो गये।

(आ) राजा के अधिकार :—वंशपरंपरागत राजतन्त्र के साथ साथ राजा को-जिसकी नूतन पदवी फ्रेंच का सम्राट होगी-सैन्य-विभाग, शासन, मंत्रियों की नियुक्ति व सिक्कें का सर्वाधिकारी स्वीकार किया गया, परन्तु युद्ध की घोषणा के लिए परिषद् की संमति अनिवार्य कर दी गई। राजा के पास स्थगितकरण व निषेधाधिकार भी थे-जिनके द्वारा कोई भी सभा

द्वारा स्वीकृत अधिनियम स्थगित अथवा निषिद्ध किया जा सकता था, परन्तु सभा को भंग करने, नये करों की सृष्टि वैधानिक उपक्रम व सभा के ६० गज दूरतक सेना को प्रवेश करने के अधिकार उसके पास नहीं थे, न गिरिजा और स्थानीय शासन पर ही उसका पूर्ण प्रभुत्व था।

(इ) न्यायव्यवस्था :—न्यायविभाग में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। नियम के सामने सबको समानता दी गई। ८५ नूतन विभाग खोले गये। न्यायाधीश नियमित समय के लिए सभी श्रेणियों से निर्वाचित किये गये। प्रत्येक जिले में एक दीवानी न्यायालय की स्थापना की गई, जहां सरपंचों द्वारा अनेक अभियोगो पर विचार होता था। छोटे छोटे शहरों मे भी साधारण अभियोगों पर विचार करने के लिए न्यायाधीश निर्धारित किये गये। फौजदारी नियमों को लिपिबद्ध किया गया व मृत्युदंड को इतना शिथिल बना दिया गया कि वह केवल ४, ५ अपराधों पर ही दिया जा सकता था।

(ई) स्थानीय प्रशासन :—स्थानीय प्रशासन को ३२ के स्थान पर ८३ समान जनसंख्या वाले नवीन भागो में विभाजित किया गया-एवं हरेक विभाग का प्रबध संचालन एक २ निर्वाचित समिति पर डाला गया। प्रत्येक विभाग को जिलों मे बांटा गया, जिलों को तहसीलों या ग्रामों में। स्थानीय अधिकारी का निर्वाचन लोक पर छोड़ा गया। स्थानीय शासन की अव्यवस्था और दुष्प्रबंध की निवृत्ति के लिए मिराबुआ ने अपनी बुलन्द आवाज़ में कहा—"इससे अच्छी अव्यवस्थित शासन की योजना किसी भी इतिहास मे नहीं है"।

(उ) मानव के आधारभूत अधिकार :—हम पहले ही देख चुके हैं कि १२ अगस्त को मानव के आधारभूत अधिकारों की घोषणा की गई थी। ये अधिकार संपत्ति, स्वाधीनता, सुरक्षा एवं अत्याचारो की मुक्ति से संबद्ध थे—जिनके आधार पर कानून समष्टिगत इच्छा का प्रतीक है। इसी लिए प्रत्येक मानव को यह अधिकार है कि वह साक्षात् अथवा प्रतिनिधि द्वारा नियम निर्माण मे भाग ले–जो सबके लिए समान होगा। इस कानून की १० धाराओ मे प्रमुख धाराएँ अन्याय, कैद, अत्याचार, धार्मिक सहिष्णुता, वाचिक स्वतंत्रता, एवं प्रकाशन स्वतंत्रता को दृढ़ बनाने की योजना थी व इसके अनुसार व्यक्तिगत संपत्ति को राष्ट्र के हित मे ही लगाया जा सकेगा और कोई उस पर. हस्तक्षेप नहीं करेगा। इस घोषणा ने मानव को स्फूर्ति प्रदान की।

(१०) राष्ट्रीय परिषद् की असफलता के कारण

जिन महान् आशाओ को लेकर परिषद् को संगठित किया गया था, वह उन्हें पूर्ण न कर सकी। उसके प्रशासनिक संशोधनों ने केन्द्रीय कार्यकारिणी को अत्यन्त दुर्वल बना दिया। विभिन्न स्थानों में स्वशासित जिला शासन और राष्ट्रीय रक्षादल बन गया—जिससे १७९३ के आतंक की तैयारी हुई। बहुत सी अनेक स्मरणीय घटनायें और महान् मस्तिष्क इसमें हमे देखने को मिले, जिनमें मिराबुआ का स्थान प्रमुख है।

(क) क्रान्ति क नता मिराबुअ :—प्रो० लॉज कहते हैं—"मिराबुआ एक ऐसा ही दूरदर्शी नेता था–जो कि विप्लव के

पहले अध्याय मे ही समय के महत्व, एवं घटना के प्रभाव को समझता था। वह जानता था कि राजनैतिक नेताओं द्वारा अभिव्यक्त प्रजातांत्रिक परिवर्त्तनो की परिणति केवल अराजकता और अव्यवस्था की सृष्टि होगी। निरंकुश शासन के अत्याचारों का अनुभवी यह उसका ध्वंस कर वैधानिक राजतंत्र की स्थापना करना चाहता था। सामाजिक वर्गभेद और विशेष सुविधाओं की समाप्ति के साथ २ यह धार्मिक, वाचिक, व्यक्तिगत, व प्राकाशनिक स्वतंत्रता का पक्षपाती होते हुए भी सहिष्णु सिद्धान्ती व्यक्ति था—जो चाहता था कि राजा स्वयं इन सुधारो का उपयोग करे। वह राजतंत्र में संशोधन चाहता था—उसका अवसान नही। यह मानता था कि जितनी अराजकता एवं क्रान्ति की भावनाये विस्तृत होगी, उन्नति का मार्ग उतना ही अधिक अवरुद्ध रहेगा। इसीलिए पुरातन राजतंत्रका मूलोच्छेद कर सर्वथा नवीन विधान निर्माण का इसने विरोध किया। वैधानिक राजतंत्र की स्थापना भी कोई सहज व सरल कार्य नहीं था, क्योकि अधिकांश व्यक्ति इसके प्रतिकूल थे। फिर भी मिराबुआ की नेतृत्व शक्ति एक ईश्वरीय देन थी। इसी संबन्ध में प्रो० वेटिलबी० कहता है—"फ्रांसीय विप्लव के इतिहास मे यही एक दूरदर्शी, यथार्थवादी व विचक्षण पुरुष था—जो कि सभा के जंगली गधों व राजकीय मवेशियो को नियन्त्रित कर चला सकता था"। देखने मे यह जितना ही कुरूप था, उतनी ही अधिक शक्ति मूक जनता को आवाज देने की इसके पास थी।

इतना होने पर भी सत्ता व निषेधाधिकार से वंचित राजा की स्थिति इतनी विपन्न हो गई थी कि वह मिराबुआ द्वारा पूर्णशः प्रतिपादित राजतंत्र को मानने के लिए तैयार ही नहीं होता था, क्योंकि वह जानता था कि यह वही सर्वविदित

मिराबुआ है—जिसने विरोधीदल के प्रमुख नेता के रूपमें राजा को प्रथम बार चुनौती दी थी। फिर भी परिस्थिति इतनी विकट हो गई थी कि राजा और सामन्तवर्ग के प्रस्ताव से उसे बाध्य होकर मंत्री पद स्वीकार करना पड़ा। इस पर परिषद् में निहित मिराबुआविरोधीदल ने (७ नवम्बर १७८९) एक विशेष कानून पास किया—जिसके अनुसार परिपद् का कोई भी सदस्य मंत्री नहीं बन सकता था।

विवश होकर मिराबुआ ने ३२००) रुपये मासिक वेतन पर राजा को लिखित परामर्श देने का गुप्त समझौता किया, परन्तु राजा इस पर अविश्वास एवं परिषद् से घृणा करता था। ऐतिहासिक कहते हैं-मिराबुआ ने लुई षोडश को यह परामर्श दिया था कि वह प्राथमिक वर्गों की विशेष सुविधाओं और अधिकारों का अंत करके तृतीय श्रेणी को अधिक सुविधाएं दें व इसके पश्चात् अस्त्रशस्त्रों से सुसज्जित होकर पेरिस से बाहर चला जाये। तृतीयवर्ग उस समय एक शक्तिशाली केन्द्रीय कार्यकारिणी सभा तथा शासन का संगठन करेगा। परन्तु सामन्त वर्गों के विरोध के कारण राजा ने इस सुझाव को अस्वीकार कर दिया।

इसी वातावरण में मिराबुआ अस्वस्थ हो गया एवं २ अप्रेल १७९१ में ४२ वर्ष की अवस्था में उसका आकस्मिक अवसान हो गया। उसकी मृत्यु से तीन दिन तक समस्त फ्रांसकी जनता शोकाकुल रही। आज भी फ्रांस के घर २ में इस महा-पुरुष की पूजा होती है। यह एक स्वयं मानचित्र था—जिसकी जीवन चर्या एक संघर्ष, विवाद, वंदिता, दरिद्रता और रुग्णता की कहानी थी। यही एक साधरण-वर्ग का प्रथम नेता था—जिसने पुरातन फ्रांसकी भित्ति को हिला दिया। अपने जीवन के अंतिम क्षणों में राजतंत्र पर दया करते हुए उसने कहा—"मैं

अपने हृदय में राजकीय शासन-तन्त्र के प्रति महान् समर्थन को लेकर मर रहा हूँ और मेरे ही साथ राजकीय समर्थन की इतिश्री हो रही है। मेरी मृत्यु के पश्चात् राजकीय शक्ति के जो भी अवशेष रहेंगे, उन्हे विप्लवी परस्पर बाँट लेगे।" इसी प्रकार अन्य प्रसंग में पश्चात्ताप करते हुए जननायक ने कहा—"हमें अत्यन्त दुःख के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि अब तक हमने जो भी कुछ किया, वह केवल ध्वंसात्मक था।" परन्तु निर्दय दैव अगर इन्हे थोड़ा अवसर और देते तो ये वैधानिक राजतंत्र का प्रवर्त्तन करके फ्रांस की संपूर्ण समस्याओं का समाधान कर देते। इनकी इन्ही कुशलताओं की ओर संकेत करते हुए एक प्रत्यक्षदर्शी ने कहा था—"हम स्पष्ट देखते हैं कि फ्रांसीय जाति अब एक भयानक अराजकता और अव्यवस्था की ओर जा रही है व प्रति दिन आतंक की सृष्टि हो रही है। मिराबुआ ही एक मात्र दूरदर्शी व्यक्ति था-जो कि विप्लव का शांतिपूर्ण उपायो से संचालन कर सकता था"।

(ख) लुइ षाडश का पलायन—लुई षोडश की स्थिति अत्यन्त डाँवाडोल व विपन्न थी। संविधान ने इन्हे पूरे अधिकार नही दिये व एक प्रकार से ट्वीलर्स प्रासाद में नजर बन्द कर दिया। इसी से घबरा कर एक बार राजा ने कहा था—"मैं चाहता हूँ कि फ्रांस के एक छोटे शहर "मेज" का राजा बन जाऊँ व इस विशाल साम्राज्य से मुझे अविलम्ब मुक्ति मिले"। उच्च कुलीन भी राजा की इस दयनीय दशा व विप्लव की वृद्धि से भयभीत होकर अन्य देशों का आश्रय लेने लगे। प्रतिशोध के अभिलाषी अनेक कुलीन तो आस्ट्रिया व इंग्लैण्ड आदि मे विप्लवियों के दमन के उद्देश्य से अस्त्र-शस्त्र व सैनिक सहायतार्थ चले गये, जिनका मूल ध्येय वैदेशिक

आक्रमणों से विप्लव को शान्त करना था। परन्तु आस्ट्रिया के बादशाह की सुपुत्री एवं लुई षोडश की महारानी मेरिया एन्टानिएट राजा को पेरिस से भागने की प्रेरणा देती थी—यही कारण था कि राजा ने पेरिस से पलायन का प्रयत्न किया व अपने अवशिष्ट संमान को भी खो दिया।

रानीकी योजना के अनुसार छद्मवेष मे एक ढकी हुई गाड़ी पर आसीन होकर २० जून, सन् १७६१ ई० में राजा, रानी व उसके सहायक भगे, परन्तु जब ये सीमान्त पार कर ही रहे थे कि निर्दय विधाता ने वैरेनेश नगर मे इनके आकार से इनका परिचय प्रहरी को करा दिया और ये वहीं पकड़ लिये गये। इस घटना से राजा के आँसू आ गये और रानी के केश पक गये। उन्हे पेरिस लाया गया और अनिश्चित काल तक के लिए राजकीय अधिकारों से वंचित कर दिया गया। आम जनता कहने लगी—"राजा ने पलायन का प्रयास कर अपने पाँवो पर कुल्हाड़ी मारी व स्वयं को राजकीय अधिकारों से च्युत कर दिया"। अल्पसंख्यक विरोधी दल इसे राजतंत्र के अवसान और गणतंत्र के उदय का स्वर्ण-सुयोग मानने लगा। अब भी अधिकांश सहिष्णुतावादी सदस्य राजा के पुनः स्थापन के समर्थक थे, इसीलिए थोड़े दिनो क पश्चात् राजा को अधिकार पुन. दिये गये व उसने १४ सितम्बर १७६१ मे नवीन संविधान को मान्यता प्रदान की। यह थी—वस्तुतः विप्लव की प्रतिक्रिया की परिणति, जिसने लोगों को राजभक्त बना दिया था। राजा के पुनः स्थापन से अमन्द आनन्द और उत्साह हुआ। राजा ने कहा—"राष्ट्र के हर्ष और आनन्द की आवृत्ति की जाये, क्योकि विप्लव का अब अन्त हो गया है"। सर्व सम्मति से जनता ने इस भावना का समर्थन किया। इन सब घटनाओ के साथ साथ ३० सितम्बर

१७६१ को राष्ट्रीय परिषद् की भी—जिसका काम ४ अगस्त १७८६ से प्रारंभ हुआ था—समाप्ति हो गई।

११—समीक्षा

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, परिषद् एक महान् लक्ष्य को लेकर चली थी एवं उससे लोगों को बड़ी २ आशाएँ थी। लामर्टीयन के शब्दों मे "परिषद् फ्रांस के इतिहास में सब से गंभीर और विचक्षण सदस्यों का एक जमघट था—जो कि फ्रांसवासियो के ही नहीं, अपितु संपूर्ण मानवजाति के प्रतिनिधि थे"। केवल सदस्य ही नहीं, उनके कार्यकलाप भी गंभीर और महत्त्वपूर्ण थे—जिनने फ्रांस के इतिहास में एक राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्त्तन के साथ साथ समग्र सांस्कृतिक जगत् को एक नवीन मार्ग प्रदर्शित किया। फिर भी फ्रांस की आन्तरिक व बाह्य-समस्याओं का यह हल न कर सकी। इसने एक संगठित शासन तंत्र का ध्वंस, लोकतन्त्र का मार्ग एवं भयंकर सिद्धान्तो का प्रवर्त्तन करके जनता को एक स्वप्नलोक मे पहुँचा दिया था—जिसके परिणाम स्वरूप फ्रांस मे रक्त की नदी बही। इसने धार्मिक असंतोष फैला दिया व अन्तर्राष्ट्रीय नियमों को ठुकरा दिया। एक अंग्रेज लेखक के शब्दो मे इन सब न्यूनताओं का कारण—"विधान सभा व कार्यकारिणी का पृथक्करण तथा नवीन विधानसभा मे पुरातन विचक्षण सदस्यो का न आना था"। शेष का संकलन आगे दिया जा रहा है।

(क) *राजा में अनास्था*—राजा मे अविश्वास के कारण सदस्यो ने उसे कुछ भी अधिकार नही दिये—जिनके द्वारा वह देश में शान्ति एवं स्थानीय शासकवर्ग के कर्तव्यों का निरीक्षण कर सके। उपद्रवो के दमन के लिए निर्मित अतिरिक्त कानून का

प्रयोग भी इसकी अपेक्षा, नागरिक समिति के आधीन कर दिया गया। राजा का निषेधाधिकार कार्यकारिणी व विधान सभा के पारस्परिक संघर्ष के सृजन में सहायक हुआ।

(ख) जनता का असंतोष—सभा द्वारा ३० लाख जन-समुदाय को राजनैतिक मताधिकार से वंचित कर देने के कारण जनता में असंतोष व्याप्त हो गया। स्थानीय शासन इतने अव्यवस्थित, विशृङ्खलित और शिथिल हो गये कि सब पृथक् पृथक् कार्य करने लगे। जिला-विभाग के आदेश को लोग अमान्यता देने लगे। निर्वाचन द्वारा उच्च पदों व अधिकारियों की नियुक्ति होने से मूर्ख, हस्ताक्षर तक से अपरिचित अनुभव-हीन व्यक्ति शासन में आगये। राष्ट्रीय रक्षा-दल ने साधारण जन-जीवन की शांति को नष्ट कर आतंक की सृष्टि की और निर्वाचित न्यायाधीश उत्कोच तथा पक्षपात के शिकार हो गये। पुनः पुनः निर्वाचन होने से जन साधारण में स्वार्थ-सिद्धि के लिए छोटे २ दल (जैकोबिन, जिराण्डिस्ट आदि) स्थापित हो गये।

(ग) पुरोहित वर्ग की प्रतिक्रिया—गिरिजा के लिए निर्मित नागरिक संविधान ने गृह-युद्ध की सृष्टि की। कट्टर रोमन कैथोलिक पादरियो ने पोप के स्थान पर राष्ट्रके आधिपत्य को अस्वीकार कर दिया व $\frac{2}{3}$ पादरियों ने नवीन कानून को अमान्यकर दक्षिण कैथोलिक कृषको को राष्ट्रीय परिषद् के प्रति विद्रोही बना दिया। दीन पादरियो के पालन का भार गिरिजा से हटकर राष्ट्र पर आ पड़ा—जिसका निर्वाह पूर्णरूप से उद्योगशालाएँ नहीं कर सकीं—चारो ओर बेकारी फल गई। गिरिजा की भूसंपत्ति व "एसिग्नेट" के उपयोग पर भी राष्ट्र की आर्थिक समस्या हल न हो पाई।

(घ) नवीन संविधान के परिणाम—मानव के आधारभूत अधिकारो ने लोगों को अधिकार के प्रति जागरूक और लालायित तो बना दिया, परन्तु उन्हे स्वप्न दिखाने के अतिरिक्त कुछ दिया नहीं। लोग इससे किंकर्तव्यविमूढ़ और अधिकार-लोलुप हो गये। उपर्युक्त अनेक न्यूनताओ के कारण संविधान यद्यपि स्थायी न हो सका, फिर भी उसने फ्रांस को दो नवीन सिद्धान्त दिये—(१) कानून के सामने सबकी समानता। (२) समग्र फ्रांस का ८३ भागो में विभाजन।

संविधान ने एकता की भावनाओ को जन्म दिया एवं प्रथम बार यूरोप के इतिहास में रक्तक्रांति द्वारा लोकतंत्र की स्थापना की। लोग अब अपने उत्तरदायित्व को समझने लगे और उनने राष्ट्रीय हित के लिए कंधे से कंधा मिला कर चलना स्वीकार किया। विधान ने ही सामाजिक-नागरिक विप्लव उत्पन्न किया और बहुमत से एक नवीन समाज की सृष्टि की।

संक्षेप में इन सब विवेचनाओ के बाद यह कहना समीचीन होगा कि परिषद् ने साधारण मानव के चैतन्य को जागृत कर, उसे एक नवीन प्रतिष्ठा व विश्व को एक नवीन शिक्षा प्रदान की। प्रजातंत्र के इतिहास में इसका स्थान और देन सदा अमर रहेगी।

(ख) विधान सभा—(१ अक्टू० १७६१ से २० सित० १७६२)

अक्टूबर १७६१ से १७६२ तक फ्रांस के इतिहास में वैधानिक राजतंत्र का परीक्षण हुआ। दुर्बल और विपन्न राजा लुई नवीन परिस्थितियों में स्वयं का सामंजस्य नहीं बिठा सका। अपने वैधानिक अधिकारों के उपयोग से बहिष्कृत कुलीन व पादरियों को पुनः वापस बुलाकर उसने सभा व राष्ट्र को विक्षुब्ध

कर दिया। वह सोचता था कि वैदेशिक शक्ति की सहायता से वह अपनी विपन्न अवस्था को उत्थान की ओर ले जा सकेगा। किन्तु उसकी इस योजना ने इसकी अवस्था को और भी अधिक गंभीर बना दिया व आगे जाकर स्वयं का अन्त कर दिया। वैदेशिक आक्रमण ने राष्ट्रीय-भावना को जागृत कर विप्लवी सिद्धान्तों के प्रचारको सहज बना दिया। वस्तुतः आंतरिक मामलो में विधान सभा को विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई।

१—वामपंथी दल का उदय

विभिन्न दल और उनके नेता—नवीन विधान सभा के उद्घाटन के साथ २ विरोधी दल की मात्रा बढ़ने लगी, सभा मे ऐसे अनभिज्ञ सदस्य आ गये—जो किसी नूतन सिद्धान्त का परिवर्तन करके अपना महत्त्व जताना चाहते थे। उनकी भावनाएँ आदर्शवादी थीं, उनके गले की आवाज उच्च थी किन्तु वे प्राशासनिक अनुभवों से हीन थे।

विधानसभा में प्रथमतः दो दल थे। पहला सभा के कार्य-कलापों से संतुष्ट, वैधानिक राजतन्त्र और वैधानिक सत्ता का पक्षपाती फैनीलेण्ट्स या वैधानिक दल, एवं द्वितीय नित्य नूतन परिवर्तनों का असहिष्णु, स्वाधीनता के सिद्धान्तों की क्रियात्मकता के लिए व्यग्र, जैकोबिन्स या जनतांत्रिक दल था। इनमे प्रथम दल सभा के दक्षिण और विरोधी द्वितीय दल बाईं ओर बैठता था। इन दोनों के मध्य प्रायः २४५ सदस्य बैठते थे—जो समय २ पर दक्षिण व वामभाग का समर्थन करते थे। आगे जाकर कुछ समय के लिये ये वामपंथी दल में संमिलित हो गये, फिर सर्वथा विभक्त होकर "जिराण्डिस्ट दल" के नाम से अपने समुदाय को संबोधित करने लगे।

(क) *जिराण्डिस्टः*—वामपथी दल से पृथक होने वाले इस

संघ मे "जिराण्डी" नामक क्षेत्र के प्रतिनिधि अधिक थे जिसके अवलंब पर इसका नामकरण हुआ । फ्रांसीय ऐतिहासिक लामटीयन उन्हे गंभीर आदर्शवादी कहते हैं। कुछ एक लेखक इन्हे आवेशपूर्ण हवा से भरे हुए गुब्बारे कहते हैं। चाहे कुछ भी हो वस्तुतः ये आदर्शवादी थे एवं यथार्थ से इनका कुछ भी संस्पर्श नहीं था। इनका शास्त्रीय अध्ययन और उत्साह पर्याप्त बढ़ा हुआ था। विप्लववादियों का समर्थन, राजकीय शासन का अवसान एवं कुलीन व पादरियों की दंडव्यवस्था द्वारा एक नवीन समाज और राष्ट्र की रचना ही इनका लक्ष्य था। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण विस्तृत सीमा तक गभीर काल में फ्रांस की विधान सभा का नेतृत्त्व इस दल ने किया व राष्ट्र के भविष्य निर्माण में पूर्ण योगदान किया। इस दल के नेताओ में सबसे अच्छा वक्ता और नियमविशेषज्ञ ब्रीसाट था।

(१) ब्रीसाट—(१७५४से१७६३) जिराण्डिस्ट दलके संगठन का श्रेय इसी महापुरुष को है। यह पेरिस नगर का निवासी था—जो कि मिराबुआ की मृत्यु के बाद लोकप्रिय व प्रभावशाली जननायक बन गया था। (२) भर्गनॉड (१७५३ से ६३) इसका सबसे बड़ा वक्ता। (३) कंडूरसे सबसे बड़ा विद्वान् व विश्वकोष कारचयिता। (४) डुमोरिया (१७३६ से १८२३) प्रतिभाशील सैनिक व (५) मदमारोलॉ (१७५४ से १७६३) शक्ति का प्रतीक था। अपनी कुशलताओं के कारण यह दल इतना सुसंगठित हो गया कि मार्च १७६२ में इसी ने यूरोपीय युद्ध के २ मास पूर्व मन्त्रिमण्डल का निर्माण किया।

(ख) जैकोबिन:—वैधानिक अथवा जिराण्डिस्ट दोनों ही दल नवीन समाज के निर्माण मे असफल एवं सामाजिक परिवर्त्तनो से उदासीन थे। विप्लव के प्रथम दो वर्षो के सुधारों से औद्योगिक व व्यावसायिक प्रतिबन्धो की समाप्ति, कुलीनो

की हस्तगत संपत्ति के विक्रय आदि से आंशिक रूप से आर्थिक अवस्था की उन्नति हुई थी। बड़े बड़े ठिकानों को छोटे छोटे भागों में विभाजित करने से श्रमजीवियों एवं व्यापारिक विकास से छोटे २ दूकानदारों को पर्याप्त लाभ हुआ था, परन्तु पेरिस नगर के श्रमिकों को सुविधाएँ मिलना तो दूर रहा, कुलीनों द्वारा राजधानी त्याग से उनके द्वारा बनाई हुई विलासिता की सामग्रियों का विक्रय बन्द हो गया एवं उनके कष्ट अधिक बढ़ गये। जैकोबिन दल ने सुवर्ण अवसर पाकर इन्हे अपने साथ मिला लिया और समग्र फ्रांस में छोटी २ शाखा समितियाँ स्थापित कर इसे प्रचारित किया—जिसका केन्द्रीय कार्यालय पेरिस नगरी में था।

वधानिक राजतन्त्र के प्रमुख शत्रु जैकोबिन दल के नेता-वृन्द थे, जिनका नाम फ्रांस ही नहीं, संपूर्ण विश्व के इतिहास में गणनीय है। मराट, डेन्टन और रावस्पीयरे इनमे प्रमुख थे। ये सभी नेता गरीब, देशभक्त, कर्तव्यपरायण और ईमानदार थे।

(१) मराट —(१७४२ से १७९३) यह अंग्रेजी, लेटिन, जर्मन स्पेनीय आदि अनेक भाषाओ का विशेषज्ञ था। सैन्ट एण्ड्रूज विश्वविद्यालय से इसे एम. डी. की उपाधि मिली थी व यह चिकित्साशास्त्र की अनेक पुस्तको का लेखक था। विप्लव की प्रगति ने मराट को चिकित्सा से राजनीति के क्षेत्र मे निमन्त्रित किया। यह विश्वास करता था कि वास्तविक सुधार जनहितकर व उसकी प्रतिक्रिया के प्रतिबिंब होने चाहिएँ। अपने द्वारा सम्पादित "फ्रेंड्स ऑफ दी पीपुल" नामक पत्र में इसने पेरिस-वासियो से नागरिक शक्ति को हस्तगत एवं फ्रांस के हित के लिए अनेक बार आमंत्रित किया था। १७९२ तक तो यह इतना प्रभावशील और लोकप्रिय हो गया था कि अधिकारी इनसे

डरते थे व घृणा करते थे, परन्तु जनता इनके प्रति श्रद्धा और संमान रखती थी, इसीलिए ऐतिहासिक इन्हे पेरिस शहर की जनता के योद्धा और उसकी भावनाओ का प्रतीक कहते हैं।

डेन्टन:—(१७५६ से १७६४) मराट से भी अधिक दूरदर्शी पर कम विरोधी विचक्षण व नियमविशेषज्ञ युवक डेन्टन था। यह विद्वान, साहसी, तर्कशील व एक महान् लोकप्रिय वक्ता था। यद्यपि यह रक्तपिपासु नही था, पर रक्तस्रोत से घबड़ाता भी नहीं था। एक साधारण कृषक का लड़का होते हुए भी इसने कानून का अध्ययन किय और अपनी कुशाग्र प्रतिभा के कारण परिषद् का उच्च वकील बन गया। विप्लव के प्रारभ में इसका यश केवल नियम-विशेषज्ञ के रूप मे ही नही, अपितु विद्वान् व प्रत्यक्षद्रष्टा के रूप से भी अत्यन्त प्रसारित हुआ। सार्वजनिक नेतृत्त्वशक्ति, गंभीर आवाज, वाक्पटुता और जनमत-संगठन डेन्टन की निजी विशेषताए थीं। आत्मसंयम के कारण इसका प्रभाव इतना बढ़ा हुआ था कि यह जनमत को प्रेरणा देने व भड़काने में सब से प्रमुख था। इसने मराट और डेस्मोलिन्स के साथ "कॉर्डेलियर क्लब" की स्थापना की जिसने २० वर्ष तक अपने कार्यक्रमों द्वारा स्वेच्छाचारी राजतंत्र को नष्ट करने में प्रचुर सहायता दी। यही पेरिस नगरी के स्वशासित जिला शासन का महत्त्वपूर्ण सदस्य था—जिसने जनमत को संगठित करके गणतंत्रवाद की स्थापना में हाथ बँटाया। यह साहसी, जोशीला व हिंसात्मक भावों से परिपूर्ण था—जो अपने दोषो का गुणो से अधिक प्रचार करता था, परन्तु इसमें तन्मयता का अभाव एवं समीक्षापूर्ण दृष्टि नहीं थी।

तत्कालीन लेखक सोरेल ने इसे एक साधारण मनुष्य समझा। विख्यात ऐतिहासिक मिचेलेट ने इसे एक श्रेष्ठ अभिनेता माना। पर ये दोनों ही विचार इस पर लागू नहीं होते। मैडेलिन ने कहा

है—"यह सब से बड़ा ईमानदार था और इसके हृदय के गहनतम गहनतल से दया, प्रेम, हिंसा और क्रोध ये संपूर्ण वस्तुएँ उद्भूत होती थीं। इसके मन में कोई पाप नहीं था। लोग इसे कितनी ही गालियाँ दें व हानियाँ पहुँचायें, पर यह उन पर ध्यान भी नहीं देता था। लोभी तो अवश्य था, पर इसने कभी घूस लिया या नहीं, इतिहास में इसके लिए कोई प्रमाण नहीं है। धैर्य का अभाव और आलसीपन इसकी सब से बड़ी न्यूनताएँ थीं, पर वह सर्वथा महात्मा था"। संक्षेप मे वह ज्वालामुखी था एवं जब उसमें से ज्वालाएँ निकलती थीं, तो एक पवित्र शिखा नजर आती थी।

(इ) *राबस्पीयरे*—(१७५८ से १७६४) यह एक गरीब परन्तु चतुर वकील व आरस नगर का रहने वाला था। एक मध्यम श्रेणी के व्यक्ति होते हुए भी पेरिस विश्वविद्यालय में डेस्मोलिन्स के साथ नियम शास्त्र का अध्ययन किया और फौजदारी न्यायाधीश के पद पर नियुक्त हुआ। मृत्युदण्ड की व्यवस्था से यह सर्वथा असन्तुष्ट था और उसी की असह्यता के कारण इसने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। यह उत्तम लेखक विशिष्ट वक्ता और रूसो का कट्टर अनुयायी था। राज्यपरिषद् में तृतीय वर्ग द्वारा यह १७८६ ई० में निर्वाचित हुआ और श्रमजीवियों की शक्ति के लिए इसने आजीवन संघर्ष किया। सामाजिक लोकतन्त्र के प्रचार कार्य में इसे दैविक शक्ति प्राप्त थी। यह जैकोबिन क्लब का विशिष्ट सदस्य, ईमानदार, सत्यवादी व सांस्कृतिक व्यक्ति था—जिसने श्रमिक वर्ग को ऊँचा उठाने में कोई कमी नहीं रखी। अपने प्रारम्भिक जीवन से ही विलासी और अच्छी पोशाक पहनने वाला था। यहाँ तक कि मृत्यु से पूर्व तक यह पूंजीपतियों के समान पोशाक और बालों में पाउडर लगाये हुए था। विप्लव के पहले अध्याय में यद्यपि

इसका प्रभाव विशेष नहीं था, पर हम आगे चलकर देखेंगे कि यह १७९३ ई० मे किस प्रकार राजकीय आतंक का एक विशेष नेता बन गया था।

इसके अतिरिक्त वैधानिक राजतन्त्रवाद के विरोधी संकीर्ण मत के लोग थे। बहिष्कृत कुलीन जिनके संपत्ति और विशेष अधिकार नष्ट हो गये थे, प्रतिशोध-पिपासु थे—जो विप्लव का अन्त कर राजकीय सत्ता की पुनः स्थापना चाहते थे। इसीलिए उनने बाह्य शत्रु को निमन्त्रण दिया एवं राजा के सामन्त वर्ग ने भी दक्षिणी फ्रांस के पुरोहित वर्ग द्वारा कृषकों को उत्तेजित कराकर संविधान की इस नीति का क्रियात्मक समर्थन किया और चारों तरफ नवीन सरकार के विरुद्ध विषाक्त वातावरण फैला दिया।

जिराण्डिस्ट दल इस समय चुपचाप नहीं था। उसने वैधानिक राजतन्त्र के अन्त के लिए एक चातुर्यपूर्ण नूतन मार्ग निकाला जिसके द्वारा एक विशेष नियम को पास कर दिया गया। इसके अनुसार वे बहिष्कृत पलायित कुलीन-जो कि फ्रांस में १ जनवरी १७९२ तक नहीं लौटेंगे, उन्हें मृत्यु दण्ड मिलेगा। पुरोहित वर्ग को शपथ दिलाई गई कि वे एक सप्ताह के मध्य ऐसे व्यक्तियों की सूचना दें, अन्यथा बाध्यतया संपत्ति एवं वृत्ति से वंचित कर दिये जायेंगे। इन दोनों ही नियमों को राजा ने अपने विशेषाधिकार से निषिद्ध कर दिया, क्योंकि प्रथमतः इसका भाई भी एक पलायित कुलीनों में से था व द्वितीयतः वह स्वयं एक कैथोलिक था। उसके इस प्रयोग से विधान सभा विक्षुब्ध एव जनता क्रुद्ध हो गई। परिणामतः २० जनवरी १७९२ में उद्दीप्त जन समुदाय ट्वीलर्स प्रासाद मे प्रविष्ट हो गया व राजा को जैकोबिन दल की लाल टोपी पहना कर अपने साथ मद्यपान के लिए बाध्य कर दिया। इतने

असंमान के अनन्तर भी राजा ने उपर्युक्त नियमों को मान्यता नहीं दी।

१–वैदेशिक आक्रमण

विप्लव के प्रारम्भिक दो वर्षों में यूरोप का कोई भी राष्ट्र फ्रांस के विपरीत शस्त्रग्रहण के लिए सन्नद्ध नहीं था। इसी सम्बन्ध में ग्रान्ट ने कहा है—"यूरोप पोलेण्ड का बँटवारा करने में व्यस्त था, इसलिए पोलेण्ड के विप्लव ने फ्रांसीय विप्लव की अप्रत्यक्ष रूप से सहायता तो अवश्य की, पर यूरोप की प्रमुख जातियों व देशों ने थोड़े दिन के लिए फ्रांस की ओर ध्यान देना भुला दिया"। इंग्लैण्ड के विख्यात कवि वर्ड्सवर्थ शैली आदि अनेक विद्वान् विप्लव को एक राजनैतिक परीक्षण के रूप में मान्यता देते थे। निरंकुश शासक-समूह के सिद्धान्तों से विप्लवी आदर्शों का संघर्ष निश्चय हो गया था। मानव के आधारभूत अधिकारों की घोषणा तथा यूरोपीय विभिन्न राष्ट्रों की विप्लवी जनता से पत्र व्यवहार आदि उन शासकों के लिए एक चुनौती थी। सिद्धान्तों के इस संघर्ष की विजय, पराजय व उच्चता के निर्णय के लिए युद्ध अनिवार्य हो गया था।

पलायित कुलीन, भोगी और विलासी महारानी विप्लव के प्रारम्भ काल से ही वैदेशिक शक्ति के आमंत्रण की योजना बना रही थी। इनकी दुःखपूर्ण कहानी सुनकर अन्य राष्ट्रों के कुलीनों में भी सहानुभूति की धारा प्रवाहित हुई, पर उनने सैनिक सहायता देकर विप्लवी जनता का दमन उचित नहीं माना। कुछ समय के अनन्तर जब राष्ट्रीय परिषद् ने आॅल्सस् प्रदेश में सामन्त अधिकारो का अवसान कर दिया, तो समस्या और भी अधिक जटिल व भयानक हो गई। जर्मनी के कुलीनों को फ्रांस के इस प्रदेश में सामन्तीय अधिकार थे और उन्हे

उनके विनिमय मे आर्थिक क्षतिपूर्त्ति स्वीकृत नहीं थी। इसी लिए वहाँ के नरेन्द्र-मण्डल ने अपने सम्राट् से इसके विरुद्ध अस्त्रधारण करने का आदेश माँगा। इधर राष्ट्रीय परिषद् ने पोप के अविग्नन् प्रदेश के राष्ट्रीय-करण का प्रस्ताव भी स्वीकार कर लिया। इस सुधार से यूरोप के पोपभक्त कैथोलिक विप्लवियो के शत्रु बन गये।

लुई के वैरेनिश-पलायन प्रयत्न एवं उसकी बंदिता ने यूरोपीय नरेन्द्र मण्डल को प्रत्यक्ष प्रमाणित्त कर दिया कि फ्रांस की जनता राजा को नजरबन्द रखकर अपमानित करती है। आस्ट्रिया के सम्राट् लियोपोल्ड द्वितीय-जो कि प्रारम्भ में फ्रांस के विप्लवियो के विरुद्ध युद्ध करने के लिए तैयार नहीं था, अपनी भगिनी के विरुद्ध षड्यन्त्रों व उसके दुःखों से उदासीन न रह सका। उसने पदुवा शहर मे (जुलाई) घोषणा की—"फ्रांस के राजा का जो अपमान हो रहा है, वह यूरोप के नरेन्द्र-मण्डल का अपमान है"। अगस्त मास मे पिलनिट्स नगर में इसी के परिणाम स्वरूप प्रॉशिया और आस्ट्रिया के राजा ने संयुक्तरूप से घोषित किया—"हम फ्रांस में सैनिक हस्तक्षेप करने के लिए तैयार हैं, यदि यूरोप के अन्य देश हमारी सहायता करें"। इस घोषणा ने विप्लववादियो को उभाड़ने का काम किया। पर आगे चल कर जब लुई के अधिकारों का पुनः स्थापन कर दिया गया तो सम्राट् लियोपोल्ड ने हस्तक्षेप को अनावश्यक घोषित कर दिया।

परन्तु विधान सभा का दृष्टिकोण युद्धपूर्ण भावो से ओतप्रोत था। जिरॉण्डिस्ट दल राजा की अशक्ति, अयोग्यता और असमर्थता प्रमाणित व जनता को उससे सुविदित करने के लिए युद्ध का पक्षपाती था—और उसे राज-सत्ता के अवसान में

हितकर समझता था। इसी उद्देश्य से जैकोबिन दल के भी अनेक सदस्य व गणतांत्रिक बैल्जियम प्रदेश के नागरिको को आस्ट्रिया के दमन से मुक्ति दिलाने के लिए लड़ाई का समर्थन करते थे। गणतांत्रिक भावना को अशांति और गृहयुद्ध की प्रवर्त्तकता से बचाने के लिए "मराट" युद्ध के विरुद्ध था। उसकी विचारशक्ति ने अनिश्चित काल के लिए युद्ध को अधिनायकवाद का संस्थापक समझा। राजा का सामन्तवर्ग युद्ध को विप्लवियों के विनाश के हित में समझता था, इसीलिए यह कहना अनुचित नहीं कि उस समय फ्रांस की संपूर्ण जनता व दल युद्ध के लिए सन्नद्ध और अपने २ दृष्टिकोणों से उसे लाभदायक मानते थे। आस्ट्रिया के नूतन राजा फ्रांसिस् को—जो कि मार्च १७६२ में लियोपोल्ड का उत्तराधिकारी हुआ था—विधान सभा ने चुनौती-पत्र भेजते हुए फ्रांस के पलायित कुलीनों के बहिष्कार की माँग की। फ्रांसिस् ने विप्लवियो के इस चुनौती-पत्र को स्वीकार करते हुए एक पत्र द्वारा ऑल्सस् के सामन्तीय अधिकारो के पुनः स्थापन एवं अन्य राष्ट्रों की व्याकुलता की निवृत्ति के लिए फ्रांस की आन्तरिक शांति का अनुरोध किया। फिर भी फ्रांसियों ने २० अप्रेल १७६२ को आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी, प्रॅशिया भी आस्ट्रिया के साथ लग गया। विधान सभा के अन्य दलों के भी सभी सदस्य युद्ध घोषणा के पक्ष में थे, केवल ७ व्यक्तियों ने विपक्ष में मत दिये। युद्ध घोषणा के पश्चात् एक जिराण्डिस्ट वक्ता ने कहा-"लोग युद्ध चाहते हैं—शीघ्र से शीघ्र हमें चाहिए कि इनकी अधीरता को दूर कर दें। जनशक्ति की भित्ति पर ही वास्तविक स्वाधीनता टिक सकती है।" क्योंकि ये लोग जानते थे कि लड़ाई का परिणाम राजकीय-शक्ति का पुनः स्थापन, अथवा अधिनायकवाद की सृष्टि होगी। उनका यह दृष्टिकोण आगे चल कर अक्षरशः सत्य हुआ। लड़ाई

का प्रथम परिणाम गणतंत्र की सृष्टि व द्वितीय नेपोलियन का उत्थान हुआ।

(क) युद्ध की विस्तृतता के कारण

(अ) *विप्लवियों का प्रचार*—राजकीय सत्ता और गणतंत्रात्मक सिद्धान्तों के संघर्ष का यह संग्राम अनवरत २२ वर्ष तक चलता रहा। इसके इतने विस्तृत होने का सबसे पहला कारण विप्लववादियो का प्रचार कार्य था। विप्लवियो ने अपने सिद्धन्तो को मानव के आधारभूत अधिकारो व जनप्रभुता के समर्थक होने के कारण अखिल विश्व के लिए आदर्श व अनुकरणीय माना। इनने इसी लिए नवम्बर १७६२ में जनता के समर्थन में पृथ्वी के सब राजाओं के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। वस्तुतः उनकी यह घोषणा यूरोपीय राजाओ को एक चुनौती थी।

(आ) *सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताऐं*

आन्तरिक क्रान्ति के द्वारा व्यवसाय, उद्योग और कृषि को छिन्न भिन्न कर देने के कारण सामाजिक और आर्थिक समस्याओं ने विप्लवियों को एक विस्तृत संग्राम के लिए बाध्य कर दिया। बहुत से लोगों को अपनी शान्तिपूर्ण जीविका छोड़ कर पेरिस आना पड़ा, परिणामतः फ्रांस की महानगरी एक विशाल बुभुक्षित जनता के आक्रमण का शिकार बन गई। इन बेचारों के पास न काम ही था, न रोटी ही। ऐसी परिस्थिति में उनके लिए उपद्रव में तत्पर रहने के अतिरिक्त काम ही क्या रह गया था। इस अनुशासन हीन, बेकार जन-समुदाय को काम और रोटी देना एक विशाल समस्या थी—जिसके हल के लिए नेताओ के पास केवल एक ही उपाय रह गया था—वह

था उनका सैनिकीकरण। इसी लिए मराट् ने कहा था—"यह लड़ाई एक छद्मवेषी आशीर्वाद है—जिसमें फ्रांस को ३ लाख वेकारो से मुक्ति मिल जायेगी।"

(इ) *राज्यविस्तार की कामना*—अपने प्रारंभिक संघर्ष मे कृतकार्य होने के फलस्वरूप फ्रांसीय व्यक्ति अपने साम्राज्य की प्राकृतिक सीमा को पूर्व में राइननदी और आल्प्स का पहाड व दक्षिण में पिरीनीज़ तक विस्तृत करने के इच्छुक थे, इसी लिए आस्ट्रिया, प्रॅशिया, इटली व स्पेन को अपने राज्य की सुरक्षा के हित में सतत संघर्ष के लिए प्रस्तुत रहना अनिवार्य होगया।

(ई) *यूरोपीय प्रथम राष्ट्र-संघ*—युद्ध की यह स्थायित्ता सिद्धान्तो के कारण ही नहीं, अपि तु स्वार्थों के कारण अधिक रही। आस्ट्रिया अपने सम्राट् की भगिनी व वेल्जियम को फ्रॉस के आधिपत्य से मुक्त कराने के लिए लड़ रहा था। वेल्जियम की अधिकृति से हॉलेण्ड और इंग्लैंड भी आतंकित हो गये थे, क्योकि इंग्लैंड पर आक्रमण व हॉलेण्ड की पराभूति फ्रांस के लिए अधिक कठिन नहीं थी। इंग्लैंड के औपनिवेशिक साम्राज्य और नौशक्ति भी आक्रमण के भय से मुक्त नहीं थी। विप्लवियों ने स्वेल्ड नदी को मुक्त घोषित कर अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबन्धों की भी अवहेलना करदी, परिणामतः इसी अन्तर्राष्ट्रीय अवमानना ने इंग्लैन्ड को भी संमिलित होने के लिए बाध्य कर दिया। प्रथमतः उसने आर्थिक सहयोग दिया। सार्डिनिया के राजा को अपने सभाय प्रदेश की रक्षा और बुरबुनवंशीय स्पेन राजा को अपने बन्धु के प्रतिशोध के लिए संघर्ष में पड़ना पड़ा। इस प्रकार १७९३ के वसन्त काल मे फ्रांस को एक यूरोपीय राष्ट्रसंघ से जिसमें होलेण्ड, इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया, प्रॅशिया, सार्डिनिया व स्पेन संमिलित थे—टक्कर लेनी पड़ी।

३—युद्ध की प्रारंभिक घटनायें

हैजिन के शब्दों में "यह युद्ध विप्लव के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है—जिसके कुछ परिणाम तो इसी प्रकार के हुए—जिनका सहज ही अनुमान था, पर कुछ ऐसे भी हुए—जिनसे फ्रांसीय स्वाधीनता को इतनी अधिक क्षति हुई—जिसकी प्रतिक्रिया से पुनः अधिनायकवाद की स्थापना हो गई"। दो प्रमुख कारणों से युद्ध के प्रारम्भ में विप्लवियों की पराजय हुई—जिनमें प्रथम राजा के समर्थक अधिक—संख्यक सैनिकों का पलायन व पदत्याग कर देना था—६ हजार में से केवल ३ हजार सैनिक ही रह गये थे। इतने पर भी विप्लवियों ने १७६१—६२ में एक लाख सच्चे देशभक्त राष्ट्रीय सेना में प्रविष्ट किये जिनके अधिकारी भी उन्हीं द्वारा चुने गये। ये जनसैनिक पूर्वतम सैनिकों से अधिक योग्य और सशक्त सिद्ध हुए—जिनने आगे चल कर पराजय को परास्त व विजय को दृढ़ कर दिया। दूसरा कारण—राजा और रानी का विश्वासघात था। ये फ्रांस निवासियों की संपूर्ण योजनाओं को गुप्तचरो द्वारा विदित करा कर आस्ट्रिया को सूचित कर देते थे। ये राजकीय सत्ता के पुनः स्थापन का अभी भी स्वप्न देख रहे थे। युद्ध घोषणा पर अत्यन्त उल्लास प्रकट करते हुए रानी ने कहा था—"बहुत अच्छा"।

लड़ाई के प्रारंभिक ५ मासों का इतिहास पराजय का इतिहास है। विप्लवियों की सेना अत्यन्त अल्प, अव्यवस्थित और असन्तुष्ट थी। पुरातन सैनिक विद्रोही एवं सच्चे सैनिक अननुभवी व अनभिज्ञ थे। उपयुक्त सैनिक संचालक, खाद्य-सामग्री व अस्त्रशस्त्रों के अभाव के साथ २ विश्वासघातको की भी कमी नहीं थी। फ्रांस के उत्तर नीदरलैंड्स में आस्ट्रिया की

सेना पर आक्रमण करते हुए सेनापति लॉफायत को परास्त होना पड़ा व अत्यन्त क्षति उठानी पड़ी। इस पर आस्ट्रिया-वासियों ने हँस कर कहा—"हमें तलवार की आवश्यकता नहीं है, चाबुक की आवश्यकता है"। २५ जुलाई को प्रॅशिया में युद्धघोषणा हुई व उसने अपने प्रमुख सेनानायक ड्यूक ऑफ ब्रांसविक को आस्ट्रिया की सहायता के लिए पर्याप्त सेना के साथ भेजा। संयुक्त सेना के संमिलित आक्रमण के कारण २२ अगस्त को लांगवो का पतन व २ सितम्बर को विख्यात दुर्ग वरदून शत्रु के अधिकार में चला गया। अब एक भी प्रति-बंधक दुर्ग पेरिस नगरी व विजयी सेना के मध्य नही रह गया था—और १५ दिन में ही यह सेना राजधानी को पहुँच सकती थी।

इन पॉच मासों की घटनाओं ने फ्रांस के आंतरिक क्षेत्रों में अभूत पूर्व परिवर्त्तन किये। राजकीय शक्ति व उसके समर्थकों एवं प्रजातंत्र शक्ति और उसके पोषिकों में पर्याप्त मुठभेड़ हुई। अप्रेल मास मे फ्रांस एक वध राजतंत्र था व मध्यम श्रेणी विधानसभा में अधिक शक्तिशाली थी। सितम्बर मास तक राजकीय शासन का अंत होने लगा और काला पायजामा पहने हुए मध्यम वर्ग के प्रतिनिधि अब लाल टोपी पहने हुए स्वशासित जिला शासन के अधीन हो गये। जिराण्डिस्ट दल का पतन एवं जैकोबिनका उत्थान हुआ। ब्रीसाट और रोलाँ के स्थान पर डेन्टन प्रमुख नेता बन गया। पुरातन समस्याओं का अंत व नवीन का उदय होगया। इनके मध्य आतंक की सृष्टि हुई;—रक्त की नदियां बही—जिनने विप्लवियो के चरित्र को कलुपित कर दिया।

युद्ध में पराजित होने के कारण विधानसभा के सदस्यों ने दो अतिरिक्त नियम स्वीकृत किये—जिनमें प्रथम विप्लव विरोधी

पादरियों का उपनिवेशों में निर्वासन व द्वितीय राजधानी की रक्षा के लिए २० हजार नवीन सैनिकों के प्रवेश की व्यवस्था थी। लुई षोडश ने अपनी पत्नी के उपदेश से अपने विशेषाधिकार से इन्हें निषिद्ध कर भयंकर विस्फोट कर दिया। राजकीय शासन विरोधी जैकोबिन दल ने भयभीत फ्रांसीय जनता को राजतंत्र के नाश की प्रेरणा उचित अवसर पाकर दी। जिराण्डिस्ट दल ने—जोकि युद्ध से एकतंत्रवाद के अवसान की आशा मे था—इस नीति का समर्थन किया। राजा इतना दुर्बल था कि उसमें जनता के विरोध करने की शक्ति नहीं थी। नेपोलियन ने एक बार सत्य ही कहा था—"यदि एक बार भी लुई षोडश अपने घोड़े पर सवार होकर राजतंत्रवाद के समर्थकों को एकत्रित कर विप्लवियों के विरुद्ध प्रेरणा देता, तो पाशा ही पलट जाता"। क्रान्तिकारी नेता लॉफायत अब राजसत्ता का समर्थक हो गया था। ऐतिहासिकों का मत है कि "यदि राजा लॉफायत के उपदेश को मानता, तो इतने शीघ्र उसका पतन नहीं होता"। २० जून की रोमांचकारी घटना के अनन्तर लॉफायत जैकोबिन क्लब को प्रतिबद्ध करने के लिए राजधानी में आया—जिससे कि राजसत्ता के विरोधी सभी दलों का अंत कर दिया जाये, किन्तु विधान सभा ने उसे सैनिक कार्यवाही के लिए बाध्य कर दिया। १० अगस्त के पश्चात् इसने पेरिस नगर में राजा की रक्षा के लिए सैनिकों के उपयोग की चेष्टा की, परन्तु उनने उसके आदेश को सर्वथा असान्य कर दिया। इस प्रकार दो वार पराजित होकर जब वह सीमान्त को पार कर शत्रु से मिलने का प्रयास कर रहा था, तो उसे वंदी बनाकर "लॅकसेंबर्ग" के कारागृह मे डाल दिया गया।

४—आन्तरिक घटनायें

जैकोबिन और जिराण्डिस्ट दल की प्रगतिकारिणी तीन

विशिष्ट घटनायें इसके अनन्तर घटीं। २० जून, १० अगस्त एवं २ से ६ सितंबर तक की ये तीनों घटनायें इतिहास में विख्यात हैं।

(क) २० जून—यह एक ऐसा दिवस था—जो जिराण्डिस्ट दल की ओर से मंत्रिमंडल के वहिष्कार के प्रतिरोध में मनाया गया था—जिसका बहाना राजा का निषेधाधिकार था। उत्तेजित जनता ट्वीलर्स प्रासाद पर गई—और वहां २५ लाख जनप्रतिनिधियों द्वारा पास किये हुए नियमो को ठुकराने का तीव्र प्रतिवाद किया। तीन घंटे तक राजा इन्हे समझाने का विफल प्रयत्न करता रहा, किन्तु उत्तेजित जनता ने उसे मदिरा ग्रहण करने के लिए विवश किया लाल टोपी पहना दी—और कहा कि "आप एक विश्वासघातक है। प्रारम्भ से ही आप धोखा दे रहे हैं और अब भी उसी मार्ग पर हैं, परन्तु आपको विदित होना चाहिए कि इसका परिणाम अशुभ है"। इसका उसने कुछ भी प्रतिकार नहीं किया, अपि तु जीवन भर में प्रथम वार साहस और दृढ़ता से काम लिया। जनता की उत्तेजना मन्द पड़ गई और प्रमुख दलों के नेताओं को राजकीय सत्ता को नष्ट करने के लिए दूसरा प्रयत्न करना पड़ा।

(ख) १० अगस्त—यह पुरातन राजतंत्र का अंतिम व संकटपूर्ण दिवस था। जुलाई २८ को ब्रांसविक (प्रशियन सेनानायक) की घोषणा से लोग आतंकित हो गये एवं इसके दो दिन पश्चात् मरसैलिस शहर से सच्चे राष्ट्रभक्त अपने नूतन राष्ट्रीय गायन को गाते हुए जनशक्ति को जागृत करने के उद्देश्य से राजधानी में पहुँचे। १० अगस्त १७९२ को प्रातः ६ बजे जनता ने ट्वीलर्स राजप्रासाद पर आक्रमण किया। एक घंटे पश्चात्

राजा ने अपने परिवार के साथ राज-प्रासाद छोड़ कर विधान सभा में आश्रय लिया एवं सभापति के आसन के पीछे एक छोटे कमरे में ३० घंटे तक रहा। उस समय विधान सभा जब अपनी समस्या को सुलझाने में व्यस्त थी, उग्र जनता व ट्वीलर्सप्रासाद के रक्षकदल में लड़ाई प्रारंभ हो गई। स्विस् रक्षक अपने अंतिम क्षण तक जनता के विरोध मे लड़ते रहे—किन्तु २०० व्यक्तियो के घायल हो जाने के अनन्तर उनने हताश होकर अस्त्र डाल दिये। ५ हजार व्यक्तियो का हत्याकांड हुआ एवं ट्वीलर्स प्रासाद को लूटने के पश्चात् आग लगा दी गई। उस समय एक साधारण तोप का अधिकारी नेपोलियन बुनापार्टी था—जो कि इस भयानक घटना का दर्शक था, इसकी शिक्षाओ ने उसे आजीवन प्रभावित किया। इस घटना के साथ साथ ही राजकीय शक्ति का अंत हो गया।

१० अगस्त का हत्याकांड पेरिस नगरी के विप्लवी स्वशासित जिले शासन का ही काम था। जैकोबिन दल पेरिस नगर का प्रभु था और इसके नेता डेन्टन उसके संगठन मे सबसे अधिक तत्पर थे। उसी अवसर पर विधान सभा के समक्ष राजा के भविष्य का प्रश्न आया—७५० मे से ४५० सदस्य सभा भवन में अनुपस्थित थे। इनमें भी अधिकांश व्यक्ति राजा की पदच्युति के अनिच्छुक थे और दूसरो पर निर्णय का उत्तरदायित्त्व डालना चाहते थे। अत्यन्त तर्क वितर्क के अनन्तर उपस्थित सभासद् वर्ग ने राजा को क्षमता से वंचित करके विप्लवी पेरिस नगर के स्वशासित जिला शासन को सौंप दिया और राज्यच्युति के निर्णय के लिए एक राष्ट्रीय संसद के निर्वाचन को स्वीकार किया। ऐतिहासिको के मत से "१० अगस्त एक ऐसा दिवस है—जिस दिन फ्रांस एक गणतंत्रवादी हो गया और जनता के द्वारा जैकोबिन दल का प्रभुत्त्व स्थापित हो गया"। शासनसंघ के

भंग होने से एक अस्थायी कार्यवाहक समिति डेन्टन की आधीनता में स्थापित की गई—जो नवीन राष्ट्रीय संसद् के निर्वाचन का प्रबन्ध और शासन का संचालन कररेगी। इसी प्रकार स्वशासित जिला शासन सर्वोच्च सत्ता का अधिकारी हो गया और राजा व रानी विधान परिषद् की अनुमति के बिना ही पेरिस के निकटवर्ती टेम्पुल नामक दुर्ग में बंदी बना दिये गये। १७९२ से ९४ तक यही स्वशासित शासन दल फ्रांसीय राजनीति में एक महत्त्वपूर्ण भाग संपन्न करता है। इससे प्रकाशन स्वाधीनता नष्ट हो गई और सितंबर के हत्याकांड की नींव लग गई।

(ग) २ से ६ *सितंबर*—राजकीय सत्ता के पतन के नौ दिन पश्चात् प्रशिया और आस्ट्रिया की संयुक्त सेना ने फ्रांस पर आक्रमण करके पेरिस मार्ग के संपूर्ण दुर्गों पर अधिकार कर लिया—जिससे जनता में आतंक हो गया और उसने राजधानी के पतन को अवश्यंभावी मान लिया। उस समय डेन्टन ने कहा—"शत्रु के प्रतिरोध का केवल एक ही मार्ग है—वह है—राजकीय समर्थकों का अंत कर देना"। उसने इस पराजय को विश्वासघातकों की देन कहा और प्रत्येक मकान से गुप्त-अस्त्र शस्त्रों के अन्वेषण को निमित्त बना कर संदिग्ध कुलीनों, राज्यबन्धुओं, सामन्त या वैदेशिक शत्रुओं के संबन्धियों एवं पलायित कुलीनो के परिवारों व पादरियों को एक आदेश द्वारा बंदी बना दिया। संक्षेप में ऐसे सब व्यक्ति—जिनने १० अगस्त की राज्यच्युति का समर्थन नहीं किया था—बन्दी बना लिये गये। विश्वासघातक भी भला अब क्यों चुप रहने वाले थे—परिणामतः एक भयंकर संघर्ष से रोमांचकारी भीषण हत्याकांड प्रारंभ हो गया। उसी दिन १५० खूनियों का एक दल एक कारागृह से दूसरे कारागृह गया, बंदियों को मुक्त किया व शीघ्र

ही उन्हें स्वर्ग पहुँचा दिया। अनुमान है कि २ से ६ सितंबर तक १६०० व्यक्ति इस प्रकार मारे गये थे।

कारागार से मुक्ति का यह तांडव यूरोप में सर्वप्रथम देखने मे आया, फ्रांसीय विप्लव का यह सबसे अधिक घृणित कार्य था। डेन्टन ने इस पर वक्तव्य देते हुए कहा—"मनुष्य की कोई शक्ति इस हत्याकांड को रोक नहीं सकती थी। अत्याचार के पश्चात् जनता में प्रतिशोध की भावना का जागरण स्वाभाविक था, इसी लिए क्रुद्ध व क्षुब्ध जनता ने नृशंस हत्याकांड का समर्थन किया"। साधारण लोगों का ध्यान भी इतना परिवर्त्तित हो गया व वे कहने लगे—"यदि हम इन्हे छोड़ देते, तो ये थोड़े ही दिनों में हमारे लिए घातक होते"। इतिहास मे यह प्रमाण उपलब्ध होता है कि इन उपद्रवकारियों को पेरिस नागरिक समिति के कोश से १४६३ लीवर पारिश्रमिक दिया गया था एवं डेन्टन व मराट इसके लिए दायी थे। जनता की शक्ति और इस प्रकार की निर्मम और निर्दय राजनीति डेन्टन का फ्रांस की रक्षा के लिए एक विशेष अस्त्र था।

(घ) हत्याकांड के परिणाम—सामुदायिक रूप से विधान परिषद् के सदस्य यदि प्रतिवाद करते, तो इस हत्याकांड का प्रतिरोध हो सकता था। इसके प्रभाव अत्यन्त हीन हुये। सर्वप्रथम फ्रांस के अन्य प्रदेशो में इसके प्रभाव ने उद्दीप्ति प्रदान की—जिससे राजधानी के अनुकरण पर हजारो निर्दोषी व्यक्तियों का जीवन-संहार किया गया। दूसरा परिणाम यह था कि इससे विप्लवी जनता की दृष्टि से गिर गये और घृणा के पात्र हो गये। तीसरा परिणाम जिराण्डिस्ट और जैकोविन दल में संघर्ष हुआ, क्योंकि जिराण्डिस्ट दल इस हत्याकांड के उत्तरदायी मराट और डेन्टन को दंड देना चाहता था। नवीन राष्ट्रीय संसद के प्रारंभिक अधिवेशन इन्हीं दोनों दलों के संघर्ष में व्यतीत

हुये। विप्लवियों के प्रतिक्रियावादी दल को एक साथ ध्वस्त कर देनाही इस हत्याकांड का ध्येय था। इससे कुलीनवर्ग आतंकित हो गया व उसके नवयुवक भी फ्रांस की रक्षा के लिए सेना में प्रविष्ट होने लगे।

५—राष्ट्र संघ की पराजय

लॉफायत के पतन के पश्चात् डुमोरिया को फ्रांसीय सेना का उच्चनायक बना दिया गया। इसने २० सितम्बर १७९२ मे आस्ट्रिया और प्रॅशिया की युक्त सेना को भामी नामक स्थान में पूर्ण रूप से पराजित कर दिया। युद्ध क्षेत्र में प्रसिद्ध जर्मन कवि गेटे ने उस काल में भविष्यवाणी की—"भामी का युद्ध मानव के इतिहास मे एक नवीन युग की सृष्टि करेगा"। वस्तुतः यह युद्ध विप्लव के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण अंग था। लार्ड एक्टन का कथन है—"यह युद्ध फ्रांसीय जनता की एकता व नैतिक शक्ति का परिणाम था"। जो युद्ध राजतंत्रवाद को दृढ़ व सुरक्षित करने के लिए प्रारंभ किया गया था, उसने अंत में गणतंत्रवाद का प्रसार किया। उससे फ्रांस की महानगरी केवल वैदेशिक आक्रमण से ही सुरक्षित नहीं रही, अपितु विप्लववादियों का संग्राम सफल हो गया। डुमोरिया ने इस संग्राम की यूनान के प्रसिद्ध रण थर्मापिले के साथ तुलना की। अपने निर्वासित जीवन में नेपोलियन ने भी यह स्वीकार किया था—"यद्यपि मैं पृथ्वी के इतिहास में सबसे अधिक साहसी सेनानायक हूँ, पर मैं भी डुमोरिया के अनुसार एक तृतीयांश सेना लेकर शत्रु के साथ लड़ने में असमर्थ था।" राष्ट्रसंघ के सेनानायक ब्रांसविक पराजय के पश्चात् जर्मनी वापस चले गए। इस प्रकार २० सितम्बर एक ऐसा महत्त्वपूर्ण दिन था—जिस दिन भावीयुद्ध की विजय हुई, और राजधानी में राष्ट्रीय संसद् का महत्त्वपूर्ण उद्घाटन हुआ।

(ग) राष्ट्रीय संसद्

१—**विप्लव में परिवर्त्तन**—विधान परिषद् के भंग होने के पश्चात् विप्लव की दिशा में परिवर्त्तन हो गया, पुरातन शासनप्रणाली का अवसान और स्वराज्य का मार्ग स्पष्ट हो गया। कुलीनो को तितर वितर कर दिया गया, राजकीय शासन को लोकसत्ता पर निर्भर बना दिया गया, एवं गिरिजा के प्रभुत्त्व, सामन्तप्रणाली व स्वेच्छाचारी राजतन्त्र ध्वस्त कर दिया गया। लोकतन्त्र ने यद्यपि राष्ट्र को एक विपत्ति तथा संकट के समक्ष खड़ाकर दिया, पर वह ध्वंसात्मक क्रिया में सर्वथा कृतकार्य हो गया। वैदेशिक आक्रमण ने विप्लव को नष्ट करने का प्रयत्न किया, और नवीन जनतन्त्र जन्म के साथ ही आंतरिक गृह युद्ध में व्याप्त हो गया। शत्रु के आतंक से ग्रस्त नूतन जनतन्त्रवाद ने स्वाधीनता की अपेक्षा फ्रांस की रक्षा को अधिक महत्त्व दिया। आंतरिक विश्वासघातकों को निमूल करने का प्रयत्न किया गया। इस प्रकार विप्लव मे जन रक्षा के नाम पर सबसे घृणित अत्याचार और हत्याकांड का इतिहास प्रारम्भ हो गया। प्रजातन्त्र अधिनायकवाद मे रूपान्तरित हो गया और १७६२ के गणतन्त्र ने १७६३-६४ के भयानक आतङ्क की उत्पत्ति की।

२—**संसद के विभिन्न दल**—संसद् मे ७४६ सदस्य और (१)—जिरान्डिस्ट, (२)—पर्वतीय व प्लेन और मार्श नाम के तीन दल थे—जिनमे कोई भी राजसत्तावादी नही था और राजतन्त्रवाद की रक्षा या स्थापना की बात तक करने का किसी में भी साहस नहीं था। यद्यपि निर्वाचन शास्त्रीय रूप से बालिग पुरुप मताधिकार के आधार पर हुआ था, पर वस्तुतः आतंक का प्रभाव

होने से एक दशमांश $\frac{1}{10}$ व्यक्तियों ने ही मतदान में भाग लिया था। इसी से संसद के अधिकांश सदस्य कट्टर राजतंत्र विरोधी थे। संसद के दक्षिणी भाग में २०० जिरांडिस्ट बैठते थे—जिनके प्रमुख नेता दार्शनिक ब्रीसाट, भर्गनिआड कंडूर्शे व टामस पेन थे। ये सदस्य मध्यम श्रेणी में से थे—जो भावधारा में ही अधिक विरोधी थे—कार्य में नहीं। ये पेरिस नगर के स्वशासित जिले शासन और उत्तेजित जनता से डरते थे। इनके विपरीत प्राय: एक सौ सदस्य कट्टर वामपंथी दल के रूप में जैकोबिन थे—जिन्हें पर्वत की तरह ऊँचे आसन पर बैठने के कारण "पर्वतीय" अथवा "माउन्टेनिस्ट" कहा जाता था। इनके प्रमुख नेता डेन्टन, राबस्पीयर व कार्नट थे। ये मध्यमवर्ग, रूसो के युद्धप्रिय शिष्य एवं पेरिस की जनता के प्रिय पात्र थे। इन दोनों ही के मध्य "प्लेन" और "मार्श" दल के सदस्य थे—जिनके पास बहुमत की शक्ति थी। इनकी न तो कोई निश्चित नीति या विश्वास और सिद्धान्त ही था—जैसा सुयोग आता था—वैसे ही ये दक्षिण अथवा वामपक्ष में झुक जाते थे। इनका नेता ऐबिसाइज था। हम अग्रिम अध्यायों मे देखेंगे कि किस प्रकार पर्वतीय दल संसद् का नेतृत्त्व और राजा की फाँसी के अनन्तर आतंकमय राज्य का संचालन करेगा।

३—गणतंत्रवाद की स्थापना—संसद् का सब से पहला कार्य राजतंत्र शासन का अंत करना था—जिसके प्रस्ताव को सबने निर्विवाद स्वीकार कर लिया। एक सदस्य ने कहा—"वाद विवाद का प्रयोजन ही क्या है—जबकि हम सब एकमत है। राजसंघ तो एक घृणित संस्थान है, जहाँ दुश्चरित्र और बेईमानी का नृत्य होता है। राजा का इतिहास राष्ट्र के बलिदान का इतिहास है"। दुन्दुभि व तुरई के नाद के साथ साथ राजकीय शासन के अवसान की घोषणा

की गई—जिसे भीत राजा ने टेम्पुल दुर्ग के कारागृह मे सुना—और गणतंत्र की स्थापना हो गई। कुलीनो के पदो का अंत कर दिया गया व एक दूसरे को "साधारण नागरिक" के रूप मे सम्बोधित करने लगा। संसद् के वाद विवाद में राजा के लिए "प्रमुख नागरिक" शब्द निर्धारित किया गया। मोर्स स्टीफेन्स का कथन है कि "खेलने के ताश भी अब राजा, रानी व गुलाम के स्थान पर स्वाधीनता, समानता और एकता के नाम से व्यवहृत किये जाने लगे"। गणतंत्र की स्थापना के साथ साथ २२ सितम्बर १७९२ से फ्रांस के प्रथम संवत्सर और गणतंत्र दिवस का आयोजन हुआ।

४.—राजा का बलिदान—११ दिसम्बर १७९२ को राजा को राष्ट्रीय संसद् के समक्ष प्रस्तुत किया गया। उसे फ्रांस के वैदेशिक शत्रु को गुप्तरूप से निमंत्रित, जनता का दमन और १० अगस्त के हत्याकांड का अभियुक्त माना गया। टुवीलर्स-राजप्रसाद के एक छोटे से सन्दूक में अनेक गुप्त-पत्र प्राप्त हुए—जिनसे उसकी विश्वासघातकता प्रमाणित हो गई। इस सम्बन्धमे तीन प्रमुख विचारणीय तथ्य थे—(१) क्या लुई दोषी है? (२)दोष का निर्णय संसद् या जनता करे! (३) उसे क्या दंड दिया जाये? उनमें उग्रदल के सदस्य सर्वथा निर्दय थे—जो कि राजा को अराजकता का प्रधान अपराधी समझते थे। जिराण्डिस्ट दल के कुछ सदस्य राजा की सुरक्षा के पक्ष मे थे, परन्तु पर्वतीय दल और जनता की पुकार ने उसके बलिदान को निश्चित कर दिया। रावस्पीयर के प्रमुख शिष्य महात्मा जॅस्ट ने सदस्यो को स्मरण कराया कि जनता के दमन और अधिनायकवाद के उपासक प्राचीन रोम के प्रसिद्ध राजा सीजर को भी संसद् के सम्मुख २२ चाकुओं

से घायल किया गया था। लुई के अभियोग पर विचार करने की पूर्ण व्यवस्था की गई। एक मास तक उसके अभियोग पर विचार होता रहा—स्वयं लुई ने पूछे गये अनेक प्रश्नो (३३) के उत्तर दिये—जो सभी विप्लवियों के व्यवहार के सम्बन्ध में थे। उसके सभी उत्तरो को असन्तोषपूर्ण समझा गया। इसी अवसर पर रावस्पीयर ने भाषण देते हुए कहा—"स्वाधीनता के बन्धु को हर समय भीत रहना पड़ता है—जब तक उसकी तलवार हाथ में ठीक तरह से सज्जित नहीं रहती। हमारी देशभक्ति का सच्चा प्रमाण यह ही है कि हम अपने पुरातन संस्कारो के साथ साथ राजा के प्रति हम में जो संमान भरा हुआ है, उसे नष्ट कर दे"। १५ जनवरी सन् १७९३ में स्वाधीनता के विपक्ष में षड्यन्त्रकारी और राष्ट्र की सुरक्षा पर आक्रमणकारी के रूप मे लुई षोडश को अभियुक्त सिद्ध कर दिया गया—वह सर्वसम्मति से दोषी प्रमाणित हुआ और एक भी मत उसके पक्ष में नहीं आया। जिराण्डिस्ट दल के कतिपय सदस्यो ने उसे निर्णय के लिए जनता के सम्मुख प्रस्तुत, करने की माँग की—परन्तु रॉवस्पीयर ने—जो कि जनता की सहानुभूति और अंधविश्वास से चिरपरिचित था—इस प्रस्ताव को अमान्य कर दिया। दंड के सम्बन्ध में १७ जनवरी को ७२१ सदस्यो में से ३८७ ने मृत्युदण्ड के पक्ष व ३३४ ने विपक्ष में मत दिये। राजा को ३ दिन की अवधि दी गई—व २१ जनवरी १७९३ को प्रातः १० बजे ट्वीलर्स प्रासाद के समुख विशाल जनसमूह के सामने लुई षोडश को फाँसी दे दी गई। मृत्यु से पूर्व उसने जनता को संबोधित करते हुए अंतिम शब्द कहे—"फ्रांसीय नागरिको—हमें दोषी सिद्ध करना अन्याय है, हम सर्वथा निर्दोष हैं। परन्तु हम यह आशा करते हैं कि हमारे रक्त की एक बूँद से फ्रांस की जनता सुखी व आनंदित होगी"। फ्रांसीय गणतांत्रिक ऐति-

हासिक मिग्नेट का कथन है—"यह दुर्बल राजाओं में सबसे उत्तम राजा था। इसके पूर्वपुरुषों ने इसे क्रान्ति को बपौती के रूप मे दिया था—जिसके प्रतिरोध व इतिश्री करने मे यह सर्वथा असमर्थ था। यह एक ऐसा राजा था—जिसमें न उत्तेजना थी व न शान्ति ही, पर राजसत्ता के दो महान् गुण अवश्य थे—प्रथम परमेश्वर में भक्ति व द्वितीय जनता के प्रति सहानुभूति। इतिहास इसके विषय मे यही कहेगा कि यह थोड़े गुणों और शक्ति के होने पर आदर्श राजा बन सकता था"। ऐतिहासिकों का कथन है कि मृत्यु के समय राजा का साहस और मानसिक शान्ति अपूर्व थी।

राजा का यह बलिदान फ्रांस और यूरोप के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। इससे वैदेशिक आक्रमण प्रारंभ हो गया व यूरोप के समस्त राष्ट्र विप्लववादियों से आतंकित और भविष्य को अंधकारमय समझने लगे। फ्रांस आस्ट्रिया और प्रॅशिया के साथ तो लड़ाई कर ही रहा था—अब इंग्लैण्ड, रसिया, स्पेन, हॉलेण्ड और इटली ने भी राष्ट्रसंघ की स्थापना की व २६ जनवरी को फ्रांस के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी और सबने अराजकतापूर्ण फ्रांस की भूमि छीनने का यह सुवर्ण सुयोग समझा। रूस की रानी कैथराइन द्वितीय ने राजा के भाई को आश्रय दिया और राजा की मृत्यु से शोक मनाया।

(क) *राजा के पतन के कारण*—फ्रांस की केन्द्रीभूत निरंकुश राजसत्ता मे लुई चतुर्दश और मंत्री कलबर्ट के काल से ही पतन के चिन्ह प्रतीत होते थे। लुई चतुर्दश ने विप्लव के १०० वर्ष पूर्व अनवरत युद्ध करके राज्यकोष को ही शून्य नहीं किया, परन्तु युद्ध के व्यय से संपूर्ण देश को ही दीन बना दिया। आर्थिक दशा के इस पतन में उसकी विलासिता और आमोद-प्रमोद ने भी योग दिया। इसी लिए ऐतिहासिक हान हाल्स्ट

कहता है—"यदि यह पूछा जाये कि फ्रांस के राजकीय शासन के ध्वंस के लिए किसने सबसे अधिक प्रयत्न किये—तो उसका ठीक उत्तर होगा लुई चतुर्दश"। यही वस्तुतः उसका उत्तरदायी था। वंश-परंपरा-प्राप्त इस हीनता को—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, लुई षोडश सुधार न कर सका। लुई षोडश अत्यन्त उदासीन, किंकर्तव्यविमूढ और लज्जित था। पलायित कुलीनो का समर्थन कर इसने वैदेशिक शत्रु को आमंत्रित किया—यह कहना अनुचित नहीं कि उस समय सपूर्ण शासन ही पंगू हो चुका था। वैदेशिक आक्रमण, ब्रांसविक की घोषणा, ट्वीलर्स प्रसाद पर आक्रमण आदि घटनायें इसके पतन का मुख्य कारण थीं। पेरिस नगरी के जैकोबिन दल का राजसत्ता से विरुद्ध आचरण और प्रशिया के आक्रमण ही मुख्यतः राजसत्ता के अवशेष और गणतंत्रवाद की स्थापना के कारण थे।

५—राष्ट्रीय रक्षा की व्यवस्था—भामी की विजय के अनन्तर अनवरत दो मास तक विप्लवी सर्वत्र युद्धों मे विजय प्राप्त करते रहे। गणतंत्र सेना ने इटली के सभाय और नाइश पर और जर्मनी में वर्म्स व फ्रेंकफर्ट पर अधिकार कर लिया। रोम के पादरी पर भी संकट आ गया और विप्लवी सेनानायक डुमोरिया ने जिमापिस के युद्ध में गणतंत्र की प्रथम विजय प्राप्त कर बेल्जियम की राजधानी ब्रुशेल्स पर अधिकार कर लिया। परन्तु उपर्युक्त राष्ट्र संघ ने कुछ ही दिन पश्चात् बेल्जियम और राइन प्रदेश पुनः हस्तगत कर लिये और पेरिस की ओर बढना प्रारंभ कर दिया। परिणामतः डुमोरिया भाग कर आस्ट्रिया के साथ मिल गया। फिर भी नवीन गणतंत्र ने एक दृढ़ राज्य प्रबंध और अनेक साधन संचित कर के शत्रु को रोक दिया। कार्नट ने—(१७५३ से १८२३) जो कि उग्र पर्वतीय दल का सदस्य था, विश्व के इतिहास मे

एक अभूतपूर्व सैनिक संगठन किया। संसद् ने फर्वरी १७९३ में अनिवार्य सैनिक सेवा के नियमानुसार ५ लाख सेना संचित की और अगस्त मास में १८ से २५ वर्ष तक के वयोप्राप्त नवयुवकों के लिए सैनिक प्रवेश बाध्य किया गया। साहसी सेनानायक कार्नट ने नवीन सैनिको को संगठित, अनुशासित और सैनिक शिक्षा से सम्पन्न बनाया। परिणामतः १७९३ के अंत में राष्ट्र के पास ७ लाख ७० हजार सुसज्जित सैनिक सन्नद्ध हो गये—जिनमें अधिकांश विप्लवी आदर्श के समर्थक थे। इनका राष्ट्रीय संगीत "मार्शेलिस" और स्वाधीनता, एकता व समानता ही एक मात्र नारे थे।

कार्नट ने इन सैनिकों को सुसज्जित करने में अद्भुत कौशल दिखाया, इन्हे नवीन नवीन विभागों मे वितरित कर दिया। रसद-वितरण का उन्नत उपाय निकाला—जिससे सैनिक अधिक स्फूर्ति के साथ शत्रु का सामना कर सकें। देशभक्त गुप्तचरों ने शत्रु के यातायात और सैनिकों की देशभक्ति का पूर्ण परीक्षण किया। वस्तुतः इन्हीं उपायो से गणतंत्र फ्रांस सशस्त्र जनता पर निर्भर होकर वैद्युतिक गति से विजय की ओर बढ़ने लगा।

६—**वैदेशिक शत्रु का बहिष्कार**—डुमोरिया ने गणतंत्र के प्रथम आक्रमण हॉलेण्ड पर प्रारंभ किये थे, जिसमें फ्रांस की पराजय हो गई, बेल्जियम हाथ से निकला, व फ्रांसीय सेनानायक डुमोरिया के पलायन के अनन्तर राष्ट्र संघ ने कांडी व भैलोन्शीयन्स नामक स्थान को भी अधिकृत कर लिया। स्पेन फ्रांस को पराजित कर पिरेनिस को हस्तगत कर लिया। परन्तु इतने में ही फ्रांस की भूमि के अधिक से अधिक भाग हथियाने के यत्न में राष्ट्रसंघ में फूट हो गई। इधर विचक्षण और दूरदर्शी कार्नट ने अपने अधीनस्थ सेनानायक जार्डन, पिचग्रू, और मोरिया द्वारा रक्षा को इतना

सुदृढ बना दिया कि आज भी फ्रांस के इतिहास में इनके नाम चिरपरिचित हैं। अंग्रेजों को हान्डसचोटेन के युद्ध में हराकर डन्कर के घेरे से वंचित कर इंगलैण्ड भगा दिया गया, आस्ट्रियावासियों को वाटिग्नेश की लडाई में हराकर तूलौन पर पुनः अधिकार कर लिया गया। बिडासवा के युद्ध मे स्पेन. को पराजित किया गया। इन सब विजयों ने गणतंत्र सेना को वैदेशिक शत्रु के आक्रमण से बचा दिया। १७९४ के महत्वपूर्ण संग्राम फ्ल्यूरस रण क्षेत्र में फ्रांस की विजय हुई, बेल्जियम पर पुनः अधिकार हो गया, व आस्ट्रिया वासियों को फ्रांस से बहिष्कृत कर दिया गया। हॉलेण्ड पर सहज ही अधिकार हो गया और शत्रुओ को संधि के लिए बाध्य होना पडा। नौयुद्ध में फ्रांस अनेक बार पराजित हुआ—जिसमें सब से प्रमुख पराजय से कार्सीका के द्वीप पर अधिकार हो गया। १७९५ की वैसल की द्वितीय सन्धि से—जो कि प्रशिया के फैडरिक विलियम द्वितीय के साथ हुई—फ्रांस को राइन नदी के तट पर अधिकार हो गया। स्पेन के राजा चार्ल्स चतुर्थ ने भी गणतंत्र फ्रांस से संधि करली, और हॉलेण्ड के राष्ट्रपति विलियम पंचम को पदच्युत कर "गणतंत्र वेटेभियान्" स्थापित कर दिया गया, जिसकी फ्रांस के साथ मैत्री स्थापित हो गई। इस प्रकार लुई चतुर्दश की अपूर्ण कामना को गणतंत्र फ्रांस ने दो वर्ष मे पूर्ण कर दिया। अबतक भी इंगलैण्ड आस्ट्रिया, और सार्डीनिया ने फ्रांस के विपरीत लडाई चालू रखी। इन वैदेशिक शत्रुओं को भगा देने का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि सैनिकों का प्रभाव बढ गया, और जनता के मत को नियंत्रित करने के लिए सैनिक शक्ति का प्रयोग प्रारंभ हो गया।

राष्ट्र संघ की पराजय के मुख्य चार कारण थे—जिनमें प्रथम फ्रांसीय सेना का उच्च चरित्र, देशभक्ति की प्रेरणा, विप्लव

के सिद्धान्तों का प्रचार अग्रणी था। वे इसे एक निरंकुश स्वेच्छाचारी शासक-दल के विरूद्ध पवित्र स्वाधीनता संग्राम समझते थे, इसीलिए उनमें यह दृढ आत्मविश्वास था कि हमारी विजय निश्चित है। (२) फ्रांसीय सेनानायकों की परिचालन शक्ति। वे जानते थे कि यदि असफल हुये तो ये पदच्युत ही नहीं, अपितु बलिदान के भागी होंगे, इसीलिए ये अपने जीवन के लिए लडते थे। (३) कार्नट की कुशलता जिसके संवन्ध मे एटकिंसन ने कहा है—"राष्ट्र-संघ के सैनिक गणतंत्र सैनिकों की द्रुतगति और मात्रा से घबडाते थे। यह बुभुक्षु सेना अल्प अस्त्र-शस्त्र और युद्ध-सामग्री लेकर आगे बढती थी। इसका मूल लक्ष्य थोडे समय मे शत्रु को पराजित करना था"। इसीलिए १७६३ को सैनिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण संवत्सर कहा जाता है—जहाँ रणनीति में द्रुतगति का अनुभव हुआ। था। (४) राष्ट्र संघ की, विशेषतः प्रशिया और आस्ट्रिया के मध्य पारस्परिक फूट थी। संक्षेप में ये सब घटनायें इतनी विस्तृत हैं—जिनकी व्याख्या के लिए इस संक्षिप्त आकार की पुस्तक मे स्थान नहीं है।

७—फ्रांस की आंतरिक अराजकता का नाशः—

पश्चिम फ्रांसीय लाभेण्डी प्रदेश के कृषको ने संसद के अनिवार्य सैनिक प्रवेश के विरूद्ध एक महान् आंदोलन प्रारम्भ किया। इस प्रदेश के अधिकांश व्यक्ति राजतंत्र व कैथोलिक गिरिजा के पक्षपाती थे—जो कि विप्लव के परिवर्त्तनो के विरोधी थे। प्रादेशिक जनता मध्यम वर्गीय पेरिस जनता के नृशंस अत्याचारो से घृणा करती थी, अब तीव्र प्रतिवाद करने लगी—जिसके फलस्वरूप लियन्स, मर्शेला, बोर्डो, तूलौन आदि विभिन्न स्थानो में उपद्रव प्रारम्भ हो गये—परन्तु राष्ट्रीय संसद के अधिकारी-वर्ग दृढता से इस आंतरिक अराजकता व विद्रोह

को दमन करने के लिए नवीन सैनिको का उपयोग करने लगे। लियन्स नगर को वशीभूत कर बडे बडे भवनो को जला दिया गया और अत्याचारो के पश्चात् इसका नाम परिवर्तित कर "स्वाधीन" नगर रख दिया गया। लाभेएडी नगर में निष्ठुरता पराकाष्ठा पर पहुँच गई। संसद् ने शान्तिस्थापना के लिए कैरियर नामक सदस्य को प्रतिनिधि बना कर भेजा—जिसने इस दिशा में नवीन मार्ग की रचना की। पेरिस का विप्लवी न्यायालय अभियुक्तों को दंड देने में पर्याप्त समय लेता था—इसलिए इसने संदिग्ध व्यक्तियों को बंदी बनाकर छोटे २ दलों में विभाजित किया व गोली से उडवा दिया। अनेक विद्रोहियों, स्त्रियो व बच्चों को नौका पर बिठाकर लोयर नदी मे डुबो दिया गया। कहा जाता है कि इससे पानी इतना विषाक्त हो गया कि लोगों ने पीना तक बन्द कर दिया। इस निष्ठुर कहानी का जनरक्षा समिति ने जब विवरण मांगा तो कैरियर ने उत्तर दिया—"यह घटना एक आकस्मिक दुर्घटना मात्र थी। यह क्या मेरा दोष है कि नाव अपने गंतव्य स्थान पर नहीं पहुंची"। ऐसी ही निष्ठुरताओं और गोलीकांडो से तूलौन और मार्शेलिस के विद्रोह का दमन किया गया। अंत में १७९५ तक गुप्त विश्वासघातकों व प्रवासी कुलीनो के अतिरिक्त सभी ने गणतंत्र को शिरोधार्य कर लिया।

८—जनरक्षा समिति का निर्माण:—

इन अराजकताओं और अव्यवस्थाओं कोनष्ट करने के लिए १२ सदस्यों की एक विशिष्ट "जनरक्षा-समिति" को सर्वोच्च कार्य-कारिणी समिति ने नियुक्त किया। सर्व प्रथम ९ और फिर १२ सदस्य संसद् द्वारा एक मास के लिए चुने जाते थे, किन्तु शान्ति और शृङ्खला के लिए इन्हीं को बार बार ले लिया जाता था। इसका स्रष्टा डेन्टन था, परन्तु डेन्टन को ही इसमें

नहीं लिया गया, क्योंकि इसने संसद् से जिरांडिस्टों के बहिष्कार की निन्दा की थी। इसका प्रधान कार्यालय ट्वीलर्स प्रासाद् में रखा गया'। इसके सदस्यों को दिन में कभी कभी २१ घंटों तक काम करना होता था। इस समिति में पर्वतीय दल के प्रमुख नेता कार्नेट, रॉवस्पीयर, जेन्टस् थे—जिनने राष्ट्र के शासन संचालन का दायित्त्व लिया और गुप्तरूप से स्थानीय अधिकारियों की नियुक्ति की। इनके प्रधान कार्य आंतरिक सुव्यवस्था, बाह्यशक्ति के आक्रमण से फ्रांस की रक्षा और सैनिक नियन्त्रण थे।

इसके चार प्रमुख अंग थे-*(१) सामान्य जन सुरक्षा-समिति*—जिसमे जनरक्षा-समिति द्वारा नियुक्त २१ सदस्य होते थे जिनका कर्तव्य शान्ति रक्षा, सदिग्ध व्यक्तियो का बन्दित्व एवं उन्हें विप्लवी न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करना था। *(२) विप्लवी न्यायालय* दूसरा ऐतिहासिक अंग था-जिसकी स्थापना डेन्टन के प्रस्तावानुसार की गई थी। यह एक अतिरिक्त फौजदारी न्यायालय था-जिसका प्रधान कर्तव्य राष्ट्रद्रोही व विश्वास घातकों को दंड देना था। इसके विरोध में कोई अपील नहीं कर सकता था, व इसका दंड मृत्यु दंड होता था। दंड-प्रयोग की शीघ्रता के उद्देश्य से इसके अधिवेशन एक साथ चार शाखाओ में विभक्त होकर होते थे। ये न्यायाधीश जनरक्षा समिति द्वारा नियुक्त होते थे, इसी लिए उसकी आज्ञापालन के प्रयासी थे। इनकी तत्परता हम निम्न वर्णन से ज्ञात कर सकते है—यदि राष्ट्रद्रोह के अभियोग मे एक व्यक्ति को दश बजे वंदी बनाया जाता था, तो ११ बजे वह न्यायालय में प्रस्तुत किया जाता था, २ बजे दंड घोषित कर दिया जाता था, और ४ बजे उसे फांसी हो जाती थी। *(३) तृतीय अंग विशिष्ट प्रतिनिधि-मंडल* था-

जिसे संसद् भिन्न भिन्न भागो में निरीक्षण के लिए भेजती थी। २ प्रतिनिधि सेनाविभाग और दो प्रत्येक शासनिक विभागों के लिए नियत थे। इनके अधिकार असीम थे। ये संदिग्धावस्था और असंतोष की स्थिति मे किसी भी व्यक्ति को बंदी बना कर न्यायालय के समक्ष दंड के लिए भेज सकते थे। राजा के पक्षपाती उच्चपद थ सैनिक पदाधिकारियों को भी ये बंदी बना लेते थे। (४) *संदिग्ध दोषारोपण अभिनियम*—राष्ट्र के आंतरिक शत्रुओ को ध्वस्त करने के लिए एक ऐसा अधिनियम बनाया गया-जिससे कोई भी व्यक्ति बंदी व दंडित किया जा सकता था। यह एक ऐसा जाल था-जिसमें फँसाना अत्यन्त सहज था। इस नियम के अन्तर्गत बंदी किये गये व्यक्तियो पर राष्ट्रद्रोहिता एक सामान्य अभियोग था—जिसका दण्ड मृत्यु था। बंदी व्यक्तियों के लिए अभियोग के अप्रमाणित होने पर यह कहा जाता था कि ''यदि इनने स्वाधीनता के विरुद्ध कुछ नहीं किया, तो उसके समर्थन के लिए भी तो कुछ नहीं किया"। संक्षेप में कोई भी दोपी या निर्दोषी समान रूप से इस शृङ्खला से नहीं निकल सकता था।

राष्ट्र का महान् संकट से उद्धार करने के लिए ऐसी शक्तिशाली कार्यकारिणी शक्ति की अत्यन्त आवश्यकता थी, क्योंकि वैदेशिक शत्रु अग्रगामी हो रहे थे और आंतरिक विद्रोही-दल अशान्ति और अराजकता की सृष्टि कर रहे थे। आश्चर्य और खेद यह है कि जिस ध्येय या उद्देश्य से इसे बनाया था, उसका सदुपयोग न कर जनता के दमन में उपयोग किया गया। इसकी भ्रान्त प्रणाली ने आतंक और भय की सृष्टि करके जनता को अनुयायी बना दिया। डेन्टन ने कहा था—"हमें आज अधिक और शाश्वत साहस की आवश्यकता है"। यद्यपि ये प्रारंभ में

सफल हुए, फिर भी लोग कुछ दिन पश्चात् इनके कार्यकलापों से परिश्रान्त होने लगे व घृणा करने लगे।

विप्लवी न्यायालय के विरोध में तीव्र निन्दाएँ हुई। एक ने कहा—"ऐसे स्वेच्छाचारी शासन के अधीन रहना मृत्यु के समान है"। दूसरे ने कहा—"यह मार्ग निर्दोष व्यक्तियों को नियम रूपी वृक्ष की छाया में बलिदान करने का मार्ग है"। डेन्टन ने भी यद्यपि इस द्रुतगति की निन्दा की परन्तु इसकी मूलतः आवश्यकता का समर्थन करते हुए कहा—"यह समस्या ऐसी सङ्कटपूर्ण है—जबकि सम्पूर्ण जनता विपन्न है। इस समय अपराधी को भगा देने की अपेक्षा कुचल देना ही अच्छा है"। एक वर्ष तक इन्हीं समितियो ने फ्रांस के आन्तरिक शासन का संचालन किया। इनमे सामान्य जन सुरक्षा समिति अधिक शक्ति व प्रभावशाली थी। गणतंत्रवादी विभिन्न दलो मे विभाजित होने के कारण दुर्बल हो गये थे।

६—ज़िराण्डिस्ट दल का पतन

१७६२ के बहुत दिन पूर्व ही जिराण्डिस्ट दल का पतन प्रारम्भ हो गया था। वेल्जियम प्रदेश के फ्रांसाधिकार के संबन्ध मे और राजा के बलिदान के विषय मे भी यह संसद मे पराजित हो चुका था। आर्थिक सुधार और अनिवार्य सैनिक प्रवेश से भी पर्वतीय दल इसके विरुद्ध कृतकार्य हो गया था। परिणामतः जनरक्षा समिति के सदस्यों में इसके सदस्यो को स्थान नहीं मिला।

जैकोबिन दल ने जिराण्डिस्ट दल को गणतंत्र की विपत्तियो व राष्ट्रीय संकटो के प्रति उत्तरदायी बनाया एवं इसकी तीव्र निन्दा करते हुए इसे अपूर्ण सुधारक एवं फ्रांस को घातक मार्ग की ओर ले जाने वाला प्रमाणित किया। मराट के प्रति जिराण्डिस्ट दल इतनी घृणा करता था कि उसने उसे संसद

की संमति से विप्लवी न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया परन्तु वह मुक्त हो गया और जनता का लोकप्रिय नायक बन गया। परिणामत: मराट जिराण्डिस्ट दल के पतन के लिए बद्धपरिकर हो गया। डेन्टन ने दोनों दलों के समन्वय के लिए अनेक असफल प्रयत्न किये। स्वशासित जिला शासन के सदस्य—जो कि जैकोबिन दल का अनुसरण एवं मराट व रॉबस्पीयर का संमान करते थे—इस संघर्ष का अंत करने के लिए शारीरिक शक्ति का प्रयोग किया। इनने जिराण्डिस्ट दल के विरोध में ८० हजार उद्विग्न नागरिक और ६० तोपों के साथ विद्रोह की घोषणा करदी। २ जून १७६३ को मराट स्वयं इस विद्रोह का नेतृत्व किया था। ट्वीलर्स प्रासाद मे—जहाँ पर संसद का अधिवेशन हो रहा था—उद्विग्न जनता ने संसद्-भवन को घेर लिया और जिराण्डिस्ट नेताओं के संसद से बहिष्कार की मांग की। सदस्यों ने जनता के इस व्यवहार से क्रुद्ध होकर तीव्र प्रतिवाद किया और भवन त्याग कर जाने के प्रयत्न किये। परन्तु उद्विग्न जनता ने इन्हे बाहर नहीं आने दिया और उद्घोष करने लगी'—"जिराण्डिस्ट दल का पतन हो। उत्तर में जिराण्डिस्ट दल के एक सदस्य ने कहा—''यदि जनता ने किसी एक भी प्रतिनिधि के साथ बल-प्रयोग किया, तो पेरिस नगर का ध्वंस हो जायेगा और पर्यटक यह पूछेंगे कि सीन नदी के किस तट पर पेरिस नगर था"। किन्तु यह सब गुब्बारे की हवा थी। विवश होकर सदस्यो के भवन मे जाने के अनन्तर २६ जिराण्डिस्ट सदस्यों को बंदी बनाने का प्रस्ताव पास हो गया एवं बलप्रयोग से जनता के प्रतिनिधियो को नियंत्रित करके गणतंत्र ने एक नया मार्ग प्रस्तुत कर दिया—जिसका परिणाम सैनिक शासन हुआ। स्वशासित जिला शासन की यह विजय पर्वतीय दल की विजय थी—जो राष्ट्र के प्रति विश्वासघातक और

षड्यंत्र से संसद् के प्रभु बन गये थे। मॉयर्स ने सत्य ही कहा है- "जिस प्रकार इंग्लैंड के विप्लव में सैनिकों ने विरोधी दल को निकाल कर लोकसभा को पवित्र बना दिया था, उसी प्रकार पेरिस के नागरिकों ने राष्ट्रीय संसद् को पवित्र कर दिया"। डेन्टन ने पर्वतीय सदस्यों से कहा--"आप क्षमा करना नहीं जानते है"—यह कथन सत्य है। आगे चलकर आस्ट्रिया-वासियों ने जब फ्रांस पर आक्रमण किया, तो अवशिष्ट जिराण्डिस्ट दल के सदस्यों ने पर्वतीय दल के विरुद्ध अस्त्र ग्रहण किया था। परन्तु कुछ भी हो, उनमें दुर्बलता, अंधता, किंकर्तव्य-विमूढता और प्राचीनतम संकीर्णता के रहते हुए भी उनके साथ ऐसा व्यवहार अनुचित था।

(क) मराट की मृत्यु—(१३ जुलाई १७९३) जिराण्डिस्ट दल के नेताओं की बंदिता विप्लव में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी-जिसके परिणाम अत्यन्त भयंकर हुए। अनेक जिराण्डिस्ट सदस्य पेरिस से दूर प्रदेशों में जाकर पेरिस नगरी के विप्लवी नेता के विरुद्ध विद्रोह की आग भड़काने लगे। इसी समय नार्मण्डी प्रदेश की एक कुमारी ने, जिसका नाम सार्लोट कार्डे था, मराट को ही अराजकता का उत्तरदायी मान कर,फ्रांस को गृहयुद्ध और हत्याकाण्ड से बचाने के लिए उसकी हत्या करने का निश्चय किया। जिराण्डिस्ट सदस्यों के संबन्ध में कुछ गुप्त संवाद देने के बहाने इसने उसके कमरे में प्रविष्ट होकर उसे चाकू से घायल कर दिया—व स्वयं भी फाँसी की शिकार बन गई। आवेग शील कार्डे को यह विश्वास था कि मराट की मृत्यु से पर्वतीय दल का पतन हो जायेगा, परन्तु यह उसकी गलत धारणा थी। इससे उसके अत्याचारों में अधिक से अधिक वृद्धि हुई। प्रसिद्ध ऐतिहासिक लॉमर्टायन कहते हैं:—"यह प्रतीत होता है कि इसके चाकू से फ्रांस की रक्त शिरा को

खोल दिया गया"। जिराण्डिस्ट दल के प्रमुख नेता व भविष्यवक्ता हुर्गनियाड ने जब मराट की मृत्यु का समाचार सुना और इस कुमारी को उनके कारावास मे पाया तो कहा--"यह कुमारी हमारा ध्वंस कर रही है और बता रही है कि मरना कैसे चाहिए"। यह शिक्षा कैसे मिली--यह हम आगे देखेंगे।

१०—आतंक का राज्य

(क) महान् जनरक्षा-समिति और उसके सिद्धान्त :— विपत्संकुल फ्रांस की आंतरिक अवस्था, विद्रोह और वैदेशिक आक्रमणों की समस्या को हल करने के लिए एक शक्तिशाली कार्यकारिणी समिति की आवश्यकता थी। राष्ट्रीय संसद् ने जनरक्षा समिति का पुनर्गठन करके उसे "महान् जनरक्षा-समिति" का नाम दिया। पूर्वतम विधान को स्थगित कर इसे ही सर्वोच्च अधिकार दिये गये। एक वर्ष तक ये १२ सदस्य-जिनमें रॉबस्पीयर प्रमुख था, सर्वोच्च सत्ताधिकारी के रूप में फ्रांस के जनगण और संपत्ति के स्वामी बने रहे। ये आतंक से शासन चलाते थे, इसी लिए इनके राज्य को "आतक का राज्य" कहा जा सकता है। पूंजीपतियो पर कर लगाना, बेकारी का नाश करना, लोगों को काम व उपयुक्त वेतन देना, रोटी का न्यूनतम मूल्य निर्धारण करना एवं उद्योग व व्यवसाय का जनहित के लिए नियंत्रण आदि इस समिति की नीति थी। इसके सदस्य चाहते थे-फ्रांस में एकता व सुरक्षा को संगठित करके अपने प्रभाव को बढ़ायें और जनसाधारण की सहानुभूति प्राप्त करें। पेरिस नगर की खाद्य वितरण व्यवस्था का भार भी इनने अपने पर लिया, जिससे राजधानी पर इनका अत्यन्त आरोप पड़ा। जिराण्डिस्ट दल की धमकी का उत्तर देते

हुए डेन्टन ने कहा था—"विप्लव की स्रष्टा पेरिस नगरी ही है, जब यह मृत हो जायेगी तो विप्लव का अंत हो जायेगा"। प्रो० मैथूज़ कहते हैं—"इस समिति के सदस्य शान्ति के पीछे दौड़ते थे, अशान्ति के पीछे नही"। इसके सदस्य यह विश्वास करते थे कि विप्लव का विरोध करना एक महापाप है—जिसका दंड मृत्यु है एवं फ्रांस-वैदेशिक आक्रमण, आंतरिक अराजकता या अशान्ति से तभी बच सकता है, जबकि आंतरिक विरोधीदल का आतंक और बलिदान के द्वारा दमन किया जाये। फ्रांस की जनता ने विवश होकर इनका समर्थन किया।

(ख) नृशंस हत्याकांड :—सुव्यवस्थित आतंक की सबसे पहली शिकार स्वर्गीय लुई षोडश की महारानी थी। मृत राजा के अष्टवर्षीय पुत्र को यूरोपीय राष्ट्रसंघ ने फ्रांस का राजा स्वीकार कर लिया था। इससे गणतंत्रवादियों का विक्षोभ और भी अधिक बढ़ गया। सत्य ही है—संकट कभी अकेला नहीं आता। रानी के विपरीत लड़के के साथ चरित्र-हीनता का आरोप लगाया गया व नौ मासकी बन्दी अवस्था के अनन्तर विशेष विप्लवी न्यायालय द्वारा उसे फांसी का दंड दिया गया। न्यायालय में रानी ने कहा—"मैंने अभियोग का कोई उत्तर नही दिया, क्योंकि प्रकृति भी इस अभियोग की माँ के विरुद्ध मानने को तैयार नहीं है। मैं आप से अपील करती हूँ कि आप इसका निष्पक्ष निर्णय करें"। उस शोकग्रस्त विधवा राजरमणी की अपील ने जनता को इतना अधिक प्रभावित किया कि न्यायाधीश को १५ मिनिट में ही विचार समाप्त कर दंड घोषित कर देना पड़ा। वृहत् जन-समूह के समक्ष १६ अक्टूबर १७९३ को इसे फांसी लगादी गई—जिसका शारीरिक सौन्दर्य एक दिन भरसालिस के प्रासाद का आकर्षण था। रानी के चरित्र के दोष हम पहले ही देख चुके हैं, परन्तु उसमें धैर्य,

वीरता, सहिष्णुता एवं अदम्य साहस आदि अद्वितीय गुण भी थे। इस संबन्ध में हैजन का कथन है कि "इतनी शोकपूर्ण घटनायें इतिहास में अत्यन्त विरल हैं"। रानी भविष्य के इतिहास में व आज भी लोगो की सहानुभूति व संमान प्राप्त कर रही है।

१५ दिन पश्चात् जिराण्डिस्ट दल के २० नेताओं का बलिदान हुआ और प्रतिदिन सैकडों व्यक्ति अपने रक्त से "गिलोटिन" नामक फाँसी के यंत्र को धोने लगे। सबसे प्रमुख व्यक्ति मदम रौलाँ थी—जिसके विरुद्ध जिराण्डिस्ट दल के मित्र होने का अभियोग था। यह रमणी फ्रांसीय विप्लव के इतिहास का एक प्रधान अंग है—जिसकी महत्वपूर्ण भावधारा व सिद्धान्त, आवेगपूर्ण व चिन्तित जनता पर अधिक प्रभाव डालते थे। आज भी फ्रांस के इतिहास में एक स्मरणीय घटना-जो कि उसने बलिदान के मंडप में कहा था—सर्वजन विदित है। जब उसका शिर धड़ से अलग होने ही वाला था, तो इसकी आँखें स्वाधीनता की प्रतीक एकमूर्ति पर पडी व इसने चिल्लाया—"आह! स्वाधीनता! क्या क्या अत्याचार तेरे नाम पर किये जा रहे हैं"। स्वाधीनता, धर्म और न्याय के नाम पर इतिहास में सब से घृणित अत्याचार और अन्याय इस काल में हुए।

(ग) *विप्लवी पंचांग* :—जब विप्लवी न्यायालय गणतंत्रीय शत्रुओ के नाश में व्यस्त था, तो संसद् ने प्राचीन संस्थानों और रीतियो का सुधार करना प्रारंभ कर दिया। राजा व कुलीन वर्ग ने अपनी शक्ति और जनता को दास बनाने के लिए जो कुछ भी किया था, लोग उससे घृणा करने लगे एवं पुरातन पद्धतियों का अवसान करके पृथ्वी पर एक नवीन मार्ग का परिचालन किया। विश्व के गणित और विज्ञान

शास्त्र मे एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाने के लिए दशमलव-प्रणाली के नाम से नांपने व तोलने की एक नवीन प्रणाली राष्ट्रीय संसद् द्वारा प्रारम्भ की गई। नूतन संवत्सर के विषय मे तो हम ऊपर प्रकाश डाल ही चुके हैं। समय-विभाग के लिए एक नवीन पंचांग प्रारम्भ किया गया—जिसके अनुसार वर्ष के १२ मासों के भिन्न भिन्न नाम रखे गये। हेमन्त काल व अक्टूबर को भेण्डिमैर, नवम्बर को ब्रूमेर, दिसम्बर को फ्रीमैर शीतकाल व जनवरी को नीवोष, फर्वरी को प्लूवोष, मार्च को भेण्टोज, वसन्त व अप्रेल को जर्मिनल, मई को फ्लोरियल, जून को प्रैरियल, जुलाई व ग्रीष्म को मेसिडार, अगस्त को थर्मीडार, एवं सितंबर को फ्राक्टीडार के नाम से व्यवहृत किया। 'एक सप्ताह के स्थान पर दशाह और दिनो का नाम प्रथमा, द्वितीया, तृतीया आदि रखा गया। इसी तरह दिन को भी २४ घण्टो के स्थान पर दश भागों में ही बांटा गया। ईसाई धर्म को नष्ट करने के लिए और भी अनेक प्रयत्न किये गये-जिनमें रविवार, साधु संतों के स्मृति दिवस और उत्सवों को हटाकर एक धर्मनिरपेक्ष पंचाङ्ग का प्रचलन सबसे प्रमुख है। वर्षा के अन्त में ५ दिन बढा कर १-मेधा, २-श्रम, ३-महान्-कार्य, ४-पुरस्कार व ५-संमति की पूजा के लिए क्रमशः निर्धारित किये व अंतिम दिन प्रत्येक नागरिक को न्यायाधीशों व शासन के सम्बन्ध तक में भी पूर्ण प्राकाशनिक, लेख संबंधी व वाचिक स्वतन्त्रता दी गई।' प्रारम्भिक शिक्षा के प्रचार के लिए योजना बनाई गई एवं लाभ को मर्यादित करने के लिए अनेक कानून बनाये गये। संरक्षकों व घड़ीसाज को क्रमशः यह आदेश दे दिया गया कि वे अपने बच्चो को इसी पंचाङ्ग का अभ्यास करावें व घडी में पुरातन व नूतन दोनों समयों के निर्देशक दो चक्र रखे। यह पंचांग १२ वर्ष तक चलता रहा

एवं अभ्यस्त वृद्ध पुरुषों के लिए अत्यन्त कष्टदायक सिद्ध हुआ।

(घ) ईसाई धर्म के अवसान के प्रयत्न—रानी के बलिदान के अनन्तर संसद् ने फ्रांस के राजाओं की समाधियों को सैन्ट डेनिस नामक स्थान में ध्वस्त करने की आज्ञा दी। क्षुब्ध पेरिस जनता इस आदेश के क्रियान्वयन के लिए अग्रसर हुई। समाधियों को छिन्न भिन्न कर उनकी भस्म को उड़ा दिया गया। यह उद्विग्न जनता का वेग समस्त देश में व्याप्त हो गया और सर्वत्र राजकीय और कुलीन वर्ग के चिन्ह-स्वरूप अतीत की प्रतीक मूर्त्तियों और स्मारको के टुकड़े २ कर दिए गए। इसके पश्चात् विप्लवियों ने स्वर्गीय दैवी सत्ता पर आक्रमण किया एवं पेरिस के स्वशासित जिला शासन के उच्च अधिकारियों ने घोषणा की कि जब तक स्वर्ग व मर्त्य के राजा (अर्थात् इसाई धर्म के प्रति लोगो का अंध विश्वास) का अवसान नहीं हो जायेगा—विप्लव का अंत नहीं होगा। राष्ट्रीय संसद् द्वारा निर्मित एक नियम द्वारा ईसाई धर्म के पालन को निषिद्ध करने का एक निष्फल प्रयत्न किया गया एवं स्वशासित जिला शासन के नास्तिको ने इसे पादरियो द्वारा पूर्ण कराने की योजना बनाई। तदनुसार पेरिस नगर के पादरी गोविल को पदत्याग के लिए वाध्य किया गया और उसके अनुकरण पर निम्न पुरोहितो ने भी ऐसा ही किया। परिणामतः पेरिस व अन्य प्रमुख नगरों की गिरिजाये प्रतिबद्ध और उनकी सम्पत्ति बलात् अधिकृत हो गई। गिरिजा के घंटे तक को जला कर सिक्का अथवा तोप बना लिये गये, ईसाई धर्म माताओं की मूर्त्तियाँ भी नष्ट कर उनके स्थान पर मराट और अन्याय देशभक्तों की मूर्त्तियां स्थापित की गईं। पार्थिव मुक्ति अब शूलविद्धता की अपेक्षा गिलोटिन से समझी जाने लगी। इसीलिए इसे अब पवित्र

बलिदान कहा जाने लगा। पुरातनधर्म के प्रतीको को छिन्न भिन्न कर उन पर लिखा दिया गया—'मृत्यु ही है—वस्तुतः चिरनिद्रा"। उग्र जनता के अनेक सदस्यों ने यह प्रस्ताव भी प्रस्तुत किया कि गिरिजा की उन्नत मीनारो को तोड़ दिया जाये, क्योंकि सामान्य भवनों की अपेक्षा उन्नत होने के कारण ये समानता के विपरीत सिद्धान्तों का संदेश देती हैं।

(ङ) यथार्थ की पूजा का प्रवर्त्तन—(१० नवम्बर १७६३) इन सब कार्यकलापों से भी अधिक आश्चर्यमय था—यथार्थ की देवी की जनता द्वारा पूजा। पेरिस शहर की पुरातन गिरिजा नॉतरदम को नवीन यथार्थ देवी के पूजा-मंदिर के रूप मे परिणत किया गया व इसका उद्‌घाटन एक विशाल जनसमूह के समक्ष एक महान प्रदर्शन के साथ हुआ—जो कि आज भी स्वाधीन युग की एक महान् घटना कही जाती है। नाटकीय नर्त्तकी मेलार्ड गणतंत्र की पताका के तीन रंगी वस्त्र पहन कर स्वाधीनता की वेदी पर यथार्थ की देवी स्वरूप बैठी—जहाँ पहले पवित्र ईसाई धर्म माँ विराजती थीं। यही सहस्र लोगों की पूजा ग्रहण करने लगी।

पेरिस नगर का अनुकरण करके फ्रांस में इसी प्रकार के यथाथ-मन्दिरों की शाखा प्रशाखाएँ पुरातन गिरिजाओं के स्थान पर प्रतिष्ठित की गईं। कैथोलिक पादरियों के पवित्रपूजा पात्रो को जलाकर नष्ट कर दिया गया। प्रतिदश दिन पश्चात् रविवार के स्थान पर प्रतिदिन इसी देवी की पूजा होने लगी। पूजा से पूर्व नगर के प्रमुख नागरिक पवित्र वेदी से लोगो को गणतंत्र की महत्त्वपूर्ण घटनाओं से परिचित कराते थे और बताते थे कि वे युगान्तकारी काल मे रह रहे हैं—जिसमें न कोई स्वर्ग का अधिकारी है, न राजकीय अत्याचारों के ही चिन्ह हैं।

(च) हीबर्ट और डेन्टन के पतन :—(मार्च-अप्रेल १७९४) यथार्थ की पूजा की घोषणा स्वशासित जिला शासन के अधिकार का उच्च शिखर था। विवश राष्ट्रीय संसद् के सदस्यों ने इसके कार्यकलापों को अनुमोदित किया और किंकर्तव्यविमूढ जनरक्षा समिति ने भी उनके अन्याय और अत्याचारों को सहा। परन्तु समिति का प्रधान नायक रावस्पीयर अत्यन्त असन्तुष्ट हुआ। पहला कारण यह था कि उसका स्वयं का एक धर्म था—जिसे वह यथार्थ देवी की पूजा से उत्तम मानता था व फ्रांस की जनता पर लागू करना चाहता था। जनरक्षा समिति के अधिकृत होने के कारण स्वशासित जिला शासन के उत्कर्ष को यह एक शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी समझने लगा था।

उपर्युक्त घटना के—जिसका हम वर्णन कर चुके हैं—समय पर्वतीय दल तीन भागों में विभक्त हो गया। प्रथम का नेता हीबर्ट, दूसरे का रावस्पीयर एवं तीसरे का डेन्टन था—जो स्वशासित जिला शासन का सबसे अधिक वाचाल और पेरिस जनता को उत्तेजना देने वालों में प्रमुख था। हीबर्ट ने एक निम्न और निन्दापूर्ण समाचार पत्र "पेरी डुचेसनी" के नाम से निकाला था व यह उसका साहसी और आवेगशील संपादक था। यह समाचार-पत्र आतंक के राज्य मे जनता में अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ। यह और इसके समर्थक फ्रांस को साम्यवाद एवं नास्तिकता के मार्ग पर एक नवीन समाज के रूप मे परिवर्त्तित करना चाहते थे। (२) डेन्टन—जिसे हम एक साहसी नेता के रूप में देख चुके है, अब वह संकीर्ण या सहिष्णु दल का समथक बन गया एवं आतंक के प्रतिरोध के लिए आंदोलन का प्रवर्त्तक हो गया। इसने कहा—"संकट के समय जनता पर नियंत्रण करने के लिए आतंक की अत्यन्त आवश्यकता है, परन्तु शांति

के समय यह एक घृणित अस्त्र है"। इसका यही प्रयास था कि शनैः २ आंतक को रोक दिया जाये, जिस तरह विदेशी शत्रु का पलायन एवं आंतरिक विद्रोह का दमन होता जाये। इसके साथ २ इसने सदस्यों के क्षमा-भावों को हृदय में स्थान देने का आवेदन किया। ३—रॉब्सपीयर हीबर्ट और डेन्टन दोनों दलों के मध्यवर्ग पर चलता था। डेन्टन की सहनशीलता, हीबर्ट की नास्तिकता और साम्यवाद की इसने तीव्र निन्दा की और कहा-"नास्तिकता एक कुलीनता के समान है। वस्तुतः परमात्मा ही इस प्रकार की वस्तु है—जो निर्दोषी पर होने वाले अत्याचारों को देखता है और दोषी को दंड देता है। वही संपूर्ण सत्ता है"। दोनों दलो का दमन करके यह अपनी शक्ति को बढ़ाने के यत्न में था। स्थानाभाव के कारण इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि सबसे पूर्व जनरक्षा समिति ने १३ मार्च १७९३ में हीबर्ट को बंदी बनाने की घोषणा की व ११ दिन पश्चात् उसे फॉसी दे दी गई। इसके पश्चात् भयावह सहिष्णु नीति के प्रतिनिधि डेन्टन को बंदी बना लिया गया। उस पर प्रतिक्रियाशील व्यक्तियो के सहयोग का आरोप लगाया गया। जब उनके एक मित्र ने उनके अध्ययन कक्ष में उन्हें वंदी बनाने का संवाद दिया—तो डेन्टन ने उससे पूछा—"अब क्या करना चाहिए? मित्र ने उपदेश दिया कि "आप प्रतिरोध करिये"। परन्तु डेन्टन ने कहा—"प्रतिरोध करने का अभिप्राय है, रक्त की नदी बहाना, मैं अब थक चुका हूँ। मैं चाहता हूँ मै स्वयं ही दूसरों के बलिदान से पूर्व अपना बलिदान कर दूँ"। उसे देश से पलायन का परामर्श दिया गया—पर उसने कहा—"कहाँ जायेंगे, हम तुम्हारे देश को जूतों की तली बना कर नहीं लेजा सकते? और फिर कहा—"जनरक्षा-समिति का इतना साहस नही होगा"।

परन्तु उसका साहस था। दूसरे दिन वे वंदी हो गये—जहाँ

उसने कहा—"एक वर्ष पूर्व हम ही ने विप्लवी न्यायालय की स्थापना की थी, अब हम ईश्वर व जनता से इसके लिए क्षमा की भिक्षा माँगते हैं"। फिर कहा—"मैं सब कुछ भयानक और अव्यवस्थित रूप से छोड़ कर जा रहा हूँ। सदस्यो में एक भी व्यक्ति शासन से परिचित नहीं है, परन्तु रॉवस्पीयर भी हमारी ही गति पायेगा, मैं उसे खींच कर मृत्यु की ओर ले जा रहा हूँ"। बलिदान की भूमि में इसने स्वयं को संबोधित करते हुए कहा—"रे डेन्टन ? दुर्बलता पर नियंत्रण करो"। आगे चल कर जल्लाद से उसने अंतिम शब्द कहे—"मेरा मस्तक जनता को दिखलाना, यह दिखलाने के उपयुक्त है, क्योंकि उसे प्रत्येक दिन ऐसे मस्तक देखने को नहीं मिलेंगे"। इसकी मृत्यु के परिणाम के संबंध में हॉलैंड रोज़ ने कहा—"डेन्टन के पतन से फ्रांस एक विलक्षण, अनुभवी और दूरदर्शी नेता-जिसने कि विप्लव की गति का दमन किया था—से वंचित हो गया। मृत्युके अन्तिम क्षण तक इसने निरर्थक अत्याचारों और यातनाओ का तीव्र विरोध किया। ऐसी विचारहीन गलत कूटनीति का—जिससे यूरोप के सारे राष्ट्र फ्रांस के विरोधी होगये-उसने तीव्र विरोध किया"। उसक गभीर अनुरोध से उसके मस्तक को उन्नत स्थानपर रखकर जनता को दिखाया गया। इस प्रकार नास्तिक और सहिष्णु दलो के ध्वंस से रावस्पीयर उच्च अधिकारी बन गया एवं उसका अभीष्ट सिद्ध हो गया।

(च) *परमेश्वरकी पूजा:*—(८ जून १७९४) रावस्पीग्रर का प्रथम कार्य था फ्रांसकी यथार्थदेवी की पूजा के स्थान पर एक पवित्र धर्म देना। यह ईसाईवाद के अंधविश्वास के विपरीत था और यह भी विश्वास नहीं करता था कि एक राष्ट्र नास्तिकता के आधार पर जीवित रह सकता है। इसने घोषणा की—"यदि परमात्मा नहीं है, तो हमें चाहिए कि हम उसकी सृष्टि

करें"। इसी उद्देश्य से उसने एक सुन्दर और विवेचनाशील वक्तृता ७ मई १७६४ को संसद् के सदस्यो के समक्ष दी-जिसमे उसने परमात्मा की सत्ता और अविनश्वर आत्मा के संबन्ध में अपने मत को प्रकट करते हुए निम्न अतिरिक्त नियमों को स्वीकृत करने की प्रार्थना सदस्यों से की—जिनकी रचना स्टीफेन्स ने की थी—(क, फ्रांसीय जनता परमेश्वर के अस्तित्त्व को स्वीकार करती है व आत्मा को अविनश्वर मानती है। (ख) हम यह भी स्वीकार करते हैं कि परमात्मा की पूजा मनुष्य के कर्तव्य का पालन है। (ग) हम अपने निम्नलिखित प्रमुख कर्तव्यों को स्वीकृत करते है:— (१) अत्याचार और अन्याय का दमन, (२)विश्वास घातकों से घृणा व दृडव्यवस्था, (३)दुर्दशा ग्रस्तो की सहायता, (४)दलितों का उत्थान, (५)विपन्न की रक्षा, (६)सद्-व्यवहार और आचार आदि।

संसद् ने इस प्रस्ताव का अत्यन्त हर्ष के साथ समर्थन किया एवं पर्वतीय दल के संपूर्ण सदस्यो ने रॉवस्पीयर को धन्यवाद दिया। फ्रांस के गांवों २ मे परमात्मा के अस्तित्त्व और अविनश्वर आत्मा के प्रति विश्वास का प्रचुर मात्रा में प्रचार हो गया। ८ जून १७६४ में इस नवीन धर्म की पूजा का समारोह मनाया गया—जिस तरह यथार्थ की पूजा का प्रारंभ हुआ था। विख्यात कलाकार डेविड ने—इस अद्भुत समारोह को सुसज्जित किया। ट्वीलर्स राजप्रासाद के सामने एक विराट् अर्द्ध-चंद्राकृति का रगमंच था जहॉ एक महत्त्वपूर्ण जुलूस में संपूर्ण सदस्य धार्मिक विश्वास व परमेश्वर की पूजा के प्रतीक पुष्प और सस्य हाथ में लिए हुए संमिलित हुए। रॉवस्पीयर इस दिन के उत्सव का सभापति था—जिसे सर्वसंमति से इस नवीन धर्म का सच्चा पुरोहित माना गया। हजारो शब्दो में निर्मित एक स्तोत्र को गाते हुए इस धर्म की प्रतिष्टा की गई।

इसके दो दिन पश्चात् रॉब्सपीयर ने संसद् के समक्ष एक विशेष अधिनियम प्रस्तुत किया—जिसका नाम २२ प्रैरियल (१० जून) का विशेष नियम था। इस अधिनियम के द्वारा अपराधी व्यक्ति को वकील के परामर्श और साक्षी प्रस्तुत करने से वंचित किया गया एवं न्यायाधीशों को यह अधिकार दिया कि वे किसी भी प्रकार से नैतिक, भौतिक अथवा वास्तविक प्रमाणों से अपराध सिद्ध कर सकेंगे। सरकार का विरोध करने में मृत्यु दंड निश्चित था। अपराधी है या नहीं? इस प्रश्न का निर्णय अंत:करण की साक्षी से करते थे। संक्षेप में फ्रांस की जनता का जीवन मरण रॉबस्पीयर के हाथ में था एवं संसद् व समिति के सदस्य भी इस अधिनायक के प्रभाव से बच नहीं सकते थे।

(छ) *रॉबस्पीयर का पतन*—उपर्युक्त विशेष नियम के प्रयोग से १३ मास पूर्व तक १२०० व्यक्तियों को व उसके पश्चात् ४९ दिन में १३७६ मनुष्यों को स्वाधीनता की बलि वेदी पर चढा दिया गया था। केवल ७ और ८ जुलाई को ही १५० व्यक्तियों को फाँसी दे दी गई थी। ऐसे निर्दय, निर्मम और नृशंस अत्याचार से आतंकित होकर लोग रॉबस्पीयर के पतन के लिए संघ बद्ध हो गये। इन हत्याकांडों की रोमांचकारी घटनाओं का विख्यात अंग्रेज उपन्यासकार चार्ल्स डिकन्स ने अपनी "टेल ऑफ् टू सिटीज़" नामक कहानी में विस्तार से वर्णन किया है। तात्कालिक न्यायाधीशों को सैकडों अपराधियों के एक साथ उपस्थित होने के कारण निर्णय बोल कर सुनाने तक का अवसर नहीं था, अपि तु उनका शिर हिलाने में ही हजारों जीवनों का अंत हो जाता था। फ्रांस का ऐसा कोई स्थान नहीं था—जहाँ ये निरपराध और संदिग्ध व्यक्ति न भरे हों। जनता का प्रसिद्ध

उत्पीडक सरकारी वकील फूकियर तिनबिल एक प्रकार का विराट् दानव था। अर्थ, कुल, मेधा और ज्ञान को अपराध का प्रमुख जन्मदाता माना जाता था, क्योंकि अर्थ रहने व कुलीनता से लोगों को संघबद्ध किया जा सकता था, मेधा या ज्ञान से शासन के विरूद्ध आवाज उठाई जा सकती थी। विप्लवी न्यायालय के अध्यक्ष ने एक अपराधी से पूछा—"क्या आप कुलीन हैं"? उत्तर मिला—"हाँ"। न्यायाधीश ने निर्णय दिया—"पर्याप्त है—दूसरे को लाओ"। गाडी भर भर कर न्याय प्रासाद के सामने से बलिवेदी पर लोगों को ले जाया जाता था और मृत्यु दंड से दंडित व्यक्तियो के नामों की डूँडी (उद्घोषणा) पिटवाई जाती थी।

यह अत्याचार अधिक दिन चलने वाला नहीं था। इसने संसद् के सदस्यो में आतंक को नष्ट करने के लिए एकता की सृष्टि की। २७ जुलाई १७६४ (६ थर्मिडार) फ्रांस के इतिहास मे एक महत्त्वपूर्ण दिन है—जब रावस्पीयर एक गंभीर भाषण देने खड़ा हुआ, तो एक षड्यन्त्रकारी सदस्य ने कहा—"डेन्टन का रक्त इसका गला घोंट रहा है"। अंत मे संसद् ने इसे व महात्मा जस्ट को बंदी बनाना स्वीकार कर लिया। पर अब भी इसे मुक्ति की आशा थी, क्योंकि विप्लवी न्यायालय इसके अनुकूल था, स्वशासित जिला शासन इसका समर्थक था, इसी लिए इसके बचने के उपाय खुले थे। परिणामतः एक विद्रोह प्रारंभ हो गया। स्वशासित जिला शासन के सशस्त्र सदस्यों ने कारागृह तोड़ कर इसे मुक्त कर दिया व नगर के प्रमुख भवन में ले गये। विवश संसद् ने इसे नियम से वहिष्कृत घोषित कर दिया जिससे अब विचार का कोई प्रयोजन ही नहीं रह गया। उसी दिन रात के दो बजे एक सामान्य संघर्ष के अनन्तर प्रमुख विद्रोही नेताओ के साथ होटल डी० विले में रॉवस्पीयर वंदी हो

गया। रॉवस्पीयर की ठोडी पहले ही गोली से व्रण पूर्ण हो चुकी थी, उसे घसीट कर संसद् के संमुख लाया गया। परन्तु सदस्यों ने अपवित्रता की आशंका से उसे नियम रचना की पवित्र भूमि संसद् मे लाने से निपिद्ध कर दिया। दूसरे दिन ता० २८ जुलाई १७६४ को अन्य प्रमुख सहयोगियों के साथ इसे फॉसी दे दी गई। इस प्रकार इसके साथ साथ आतंक के राज्य का भी अंत हो गया।

रॉवस्पीयर स्वाधीन फ्रांस का एक असाधारण और स्वेच्छाचारी नेता था। विख्यात फ्रांसीय ऐतिहासिक ओलाड का कथन है—"इसके गुण ऐसे नहीं थे—जिनसे कि यह उग्र जनता का नेतृत्त्व कर सकें"। यह एक चतुर राजनीतिज्ञ, कुशल और कुटिल कूटनीतिक था। यह फ्रांसीय चरित्र, स्पष्टवक्ता एवं राष्ट्रीयता के विपरीत था। संक्षेप में रॉवस्पीयर एक कपटी और आडंवरी था—जिसने आडंवर को ही शासन की प्रणाली बना लिया था। धर्मनिष्ठा इसका मूल अवलंब था व सर्वदा इसके नाम व नैतिक प्रधानता से लोगों को आकर्षित करना इसकी एक चाल थी। यह एक श्रेष्ठ वाग्मी, विवेचनापूर्ण, तर्कसंगत व शास्त्रीय वक्ता था। वह कहता था—"मैंने कभी नीचता और असाधुता का मार्ग नही ग्रहण किया"। लोग भी इसे सच्चरित्र कहते थे। इसने संपूर्ण जीवन में धर्मनिष्ठात्मक राज्य-स्थापन का प्रयास किया एवं भावप्रधान दार्शनिक रूसो के शास्त्रीय मत को क्रियान्वित करने के लिए अनेक नियम प्रवर्त्तित किये। उसकी इच्छा थी कि संसार में धर्मनिष्ठा के महान् आदर्श की स्थापना हो। यदि धर्मनिष्ठा की परिभाषा और उसके प्रयोग की प्रणाली मानवतापूर्ण है, तो यह फ्रांस ही नहीं, अपितु संपूर्ण विश्व को एक नवीन प्रेरणा दे सकती थी। पर उसका यह स्वप्न पूरा न हो सका।

(ज) *आतंक के राज्य का प्रभाव*—फ्रांस पर इस आतंक के राज्य का प्रभाव आतंककारियो की आशा के अनुरूप ही हुआ। विदेशो में इसका परिणाम विपरीत एवं विप्लव के लिए हानि कारक हुआ। सहिष्णु व उदार दल अब संकीर्णवादी हो गया और नवीन परिवर्त्तनो व सुधार-प्रस्तावों के सभी शत्रु बन गये। रक्त पिपासु विप्लवी अपने मित्रो की दृष्टि मे घृणित हो गये और जनता के मन में विप्लव शब्द का अर्थ एक नृशंसता व हत्याकांड से परिपूर्ण बीभत्स कहानी हो गया। आज भी विप्लव का अर्थ फ्रांस के इतिहास में निर्मम और निर्दोष जनता का निरर्थक बलिदान है। पर आंतरिक विद्रोहो, गृहयुद्धों और वैदेशिक आक्रमणो का अवसान उस संकटतम समय में इन्ही आतंकवादियो के हाथों से हुआ। आतंक के परिणाम स्वरूप जो हत्याकांड हुआ—उससे अनेक मनीषी, ज्ञानी, विद्वान्, अनुभवी युवक व उद्यमी नेताओं के बलिदान से—देश नेतृत्त्व से वंचित हो गया। इस लिए हम कह सकते हैं कि—जब अलौकिक शक्तिपूर्ण अधिनायक नेपोलियन का उद्भव हुआ, तो उसके प्रतिरोध के लिए कोई भी योग्य व्यक्ति नहीं रह गया था। आतंक के राज्य ने हमें ऐसे देशभक्त और वीरों के चरित्र की शिक्षा दी है—जो फ्रांस ही नहीं, अपि तु विश्व के इतिहास मे अमर है।

११—सामाजिक सुधार—राष्ट्रीय संसद ने समाजवादी नीति को ग्रहण कर कुलीनो की संपत्ति को हस्तगत कर लिया और राष्ट्र की उन्नति के लिए उसके छोटे छोटे टुकड़े करके उसे अल्पमूल्यो में बेच दिया। सामन्तप्रणाली के अवसान के समय क्षति पूर्त्ति की जो प्रतिज्ञा थी—उसे निषिद्ध कर दिया। मराट ने कहा—"धनियों ने सत्य ही दीनो का रक्त इतनी मात्रा में चूसा कि अब उनमें भयानक प्रतिशोध की भावना जागृत हो गई है"।

आर्थिक संकट को दूर करने के लिए संसद् ने जनता से ऋण लेना प्रारंभ कर दिया, जिसे "राजधानी कर" कहा गया। जीविका निर्वाह के व्यय को न्यूनतम करने के लिए अधिकतम मूल्य नियंत्रित किया गया। दैनिक वेतन निर्धारित किया गया व समानता का प्रयोग किया गया। यहाँ तक कि तत्कालीन राजकीय पत्र जात में रानी की समाधि के व्यय के संबन्ध में इतना ही लिखा गया था—"५ फ्रेंक प्रधान नागरिक की विधवा स्त्री की समाधि के लिए" वेषभूषा में परिवर्त्तन हुआ—सुन्दर और मूल्यवान् पोशाकों से लोग घृणा करने लगे। पुराने युग के—जो मोजे और बिरजस् चली आ रही थी—उनके स्थान पर श्रमिक वर्ग के ढीले पायजामे को व्यवहार में लाया गया। श्रमिकों की वेषभूषा अब जनसाधारण की वेषभूषा हो गई।

१२—संविधान निर्माण

(क) *प्रतिक्रिया*—रॉबस्पीयर का पतन एक प्रतिक्रियावादी शान्ति के विजय से हुआ और आतंक के राज्य की इति श्री हो गई। इन प्रतिक्रियावादियों ने संसद् के संमुख आतककारियों को दंड देने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। जैकोबिन क्लब, और जनता को उत्तेजित करने वाले विभिन्न विप्लवी दल ध्वस्त और लियन्स शहर के निर्मम हत्याकारी कैरियर को फांसी दे दी गई। बहिष्कृत जिराण्डिस्ट दल के सदस्यों को पुनः आमत्रित किया गया। ईसाई धर्म की पुनः स्थापना हो गई एवं मराट की मूर्ति को ध्वस्त कर नाली में गिरा दिया गया। संदिग्ध दोपारोपण अधिनियम तोड़ दिया गया। विप्लवीन्यायालय को प्रतिबद्ध कर दिया गया और विप्लव के प्रमुख स्थान को अब मैत्री स्थान कहा गया। संसद् की मूल नीति अब आतंकवादी राज्य सत्ता का ध्वंस हुई और सहिष्णुदल अब अग्रणी हो गया।

(ख) *तृतीयवर्षीय संविधान*——१७६२ में निर्मित राष्ट्रीय संसद् का प्रथम कार्य विधान निर्माण था। १७६३ में संसद् द्वारा रचित स्वाधीनता के प्रथम वर्ष का विधान आंतरिक अराजकता और वैदेशिक शत्रु के आक्रमण के कारण लागू नहीं किया गया था। अब गणतंत्र के आधार में संसद् की मध्यम श्रेणी के तत्त्वावधान मे तृतीयवर्षीय संविधान बनाया गया—जिसमें गणतंत्र को दृढ़ और राजतंत्र के पुनः स्थापन के प्रतिबंध की भावनायें थीं।

सर्वोच्च विधान निर्माण के निमित्त संगठित होने वाली राष्ट्रीय विधान सभा के निर्माण के लिए संसद् ने निम्नलिखित नियम बनाये। इस सभा में दो समितियां रहेगी–१–प्रवर-समिति, २–पंचशत समिति। प्रवर-समिति मे २५० सदस्य निश्चित थे–जो ४५ वर्ष से अधिक आयु वाले, विवाहित अथवा विधुर होने चाहिऐं। पंचशत समिति मे ३० वर्ष से अधिक आयु वाले ५०० सदस्य हो सकते थे। विधान सभा के सदस्य २१ वर्ष से अधिक व प्रत्यक्ष कर देने वाली जनता द्वारा निर्वाचित होगे। सार्वजनिक मताधिकार के स्थान में संपत्ति के अधिपतियो को मताधिकार दिया गया—जिससे कि पेरिस की जनता का प्रभाव सदस्यों के चुनने में न पड़े और पुनः आतंक के राज्य की सृष्टि न हो जाये। पंचशत समिति का कार्य कर लगाना, नियमो व अधिनियमों को स्वीकार करना था। प्रवरसमिति इन्हे संशोधित करती थी और कूटनीतिक आवेदन प्रति निवेदन सुनने व युद्ध घोषणा का अधिकार रखती थी। नियम स्वीकार करने के लिए दोनो समितियो की संमति अनिवार्य थी। विधान सभा के एक तृतीयांश सदस्य प्रतिवर्ष विश्रम ग्रहण करते थे।

सर्वोच्च कार्यकारिणी समिति में ४० वर्ष से ऊपर की आयु के ५ संचालक नियुक्त होते थे–जिनमें एक को प्रतिवर्ष लाट्री के

निर्णय से विश्राम ग्रहण करना होता था। पंचशत समिति इन पाँचों पदों के लिए प्रति दश की गणना से ५० व्यक्तियों को अपनी सिपारिशों के साथ प्रस्तावित करती थी—जिनमें ५ को प्रवर समिति नियुक्त करती थी। यही संचालन समिति मंत्रियों की नियुक्ति, आंतरिक शासन व सैनिक प्रवंध सञ्चालन और वैदेशिक नीति निर्धारित करेगी। परन्तु संधि अथवा युद्ध की घोषणा, नियम निर्माण, कर प्रवर्त्तन और निषेधाधिकार इसे नहीं थे।

स्थानीय शासनप्रवंध केन्द्रीय शासन के आधार पर ही बनाया गया एवं प्रदेशों व जिलों मे निर्वाचन समिति के स्थान पर सञ्चालक द्वारा नियुक्त राजकीय अधिकारियों द्वारा शासन चलाया जाने लगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तृतीयवर्षीय संविधान ने प्रथम संविधान की दो बड़ी न्यूनताओं को दूर किया—(१) कार्यकारिणी समिति की दुर्बलता, (२) विधान सभा की असीम शक्ति। पर अशान्ति और अव्यवस्था के बीज इसने भी बोये। यद्यपि फ्रांसीय ऐतिहासिक मिग्नट ने इसकी अत्यन्त प्रशंसा की परन्तु सञ्चालक व मंत्रियों की विधान सभा की सदस्यता निषिद्ध रहने के कारण कार्यकारिणी समिति और विधान सभा का जो निकट सम्बन्ध रहना चाहिए, वह इस विधान में नहीं था। एक दूसरे से पृथक् होने के कारण इन दोनों में संघर्ष होना स्वाभाविक था। साइश ने इसकी तीव्र निन्दा करते हुए कहा—"इस विधान में सब से बड़ी त्रुटि यह है कि जनता के विरुद्ध कार्य करने वाले सञ्चालक को भी विधान सभा के पास पदच्युत करने का अधिकार नहीं है"। इस विधान के सम्बन्ध में तत्कालीन एक समाचार पत्र ने कहा था—"एक कुमारी से (विधान) फ्रांसीय राष्ट्र विवाह कर रहा है,

परन्तु उसे अन्त में तलाक देना ही होगा"। ५ में से कोई भी एक सञ्चालक एक वर्ष के पश्चात् जब अवसर ग्रहण करता था, तो विधान सभा के एक तृतीयांश सदस्य भी पुनर्निर्वाचित होते थे। इससे विधान सभा की नीति कार्यकारिणी समिति की नीति से भी अधिक अस्थिर और शीघ्र बदलने वाली थी। इसी प्रतिक्रिया और विद्रोह के सम्बन्ध में हॉलेण्ड रोज़ कहते हैं—"सञ्चालन समिति और विधान सभा के संघर्ष से विधान का भंग होना अनिवार्य था। यह संघर्ष एक चतुर कूटनीतिज्ञ के अभ्युत्थान के लिए श्रेष्ठ मार्ग था"।

राष्ट्रीय संसद् इस विचार से आशंकित थी कि संगठित होने वाली विधान सभा उसके कार्यक्रमों को मान्यता नहीं देगी। इसलिए इसने एक नियम बनाया कि विधानसभा के आने वाले सदस्यों मे दो तृतीयांश पुरातन राष्ट्रीय संसद् के सदस्यों में से चुने जायेंगे व एक तृतीयांश जनता मे से निर्वाचित होगे। यदि जनता इन तृतीयांश पुरातन सदस्यों के निर्वाचन को अमान्य कर देगी तो संसद् इन्हें मनोनीत कर देगी। इस नियम का उद्देश्य था—विधानसभा में भी वर्तमान बहुमत को जीवित रखना। परन्तु इस नीति ने आतंकवादियों व राजसत्तावादियों को विद्रोह के लिए बाध्य कर दिया। ५ अक्टूबर (१३ भेण्डीमेयर) को ट्वीलर्स प्रासाद मे संसद् के सदस्यो को उग्र जनता के विद्रोह का सामना करना पड़ा। व्याकुल होकर संसद् ने सैन्य परिचालन का भार बरास व उसने सैनिक विभाग के एक साहसी व वीर तोप अधिकारी नेपोलियन को अपना दायित्व दे दिया। उसने विद्युद्गति से ४० बड़े तोपों को संसद्-भवन के चारों ओर लगवा दिया व प्रत्येक सदस्य को एक एक बन्दूक व गोली दे दी। जब जनता ने संसद् को भंग करने का प्रयत्न किया, तो नेपोलियन ने तोपें

चलाईं और कारलाइल के शब्दो मे "तोप की ध्वनि के साथ साथ विप्लव का अंत हो गया"। परन्तु यह विप्लव का अंत नहीं था, अपितु एक उसका पटाक्षेप था। ३ सप्ताह के अनन्तर २६ अक्टूबर १७६५ में राष्ट्रीय संसद् भंग हो गई।

१३—समीक्षा

संसद् ने शान्तिमय मार्ग से अभिनव पूर्णता को प्राप्त किया। हम देख चुके हैं कि इसने फ्रांस को दशमलव की तोल प्रणाली दी—जो आज विश्व के प्रायः सभी राष्ट्रों में मान्य है। राष्ट्रीयवाद के एक नवीन आदर्श का प्रचार किया। इसने अनिवार्य सैनिक सेवा के नियम को स्वीकार करते हुए राजपत्र में कहा—"नवयुवक सीमान्त के सब युद्धो मे भाग लेंगे, विवाहित पुरुष गाड़ियो और खाद्य वितरण का निरीक्षण करेंगे। महिलायें तंबू व कपड़े सॅभालेंगी एवं अस्पतालों में सेवायें करेंगी। वृद्ध नगर के प्रमुख स्थानो पर उत्साह व युक्तिपूर्ण भाषणों द्वारा सैनिकों को राजसत्ता के अंत व गणतंत्रवाद् की स्थापना के लिए उत्तेजित व संगठित करेंगे"। संसद् ने एक नियम-संग्रह (कोड) निर्धारित किया—जिसे पूर्ण करने का कार्य नेपोलियन के द्वारा हुआ व उसने पूर्ण यश प्राप्त किया। समाज-सुधार के भी कुछ नियम इस संग्रह में थे—जैसे-ऋण के लिए कारावास निषेध, फ्रांसीय उपनिवेशों में निग्रो जाति की गुलाम प्रथा का नाश, महिलाओं को संपत्ति का समानाधिकारी एवं ज्येष्ठाधिकार को निषिद्ध करना आदि। सर्वशः वेषभूषाओं और नागरिकता मे समानता व धार्मिक सहिष्णुता का प्रवर्त्तन किया। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली में आमूल परिवर्त्तन किये। डेन्टनने एक बार

कहा था—रोटी के पश्चात् शिक्षा ही जनता की प्रथम आवश्यकता है"। इसी लिए अनिवार्य, निश्शुल्क एवं धर्म निरपेक्ष शिक्षा-पद्धति प्रवर्त्तित की गई, किन्तु अर्थाभाव के कारण यह व्यापक न बन सकी। गणतंत्र मे एकता के भावों की वृद्धि के लिए फ्रांसीय भाषा को शिक्षा का माध्यम बना दिया गया। प्रत्येक व्यक्ति में राष्ट्रीयता की भावनाएं कूट कूट कर भर दी गई-जिससे यह आम धारणा हो गई कि—"प्रत्येक बालक सर्व प्रथम फ्रांस राष्ट्र की संतति व संपत्ति है, पिता माता की नही"। संसद् की अमूल्य सृष्टियों में से नार्मल स्कूल पॉलिटेक्निक-स्कूल, नियम और चिकित्सा विद्यालय आदि शिक्षण संस्थाएं एवं अद्भुतशाला राष्ट्रीय पुस्तकालय आदि ज्ञानशालाएं आज भी फ्रांस की उच्चता के शिखर बने हुए है। दुर्भिक्ष की निवृत्ति के लिए अधिकतम मूल्य नियंत्रित किया। पलायित कुलीनो की संपत्ति का राष्ट्रीयकरण किया। वस्तुतः में उसी दिन से फ्रांसीय कृषक की उन्नति प्रारंभ हो गई।

संक्षेप में संसद् ने राष्ट्र को एकता, समानता और स्वतंत्रता की क्रियात्मक शिक्षा दी एवं अपने तृतीय वर्षीय संविधान द्वारा संचालन समिति का निर्माण करके नेपोलियन के उत्थान के लिए ६ वर्ष के विप्लवी संघर्ष के पश्चात् पृष्ठभूमि तैयार की।

—※—

४—नेपोलियन

(क) भवितव्यता (१७५६ से १७६५ ई० तक)

१७६२ में प्रसिद्ध फ्रांसीय दार्शनिक रूसो ने लिखा था—"हमें यह दृढ़ विश्वास है कि यह छोटा द्वीप कार्सीका एक दिन समस्त यूरोप को चमत्कृत कर देगा"। इस भविष्यवाणी के ७वर्ष बाद–१५ अगस्त १७६६ ई० मे कार्सीका के एजासिको शहर में नेपोलियन बुनापार्टी का जन्म एक गरीब वकील के परिवार में हुआ। इसके पिता कार्लो बुनापार्टी पहले कुलीन वंश के थे; पर अब ये गरीब आमोद प्रिय व आलसी वकील थे। इसकी माता लेटीजिया अति सुन्दर, चतुर, परिश्रमी, आत्मबल-सम्पन्न व अत्यन्त अध्यवसायिनी थी। इसके १३ पुत्र थे—जिनमे ८ जीवित थे, ५ लड़के व ३ लड़की। नेपोलियन द्वितीय पुत्र था—जिसने ब्रियन और पेरिस शहर के फ्रांसीय सैनिक विद्यालय में निःशुल्क रूप से सैनिक शिक्षा प्राप्त की थी। इस समय जो पत्र इसने माता-पिता को लिखे, उनमें हम इसके दुःख, गंभीरता और महत्वाकांक्षा को देख सकते हैं। १६ वर्ष की अवस्था में यह शिक्षा समाप्त करने के बाद भैलेन्स शहर के तोपखाने का द्वितीय अधिकारी नियुक्त हुआ। नेपोलियन का एक शिक्षक उसके विषय में लिखता है—"गंभीर और अध्ययनशील नेपोलियन आमोद प्रमोद की अपेक्षा बड़े बड़े लेखकों की पुस्तकों व लेख पढ़ने को अधिक रुचिपूर्ण समझता था। यह एकान्त चाहता था। स्वेच्छाचारी, क्रोधी और अत्यन्त स्वार्थतत्पर था। यह बातचीत कम करता था, परन्तु उत्तर देने में प्रत्युत्पन्न-मति था। यह इतना आत्माभिमानी व महत्वाकांक्षी था कि उसे प्रोत्साहित करने की इच्छा स्वतः लोगो में आ जाती थी।"

युवक नेपोलियन विद्रोही साहित्य (वाल्टेयर और रूसो के) को ध्यान पूर्वक पढ़ता था। इसने "फ्रेडरिक 'महान्" का चरित्र भी पढ़ा था। नेपोलियन ने कहा—"हम यह सोचते थे, हमारा समय अत्यन्त मूल्यवान् है, उसे नष्ट नहीं करना चाहिये"। इसने माता को लिखा—"हमारे पास साधन नहीं है, पर काम अधिक है"। गणित शास्त्र, भूगोल, इतिहास मे यह बहुत अभिरुचि लेता था। इतिहास के संबंध में इसने कहा—"इतिहास सत्य का प्रकाश और अंधविश्वास का नाशक है"। इसने छोटी २ पुस्तकें लिखी—जिनमें उल्लेखनीय कार्सीका द्वीप का इतिहास भी है। इस समय यह बड़े ऐतिहासिक बनने की धारणा रखता था—फ्रांस से घृणा करता था व द्वीप के स्वतन्त्रता-संग्राम का स्वप्न देख रहा था। अवकाश का अधिकांश समय यह घर ही मे बिताता था। सम-सामयिक लेखकों के शब्दों में हम कह सकते है कि—"यह युवक अभेद्य पत्थर के समान कठोर और कठिन था, परन्तु इसके अन्दर एक ज्वालामुखी था"।

१—सेना का अधिकार

१७८६ से १७६३ तक सैनिक अधिकारी बुनापार्टी का अधिकांश समय कार्सीका द्वीप मे ही व्यतीत हुआ। फ्रांसीय विप्लव के प्रभाव ने जब कार्सीका द्वीप में भी चिनगारी लगादी, तो नेपोलियन ने फ्रांसीय राज्यपाल के विरुद्ध स्वाधीनता-संग्राम प्रारंभ किया। परन्तु कार्सीका के राजनैतिक अधिकार राष्ट्रीय परिषद् ने स्वीकृत कर लिये। निर्वासित कार्सीका द्वीप के राष्ट्रीय नेता पाउली के पुनरागमन से नेपोलियन ने उसके विरुद्ध असफल संघर्ष किया और जून १७६३ मे इसने अपने परिवार के साथ भग कर फ्रांस में आश्रय लिया—जिससे यह बाल्यावस्था में घृणा करता था।

बुनापार्टी विप्लव की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का प्रत्यक्षदर्शी था। इसीलिए इसका विश्वास था कि यदि सैनिक दो-चार सौ गोली का प्रयोग ठीक समय में करते, तो उग्र जनता का दमन होना सहज हो जाता। १७९३ ई० में तुलौन शहर में प्रतिक्रियावादी जनता का जब विद्रोह हुआ, तो इसको तोपों के अधिकारी पद पर नियुक्त किया गया और इसकी प्रथम विजय—जिसने इसे अधिक संमानित किया—वह थी—"तुलौन" पर अधिकार। इसके एक वर्ष बाद रावस्पीयर के पतन के साथ इस पर भी "जनरक्षा समिति" का रोष पड़ा। इसका २५ वां जन्मदिवस कैरी दुर्ग के बंदी जीवन में ही मनाया गया। इसने अपना मत नहीं छोडा, इसीलिए इसे शीघ्र ही जेल से मुक्त कर दिया गया और ५ अक्टूबर १७९५ में इसने राष्ट्रीय संसद् को विक्षुब्ध जनता के आक्रमण से-जिसे हम पहले देख चुके हैं—रक्षा करके यह प्रमाणित कर दिया कि उग्र जनता सर्वदा अव्यवस्थित और अनुशासन हीन होती है। शक्ति के प्रयोग से ही इसका दमन और शान्ति हो सकती है। संसद् ने इसी के पुरस्कार स्वरूप इटली में इसे फ्रांसीय सेनानायक नियुक्त किया।

२—विवाह योग

इटली यात्रा के दो दिन पूर्व नेपोलियन ने जेशोफाइन नामक एक कुलीन रमणी के साथ विवाह किया। यह महिला विधवा व दो बच्चों की मॉ थी—जो कि उससे उम्र मे भी ६ वर्ष बड़ी थी। इसका पति विवेर्नाहिश था—जो कि राजा के पलायन के समय (१७९१ ई०) मे राष्ट्र परिषद् का अध्यक्ष था। उसका बलिदान स्वाधीनता की वेदी पर आतंक के राज्य में हुआ था। नेपोलियन इसके प्रेम में पागल हो गया था और इसकी गंभीरता और महत्त्वाकांक्षा से यह महिला भी प्रभावित

हो गई थी। एक बार नेपोलियन ने इस महिला से कहा था कि "क्या संचालन समिति के सदस्य यह सोचते हैं कि हमारी उन्नति के लिए उनके आश्रय की आवश्यकता है, वे लोग सुखी और सन्तुष्ट होंगे, यदि भविष्य मे हम उनकी रक्षा करेंगे। हमारी तलवार हमारे पास है व इसके बल से हम बहुत दूर तक विजय कर सकते हैं"। यह जो महान् आश्वासन दिया था उसने जशोफाइन लिखती है—"हम को इतना प्रभावित किया कि हम यह विश्वास करने लगे कि यह पुरुष एक अलौकिक शक्तिशाली है और इसके लिए असंभव भी सम्भव है"। समय की दृष्टि से यह विवाह और इटली का सैनिक परिचालन इन दो घटनाओं का समन्वय मार्च १७९६ में होता हैं। उसके विवाह की अंगूठी में "भवितव्य" लिखा कर दिया गया था, वह अंगुलि तक ही समिति नहीं था, अपितु उसने इतिहास में स्थान प्राप्त किया और सिद्ध कर दिया कि बाधाओं के होने पर भी दृढ़ आत्मबल वाले व्यक्ति कृतकार्य हो सकते है।

(ख) संचालन समिति

(२६ अक्टूबर १७९५ से ६ नवम्बर १७९९)

१—नियुक्ति—२७ अक्टूबर को नव निर्वाचित पंचशत समिति ने ५० व्यक्तियों को संचालक के पद के लिए अपनी सिपारिशों के साथ "प्रवर समिति" के पास भेजा, जिसने लीपोक्स, लीतूरनर, रियुबेल, साइस और बरास इन ५ संचालकों की नियुक्ति की। साइस की असंमति होने से कार्नट उसके स्थान पर रखा गया। अनुभवी कानून विशेषज्ञ रीयुबेल ने वैदेशिक न्याय और अर्थ विभाग, दुर्बल लीपोक्स ने गृह विभाग, कूटनीतिज्ञ बरास ने पुलिस विभाग, निष्क्रिय लीटूरनर ने नौ शक्ति व उपनिवेश और दक्ष कार्नट ने युद्ध विभाग का

भार ग्रहण किया। संचालन समिति गणतन्त्र को दृढ़ बनाने में प्रयत्नशील थी।

२—कार्यकलाप

फ्रांस की आंतरिक अव्यवस्था से नवीन शासन को निराशा हो गई। राष्ट्र का कोष शून्य था, "एशीग्नेट" का मूल्य भी सहस्र गुणित निम्न हो गया (१००० से एक) था। सैनिक को वेतन और जनता को खाद्य भी नहीं मिलता था। सबसे पहले संचालन समिति ने आर्थिक सुधार के लिए एक "पत्रमुद्रा" का प्रवर्त्तन किया—जिसका नाम "मैण्ड्ट्स" था। ८० करोड़ "मैंड्ट्स" मुद्रा के प्रचलन से आर्थिक सुधार हुआ। इसी समय बेव्यूफ ने अपने प्रभाव व आधिपत्त्य को पेरिस नगरी में पुनः स्थापन का प्रयास किया, परन्तु यह षड्यंत्र विदित होने पर उसके संचालकों को मई १७९६ मे मृत्युदण्ड दिया गया। समिति का महत्वपूर्ण कार्य वैदेशिक शत्रु का पराजय था। समिति के आदेशानुसार नेपोलियन इटली में विशाल सेना के साथ आक्रमण करने को चला।

३—इटली का आक्रमण

युवक व अपरिचित नेपोलियन के सामने असंख्य विघ्न व बाधाएँ आईं। ३ वप से इटली की सेना—जो कि फ्रॉस के साथ थी, लड़ाई करते करते नग्न व अर्द्धभोजन से दुर्बल हो गई थी। परन्तु इसकी गंभीरता और योग्य नेतृत्व से सेना मुग्ध हो गई। सैनिको में इतने साहस और स्फूर्ति का इसने संचार किया कि सैनिक दल विजय अवश्यंभावी मानने लगे। यह सैनिक परिचालन फ्रांस के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। यूरोप के विशाल पर्वत आल्पस को पार कर यह इटली में प्रविष्ट हुआ व कहा—"प्रसिद्ध कार्थेज नगर के दक्ष सेनानायक हैनीबल ने आल्पस पर्वत को अतिक्रम किया था, परन्तु हम लोगों ने इस

पर्वत को ही मोड़ दिया अर्थात् असंभव को संभव बना दिया"। एक मास के अन्दर पिड्मएट को अधिकृत कर लिया, आस्ट्रिया-वासियो को पो नदी के तट से बहिष्कृत कर दिया। सार्डिनिया के निवासियों को पराजित करके चिरस्कों में (१७९६) संधि के लिए बाध्य कर दिया। इसने तीन दुर्ग, सेवाय, नाइश शहर और पिड्मएट के प्रमुख मार्गों पर अधिकार किया। आस्ट्रिया के विरुद्ध ३५० फीट लम्बी लोदी पुल को भयानक गोलीकाण्ड के बीच पार किया। मिलन, मेन्टुआ व टोरन्टो ले लिया। पोप की भूमि पर फर्वरी १७९७ मे आक्रमण किया व इन्हें टालेन्टिनो की संधि के लिए बाध्य किया। इसके अनुसार पोप के बन्दरगाह से अंग्रेजों का बहिष्कार और मध्य इटली के मोडेना और बुलगिना, इत्यादि शहरों को सम्मिलित करके "ट्रांस पैडेन" नामक गणतंत्र की स्थापना की—जिसे पोप ने स्वीकार कर लिया। अभिग्नन शहर को फ्रांसियो ने ले लिया। पोप ने तीन करोड़ कर, ५०० पांडुलिपि, १०० सुन्दर पुस्तक, चित्र व कला की सामग्री देना स्वीकार किया। परन्तु धार्मिक विषय में कोई हस्तक्षेप व शर्त नही थी, क्योकि नेपोलियन ने संचालन-समिति के अनुमोदन से पूर्व ही कैथोलिक धर्म स्वीकार कर लिया था।

१७९७ के प्रारंभ मे आस्ट्रिया की राजधानी वियाना से नेपोलियन की सेना केवल १०० मील दूर थी। संचालन समिति संधि व शान्ति चाहती थी। क्योंकि फ्रांस की दो सेना मोरिया व जोर्ड़न के नायकत्व में जर्मनी से पराजित होकर पीछे हठ चुकी थी। आस्ट्रिया के दो सीमान्तों मे लड़ाई करना पड़ रहा था व इटली में इसकी पूरी पराजय हो चुकी थी, यद्यपि जर्मनी में इसने अस्थायी सफलता प्राप्त की थी। रसिया की रानी कैथ-राइन द्वितीय नवम्बर में मर चुकी थी व इसके उत्तराधिकारी

भार ग्रहण किया। संचालन समिति गणतन्त्र को दृढ़ बनाने में प्रयत्नशील थी।

२—कार्यकलाप

फ्रांस की आंतरिक अव्यवस्था से नवीन शासन को निराशा हो गई। राष्ट्र का कोष शून्य था, "एशीग्नेट" का मूल्य भी सहस्र गुणित निम्न हो गया (१००० से एक) था। सैनिक को वेतन और जनता को खाद्य भी नहीं मिलता था। सबसे पहले संचालन समिति ने आर्थिक सुधार के लिए एक "पत्रमुद्रा" का प्रवर्त्तन किया—जिसका नाम "मैण्ड्ट्स" था। ८० करोड़ "मैंड्ट्स" मुद्रा के प्रचलन से आर्थिक सुधार हुआ। इसी समय बेव्यूफ ने अपने प्रभाव व आधिपत्य को पेरिस नगरी में पुनः स्थापन का प्रयास किया, परन्तु यह षड्यंत्र विदित होने पर उसके संचालकों को मई १७९६ में मृत्युदण्ड दिया गया। समिति का महत्वपूर्ण कार्य वैदेशिक शत्रु का पराजय था। समिति के आदेशानुसार नेपोलियन इटली में विशाल सेना के साथ आक्रमण करने को चला।

३—इटली का आक्रमण

युवक व अपरिचित नेपोलियन के सामने असंख्य विघ्न व बाधाएँ आईं। ३ वर्ष से इटली की सेना—जो कि फ्रांस के साथ थी, लड़ाई करते करते नग्न व अर्द्धभोजन से दुर्बल हो गई थी। परन्तु इसकी गंभीरता और योग्य नेतृत्व से सेना मुग्ध हो गई। सैनिकों में इतने साहस और स्फूर्ति का इसने संचार किया कि सैनिक दल विजय अवश्यंभावी मानने लगे। यह सैनिक परिचालन फ्रांस के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। यूरोप के विशाल पर्वत आल्पस को पार कर यह इटली में प्रविष्ट हुआ व कहा—"प्रसिद्ध कार्थेज नगर के दक्ष सेनानायक हैनीबल ने आल्पस पर्वत को अतिक्रम किया था, परन्तु हम लोगों ने इस

पर्वत को ही मोड़ दिया अर्थात् असंभव को संभव बना दिया"। एक मास के अन्दर पिड्मएट को अधिकृत कर लिया, आस्ट्रिया-वासियो को पो नदी के तट से बहिष्कृत कर दिया। सार्डिनिया के निवासियो को पराजित करके चिरस्कों में (१७६६) संधि के लिए बाध्य कर दिया। इसने तीन दुर्ग, सेवाय, नाइश शहर और पिड्मएट के प्रमुख मार्गों पर अधिकार किया। आस्ट्रिया के विरुद्ध ३५० फीट लम्बी लोदी पुल को भयानक गोलीकाण्ड के बीच पार किया। मिलन, मेन्टुआ व टोरन्टो ले लिया। पोप की भूमि पर फर्वरी १७६७ में आक्रमण किया व इन्हे टालेन्टिनो की संधि के लिए बाध्य किया। इसके अनुसार पोप के बन्दरगाह से अंग्रेजों का बहिष्कार और मध्य इटली के मोडेना और बुलगिना, इत्यादि शहरो को सम्मिलित करके "ट्रांस पैडेन" नामक गणतंत्र की स्थापना की—जिसे पोप ने स्वीकार कर लिया। अभिग्नन् शहर को फ्रांसियो ने ले लिया। पोप ने तीन करोड़ कर, ५०० पांडुलिपि, १०० सुन्दर पुस्तक, चित्र व कला की सामग्री देना स्वीकार किया। परन्तु धार्मिक विषय में कोई हस्तक्षेप व शर्त नहीं थी, क्योंकि नेपोलियन ने संचालन-समिति के अनुमोदन से पूर्व ही कैथोलिक धर्म स्वीकार कर लिया था।

१७६७ के प्रारंभ मे आस्ट्रिया की राजधानी वियाना से नेपोलियन की सेना केवल १०० मील दूर थी। संचालन समिति संधि व शान्ति चाहती थी। क्योंकि फ्रांस की दो सेना मोरिया व जोर्डन के नायकत्व में जर्मनी से पराजित होकर पीछे हठ चुकी थी। आस्ट्रिया के दो सीमान्तो में लड़ाई करना पड़ रहा था व इटली में इसकी पूरी पराजय हो चुकी थी, यद्यपि जर्मनी में इसने अस्थायी सफलता प्राप्त की थी। रसिया की रानी कैथ-राईन द्वितीय नवम्बर में मर चुकी थी व इसके उत्तराधिकारी

पाल अस्ट्रिया की आक्रमण नीति का समर्थन नहीं करते थे। नेपोलियन ने आर्कोला और रिवोली के युद्ध को जीत कर लियोबन के रणविराम पर आस्ट्रिया के साथ हस्ताक्षर किए। जैनोवा शहर को लिगूरियन गणतन्त्र के रूप में बदल दिया। वेनिस की विजय करने के बाद अपनी कूटनीति की ख्याति को दिखलाने के लिए कैंपोफार्मियो (अक्टूबर १७६७) की संधि उसने आस्ट्रिया के साथ कर ली। इस संधि ने ५ वर्ष व्यापी युद्ध—जिसकी घोषणा जिरॉण्डिस्ट दल ने अप्रेल १७६२ में की थी—का अन्त कर दिया।

४—कैंपोफार्मियो की सन्धि

(१) संधि के अनुसार आस्ट्रिया ने राइन नदी को फ्रांस का सीमान्त मान लिया (२) सिसल्पाईन गणतन्त्र को स्वीकार कर लिया (३) बेल्जियम, राइननदी का वामतट और आयोनियन द्वीप फ्रांस के अधिकार में चले गये (४) आस्ट्रिया को वेनिस के अर्द्धांश, डालमेशिया व इस्त्रिया दिया गया। (५) रास्टड की कांग्रेस मे अवशिष्ट शर्तों के निर्धारण का निश्चय किया गया। यह संधि इतिहास में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना मानी जाती है। संचालक समिति आस्ट्रिया को वेनिस देने के पक्ष में नहीं थी। मैडेलिन कहते है—"यूरोपीय इतिहास में फ्रांस का प्रभुत्त्व इस संधि से स्वीकार कर लिया गया"। इसके पश्चात् पवित्र रोमन साम्राज्य की सीमा का निर्धारण करने के लिए रास्टट की कांग्रेस ने आस्ट्रिया के सम्राट् को ट्रीव्स, मेन्स, पैलेटिनेट से वंचित कर फ्रांस को दे दिया। सर्व प्रथम इस युद्ध से नेपोलियन के सैनिक-परिचालन का यश और योग्यता इतनी बढ़ गई कि संचालक समिति भी इसे प्रतिद्वन्द्वी समझने लगी। इसके फलस्वरूप प्रथम यूरोपीय राष्ट्र संघ भंग हो गया और केवल इंग्लैण्ड ने ही युद्ध जारी रखा।

सांस्कृतिक दृष्टि से यह इटली का युद्ध महत्त्वपूर्ण था—नेपोलियन ने स्वयं ही कहा कि—"सैनिको ! तुमने १४ लड़ाई और ७० छोटे छोटे मुठभेड़ो मे विजय प्राप्त की है। तुमने १ लाख सेना को बंदी कर लिया, ५०० बंदूक व २ हजार बड़ी तोपो को अधिकृत कर लिया। ३ करोड़ फ्रेंक (मुद्रा) पेरिस की जनता के कोष मे भेजा। तुमने ३०० पुरातन और वर्त्तमान इटली के सुन्दरतम चित्रकला—जिनकी रचना में तीन हजार वर्ष लगे, से पेरिस नगरी की अद्भुतशाला को विभूषित किया। यूरोप के सबसे मनोहर प्रदेश को विजय किया और एड्रियाटिक समुद्र तट पर फ्रांसीय शक्ति को बढ़ा दिया"। कहा जाता है कि पारमा के डयूक के पास से सैन्ट जेरोंम अंकित एक सुन्दर चित्र को पाया—जिसके लिए ड्यूक १० लाख मुद्रा देने के लिए तैयार था। नेपोलियन ने कहा—"अर्थ तो बहुत ही शीघ्र व्यय हो जायेगा, और भी मिल सकता है। परन्तु चिरन्तन निपुणतर चित्र बहुत ही दुर्लभ है, हमारे देश को सुसज्जित करने के लिए उसकी अत्यन्त आवश्यकता है"।

इटली के इतिहास मे नेपोलियन, का एक विशेष स्थान है। सिसल्पाइन, लिगूरियन एवं ट्रान्सपेडन गणतन्त्र की स्थापना करके नेपोलियन ने विभाजित इटली राष्ट्र को एकत्रित करने में सर्वप्रथम प्रयत्न किया। प्रसिद्ध इटालियन दार्शनिक मैजिनी ने इस विजय को "इटली के स्वाधीनता-संग्राम का पहला अध्याय कहा"। ऐतिहासिक प्रो० फिशर कहते हैं कि "नेपोलियन की इटली में प्रथम विजय ने राष्ट्रीयता की भावना को जागृत किया एवं इटली की जनता को पुनरुथान का मार्ग दिखाया।"

५—मिश्र का आक्रमण

संधि के पश्चात् विजयी नेपोलियन पेरिस लौट आया और

जनता ने एक विराट् समारोह के साथ सम्मान प्रदर्शन किया। सम-सामयिक प्रत्यक्ष-दर्शियों का कथन है कि यूरोप मे ऐसा समारोह और उत्सव रोमन राज्य के पतन के बाद सर्व प्रथम हुआ। इस विजय होने से संचालको ने नेपोलियन का आलिंगन करते हुए कहा—"जाओ-इङ्गलैण्ड-जो कि समुद्र का दानव है, उसे पकड़ लाओ"। इङ्गलैंड ही फ्रांस का उस समय प्रधान व घृणित एकमात्र शत्रु था। नेपोलियन जानता था कि—"जो इङ्गलैंड को विजय करेगा, वह समग्र यूरोप को चरण-नत कर सकेगा।" वह यह भी जानता था कि नौ शक्ति की दुर्बलता से फ्रांस साक्षात् यूरोप पर आक्रमण करके विजय नहीं पा सकता। इसे वास्तविक रूप में परिणत करने के लिए नेपोलियन ने ऐसी एक योजना बनाई—जिसके द्वारा भूमध्य सागर का अतिक्रमण करके मिश्र को पराजित कर तुर्की और पारस होकर भारतवर्ष को मैसूर के राजा टीपू सुलतान और मराठों की सहायता से जीतना था।

पैरिस की राजनैनिक परिस्थिति पर प्रकाश डालते हुए नेपोलियन ने कहा कि—"नाशपाती अभी पकी नहीं है—अर्थात् उसकी अधिनायकता का समय अभी नहीं आया"। पेरिस की जनता की स्मरण शक्ति इतनी अल्प है कि उसे जागृत करने के लिए नवीन आक्रमण और चमत्कृत सफलता का प्रदर्शन आवश्यक था। "यदि हम बहुत दिन अकर्मण्य होकर पेरिस शहर में रहते, तो खो जाते। पेरिस एक ऐसा शहर है—जहां प्रत्येक वस्तु विलीन हो जाती है—हमारी महिमा व यश भी अदृश्य हो जाता। प्राच्य देशों से ही हमें ख्याति मिलेगी, क्योंकि इतिहास में प्रसिद्ध पाश्चात्यों को प्राच्य से ही यश मिला—"कोई भी यश पूर्व से ही आता है"। आर्थिक अभाव से संचालक-समिति बहुत ही कष्ट में थी और नेपोलियन की भयानक दृष्टि को

पेरिस से दूर रखने के लिए उसे एक बड़ा अच्छा अवसर मिल गया।

मई १७६८ में ४०० जहाज़, ३८ हजार सेना, १७५ विद्वान् नागरिकों, ज्योतिष-रेखागणित-विशारद, रासायनिक, पुरातत्त्व विद्, सेतु व पथ निर्माता, राजनैतिक, अर्थशास्त्रविशेषज्ञ, खनिज-विशेषज्ञ, चित्रकार और कवियोको लेकर एक महान् सामरिक विजय ही नहीं, अपितु सांस्कृतिक विजय के लिए उसने मिश्र की ओर प्रस्थान किया। इंगलैण्ड के नौ सेनापति नेल्सन को प्रतारित करके नेपोलियन ने माल्टा द्वीप को व मिश्र के प्रमुख शहर अलगुजेन्ड्रिया को अधिकृत कर लिया। नील नदी के तट पर पिरामिड के युद्ध में विजय प्राप्त करके काहिरो शहर में प्रवेश किया। ऐसी कहानी है कि जब इसकी सेना तुर्की सेनाओं से पराजित हो रही थी, तो उसे प्रोत्साहित करते हुए इसने यह ऐतिहासिक कथन कहा—"सैनिको—चार हजार वर्ष के पुरातन स्मृति स्तंभ व समाधियां तुम्हारी दुर्बलता को निन्दित दृष्टि से देख रही है और विजय के लिए प्रेरणा दे रही हैं"। इस समय काहिरो के कट्टर दीवान को कुरान से उद्धृत करके इसने यह समझाया कि "मुसलमानों व नास्तिक फ्रांस में मुसलमानी और शराब के अतिरिक्त कोई अन्तर नहीं है" व यह बतलाया कि सारे फ्रांसीय मुसलमानों के साथ एक स्थायी मैत्री का बन्धन चाहते हैं। स्वयं तथा उसकी सेना ने भी मुसलमान बनने की इच्छा प्रकट की एवं सेना के लिए एक मस्जिद भी बनाई।

अकस्मात् नेपोलियन की अभिलाषा-पूर्ण-योजनायें नेल्सन के अबूकेर की खाड़ी के नौयुद्ध की विजय से मिट्टी मे मिल गई, केवल फ्रांसियों के चार जहाज बच कर आये। इसके परिणाम निम्न लिखित थे—(१) नेपोलियन फ्रांस से विच्छिन्न हो गया व पलायन का मार्ग भी बंद हो गया (२) टीपू सुलतान—जो फ्रांस

से सहायता लेने की आशा रखता था, वह भी निराश हो गया (३) इंगलैण्ड भूमध्यसागर का अधिकारी बन गया (४) यूरोप के प्रमुख राष्ट्रो ने उत्साहित हो कर "द्वितीय राष्ट्र संघ" की नींव डाली। परन्तु नेपोलियन ने इस विपत्ति और पराजय के समय असाधारण प्रतिभा, चमत्कार शक्ति व अपूर्व योग्यता दिखा कर पराजय को विजय मे परिणत करके इतिहास में एक दुर्लभ दृष्टान्त रखा। कई महिनों तक नेपोलियन को मिश्र में ही रहना पड़ा, परन्तु इस समय को नेपोलियन ने सांस्कृतिक अनुसंधान मे व्यतीत किया। उसने पुरातत्व की खोज की, सस्य और अंगूर के खेत लगाये, चक्की, जूते और ढलाई के कारखाने चालू किये, नील नदी के खनिज पदार्थों, ज्योतिष-विद्या तथा भूतत्त्व का अन्वेषण किया। चिकित्सक-वर्गों ने प्राच्य देश की बीमारियों का अध्ययन किया। पुरातत्व-विदों ने मेम्फिस के मंदिर और मोजेस के कूए का आविष्कार किया। सेतु व पथ निर्माताओ ने रोसेटा मे एक पत्थर पर तीन भाषाओ की पुरातन लिपियों का अध्ययन कर मिश्र के प्राचीन इतिहास की समस्याओ का समाधान किया। नेपोलियन ने स्वयं स्वेज का निरीक्षण करके एक नहर बनाने की योजना प्रस्तुत की—जिसे ५० वर्ष बाद विख्यात फ्रांसीय निर्माता डा० लैसेप्स ने क्रिया में परिणत किया।

तुर्की के सुलतान ने इस समय (सितम्बर १७९८ में) फ्रांस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। काहिरो के सामान्य विद्रोह का दमन करके नेपोलियन ने सीरिया मे तुर्की सेनाओ पर आक्रमण किया। फर्वरी १७९९ में विशाल मरूभूमि को १० हजार सेना के साथ पार करके जाफ्रा शहर को अधिकृत कर लिया। खाद्य सामग्री के अभाव से निर्दोष ३ हजार व्यक्तियो की हत्या की। परन्तु अप्रेल मई में एकर शहर के चारों ओर घेरा डाल

दिया। यहीं पर एक दुर्धर्ष अंग्रेजी सेनानायक सर सिडनिस्मिथ ने शत्रुओं को सहायता देकर एकर की सुरक्षा की व विजय की जो दुन्दुभि बज रही थी, उसका अंत कर दिया। अंग्रेजी ऐतिहासिक कहते है—"१७ बार असफल आक्रमण के बाद नेपोलियन ने स्वीकार किया कि एकर में मेरा भाग्य विपरीत था"। इसके पश्चात् नेपोलियन मिश्र लौट आया और आबूकीर की खाड़ी में (अगस्त) एक विशाल तुर्की सेना का ध्वंस कर दिया। इसी समय नेपोलियन के एक सेनापति ने कहा कि—"विपत्ति में ही आपकी महत्ता प्रकट होती है"। यूरोप के शक्ति पुंज द्वारा द्वितीय राष्ट्र संघ के निर्माण का संवाद नेपोलियन को मिला और यह असफल नेपोलियन चुपके से एक अंग्रेजी जहाज में चढ़कर, मिश्र में ही अपनी सेना को छोड़कर फ्रांस में लौट आया। दो वर्ष तक यह अधिपति हीन सेना लड़ती रही।

बुनापार्टी इसीलिए फ्रांस में आया था कि उसके अधिनायक बनने का यह अच्छा अवसर था। संचालन वर्ग व इसकी पत्नी ने बहुत दिन तक इसका संवाद न पाकर इसकी मृत्यु का निश्चय कर लिया था। नेपोलियन ने ३० वर्ष की आयु मे कहा था कि—"अब मेरे पास एक ही उपाय शेष है, वह है पूर्णशः स्वार्थी बनना।" परन्तु इसके आगमन से जनता में इतना हर्ष हुआ कि एक दूसरे ने आलिंगन करते हुए इस संवाद का प्रचार किया। "यह प्रतीत होता है कि समग्र फ्रांस हमारी अधीर होकर प्रतीक्षा कर रहा था, एक मुहूर्त्त पहले भी हम आते तो यह ज्यादा शीघ्रता हो जाती, यदि हम कल आते तो अधिक विलंब हो जाता। हम यथार्थ मुहूर्त्त मे ही आये हैं"। (नेपोलियन) वस्तुतः नासपाती अब पक चुकी थी।

६—संचालन समिति का पतन

संचालन समिति का पतन अवश्यम्भावी था। यदि हम ठीक तरह से इतिहास का अध्ययन करेंगे, तो तत्कालीन सम-सामयिक भविष्यवाणी को सच पायेंगे कि "पृथ्वी में जहां भी अराजकता होती है, उसकी प्रतिक्रिया में एक निरंकुश शासक का प्रारम्भ होता है"। १७९० में रिवारोल ने लिखा था "यदि राजा एक शक्तिशाली सेना का संगठन नहीं करेगा तो सेना एक उपयुक्त राजा का निर्वाचन करेगी, क्यो कि विप्लव का अंत तलवार में ही होता है"। रसिया की रानी कैथैराइन द्वितीय ने मृत्यु के पूर्व (१७९४ में) लिखा था कि "फ्रांस में एक योग्य दूरदर्शी, साहसी, अलौकिक पुरुष की आवश्यकता है, जो कि समसामयिक पुरुषों में व उस शताब्दी में सबसे अधिक महान् हो।" वस्तुतः यही पुरुष नेपोलियन था।

संचालन समिति का पतन नेपोलियन के जीवन-चरित्र में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। एक समय नेपोलियन ने कहा था—"हमारे सारे जीवन में हमने कभी इतनी कुशलता से काम नहीं किया था"। यह कुशलता संचालन समिति के पतन के लिए षड्यन्त्र रचने में थी। नेपोलियन ने संचालन समिति के सदस्यों, साइस, डुकास और उसके भाई लुशियन और विदेश मन्त्री तालेराँ के साथ एक गुप्त षड्यन्त्र के रूप मे संचालन समिति को पतित करने के लिए १८ ब्रुमाइरे (९ नवम्बर १७९९) में एक विशेष नियम पास किया। इससे विधान सभा ने पेरिस को परित्याग करके सैन्ट क्लाउन्ड स्थान पर (पेरिस से ५ मील दूर पर) अधिवेशन करना निश्चित किया। वस्तुतः उद्देश्य यह अन्तर्हित था कि विधान सभा को एकांत स्थान मे सैनिक शक्ति द्वारा भंग कर अधिनायकत्त्व की स्थापना पेरिस नगर की अपेक्षा वहां अधिक सहज होगी। इसकी रक्षा के

लिए नेपोलियन को नियुक्त किया गया। षड्यन्त्रकारी संचालक समिति के सदस्यों ने १६ ब्रु माइरे को त्यागपत्र दे दिया। एक बरास भाग गया व अवशिष्ट दो को बन्दी बना लिया गया। नेपोलियन ने सैन्ट क्लाउड मे आकर प्रवर समिति के सामने भाषण दिया—जिसका मूल उद्देश्य विधान का परिवर्तन करना था। इसके पश्चात् यह पंचशत समिति के सामने भाषण देने के लिए आया। विक्षुब्ध सदस्य—जो कि षड्यन्त्र के उद्देश्य से परिचित हो गये थे—चिल्लाने लगे—"अधिनायक का पतन हो"। उनने यह मांग पेश की कि नेपोलियन को कानून से बहिष्कृत कर दिया जाये। नेपोलियन ने तत्काल अपनी सेना को उग्र दल के सदस्यो को बहिष्कृत करने व अपनी रक्षा के लिए बुला लिग्रा—परन्तु एक भी सैनिक आगे नही बढ़ा। उत्तेजित सदस्य नेपोलियन की ओर वढ़े, उसके घूंसे मारे, उसका कोट फाड़ दिया व उसके मुंह से खून आने लगे। बाहर खड़े हुए अपने घोड़े पर नेपोलियन बैठ गया। चतुर लूशियन बहिष्कार के कानून को निषिद्ध कर वाहर आ गया और सेना से कहा कि "कुछ अल्प संख्यक उग्र सदस्य आतंक का राज्य चाहते है व रक्त पिपासु है"। यह तलवार निकालकर नेपोलियन की ओर बढ़ा—और सैनिको से कहा व प्रतिज्ञा की "यह कभी भी फ्रांस की स्वाधीनता को यदि छीनने का प्रयास करेगा, तो वे ही सर्वप्रथम इसका बलिदान कर देंगे"। सभा भवन में सैनिक प्रवेश के साथ साथ संसद भवन खाली हो गया और बहुत से सदस्य भाग गये। कुछ खिड़की मे से कूद पड़े। १६ ब्रुमेरियर (१० नवम्बर १७६६) को सायंकाल में प्रवर और पंचशत समितियो का पुनः अधिवेशन हुआ—जिसमे सर्व-संमति से संचालन समिति को भंग कर दिया गया व साइस, डुकास व नेपोलियन की शासन कर्ता के रूप में नियुक्ति की

गई। एक नवीन विधान बनाया गया व नवीन शासन कर्ताओं ने गणतन्त्र को दृढ़ बनाकर स्वाधीनता, एकता और समानता के प्रचार की प्रतिज्ञा की। इतिहास मे इसी सामरिक शक्ति द्वारा संचालन समिति के पतन की घटना को "१६ ब्रुमेरियर का "बूदिता" कहा जाता है।

ग—फ्रांस को अधिपति (१७६६ से १८०४)

नेपोलियन ने कहा था कि "जिस विधान का परिणाम अशान्ति या अराजकना होता है, उसके आधार पर काम चलाना असंभव है। आतंक के राज्य की तुलना में, जनता अपनी इच्छा से अधिनायकवाद का अनुमोदन करेगी"। शान्ति पूर्ण स्वेच्छाचारिता एक प्रकार का स्वर्ग है"। १२ दिसम्बर१७६६ में ३० लाख जनता की संमति से साइस रचित एक नवीन विधान को पास किया गया—जिसको इतिहास मे "अष्टम वर्ष का (स्वाधीनता) विधान" कहा जाता है। इस विधान के अनुसार कार्यकारिणी समिति ने तीन शासकों को नियुक्त किया जिनमें (१) प्रथम नेपोलियन, (२) कैम्बेसिरिस,(३) लेब्राँ था। ये प्रत्येक दश साल के लिए निर्वाचित किये गये थे व दुबारा भी निर्वाचित हो सकते थे। परन्तु प्रथम शासन कर्ता ही सर्वाधिकारी था।

संक्षेप में नेपोलियन के पास जितना प्रचुर दायित्व था, उतनी ही प्रचुर शक्ति भी थी और वस्तुतः वह एक अधिनायक बन चुका था। प्रथम शासक का वेतन ५ लाख फ्रेंक प्रति संवत्सर व इनके दो सहायकों का प्रतिशः डेढ़ लाख था। नेपोलियन ट्वीलर्स के राजप्रासाद में रहता था।

विधान निर्माण शक्ति चार विभिन्न सभाओं को दी गई थी—राज्यपरिषद्—प्रथम शासक द्वारा मनोनीत होती थी व नियम को प्रस्तावित करती थी। ये नियम जन निर्वाचित अधिकारी वर्ग

(ट्रिब्यूनेट)के सामने जाते थे-जिनकी संख्या १००थी। इनके पास अस्वीकृत, परिवर्तित व संशोधित करने का अधिकार नहीं था। विधान सभा (३०० सदस्यों की) का चुनाव मुख्य समिति द्वारा एक राष्ट्रीय सूची से किया जाता था—यह किसी भी अधिनियम को विवाद किये बिना केवल स्वीकृत या अस्वीकृत कर सकती थी। (सीनेट) मुख्य समिति के ८० सदस्य होते थे—जो प्रधान शासक द्वारा मनोनीत होते थे। ये ही निर्धारित करते थे कि नविन नियम विधान संमत है या नहीं। यह मुख्य समिति जन निर्वाचित अधिकारी व विधान सभा के सदस्यों को चुनती थी, इसी प्रकार प्रथम शासक को सर्वाधिकार मिले हुए थे।

स्थानीय शासन शासनाधीश व उपशासनाधीश द्वारा किया जाता था। स्वशासित जिला शासन के अधिकारी और सदस्य भी शासक द्वारा चुने जाते थे और निर्वाचित नगरपालिकाएँ अधिकतर परामर्श दे सकती थी, उन्हे कोई अधिकार नहीं थे। संक्षेप मे राजसत्ता एक प्रकार के पर्दे से ढकी हुई थी। वस्तुतः त्रिसदस्यीय शासन एक प्रकार से स्वेच्छाचारी-भूतपूर्व उच्छिन्न-वंश का ही पुनः स्थापन था। परन्तु यह निरंकुश शासन या स्वेच्छाचारिता योग्यता या जनप्रियता पर निर्भर थी। कुल या कुलीनों से इसका कोई संबन्ध नहीं था। नेपोलियन की संमति में फ्रांस की जनता स्वाधीनता नहीं चाहती थी, परन्तु एकता को प्रधानता देती थी और उसके राज्य मे केवल गुण व योग्यता ही उन्नति का एक मात्र सोपान था। फ्रांस इस प्रकार एक वैधानिक राजसत्ता से सामरिक अधिनायकता में परिवर्तित होगया।

१—वैदेशिक नीति

जैसा कि हमने देखा-संचालन समिति के समय द्वितीय राष्ट्र संघ का संगठन हुआ—जिसमें आस्ट्रिया, रसिया इंग्लैण्ड,

नेपिल्स, पुर्तगाल और टर्की संमिलित थे। अंग्रेजो और रूस की युक्त सेना ने हॉलेण्ड पर आक्रमण किया और आस्ट्रिया और रसिया की सेना ने इटली में फ्रांस के साम्राज्य को पुनः अधिकृत कर लिया। रसिया के राजा पॉल ने राष्ट्र संघ के सैनिक परिचालन से असंतुष्ट होकर नेपोलियन के साथ मैत्री स्थापित की। नेपोलियन ने इंग्लेण्ड और आस्ट्रिया को संधि करने का अनुरोध किया, परन्तु इंग्लैण्ड के प्रधान मंत्री पिट ने फ्रांस द्वारा नीदरलेण्ड (हालैण्ड) को अधिकृत करने व भूमध्यसागर मे भारत के यातायात के सामुद्रिक पथ को विपन्न करने से संधि को अस्वीकार कर दिया।

२—आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध

सन् १८ सौ की बसंत में नेपोलियन ने इटली में द्वितीय आक्रमण आरंभ किया। आल्पस पहाड को अतिक्रमण करते हुए मेरिनगो शहर में नेपोलियन ने आस्ट्रिया को पराजित किया (१४ जून) व उत्तर इटली पर पुनः अधिकार कर लिया। इसी समय इसका सेनापति मोरिया "होहैनलिण्डन" के युद्ध में विजयी होगया (जर्मनी में) और वियाना के ७१ मील के निकट सेना पहुंच गई। आस्ट्रिया के सम्राट् फ्रांसिस् ने आतंकित होकर फर्वरी १८०१ में लूनेव्हिल की संधि पर हस्ताक्षर कर दिये—जिससे फ्रांस ने इटली मे पुरातन राज्य पर अपना पुनः अधिकार कर लिया। हालैण्ड, बेल्जियम, राइन का वामतट—जो कि कैंपोफार्मिया की संधि से प्राप्त हो चुके थे—उन पर आस्ट्रिया ने फ्रांस के अधिकार को स्वीकार कर लिया। टस्कनी पारमा को दिया गया। इसके बाद नेपिल्स के बुरवन राजाओ ने भी फ्रांस के साथ संधि करली। द्वितीय राष्ट्र संघ में भी इग्लैण्ड के सिवा सभी फ्रांस के मित्र बन गये। यह कहना अत्युक्ति न‍ी कि यदि प्रथम इटली के आक्रमण मे नेपो-

लियन की विजय एक असाधारण सेना—परिचालन व गणतंत्र की कूटनीति का परिचय था, तो द्वितीय आक्रमण एक विराट् साम्राज्य और उपनिवेश की स्थापना का प्रारंभ था।

३—इंग्लैण्ड के विरुद्ध युद्ध

फ्रांसीय सेना मिश्र में अंग्रेजों द्वारा पराभूत हो गई और नेपोलियन इंग्लैण्ड को नौसेना द्वारा समुद्र में पराजित करने में असमर्थ होगया। इसी लिए कूट नीति द्वारा रूस, सूडेन और डेन्मार्क के साथ सशस्त्र निरपेक्षता के आधार पर संधि कर ली—जिससे इंग्लैण्ड ने युद्ध घोषणा कर दी। नेल्सन ने डेन्मार्क की जल सेना को कोपेनहैगेन की लड़ाई में पराजित कर दिया और नौ साल के क्रमागत युद्ध के बाद इंगलैण्ड और फ्रांस ने अमाइन्स की सन्धि २५ मार्च १८०२ में करली। इस संधि की इंगलैंड मे निन्दा करते हुए सेरिडन ने कहा कि "प्रत्येक अंग्रेज आनंदित था, परन्तु गौरवान्वित नहीं था"। सीलिवेस, ट्रीनीडड के अतिरिक्त सभी औपनिवेशिक अधिकृत प्रदेश फ्रांस को इंगलैण्ड ने दे दिये। माल्टा को अंग्रेजों ने छोड़ दिया और मैनार्का स्पेन को दे दिया। फ्रांस ने नेपिल्स व पोप के राज्य को खाली कर दिया एवं मिश्र को तुर्की के सुलतान को वापिस कर दिया। फ्रांस पिछली डेढ़ शताब्दी मे कूटनीति द्वारा सबसे अधिक लाभवान हुआ। इंगलैण्ड को पराभूत करने मे सफल रहा। संधि के पश्चात् नेपोलियन ने इटली के पिडमण्ट, एल्वा प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। जर्मन राज्यो का पुनः संगठन किया। स्विट्जरलैण्ड मे हस्तक्षेप किया और हॉलैण्ड को अधिकृत कर लिया। इंगलैण्ड ने माल्टा को खाली न करने से असाइन्स की संधि को भंग कर दिया, इसी लिए १८०३ मई मास मे युद्ध की पुनरावृत्ति होगई।

४—औपनिवेशिक योजना

नेपोलियन यह स्वप्न देखता था कि फ्रांस विश्व को विजय करेगा व समग्र राष्ट्र इसकी आधीनता को स्वीकृत कर लेंगे और एक विशाल फ्रांस औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना होगी—जो कि प्रतिद्वन्द्वी इगलैण्ड को दुर्बल कर देगा। ३० हजार सेना और २० सेना-नायकों का जीवन बलिदान देकर पश्चिम भारतीय द्वीप पुंजों में "सेन्ट डामिग्नो" पर फ्रांस के आधिपत्य का विस्तार किया। स्पेन को "लुसियाना" देने के लिए बाध्य किया व इसी स्थान को युक्त राष्ट्र को विक्रय कर दिया। भारतवर्ष में अंग्रेजो के शत्रु से मैत्री स्थापन का प्रयत्न किया। राजनैतिक व वैज्ञानिक दृष्टि से आस्ट्रिया पर आक्रमण किया, परन्तु नेपोलियन यूरोपीय समस्याओ में इतना व्यस्त था कि उपनिवेशों में अपना पूरा समय नहीं दे सकता था और वह फ्रांस की दुर्बल नौ-सेना को सशक्त न बना सका। इंगलैण्ड के वंशानुक्रमिक जर्मन राज्य को अधिकृत कर लिया व अंग्रेजी माल का दक्षिण और मध्य यूरोप में विक्रय व यातायात बंद कर दिया। अंत मे फ्रांस के विधान की भित्ति पर विभिन्न गणतन्त्रों का विधान बनाया गया व इन सबके संचालन का सूत्र नेपोलियन के हाथ में रहा और यह फिर इनका नियामक बन गया।

५—आतंरिक नीति

नेपोलियन ने एक बार कहा था कि "मैं ही विप्लव हूँ" और फिर कहा था—"मैंने विप्लव का दमन किया" इस कथन में कुछ सत्य हैं, व कुछ असत्य है। शासक व सम्राट् नेपोलियन ने विप्लव के अनेक मुख्य महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तो में से कुछ को मान लिया व अपनी इच्छा व राष्ट्र के हित में कुछ को अस्वी-

कार कर दिया। विप्लव के संबंध में नेपोलियन की संमति दृढ़ थी और समानता को उसने अपने राज्य में एक बहुत ऊंचा स्थान दिया—यद्यपि यह स्वाधीनता से घृणा करता था। संक्षेप मे इसकी नीति थी "प्रतिभा ही उन्नति की एक मात्र सीढ़ी है"। इसीलिए इसके काल में जो अधिकारियों की नियुक्ति हुई, वह निष्पक्ष और सब दलो से संबन्धित थी। इसके सेनानायक साधारण वर्ग के थे। मैशेना नाई का लड़का, अगेरु मिस्त्री का ने लुहारका और मुराट एक ढाबे वाले का लड़का था।

नेपोलियन प्रजातन्त्र मे विश्वास नही करता था—हमें इसके चरित्र में इसके दमन के दृष्टान्त प्राप्त होते है। भाषण, प्रकाशन, राजनीति व विचारों की स्वाधीनता आदि सभी को इसने घृणा की दृष्टि से देखा। इन दृष्टिकोणों से उसका राज्य एक प्रतिक्रियाशाली राज्य था।

६—फ्रांस का पुनर्गठन

(क) *शासन व समाज सुधार*—वैदेशिक विजयों से अधिक महत्त्व पूर्ण कार्य आन्तरिक शासन व समाज सुधार से सम्बन्धित था। इसीलिये नेपोलियन के जीवन चरित लेखक प्रो० स्लोअन ने कहा है—"संसार का सबसे महान् समाज सुधारक नेपोलियन था"। वस्तुतः नेपोलियन को-जो भी यश और ख्याति मिली, वह समाज सुधार से ही। यह स्वयं परिश्रम, योग्यता और सच्चरित्रता का प्रत्यक्ष दृष्टान्त था और वह संपूर्ण शासन को अपनी ही पद्धति पर स्फूर्तिमय बनाना चाहता था। एक अधिकारी का कथन है—"इस महान् सेनानायक के चरित्र ने हम लोगो की विचार धाराओं में आमूल परिवर्त्तन कर दिया है"। इसने सबसे पूर्व संपूर्ण विभिन्न दलो का अवसान कर जनता को "फ्रांसीय"

मात्र बना दिया एवं शान्ति व मैत्री स्थापित की । जो इसमें बाधाएँ पहुँचाने लगे-उनका निर्दयता और निरंकुशता से दमन किया गया व भेदभाव को सर्वथा दूर कर दिया गया । पलायित कुलीनो व पादरी अथवा पुरोहित वर्ग को फ्रांसमें आने की सुविधा दी गई जिनमें ४० हजार परिवारो ने परावृत्त होकर अपनी भूमि को पुनः अधिकृत कर लिया । अनेक राजसत्ता के समर्थको को भी शासन के काममें नियुक्त कर दिया गया । संमान की पदवियों एवं पुरस्कार वितरण की प्रणाली का प्रवर्त्तन किया, यद्यपि यह एकता एवं लोकतंत्र के विपरीत था । इस प्रणाली को जनता ने निन्दा की दृष्टि से देखा व कहा-"यह तो एक बच्चों को बहकाने के खिलौने हैं" । नेपोलियन ने उत्तर दिया-"यह सत्य है, परन्तु ऐसे ही खिलोनों से जनता वशमे आती है" । फ्रांसीय सम्मान के प्रेमी हैं, सेना सम्मान और वेतन से ही आकर्षित होती है । यह नवीन मार्ग एक अमोघ अस्त्र था ।

(ख) *शैक्षणिक प्रगतिः*—एक महान् सेनानायक और अधिनायक होते हुए भी नेपोलियन शिक्षा में संमान और अभिरुचि रखता था । उसने एक राष्ट्रीय शिक्षाप्रणाली का प्रवर्त्तन और छात्रवृत्ति की व्यवस्था की । १० नियमशिक्षणालय, १ चिकित्सा व यन्त्र-विद्या की शिक्षणशाला का स्थापन किया । शिक्षकों को शिक्षा देने की प्रणाली का—जो आज सारे संसार में प्रचलित है, सबसे पूर्व "नार्मल स्कूल" की स्थापना कर उसी ने प्रवर्त्तन किया । पुस्तकालय व अद्भुतशालाओं के अतिरिक्त फ्रांस विश्वविद्यालय की स्थापना करके आज भी फ्रांस की जाति को विश्व में साहित्य कला व ज्ञान विज्ञान का भंडार बना दिया । शिक्षा और शिक्षक के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए उसने कहा-"मै शिक्षकता चाहता हूँ, क्योंकि शिक्षा का

कोई अन्त नहीं है। परन्तु ज्ञान का प्रसार वंशपरंपरागत होता है और इससे राष्ट्र संगठित हो जाता है। शिक्षको के सिद्धान्त स्थिर होने से पूर्व कभी भी राजनीति के सिद्धान्त स्थिर नहीं होते"।

(ग) *आर्थिक सुधारः*—नेपोलियन के आर्थिक सुधार अत्यन्त महत्व पूर्ण थे। संचालन समिति ने जनता से बलात्कार द्वारा जो आत्यधिक ऋण एकत्रित किया था, उसकी निवृत्ति व स्थान पर उसने २५प्रतिशत आयकर लगाया और इस आयके परीक्षण के लिए प्रत्येक विभाग में एक सामान्य कोषाध्यक्ष नियुक्त किया। इस अधिकारी को प्रचुर मात्रा मे जमानत देनी होती थी और नेपोलियन स्वयं इसके कार्य का निरीक्षण करता था। पूँजीपतियों की सहायता प्राप्त करने के लिए सरकार द्वारा परिचालित एक फ्रांसीय वैक की स्थापना की, व्यापौर संघ का पुनर्गठन एवं उद्योग और व्यापार को प्रोत्साहन दिया गया। प्रत्येक श्रमिक का नाम पुलिस में लिखाना अनिवार्य, व दशमलव प्रणाली का उपयोग किया गया। राष्ट्रीय उद्योग की रक्षा इसकी नीति थी—जिसकी पूर्ति के लिए एक "राष्ट्रीय उद्योग समिति" की स्थापना की व उसमे निपुण वैज्ञानिकों और कुशल निर्माताओ को नियुक्त किया। विज्ञान को व्यवसाय में प्रयुक्त कर एक व्यवहारिक विज्ञान की स्थापना की गई। इंग्लैण्ड के अवरोध से उत्पन्न चीनी के अभाव की पूर्ति के लिए चुकन्दर (वीट) की जड़ों से चीनी का उत्पादन किया गया। ऊन. रेशम और रूई के व्यवसाय की उन्नति हुई व काफी की न्यूनता को चिकोरी द्वारा पूर्ण किया गया। इसने नमक और मद्य पर परोक्ष कर लगाया व तम्बाकू को सरकारी नियंत्रण में ले लिया। सट्टे को वंद करके राष्ट्रीय सिक्के का संचालन किया। अकाल ग्रस्त जनता की सहायता के लिए

प्रचुर गेहुओं को खाई में रखने का प्रबंध किया गया, क्योंकि नेपोलियन ने कहा था—"जनता भयंकर होती है, जब यह बुभुक्षु होती है।" अल्पतम मूल्य में जनता को अनाज प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया और इसी का परिणाम था कि वह लोकप्रिय नीतिज्ञ बना। इसीलिए यह साधारण धारणा है-"सस्ती रोटी में ही नेपोलियन की राजनीति का उच्च व सर्वोतम जादू था।" इन आर्थिक सुधारों का प्रत्यक्ष प्रमाण हम इस दृष्टान्त से प्राप्त कर सकते हैं—१७८६ में एक कृषक को प्रतिशत आय में १६ फ्रैंक बचता था और १८०० के पश्चात् उसके पास ७६ प्रतिशत बचने लगा।

(घ) *कला-प्रियता*—नेपोलियन की कलाप्रियता विश्व-विख्यात है। वह अपने फ्रांस को सौंदर्य और साहित्य का प्रतिष्ठान बनाना चाहता था। उसने कहा था—"हम चाहते हैं कि पेरिस संसार की सब से मनोरम और सुन्दर राजधानी व नगरी बन जाये व १० वर्ष के मध्य इसके नागरिकों की मात्रा २० लाख तक पहुँच जाये"। पेरिस नगरी को विभूषित करने की योजना का उपयोग इसने बेकारी की समस्या को सुलझाने के लिए भी किया। बेकारी को रोकने के सम्बन्ध में आदेश देते हुए इसने कहा-"मोची, टोपी बनाने वाले, सारथि आदि अनेक लोग बेकार है—ऐसा प्रबन्ध करो कि ५ हजार जोड़े प्रतिदिन तैयार हों। सैंट एन्टायन उद्योगशाला के २ हजार श्रमिक कुर्सियां व टेबिल आदि तैयार करेंगे"। पेरिस को सुशोभित करने के लिए आर्क नदी से एक नहर के खनन की योजना बनाई—जिससे कि पेरिस समग्र फ्रांस के लिए ही नहीं, अपि तु यूरोप के सौन्दर्य और गौरव का केन्द्र बने। असाधारण प्रतिभाशील १० विशिष्ट चित्रकार, मूर्तिकार, संगीतज्ञ और वाद्य विशेषज्ञों की सूची बनाई गई। नेपोलियन ने एक बार कहा—

जनता की पुकार है कि हमारा कोई साहित्य नहीं है—यह गृह मंत्री का अपराध है। क्यो कि वे प्रतिभासंपन्न व्यक्तियों का नियोग कर उन्हे पुरस्कृत नही करते"। इसी कलाप्रियता से इसकी प्रत्येक सामरिक विजयों की कवियों ने गाथाऐं बना लीं एवं आज भी कलाकौशल में फ्रांस विश्व का अग्रणी समझा जाता है। वस्तुतः नेपोलियन की राजनीति और कूटनीति के दो प्रमुख स्तभ थे—प्रथम उसका नियम संग्रह व द्वितीय कैथोलिक पादरियों से मैत्री।

(ङ) *नेपोलियन नियमसंग्रह*—नेपोलियन ने अपने निर्वासित जीवन में कहा था—"हमारा गौरव ४० महत्व पूर्ण युद्धों में विजय प्राप्त करने में हीं नहीं था। परन्तु हमारे नियम संग्रह में था—जो कि हमारा चिरंतन प्रतीक होगा"। यद्यपि चिरंतन स्थायी होने की उसकी यह आशा दुराशा थी, किन्तु आन्तरिक सुधार में नेपोलियन का नियम संग्रह एक वहुत ही महत्वपूर्ण योजना थी। सन् १८०४ मे चार वर्ष के दीर्घ परिश्रम के पश्चात् ५ प्रसिद्ध न्यायाधीशों की रचना से यह नियम संग्रह पूर्ण हुआ। फ्रांस की पुरातन प्रणाली, रोमन कानूनो के सिद्धान्त एव विप्लवीय विधान के मूल आधारों का समन्वय करके इसे संक्षिप्त रूप मे जन्म दिया गया। इस सहज, सरल व एक रूप विधान ने जनता को प्राचीन कष्टों से मुक्त किया। नागरिक स्वतंत्रता न्यायसमिति का प्रवर्त्तन, अभियोग के निर्णय की सुविधा, व्यावसायिक व धार्मिक स्वाधीनता इसने प्रदान की।

नागरिको के लिए निम्न नियम गणनीय थे—परिवार में पिता को संपूर्ण अधिकार थे। वह अपने वच्चों को वंदी तक बना सकता था। विवाह के लिए भी उसकी संमति अनिवार्य थी। संततियों की १८ वर्ष की आयु तक यही सम्पत्ति का सर्वा-

धिकारी था। पत्नी पति के आधीन थी वह न सम्पत्ति का क्रय एवं विक्रय ही कर सकती थी। पारस्परिक समन्वय ही से तलाक हो सकती थी। बलात्कार पर कठोर दंड का विधान था। सूद नियमों द्वारा नियन्त्रित कर दिया गया। किसी भी व्यक्ति के लिए अपनी सम्पत्ति के अर्ध भाग से अधिक और चतुर्थांश से न्यून सम्पत्ति का अधिकार पत्र (वसियतनामा) के रूप में प्रदान करना निषिद्ध कर दिया गया।

दंड-विधि में संस्कार हुये—फ्रॉसी, वन्दिता, निर्वासन सम्पत्ति-हस्त-गत-करण-आदि के लिये यथायथ नियम बनाये गये। अपराध के लिए अधिकतम व न्यूनतम दंड निर्धारित किया गया। अपराधी पर जनता के समक्ष न्यायालयीय पंचों द्वारा विचार किया जाना था। सामुद्रिक व्यापार, राष्ट्रीय दरिद्रता और व्यवसाय को नियन्त्रित करने के लिए विशेष धाराएँ संगृहीत की गई।

स्थानीय शासन के सम्बन्ध मे राजसत्ता और विप्लव के अनुभव से नेपोलियन इस सिद्धान्त पर आया कि शान्ति स्थापना के लिए शासन की सम्पूर्ण शक्ति केन्द्रीभूत होनी चाहिए। इसीलिए उसने प्रदेश, जिला व नगर पालिकाओ पर स्थानीय अधिकारियों की व उनके कार्य के निरीक्षण कर्ताओं की नियुक्ति थी। उसके इन संस्कारों ने उसे योग्य नियामक सिद्ध कर दिया।

(च) *पादरिया की मैत्री*—विप्लवकाल में पादरियो का बहिष्कार करके सर्वोच्च पादरी पोप के अधिकार से फ्रांस धार्मिक समस्याओं मे स्वतन्त्र हो गया था। नेपोलियन ने अपने चातुर्य और कुशल कूटनीति द्वारा रोमन पादरियों से मैत्री स्थापित की—जिसके परिणाम स्वरूप निर्वासित पुरोहित वर्गों

की पुनर्नियुक्ति की गई—जिनने फ्रांस के नवीन संविधान के मानने की शपथ ली। अनेक गिरिजाओं का भी नेपोलियन ने पुनः स्थापन किया। व्यक्तिगत रूप से नेपोलियन का कोई धर्म नहीं था। नेपोलियन ने कहा–"जनता कहती है कि हम पोप के समर्थक हैं, परन्तु यह सत्य नहीं है। मिश्र मे हम मुसलमान थे व जनता के हित के लिए हम फिर पोप के समथक बन जायेंगे"। इस कथन पर विचार करने से हम देखेगे कि नेपो-लियन का धर्म एक राजनीतिक अस्त्र व राष्ट्रीय मस्तिष्क का केन्द्र था। नेपोलियन ने कहा–"जनता का एक धर्म चाहिए। फ्रांस के धर्म सरकार के शत्रु के हाथ में है (पादरी)। ५० पला थित पादरी अंग्रेजो से उत्कोच लेकर फ्रांस के धर्म के वर्तमान नायक बन गये"। नेपोलियन ने कहा—"इसी लिए पोप के साथ सन्धि करना अत्यन्त आवश्यक था"। इस संधि (जुलाई १८०१) के अनुसार पोप चर्च की सम्पत्ति—जिसे कि विप्लव वियों ने बलात् अधिकृत कर लिया था, से वंचित हो गया और राष्ट्र के पादरियों की नियुक्ति और गिरिजा के अनुशासन के अधिकार भी राष्ट्रीय शासन की सत्ता मान ली। गिरिजा राष्ट्र की सम्पत्ति घोषित की गई। इसके बदले में फ्रांस की सरकार ने रोमन कैथोलिक धर्म को सरकारी व अधिकांश जनता का धर्म घोषित किया। पोप ने राष्ट्र की स्वेच्छायत्त दक्षिणा को स्वीकार कर लिया। संक्षेप में फ्रांस की आंतरिक व्यवस्थाओ व सम्पूर्ण समस्याओं का समाधान कर नेपोलियन ने विप्लव को संगठित किया। नेपोलियन के एक मंत्री ने कहा था कि "पादरियों से मैत्री संबन्ध नेपोलियन की विप्लव की प्रतिभा पर एक महान् विजय थी व इसके बाद जितनी सफ-लता नेपोलियन को प्राप्त हुई, वे इसी का परिणाम थी। ऐति-हासिक फाइफ के शब्दों मे बोनापार्ट विप्लव का सपूत था"।

७—षड्यन्त्र और हत्या के प्रयत्न

वास्तव में नेपोलियन एक निरंकुश अधिनायक था। "मैं क्षमता को प्रेम करता हूँ जैसे एक संगीतज्ञ अपनी वीणा को" (नेपोलियन)। मुख्य समिति और राज्य परिषद् के द्वारा—जिनमे नेपोलियन के अधिक समर्थक थे—जनता के सामने यह प्रस्ताव रखा गया कि नेपोलियन को प्रारब्ध सुधारों की पूर्ति के लिए १० वर्ष की अपेक्षा आजीवन फ्रांस का प्रधान शासक बना दिया जाये। जनता का प्रधान शासन कर्ता सम्राट् के स्थान पर अधिष्ठित होने के एक सोपान पर चढ़ गया। दूरदर्शी लाफायत यह जानता था कि गणतन्त्र अब साम्राज्यवाद के रूप में परिणत हो जायेगा—इसीलिए उसने विरोध किया। जिस तरह से इसकी लोकप्रियता की वृद्धि हुई—वैसे ही राजसत्ता के समर्थक लोगों ने इसके विरुद्ध षड्यंत्र रचने की भित्ति बनाई। नेपोलियन ने अपने गुप्त चरो द्वारा इन षड्यन्त्रकारियों को बंदी बना लिया। कडौडल को गोली से मार दिया गया, पिचेग्र ने कारावास में ही आत्महत्या करली। परन्तु नेपोलियन इतना क्षुब्ध हो चुका था कि वह पुरातन बुरबुन वंश पर निष्ठुर हत्याकाण्ड करके इस प्रकार का दृष्टान्त रखना चाहता था कि कोई भी इसकी हत्या की कल्पना भी न करे। यह कहा जाता था कि षड्यन्त्रकारी बुरबुन वंश के एक युवक एनधिन के राजकुमार को फ्रांस का राजा बनाना चाहते थे। नेपोलियन ने निर्दोष राजकुमार को कैद कर लिया (जर्मनी में २० मार्च १८०४ में) व उसे एक अतिरिक्त सामरिक न्यायालय द्वारा मृत्युदण्ड दिया गया। नेपोलियन का कोई भी कार्य इतना घृणित नहीं था—जितना उस युवक की नृशंस हत्या थी। फ्रांसीय ऐतिहासिकों का कथन है कि "यह घटना नेपोलियन के पतन की मूल कारण थी"।

इसी घटना का परिणाम था कि यूरोप में तीसरी बार नेपोलियन के विरुद्ध यूरोपीय शक्तियों का राष्ट्रसंघ बना-जिसमें रसिया, आस्ट्रिया, इंग्लैंड व प्रशिया ने तृतीय बार युद्ध घोषणा की। यह शत्रुओं को सङ्गठित करने का एक निमित्त बन गई। इसका दूसरा परिणाम यह था कि—नेपोलियन ने अपने को सम्राट् घोषित कर दिया। उसने कहा—"राज्य सत्तावादियों ने हमारे जीवन को नष्ट करने का प्रयास किया परन्तु मैं हूँ फ्रांसीय विप्लव, व मैं ही इसकी रक्षा करूंगा"। विप्लव की रक्षा के लिए ही गणतन्त्र का अवसान कर दिया।

८—नेपोलियन का राज्याभिषेक

मार्च १८०४ में मुख्य-समिति ने जनता की बहु संमति से एक विशेष प्रस्ताव द्वारा नेपोलियन को सम्राट् की उपाधि प्रदान की। उस समय मुख्य समिति ने नेपोलियन से कहा कि "आप एक नवीन युग का निर्माण कर रहे हैं, परन्तु आपको प्रयत्न करना चाहिए कि यह युग अधिक दिन तक स्थायी रहें। चमत्कार में कोई आनन्द नहीं, यदि वह स्थायी न हो"। दिसम्बर १८०४ में नाटरडम की गिरिजा मे पोप पायस सप्तम के पौरोहित्य में विशाल समारोह के साथ नेपोलियन का राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ। नवीन सम्राट् ने जनता को लक्ष्य करके कहा—"ओ फ्रांसियो ? तुम राज्यसत्ता के प्रेमी हो"। उसी समय नेपोलियन ने—जो कार्सीका द्वीप का नागरिक था, अपने आपको फ्रांसीय प्रमाणित करने के लिए बुनापार्टी से बोनापार्टी बना लिया।

(घ) यूरोप की प्रभुता प्रयास (१८०४ से १८०६)

इंगलैण्ड व फ्रान्स के मध्य १८०३ मे लड़ाई प्रारम्भ हुई थी, उसे डा० होलैण्ड रोजने इस शताब्दी की महत्त्व पूर्ण घटना

कहा है। इस युद्ध का नेपोलियन और यूरोप तक ही संबन्ध नहीं था, परन्तु अमेरिका, अफ्रीका, भारतवर्ष, आस्ट्रेलिया इत्यादि सुदूर देशों के इतिहास को भी इसने प्रभावित किया। अमाइन्स की सन्धि एक अस्थायी विराम था, परन्तु इन दो देशों की प्रतिद्वन्द्विता दिनो दिन बढ़ती जा रही थी। इंग्लैण्ड फ्रांस के कार्य कलाप-जैसे इटली में राज्यविस्तार, स्विट्जरलैण्ड में हस्तक्षेप, हालैण्ड पर सामरिक अधिकार, अंग्रेजी सामग्रियोका फ्रान्सीय बन्दरगाह से प्रवेश पर प्रतिबन्ध, लुईसियाना का हस्तगतकरण, सैन्ट डामिंगो का आक्रमण, भारत विजय की योजना, रूस से राजनैतिक वार्तालाप इत्यादि से आतंकित होगया था। भूमध्यसागर को अपने अधिकार में रखने के लिए इंग्लैंड ने माल्टा को देनेमे अस्वीकार कर दिया। नेपोलियन ने उसी क्षण इंग्लैण्ड पर अमाइन्स की संधि शर्तों के भंग करने का आरोप लगाया और कहा कि "इंग्लैण्ड ने फ्रान्स के राज्य-सत्तावादी व पलायित कुलीनों को आश्रय दिया है व प्रकाशन से फ्रांस की जनता को उत्तेजित करने का प्रयास किया है"। मई १६ को युद्ध घोषणा कर दी गई।

इगंलैन्ड का आक्रमण नेपोलियन की एक असफल परन्तु रुचिकर घटना थी। नेपोलियन ने कहा-"यदि ६ घंटा इंगलैण्ड व यूरोप महाद्वीप के मध्य की नहर के अधिकारी हम बनजायें तो समग्र संसार के प्रभु बन जायेंगे"। इंगलैण्ड के गौरव को हतप्रभ करने के लिए बुलौन के बन्दरगाह को विस्तृत किया, व डेढ़ लाख सेना का संगठन किया। हजारों की मात्रा में जहाजों का निर्माण किया। इसकी योजना थी कि २० हजार सेना को आयरलैंड में इंगलैंड पर आक्रमण करने के लिए भेजा जाये। नेपोलियन ने कहा-"हम सामुद्रिक मार्ग से असफल हो सकते हैं, स्थल मार्ग से नहीं होंगे।" इसी समय अमेरिका

के एक वैज्ञानिक रावर्ट फुल्टन ने अपने अद्भुत आविष्कार वाष्फीय जहाज का संवाद नेपोलियन को दिया परन्तु नेपोलियन ने उसमें विश्वास नहीं किया। समसामयिक ऐतिहासिक पॉरकर कहते हैं-कि "इसके जीवन में प्रथम बार यह एक असत्य प्रेरणा थी, जो इस को पराजय के मार्ग की ओर ले गई। अगर यह वाष्फीय जहाज का व्यवहार करता, तो इसके प्रधान शत्रु का नाश हो जाता।"

स्पेन को इंगलैण्ड के विरुद्ध युद्ध घोषणा करने के लिए प्रोत्साहित किया (१८०४ मे)। आक्रमण को रोकने के लिए इंगलैंड ने पूर्ण तैयारी कर रखी थी—उसके जहाजों ने फ्रांसके समुद्री तट का अवरोध किया व जैसा कि हम पहले देख चुके हैं—कूटनीति से तृतीय राष्ट्र संघ का निर्माण किया। १८०५ में रसिया को छोड़कर नेपोलियन ने इटली, जर्मनी, हालैण्ड, इंगलैण्ड के साथ सन्धि करली-जिसके उत्तर स्वरूप नेपोलियन ने स्वयं को इटली के मिलान शहर मे सम्राट् घोषित कर दिया। सिसलपाइन गणतन्त्र को फ्रांस के राज्य में विलीन कर लिया। जिनोवा के लिबूरियन गणतन्त्र व पिड़मन्ट का एक अंश भी फ्रांस मे मिल गया। हालैंड का बैटेवियन गणगन्त्र भी एक साम्राज्यवादी शासन तन्त्र में परिणत हो गया व नेपोलियन का भाई लूई नेपोलियन(मई १८०५) इसका राजा बनगया। राजा बनते समय इसने दयालु लुई से कहा-"जनप्रिय बनने का प्रयत्न करो, परन्तु यदि जनता किसी राजा को दयालु कहती है, तो उसका अर्थ है कि वह शासक असफल है।" नेपोलियन ने कहा "हम राजनैतिक स्वाधीनता को नष्ट कर देते हैं, जब यह हमारे मार्ग को रोकती है।" नेपोलियन ने प्रशिया को हैनोवर राज्य देने का आश्वासन देकर निष्पक्ष कर दिया था, परन्तु इंगलैंड. आस्ट्रिया और रसिया ने उसकी सेना को समुद्र तट से यूरोप

के मध्य में प्रयोग करने के लिए बाध्य कर दिया। इस समय नेपोलियन के जल सेना-नायक मिलएन्यूस फ्रांस और स्पेन की नौ सेना को लेकर इंगलैण्ड के नौ सेनापति नेल्सन के साथ ट्राफलगार की लड़ाई में पूर्णतः पराजित हो गया (२१ अक्टूबर १८०५)। यह नौ युद्ध इतिहास मे एक स्मरणीय घटना है, क्योंकि फ्रांस की नौ शक्ति का अवसान ही इससे नहीं हुआ, परन्तु नेपोलियन ने इंग्लैंड आक्रमण की योजना को छोड़ दिया। वीर नेल्सन घायल होकर मर गया। मरते समय नेल्सन ने कहा—"धन्य भगवान् ? हमने अपने कर्त्तव्य का पालन किया"। उसके ये शब्द आज भी लड़ाई के समय प्रेरणा देते हैं।

इस युद्ध के एक दिन पूर्व नेपोलियन ने उल्म स्थान पर तृतीय राष्ट्रसंघ के सैनिको को पराजित करके ६० हजार सैनिक व ३० सेनानायकों की एक विशाल आस्ट्रिया-सेना को २० अक्टूबर १८०५ को बंदी बना लिया। इसके अनन्तर आस्ट्रिया और रसिया की सेना को वियाना के निकट आस्टर्लिट्स के युद्ध में ध्वस्त कर दिया (२ दिसम्बर १८०५)। परिणामतः तृतीय राष्ट्रसंघ भंग हो गया। प्रेसबुर्ग की संधि शर्तों के अनुसार आस्ट्रिया को इटली के वेनेशिया प्रदेश, इस्त्रिया वा डाल्मेशिया फ्रांस को, तथा टायराल बभेरिया को दिया गया। प्रेसबुर्ग की संधि का प्रधान परिणाम यह था कि पवित्र रोमन सम्राट् फ्रांसिस् द्वितीय अपने वंशानुक्रमिक रोमन सम्राट् के पवित्र पद से वंचित हो गया और अब हैब्सबुर्ग वंश के फ्रांसिस् प्रथम के नाम से आस्ट्रिया का साधारण राजा मात्र रह गया। नेपोलियन ने सत्य ही कहा था—"पवित्र रोमन साम्राज्य अब न तो पवित्र ही है, न रोमन ही है व न साम्राज्य ही है—यद्यपि इतिहास में इसकी प्रतिष्ठा बहुत बड़ी है"। इंग्लैड के प्रधान मन्त्री पिट ने कहा था—"यूरोप के मानचित्र को समेट लो,

१० वर्ष तक इसका कोई प्रयोजन नहीं है"। यह भविष्यवाणी सत्य थी—यद्यपि नेपोलियन पिट की मृत्यु से पूर्व यूरोप का अधिपति नहीं बन पाया था।

१—जर्मनी का पुनर्गठन

बभेरिया, वाटमबर्ग, बडैन एवं अन्य छोटे छोटे सोलह राज्यसमूहों को संमिलित कर राइन के राज्य संघ का संगठन किया गया—जिसका संरक्षक नेपोलियन स्वयं बना। इसके अतिरिक्त जर्मनी के पुनर्गठन में नेपोलियन का महान् स्वार्थ था। उसका उद्देश्य था कि पश्चिम जर्मनी के छोटे छोटे दुर्बले राज्य उसकी आधीनता स्वीकृत कर लें. एवं आस्ट्रिया व प्रशिया के आक्रमणों से फ्रांस की रक्षा करें। इसी लिए इसने जर्मनी के ३०० राज्यों को ३६ संघों में पुनर्गठित किया। जर्मनी के पुनरुत्थान में यह एक महत्त्वपूर्ण योजना थी। इसका परिणाम यह हुआ कि फ्रांस मे जो सुधार प्रारंभ किये गये—वे जर्मनी में भी लागू हुये। दासत्व प्रथा का अवसान एवं फ्रांसीय नागरिक नियम संग्रह के प्रयोग से कुलीन और सामान्य जनता ने नियम की दृष्टि से समानता प्राप्त की। यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि १६ वी शताब्दी मे जर्मनी राज्य के उत्थान में नेपोलियन की देन असीम थी।

२—राजा का निर्माता

नेपोलियन एक महान् सम्राट् बनने की आकांक्षा रखता था, उसने कहा था—"हमारा वंश अप्रसिद्ध कुटुम्ब नहीं रहना चाहिये। जिसका हमारे साथ उत्थान नहीं होगा, वह हमारे परिवार मे नहीं रहेगा। हम एक राजाओं का परिवार बनाना चाहते हैं—जो एक संघीय प्रणाली से रहेगा"। इसी उद्देश्य से उसने अपने मित्रो व बन्धुओं को "राजा" का पद दिया।

अपनी एक भगिनी इलीशे को टस्कनी के राजा से व द्वितीय भगिनी पोलिन को वर्घिश के कुमार से विवाह दिया। छोटी बहिन कैरोलीन को अश्व सेनानायक मुराट से विवाहित कर मुराट को "बर्ग" का राजा बना दिया था। वैनेशियन राष्ट्र को १२ छोटे छोटे भागों में विभाजित कर अपने उच्चपदस्थ सेनानायकों को प्रदान किया। लुशीयन—जो कि १७६६ में संचालन समिति के पतन के समय नेपोलियन के जीवन का रक्षक था—एक कुत्सित महिला से विवाह करने व उसे न छोड़ने का आग्रह करने के कारण निर्वासित कर दिया गया। दुश्चरित छोटे भाई जेरोम को अमेरिकन स्त्री के परित्याग के पश्चात् नवीन राष्ट्र जर्मनी के वैस्टाफैलिया का राजा बना दिया।

३—प्रशिया पर आक्रमण

प्रशिया के राजा फैडरिक विलियम तृतीय ने राइन नदी से अपसरण करने के लिए नेपोलियन को चुनौती दी। उसने वर्षा की तरह प्रशिया की सेना को आर्स्टेडट और जैना के युद्ध (१४ अक्टूबर १८०५) में एक ही दिन मे कुचल दिया परिणामत: प्रशिया की राजधानी बर्लिन में नेपोलियन ने प्रवेश किया एवं हैसी-कासल और ब्रांसविक के शासनकर्ताओं को राज्यच्युत करके "वैस्टाफैलिया" राज्य का संगठन किया। पोलैण्ड के विभाजन से—जिस भूमि पर प्रशिया ने अधिकार किया था—वहां वार्शा, सैक्सोनी व वेस्टाफैलिया राज्यसमूह भी राइन के राज्यसंघ में संमिलित हो गये।

४—रसिया पर आक्रमण

नेपोलियन ने एक बार कहा था—"जब तक संपूर्ण महाद्वीप एक शक्तिशाली शासक के आधीन न हो जायें, तब तक यूरोप में शान्ति स्थापित नहीं हो सकती।" रूस ही एकमात्र राष्ट्र

था-जिसने इसकी आधीनता स्वीकृत नहीं की थीं। इसीलिए नेपोलियन ने इलाउ और फ्रिडलैंड मे (१८०७ फर्वरी से जून) रसिया सेना को पराजित करके वहां के शासक जॉर अलैग्जेण्डर से तिल्सित की संधि (जुलाई, १८०७) कर ली। अलैग्जेण्डर ने इस अवसर पर कहा—"हम अंग्रेजों से उतनी ही घृणा करते हैं, जितनी आप। उनके विरुद्ध आपकी योजनाओं को हम शिरोधार्य करते हैं"। नेपोलियन ने उत्तर दिया—"फिर तो आप में और हम मे एक शान्तिपूर्ण बन्धुता स्थापित होगी"। फ्रांसीय सम्राट् ने पश्चात् कहा था—"रसिया का राजा एक सच्चरित्र सुन्दर पुरुष और एक प्रकार से उपन्यास का नायक है। यदि वह एक स्त्री होती, तो हम उसके प्रेम में फँस जाते"।

५—तिल्सित की संधि

निम्न शर्तों के कारण इतिहास में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। १—नेपोलियन ने प्रशिया से एल्ब नदी के पश्चिम प्रदेश को लेकर वैस्टाफैलिया नाम से एक नवीन राज्य की स्थापना कर अपने भाई जेरोम को वहां का राजा बना दिया। पोलैंड और वार्शो को सैक्सोनी के राजा को नेपोलियन ने दे दिया। २—रसिया ने फ्रांस को डालमेशिया मे कैटेरो जिला व आयोनियन द्वीप पुंज दिया। पोलेण्ड में रसिया को वियालिस्टक मिला। ३—रसिया के सम्राट् अलैग्जेण्डर ने फ्रांस और इङ्गलैंड की मध्यस्थता करने की प्रतिज्ञा की व इटली, हालेण्ड और जर्मनी में नेपोलियन द्वारा नव निर्मित राज्य समूहों को स्वीकार किया। ४—डान्जिग को स्वाधीन बन्दरगाह घोषित किया गया। ५—नेपोलियन ने पोलेण्ड की स्वतन्त्रता को अमान्य कर दिया। ६—प्रशिया के बन्दरगाह अंग्रेजों के वाणिज्य के लिए निषिद्ध कर दिये गये। गुप्त शर्त के अनुसार नेपोलियन ने अलैग्जेण्डर को स्वीडेन से फिनलैण्ड और तुर्की

से माल्डेविया और वालेचिया प्रदेशों को अधिकृत करने में फ्रांसीय सहायता देने की प्रतिज्ञा की। परन्तु यदि अलैग्जेण्डर की मध्यस्थता असफल रहे, तो रसिया नेपोलियन को इङ्गलैंड के विरोध में सहायता करेगा और डेन्मार्क, स्वीडेन व पुर्तगाल को तटावरोध घोषित करने के लिए वाध्य करेगा।

तिल्सित की संधि को नेपोलियन की शक्ति का उच्चतम शेखर बताया गया है। रसिया और फ्रांस ने वस्तुतः समग्र यूरोप को इसके द्वारा अपने में बांट लिया। आस्ट्रिया व प्रशिया दुर्बल हो गया और इङ्गलैंड फ्रांस का एकमात्र शत्रु रह गया। रसिया ने अपना परम स्वार्थ सिद्ध करने के लिए अपने मित्र प्रशिया को बलिदान कर दिया। यद्यपि नेपोलियन ने यूरोप के राजाओं को पराजित किया था, परन्तु तिल्सित की संधि के पश्चात् उसे महाद्वीपीय प्रणाली के प्रयोग के कारण व्यापक राष्ट्रीय विरोध का सामना करना पड़ा।

६—पोप पायस सप्तम

जब नेपोलियन ने पोप पायस सप्तम को वन्दरगाह अंग्रेजी जहाजों के लिए बन्द करने का आदेश दिया—तो पोप ने तटस्थता प्रकट की। नेपोलियन अतिशय अधिनायकता के गर्व में आगया व उसने कहा—"यद्यपि पवित्र पादरी रोम के सर्वाधिकारी हैं, परन्तु मैं सम्राट् हूँ और मेरा शत्रु भी आपका शत्रु होगा"। इसने पोप की भूमि को जब साम्राज्य में विलीन करने का आतंक दिखाया, तो पोप ने इसके साथ समन्वय का वार्तालाप बंद कर दिया। अप्रेल १८०८ में पोप के राज्य और रोम को फ्रांसीय सेना ने हस्तगत कर लिया व एक वर्ष के पश्चात उसे फ्रांस के साम्राज्य में लीन कर लिया। पोप ने इसे धार्मिक जगत् से वहिष्कृत कर दिया—

नेपोलियन ने कहा "क्या मेरी सेना के शस्त्र उनकी धमकी से गिर जायेंगे"। ३ वर्ष तक पोप को बंदी बना कर पेरिस मे रखा गया व रोममें पादरियों का जो शिक्षा केन्द्र था–उसे बंद कर दिया गया एवं पादरियों के सैकड़ों पुरातन लेखों व पुस्तको को फ्रांस की राजधानी में ले आया। नेपोलियन ने कहा था कि–"यदि किसी दुर्बल पोप को पेरिस में रखा जाता, तो फ्रांस की राजधानी समग्र ईसाई–जगत की राजधानी बनजाती और हम संसार के धर्म और राजनीति का परिचालन करते।"

७—महाद्वीपीय प्रणाली

तिल्सित की संधि के पश्चात् इंग्लैंड नेपोलियन का परम शत्रु था। प्रो० फायप ट्रेफल्गार के नौ युद्ध मे नेल्सन की विजय के प्रभाव की विवेचना करते हुए लिखते हैं कि "ट्रेफलगार नौयुद्ध मे इंग्लैण्ड की सबसे बड़ी विजय ही नहीं थी, परन्तु विप्लवीय युद्ध में सबसे अधिक महत्व-पूर्ण था"। नेपोलियन यह सोचता था कि–इंग्लैण्ड की विजय महाद्वीपो में ही हो हो सकती है। यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि ट्रेफल्गार के युद्ध ने नेपोलियन को समग्र यूरोप पर अपनी शक्ति प्रयोग करने के लिए बाध्य कर दिया और अन्त में समग्र महाद्वीप ही नहीं, परन्तु इंग्लैंड भी विजयी हुआ"। महाद्वीपीय प्रणाली का अभिप्राय यह है कि इंग्लैण्ड की खाद्य–सामग्री पर संपूर्ण प्रतिबध लगा दिया गया। बर्लिन और मिलन शहर में १८०७ मे नेपोलियन ने अतिरिक्त घोषणा की–"समग्र ब्रिटिश द्वीप समूह एक आर्थिक तटावरोध में हैं और इसके साथ सम्बन्ध करना निषिद्ध है। फ्रांस मे ब्रिटिश प्रजा युद्ध की बन्दी है, इंगलैण्ड की सामग्री युद्ध का पुरस्कार है। किसी भी इंग्लैण्ड से बनी हुई सामग्री या जहाजो को फ्रांस या उनके मित्रवर्गों के लिए राज्य में प्रवेश अवैध है"। इंगलैण्ड ने इसका उत्तर

राज्य-सभा के विशेष आदेश द्वारा दिया–"महाद्वीप के जो बन्दरगाह अंग्रेजी पताका की अवमानना करेंगे, वे सब एक तटावरोध में रहेंगे–और कोई भी जहाज समुद्र मे इनके आदेश-पत्र के बिना आवागमन नहीं कर सकता"।

प्रो० मायर्स कहते है कि "इंग्लैण्ड का ध्वंस करने की नेपोलियन की नीति—एक आत्म हत्या की नीति थी और इसके परिणाम स्वरूप उसने अपने साम्राज्य को नष्ट कर दिया"। इस अवरोध में नेपोलियन के असफलता के कई कारण थे? इंगलैण्ड के औद्योगिक विप्लव ने उद्योगशालाओं से प्रस्तुत सामग्री को यूरोप जीवन चर्या के लिये नित्य अनि-वार्य बना दिया। नेपोलियन-जीवन चरित के लेखक हालैण्ड रोज का कहना है—"यह एक व्यवस्थित कुटिलता थी—जिससे गरीबों पर अत्यन्त अत्याचार किये गये और चोर बजार की सृष्टि हुई। नेपोलियन स्वयं एक विशेष आदेश–पत्र देकर आवश्यक सामग्रियो का यातायात करने लग गया। नेपोलियन के सैनिकों के जूते व पोशाक भी इंग्लैण्ड से ही लेने पड़ते थे। इंग्लैण्ड की नौशक्ति इतनी बढी हुई थीकि व्यवसाय के सामुद्रिक मार्ग को जहाजो द्वारा रक्षा करके इसने अपने अधिकार में ले लिया। डेन्मार्क व होलीगोलैण्ड पर अधिकार कर उत्तरी यूरोप में ऐसा रक्षा क्षेत्र बनाया–जहां से अंग्रेजी माल चोरी से जर्मनी पहुँचाया जा सकता था। नेपोलियन की नौशक्ति दुर्बल थी, इसलिए तटावरोध असफल था। समीक्षकों द्वारा इसे "कागजी अवरोध"कहा गया। सबसे मुख्य कारण था कि यूरोप के समग्र देशो मे प्रयोजनीय सामग्री के अभाव से नेपोलियन के विरुद्ध असन्तोष और अनास्था बढने लगी। रसिया, आस्ट्रिया, प्रशिया और डेन्मार्क को इस अवरोध में योग देने के लिए नेपो-लियन ने बाध्य किया, परन्तु स्वीडेन ने इंगलैण्ड का साथ

दिया। हालैण्ड मे नेपोलियन का भाई लुई नेपोलियन इस नीति के प्रयोग करने में असफल रहा, १८१० में वह राज्यच्युत होगया। पुर्तगाल व स्पेन के साथ लड़ाई भी इसी लिए हुई। चीनी, काफी, चाय, रूई इत्यादि अवश्यक वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि हो गई व १८११ मे फ्रांस और रसिया की मित्रता भंग हो गई। पोप के साथ विरोध भी अवरोध प्रणाली के प्रयोग करने में ही हुआ और इसका फल यह हुआ कि समग्र यूरोपीय कैथोलिक धर्म के अनुयायी नेपोलियन के विरुद्ध हो गये। नेपोलियन के सचिव बुरीन लिखते हैं-"२० राजाओं की राज्य च्युति से भी इतनी घृणा का पात्र नेपोलियन नहीं होता, जितना अवरोध प्रणाली से"।

८--पुर्तगाल के आक्रमण--

इंगलैंड ने जब डेन्मार्क पर हमला करके उनके जहाजी बेडे पर अधिकार कर लिया, उसके प्रत्युत्तर मे नेपोलियन ने पुर्तगाल पर इंगलैण्ड के अधिकार से वंचित करने के लिए आक्रमण किया। सम्राट् ने "पुर्तगाल के संरक्षक को समग्र अंग्रेजी माल हस्तगत करने व बन्दरगाहों को इंगलैंड के विरुद्ध युद्ध घोषणा करके मार्गावरोध की आज्ञा दी"। संरक्षक ने माल को हस्तगत करने से इन्कार कर दिया। फान्टेन्ब्लो (अक्टूम्बर २७, १८०७) की संधि करके नेपोलियन ने स्पेन की सहायता प्राप्त की व जुनेट के नेतृत्व में पुर्तगाल पर आक्रमण कर दिया। भीत राज-परिवार अंग्रेजी जहाज में ब्राजील भाग गया। "ब्रगन्जा (पुर्तगाल) राजवंश का पतन नेपोलियन की एक विशेष घोषणा थी कि यह एक इस प्रकार का उदाहरण है—जो सिद्ध करता है कि जो भी अंग्रेजों की सहायता करेगा, उसका परिणाम भी यही होगा"। पुर्तगाल नेपोलियन के साम्राज्य मे आ गया।

६—स्पेन का आक्रमण

नेपोलियन ने फ्रान्टेन्ब्लो की संधि में पुर्तगाल का आधा भाग स्पेन को देने का वचन दिया था, परन्तु अब उसने इस शर्त को अस्वीकार कर दिया। स्पेन पर आक्रमण करने के लिए नेपोलियन उसकी आंतरिक समस्याओं मे हस्तक्षेप करने लगा और रानी ने प्रेमी मंत्री जाड़ाय के सैन्य संगठन को निमित्त बनाकर आक्रमण कर दिया। राजा चार्ल्स चतुर्थ रानी व उसके पुत्र फर्डिनेन्ड ने नेपोलियन के साथ मई १८०८ में व्योना में साक्षात्कार किया। नेपोलियन ने इन्हें राज्यच्युत करके अपने भाई जोशेफ बुनापार्टी को—जो कि नेपिल्स का राजा था—गद्दी पर बिठा दिया। भगिनीपति मुराट को जोशेफ के स्थान पर नियुक्त किया। इसी प्रकार नेपोलियन ने समग्र प्रायोद्वीप पर अधिकार कर लिया।

देशभक्त स्पेन की जनता नेपोलियन को राष्ट्र और धर्म का शत्रु और जातीय सम्मान का घातक समझती थी। ओस्तूरियास् के नेतृत्व में प्रत्येक प्रदेश मे फ्रांस के विरुद्ध विद्रोह हो गया "यह विद्रोह राष्ट्रीयता के कारण जितना स्वाभाविक था उतना ही विभिन्न स्थानों में प्रचन्ड था"। ८ दिन के बाद जोशेफ अपनी गद्दी छोड़कर भागा और भाई को लिखा कि "आपक गौरव स्पेन में ध्वस्त हो जायेगा"। बुलौन नामक स्थान मे (जून १८०८) २० हजार फ्रांसीय सेना ने स्पेन के सामने आत्म समर्पण किया। "यदि भामीका युद्ध फ्रांसीय विप्लव को एक नवीन मार्ग की ओर ले गया था, तो बुलोन ने यह प्रमाणित कर दिया कि यूरोप की ज़नता अधिनायक नेपोलियन के विरुद्ध हैं–यह एक नवीन युग का उदयकाल है।" (कैटिलबी०)

जोशेफ के स्पेन की राजधानी मेड्रिड से पलायन के पश्चात् अंग्रेज सेना पुर्तगाल में उतरी और सिन्तरा की सन्धि की शर्तों के अनुसार फ्रांस को पुर्तगाल खाली करना पड़ा, परन्तु नेपोलियन ने स्वयं स्पेन जाने का निश्चय किया और रसिया के सम्राट् अलैग्जेण्ड़र से मैत्री-दृढ़ बनाने के लिए ऐरफर्ट की महासभा में उससे मिला (सितंबर-अक्टूबर १८०८)

१०—ऐरफर्ट की कांग्रेस

मायर्स का कथन है कि "ऐरफर्ट की प्रसिद्ध महासभा नेपोलियन के असाधारण चरित्र का सर्वोच्च शिखर थी"। यूरोप के इतिहास में चाकचक्यमय इस प्रकार की महासभा बहुत ही विरल हुई।

नेपोलियन के साथ ४ राजा व ३४ राजकुमार थे। नाटक देखते हुए दोनों सम्राटों ने हाथ जोड़कर कहा कि "एक महान् व्यक्ति की मित्रता ईश्वर का एक आशीर्वाद है"। परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण दृश्य था—प्रसिद्ध जर्मन कवि और लेखक गेटे और वाईलैण्ड़को संमान द्वारा विभूषित करने का। नेपोलियन ने गेटे से कहा-"आप एक महापुरुष हो"। ऐसे समारोह में नृत्य, संगीत, नाटकीय प्रदर्शन के मध्य नेपोलियन ने रसिया के सम्राट् के साथ एक गुप्त प्रतिज्ञा करा ली- कि जब वे स्पेन में व्यस्त रहेंगे, तो आस्ट्रिया द्वारा फ्रांस पर आक्रमण करने पर रसिया फ्रांस की रक्षा करेगा। ऐतिहासिकों का कथन है कि इस महासभा में नेपोलियन को सामाजिक प्रभाव के अतिरिक्त कोई भी लाभ नहीं हुआ था। संभवतः अलेग्जेण्डर नेपोलियन के विदेश मन्त्री तालैराँ के गंभीर शब्दो को सोच रहा था-"महाशय ! आपको चाहिए कि आप यूरोप की रक्षा करें। फ्रांसीय जनता सभ्य है, परन्तु उसके सम्राट् नहीं। रसिया के सम्राट् सभ्य हैं, परन्तु उनकी जनता

नहीं। इसीलिए रसिया के राजा फ्रान्स की जनता के अवश्य मित्र होंगे"।

११—स्पेन में नेपोलियन

डेढ़ लाख सेना लेकर नेपोलियन ने स्पेन की सेना ध्वस्त करके अपने भाई को पुनः राज्यासीन किया और स्पेन निवासियों से कहा कि "यदि जोशेफ की आज्ञा पालन नहीं करेंगे तो मैं स्वयं राजा बन जाऊंगा और प्रजाको अनुशासन हीनता की उचित शिक्षा दूंगा"। इसी समय अंग्रेज सेना सर जान मूर के नेतृत्व में स्पेन पहुंची, परन्तु आस्ट्रिया के आक्रमण ने नेपोलियन को स्पेन छोड़कर पेरिस जाने के लिए विवश कर दिया। उसकी अनुपस्थिति में नेपोलियन के सेनानायक को करौना युद्ध में (जनवरी १८०६) हरा दिया व सर जॉन मूर को मार दिया। पुनः स्पेन ने पुर्तगाल से फ्रांसियो को भगा दिया। तालाभेरा के युद्ध मे दो फ्रासीय सेनाओं को पराजित करके लिजबन शहर के चारो ओर परकोटा बनाया-जिसे "टोरेस ह्वेद्रास" कहा जाता है।

१२—आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध

नेपोलियन स्पेन और पुर्तगाल मे व्यस्त था आस्ट्रिया के राजा फ्रांम्सिस् प्रथम ने अपनी सेना को संगठित किया। वह आस्ट्रिया की पराजय का प्रतिशोध लेना चाहता था। अप्रेल १८०६ में आस्ट्रिया ने फ्रांस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। नेपोलियन ने अल्प समय में ३ युद्धो में विजय प्राप्त की। (१) एखमुल, (२) स्पर्न (३) वॉग्राम। राजा फ्रांसिस् को अंग्रेजों से सहायता का जो आश्वासन था, वह केवल हालैंड के वाल्चरण के असफल आक्रमण में ही नष्ट हो गया।

आस्ट्रिया ने स्कान ब्रुन की (अक्टूम्बर १८०६ में) संधि कर ली—

जिसकी निम्न शर्तें थी-(१) आस्ट्रिया ने फ्रांस को ट्रीस्ट, कार्नी-वोला. कैरान्थया, कुर्वाशिया, डाल्मेशिया इत्यादि प्रदेश दे दिए। ये सब मिलाकर इलीरियन प्रदेश बन गया। (२) वभेरिया को आस्ट्रिया ने सैल्सबुर्ग और आस्ट्रिया के उत्तर का अंश दिया। (३)आस्ट्रिया ने वार्शा को पश्चिम गैलेशिया दिया। (४) व स्पेन, इटली और पुर्तगालकी विजय को स्वीकार कर लिया (५) महाद्वीपीय प्रणाली को मान लिया। (६) युद्ध की क्षति पूर्ति की प्रतिज्ञा की। इस संधि मे आस्ट्रिया ५० हजार वर्ग मील और ३५ हजार प्रजा को खो बैठा। राजा फ्रांसिस् ने अपनी लड़की मेरिया लुईशा का परिणय नेपोलियन के साथ कर दिया। इस विवाह का राजनैतिक उद्देश्य था-सम्राट् नेपोलियन अपने वंश को राजकीय वंश में परिणत करना चाहता था, इसी लिए साधारण परिवार की जैशोफाईन को उसने तलाक दी। लुईशा से एक लड़का हुआ-जिसे "रोम के राजा" की उपाधि देकर नेपोलियन का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

(ङ) नेपोलियन का पतन (१८१० से १८१५)

नेपोलियन का विशाल साम्राज्य बालुका की भित्ति पर टिका हुआ था। भाग्यशाली दुस्साहसी का साम्राज्य उत्तर में ल्यूबैक से दक्षिण मे रोम तक—जिसमें फ्रांस, नीदरलैण्ड, पश्चिमी और उत्तर पश्चिम जर्मनी, दक्षिण और पश्चिम इटली, इलीरियन प्रदेश व आपोनियन द्वीप थे-बहुत विस्तृत था। वह स्वयं इटली का राजा, राइन नदी के राज्य संघ का संरक्षक और स्विट्ज़रलैण्ड का पंच था। आस्ट्रिया व प्रॅशिया इसके अधीन थे, रसिया और डेन्मार्क भी मित्र थे। पृथ्वी के इतिहास मे एक अधिनायक विश्व के इतने राज्यो को कभी स्वाधीन नहीं कर सका, यह इतना बडा नियन्त्रण सर्व-प्रथम था। परन्तु इस विशाल साम्राज्य के शीघ्र पतन से ही यह प्रमाणित हो

जाता है कि यह साम्राज्य संगठन के अभाव से ओतप्रोत था और इसकी भित्ति कितनी दुर्बल थी। परन्तु नेपोलियन ईश्वर नहीं था और इसके पतन के कारण अनेक थे।

१—नेपोलियन के चरित्र दोष

नेपोलियन के पतन का प्रधान कारण उसकी महत्वाकांक्षिता और अहंभाविता थी—जिसके संबन्ध में वह स्वयं निर्वासित जीवन में खेद के साथ कहता है-"किसी ने भी हमारी कोई क्षति नहीं की, हमें ही हमारे एक मात्र शत्रु थे। आशा के सूत्र को मैंने अत्यन्त विस्तृत बना दिया—जिसको संभालना कठिन हो गया"। यदि फ्रांस को प्राकृतिक सीमा तक विस्तृत करके यह संतुष्ट हो जाता व उसे उत्तम रूप से संगठित करता, तो उसकी शक्ति स्थायी ही नहीं होती, अपि तु वह एक नवीन वंश का संस्थापक होता। यह विशाल साम्राज्य यूरोप के इतिहास की धाराओं के विपरीत था। उसकी कल्पना का विश्व व्यापी साम्राज्य एक महान् भूल थी। सर्वोच्च सत्ता का अधिकारी होने से निर्णय और साधारण जन-बुद्धि का संतुलन उसमें नहीं था। रोजवरी का कहना है कि-"इसने अपनी प्रतिभाओं को इतना असाधारण समझा कि उसके सामने अन्य प्रतिनिधियों को उसने कोई महत्त्व नहीं दिया। इसी लिए अल्प-समय में ही उसने एक विशाल साम्राज्य के महान् सम्राट् वनने का प्रभूत प्रयत्न किया। यदि यह धीरे धीरे आगे बढ़ता और उपार्जित भूमि को संगठित करता, तो विश्व में एक महान् यशस्वी पुरुष होता"।

२—सौभाग्य-शाली सम्राट्

एक ही व्यक्ति की कुशलता और श्रम से बना हुआ इसका जीवन केवल भाग्य पर निर्भर था—जो चलायमान व अस्थिर

है। विभिन्न साम्राज्यों के एकत्रित तत्व-जिनकी शृंखला इसकी नीति पर निर्भर थी, वह इतनी दुर्बल थी कि इसकी मृत्यु के बाद अत्यन्त शीघ्र ही विस्खलित हो गई। डा० होलैण्ड रोज कहते हैं—"इतिहास में ऐसा उत्थान का सुयोग किसी को नहीं मिला था। १६ वी शताब्दी के प्रारम्भ में यूरोप की राजसत्ता निष्क्रिय और दुर्बल थी। पिट, नेल्सन और वेलिंगटन को छोड़कर कोई भी पराक्रमी शत्रु १८१२ तक इसके सामने नहीं ठहर सका"। पर वटरलू के युद्ध में भाग्य इसके विरुद्ध हो गया—जिसका एकमात्र इसे सहारा था।

३—निरंकुश अधिनायक

नेपोलियन का साम्राज्य युद्ध के माध्यम से बना था। मैरेनगो, आस्टर्लिट्स, जेना, फ्रिडलैण्ड, वाग्राम आदि युद्धों में विजय प्राप्त करके नेपोलियन ने असाधारण सामरिक शक्ति और गौरव की पताका फहराई थी। परन्तु सामरिक विजय का परिणाम पराजित जनता मे द्वेष, घृणा और हिंसा का जागृत करना था। उसका साम्राज्य शक्ति पर निर्भर था, प्रेम पर नहीं। राजनिष्ठा आतंक पर निर्भर थी और यूरोप एक व्यक्ति द्वारा शासित होने से असहमत हो गया। यह कहना अत्युक्ति नही कि नेपोलियन का साम्राज्य स्वाधीनता का घातक व पराधीनता की शृङ्खला थी। राजा और प्रजा में एक विशाल साम्राज्य की स्थायिता के लिए—जो आस्था और निकट संबंध होने चाहिए थे—नेपोलियन उनसे बहुत दूर था और उसकी प्रवृत्ति इसके अयोग्य और असमर्थ थी। उसकी निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता ने जैसे कुमार ऐन्घिन की फांसी, जर्मन प्रचारक पॉम की हत्या, विफल सेना नायको की मृत्यु दण्ड आदि ने प्रजा में राष्ट्रीयता की भावनाऐं भरदी और क्रुद्ध जनता स्वाधीनता के लिए अधीर व लालायित हो गई।

४—राजकीय वेष भूषा

जिस प्रजाने फ्रांसीय विप्लव के मूल सिद्धान्तों-एकता, समानता व स्वतंत्रता-के प्रतिनिधि के रूप में नेपोलियन का स्वागत किया था, वही अब राजकीय तंत्र व वेषभूषाओं की समर्थक बन गई, इसीलिए लोग उसके ध्वंस के लिये तत्पर हो उठे। वंश परंपरागत कुलीन प्रथा, जैशोफाइन का त्याग, घृणित हैब्सवर्ग वंश की कन्या से विवाह व अस्थायी व्यवस्था जनता की दृष्टि में पुरातन राजसत्ता से भी अधिक अत्याचार और अन्याय की आगार बन गई।

५ – राजाओं की अवमानना

राज्यच्युत और वंचित कुलनों का समुदाय नेपोलियन को घृणा और क्षोभ की दृष्टि से देखता था व एक इस प्रकार के सुयोग की प्रतीक्षा में था-जिससे उनके अधिकार पुनः प्राप्त हों जाये। आस्ट्रिया के प्रधान मंत्री मैटर्निक अपने स्मरण-पत्र में लिखते हैं—"नेपोलियन के साम्राज्य और राजनीति में एक महान दुर्वलता थी-जिसके कारण इसका पतन हुआ। नेपोलियन जिन्हें उन्नति पर ले जाता था, उन्हीं पर अत्याचार, अन्याय व अपमान करने में विशेष रुचि रखता था। उसका परिणाम यह होता था कि वे इसे अवज्ञा एवं अविश्वास की दृष्टि से देखने लगते थे और गुप्त रूप से उसकी शक्ति के अवसान के लिये सन्नद्ध हो जाते थे"। इस दृष्टि से नेपोलियन जनता के समानाधिकार व नियम संग्रह का प्रवर्तन कर के उच्च कुलों का भी शत्रु बन गया था।

६— राष्ट्रीयता के सिद्धान्त

नेपोलियन जातीय राष्ट्रीयता को घृणित दृष्टि से देखता था। उसने यूरोप के जन समुदाय को मिट्टी की मूर्ति की तरह

स्वेच्छाचरिता के साथ तोड़ा, मरोड़ा। इससे लोगों में देश-भक्ति की भावनाऐं जागृत हो गई और उसके साम्राज्य का ध्वंस कर दिया। हैजन ने कहा है—"उस समय विश्व के इतिहास की एक धारा नेपोलियन की योजना और नीति के विरुद्ध जा रही थी वह थी-राष्ट्रीयता के सिद्धान्त। नेपोलियन इससे घृणा करता था, परन्तु अन्त में यही सिद्धान्त उसके पतन का मूल कारण हुआ"। प्रो० हर्न शा का कथन है—"यह सिद्धांत नेपोलियन के द्वारा अधिक पुष्ट हुआ और साम्राज्य उन्हीं के अनुयायियो के हाथो नष्ट हो गया"। ऐसी एक कहानी है कि स्कानब्रुन शहर के स्टैप्स नाम के एक टायरल, शहर के निवासी (अक्टूम्बर १२, १८०६) युवक ने नेपोलियन की हत्या के लिए एक चाकू लिया व उसके कमरे मे पहुंचा। अङ्गरक्षक उसे बन्दी बना कर जब नेपोलियन के सामने ले गया—तो सम्राट् ने प्रश्न किया-"आप इस छुरी को लेकर यहां क्यों आए थे"? युवक ने उत्तर दिया-"आपकी हत्या के लिए"। नेपोलियन ने कहा—"तुम एक मूर्ख अथवा पागल हो, तुमने हमें मारने का क्यो प्रयत्न किया"? उसने कहा—"मै न पागल हूं न मूर्ख हूं। आप हमारी मातृ भूमि के अभिशाप है"। नेपालियन ने कहा—"तुम एक कट्टर धार्मिक हो, हम तुम्हे जीवनदान देते हैं—"तुम हम को धन्यवाद दो"। उसने कहा—"हमे जीवन नहीं चाहिए, आप यदि क्षमा करेंगे, तो हम दुबारा आपकी हत्या का यत्न करेंगे"।

७-फ्रांसकी क्षीणता

क्रमागत युद्ध का भार वहन करते करते फ्रांस की जनता अत्यन्त श्रान्त हो चुकी थी। अनिवार्य सैनिक प्रवेश के कारण फ्रांस का जन व धन अत्यन्त क्षीण हो गया था। फ्रांसकी सेना केवल बालको से भरी हुई थी, और कोप अर्थशून्य था। केवल

रसिया के युद्ध में ही ३ लाख फ्रांसीय सेना नष्ट हुई थी व १८१३ में १३ लाख सेना का पुनर्गठन किया गया था। युद्ध के व्यय की पूर्ति के लिए अनेक प्रकार के कर प्रारभ किये गये थे। फ्रांस की शारीरिक व आर्थिक शक्ति निश्शेष हो चुकी थी व यूरोप के राष्ट्र समुदाय के विरुद्ध युद्ध के लिए वह असमर्थ हो चुका था। केटिलबी का सत्य कथन है—"आर्थिक और सामाजिक चक्र मे निष्पेषित फ्रांस की जनता इतनी क्षुब्ध और अधीर हो गई थी कि चारो ओर विद्रोह की भावनाएँ जागृत हो रही थीं"।

८—पोप की अवमानना

पोप की वंदिता, उसकी सम्पत्ति का अपहरण, धर्म का राजनीति द्वारा संचालन आदि पोप के विरुद्ध कार्यकलापो से धार्मिक जनता असन्तुष्ट ही नही, परन्तु नेपोलियन के शत्रु को गुप्त रूप से सहायता तक दे रही थी। निर्वासित जीवन में नेपोलियन ने स्वीकार किया था कि—"पोप का प्रभाव असीम था और यह हमारा एक भारी अपराध था कि उसकी शक्ति का हमने अवसान कर दिया"।

९—स्पेन की नीति

नेपोलियन ने सत्य ही कहा था कि—"स्पेन का आक्रमण एक भयानक फोडा था—जिसने मुझे ध्वस्त कर दिया"। इंग्लैंड के प्रधान मन्त्री पिट ने एक बार भविष्य वाणी की थी कि 'नेपोलियन की अग्रगति का प्रतिबंध एक राष्ट्रीय प्रतिरोध द्वारा होगा और स्पेन ही वह स्थान है—जहां से उसका श्रीगणेश होगा व इंग्लैण्ड उस समय स्पेन की सहायता में हस्तक्षेप करेगा"। इस भविष्यवाणी को लार्ड एक्टन राजनैतिक इतिहास में बहुत ही गंभीर और महत्व पूर्ण संदेश कहते हैं।

प्रो० शीले का कथन है कि "स्पेन का विद्रोह विश्व के

इतिहास में फ्रांसीय विप्लव के पश्चात् एक नवीन और गणनीय अध्याय के रूप में प्रारम्भ हुआ"। नेपोलियन ने पतन के अनन्तर स्वयं स्वीकार किया था—"स्पेन का आक्रमण हमारी एक भयानक भूल थी और यह मेरा महान् अन्याय और कुटिलता थी"। नेपोलियन के अनुमान मे १२ हजार सेना स्पेन विजय के लिए पर्याप्त थी। "यदि २० हजार सैनिकों की आवश्यकता प्रतीत होती, तो हम स्पेन पर आक्रमण नही करते"। परन्तु तीन लाख सेना के प्रयोग के बाद भी स्पेन में नेपोलियन असफल था।

१०—आस्ट्रिया की नीति

निर्वासित जीवन में नेपोलियन ने अपने पतन के प्रति आस्ट्रिया को दायी माना। नेपोलियन ने कहा—"आस्ट्रिया फ्रांस का परम शत्रु है, परन्तु ऐस्पर्न की विजय अधिक मूल्यवान् थी। यदि ऐसा नहीं होता, तो आस्ट्रिया का पतन अवश्यंभावी था"। आस्ट्रिया का युद्ध इतिहास में अधिक महत्त्वपूर्ण इसलिए है कि ये एक राष्ट्रीय आन्दोलन थे, जो देश भक्ति से ओतप्रोत थे और नेपोलियन की दासता से आस्ट्रिया की मुक्ति ही अपना लक्ष्य रखते थे। होलैण्ड रोज़ कहते हैं "आस्ट्रिया के आक्रमण नेपोलियन की दूर-दर्शिता के परिचायक हैं और नेपोलियन साम्राज्य के ध्वंस के प्रतिबिंब है"।

११—रसिया की असफलता

रसिया के आक्रमण से नेपोलियन की सामरिक शक्ति ही दुर्बल नहीं हो गई, परन्तु उसने क्षुब्ध, असन्तुष्ट और पददलित राष्ट्रसमूहों में विद्रोह की चिनगारी लगाने का काम किया—जिसके दमन के लिए उसके पास न जन सहयोग था—न सामरिक शक्ति ही थी। इसका परिणाम हम आगे देखेंगे। फिशर कहता

है—"रसिया का आक्रमण सामरिक निर्दयता का एक महान् दृष्टान्त है"।

१२—महाद्वीपीय प्रणाली

प्रो० लाज का कथन है—"नेपोलियन की सबसे अधिक अदूरदर्शिता का परिचय इङ्गलैंड के अवरोध की योजना से होता है। यह योजना क्रियान्वित करना असंभव थी"। यह सोचना कि "नेपोलियन के दुर्जय और घृणित शत्रु इंग्लैण्ड को पराजित करने के लिए प्रजा अपने सुख और सुविधाओं को स्वतः छोड़ देगी" उसकी एक आधारभूत भूल थी। संपन्न व्यापारी जब चोरी से इंग्लैंड के माल का विक्रय करने लगे, तो नेपोलियन ने उनके प्रतिबन्ध के लिए कठोर नियम बनाये। व्यक्तिगत जीवन में इस प्रकार हस्तक्षेप करने से क्षुब्ध जनता नेपोलियन को असंतोष भरी दृष्टि से देखने लगी। यह असंतोष सर्वप्रथम प्रतिवाद और पश्चात् विद्रोह के रूप में अभिव्यक्त हुआ—जिसका विशद वर्णन ऊपर किया गया है।

संक्षेप में उपर्युक्त सभी कारणों ने सामुदायिक रूप से नेपोलियन के पतन का मार्ग निर्धारित कर दिया। हम देख चुके हैं कि निर्दयी नेपोलियन की हत्या के प्रयत्न किस प्रकार टॉथराल् के एक नवयुवक ने किये। फ्रांस की जनता इनके शौर्य और गौरव से शान्त हो गई। पेरिस शहर में भी षड्यन्त्रकारियो का अभाव नहीं था। पुलिस विभाग के अध्यक्ष फूचे, व विदेश-मन्त्री तालेरॉ भी विश्वसनीय नहीं था। २७ पादरी नेपोलियन के विरुद्ध हो चुके थे। सम्राट् के भाई अकृतज्ञ हो चुके थे व लुई बोनापार्टी हॉलेण्ड पर ईश्वरीय अधिकार की घोषणा करने लगा था। नेपोलियन स्वयं एक आध युद्धों में पराजित होने के पश्चात निर्दयी दैव को दोषी ठहराने लगा।

यह सब इसकी अलोकप्रियता का परिणाम और पतन के निमंत्रण थे—जो एक प्राकृतिक नियम का संकेत कर रहे थे।

(च) महान् घटनायें

१—स्पेन में युद्ध

३ लाख फ्रांसीय सेना सन् १८११ मे स्पेन पर अधिकार जमाने में सफल हुई। इसके ६ मास पश्चात् इंग्लिश सेनानायक वेलिंगटन ने नेपोलियन के सेनापति मारमण्ट को सालामंका के युद्ध में पराजित करके राजधानी मैड्रिड को अधिकृत कर लिया। मई १८१३ में विटोरिया के युद्ध मे जोशैफ की सेना को हराया। नेपोलियन इस समय रसिया के आक्रमण में व्यस्त था। वेलिंगटन ने नेपोलियन के इतर सेनापति सूल्ट को पराजित करके फ्रांसीय सेना को स्पेन से भगा दिया। काडिज शहर में स्पेन निवासी जनता ने १७६१ के फ्रांसीय विधान के अनुसार राष्ट्रीय संविधान का निर्माण किया। ११ अप्रेल में इन्हीं घटनाओं के परिणाम स्वरूप नेपोलियन ने राज्य त्याग किया व इसके एक दिन बाद बियाना और तुलूस शहर के पतन से प्राय -द्वीप के युद्ध का अवसान हो गया।

स्पेन में नेपोलियन की पराजय का प्रथम कारण जनता में राष्ट्रीय भावना का जागरण था। एक पुरुष द्वारा-चाहे उसमें कितनी ही अलौकिक शक्ति क्यों न हो, समग्र जाति या राष्ट्र को पराभूत करना असंभव है। भौगोलिक स्थिति भी नेपोलियन का साथ नही दे रही थी। स्पेन निवासियों के अनियमित युद्धो ने फ्रांस की सेना के धैर्य को निश्शेष कर दिया था। नेपोलियन की विशाल सेना के लिए युद्ध व खाद्य सामग्री का प्रबन्ध करना भी एक बड़ी भारी समस्या थी। भारत वर्ष के इतिहास में औरंगजेब सर्वसाधन सम्पन्न होते हुए भी मराठाओं

को विजय नहीं कर सका, उसी प्रकार नेपोलियन शक्ति के चरम शिखर पर पहुँचने पर भी स्पेन को जीत नही सका। नेपोलियन ने भी अनेक त्रुटियां कीं। फैडरिक ने कहा–"शत्रु को अर्धविजय में ही नहीं छोडना चाहिए"। स्पेन के युद्ध को समाप्त न कर नेपोलियन ने केवल रसिया पर ही आक्रमण नहीं किया था, परन्तु सेनानायको का भी समर्थन नहीं किया था। १८१० में सेनापति मसैना को पदच्युत करके मारसमएट को नियुक्त किया, दो वर्ष बाद उसके स्थान पर सूल्ट को रखा और १८१३ में अवशिष्ट ३ लाख सेना को भी खो बैठा। दयालु जोशेफ और विद्वेषी सेनानायक भी स्पेन में नेपोलियन की असफलता में सहायक थे।

२—रसिया के आक्रमण

नेपोलियन ने निर्वासित जीवन में एक बार कहा था–'हमारा यह स्वप्न था कि यूरोप मे केवल एक ही शासन—पद्धति, एक ही यूरोपीय नियम संग्रह व न्यायालय की स्थापना हो—जिससे कि समस्त यूरोप में विभिन्न जातियां एक ही राष्ट्र की प्रजा बन जाये"। इसीलिए नेपोलियन को रसिया के साथ लड़ाई लडना पड़ा। हम देख चुके हैं कि व्यापार के प्रश्न व इंग्लैण्ड के आर्थिक अवरोध में रसिया असन्तुष्ट था। रसिया के राजा अलैग्जैण्डर ने अपनी भगिनी को नेपोलियन से विवाह करने में अस्वीकृत कर दिया व आस्ट्रिया के विरुद्ध–रसिया ने सहायता नहीं की, यह आरोप भी उसने लगाया। रसिया भी देख चुका था कि नेपोलियन तुर्की के विरुद्ध मे रसिया की राजवृद्धि का समर्थन नही करेगा। यद्यपि रसिया ने स्वीडैन से फिनलैण्ड को हस्तगत कर लिया था, परन्तु संधि के फलस्वरूप जनता की दृष्टि में वह निन्दनीय हो गया। ओल्डनबुर्ग स्थान पर जब नेपोलियन का अधिकार हो गया, तो यहां के अधिपति–जो कि

अलैग्जेण्डर का भगिनी-पति था—पदच्युत कर दिया गया। परिणाम यह हुआ कि अलैग्जेण्डर क्रुद्ध हो गया। फ्रांसीय सम्राट् की पोलेण्ड की नीति भी रसिया के लिए लाभदायक नहीं थी। अलैग्जेण्डर नेपोलियन से चाहता था कि वह जनता के समक्ष पोलेण्ड के पुनः स्थापन न करने की घोषणा करे, परन्तु नेपोलियन ने अस्वीकार कर दिया। इन घटनाओं ने दोनों सम्राटों मे परस्पर भेद के बीज बोने का काम किया। ज़ॉर ने एक बार कहा था कि "मैंने नेपोलियन का परिचय पा लिया है। नेपोलियन अथवा मैं, हम दोनों संनिकट प्रदेशों पर राज्य नहीं कर सकते"। नेपोलियन अलैग्जेण्डर की शक्ति और स्वाधीनता से ईर्ष्या करता था। रूसीय सम्राट् फ्रांस के साम्राज्य के अपरिमित विस्तार से आशंकित था। दिसंबर १८११ में अलैग्जेण्डर ने एक विशेष नियम (ऊकेश) द्वारा निष्पक्ष राष्ट्रों के जहाजो को रसिया के बन्दरगाह से आने की सुविधा दी व फ्रांसीय विलासिता-सामग्रियो, मद्य, रेशम के निर्यात पर अत्यधिक कर लगा दिया। इसके अनन्तर अप्रेल १८१२ में नेपोलियन ने युद्ध घोषणा करदी।

नेपोलियन ने कहा—"मास्को ही भारतवर्ष पर आक्रमण करने का अर्द्ध-मार्ग है"। उसने एक विशाल सेना का इसी उद्देश्य से संगठन किया और मास्को पर आक्रमण करके अपने पतन के नाटक के प्रथम दृश्य का स्वयं उद्घाटन किया। मास्को से १० मील बोरोडिनो की लड़ाई में (सितम्बर १८१२) नेपोलियन ने एक लाख जन-समुदाय की हत्या करके विजय प्राप्त की। जिसके परिणाम में नेपोलियन ने मास्को पर अधिकार कर लिया व कहा—"आज मास्को की दशा उसी प्रकार की है, जिस प्रकार मान हानि के अनन्तर एक सभ्य महिला की होती है"।

इसकी प्रतिक्रिया में रूस की जनता स्वयं आग लगा कर मास्को से भाग गई। नेपोलियन एक मास तक संधि की आशा में रहा, परन्तु अलैग्जेण्डर ने स्वीडैन के राजकुमार बर्नडोट और प्रशिया के देशभक्त व्हान स्टाइन के साथ सम्मिलित होकर नेपोलियन को पराजित करने की योजना बनाली थी। अन्त में नेपोलियन ने अपनी सेना को फ्रांस में प्रत्यावर्त्तन का आदेश दिया, मार्ग-क्षुधा, शीत, रोग व दुर्धर्ष रूसी सेना- कोसक के आक्रमण से आधी से भी अधिक सेना ध्वस्त हो गई। बैरेसेना नदी को पार करने के प्रयास में १९ हजार सेना लीन हो गई व एक लाख पिछड़ी हुई सेना को रूसियो ने बन्दी बना लिया। ५ लाख सेना में से केवल ३० हजार ही फ्रांस तक पहुँची। "नेपोलियन का भाग्य उस विशाल सेना के साथ रसिया की वर्फ मे लीन हो गया"।

३—प्रशिया का पुनरुत्थान

जेना के युद्धक्षेत्र मे प्रशिया की पराजय के पश्चात् उस पर नेपोलियन की प्रभुता हो गई थी। इसकी सीमा को संकुचित कर दिया गया व सामरिक क्षति-पूर्ति के लिए अतिरिक्त कर लगाया। शांति-स्थापना के लिए फ्रांसीय सेना के व्यय का भार भी इसी पर डाला गया। इस प्रकार के संकटपूर्ण समय मे प्रशिया के कवि, दार्शनिक, शिक्षक व राजनीतिज्ञो ने राष्ट्रीय चेतना को जागृत किया। कार्नर और आरण्डट के राष्ट्रीय संगीत, स्किलर व फिस्टे की दार्शनिक शिक्षा हजारो जर्मन युवको को देशभक्ति की ओर ले जा रही थी। शिक्षा मन्त्री हंबोल्डट ने शिक्षा-प्रणाली का सुधार किया—जिससे कि राष्ट्र के नवयुवको में राष्ट्रीयता का संचार हो। बर्लिन और ब्रेसलाउ में विश्व-विद्यालयों की स्थापना की गई। प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ स्टाइन व हॉडनबर्ग समाज के उद्धार में लगे। दासप्रथा का अवसान किया, वर्गभेद और

विशेष सुविधाओं का अंत किया। स्कार्न हार्स्ट ने सैनिक संगठन व प्रतिभा को ही उन्नति का आधार घोषित किया। नेपोलियन ने यद्यपि बियालिस हजार से अधिक सैन्य संगठन निषिद्ध कर दिया था, फिर भी स्कार्न हार्ट ने अल्प समय में नियत सेना को शिक्षा देने के अनन्तर सेवाओं से मुक्त कर दिया व नवीन सैनिक प्रवेश किया। इस प्रकार कुशल नीति के साथ प्रत्येक बार ४२ हजार व्यक्तियों को सामरिक शिक्षा प्रदान करके प्रत्येक नागरिक को राष्ट्र की रक्षा के लिए जागरूक सैनिक बना दिया इसी समय रूस से नेपोलियन के असफल प्रत्यावर्तन का संवाद सुन कर प्रशिया ने रसिया के साथ कॉलिस्क की संधि कर नेपोलियन के विरुद्ध युद्ध घोषणा करदी।

४—राष्ट्रसंघ के साथ संघर्ष

फ्रांसीय सम्राट् ने दो लाख सेना को एकत्रित करके रूस और प्रशिया को लट्ज़न और बट्जन (मई १८१३) की दो लड़ाइयो में परास्त कर दिया, परन्तु नेपोलियन अधिक व पूर्ण सफल न हो सका और प्लेसविट्स की विराम सन्धि करने को विवश हुआ। इतने समय मे आस्ट्रिया, रसिया, प्रशिया, स्वीडैन व इंग्लैण्ड ने मिलकर चतुर्थ राष्ट्रसंघ की स्थापना की, परन्तु ड्रेस्डन की लड़ाई मे आस्ट्रिया पराजित हो गया। नेपोलियन का भाग्य अब भी डूबने की ओर था। लिब्जिग के युद्ध में (अक्टूबर १८१३) नेपोलियन हार गया व इसके परिणाम में राइन नदी के राज्यसंघ और वेस्टोफालिया व रैनिस प्रदेश के राज्य समूह प्रशिया के हस्तगत हो गये। इंग्लैण्ड का प्रतिरोध टूट गया, डेन्मार्क राष्ट्रसंघ में सम्मिलित हो गया। हालैण्ड निवासियो ने जेरोम बोनापार्टी को विद्रोह द्वारा पदच्युत करके अस्थायी सरकार की स्थापना की। नेपिल्स का राजा व नेपोलियन का बहनोई मुराट शत्रु की ओर

चला गया। नेपोलियन की परित्यक्त स्त्री का पुत्र यूजीन ही एक मात्र विश्वसनीय व्यक्ति रह गया था। इतना होने पर भी अदम्य नेपोलियन ने आस्ट्रिया के प्रधानमन्त्री मैटर्निक से कहा-"हम मर जायेंगे, तो भी एक हाथ भूमि भी शत्रु को नहीं देंगे। वंशानु क्रमिक राजा २० वार परास्त होने के पश्चात् भी अपने प्रासादों में विलासिता का जीवन बिता सकते है, परन्तु हम दैव की संतति हैं और हम से यह नहीं हो सकता। जिस दिन हमारी शक्ति का अवसान अथवा जनता हमे अवमानना, अनास्था व अश्रद्धा की दृष्टि से देखने लगेगी, उससे पूर्व ही हमारा देहान्त हो जायेगा"। राष्ट्रसंघ की अनेक सेना-वेलिंगटन फ्रांस के दक्षिण स्पेन से, बुलो बेल्जियम से, ब्लूकर राइनो से व स्क्वार्ज़ स्विट्जरलैण्ड से फ्रांस की राजधानी की ओर बढ़ी व नेपोलियन की सेना को सर्वशः पराभूत करके पेरिस पर राष्ट्र संघ का प्रभुत्त्व स्थापित हो गया। मुख्यसमिति व विधान सभा स्वयं नेपोलियन को राज्यत्याग का परामर्श दे रही थी व अप्रेल १८१४ में नेपोलियन ने राज्य त्याग कर राष्ट्रसंघ के संमुख आत्म समर्पण कर दिया और भूमध्य सागर के एल्वा द्वीप में निर्वासित कर दिया।

५—एक शत दिन

लुई षोडश के भाई लुई अष्टादश को राष्ट्रसंघ ने फ्रान्स के राज्यासन पर समासीन किया व ३० मई १८१४ मे फ्रांस के प्रतिनिधि-वर्गों व राष्ट्रसंघ मे पेरिस की प्रथम सन्धि पर हस्ताक्षर हुय—जिनकी शर्तें निम्नलिखित थीं। (१) फ्रांस ने अन्य देशो के चित्रकला के सुन्दर भंडारों का जो संचय किया था, उसे वहीं रखने की स्वीकृति दी गई और उसकी सीमा युद्ध से पूर्व (१७६२) की सीमा तक संकुचित कर दी गई। (२) इंग्लैण्ड केवल माल्टा, टोबैगो, सैन्ट लूशिया और फ्रांस

के द्वीपो का अधिकारी हो गया । (३) स्विट्जरलैण्ड स्वाधीन हो गया। (४) हालैण्ड ने वेल्जियम को मिलाकर एक शक्तिशाली राष्ट्र का गठन ओरेञ्जवंशीय राजाओ के नेतृत्व मे किया। (५) जर्मनी एक स्वाधीन राष्ट्रसंघ बन गया। (६) इटली आस्ट्रिया के राज्यो को छोड कर छोटे छोटे स्वतंत्र राज्यों में विभाजित होगया। (७) गुप्त शर्त द्वारा आस्ट्रिया को वैनेशिया एवं सार्डिनिया को जिनोवा को पुरस्कार रूप मे देने का निश्चय हुआ। (८) यूरोप की संपूर्ण स्थायी व्यवस्थाओं का निर्णय वियाना में होने वाले राष्ट्रसंघ के अधिवेशन पर छोड दिया गया।

लुई अष्टादश फ्रांस की जटिल समस्याओ का समाधान नही कर सका। फ्रांस का आर्थिक संकट इतना बढा हुआ था कि ५ लाख फ्रैंकों का अभाव था। तिरगे झंडे के स्थान पर श्वेत पताका को पुनः स्थापित किया गया एवं नेपोलियन द्वारा वितरित उपाधियो को अमान्य किया गया। एक विशेष कानून द्वारा अवैध धार्मिक प्रदर्शन को वैधता प्रदान की गई। इन सब का फल जनता मे असंतोष का विस्तार था।

१ मार्च १८१५ में दश मासके निर्वासित जीवन के पश्चात् नेपोलियन ने ग्यारह सौ साथियों के साथ फ्रांसीय तटभूमि कैनिस पर पदार्पण किया। नेपोलियन ने निर्वासित जीवन मे कहा था-"कैनिस से पेरिस तक की त्वरित गति उसके जीवन में अपार आनन्दमय क्षण था"। पेरिस में पहुँचते ही लुई अष्टादश, उनके मन्त्री व कर्मचारी राजधानी का परित्याग कर भाग गये। नेपोलियन ने इस समय अपने महान् व्यक्तित्व से लोगों को इतना प्रभावित किया कि संकेत से ही एक विशाल सेना एकत्रित हो गई व नेपोलियन पुनः फ्रांस का सर्वाधिकारी बन गया। वेल्जियम पर अधिकार करके प्रशिया की सेना को लिगनी के युद्ध मे परास्त कर दिया। वेलिंगटन की प्रगति को

क्वाटर ब्रास मे रुद्ध कर दिया व वाटरलू के युद्ध मे (१८ जून १८१५) अंग्रेजी सेना का सामना किया, परन्तु भाग्य इसके विपरीत था। तीस हजार सेना के साथ ब्लूकर (प्रशियन् सेनापति) के आगमन से राष्ट्रसंघ की पुनः विजय हुई व नेपोलियन पूर्णशः पराजित हो गया।

यह नेपोलियन का ६० वां युद्ध था एवं जून २२ मे द्वितीय बार इसने पुनः स्वेच्छा से राज्यत्याग कर दिया। व्यक्तिगत रूप से नेपोलियन ने बेलरफोन जहाज के नौ सेनानायक मेटलेण्ड के संमुख आत्म-समर्पण किया और कहा कि "हम अंग्रेज जनता के आश्रयप्रार्थी है"। परन्तु इंग्लैण्ड ने अपने घृणित शत्रु को आश्रय देने से अस्वीकार कर दिया तथा अफ्रीका के निकट सैन्ट हैलेना के द्वीप मे उसे निर्वास-दण्ड दिया। इसी द्वीप में तीन अधिकारी, एक चिकित्सक, १२ अनुचरों के साथ ६ वर्ष के निर्वासन के बाद नेपोलियन ५ मई १८२१ मे देव गति को प्राप्त हुआ।

(छ) नेपोलियन का स्थान

"नेपोलियन संपूर्ण इतिहास को संकुचित करता है और चिन्तनशक्ति को बढ़ाता है" मदाम डी० हाऊडीटट की इस एक उक्ति से हम नेपोलियन का इतिहास मे स्थान अनुमानित कर सकते हैं। लार्ड डडले के शब्दों में "नेपोलियन ने अतीत के गौरव पर संदेह पट डाल दिया व भविष्यत् की ख्याति को असंभव बना दिया।" तत्कालीन लेखकों की प्रत्यक्ष वाणियां आज के अनुसन्धाता के लिए भी शाश्वत सत्य है।

"वह महत्ता की चरम सीमा तक पहुँचा हुआ था, किन्तु सद्गुण उसमें नहीं थे" फ्रांसीय लेखक डी ताकुई विले का यह कथन यद्यपि अतिरंजित है, तथापि यह सनातन हो चुका

है। इस युक्ति के दूसरे अंश का हम समर्थन नहीं करते। वस्तुतः नेपोलियन में सद्गुणों का प्राचुर्य था। हम उसकी महत्ता पर तो संशय भी नहीं कर सकते। वह एक अलौकिक शक्ति व प्रतिभा संपन्न व्यक्ति था। उसकी यही शक्ति और प्रतिभा युग-युगों तक मानव को प्रभावित करती रही है और रहेगी।

१—जन्मजात नायक

जन्म से ही नेपोलियन मानव जाति का नेता था और अपने देशवासियों की धमनी की गति को अच्छी तरह पहचानता था। सैनिकों पर इसका प्रभाव असीम था। इटली के प्रथम आक्रमण मे नेपोलियन ने इसको प्रमाणित किया—"हम तुम्हे विश्व की समृद्धिशाली व उर्वर समतल भूमि मे ले जायेंगे, जहां तुम्हे गौरव सम्मान और प्रचुर अर्थ मिलेगा" (सैनिकों के प्रति नेपोलियन) यह सत्य है कि सैनिकों को उत्तेजित करने का यह एक निकृष्ट उपाय था। परन्तु राजनैतिक विस्तार और नैतिक प्रगति का समन्वय असंभव है।यह एक निस्सन्देह तथ्य है कि इसी ने छोटे २ बालकों को सेनापति व एक विद्रोही सेना को वीर योद्धाओ के रूप में परिणत करके जनता पर अलौकिक शक्ति की अमिट छाप लगा दी, उसे अनुप्राणित, अनुशासित और असाधारण क्षमता प्रदान की।

"शब्द में कितना जादू और धारणा में कितनी क्षमता है" इसका प्रदर्शन-सबसे पूर्व नेपोलियन ने विश्व के सामने किया। यही एक महान् शक्ति पुंज था, जो युद्ध घोषणा के साथ साथ ही विजय के संवाद अपने देश को भेजता था—जिनके प्रकाशन के के लिए संवाददाता परस्पर झगडते थे। जनता पर स्वाधीनता एकता, समानता का प्रयोग करके इसने इतना मुग्ध कर दिया था कि वह इनको सुनते ही नेपोलियन को उल्लास के साथ आतंक के राज्य से "मुक्तिदाता" कह कर सम्मानित करती थी।

अन्तर्राष्ट्रीय नीति का भी यह विशेषज्ञ था, बुनापार्टी को (उ के स्थान पर ओ) बोनापार्टी बना कर इसने नीति-कौशल का प्रत्यक्ष प्रदर्शन किया। ;साम, दाम, भेद, दंड इन चारों प्रणालियों का तो इससे अच्छा प्रयोग शायद ही कोई जानता हो ? यह उत्कोच, कूटनीति व धमकी का पारदर्शी था।

२—राजनैतिक सफलता

नेपोलियन ने कहा—"मैंने फ्रांस के राजमुकुट को नली में पाया और उसे तलवार के कोण से उठा कर मस्तक पर सुशोभित किया"। सम्राट की यह उक्ति तत्कालीन शासन की अव्यवस्थाओं और अराजकताओं को प्रमाणित करने के साथ साथ नेपोलियन द्वारा उसके उत्थान और नवीन प्रगति प्रदान करने का संकेत करती है। उसने फ्रांस की वैदेशिक आक्रमणों से रक्षा की एवं उसे दलगत राजनीति से उठा कर आंतरिक शांति स्थापित की। यद्यपि नेपोलियन ने गणतन्त्र का अवसान किया, पर विप्लव को विनाश से बचाया। अपने १५ वर्ष के राज्य काल में, उसने विप्लव की सब से बड़ी देन के रूप मे सामाजिक समानता और औद्योगिक स्वतंत्रता की स्थापना कर पुरातन-पद्धतियों को युग-युगों तक के लिए समाप्त कर दिया। नेपोलियन ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता, भाषण, लेखन व प्रकाशन स्वाधीनता का प्रतिरोध किया, किन्तु उसका यह अवरोध निरंकुश राजतंत्र की तरह नहीं था, अपितु शक्ति-पुंज के संचय के लिए था। वह स्वयं अपने में एक महान् एकता का प्रतीक और फ्रांस की विशालता का पुजारी था। इसका मूल-सिद्धान्त था-योग्यता और प्रभाव—जो कि शासन की व्यवस्था के लिए हर समय अनिवार्य है। यद्यपि कभी २ उसके द्वारा अपरिसीम अत्याचार हुए, फिर भी यह इसी की देन थी कि शासन तंत्र मे योग्यता, परिश्रम, साधुता को संमान पूर्ण स्थान
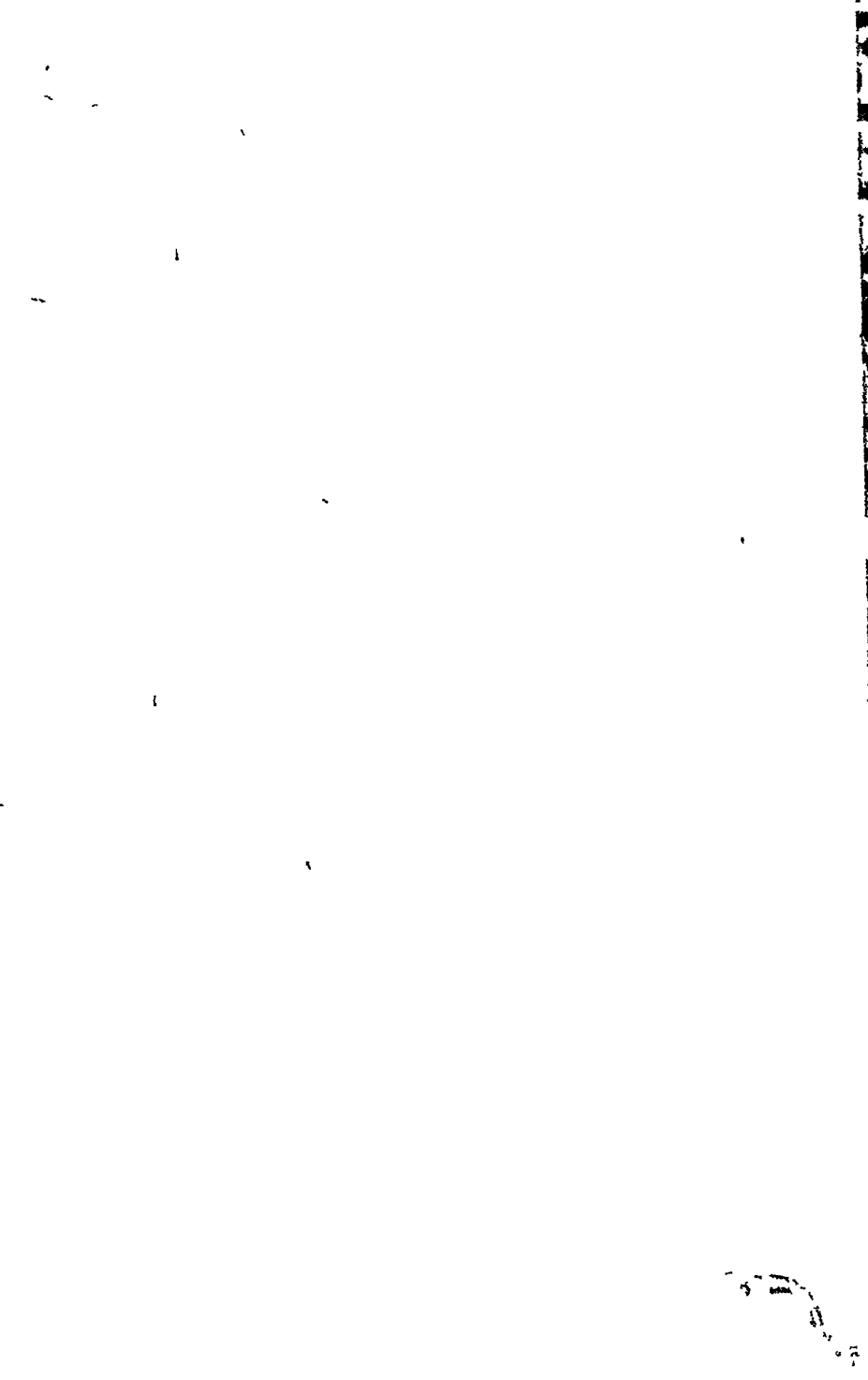
नेपोलियन प्रथम (१७६९-१८२१)

मिला। अतिव्ययी होने पर भी इसने कभी ऋण का नाम भी नहीं लिया—जिससे हम इसके आर्थिक सुधारों का सहज ही अनुमान लगा सकते हैं। इसके ये सुधार आज भी हमें चमत्कार और रहस्यपूर्ण प्रतीत होते हैं। नेपोलियन के नियम-संग्रह राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली, चित्रकला का प्रोत्साहन आदि युग-युगों तक इतिहास में अमर रहेंगे। संक्षेप मे इसने अपनी प्रत्यक्ष राजनैतिक सफलता के द्वारा फ्रांस को सौंदर्य, कला और यूरोप का सांस्कृतिक केन्द्र बना दिया। उसकी विचित्र राजनीति के कारण "आज भी फ्रांस को यह निर्णय करना है कि नेपोलियन की नीति अच्छी थी या बुरी, किन्तु उसके प्रति शाश्वत और निष्पक्ष कृतज्ञता भी प्रकट करना है"। इसने अपने नाम के साथ साथ फ्रांस को भी विख्यात कर दिया।

यूरोप के लिए नेपोलियन की देन असंख्य थी, परन्तु फ्रांसीय समसामयिक ऐतिहासिक लामर्टायन कहता है-"वह आधुनिक काल का एक महा पुरुष था, पर उसके द्वारा बनाया हुआ क्षेत्र मानव जाति के लिए ऊषर भूमि थी"। इस उक्ति का हम समर्थन नहीं करते। वेनिस का विभाजन राजनैतिक वास्तविकता में "प्रथम महत्वपूर्ण रचना" कहा गया था। नेपोलियन अपने अधिकृत प्रदेशों को फ्रांस के नवीन सुधारो से ओत-प्रोत कर, उन्हें उत्थान की ओर ले गया व यूरोप के पुनर्गठन का मार्ग दिखाया। पोलेण्ड का जातीय आन्दोलन, इटली की राष्ट्रीयता, पवित्र रोमन साम्राज्य का पतन, जर्मनी की एकता नेपोलियन की इतिहास के लिए वपौती है। लखार्ट का कहना है—"नेपोलियन ने अपनी नीति से प्राचीन पद्धति एवं अंध-विश्वास का अवसान किया व महाद्वीपों में एक नवीन चैतन्य जागृत किया"।

३—सामरिक दक्षता

अपूर्व और असाधारण रणकौशल में तो इस महापुरुष ने अलैग्जेण्डर, हैनिबल व जूलियस सीजर को भुला दिया। इसकी उपर्युक्त विजयगाथाओं एवं वैद्युतिक गति से सैनिक संचालन, पर्वत का अतिक्रमण व तोप के निपुण नियंत्रण की कथा को पढ़ कर प्रत्येक शिक्षित मानव यह जान सकता है कि वह विश्व का कितना बड़ा योद्धा था। इसकी पर्यवेक्षण शक्ति अत्यन्त सूक्ष्म थी—जिसके कारण सैनिकों की छोटी सी छोटी घटनाएँ भी इससे अपरिचित नहीं रहती थी। इसके व्यक्तित्व का प्रभाव हम वहाँ देखते हैं—जब कि वह एक विस्तृत निर्वासन के पश्चात् फ्रांस में पदार्पण करता है। उसका नाम सुनते ही शासक पलायन करता है, राज्यसत्ता स्वयं उसके चरणों में झुक जाती है और उसकी प्रेरणा-मात्र से ही असीम सैनिक-संगठन स्थापित हो जाता है। इमर्सन कहता है—"इसने कभी भी दैव से विजय प्राप्त नहीं की अपितु सामरिक विजय से पूर्व ही वह विजय का चित्र मन मे अंकित कर लेता था"। सैनिक परिचालन में तो इसीलिए आज भी इसे रणनीति का पिता कहा जाता है।

सैनिक संचालन को यह बड़ा महत्त्व देता था, इसीलिए इसने एक बार कहा था—"युद्ध मे विजय प्राप्त करने के लिए बहुसंख्या उतना महत्त्व नहीं रखती, जितना कि सैनिक-संचालन व्यवस्थित सैनिक परिचालन ही युद्ध की अर्द्ध विजय है"।

४—नेपोलियन का चरित्र

वह एक अलौकिक शक्ति सम्पन्न महापुरुष था, जो कि ३५ वर्ष की आयु में ही सम्राट् बन गया था। श्रम की असीम शक्ति इसमें विद्यमान थी—वह इसे जीवन का महत्त्वपूर्ण तत्त्व मानता था। इसीलिए उसने कहा था—"श्रम हमारा तत्त्व है

और इसी के लिए हमारा जीवन है। मेरी श्रम शक्ति का मैं अभी भी अनुमान नहीं कर सका"। समय समय पर दिन में यह २० घंटे तक काम कर लेता था, ३० मील प्रतिदिन सेना के साथ पैदल चल सकता था। वाटरलू के चार दिन के युद्ध में यह लगातार ३७ घंटे घोड़े पर सवार रहा था और केवल २० घंटे सोया था। इससे इसकी शारीरिक शक्ति का परिचय मिल जाता है।

नेपोलियन एक जनप्रिय लेखक और प्रभावशाली वक्ता था। फिशर ने कहा है—"नेपोलियन पत्रकारों का राजा और युद्ध संवाददाताओं का पिता था"। यह अपने को एक असाधारण व्यक्ति समझता था। इसकी लेखनपटुता का हम इसी से अनुमान लगा सकते है कि इसके हाथ से लिखे हुए ७२ हजार प्रकाशित पत्र ३२ लिपियों में व ५० हजार पांडुलिपियों में आज भी पेरिस के अद्भुतालय को सुशोभित कर रहे हैं। यह अत्यन्त निर्दयी, कर्कश, स्वार्थी, अभिमानी एवं गंभीर व्यक्ति था। महिलाओं के संबन्ध में इसके विचार अत्यन्त संकीर्ण थे—यह कहता था "स्त्री प्रकृतितः पुरुष की दासी है; और जिस प्रकार वृक्ष का फल मालीको मिलेता है, उसी प्रकार इसका पुरुष को"। निर्वासित जीवन मे अपने कुटुम्ब के सम्बन्ध में कहता था—"यदि भाग्य ने हमें फिरसे राजा बना दिया, तो मैं उसे केवल जीवन—यापन के लिए एक भवन और कुछ अर्थ दूंगा"। कुटुम्ब से इसे सब से अधिक हानि उठानी पड़ी थी। इसकी स्मरण शक्ति व धारणा भी असाधारण थी। उसने अपने मन की तुलना करते हुए कहा—"यह एक असंख्य छिद्रों वाली आलमारी है। जब मैं किसी विषय पर विचार करता हूं, तो उस से सम्बन्धित छिद्र को खोल देता हूं और शेष को बन्द कर देता हूँ। सोने के समय सब छिद्र बन्द रहते है"। रैप कहते

हैं—"लोगों ने उसे कर्कश और क्रोधी व्यक्ति कहा है, परन्तु मैंने उसे दयालु, धैर्यवान्, उपकारी व्यक्ति के रूप में पाया।"

(ज) समीक्षा

इसने अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए दूसरे के रक्त को पानी की तरह बहाया—यह क्षमनीय नहीं है। यह विश्व साम्राज्य का एक स्वप्न देखता था, वह उसके प्रभुत्त्व का सार था। इसके साम्राज्य की शक्ति और प्रतिभा ही भित्ति थी। इसकी अभिलाषा की वेदी पर फ्रांस के असंख्य युवक बलिदान हो गये। यद्यपि यह देशभक्त था किन्तु उसकी यह देशभक्ति स्वतः ही एक गलत दिशा की ओर चली गई थी। एकता व स्वाधीनता की धारणा का इसने ध्वस कर दिया व समय समय पर अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए इनका उपयोग किया। विप्लव द्वारा प्रवर्त्तित जनता के वेग को इस प्रकार के निम्न मार्ग की ओर ले गया—जिससे गणतंत्र फ्रांस साम्राज्यवादी हो गया और निरंतर युद्ध मे लगा रहा। यूरोप की जनता की दृष्टि में यह शांति का शत्रु और राष्ट्रीय अधिकारों का घातक था। प्रजातंत्र वाद के प्रेमी आज भी उसे—उसके अत्याचारों, अन्यायों व जनता की दुर्दशा के कारण—क्षमा नहीं करते। नेपोलियन समय की गति को नहीं समझ पाया। सबसे बड़ी त्रुटि इसमें यह थी कि यह कभी भी सीमा मे नहीं रह सकताथा, न मध्यम मार्ग पर ही चलता था व अतिशयता को प्रेमी था।

हेज़िन का कथन है कि—"यह जितना ही महान् था, उतना ही नीच था। यह जितना निर्लज्ज था उतना ही अंधविश्वासी था"। वह ऐसा महा पुरुप था—जिसके संबन्ध में ऐतिहासिकों ने समान रूप से निन्दाएँ की, जितनी किसी भी ऐतिहासिक व्यक्ति की नहीं की गई। वास्तविक बात तो यह है कि हम उसका विश्लेषण नहीं कर सकते।

क्या नेपोलियन वस्तुतः महान् था ?

यदि महान् का अर्थ नैतिक गुण, बुद्धि या चैतन्य का समन्वय है, तो वह महान् नहीं था। परन्तु निस्सन्देह वह एक असाधारण, अलौकिक प्रतिभासंपन्न, उन्नत महापुरुष था। यदि महान् का अर्थ दमन के लिए स्वाभाविक और मानव को अतिक्रमण करने वाली शक्ति है, तो नेपोलियन निश्चय ही महान् है। चैतन्य और शक्ति से संपन्न प्रतिभा का प्रकाश इस महापुरुष में इतना बढा हुआ था—जितना संसार के किसी व्यक्ति में भी नहीं था। मानवीय सामर्थ्य को यह इतने उच्च शिखर पर ले गया—जिसके संबन्ध में हमे नियत ज्ञान असंभव है। इसीलिए नेपोलियन ने कहा था-"असंभव शब्द मूर्खों के कोश में मिलता है"।

नेपोलियन ने कहा—"इतिहास संभवत. हमारा उल्लेख नहीं करेगा क्योंकि हम राज्यच्युत हो गये। यदि हम अपने वंश की स्थापना करते, तो हमारा नाम प्रातःस्मरणीय हो जाता"। वस्तुतः पतन होने के पश्चात् भी उसका नाम इतिहास में अमर और अमिट है। रोजवरी का कथन है—"इतिहास में ऐसा कोई नाम नहीं है-जो साम्राज्य, चमत्कार और अन्तिम विपत्ति में पूर्णशः प्रसिद्ध हुआ हो। नेपोलियन ने स्वयं को अलौकिक शक्ति के प्रयोग से उन्नत और अप्रयोग से पतित किया। इसका पतन प्रतिभा की अतिव्ययिता से हुआ"। फ्रांसीय ऐतिहासिक मिग्नेट् ने उसे—"वर्त्तमान काल के महादानव" की उपाधि दी। तत्कालीन जर्मन कवि गेटे ने कहा कि—"नेपोलियन की कहानी हमे इतनी प्रभावित करती है—जितना कि ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन। हम अनुभव करते हैं कि इनके चरित्र में कुछ अभाव है, पर वह क्या है यह नहीं कह सकते"।

५—मैटर्निक युग

(क) यूरोप की शक्तिगोष्ठी—(१८१५ से १८२५)

यूरोप के इतिहास में १८१५ से १८४८ तक के काल को यदि हम गत ७५ वर्षों से संतुलित करते हैं, तो इस समय की गति यांत्रिक औद्योगिक व साहित्यिक प्रवाह को छोड़कर अतिशय अपूर्ण थी। इसलिए इस काल के यूरोप मे कोई विशेष अन्तर नहीं था। वेल्जियम हॉलैण्ड से, यूनान तुर्की से विच्छिन्न हो गया। राजसत्ता मे सामान्य परिवर्तन हुआ। फ्रांस स्वयं को राजसत्ता की अपेक्षा गणतंत्रवादी मानता था। प्रजातन्त्र के पुजारी हताश होकर पहले से भी अधिक उग्र थे। विजयी राजतन्त्र पहले से अधिक प्रतिशोधात्मक हो गया था। इसके अतिरिक्त अन्य भी सामान्य परिवर्त्तन हुए, परन्तु १६ वी शताब्दी के महत्त्वपूर्ण राजनैतिक कार्य भविष्य के गर्भ में थे। राजनैतिक विश्व में इस युग को "असफलता का काल" कहा जा सकता है। प्राच्य समस्या के अतिरिक्त दो रचनात्मक धारणाओं का उदय इसी समय हुआ—जिनमे प्रथम राजसत्तावादियो द्वारा संस्थापित यूरोप की शक्तिगोष्ठी और द्वितीय जनता द्वारा प्रवर्त्तित सहिष्णु राष्ट्रीयता थी। विभिन्न कारणों के कारण प्रायोगिक राजनैतिक क्षेत्र में ये दोनों ही धाराएँ कृतकार्य नहीं हो सकी। यह समय एक अशान्त संघर्ष का युग था-जिसमें एक ओर विप्लव के सिद्धान्तों की प्रतिक्रिया व दूसरी ओर प्रजातंत्र और राष्ट्रीयता की स्थापना में टक्कर हो रही थी, किन्तु इन दोनो मे किसी सिद्धान्त की भी विजय नहीं हुई।

१—वियाना कांग्रेस (सितम्बर १८१२ से जून १८१५)

१६ वीं शताब्दी की यूरोपीय शासन प्रणाली की नींव वियाना कांग्रेस मे स्थापित हुई। नेपोलियन के १७ सितम्बर
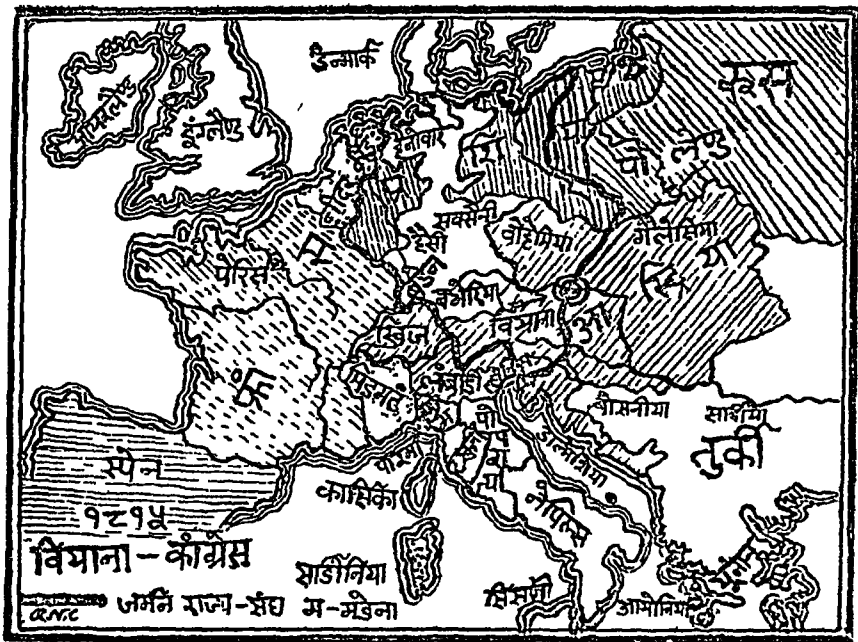
वियाना-कांग्रेस (१८१५)

१८१४ के प्रथम राज्यत्याग के अनन्तर वियाना शहर में यूरोप के प्रमुख राष्ट्रों का सम्मेलन हुआ—जिस विषय में हार्नशा का कथन है कि—"यूरोप के इतिहास में मध्ययुग के अवसान के पश्चात् इतना महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय संमेलन नहीं हुआ"। कभी भी इतिहास में राजा और राजकुमार, पुरोहित और प्रतारक, अध्यापक और राजनैतिक, सैनिक और कूटनीतिक, दूत और दुस्साहसी इतनी मात्रा में एकत्रित नहीं हुए। तत्कालीन छै शासक इसमे संमिलित नहीं हुए—जिनमें आस्ट्रिया के फ्रांसिस प्रथम, रसिया के अलैग्जेण्डर प्रथम व प्रशिया के फ्रैडरिक विलियम तृतीय मुख्य थे। आस्ट्रिया के प्रधान मन्त्री मेटर्निक—जिसने नेपोलियन के पतन की प्रधान योजना बनाई थी—इस महासभा के अध्यक्ष थे। प्रशिया के मुक्ति संग्राम के प्रवर्त्तक हॉडनवर्ग, इंग्लैंड के प्रसिद्ध सेनानायक वेलिंगटन व परराष्ट्र मन्त्री कॉसिलरे एवं रूस के मन्त्री नेसलरोड इसके प्रमुख अतिथि थे। राजा लुई अष्टादश के प्रतिनिधि रूप में तॉलेराँ भी आमंत्रित हुए। आस्ट्रिया के दिवालिया एवं स्वार्थी राजा फ्रांसिस प्रथम ने अपनी राजधानी वियाना में डेढ लाख रुपये प्रतिदिन व्यय कर महान् आमोद प्रमोद व मनोरञ्जनात्मक सामग्री के साथ इन सबका स्वागत किया।

(क) विभिन्न समस्यायें

इसमें सम्मिलित राष्ट्र प्रतिनिधियों के संमुख ५ प्रमुख समस्याएँ प्रस्तुत हुईं। (१) फ्रांस के चारो ओर एक बांध बांध दिया जाये व शक्तिगोष्ठी उसका निरीक्षण करे—जिससे यदि विप्लव की चिनगारी द्वितीय नेपोलियन को जन्म दे, तो यूरोप के अन्य राष्ट्र अशान्त व आक्रान्त न हो जायें। (२) पवित्र रोमन राज्य के स्थान में जर्मन राष्ट्रों के संगठन के लिए एक नवीन संविधान का निर्माण। (३) निम्न राष्ट्रों के

भविष्य का निर्णय—(अ) वार्सा (पोलेण्ड के अंशों से नेपोलियन द्वारा स्थापित) (आ) सैक्सोनी (नेपोलियन के समर्थन में राष्ट्र संघ के साथ युद्ध करने वाला विश्वासघाती राष्ट्र) (१) फिनलैण्ड (रसिया द्वारा १८०६ में स्वीडेन से हस्तगत) (४) इटली का पुनर्विभाजन, (५) कुटिल डेन्मार्क की नेपोलियन की सहायता के कारण दंड व्यवस्था एवं राष्ट्रसंघ की प्रचुर सहायता के निमित्त स्वीडेन को पुरस्कृत करना।

उपर्युक्त कुछ प्रश्न अधिवेशन से पूर्व ही सन्धिपत्रों द्वारा निर्णीत किये जा चुके थे। १८१२ में स्वीडेन ने जब रसिया की सहायता दी तो "अॅबो" की संधि द्वारा उसे नार्वे का प्रदेश दे दिया गया था। कॉलिर्स्क् की संधि में (१८१३)–जिसने कि प्रशिया को चतुर्थ राष्ट्रसंघ में सम्मिलित किया था– प्रशिया की क्षति पूर्ति की प्रतिज्ञा की जा चुकी थी। तिल्सित की संधि द्वारा आस्ट्रिया को भी टायराल् और डाल्मेशिया प्रदेश के आधिपत्य का आश्वासन दिया गया था। हॉलैंड के राष्ट्रपति को बेल्जियम प्रदान करने का विश्वास दिलाया गया था। सार्डिनिया को आशा दी गई थी कि सवाय व पिडमंट को पुनः उनके अधिकृत किया जायेगा व नाइस और जिनोवा को भी इनके राज्य में संमिलित कर दिया जायेगा। इसीलिए प्रतिनिधिवर्ग के समक्ष सार्वजनिक संधि एवं व्यक्तिगत प्रतिज्ञाएँ स्वतंत्र निर्णय में बाधाएँ डालती थीं, क्योंकि उनके हाथ पहले ही बँध गये थे। इन्हीं प्रतिज्ञात सिद्धान्तों के आधार पर कांग्रेस ने वार्तालाप व अंतिम निर्णय किये।

(ख) कांग्रेस के सिद्धान्त

विजयी को पुरस्कृत व पराजित को दंडित करना कांग्रेस का प्रथम विप्लव से पूर्व की स्थिति का पुनरावर्त्तन द्वितीय, स्थायी शान्ति का प्रबंध तृतीय एवं

वैध सिद्धान्त की स्थापना चतुर्थ कार्यक्रम था। इन सब राष्ट्रों के पारस्परिक स्वार्थ इतने उभरे हुए थे कि वार्तालाप के समय अनेक बार संघर्ष होते होते बचा। पोलैण्ड और सैक्सोनी-का प्रश्न सब से अधिक विवाद-ग्रस्त था। रसिया ने १८१३ में सेक्सोनी से वार्शा को अधिकृत कर लिया था व वह समग्र पोलैण्ड पर अपना आधिपत्य चाहता था, परन्तु आस्ट्रिया और इंग्लैंड इसके विरोधी थे। प्रशिया क्षतिपूर्त्ति व पुरस्कार के रूप में सैक्सोनी लेना चाहता था, पर आस्ट्रिया अपने पड़ौसी की इतनी शक्तिशालिता का विपक्षी था। इन समस्याओं को हल करने के लिए विरोध के रूप में आस्ट्रिया, इंग्लैंड और फ्रांस ने गुप्त संधि द्वारा रसिया और प्रशिया के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। सन् १८१४ के अंतिम भाग में इन्हीं कारणो से कांग्रेस मे दो विपरीत दल बन गये थे व इसी स्वर्ण सुयोग में निर्वासित नेपोलियन एल्बा द्वीप से आ कर पुनः फ्रांस का प्रभु बन गया। राष्ट्रसंघ ने युद्ध घोषणा की और वाटरलू के युद्ध में नेपोलियन का पतन हो गया व लुई अष्टादश ८ जुलाई १९१५ मे फ्रांस का पुनः अधिपति हो गया और कांग्रेस ने अपने अपूर्ण काम को ६ जून को पूर्ण कर दिया।

(ग) कांग्रेस के निर्णय

(अ) *फ्रांस*:—महासभा ने निम्नरूप से यूरोप के मान-चित्र का पुनर्गठन किया। पेरिस की प्रथम सन्धि के अनुसार फ्रांस की सीमा को विप्लव से पूर्व की तरह संकीर्ण कर दिया गया एवं फ्रांस के संपूर्ण उत्तरी दुर्ग राष्ट्रसंघ की सेना के अधीन कर दिये गये। प्रशिया का विरोध करते हुए भी फ्रांस ने आल्सस् और लोरेन को अपने अधिकार में रखा। पुर्तगाल से फ्रांस को गयाना और स्वीडेन से गुवाडालुप, इंग्लैण्ड से

मार्टीनिक व बुर्बुन-द्वीप मिल गया, परन्तु फ्रांस को चारों ओर शक्तिशाली राष्ट्रों—हॉलैण्ड, प्रशिया, सवाय जिनोवा-द्वारा परिवेष्टित किया गया। तालेराँ के शब्दों में "फ्रांस अब विशाल नहीं रह गया, अपितु महान् बन गया"।

(आ) *इंग्लैण्ड:*—यूरोप में इंग्लैण्ड को मॉल्टा, हैलिगोलेण्ड, आयोनियन द्वीप पुंज मिले—जिससे भूमध्यसागर, एल्ब नदी के मुख प्रदेश व एड्रियाटिक समुद्र पर उसका प्रभुत्त्व हो गया। फ्रांस से मोरिशस, टुबागो व सैन्ट लूशिया, हॉलैण्ड से लंका व दक्षिण अफ्रीका के गुडहोप अन्तरीप, स्पेन से ट्रिनिडेड एवं आस्ट्रेलिया के दक्षिण मे टस्मेनिया लेकर इसने अपने औपनिवेशिक साम्राज्य की वृद्धि की।

(इ) *प्रशिया:*—सैक्सीनीका आधाभाग, बर्ग, वेस्टाफौलिया का एक अंश, स्वीडेन से पमारेनिया, पोलैण्ड से पोजेन, डाञ्जिक, थार्न व प्रथम-द्वितीय विभाजन में अधिकृत प्रदेश प्रशिया को मिले। इस प्रकार दश लाख पोल प्रशिया के अधीन हो गये व जर्मनी मे प्रशिया ही एक शक्तिशाली साम्राज्य बन गया।

(ई) *आस्ट्रिया:*—बभेरिया से टायराल व सल्जबुर्ग, पोलैण्ड से पूर्व गलेशिया, इटली से वनेशिया, लंबार्डी, इलीरिया, डाल्मेशिया, कैटारो के बन्दरगाह आस्ट्रिया के अधिकार में आ गये। यद्यपि आस्ट्रिया जर्मन धारासभा का अध्यक्ष था, परन्तु जर्मनी मे उनका प्रभाव प्रशिया से कम हो गया। इटली आस्ट्रिया के प्रभुत्त्व का विस्तार होने से इटली की राष्ट्रीयता में एक बाधा उपस्थित हुई।

(उ) *जर्मनी:*—नेपोलियन द्वारा निर्मित छोटे छोटे ३९ राज्य समूहों से एक महासंघ बनाया गया—जिसकी धारा-

सभा फ्रैंकफोर्ट नगर में प्रारम्भ हुई। प्रत्येक राज्य को एक एक न्यायालय व सैन्यविस्तार का अधिकार था, परन्तु धारासभा में किसी प्रस्ताव की स्वीकृति के लिए सर्व संमति अपेक्षित थी। आस्ट्रिया ही इस सभा का अध्यक्ष था। संघ का एक सदस्य दूसरे के प्रति युद्ध घोषणा नहीं कर सकता था, वैदेशिक युद्ध घोषणा धारासभा ही कर सकती थी। जर्मनी के इस महासंघ को जान बूझकर सामरिक, प्रशासनिक और न्यायशक्ति से वंचित व दुर्बल किया गया था, क्योंकि फ्रांस और आस्ट्रिया इसे शक्तिशाली नहीं देखना चाहते थे। आस्ट्रिया और प्रशिया मे धारा सभा में संघर्ष होने से जर्मनी की उन्नति रुक गई। वैधानिक राजतंत्र की भी व्यवस्था नहीं थी।

(ऊ) *रसिया*:—फिनलैण्ड, बेशेरेबिया व वार्शा के अधिकांश एवं रसिया के अधिकृत पोलैण्ड को एक राज्य बना कर रसिया को दिया गया। क्रकाऊ नगर को एक स्वतंत्र शहर घोषित किया गया।

(ए) *इटली*—बुरबुन वंश के फार्डिनेण्ड चतुर्थ को नेपिल्स व सिसली का पुनः अधिपति बना दिया गया। पोप पायस सप्तम को रोम पर पुनः स्थापित किया गया। आस्ट्रिया के हैब्सवर्ग वंश के राजन्यों को टस्कनी, मोडेना, पारमा, पियाकेंज़ा आदि प्रदेश पुनः दे दिये गये। संधि के अनुसार जिनोवा शहर सार्डीनिया को दिया गया व वेनिस के गणतंत्र को पुनः स्थापित किया गया।

(ऐ) *स्विट्जरलैण्ड*—स्विट्जरलैण्ड (भैलेश, न्यूचैटेल जिनोवा के समन्वय से) २२ छोटे छोटे प्रदेशों का स्वशासित शासन बन गया और उसे संघर्ष से सर्वदा निष्पक्ष प्रमाणित किया गया। उसकी स्वाधीनता गोष्टी द्वारा स्वीकृत की गई।

(ओ) स्वीडेन—नार्वे-जिसे इसने १८१४ में जीत लिया था-स्वीडेन को दे दिया गया।

(औ) हालैण्ड—बेल्जियम जनता की असहमति से फ्रांस को रोकने के लिए हालैण्ड में मिला दिया गया।

(अं:) स्पेन—ट्रिनीडड स्पेन से इंग्लैण्ड के हाथ में चला गया, परन्तु आलिमेञ्जा—जो कि पुर्तगाल से स्पेन ने १८०१ में लिया था, स्पेन ने उसे अपने ही अधिकार में रखा। ओलि-मेञ्जा को पुर्तगाल को अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार न दिला कर इंग्लैण्ड ने विश्वासघात किया।

कांग्रेस का दूसरा निर्णय तालेरां के वैध सिद्धान्तों के आधार पर नेपोलियन द्वारा प्रच्यावित और निर्वासित यूरोपीय नरेन्द्रमण्डल का पुनः स्थापन था, परन्तु यह सिद्धान्त केवल वंशानुक्रमिक राजाओं पर प्रयुक्त किया गया। फ्रांस से लु[ई] अष्टदश, स्पेन और नेपिल्स में बुरबुनवंश के राजाकी पुनरावृ[त्ति] सबसे महत्वपूर्ण थी।

महासभा का तीसरा निर्णय यह था कि प्रत्येक राजा अ[पनी] प्रजा को नवीन संविधान देंगे, परन्तु इससे पुनः स्थापित [अधि]कांश नरेशों की मनोवृत्तियाँ समय क स्रोत की अवहेलना [करती] हुई स्वेच्छाचारिता की ओर बढ़ी एवं विप्लव से पूर्व की [भाँति] निरकुश हो गई। महाद्वीप में फ्रांस के दूरदर्शी ताले[रां] रसिया के सहिष्णु शासक अलैग्जेण्डर ही केवल उदा[र] लंबी थे-जो समय की गति को पहचानते थे। शक्ति[शाली] की जनता की विद्रोहात्मक शक्ति से सुपरिचित थी[।] उसने पेरिस की संधि में यह शर्त रखी थी कि लुई अ[ष्टदश] प्रजा को विधान देंगे। कांग्रेस ने जर्मनी [की] ... प्रतिनिधि मंडल (धारा सभा) की व्यवस[्था]

यह उल्लेखनीय है-इन सब स्थानों पर "विधान" शब्द को प्रयुक्त नहीं किया गया। नीदरलैण्ड, स्विट्जरलैंड, पोलैण्ड व नार्वे इन चार राष्ट्रों को भी इस निर्णय के फलस्वरूप विधान मिले।

चतुर्थ निर्णय के रूप में दासप्रथा, सामुद्रिक यातायात का नियंत्रण, प्राच्य समस्या एवं स्पेन के अमेरिकन उपनिवेशो को प्रस्तुत किया गया। दासप्रथा के सम्बन्ध में इंग्लैण्ड के प्रयत्नों से एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव द्वारा इसे अत्यन्त निन्दित एवं घृणित किया गया, और इसे मानवीय आधारभूत अधिकारो एवं सभ्यता के विरुद्ध माना गया। इसके अनुसार अमेरिका के उत्तरी राष्ट्र, डेन्मार्क, स्वीडेन एवं हॉलैण्ड ने इस प्रथा का अवसान कर दिया परन्तु स्पेन और पुर्तगाल ने इसकी समाप्ति मे योग नहीं दिया। सामुद्रिक यातायात के नियंत्रण के लिए—विशेषतः वे नदियाँ व समुद्र तट जिन पर एक से अधिक सीमा मिलती है—नौ नयन नियम बनाया गया। दलित यूनान निवासियो ने तुर्की के अत्याचार से त्रस्त होकर महासभा के सम्मुख मुक्ति की याचना की, पर यूरोप की शक्तिगोष्ठी मे परस्पर इतना मतभेद था कि प्राच्य समस्या का कोई क्रियात्मक समाधान नहीं कर सकी, केवल कागजी संतोप दिया गया। यही प्रणाली स्पेन के अमेरिकन उपनिवेशो के संबन्ध में अपनाई गई।

(घ) समीक्षा

सिंहावलोकन से विदित होता है कि वियाना का यह महान् सम्मेलन अनेक दृष्टियो से निन्दनीय था। इसने ऊँचे ऊँचे सिद्धान्तो और भावधाराओ को बड़े बड़े प्रभावपूर्ण शब्दो में स्वीकार किया, किन्तु उन्हे प्रयोग में नहीं लाया गया। कतिपय लेखकों का यह भी मत है कि आने वाली एक शताब्दी का मुख्य कार्यक्रम महासभा के निर्णयों को भंग

करना ही रहा। उनके निर्माता कूटनीतिक, १८ वीं शताब्दी की संकीर्णताओं के पात्र, विप्लव द्वारा प्रवर्तित नवीन सिद्धान्तों के घातक और राजतंत्र के पक्षपाती थे। महासभा के महामंत्री जेण्ट्स ने सत्य ही कहा—"सामाजिक व नैतिक पुनर्गठन, राजनैतिक प्रणाली का पुनर्जीवन, राजनैतिक शक्ति के संतुलन से स्थायी शांति की सृष्टि आदि अलंकार पूर्ण शब्द केवल जनता को सान्त्वना, संमान व प्रभावित करने के लिए थे—वस्तुतः कांग्रेस का उद्देश्य था–विजित सदस्यों द्वारा अधिकृत प्रदेशों व संपत्तियों का विभाजन व वितरण"। यूरोपीय मानचित्र के पुनर्निर्माण की दृष्टि से महामंत्री का यह कथन न्यायपूर्ण है। हॅर्नशा कहते हैं कि "कांग्रेस का निर्णय क्षेत्र अत्यन्त संकुचित था–जैसा कि नार्वे स्वीडेन को वेल्जियम हालैण्ड को देने की प्रतिज्ञा कांग्रेस से पूर्व ही की जा चुकी थी। यदि इसे नहीं माना जाता तो युद्ध अनिवार्य था"।

कांग्रेस की नीति असहनीय व अन्यायपूर्ण थी, क्योंकि इसने राष्ट्रीयता के मूल सिद्धान्तों पर कुठाराघात किया था। प्रतिनिधि वर्ग ने पुरातन ऐतिहासिक विरोधों की अवहेलना करते हुए उस प्रकार की सीमाएँ निर्धारित की—जिससे शान्ति स्थिर नहीं रह सकी है। हेजन के शब्दों में "शक्ति का संतुलन ही इनका मुख्य लक्ष्य था। इन्होंने राष्ट्रीयता की उपेक्षा की, इसलिए इनके निर्णय भी आग्रह्य हो गये। ये तो केवल विजित संपत्ति के अधिक से अधिक स्वार्थी थे"। जिनोवा को सार्डीनिया व वेनेशिया, लंबार्डी को आस्ट्रिया के साथ संलग्न कर देना केवल छोटे छोटे राष्ट्रों को ध्वंस करना ही उद्देश्य रखता था। यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि जनता के हितों को राजसत्ता की बलिवेदी पर चढ़ा दिया गया।

प्रजातंत्र के प्रति कोई भी सहानुभूति नहीं प्रकट की गई,

क्योकि महासभा के सदस्यों की दृष्टि में प्रजातंत्र का अभिप्राय अशांति और अराजकता कीसृष्टि थी—जिसे दमन करना उनका ध्येय था। यही अर्थ उनके मत में विप्लव का था—जिसकी पुनरावृत्ति से बचने के लिए इनने पूर्ण प्रबन्ध किये। धार्मिक दृष्टिकोण से भी कांग्रेसने कैथोलिक राइन निवासियो को प्रोटेस्टेण्ट प्रशिया, व कैथोलिक पोलैण्ड निवासियो को यूनानी गिरिजा के उपासक रसियो के साथ लगा कर एक महान् अन्याय किया था। इनके वैध-निर्णय भी अपूर्ण थे—जैसे कि छोटे छोटे जर्मनी राज्यो व वैनिश पर उनका प्रयोग नहीं किया गया। ये प्रतिनिधि जनता के प्रेमी नहीं थे, अपितु राजसत्ता के हितैषी थे। संक्षेप में ऐलिशन फिलिप्स का यह कथन सत्य है कि "वियाना के अनीतिपूर्ण निर्णय भविष्य के लिए गुरुत्वपूर्ण थे—जिनसे यूरोप की शांति १८२०, ३० ४८, ५६, ६६, व १८७० मे भंग हुई"। प्रोफेसर हेज कहते हैं—"सदस्यो की रचना और नीति प्रतिक्रिया की विजय एवं विप्लव के पराजय का एक महान् समारोह है"।

इनके अतिरिक्त कांग्रेस की अनेक सफलताएँ भी थीं। यद्यपि प्रतिनिधियो का उद्देश्य संपत्ति का वर्गीकरण था, फिर भी उनने कोई विशाल परिवर्तन न करके सहिष्णुता का परिचय दिया व यूरोप को शांति का मार्ग दिखाया। वैध-सिद्धान्तों प्रयोग भविष्य की शान्ति की आशा में किया। शक्ति का संतुलन आंतरिक शक्ति को लक्ष्य में रख कर किया गया-जिससे एक शक्ति, दूसरी शक्ति का दमन न करे। राष्ट्रीयता का दमन भी अनेक नीतियों से अनिवार्य था, क्योंकि राष्ट्रीयता की चिरभक्त राष्ट्रीय जनता इस सिद्धान्त के प्रचार से सुखी होने की अपेक्षा अधिक दुखी हो चुकी थी एवं स्पेन व जर्मन आदि अनेक देशों में भी इसके परीक्षण से यह सिद्ध हो चुका था कि जनता अभी

इसके लिए क्षेत्र तैयार नहीं कर पाई है। इस समय तक यह कोई नहीं कह सकता था कि यही नवीन सिद्धान्त इतिहास को व्याप्त करेगा। इसीलिए प्रो० हॉर्नशा कहता है—"प्रतिनिधि भविष्यवक्ता नहीं थे, अतः उन राजनैतिकों की निन्दा करना शोभास्पद नहीं है"। सोभाग्य से ये न दार्शनिक, न आदर्शवादी व साधु ही थे, परन्तु योग्य व विचक्षण प्रायोगिक राजनैतिक थे-जो-शताब्दी के एक चतुर्थांश युद्ध काल के पश्चात्-यूरोप में शांति स्थापन के इच्छुक थे। प्रो० केटिलबी० महासभा के महत्व के सम्बन्ध में कहते हैं-"इतिहास में ऐसी बहुत अल्प महासभाएँ हुई हैं—जिनके निर्णय एक शताब्दी तक स्थिर रहे हों। परन्तु वियाना कांग्रेस के विषय में निस्संकोच घोषित किया जा सकता है कि इसके निर्णयों ने ४० वर्षव्यापी अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति, अभूतपूर्व आर्थिक उन्नति, व्यवस्था और मानसिक स्फूर्त्ति का प्रवर्त्तन किया"। महासभा ने एक प्रस्ताव द्वारा भविष्य में यूरोप की संपूर्ण समस्याओ के समाधान के लिए पुनः अधिवेशनो में समय समय पर मिलने का प्रवन्ध किया। संक्षेप में सामुदायिक रूप से यदि वियाना कांग्रेस को देखा जावे तो यह अंतर्राष्ट्रीय सम्मिलन, समन्वय, शांति व शक्तिगोष्ठी की स्थापना की ओर विशेष प्रगति थी। वियाना की व्यवस्था के पिछले २० वर्ष के महत्व-पूर्ण परिवर्तनों को स्वीकार करके राजनैतिक दृष्टि से एक नवीन युग की सृष्टि की। पश्चिमी विश्व की समस्याओं में रसिया के हस्तक्षेप और महत्व बढ़ गये पवित्र रोमन सम्राट के पतन को मान्यता दी और स्वीडेन भी एकाकी रह गया। जर्मनी राज्य का पुनर्गठन, यूरोप मे आस्ट्रिया की शक्ति संचय, प्रशिया की सामर्थ्यवृद्धि, और सार्डीनिया की महत्ता १६ वीं शताब्दी के इतिहास में उसने प्रदान की।

(२) पेरिसकी द्वितीय सन्धि (२० नवम्बर १८१५)

कांग्रेस के अनन्तर यूरोप की शक्ति गोष्ठी ने अत्यन्त
ाद विवाद के पश्चात् फ्रांस के दमन द्वारा यूरोप की शान्ति
क्षा के लिए पेरिस की द्वितीय सन्धि पर हस्ताक्षर किये ।
न्धि की अनेक शर्तें थीं । (१)फ्रांस की सीमा विप्लव के पूर्ववत्
हेगी व सवाय प्रदेशो को सार्डीनिया के व कुछ जिले
्विट्जरलैण्ड के अधीन कर दिये गये । (२) ७० करोड़ फ्रेंक
ुद्ध की क्षतिपूर्ति एवं राष्ट्रसंघीय सेनाओ के (जो कि इसके १८
ुर्गों की रक्षा करेगी) वार्षिक व्यय २५ करोड़ फ्रेंक प्रतिवर्ष
्रांस को देने होगे । (३) फ्रांस कला के उन भंडारों को-जो उसे
विभिन्न देशो से प्राप्त हुये थे-परावृत्त करेगा । इस सन्धि के
अनुसार ५ लाख प्रजा फ्रांस से अनाधिकृत, अर्थात् उसके
हाथ से निकल गई, आर्थिक हानि भी पर्याप्त हुई एवं कला के
भंडारों की पुनरावृत्ति से जनता में क्षोभ फैल गया ।

(३) पवित्र मैत्री (२६ सितम्बर १८१५)

रसिया के अलैग्जेण्डर प्रथम, आस्ट्रिया के फ्रांसिस प्रथम
प्रशिया के फ्रेडरिक विलियम तृतीय,तीनो महान् राजाओ ने
्मे और शांति की रक्षा के लिए ईसाके सिद्धान्तों को शासन
प्रयुक्त करने की घोषणा की । इस सन्धिपत्र द्वारा यह निर्णय
किया गया कि "शाश्वतधर्म का संबन्ध केवल व्यक्तिगत जीवन
र ही सीमित नहीं है, अपितु राज्य संचालन के प्रत्येक सोपान
उसका पथ प्रदर्शन अनिवार्य है"-हस्ताक्षर करने वाले ये
ीनो राजा "अभेद्य और पवित्रमैत्री के माध्यम से धर्म, शान्ति
ौर न्याय की रक्षा करेंगे । यूरोप की जनता एक ईसाई जाति
की अनुयायी होगी । ये तीन राजा स्वीकार करते हैं कि
नके देश मे परमात्मा के अतिरिक्त कोई सत्ताधिकारी नहीं

है"। इंगलैण्ड, तुर्की और पोप को छोड़कर यूरोप के अन्य सभी छोटे बड़े राष्ट्रो ने पवित्र मैत्री-कृत इस घोषणा का स्वागत और सम्मान किया।

प्रो० कैटिलबी कहते हैं—"पवित्र मैत्री एक संधि मात्र नहीं थी, परन्तु एक नवीन विश्वास की महत्वपूर्ण घोषणा थी—जो यूरोप द्वारा स्वीकृत की गई थी"। वस्तुतः यह मैत्री स्वेच्छाचारी सिद्धान्तो की दृढ़ता व अहिष्णुता की प्रगति को रोकने एक संगठित प्रयोग था। राजनैतिक दृष्टि से यह अनावश्यक था और कूटनीति का यह असफल अस्त्र था। अलेग्जेण्डर के अतिरिक्त किसी ने इस पर ध्यान नहीं दिया। इंग्लैण्ड के पर-राष्ट्रमन्त्री कोसेल्रे ने इसकी अस्पष्ट पवित्र सिद्धान्तता की निन्दा करते हुए कहा-"यह अविवेक पूर्ण उच्चतम रहस्यवाद है-जो इसके सदस्यों को अपरिमित और भयंकर मार्ग की ओर लेजायेगा"। मैटर्निक के शब्दो मे यह-"स्वार्थ की साधना थी। सम्राट् अलेग्जेण्डर की साधुता का प्रवाह था"। जेन्ट्स ने इसे "रंगमंच की सज्जा कहा"। हैजिन ने भी यह सत्य कहा है कि' यूरोप में आठ वर्ष तक पवित्र मैत्री का अभिप्राय निरंकुश शासनप्रणाली और दमन नीति रहा"। इसके प्रमुख प्रवर्तक जार ने पवित्र मैत्री की स्वच्छ आत्मा को अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनो द्वारा "शरीर प्रदान" करने का यत्न किया। यद्यपि १८१५ से १८२५ तक "पवित्र मैत्री" शब्द यूरोपीय जन जन तक पहुँच गया था, किन्तु तत्कालीन राजनीति मे इसे क्रियात्मकता प्राप्त नहीं हो सकी। यह सिद्धान्त जीवित था-जनता को आतंकित करने में, पर राजनैतिक स्वार्थों को यह आवरण नहीं दे सका। आलेग्जेण्डर का यह एक क्षणिक स्वप्न था। इतिहास में इसका इतना ही महत्त्व है कि यह भविष्य के रूसीय राजाओं को एक अन्तर्राष्ट्रीय शांति

सम्मेलन का स्मरण करता रहेगा, जैसा कि रूस हैग के अधिवेशन (१८६६) का प्रवर्त्तक हुआ।

(४) चतुर्मुख सौहार्द (२० नवम्बर १८१५)

ईसाई धर्म के आदर्शों से अनुप्राणित होकर अलैग्जेण्डर यूरोप की राजसत्ताओ के पवित्र संवन्ध का जो स्वप्न देख रहा था—उसके स्थान पर यूरोप की शक्ति गोष्ठी ने मैटर्निक की कूटनीनि को पथ प्रदर्शन में अधिनायकवाद के विकास के लिए रसिया, प्रशिया, आस्ट्रिया, और इंग्लैण्ड मे चतुर्मुख सौहार्द की स्थापना की। इसके उद्देश्य फ्रांसीय संधि की रक्षा व संसार हित के लिए "चारो राष्ट्रों का पारस्परिक संगठन" थे। इस समन्वय-पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले चार राष्ट्र समय समय पर इन उद्देश्यो की रक्षा एवं सिद्धान्तों के पालन के लिए विभिन्न अधिवेशन स्वयं या इनके मन्त्रियों द्वारा आयोजित करेंगे—जिसमें "यूरोप की शांति व राष्ट्रों की सार्वदेशिक उन्नति" की भी चर्चा होगी। यूरोप की शांति के संवन्ध मे ये सब एक मत नहीं थे-मैटर्निक विप्लव के ध्वंस को व कॉसलरे राष्ट्रीयता के प्रचार को शांति का माध्यम समझता था, अलैग्जेण्डर का मत सर्वथा अनिश्चित था। यूरोप की आंतरिक समस्याओ के समाधान के लिए शक्ति गोष्ठी एक महत्त्वपूर्ण प्रयत्न था—जिसके संयोजन में मैटर्निक और अलैग्जेण्डर प्रमुख थे।

(५) मैटर्निक—(१८०६ से १८४६)

१८०८ में मैटर्निक ने आस्ट्रिया के प्रधान-मंत्रित्व का भार ग्रहण किया और अनवरत चालीस वर्ष तक यूरोप के इतिहास को इसने इतना प्रभावित किया कि हम इस काल को "मैटर्निक युग" कह कर पुकारते हैं। यह केवल आस्ट्रिया व जर्मन की राजनीति में ही प्रमुख नहीं था, अपितु संपूर्ण यूरोपीय कूटनीति का स्तंभ था। १६ वी शताब्दी से विशाल आस्ट्रिया का एक मात्र

यही प्रसिद्ध राजनैतिक रहा। फ्रांसीय ऐतिहासिक सोरेल इसके सम्बन्ध में कहते हैं—"मैटर्निक कूटनीति का राजा था—जिसके समक्ष उस युग में कोई भी नहीं था, इसकी प्रणाली इतनी अद्वितीय थी कि यूरोप का शासन जब तक कूटनीति के आधार पर रहेगा, यही एक मात्र उसका नियामक होगा"। इसको व्यक्तिगत मोहिनी शक्ति, कूटनीतिक अनुभव, सामाजिक गुण, कलापूर्ण दूरदर्शिता, मधुर संभाषण एवं जटिल राजनीतिक समस्याओं के समाधान से अभिव्यक्त अद्भुत प्रतिभा शक्ति ने इसे मध्यम यूरोप का "नैतिक अधिनायक" बना दिया।

इसका प्रत्येक शब्द देववाणी था। यह महान् आत्मश्लाघी था, इसीलिए इसने एक बार कहा—"समग्र विश्व का भार उसी के कंधों पर है एवं यूरोपीय समाज के पतनोन्मुख मानचित्र को मुझे ही पुनर्जीवित करना है"। अपनी कूटनीतिक चतुरता की प्रशंसा करते हुए इसने कहा—"मैं यूरोप और जर्मनी की एक नैतिक शक्ति बन चुका हूँ, इस शक्ति का जब अवसान हो जायेगा, तो एक अपूरणीय अभाव हो जायेगा"। "मेरी स्थिति बड़ी विचित्र है, क्योंकि आज मैं ही सम्पूर्ण यूरोप की आशाओं का केन्द्र हूँ और जनता की आँखे मेरी ओर ही लगी हुई है"। मैटर्निक जिस रूप से चिन्तन, अध्ययन व लेखन का कार्य कर सकता था और कोई व्यक्ति नहीं। अपने आत्मिक संयम की ओर संकेत करते हुये इ-ने कहा—"मैं कभी शाश्वत पथ से भ्रष्ट नहीं हुआ और मेरे मन ने कभी भी अपनी भूल को स्वीकृत नहीं किया"। राजनीति में इसकी दृष्टि अवसरवादी थी। सहिष्णु अलैग्जेण्डर से इसने एक बार कहा—"आपको कोई खेद नहीं है, परन्तु मुझे है"।

क—मैटर्निक की नीति

इसकी नीति के सम्बन्ध में एक समसामयिक ने कहा है—

"राजनीति सागर के भँवर का भी यह कुशलता के साथ मछली की तरह संतरण कर सकता था एवं कुटनीतिक धूर्तता मे अपूर्व था"। मैटर्निक की नीति साधारण प्रतिक्रिया और दमनात्मक थी। वह लोकतन्त्रवाद और राष्ट्रीयता का परम शत्रु था, क्योंकि वह इन दोनो को अराजकता व अशान्ति का मार्ग समझता था। इसकी भावधारा ध्वंसात्मक थी। एक बार विप्लव की निन्दा करते हुए इसने कहा—"यह एक रोग है, जिसकी चिकित्सा करनी चाहिये, यह एक ज्वालामुखी है जिसको शान्त करना चाहिये, यह एक असाध्य व्रण है, जिसे लोहे से जला देना चाहिये, यह एक दानव का विशाल मुँह है—जो संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को गिलना चाहता है"। यह राजसत्तावादी था व स्वयं को भगवान् का प्रतिनिधि मानता था। इसीलिए इसने वैधानिक सुधारो का प्रतिरोध, प्रकाशन, भाषण स्वतन्त्रता एवं विश्वविद्यालय स्वाधीनता का नियन्त्रण किया। यह लोकसभा व जनप्रतिनिधि संस्थाओं से भयभीत होता था। उसने एक बार कहा—"फ्रांस और इंग्लैण्ड एक ऐसे देश हैं, जहां कोई प्रशासन नहीं है"। आत्मविश्लेषण करते हुए इसने कहा—"मैं एक ऐसा व्यक्ति हूं—जो यथास्थिति में विश्वास करता हूं"। इसके सिद्धान्त अचल, अटल और शुद्ध थे। यह मानता था कि नवीन सिद्धान्तों का उदय संसार में नहीं होना चाहिये, परन्तु अतीत की मान्यताओं के लिए वह विवश था। फिर भी वह उसके प्रसार के प्रतिरोध का पक्षपाती था। एक शब्द मे यह यूरोपीय संकीर्णतावाद का मंत्रदाता था। परन्तु अपनी नीति के परिवर्तन के समय इसे आस्ट्रिया के स्वार्थों का पूर्ण ध्यान रहता था, क्योंकि यह उसका प्रधान मन्त्री था। इसी से इसकी अवसरवादिता प्रमाणित होती है।

आस्ट्रिया एक दहेज प्रथा व वंशानुक्रमिक रूप से प्राप्त छोटे २

राज्यो का विशृङ्खलित साम्राज्य था—जिसे इसने संगठित कर तुर्कों के लिए शक्तिशाली अवरोध बना दिया। संक्षेप में आस्ट्रिया की सर्वतोमुख रक्षा ही इसका मूल ध्येय था। प्रो० एलीशन फिलिप्स का कथन है—"आस्ट्रिया के महान् संकट व साम्राज्यवादी फ्रांस के अंतिम संघर्ष के समय—जब कि प्रत्येक व्यक्ति हताश और किंकर्तव्यविमूढ हो कर इसका समाधान ढूंढ रहा था, दूरदर्शी भाग्यशाली कूटनीतिक मैटर्निक ही एक मात्र व्यक्ति था—जो कि एक निर्दिष्ट मार्ग द्वारा शांति स्थापित करके "नेपोलियन के विजेता" होने का गर्व करता था"। इसने राष्ट्रीयता व प्रजातन्त्रवाद के आंदोलनो को जर्मनी इटली आदि राज्यों में रोका व सम्राट् अलैग्जेण्डर को भी सहिष्णुता से निकाल कर अपनी ओर आकर्षित करने का यत्न किया।

६—फ्रांसिस् प्रथम (१७६२ से १८३५)

इस काल के गणनीय व्यक्तियो में फ्रांसिस् प्रथम के कार्य भी इतिहास में निजी स्थान रखते हैं। यह अत्यन्त साधारण अप्रगतिशील निम्न एवं संकीर्णतावादी असहिष्णु व्यक्ति था। उसकी स्वयं की निम्न उक्ति से उसकी भावनाएं व विचारधाराएँ स्वतः प्रतिबिंबित होंगी—"समग्र संसार भ्रान्त है और नवीन विधान चाहता है"। १८२१ में आस्ट्रिया के अध्यापकों को भाषण देते हुए इसने कहा—"जो कुछ भी सनातन और पुरातन है, उसी का समर्थन करो, क्यो कि वही चिरंतन सत्य है। हमारे पुराण पुरुषों ने जब इन्हे सर्व-गुणसम्पन्न जानकर स्वीकृत किया तो फिर हम क्यों न उनका अनुकरण करें। नवीन धारणा का आजकल उद्भव हो रहा है, परन्तु हम उसका समर्थन नहीं करते हैं। हमें शिक्षित जनता की

अपेक्षा अनुशासित प्रजा की आवश्यकता है। जो हमारे आदेश को अमान्य करेंगे, वे निर्वासित होंगे"।

७ — अलैग्जेण्डर प्रथम (१८०० से १८२५)

यह कांग्रेस का महत्त्वपूर्ण व्यक्ति और अपने काल की एक पहेली था। नेपोलियन के पतन में इसकी देन असीम है—जिसके परिणाम स्वरूप रशिया सबसे पहले यूरोप का नेता बन गया। आस्ट्रिया व इंग्लैंड इसकी प्रगति से आतंकित हो गये। परन्तु यह कूटनीतिक धूर्त्त व मैटर्निक के अनुसार कुटिल अध्यवसायी नहीं था। इसका व्यक्तित्त्व किसी भी प्रकार से आकर्षक नहीं था। इसकी कुरूप आकृति, विशाल शरीर, गोल मुख, तन्द्रिल आंखे व अधीर चेहरा भी प्रभावशालिता से सर्वथा दूर थे। मैटर्निक ने इसे भ्रान्त और हास्य का पात्र जैकोबिन दल का अप्रत्यक्ष सदस्य माना। समसामयिक लोगों ने इसके चरित्र को एक विशाल रहस्य समझा। नेपोलियन ने इसे "परिवर्त्तनशील राजनीतिक व सफल अभिनेता" कहा (फ्रांसीय अभिनेता तॉल्माँ के साथ तुलना की)। मृत्यु के पश्चात् भी यह रहस्यमय रहा और आज भी इसका इतिहास विवाद व तर्कपूर्ण है। कुछ लोग कहते हैं थियोडर कुजमिच नामक साधु—जो कि १८६४ मे सावेरिया में मरा—वही रसिया का सम्राट् था।

अलैग्जेण्डर की प्रकृति अस्थिर, अभिलाषाएँ पवित्र आदर्शवादी, विवेकपूर्ण स्वार्थी, इच्छा शक्ति एवं महत्त्वाकांक्षाओं से संपन्न व दुर्वल थीं। इसने विशृङ्खलितों में सामञ्जस्य की प्रणाली स्थापित की। इसीलिए उसके समसामयिकों ने इसके अगाध चरित्र से प्रभावित होकर कभी इसे सहिष्णु, कभी निरंकुश शासक, कभी प्रतारक, कभी योगी व साम्राज्यवादी के रूप में देखा।

स्विस् शिक्षक ला हार्पे से इसने रूसो के शास्त्रीय सिद्धान्तों व लोकतंत्रवाद की शिक्षा प्राप्त की। सामरिक दक्षता और परंपरागत स्वेच्छाचारिता की दीक्षा इसे रूस के प्रदेश-पाल से मिली। पिता की आकस्मिक हत्या ने इसके मन में आतंक और खेद को जन्म दिया-जिससे यह लोक के प्रति उदासीन, आस्तिक एवं पुण्यात्मा बन गया। अपनी सहिष्णुता का परिचय देने के लिए उसने अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन की प्रस्तावना की। १८१५ में अलेग्जेण्डर विजेताओं का भी विजेता, यूरोप का मुक्तिदाता, परमेश्वरका प्रतिनिधि एवं सहिष्णुता व आस्तिकता का भाग्य विधाता था। इसीलिए यूरोप की राजनीति के अग्रिम दशक में होने वाली महा-सभाओं और शक्तिगोष्ठियों का यह प्रमुख संयोजक था।

(८) ऐक्स ला-चैपेल की कांग्रेस (१८१८)

यूरोपीय समस्याओं के समाधान के लिए पूर्व कांग्रेस के निर्णयानुसार कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन ऐक्स ला चैपेल नगर मे हुआ—जिसमें प्रधान विचारणीय विषय फ्रांस का भविष्य था। सर्व सम्मति से शक्तिगोष्ठी ने राष्ट्र संघ की सेना को फ्रांस से अपसारित करने का निर्णय किया व फ्रांस के प्रतिनिधि को शक्तिगोष्ठी की सदस्यता प्रदान की। परन्तु फ्रांसीय विप्लव की संभावना से चतुर्मुख सौहार्द को पुनः स्थापित व फ्रांस में पुनः विप्लव होने पर सामरिक—हस्तक्षेप का निर्णय किया गया एवं इसी समय अलेग्जेण्डर के प्रस्तावानुसार एक नवीन व महान् घोषणा द्वारा पंचमुख एकता की स्थापना की गई—जिसका उद्देश्य "जनता के अधिकारों का नियंत्रण, आंतरिक अशान्ति का न्याय, मैत्री व मध्यस्थता द्वारा शमन, राष्ट्र का उत्थान, शान्ति की रक्षा और धर्म-नैतिक चेतना का पुनर्जागरण था"।

इन नवीन आदर्शों से अनुप्राणित होकर पंचशक्ति यूरोपीय समस्याओ के समाधान के लिए अग्रेसर हुई। उसने स्वीडैन के राजा बरनाडेट को नार्वे और डेन्मार्क की संधि के भंग करने के कारण दंडित करने का निश्चय किया, मुर्त्तोको के राजा को प्रशासन में सुव्यवस्था करने का आदेश दिया, वैडेन के उत्तराधिकारी-विवाद का निर्णय कर बभेरिया को पैलेटिनेट प्रदेश से वंचित किया, जर्मनी के हैसे राज्य के अधिपति को असान्य किया गया। इसी अधिवेशन में पंचशक्ति गोष्ठी में परस्परिक विरोध और संघर्ष के चिन्ह प्रकट हुए। स्पेन के दक्षिण अमेरिका के विप्लवी उपनिवेशों ने नियम के विरुद्ध इंग्लैण्ड के साथ व्यावसायिक संबन्ध प्रारंभ किये और इंग्लैण्ड ने न तो स्पेन के पुनः अधिकार स्थापन में योग दिया व न इस प्रश्न मे मध्यस्थता ही की। इसी प्रकार शक्ति गोष्ठी के संयुक्त हस्तक्षेप ने उत्तर अफ्रीका व यूरोपीय तट के जल-दस्युओं को विध्वस्त करने में असफलता प्राप्त की। आस्ट्रिया ने वाध्य होकर अपने सामुद्रिक व्यापार को तुर्की के अधीनस्थ कर दिया, परन्तु इंग्लैण्डने इसके लिए रसियन जहाजो के भूमध्य-सागर प्रवेश को अस्वीकार कर दिया। इसलिए अन्य शक्तियो ने भी असन्तुष्ट होकर दासप्रथा के निवारण के लिए इंग्लैण्ड द्वारा प्रस्तावित जहाज-परीक्षण अधिकार को अमान्य कर दिया। फिर भी कांग्रेस ने भंग होने के पूर्व एकता प्रकट की।

आस्ट्रिया के इतिहास और मैटर्निक के जीवन मे कांग्रेस एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। जेन्ट्स ने इसके भौतिक और नैतिक प्रभाव का विश्लेपण करते हुए कहा है-"शक्तिगोष्ठी की सवसे उल्लेखनीय घटना थी-उसका व्यक्तिगत स्वार्थ त्याग कर मैत्री को दृढ करना एवं पवित्र एकता को अक्षुण्ण मानना—जो कि संकटकाल मे यूरोप का एक स्तम्भ थी"। मैटर्निक ने सत्य ही

कहाथा कि–"हमने कभी इतना सुन्दर, संक्षिप्त और महत्त्वपूर्ण महासभा का अधिवेशन नहीं देखा" । ऐलेशन फिलिप्स का कथन है कि "इसी कांग्रेस की तिथि से यूरोप में मैटर्निक के आधिपत्त्य का प्रसार हुआ और वस्तुतः वह वियाना का "डालाइ लामा" (सर्वोच्च पुरोहित) बन गया"। कैटिलबी० ने कहा है–"इंग्लैण्ड की विरोधिता ने शक्तिगोष्ठी के ध्वंस के बीज बो दिये"।

(६) ट्रपाऊ और लाइबक (१८२०–२१)

१८२० के प्रारम्भ मे स्पेन, पुर्तगाल और नेपिल्स में विप्लव की ज्वाला धधक उठी । इन तीनों राज्यों की गणतंत्रवादी प्रजा ने अपने अपने प्रभुओं, क्रमशः फार्डिनेण्ड सप्तम, जॉन षष्ठ व फार्डिनेण्ड प्रथम को विख्यात १८१२ के स्पेनीय विधान को स्वीकृत करने के लिए बाध्य किया । रसिया का सम्राट् अपनी सेना विप्लव के दमन के लिए भेजना चाहते थे, परन्तु फ्रांस और आस्ट्रिया ने इस प्रस्ताव का विरोध किया । नेपिल्स का विप्लव आस्ट्रिया को बड़ा भारी धक्का था, इसीलिए ट्रपाऊ की कांग्रेस को आमंत्रित किया गया । ट्रपाऊ की कांग्रेस ने कतिपय मूल सिद्धान्तों को स्वीकृत किया–जिससे फ्रांस और इंग्लैण्ड असहमत थे । उनमें प्रथम यह था कि किसी भी प्रदेश के विधान राजा द्वारा स्वीकृत होने पर ही संतोषजनक हो सकते हैं एवं शक्तिगोष्ठी का कोई भी सदस्य यदि विप्लव द्वारा अपनी प्रशासन-प्रणाली का परिवर्त्तन व उसके माध्यम से "अन्य प्रतिवेशी राष्ट्रों को हानि" पहुंचायें, तो वह सदस्यता से वंचित कर दिया जाये । इसके परिणाम में यदि कोई तात्कालिक संकट उपस्थित हुआ, तो शक्तिगोष्ठी आवश्यकता होने पर शक्तिप्रयोग की अधिकारिणी होगी । ट्रपाऊ कांग्रेस से उपर्युक्त निर्णय तीन शक्तियों द्वारा स्वीकृत हुए थे, परन्तु इंग्लैंड ने

किसी भी राष्ट्र की आन्तरिक समस्याओं मे हस्तक्षेप को अमान्य कर दिया।

स्थगित कांग्रेस पुनः लाइबक में संमिलित हुई, जहाँ यह निश्चय किया गया कि आम्ट्रिया वहिष्कृत राजा फार्डिनेण्ड को नेपिल्स के सिंहासन पर पुनः प्रतिष्ठित करेगा। सामरिक प्रदर्शन द्वारा आस्ट्रिया की सेना ने नेपिल्स पर अधिकार करके अभीष्ट सिद्धि के साथ साथ दक्षिण इटली के विप्लव का अवसान कर दिया। इसी प्रकार पिडमण्ट की सहिष्णुता का प्रतिरोध कर इटली में आस्ट्रिया ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया।

१०—वेरोना कांग्रेस (१८२२)

कांग्रेस ने यह निश्चय किया कि सब सदस्य वेरोना में "कूट नीतिक अभिनय" के लिए पुनः एकत्रित होंगे। इसी समय यूनान में विप्लव हुआ और रसिया इस काल में आस्ट्रिया की तरह आंतरिक हस्तक्षेप का अभिलाषी हुआ। इंग्लैण्ड ने इसके विरोध में मैटर्निक का समर्थन किया और यूनान के प्रश्न को वेरोना कांग्रेस मे प्रस्तुत ही नहीं किया गया। इस कांग्रेस की प्रधान समस्या स्पेन का विप्लव था, क्यो कि स्पेन के बुर-बुन वंशीय राजा फार्डिनेण्ड सप्तम ने फ्रांस के बुरबुन राजा लुई अष्टादश से विद्रोह के दमन के लिए सामरिक सहायता की याचना की। इंग्लैण्ड इस प्रस्ताव के विपरीत था, इसी समस्या पर उसने कांग्रेस से त्याग पत्र दे दिया। शक्तिगोष्ठी के अन्यान्य सदस्यो की सम्मति विभक्त थी व इसी लिए शक्तिगोष्ठी का अन्त हो गया एवं फ्रांस को अपने निर्णय के लिए स्वतंत्रता दी गई। अप्रेल १८२३ में ६५ हजार फ्रांसीय सेना ने स्पेन की राजधानी में प्रविष्ट होकर राज-सत्ता का पुनः स्थापन किया—जिससे स्पेन के अमेरिकान्तर्गत विप्लवी उपनिवेशो के अधिकार की एक समस्या का उदय हुआ। अमेरिका और

इंग्लैण्ड ने इनकी स्वाधीनता स्वीकृत की व अमेरिका के राष्ट्रपति मन्रो ने १८२३ में "नवीन विश्व में निर्हस्तक्षेप नीति" की घोषणा की। इंग्लैण्ड के परराष्ट्र मंत्री कैनिंग ने फ्रांस को उत्तर देते हुए कहा—"हमने पुरातन विश्व को संतुलित करने के लिए एक नवीन संसार की रचना की है"।

शक्तिगोष्ठी की बुझी हुई शिखा १८२४ मे पुनः आभासित हुई-जब कि रसिया ने सेन्ट पीटर्सबर्ग शहर में प्राच्य समस्याओं के समाधान के उद्देश्य से दो अन्तर्राष्ट्रीय संमेलनों का आह्वान किया, परन्तु ये सफल न हो सके। अलैग्जेण्डर ने इसी लिए अपनी मृत्यु से पूर्व घोषणा की—"रसिया प्राच्य समस्याओ का समाधान अपने सम्मान स्वार्थ, और गौरव की दृष्टि से मित्रराष्ट्रों की विना सम्मति के ही करेगा"।

(१०) शक्तिगोष्ठी की असफलता के कारण

पेरिस और वियाना में अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण और शांति-व्यवस्था के लिए यूरोपीय शक्तिगोष्ठी ने सन् १८१४-१५ में-जिस पारस्परिक संमिलन नीति का श्रीगणेश किया था, वह ७ वर्ष वाद वेरोना मे (१८२२) समाप्त हो गई। अन्तर्राष्ट्रीय विधान की प्रगति के साथ साथ वेल्जियम, लक्संबुर्ग व वल्कान की निष्पक्ष रक्षा के लिए संघबद्ध रूप से प्रयत्न किये गये। २० वी शताब्दी में अन्तर्राष्ट्रीय शांति स्थापना की यह ही सबसे प्रथम प्रचेष्टा थी। संतुलन शक्ति के आधार पर प्रत्येक राष्ट्र की व्यक्तिगत कूटनीति व स्वार्थ-तत्परता ने इसे शीघ्र ही असफलता की ओर उन्मुख कर दिया।

१—शक्तिगोष्टो की समाप्ति का प्रथम कारण यह था कि इसके सदस्य जनता के प्रतिनिधि न होकर राजसत्ता के कट्टर भक्त थे। ये परंपरागत शासक, उनके मन्त्री व अधिकारी-वर्ग जनता की अभिलाषाओं से अनभिज्ञ ही नहीं, उदासीन भी थे।

२—वियाना की संधि की शर्तें—जिनकी रक्षा के लिए शक्ति-गोष्ठी का संगठन हुआ था-यूरोप की शांति को स्थायिता देने मे अयोग्य थी, जिन्हे पुनः संशोधित करने के लिए न व्यवस्थाये थीं, व न निस्वार्थ प्रचेष्टाएँ ही की गईं।

३—शक्तिगोष्ठी के मैटर्निक आदि के नियामको में विप्लव के प्रति भ्रांत धारणाएँ थीं। ये जनता के किसी भी आंदोलन को विप्लव ही नहीं, परन्तु अशान्ति और अराजकता का जन्मदाता मानते थे। यह धारणा असंगत और अनीतिपूर्ण थी।

४—मैटर्निक ने इसकी समाप्ति का उत्तरदायी इंग्लैण्ड को ठहराया व उसके विदेश मंत्री के सम्बन्ध मे कहा—"कैनिंग एक धूमकेतु था जिसे क्षुब्ध परमात्मा ने यूरोप पर छोड़ा"।

५—निपुण राजनीतिज्ञ कैनिंग ने शक्तिगोष्ठी को "यूरोप को शृङ्खलित करने वाला" संगठन कहा और सत्य ही उसने यह कह कर यूरोप की साधारण जनभावनाओं को अभिव्यक्त किया—जिसका प्रत्यक्षीकरण हम उपरिलिखित विभिन्न राष्ट्रों के आन्तरिक हस्तक्षेपो में पा सकते हैं। शक्तिगोष्ठी की इसी नीति ने पारस्परिक संघर्ष व मतभेदो की सृष्टि की।

६—विधान के परिवर्तन की प्रतिक्रिया स्वरूप विभिन्न राष्ट्रों की लोकतंत्रवादी जनता ने अनवरत आन्दोलनों का प्रारम्भ किया। शान्ति और शृङ्खला के नाम पर वस्तुतः शक्तिगोष्ठी न समय समय पर अत्याचार एवं अन्याय किये। हर्नेशा ने सत्य ही कहा है-"सन् १८२२ में शान्ति और शृङ्खला का अभिप्राय स्थिरता, अस्पष्टता, प्रतिक्रिया, अत्याचार, निष्ठुरता एवं असमानता था—जिसके परिणाम मे सहनशील जनता भी विद्रोही हो गई"। संक्षेप में इस संकट काल मे यूरोपीय राष्ट्रसंघ में ऐसा कोई दूरदर्शी नेता नहीं था, जो अपने प्रभाव द्वारा भविष्य को

नियंत्रित करके ध्वंसात्मक सिद्धान्तो के स्थान पर रचनात्मकता को अधिक राजनीति का कौशल प्रमाणित करता।

यह कहना अत्युक्ति नही है कि "राष्ट्रीयता व प्रगतिशील प्रजातन्त्र की उपेक्षा ही नहीं, अपितु प्रतिरोध से ही शक्तिगोष्ठी का अवसान हुआ"। प्रो०कैटिलबी इस विषय में कहता है-"अन्तर्राष्ट्रीय शांति के क्रियात्मक आदर्श का यह एक महान् परीक्षण था। यद्यपि नेपोलियन के युद्धों की परिणति के रूप में ही इसका उदय हुआ, परन्तु यह मानसिक अनुभव और ऐतिहासिक समन्वय क्षणिक था। राजनीतिक वैधानिक और व्यावसायिक स्वार्थ जब तक सामान्य स्तर पर नहीं होते, तब तक कोई भी राष्ट्रसंघ अधिक दिन स्थायी नहीं रह सकता"।

ख—विप्लवी फ्रांस

फ्रांस के गत २५ वर्षों का इतिहास—जो कि राजसत्ता से राज हन्ता, आतंक से साम्राज्य, विजय से पराजय, व बुनापार्टी से बुर-बुन, आदि उग्र परिवर्तनों को देख चुका था, उससे आगे भी शान्ति व शृंखला की आशा रखना दुराशा मात्र थी। विप्लव के सिद्धान्त और राजसत्ता. श्वेत और तिरंगे झंडे का समन्वय असंभव था।

१—लुई अष्टादश (१८१५ से १८२२)

लुई अष्टादश ने वाटरलू के युद्ध के पश्चात् कहा था—"तुम्हारा राजा जिसकी पितृपरपरा ने तुम्हारे बाप दादाओं पर ८ शताब्दियो तक शासन किया, अब पुनः अपने अवशिष्ट दिनों मे तुम्हारी सुरक्षा व सुख व्यवस्था के लिए आ गया है"। परन्तु नेपोलियन के प्रत्यागमन और एक शत दिन के आयोजन ने उसके उपर्युक्त कथन पर इतना पर्दा डाल दिया कि वह स्वयं ही कहने लगा "हमने एक महान् भूल की"। यह भूल

थीं—स्वैरतंत्र की पुनः स्थापना। अनुभवी लुई ने जनता को व्यक्तिगत समानता, धार्मिक-प्राकाशनिक स्वतंत्रता व निर्वाचित लोकसभा को दे कर सहिष्णुता का परिचय दिया। इसने जनता को नवीन विधान दिया। इसके अनुसार कार्यकारिणी शक्ति के सम्पूर्ण अधिकार उसने स्वयं में केन्द्रित कर लिये। संधि, युद्ध सैनिक परिचालन एवं मन्त्रि मण्डल की नियुक्ति के अधिकार भी इसे ही थे। इसने विधान सभा को दो भागों में बाँटा—(१)सामन्त सभा, (२)प्रतिनिधि भवन। सामन्त सभा के सदस्य आजीवन के लिए चुने जाते थे व प्रतिनिधि भवन के सदस्य केवल ५ वर्ष के लिए। मतदान के अधिकार के लिए न्यूनतम ३० वर्ष की आयु व १८०) रुपये वार्पिक प्रत्यक्ष कर नियत था। प्रार्थी के लिए ४० वर्ष की अवस्था एवं ६००) रुपये वार्षिक कर अनिवार्य था। विधान का प्रस्ताव केवल कार्यकरिणी ही कर सकती थी-और आर्थिक नियंत्रण प्रतिनिधि भवन के अधिकार मे था। यह एक प्रकार से राजा और प्रजा मे सामाजिक समन्वय पत्र और राजनतिक विश्वास का प्रकाश था।

क—फ्रांसके विभिन्न दल

फ्रांस में उस समय अनेक दल हो गये थे, क्योंकि विप्लव ने सार्वजनिक समस्याओं के प्रति—जैसे राजा के अधिकार, दीन जनता का मताधिकार, कुलीन व पादरियों की विशेप सुविधाएँ आदि—जनता को जागरूक बना दिया था, जिन पर लोग अपने अपने ढंग से विचार करते थे।

पहला दल *उग्रराजसत्तावादी* था—जिसमें वे पलायित कुलीन और पादरी संमिलित थे-जिनके पवित्र अधिकार और सम्पत्ति विप्लव ने ध्वस्त कर दिये थे। इसीलिए ये पुरातन राजसत्ता की पुनस्स्थापना के लिए सचेष्ट थे। इनके मूल सिद्धान्त थे—पाद-

रियों को विशेष सुविधायें दीजायें, प्रकाशने पर प्रतिबंध होना चाहिए, मंत्रिमंडल पर सर्वशः राजा का नियंत्रण रहना चाहिए और विप्लव-कालमें विनष्ट संपत्ति का पुनस्स्थापन करना चाहिए। यद्यपि यह दल अल्पसंख्यक था, फिर भी राजा के भाई आर्टायस(१)के नेतृत्व के कारण यह प्रचुर प्रभावशील बन गया था।

दूसरा सहिष्णु *राजसत्तावादी* दल था—जिसने राजाका पर्याप्त मात्रा में समर्थन किया। इसका सिद्धान्त था-नवीन विधान का पालन, प्रतिक्रियावादी कुलीन और पादरियों को विप्लव की परिणतियों का स्वीकृत कराना व जनता द्वारा पुनस्स्थापित राज्य सत्ता का समर्थन करना था। यह राजनैतिक दल राजाको दुर्बल नहीं बनाना चाहता था और मन्त्रि-मण्डल के राजा के अधीन रखने ही का पक्षपाती था।

तीसरा *उदार* दल था—जो राजा को मानने के साथ साथ उपयुक्त विधान को ही सर्वस्व नहीं समझता था। मताधिकार के लिए निर्धारित संपत्ति कर की मात्रा को हटाने के लिए यह सर्वथा तत्पर था। राजा प्रतिनिधि भवन के प्रति उत्तरदायी मन्त्रिमंडल के अधीन रहे व उसी नीति को अपनाये।

चतुर्थ *बोनापार्टी* दल—बुरबुन वंश की राजसत्ता का परमशत्रु था जिसमें नेपोलियन की आस्टरलिट्स और वॉग्राम के युद्ध में भाग लेने वाली सेना, नेपोलियन द्वितीय (१) कोपुनः सम्राट् बनाने के प्रयत्न में थी। जिन कुलीन और पादरियो ने एक बार फ्रांस के विरुद्ध शत्रु से सहयोग किया था-वे जब परावृत्त होकर संमान, पद और पुरस्कार प्राप्त करने लगे, तो इस दलने उनका घोर विरोध किया और चार्ल्स दशम (१) को "पलायित कुलीनों का राजा" कहा।

---

(१) परिशिष्ट में वंश-वृक्ष देखिये।

पंचम *गणतन्त्रवादी दल* था—यह बोनापार्टी और बुर-बुन दोनों ही से घृणा करते थे और १७६२ के गणतन्त्र को पुनरस्थापित करना चाहते थे। १८३४ मे राजसत्ता के पतन के लिए एक गुप्त समिति का संघठन करते हुए इसने घोषणा की कि राष्ट्र को ही अपने शासक का निर्वाचन करना चाहिए, क्योंकि लुई अष्टादश को फ्रांस की जनता पर बलात् आरोपित कर दिया गया है।

उग्रसत्ता-वादियों ने जिनका कि प्रतिनिधि भवन में भी बहुमत था—"एक शत दिवस" के षड्यन्त्र-कारियों को दण्ड देने के लिए "श्वेत आतंक" की सृष्टि की-जिसके द्वारा सदस्यों ने साहसी सेना नायक की हत्या करदी। इस पर राजा ने प्रति निधि भवन को भंग कर दिया व उदार राजसत्ता वादियों की पुनर्निर्वाचन में विजय हुई। १८१६ व २० के मध्य में प्रधानमंत्री रिचैल्यू, और डेकॉज़ेज के नेतृत्व मे फ्रांस उन्नति की ओर बढ़ा। १८१७ में फ्रांस ने नेपोलियन के युद्ध की क्षति-पूर्ति राष्ट्र-संघ को दे दी और राष्ट्रसंघ ने अपनी सेना फ्रांस से हटा ली। फ्रांस की सामाजिक प्रणाली का पुनर्गठन किया गया-जिसकी दो पद्धतियां थी, (१)—स्वेच्छा प्रवेश, (२)—अनिवार्य प्रवेश। अनिवार्य प्रदेश के लिए २० वर्ष से अधिक आयु वाले युवक अपने नाम लॉट्री डालेंगे, जिममें विषम संख्या वालो को ६ वर्ष के लिए प्रवेश करना आवश्यक होगा और उसके पश्चत् ६ वप तक के लिए सुरक्षित (रिजर्व) रहना होगा। इस नियम के आधार पर २ लाख ४० हजार सेना फ्रांस में एकत्रित हो गई। प्रकाशन की स्वाधीनता और निर्वाचन के प्रकारों में परिवर्तन के लिए भी विशेष नियम स्वीकृत किये गए। प्रति वर्ष प्रतिनिधि भवन के ⅕ सदस्य कार्य मुक्त होंगे-जिन स्थानो की पूर्ति नवीन निर्वाचन द्वारा की जायेगी। वंश के एकमात्र प्रतीक राजा के भतीजे ड्यूक

डी. वेरी को १८२० में ल्यूबल द्वारा मार दिया गया, क्योंकि यह बुरबुन वंश का ध्वंस करना चाहता था। इस अपराध का उत्तरदायी राज सत्तावादी सहिष्णु दल को ठहराया गया और इसके प्रधान मंत्री डेकॉजेज को पद त्याग के लिए बाध्य किया गया। राजसत्तावादियों ने प्रतिनिधि भवन के सदस्यो की संख्या २५८ से ४३० तक पहुँचा दी और प्रत्येक मतदाता को दो बार मत देने का अधिकार एक ही प्रार्थी के लिए दिया गया। प्राकाशनिक स्वतंत्रता भंग करदी गई व शासन की आज्ञा बिना पत्रों का प्रकाशन निषिद्ध कर दिया गया। राज-सत्ता वादी मंत्री विलैली ने (१८२२ से १८२७) प्रतिनिधि भवन को भंग कर दिया इसी समय फ्रांस भी रसिया, प्रशिया और आस्ट्रिया के समान प्रतिक्रिया वादी बन गया। १८२३ में एक फ्रांसीय सेना स्पेन मे गई व स्वेच्छाचारी राजा फार्डिनेण्ड को पुनः स्थापित किया। इस सफलता से प्रोत्साहित होकर उग्र-राज सत्तावादियों ने प्रतिनिधि-भवन की पदावधि को ५ से ७ वर्ष तक के लिए बढ़ा लिया। धीरे धीरे शासन अपनी विप्लव से पूर्व की गति पर जाने लगा। १८२३ में लुई अष्टादश की मृत्यु हो गई।

२—चार्ल्स दशम (१८२४ से १८३०)

लुई का भ्राता अ र्टोयस चार्ल्स दशम के नाम से सिंहासनासीन किया गया। इस नवीन राजा ने अतीत की शिक्षा से लाभ उठाया। यह तत्कालीन लोकोक्ति थी-"बुरबुन कुछ भी सीखता नहीं"। यह आग्रही, क्रोधी और अदूरदर्शी व्यक्ति था-जो विद्रोही दल को विप्लव की ओर ले गया। वलिंगटन ने इसके संबन्ध में लिखा "इसमें राजनैतिक अनुभव का सर्वथा अभाव था"। जेम्स द्वितीय की उपेक्षा करके पुरोहितो द्वारा परिचालित, पुरोहितों के मध्यम से एवं पुरोहितों के हित के

लिए चार्ल्स दशम ने अपने पक्षपात पूर्ण शासन की स्थापना की—जिसका परिणाम ३० जुलाई का विद्रोह हुआ। १८२५ में प्रधानमंत्री विलैली ने एक अतिरिक्त नियम द्वारा पलायित कुलीनों की अधिकृत संपत्ति की क्षतिपूर्ति के लिए राष्ट्रीय ऋण का सूद ५% से ३% प्रतिशत कर दिया और पलायित कुलीनो को ६८८० लाख फ्रेंक दिया गया। सूद मे कमी करने से पूंजीपतियों में असंतोष फैल गया। उग्र राजसत्तावादी दल ने नेपोलियन द्वारा उत्तराधिकारियों के समान सम्पत्ति अधिकार के जो नियम विप्लव के समय घोषित किये थे—उन्हें निषिद्ध कर अधिक से अधिक १८०) रुपये वार्षिक प्रत्यक्ष देने वालों के लिए ज्येष्ठाधिकार चालू किया। जनता ने गत ४० वर्षो से चली आती हुई इस सामाजिक परंपरा के खण्डन पर रोष प्रकट किया। आगे चलकर सामन्त सभा ने इसे अमान्य कर दिया, क्योंकि यह ६७ लाख परिवारों में से केवल ८ हजार परिवारो के लिए ही अनुकूल पडता था। विलैली के पतन के दो कारण थे, (१) प्राकाशनिक प्रतिबन्ध की कठोरता, (२) राष्ट्रीय दल का भंग करना।

इसके उत्तराधिकारी मार्टिग्नक ने—जो कि १८२८से १८२६ तक फ्रांस का प्रधान मन्त्री था—प्रकाशन प्रतिरोध को आंशिक रूप से हटा दिया, स्कूलों में पादरियों की छात्र संख्या निर्धारित करके जेसुट दल की शक्ति को क्षीण कर दिया—जिसके परिणाम स्वरूप उग्रदल विक्षुब्ध हो गया। "सुविधा देने से ही लुई षोडश का पतन हुआ था" इस विश्वास व नीति को लेकर चार्ल्स दशम प्रतिक्रिया पथ पर चला। अगस्त १८२६ मे मार्टिग्नक को पदच्युत करके उग्रतम राजकुमार पोलिग्नक का प्रधान मन्त्री नियुक्त किया। पोलिग्नक के कार्यक्रम समाज के पुनर्गठन, पादरियों के राजनैतिक प्रभाव का पुनः

स्थापन शक्तिशाली सुविधावादी कुलीन दल के निर्माण आदि थे।

नेपोलियन के चरित्रका अध्ययन कर यह इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि फ्रांसीय जनता गौरव से स्वाधीनता को अधिक प्रेम करती है, जनता बिना विधान के भी चल सकती है, किन्तु फ्रांस का साम्राज्य विस्तार प्रभुत्वमय होना चाहिये। आंतरिक समस्याओं से जनता के ध्यान को बाहर ले जाने के लिए इसने उत्तरी अफ्रीका के अल्जीरिया प्रदेश को विजय किया, फिर भी यह लोकप्रिय नहीं हो सका व मई १८३० के निर्वाचन में सहिष्णुवैधवादी दल ने विधान सभा में बहुमत प्राप्त किया।

३ – फ्रांस का द्वितीय विप्लव (१८३०)

चार्ल्स दशम ने इसे सामरिक शक्ति द्वारा नियंत्रित करने के लिए २५ जुलाई को चार अतिरिक्त प्रतिक्रियाशील नियमो की घोषणा की—

प्रथम—प्रतिनिधि भवन का भंग करना। द्वितीय—मतदान प्रथा का सहिष्णुदल को मतदान से वंचित करने के लिए इस प्रकार परिवर्तन किया कि मतदाताओं की संख्या तृतीयांश कम हो गई। तृतीय—नवीन निर्वाचन की घोषणा करना व सदस्यों की संख्या २५८ तक पुनः कर देना। चतुर्थ—प्राकाशनिक स्वाधीनता को अस्वीकार कर देना था। सहिष्णुदल के नेता थीयर्स, ग्वीजट और मिग्नेट ने २६ जुलाई को फ्रांसीय स्वाधीनता के कुचलने के उद्देश्य से पास किए गए राजा के नियमों के विरुद्ध तीव्र प्रतिवाद किया। इन्होंने कहा—शासक नियमों का त्याग कर अब बल प्रयोग पर आ गया है—जिसका फ्रांस की जनता को विरोध करना चाहिये।" इसके साथ साथ १८१४ के फ्रांसीय षड्यन्त्रकारी मार्मण्ट को सेना नायक नियुक्त किया गया। इससे अग्रिम दिन उत्तेजित जनता

ने मन्त्री व सार्वजनिक भवनों पर आक्रमण प्रारम्भ कर दिये। राजा ने सेना को शान्ति रक्षा के लिए आदेश दिया था पर उसकी मात्रा इतनी न्यून थी कि विद्रोह के दमन करने से पूर्व ही उसके अस्त्र शस्त्र समाप्त हो गए। कतिपय सैनिक पद त्याग कर जनता में संमिलित हो गए। २८ जुलाई के गृह-युद्ध में 'होटल डी॰विले' पर विप्लवियों ने अधिकार कर लिया। २९ जुलाई को ट्वीलर्स के राजप्रासाद का पतन हो गया, व राजकीय सेना ने पेरिस का परित्याग कर दिया। चार्ल्स दशम ने इसे विद्रोह की अपेक्षा क्रान्ति समझ कर पोलिग्नेक को पदच्युत व अतिरिक्त नियमों को निषिद्ध कर दिया। प्रो० हर्नशा ने सत्य ही कहा "यदि सुविधाएँ लुई षोडश के पतन का कारण थीं तो वे उसके भाई को भी नहीं बचा सकती थी"। लुई षोडश यदि इस समय होता, तो सुविधाएँ शीघ्र देता, परन्तु इसने विलंब कर दिया। पेरिस में एक अस्थायी शासन की स्थापना करके विरोधी विचक्षण नेता लाफायत के नेतृत्व में १७८९ की तरह राष्ट्रीय रक्षा दल का निर्माण किया। विधान की रूपरेखा के सम्बन्ध मे राजधानी के विभिन्न दलों मे मत-भेद प्रारम्भ हो गया। परन्तु बुरबुन वंश के पतन के लिए तो वे सब ही एकमत थे। लाफायत गणतंत्र का पुनः स्थापन चाहता था। अनुभवी राजनीतिज्ञ थीयर्स ने कहा—"यदि हम १७८९ की पुनरावृत्ति करेंगे, तो यूरोप के राष्ट्रसंघ का पुनः हस्तक्षेप अनिवार्य होगा। इसीलिए राजतंत्र को रखते हुए ही शासन में गणतांत्रिक भावनाओं का संचार करना चाहिए"। अन्त में जनता ने फिलिफ इगलाइट के—जोकि विप्लव की जेमापेश की लड़ाई में प्रमुख भाग ले चुका था, पुत्र लुई फिलिप को ९ अगस्त १८३० को फ्रांस का राजा घोषित किया, जिसके ५ दिन पश्चात् चार्ल्स दशम फ्रांस त्याग करके इंग्लैण्ड के आश्रय में चला गया।

(क) द्वितीय विप्लव का महत्त्व

१८३० का विप्लव फ्रांस के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। प्रजातंत्रवादी यद्यपि संघर्ष में अग्रणी थे, फिर भी पेरिस के तीन दिन व्यापी गृह युद्ध में इनका उद्देश्य पूर्ण नहीं हुआ। बुरबुन वंश का अन्त हो गया था परन्तु इसका स्थान आर्लियन्स ने ले लिया था। राजसत्ता का अवसान नहीं हुआ केवल राजवंश का परिवर्तन हो गया। होटल डी० विले की प्रजातंत्रवादी अस्थायी सरकार ने अत्यन्त दूरदर्शिता से काम लिया। यदि १८३० मे वह फ्रांस में गणतंत्र की स्थापना करती तो वह एक यूरोप को चुनौती होजाती, जैसा कि १७८६ में हुआ था—जिससे राष्ट्रसंघ पुनः हस्तक्षेप कर बैठता। यहां आकर सहिष्णु राजसत्तावादी व प्रजातंत्र के उपासकों मे एक प्रकार से समन्वय हो गया, जिसका परिणाम लुई फिलिप का निर्वाचन है। प्राशासनिक व्यवस्था में नगण्य परिवर्तन हुए-प्रतिनिधि भवन को पूर्ण अधिकार दिये गये। कैथोलिक को राष्ट्रीय धर्म से च्युत कर दिया गया, परन्तु मतदान प्रथा में अत्यन्त न्यून परिवर्तन हुए थे। महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि बुरबुन वश के पतन के साथ साथ उग्र राजसत्ता वादियो का भी अन्त हो गया था। संक्षेप मे १८३० मे द्वितीय विप्लव ने प्रथम विप्लव की अपूर्णताओं को पूर्ण कर दिया व भविष्य में समानता, वैधानिक स्वतंत्रता और धर्म निरपेक्षता के सिद्धान्त दृढ़ होगए।

४—लुई फिलिप (१८३० से १८४८)

कारलाइल ने कहा है कि—"भामी के युद्ध क्षेत्र में जो साहसी युवक समानता के लिए लड़ता था वही आज अल्प काल के लिये समानता से ऊंचा उठकर फ्रांस का राजा बना"।

इस आर्लियन्सवंश के राजा ने जनता की सार्वभौमिकता को स्वीकार किया एवं निर्वाचित राजा की तरह शासन चलाते हुए इसने विशेष नियम प्रवर्तन के अधिकारो का भी परित्याग किया। प्रेस को स्वतंत्र कर दिया, संविधान में परिवर्तन किया, विधान निर्माण का कार्य दोनो भवनों को दिया गया। मतदाता की आयु २५ वर्ष मान ली गई व दो बार मत देने की प्रणाली को बंद कर दिया गया। १२०) रुपये देने वालो को ही मत का अधिकार दे दिया। स्थानीय व केन्द्रीय शासन का सुधार किया। विधान की रक्षा के लिए राष्ट्रीय दल का पुनर्गठन किया गया।

(क) फिलिप की अलोकप्रियता

फ्रांस मे लुई फिलिप इतने सुधार करने पर भी अलोकप्रिय था। ६ विभिन्नदल इसके प्रत्यक्ष विरोधी थे। (१) वैधवादी दल- जिसमें कुलीन, पादरी और चिन्तनशील व्यक्ति भी थे— लुई फिलिप से इसलिए घृणा करता था कि इसने चार्ल्स दशम को राज्यच्युत किया था व मध्यमवर्ग का पक्षपात करता था। यह दल चार्ल्स दशम के पौत्र काउण्ट ऑफ चैम्बोर्ड को फ्रांस का वैधानिक शासक बनाना चाहता था। (२) गणतांत्रिक दलने जिसमे कृषक और श्रमजीवियों का प्राधान्य था—लुई फिलिप की राजसत्तावादी और अप्रजातांत्रिक नीति—जो कि पूंजीपतियों के स्वार्थों की रक्षा करती थी—की तीव्र निन्दा की। परन्तु संगठन और योग्य नेता के अभाव मे यह दल प्रभावशाली नहीं बन सका। (३) समाजवादी दल का उग्र गणतांत्रिक वामपंथियों मे से उदय हुआ। इस दल के नेता उग्र विप्लवी प्राउधन— जिसने कि व्यक्तिगत सम्पत्ति के ध्वंस को व स्वेच्छा सहकारी समिति की स्थापना से समाज को उत्थान की ओर ले जाने का सिद्धान्त बनाया था–जनता को आकृष्ट किया। समाजवादी लुई

ब्लांके ने "आर्गनाइजेशन ऑफ् लेबर" (१८४६) नामक अपनी पुस्तक द्वारा प्रचार किया कि बेकारी का ध्वंस राष्ट्र का प्रथम कर्त्तव्य है। वही न्यूनतम वेतन निर्धारित करे व दुर्बल और वृद्धों की रक्षा का प्रबन्ध करे। इसका मूल उद्देश्य था—प्रजातांत्रिक शक्ति द्वारा शासन और समाज को आमूल परिवर्त्तित कर देना। (४) कैथोलिक दल लुई फिलिप के शासन को अनैतिक और अपवित्र समझता था—क्योंकि शासन में वास्तविक समानता का अभाव था। अधिकारी वर्ग ने जब कैथोलिक शिक्षा पर प्रतिबन्ध लगा दिया तो यह ईसाई प्रजातंत्रवाद का प्रचार करने लगा। (५) देशभक्त दल ने जिसमें अधिकांश व्यक्ति बोनापार्टी के समर्थक थे—लुई फिलिप की शान्तिपूर्ण नीति की तीव्र निन्दाएँ की। विक्षुब्ध प्रचारक नेपोलियन के गौरव को आदर्श पौराणिक कथा के अनुसार जाने लगे एवं लुई फिलिप की राजनीति की समालोचना करने लगे। (६) सहिष्णु और सुधारवादी दल शनैःशनै शान्तिपूर्ण पद्धति से राजनैतिक सुधारों का समर्थन करते हुए भ्रष्टाचार का अवसान, सार्वजनिक मताधिकार और व्यक्तिगत स्वतंत्र का पक्षपाती था। इधर शासक की नीति अत्यन्त असहयोग पूर्ण थी। इन दलो को संतुष्ट करने या मान्यता देने की अपेक्षा उसने इन्हें अवैध, असमान्य और संकीर्ण करने का प्रयत्न किया।

इसीलिए इसके अष्टादश वर्षीय अशान्ति मय शासन काल में षडयंत्रो की प्रचुरता हुई।

(ख) आंतरिक अशान्ति

१८३२ मे बेरी की रानी (चार्ल्स दशम की पुत्र वधू) ने लाभण्डी प्रदेश में एक बुरबुन विद्रोह की व्यवस्था की और अपने पुत्र कामटे डीं चैम्बार्ड को हैनरी पंचम के नाम से राजा घोषित कर दिया। १८३४ में गणतांत्रिक आन्दोलन-जो कि

एक नवीन विप्लव की सूचना थी—पेरिस, लिओन्स और अन्यान्य नगरों में प्रारम्भ हुआ। १८३६ और ४० में स्ट्रासबुर्ग और बुलौन शहर में लुई नेपोलियन ने विद्रोह करके बोनापार्टी राज्य स्थापित करने का विफल प्रयत्न किया। इस पर वादी होते हुए नेपोलियन तृतीय ने कहा कि "हमारे जीवन में यह सब से प्रथम अवसर है कि फ्रांस की जनता ने मेरे शब्दों को सुना, मैं सिद्धान्तो और प्रतिशोधका प्रतिनिधि हूँ। सिद्धान्त है—प्रजातन्त्रवाद, उद्देश्य है-साम्राज्य की स्थापना व प्रतिशोध है वाटरलू की पराजय"।

उपर्युक्त विद्रोहो के अतिरिक्त लुई फिलिप की ६ वार हत्या करने के प्रयत्न किये गए। इसके राज्यकाल के प्रथम दो वर्ष (१८३० से ३२) में गणतन्त्र और वैधानिक राजसत्ता वादियों ने नवीन शासन को नियन्त्रित करने के लिए संघर्ष किये। अंत में गणतंत्र के उपासक ध्वस्त हो गए और लॉफायत ने विश्राम ग्रहण किया। एक शक्तिशाली, संकीर्णता वादी मंत्रिमंडल कैसेमीर-पेरीयर के नेतृत्व मे नियुक्त किया। १४ मास के शासन के पश्चात् कैसेमीर की मृत्यु से सहिष्णु दल के नेता थीयर्स (१८३२ से ४०) ने मन्त्रि मडल वना कर जनता और राजसत्ता में समन्वय लाने के प्रयत्न किये। इसने गणतान्त्रिक समितियो को भंग किया, संवादपत्रों को दण्ड दिया और १८३५ सितम्बर क विशेप नियम द्वारा वर्तमान शासन की रूपरेखा के परिवर्तन को निषिद्ध कर दिया। थीयर्स आन्तरिक समस्याओं का सहिष्णुता की दृष्टि से सुधार करता था। यूरोपीय शक्ति पुञ्ज द्वारा फ्रांस के अपहृत गौरव को फिर से इसी ने प्रतिष्ठित किया। थीयर्स नेपोलियन में श्रद्धा रखता था और इसने अपनी महान् ऐतिहासिक पुस्तक "दी कन्सुलेट एण्ड दी ऐम्पायर" में यह स्पष्ट व्यक्त कर दिया कि आर्लियन वंश को नेपोलियन की नीति पर

चलना चाहिए। नेपोलियन के अनुकरण पर गौरव और प्रतिष्ठा की खोज में इसने मिश्र में हस्तक्षेप किया। प्रशिया, ब्रिटेन आस्ट्रिया और रशिया ने एक चतुर्मुख मैत्री की स्थापना कर फ्रांस के साथ युद्ध किया, इसी से १८४० में थीयर्स का पतन हो गया और ग्वीजट ने उसका पद ग्रहण किया।

(अ) संकीर्णवादी ग्वीजट (१८४० से ४८) आठ वर्ष तक फ्रांस का प्रधान मन्त्री था, जिसने उत्कोच पक्षपात और अनैतिकता के माध्यम से प्रतिनिधि भवन पर नियंत्रण किया था। इसकी प्रतिक्रिया और दमनात्मक नीति ने जनता को विक्षुब्ध कर दिया। समाजवादी सिद्धान्तों का जनता मे प्रचार हुआ। लुई ब्लांक ने जो कि-सैन्ट साइमन का अनुयायी था, इस दल का नेतृत्व किया। इसने लुई फिलिप के शासन को गर्हित करते हुए कहा—"एक धनी राजा द्वारा परिचालित शासन केवल पूंजीपतियों के लिए हैं"। इसने घोषणा की कि प्रत्येक मानव को जीवन निर्वाह के लिए उचित काम देना राष्ट्र का कर्तव्य है। इस धारणा के प्रचार से श्रमजीवी मध्यमवर्ग असन्तुष्ट व अधीर हो गया। लुई ब्लॉक के प्रचार पत्र (श्रम के संगठन के सम्बन्ध में) घर घर मे फैल गए। इस आन्दोलन को शान्त करने के लिए प्रधान मंत्री ग्वीजट ने प्राकाशनिक स्वाधीनता का अपहरण किया परन्तु विरोधी दल ने अनेक "संशोधनात्मक प्रीति भोजों का" आयोजन किया, जहां पर उक्त वक्तृताओं द्वारा शासन की निन्दाएँ की गई अतिरिक्त नियम द्वारा प्रीतिभोज भी दमन नीति के अनुसार निषिद्ध कर दिये गये।

५—तृतीय विप्लव के कारण

हैजिन ने कहा है-"जुलाई का राजतंत्र उच्च मध्यवर्ग का राज्य काल था। गणतांत्रिक मध्यम वर्ग के विरोधी थे। वे

जनता को प्रकाश मे लाकर राजसत्ता का अवसान करना चाहते थे"।

जर्मन राष्ट्रीयवादी साइन ने भविष्यवाणी की थीं कि-"शुद्ध राजनैतिक आन्दोलनों का समय अब नष्ट हो गया और सामाजिक विप्लव अवश्यंभावी है"। समाजवादी अपने को नवीन राज्य में सब से अधिक दलित समझते थे। लुई ब्लाँक ने घोषणा की थी कि-"हम लड़ाई करेंगे व मरेंगे, नहीं तो हम श्रम करके जीवन-निर्वाह करेंगे, किन्तु बेकार नहीं रहेंगे"। इस भयानक दृष्टि से राजा पूंजी-पतियो के समर्थन के प्रति उत्तरदायी था। अवसर पाते ही इस विचार धारा के व्यक्तियों ने राजा को हटाने में कोई कमी न रखी।

राजा की दुर्बल व शांतिपूर्ण वैदेशिक नीति ने भी जनता को विक्षुब्ध कर दिया। इटली व पोलैण्ड के राष्ट्रीय आन्दोलनो का असमर्थन एवं बेल्जियम की समस्याओं में इंग्लैण्ड का विरोध करके यह जनता की दृष्टि मे और भी निन्दनीय हो गया।

जनता प्रतिनिधि भवन के निर्वाचन में सुधार चाहती थी। एक सदस्य ने कहा "प्रतिनिधि भवन एक ऐसा बाजार है, जहां अपनी व्यक्तिगत स्वाधीनता का विक्रय कर उच्च पद प्राप्त किया जाता है"। बहुमत यह चाहता था कि प्रतिनिधि भवन के सदस्य सरकारी पदों पर नियुक्त न हों एवं सदस्यों की संख्या बढे। राजा के प्रधान मंत्री ग्वीजट ने केवल इन मांगों को स्वीकार ही नही किया, अपितु कहा कि—"इस संसार मे सार्वजनिक मत-दान के लिए कोई स्थान नहीं है"। जनता की ओर से प्रसिद्ध कवि और लेखक लामर्टाइन ने ग्वीजट को उत्तर दिया—"राजनीतिक प्रतिभा का अर्थ ग्वीजट के कोश में एक ही है, वह है-स्थिरता, धीरता, और परिवर्तन की विरोधिता"। यदि राजनीतिज्ञ की मेधा वस्तुतः इन्हीं गुणो में है, तो राजनीति का कोई प्रयोजन

नहीं है, फिर तो प्रत्येक राजनीतिज्ञ हो सकता है। इसी स्थिरता ने संकीर्णवादियों को भी विरूप कर दिया व १८४७ में ग्वीजट की समीक्षा करते हुए एक सदस्य ने कहा–"गत सात वर्षों में इस मंत्रिमण्डल ने क्या सफलतायें प्राप्त कीं ? नहीं, नहीं, नहीं"। लामर्टाइन ने सत्य ही कहा-"फ्रांस विरक्त हो गया"। यह निषेध ही विप्लव के रूप में परिणत हो गया।

(क) विप्लव की घटनायें

ताकुईविले ने कहा है– "यद्यपि द्वितीय फ्रांसीय विप्लव सब विप्लवों से संक्षिप्त और सबसे कम आशाओं से भरा हुआ था, फिर भी अन्य विप्लवों की अपेक्षा यह जनता के अन्तःकरण और मन का सिद्धान्तों की भावना से सर्वाधिकारी बन गया"। हैज ने कहा है—१८४८ का विप्लव फ्रांस से पूर्णतया आशातीत और उग्र था"।

प्रो० कैटिलबी का कथन है—'१८४८ का विप्लव एक सम्मिलित आन्दोलन है"। इस विप्लव को घटना क्रम के अनुसार प्रगति की चार अवस्थाओं में विभाजित कर दिया जा सकता है। प्रथम आक्रमण राजा के मंत्री और इनकी नीति पर हुआ। २३ फरवरी १८४८ में उग्रजनता ने ग्वीजट के निवास स्थान पर आक्रमण किया, पर सेना ने उसे हटा दिया और बहुत लोग मारे गये। २४ फर्वरी को मृत व्यक्तियों के शवों का एक प्रदर्शन हुआ—जिसने पेरिस की जनता को विद्रोही बना दिया। समाजवादी नेता लुई ब्लॉक इस आन्दोलन का प्रमुख नायक था—जिसने होटल डी० विले में गणतंत्र की घोषणा करदी"।

भीत लुई फिलिप अपने पौत्र दशवर्षीय कांटे–डी–पेरिस के पक्ष में राज्य त्याग कर इंग्लैण्ड चला गया। जनता ने ट्वीलर्स राज्यप्रासाद पर अधिकार किया, गणतंत्रवादी आर्लियन्स वंश

को राज्यच्युत किया और लामर्टाइन के नेतृत्व मे अस्थायी शासन का निर्माण किया गया।

अस्थायी शासन गणतांत्रिक और सामाजिक दल के सम्मेलन से बनी थी-प्रथम दल का नेता था—लमर्टाइन-जिसने गणतांत्रिक शासन को "सत्य व सभ्यता का एकमात्र निदर्शन व ध्येय" बताया। दूसरे दल के प्रतिनिधि लुई ब्लॉक, एलंबर्ट, फलाकान थे—जो विश्वास करते थे कि "गणतंत्र अभीष्ट सिद्धि का उपाय है और वह अभीष्ट सामाजिक एवं आर्थिक विप्लव है"। लुई ब्लॉंक ने अपने प्रसिद्ध शब्दो मे श्रम के अधिकारो से जनता को उत्तेजित किया। इसने कहा कि-"हमारा उद्देश्य निरक्षरता, अनीति, अराजकता व दासता को दूर कर जनता को सर्वाधिकारी बनाना है"। सहकारी समितियों के संगठन द्वारा वह इन सिद्धान्तों को क्रियान्वित करने का यत्न करता था।

अस्थायी सरकार ने सर्व प्रथम राजनैतिक अपराध के लिए मृत्यु दण्ड को निषिद्ध कर दिया। सार्वजनिक मतदान की घोषणा करके ६० लाख जनता को अधिकारी बनाया। फ्रांसीय उपनिवेशो मे दासप्रथा को समाप्त कर दिया। प्रकाशन को स्वतंत्रता दी। राष्ट्रीय रक्षादल की संख्या ५० हजार से २ लाख हो गई। संक्षेप मे पेरिस के श्रम जीवियो के पास अब अस्त्र शस्त्र हो गये।

फरवरी २५ को लुई ब्लॉक के प्रस्तावानुसार प्रत्येक व्यक्ति को काम देने व बेकार प्रथा को रोकने के लिए प्रसिद्ध राष्ट्रीय उद्योगशाला का निर्णय किया गया। लुई ब्लॉक के नेतृत्व मे लक्षीम्बुर्ग में श्रमजीवियों के भविष्य का निर्णय करने के लिए एक श्रम आयोग नियुक्त किया गया—परन्तु उद्योग शाला के निरीक्षण व संचालन का भार समाजवादी दल को लज्जित करने के इच्छुक गणतांत्रिक दल को देने से उसका सदुपयोग व

विकास नहीं हो सका। उद्योगशाला की संख्या—जो मार्च में २५ हजार थी, मई के अन्त में एक लाख से अधिक हो गई। इससे भी जटिल बेकारी समस्या का उचित समाधान नहीं था। लोगों के लिए काम नहीं रहा. प्रत्येक के लिए कार्य दिवस सप्ताह में दो ही दिन कर दिया गया व पारिश्रमिक ८ फ्रेंक निर्धारित किया गया। फिर भी अधिकांश श्रमिक आलसी थे व अपने असंतोष की आलोचना के लिए इनके पास बहुत समय था। समाजवादी दल ने शहर में ११ घंटे कार्य समय को १० व गाँवों में १२ के स्थान पर ११ घंटे कर दिया।

अस्थायी सरकार ने २३ अप्रेल को निर्वाचन किया व नव-निर्वाचित राष्ट्रीय विधान सभा ने ४ मई १८४८ मे अपना अधिवेशन प्रारम्भ किया। इसके ६०० सदस्यों मे ८०० गणतांत्रिक थे। इसका उद्देश्य था—विधान निर्माण करना। विधान सभा ने लामर्टाइन के नेतृत्व मे ५ सदस्यो की एक कार्य कारिणी समिति नियुक्त की। ये सदस्य लुई ब्लॉक के विरुद्ध थे और इन्होने श्रम के लिए नवीन विभाग स्थापित करने को अस्वीकार कर दिया था। १५ मई को उग्र श्रमजीवियों व छात्रों ने विधान सभा पर आक्रमण किया व सदस्यों को तितर बितर कर एक अस्थायी शासन की घोषणा की। राष्ट्रीय रक्षा दल ने सदस्यों की सहायता की व अधिनायक कैविग्नक के नेतृत्व मे तीन दिन व्यापी पेरिस के युद्ध में समाजवादियों को ध्वस्त कर दिया व उनके लाल झंडे जला दिये गए।

विधान सभा ने फ्रांस को गणतन्त्र घोषित कर दिया। इसके सिद्धान्त समानता व एकता हुए। इसकी भित्ति "परिवार, सम्पत्ति के अधिकार, शान्ति और श्रृङ्खला हुई"। धारासभा में ७५० प्रतिनिधि सार्वजनिक मतदान प्रथा से ४ वर्ष के लिए निर्वाचित हुए। कार्यकारिणी सभा का अध्यक्ष (राष्ट्रपति भी)

जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से केवल एक बार ही ४ वर्ष के लिए निर्वाचित हुआ—जिसका पुनर्निर्वाचन नहीं हो सकता था। इसको सम्पूर्ण सैनिक, सामरिक व वैधानिक अधिकार दिये गये। इस विधान की आलोचना करते हुए दूरदर्शी सदस्य जूल्स ग्रेवी ने कहा था—"चार वर्ष के लिए निर्वाचित राष्ट्रपति यदि सम्राट् बनने की अभिलाषा करे, तो उसके प्रतिरोध का कोई भी उपाय नही है"। इसी दृष्टि से उसने यह संशोधन प्रस्तुत किया था कि राजवंश का कोई व्यक्ति राष्ट्रपति नहीं बन सकेगा—परन्तु इसको अमान्य करते हुए लामर्टाइन ने कहा था "कुछ भाग्य पर छोड़ देना चाहिये"। १८४८ के राष्ट्रपति-निर्वाचन में लुई नेपोलियन एक आशावादी था, इसने घोषणा की कि "फ्रांस नेपोलियन के नाम पर श्रद्धा रखता है, क्यो कि वह एक ही नाम है—जो कि जनता को सुख और शान्ति दे सकता है"। इसने प्रतिज्ञा की—"मैं गणतंत्र की रक्षा और विधान का पालन करूंगा"। परिणामतः १० दिसम्बर १८४८ में लुई नेपोलियन (बोनापार्टी दल) ५४ लाख मतों से राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ। इसके विरोधी कैविग्नेक (सहिष्णु दल) को १५ लाख, लेडरू रोलिन (समाज वादी) को तीन लाख सत्तर हजार व लामर्टायन (गणतांत्रिक) को १८ हजार मत मिले। इसी लुई नेपोलियन ने द्वितीय फ्रेंच गणतन्त्र को द्वितीय साम्राज्य के रूप में परिणत किया। हर्नशॉ का कथन है कि "नेपोलियन का निर्वाचन उसके चमत्कार पूर्ण नाम की देन थी"। इसके अतिरिक्त भी गणतांत्रिक दल की दुर्बलता, राजसत्तावादियों के योग्य आशावादी का अभाव, समाजवादी दल के आंतरिक एवं सहयोग सेना व कृषको का समर्थन इसकी विजय के मूल कारण थे।

६—फ्रांसके तीनों विप्लवों की तुलना

प्रथम फ्रांसीय विप्लव सामन्त प्रणाली के अवशेषों

के विरोध मे संचालित हुआ था। इसका लक्ष्य पादरी या कुलीनों की विशेष सुविधाओं का अन्त व नियम की दृष्टि में संपूर्ण जनता को समानता प्रदान करना था । लुई षोडश ने सुविधा-वादी वर्गों की सहायता कर गणतंत्र की बलि वेदी पर स्वयं को चढ़ा दिया । यद्यपि प्रथम विप्लव के उद्देश्य समानता, एकता व स्वतंत्रताएँ थीं, परन्तु फ्रांस की जनता ने एकता को स्वतंत्रता से अधिक महत्त्व दिया । द्वितीय विप्लव का लक्ष्य प्रथम विप्लव के परिणामों को स्थायी-बनाना था। चार्ल्स दशम और उसके मन्त्री पॉलिग्नक ने कुलीन व पादरियों की सुविधाओं व ईश्वरीय प्रतिनिधित्व को पुनः स्थापित कर प्रथम विप्लव के कार्यों को ध्वस्त करने का प्रयत्न किया। मध्यम वर्ग ही प्रथम द्वितीय वर्ग का स्रष्टा था—परन्तु तृतीय विप्लव में श्रम जीवियो ने महत्त्वपूर्ण अंश ग्रहण किया। द्वितीय,तृतीय विप्लव के मध्य में फ्रांस की औद्योगिक क्रांति ने श्रमजीवियों के कष्टों व आर्थिक विपत्तियों की वृद्धि की जिसके परिणाम स्वरूप समाजवाद का जन्म हुआ । प्रथम विप्लव मे मानव के आधारभूत अधिकारों ने जनता को व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकारी बनाया था व द्वितीय विप्लव ने भी इसका अनुमोदन किया, परन्तु तृतीय विप्लव ने अल्प समय के लिए पूंजी का राष्ट्रीयकरण किया । प्रथम विप्लव ने कृषकों को अनेक लाभ दिए, परन्तु श्रमजीवियो की उपेक्षा की। द्वितीय ने भी श्रमिकों को राजनैतिक अधिकारों से वंचित किया, इसी लिए तृतीय विप्लव ने राजनैतिक और आर्थिक एकता को महत्त्व दिया। प्रथम ने केवल प्रत्यक्ष कर देने वाले मध्यम वर्ग को ही मतदान का अधिकार दिया था—पर तृतीय विप्लव ने इस न्यूनता को दूर कर सर्वसाधारण को मत का अधिकार दिलाया । लिप्सन कहता है-"प्रथम

फ्रांसीय विप्लव स्वेच्छाचारी राजतंत्र के विरुद्ध, द्वितीय कुलीनो की सुविधाओ के विरुद्ध एवं तृतीय मध्यमवर्गीय शासन के विपरीत था"।

प्रथम विप्लव द्वारा सुविधाओं की समाप्ति व पुरातन शासन का ध्वंस कर देने पर भी विभिन्न दल सर्वोच्च अधिकार के लिए पारस्परिक विवाद कर रहे थे। अशान्ति के दमन के उद्देश्य से शक्तिशाली सेना का प्रयोग करने के लिए ही संचालन समिति का उदय हुआ—जिसने नेपोलियन को ख्याति प्रदान की। परिणामतः नेपोलियन प्रथम शासनकर्ता से सम्राट् बन गया। इसीप्रकार समान राजनैतिक अधिकारों की स्वाधीनता ने सामरिक स्वेच्छाचारिता की स्थापना की। द्वितीय विप्लव गणतंत्र स्थापन में असफल रहा। इसने मध्यम वर्ग ही को राजनैतिक अधिकार दिये। तृतीय विप्लव गणतंत्र की स्थापना में कृतकार्य होने के साथ साथ सामाजिक सिद्धान्तों के क्रियान्वयन में लगा, परन्तु आर्थिक और राजनैतिक परीक्षण, फ्रांसीय कृषकों की संकीर्णता एवं लुई नेपोलियन के षड्यंत्र से यह भी सफल न हो सका। १७८९ में नियमित समानता, १८३० मे सामाजिक समानता एवं १८४८ मे राजनैतिक समानता स्थापित हुई।

तीनो विप्लवों में से प्रथम विप्लव सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण था। १९ वीं शताब्दी की रचनात्मक शक्ति प्रजातंत्रवाद की उत्पत्ति इसीसे हुई। इसने फ्रांस में ही नहीं, परन्तु हालैण्ड, स्विट्जरलैण्ड, दक्षिण जर्मनी, प्रशिया, इटली व स्पेन में मध्यकालीन निष्ठुरता व बर्बरता का ध्वंस किया। इन सब देशों में विप्लवी सिद्धान्तों के आधार पर निर्मित नेपोलियन के नियम संग्रह का प्रयोग किया गया। द्वितीय फ्रांसीय विप्लव ने प्रथम विप्लव को पूर्णता प्रदान की, क्योंकि इसने प्रथम

विप्लव द्वारा स्थापित सामाजिक समानता, धर्म निरपेक्षता एवं वैध स्वतंत्रता को दृढ़ बनाया। इसने समग्र यूरोपीय सहिष्णु-दल को वियाना कांग्रेस के सिद्धान्त भंग करने के लिए प्रोत्साहित किया। वेल्जियम की स्वाधीनता, इंगलण्ड की लोकसभा का सुधार व जर्मनी मे वैध राजतंत्र के प्रचार १८३० जुलाई के विप्लव के प्रत्यक्ष परिणाम थे। मॉयर्स का कथन है-"तृतीय विप्लव ने समग्र यूरोप में स्वाधीनता के प्रदीप को प्रज्ज्वलित कर दिया। यह अत्युक्ति नही कि मार्च १८४८ में ऐसा एक दिन भी व्यतीत नहीं हुआ, जब कि कोई न कोई विधान कहीं पर भी स्वीकृत नही किया गया हो"। संक्षेप में फ्रांस ने यह संपूर्ण यूरोप पर पुनः अप्रतिहत एवं अमोघ सैद्धान्तिक आक्रमण किया। १८४८ में यूरोप के चौदह राष्ट्रों में प्रतिक्रिया स्वरूप विप्लव हुये, अन्त में प्रशिया में जर्मनी व इटली में पिडमण्ट लीन होकर वैधानिक राजतंत्र बन गये।

ग–राष्ट्रीयता और लोकतंत्र का प्रचार (१८१५ से १८४८)

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं—राजनीतिक क्षेत्र मे १८१५ से १८५० तक का काल लोकतंत्र की उत्कट अभिलाषाओ का समय है, पूर्णता का नहीं। इस काल का सम्मान राजनीतिज्ञो में चाहे न हो परन्तु विद्वानो, कवियो, लेखकों और सांस्कृतिक क्षेत्रों में अत्यन्त उन्नत था। अनेक कवि, संगीतज्ञ, वैज्ञानिक, व विद्वान्—विथेबैन, गेटे, हाइन, वर्डसवर्थ, शेली, बाइरन, विक्टर ह्यूगो, बॉलजक, हैगल, मिल, फेरेडे आदि ने समसामयिक कूटनीतिज्ञों से अपनी रचनात्मक कार्यकलाओं द्वारा अधिक ख्याति प्राप्त की। मानव ने भी राजनैतिक स्वाधीनताओं व राष्ट्रीयता का स्वप्न देखा, जब कि निरंकुश शासन ने इनके स्वप्न को जीवन व्यापी निर्वासनों अथवा बंदिताओं में भंग कर दिया। यद्यपि जनता का विप्लव असफल रहा—उसकी

सेनायें पराजित हो गईं, फिर भी उन्होंने प्रजातंत्र की प्रस्तावना और राष्ट्रीयता के प्रस्थापन का प्रभूत प्रयत्न किया।

जनता की दो प्रकार की उत्कट अभिलाषाएँ थीं—प्रजातंत्र और राष्ट्रीयता की स्थापना। जहां जहां इंग्लैंड, फ्रांस, स्पेन स्वीडेन व रसिया में राष्ट्रीय एकता व स्वाधीनता का विकास हो चुका था—जनता का संग्राम विशेषतः प्रजातंत्र के बहुमत द्वारा परिचालित प्रशासनव्यवस्था, लोकसभा, प्रतिनिधि मण्डल, सार्वजनिक मताधिकार, धार्मिक सहिष्णुता एवं प्रकाशनिक, औद्योगिक, व्यावसायिक, स्वतन्त्रता आदि मूल आधारों के लिए था—जिसका विश्लेषण हम आगे करेंगे।

राष्ट्रीयता की स्थापना एक जटिल समस्या थी। इस संबन्ध में अपना मत प्रकट करते हुए—डा० हॉलैण्ड रोज ने कहा है—"राष्ट्रीयता एक प्रेरणा है, जिसकी हम व्याख्या नहीं कर सकते"। प्रो० रेमशे-मुयेर के शब्दों में—"यद्यपि यह एक अव्यक्त धारणा है—जिसको स्पष्ट नहीं कर सकते हैं। फिर भी १९ वीं शताब्दी के इतिहास में इसके व्यापक प्रयोग को देख कर हम इसके अभिप्राय और महत्व को अनुमानित कर सकते हैं"। वस्तुतः सामान्य भौगोलिक बन्धन, सजातीयता, धार्मिक और भाषा समानता, आर्थिक एकता, समान दृष्टिकोण, समान-अभिलाषा, समान रूढ़ियाँ आदि का एक सामूहिक गठन ही राष्ट्र है इसीलिए प्रो० ट्राइन भी कहते हैं—"एक निर्दिष्ट लक्ष्य को सहकारिता से पूर्ण करने के लिए अनुप्राणित मानव-वर्ग ही राष्ट्र है।"

(१) इंग्लैंड :—उपर्युक्त व्याख्याओं के विश्लेषण से विदित होता है कि अतीत की स्मृति, वर्तमान की चिन्ता और भविष्य की आशाएँ ही राष्ट्रीयता के अवलंब हैं। जर्मनी व इटली एक जातीयता के होते हुए भी राजनैतिक दृष्टि से विभाजित थे।

बेल्जियम, नार्वे, आयरलैंड, पोलैण्ड और बल्कान राष्ट्र बलात् अन्य राष्ट्रों के अधिकृत कर दिये गये थे, इसीलिए जनता की अभिलाषा थी—इन्हें स्वाधीन कर स्वराज्य स्थापित करने की। परन्तु इंग्लैण्ड का इतिहास भी—जो कि प्रस्तुत पुस्तक की परिधि से बाहर है, उपर्युक्त सिद्धान्तों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। इंग्लैण्ड के विरोध में आयरलैण्ड अपनी स्वाधीनता के लिए संघर्ष कर रहा था व इंग्लैण्ड निवासी अपने मताधिकार की पूर्णता के लिए आंदोलन कर रहे थे, फिर भी वहां की राजनैतिक समस्या महाद्वीप की अपेक्षा विकट नहीं थी। शिक्षा, उद्योग अनाथों की सहायता, नागरिक समिति-का संगठन, लोकसभा व औपनिवेशिक स्वायत्त शासन के माध्यम से वर्त्तमान इंग्लैण्ड प्रचुर प्रगति की ओर जा रहा था।

(२) *स्पेन* :—फ्रांसीय विप्लव के उदाहरण और नेपोलियन के दमन ने स्पेन में राष्ट्रीय चैतन्य जागृत किया। १७६१ मे स्वतन्त्र फ्रांस द्वारा घोषित संविधान को ही इन्होंने अनुकरणीय माना और सपूर्ण यूरोप की स्वाधीनता के वैधानिक संग्रामों से अनुप्राणित कर दिया। स्पेन की वैधानिक समस्याओं का समाधान फिर भी नहीं हो सका, क्योंकि राजवंश और औपनिवेशिक कठिनाइयां उनमें बाधा पहुँचाती थीं। १८१३में फार्डिनेण्ड सप्तम ने उपर्युक्त विधान को उदासीनता के साथ स्वीकृत किया, परन्तु अल्पसमय में ही उसने स्वेच्छाचारिता के प्रतिबंधक नियमों को अमान्य कर दिया, मठों की संपत्तियों को लौटा दिया व सहिष्णुवादियों के दमन के लिए विशेष न्यायालय की स्थापना की। १८१६ में विप्लव आरम्भ हुआ और जनता ने प्रारम्भ में आंशिक सफलता प्राप्त की। निरंकुश फार्डिनेण्ड ने फ्रांस की सहायता से विद्रोह का दमन किया व स्वेच्छा-

चारिता की पुनः स्थापना की। इसी समय स्पेन दक्षिण अमेरिका के उपनिवेशों से वंचित हो गया। राजनैतिक असुविधाओं व आर्थिक असमानताओं के कारण उपनिवेश के अधिवासियों ने विद्रोह किया। नेपोलियन के पतन ने इन्हे प्रोत्साहन और इंग्लैण्ड ने इनके स्वाधीनता संग्राम मे सहायता देकर कृतकार्य किया। अमेरिका के राष्ट्रपति मनूरो (१८२३) ने इस नवीन राष्ट्र को स्वाधीन स्वीकार कर लिया, परिणाम यह हुआ कि अमेरिकान्तर्गत मैक्सिको से पैटोगोनिया पर्यन्त प्रदेश स्पेन के हाथ से निकल गये। १८३३ में फॉर्डिनेण्ड सप्तम की मृत्यु से उत्तराधिकारिता के लिए एक गृह युद्ध प्रारम्भ हो गया—जिसमें एक दल राजा के भ्राता डॉन्कार्लोस व अपर दल राजा की त्रिवर्षीय सुता ईसावेला का था। ईसावेला की माता क्रिश्चियन ने वैधवादियो के माध्यम से फ्रांस और इंग्लैण्ड को आमंत्रित किया। सात वर्ष के (१८३४ से १८४१) विस्तृत युद्ध के पश्चात् डॉन्कार्लोस की पराजय व ईसावेला का राज्याभिषेक हुआ। रानी ईसावेला का राज्य (१८४३ से १८६८) स्पेन के इतिहास में एक षड्यन्त्र, अशांति व वीभत्स का समय था। जनता के विद्रोह ने १८६८ मे ईसावेला को निर्वासित कर दिया। स्पेन छोड़ते समय ईसावेला ने कहा— "हमने अपने मूल को अगाध समझा।"

(२) पुर्तगाल :—नेपोलियन के पतन के पश्चात् (१८२० तक) पुर्तगाल इंग्लड के सेनानायक वेलिंगटन के आधीन रहा। हम देख चुके हैं कि पुर्तगाल का राजा जॉन षष्ट १८०७ में ब्राजील पलायन कर चुका था। १८२० में एक आतरिक विप्लव हुआ—जिससे स्पेन के १८१७ के विधान का अनुकरण करके नवीन विधान का निर्माण किया गया। शासक जॉन षष्ट पुर्तगाल में लौट आया व स्वेच्छाचारिता का पुनः स्थापन किया।

१८२२में इसके पुत्र डॉन पेड्रो ने ब्राजील मे स्वयं को स्वाधीन शासक घोषित कर दिया। ४ वर्ष के अनन्तर जॉन की मृत्यु हो गई व पेड्रो ने अपनी सप्तवर्षीय कन्या डॉना मेरिया को अपने भाई डॉन मीग्वल के अधिकारों की उपेक्षा करते हुए सर्वाधिकारी बनाने का प्रयास किया। डॉन मीग्वल निरकुश राजसत्तावादी व डॉन मेरिया वैधानिक शासनप्रणाली की समर्थिका थी। डॉन मीग्वल राजा हो गया, (१८२६ से १८३४) व १८३४ में डॉन पेड्रो ने ब्राजील से इंग्लैण्ड व फ्रांस की सहायता लेकर अपनी कन्या को सिंहासनारूढ़ किया। इसी समय पुर्तगाल, स्पेन,फ्रांस और इंग्लैड के वैधवादियों ने एक चतुर्मुख राष्ट्र-संघ की स्थापना रसिया, प्रशिया और आस्ट्रिया की तीन निरंकुश शासक-शक्तियों के विरुद्ध कीं। डॉना मेरिया का राज्यकाल (१८३४ से १८५३) एक सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक संकटकाल था।

(४) *बेल्जियम*:—१६वीं शताब्दी से क्रमशः स्पेन, आस्ट्रिया, फ्रांस व डच का जो अधिकार बेल्जियम पर चला आ रहा था, उससे मुक्ति पाने के लिए १८३० मे विप्लव हुआ। हम देख चुके हैं कि १८१५ की वियाना कांग्रेस में बेल्जियम और हॉलैण्ड को संमिलित करके कांग्रेस के सदस्यों ने राजनैतिक रचना का एक महत्त्वपूर्ण दृष्टान्त संसार को दिया था, परन्तु यह रूढि धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक और ऐतिहासिक पार्थक्य की उपेक्षा थी—जिसके परिणामस्वरूप बेल्जियम वासियों ने इस कृत्रिम संघ को हॉलैण्ड की औपनिवेशिक क्षति की पूर्ति समझा। शासक डॅच था एवं अधिकांश अधिकारी भी हॉलैण्ड के थे—जिससे जातीय भेद-भावना की सृष्टि हुई। संयुक्त लोक-सभा मे दोनो देशों के समान प्रतिनिधि थे—जब कि बेल्जियम, प्रोटेस्टेण्ट हॉलैण्ड से घृणा करता था, क्योंकि शासन उनकी ओर पक्षपातपूर्ण था। उद्योग एवं कृषि में बेल्जियम,

और हॉलैण्ड व्यवसाय में बढ़ा हुआ था. इसीलिए इनके आर्थिक स्वार्थों का संघर्ष स्वाभाविक था। भाषाएँ भी विभिन्न थी। बेल्जियम के सहिष्णुदल ने स्वाधीन बेल्जियम राष्ट्र के आंदोलन का श्रीगणेश कर दिया। जुलाई, १८३० के पेरिस के द्वितीय विप्लव को दृष्टान्त बनाकर यहाँ के निवासी विद्रोही हो गये।

बेल्जियम निवासियों ने सबसे पूर्व पृथक् शासन की माँग प्रस्तुत की--जब इसे अमान्य किया गया, तो क्षुब्ध जनता ने सार्वजनिक भवनों को ध्वस्त कर दिया। दुर्बल डच अधिकारियों ने इसके प्रतिरोध का विशेष प्रबन्ध नहीं किया—जिससे उग्रवादी इस आंदोलन के नेता बन गये। फ्रांस के नवीन राजा लुई फिलिप ने अपने देशवासियों के हित के लिए इसे नियंत्रित करने का प्रयत्न किया, परन्तु इंग्लैंड के विदेश मंन्त्री पामर्स्टन ने बेल्जियम निवासियो को नैतिक प्रेरणाएँ दीं व शक्तिशाली राष्ट्रों के हस्तक्षेप का अवरोध किया। इसके फलस्वरूप बेल्जियम स्वाधीन हो गया व महारानी विक्टोरिया का चाचा लियोपोल्ड वहाँ का शासक बन गया। १८३९ मे एक अन्तर्राष्ट्रीय संधि जर्मनी, इंग्लैंड व फ्रांस द्वारा बेल्जियम की निष्पक्षता की रक्षा के लिए हुई—जिसे १९१४ में एक "सामान्य कागज का टुकड़ा" कह कर जर्मनी ने आक्रमण के समय अपमानित किया।

(५) *स्विट्जरलैण्ड*— स्विट्जरलैण्ड विभिन्न भाषाओं जातियो व धर्मों से संपन्न एक ऐसा राज्य समूह था—जिसमें राष्ट्रीय एकता का अभाव था। १७९८ के फ्रांसीय विप्लव के नेताओं ने स्विट्जरलैण्ड मे अल्पकालीन हैलहैटिक गणतंत्र की स्थापना की। नेपोलियन ने यहां एक संघीय संविधान का निर्माण किया व वियाना कांग्रेस के ३० वर्ष पश्चात धार्मिक

और राजनैतिक संघर्ष प्रजातन्त्र के लिए हुए। इन संघर्षों के इतिहास में सुंडरबुन्द (१८४७) का युद्ध विख्यात है। १८४७ में स्विट्जरलैण्ड एक संघीय राष्ट्र बना, जहाँ विधान का पुनर्निर्माण किया गया। इतिहास में स्विट्जरलैण्ड का स्थान इसीलिए महत्वपूर्ण है कि जर्मनी, फ्रांस, आस्ट्रिया व इटली जैसे शक्तिशाली प्रतिवंशी राष्ट्रों द्वारा परिवेष्टित होते हुए भी इसने अपनी निष्पक्ष नीति में परिवर्तन नहीं होने दिया।

(६) पोलैण्ड—नेपोलियन ने एक बार कहा था कि 'यूरोप का भविष्य पोलैण्ड के भाग्य पर निर्भर करता है"। १७७२, ६३, ६५ के तीन विभाजनों से यूरोप के मानचित्र से पोलैण्ड अदृश्य हो गया। विभाजन की इस धारणा की उत्पत्ति प्रशिया के राजा फ्रेडरिक महान् से हुई और इसमें आस्ट्रिया और रसिया ने भी अंश ग्रहण किया। वियाना कांग्रेस के पश्चात् सम्राट् अलैग्जेण्डर ने एक नवीन विधान को स्वीकृत किया व १८१८ में लोकसभा का प्रथम अधिवेशन हुआ। परन्तु प्रतिक्रियावादी मैटर्निक ने इस विधान को निषिद्ध कर सम्राट् के भ्राता कांस्टेनटाइन को यहाँ राज्यपाल नियुक्त कर दिया। १८२५ में रसिया के नेकोलिस प्रथम का राज्याभिषेक पोलैण्ड के विप्लव की सूचना थी। जुलाई १८३० में फ्रांस के द्वितीय विप्लव के साथ साथ पोलैण्ड में भी क्रान्ति का श्रीगणेश हो गया। कांस्टेनटाइन भाग गया, परन्तु जन-सेना को ग्र चाऊ के युद्ध में रूस ने ध्वस्त कर दिया। दो वर्ष पश्चात् पोलैण्ड ने विना शर्तों के आत्मसमर्पण किया। सम्राट् नैकोलस ने पोलैण्ड को रसिया साम्राज्य में विलीन कर के एक पृथक शासन विधान दिया। पोलैण्ड के विश्व विद्यालय व शिक्षणशालाओं को बंद कर दिया गया, देशभक्तो के चित्रो को जला दिया गया, परन्तु १८३३ व ४६ मे जनता ने पुनः विद्रोह किया, जिसे रूस के

सम्राट् ने निर्दयता के साथ शान्त किया। विप्लवी बालकों व युवकों को रूस मे सामरिक शिक्षा देकर अनिवार्य रूप से सेना में प्रविष्ट किया गया।

(७) *डेन्मार्क*— यूरोप के अन्य देशो के समान डेन्मार्क ने भी राष्ट्रीयता व प्रजातंत्र के प्रति उत्कंठा अभिव्यक्त की। डेन्मार्क दक्षिणी प्रदेश स्क्लेसविग और हॉलस्टीन के अधिकांश जर्मन निवासियो ने डेन्मार्क से मुक्ति पाने का आंदोलन किया— जिसका विवरण हम अग्रिम अध्याय में पायेगे। डेन्मार्क के वैधानिक आंदोलन १८३० के फ्रांसीय विप्लव के अनुकरण पर हुये। १८३१ में राजा फ्रेडरिक षष्ठ ने "परामर्शदात्री समिति" का निर्माण जनता को संतुष्ट करने के लिए किया। १८४८ मे जब फ्रांस मे तृतीय बार विप्लव हुआ, मरणोन्मुख फ्रेडरिक षष्ठ ने नवीन गणतांत्रिक विधान रचना की प्रतिज्ञा की। परन्तु यह कार्य उनकी मृत्यु के पश्चात् ही पूर्ण हो सका। इसी असन्तोष से स्क्लेसविग व हॉलस्टीन के संघर्ष का उदय हुआ।

(८) *स्वीडेन*—डेन्मार्क से नार्वे पर वियाना की कांग्रेस द्वारा अधिकृत करने वाले स्वीडेन को नार्वे के प्रतिरोध से टक्कर लेनी पड़ी। नार्वे निवासियों ने अपने विधान का निर्माण किया व डेन्मार्क के राजा को शासकता के लिए आमंत्रित किया। इस प्रकार अनेक वर्षों तक संघर्ष चलता रहा व अन्त मे नार्वे पराजित हो गया। १८४८ में भी राष्ट्रवादियो के सामान्य उपद्रव हुये, परन्तु स्वीडेन ने उनका दमन कर दिया। १९०५ मे जाकर दीर्घ कालीन संग्राम के पश्चात दोनो पृथक् हो गये।

(९) *बल्कान प्रदेश*— सर्विया तुर्की के विरुद्ध विद्रोह करने मे बल्कॉन का सबसे पहला राष्ट्र था। इसने एकाकी ने ही सूअर-व्यवसायी कारा जार्ज के नेतृत्व में संग्राम किया। १८१७ में

कारा जार्ज की हत्या के पश्चात् सर्विया को तुर्की से सीमित स्वायत्त शासन मिला व १० वर्ष बाद यह रसिया की रक्षा में आ गया।

(१०) *यूनान का स्वाधीनता संग्राम* :—सर्विया की अपेक्षा भी अधिक रुचिकर था—यूनान का विप्लव। यद्यपि यूनान तुर्की के प्रत्यक्ष नियंत्रण मे था, धार्मिक सहिष्णुता भी इसे मिली थी व यूनानियों को शासन के पद भी पर्याप्त मात्रा मे प्राप्त थे, फिर भी ये पूर्ण स्वतंत्रता के पक्ष-पाती थे। अष्टादश शताब्दी के साहित्यिक आन्दोलन ने राष्ट्रीय चैतन्य को जागृत किया। इसे क्रियान्वित करने के लिए विभिन्न गुप्त-समितियों का संगठन किया गया—जिन्हें "मित्र समिति" कहा जाता था।

यूनान का स्वाधीनता संग्राम १८२१ में तुर्की के राज्यपाल ऑली पाशा के अत्याचारों के विरुद्ध माल्डेबिया प्रदेश से प्रारम्भ हुआ, परन्तु शक्तिशाली तुर्की शासन ने उसका शीघ्र-दमन कर दिया। मोरिया और ईजियन द्वीपपुंज में मुसलमानों के विपरीत यूनानियो ने अदम्य साहस के साथ युद्ध किया। १८२४ में तुर्की के सुलतान ने मिश्र के राज्यपाल महमद्अली को विद्रोह-दमन के लिए आमन्त्रित किया। ध्वंस और हत्या-कांड के परिणाम स्वरूप मिसोलंगी (१८२६) और एथन्स (१८२७) का पतन होगया।

रूस के नवीन सम्राट निकोलस प्रथम ने यूनानियों की सहा-यता के लिए योजना तैयार की। १८२७ में रूस, फ्रांस और इंग्लैण्ड ने एक युक्त-पत्र द्वारा शक्ति-पुंज को समस्या के समाधान के लिए निमंत्रित किया। इसी समय फ्रांसीय और इंग्लैण्ड के जल-जहाज भूमध्यसागर में तुर्की के जहाजो पर नियंत्रण रखने के लिए भेजे गये व अकस्मात् नैवेरिनो (अक्टू-

बर १८२७) की लड़ाई में तुर्की जहाज विध्वस्त हो गये, इंग्लैण्ड ने क्षोभ प्रदर्शन किया, परन्तु रसिया तुर्की के साथ एक वर्ष तक युद्ध करने के अनन्तर विजयी हुआ। ऐड्रियनपोल की (१८२६) संधि ने रूस को भूमि व व्यावसायिक सुविधाएँ प्रदान की व यूनानी स्वाधीनता को तुर्की ने स्वीकार किया। १८३० में शक्तिपुंज ने यूनानी स्वाधीनता रक्षा के लिए प्रतिज्ञा की व ३ वर्ष पश्चात् बभेरिया के राजकुमार ओटो इस नवीन राष्ट्र का राजा बन गया। संक्षेप में सर्विया और यूनान के ये तुर्की से मुक्ति संग्राम यूरोप की नवीन राष्ट्रीयता के प्रतीक थे।

(१०) इटली—१८१५ से १८४८ तक का इटली का इतिहास वैदेशिक दासता, भिन्नता और निरर्थक संग्राम का इतिहास है। इटली मे पुरातन राजवंश को पुनः स्थापित किया गया। राजनैतिक दृष्टि से उस समय इटली एक देश नहीं था। पिडमण्ट, सार्डीनिया का स्वाधीन राज्य, आस्ट्रिया के अधिकृत वेनेशिया लंबार्डी, स्वतंत्र टस्कनी, परमा, लुक्का, मोडेना, पोप के प्रदेश, नेपिल्स और सिसली—ये सभी मिलकर इटली के प्रारूप थे। वियाना कांग्रेस के पश्चात् बुरबुन वंश के राजा फॉर्डिनेण्ड प्रथम नेपिल्स और सिसली का शासक हुआ। वस्तुतः राजसत्तावादी व पादरी प्रेमी होते हुए भी प्रकाशन–पराधीनता, पुलिस प्रणाली व पादरियो के अधिकारो का पुनः स्थापन करके इसने सहिष्णु मतावलंबियो का दमन किया। सिसली को प्रत्यक्ष रूप से स्वशासनाधीन करके वहां की जनता को इसने विक्षुब्ध कर दिया।

पोप का राज्य-समूह एक धार्मिक शासन प्रणाली का प्रयोग क्षेत्र था। पोप भौतिक एवं आध्यात्मिक नियामक था। यहां के अधिकारी वर्ग भी इसी पुरोहित वर्ग के थे। मध्यकालीन गिरिजा की शासन पद्धति सर्वत्र दृष्टिगोचर होती थी। यह

देश धीरे धीरे अराजकता और विप्लव की ओर जा रहा था। छोटे प्रदेशों में मोडेना एक निरंकुश शासक द्वारा शासित था, टस्कनी अपेक्षाकृत न्यून स्वेच्छाचारी राजतंत्र था। परमा में नेपोलियन की द्वितीय-स्त्री मेरिया लुईशा सर्वाधिकारिणी थी एव नेपोलियन के नियम संग्रह का अनुसरण करके जनप्रिय होने का प्रयत्न कर रही थी। सर्वत्र शनैः शनैः जनता का शक्ति संग्रह हो रहा था और राजसत्ता का पतन निकट आ रहा था।

पिडमण्ट और सार्डिनिया राज्य में सवाय वंश के जनप्रिय राजा विक्टर ईमानवेल प्रथम (१८०२ से १८२१)सबसे अधिक प्रगतिशील था। उसने फ्रांस के समान कर प्रणाली निर्धारित की एवं योग्यताको शासन में उच्चता प्रदान की। इतने पर भी सामन्तप्रभुओं व पादरियो ने अपना प्रभुत्त्व नहीं छोड़ा था। जेनोवा निवासी पिडमण्ट की अल्पकालीन आधीनता को घृणित समझते थे।

आस्ट्रिया प्रत्यक्ष रूप से लंबार्डी व वैनेशिया प्रदेश का शासन करता था। हैब्सवर्ग वंश के परिवार इटली के टस्कनी, मोडेना व परमा पर राज्य करते थे। इनकी शक्तिशाली सेना अधिकृत प्रदेशों की रक्षा के लिए सर्वदा प्रस्तुत थी। प्रतिक्रिया वादी मैटर्निक नेपिल्स के राजा फार्डिनेण्ड को किसी शासन पद्धति के प्रयोग से रोकता था। संक्षेप में आस्ट्रिया के दमन ने इटली की जनता को विक्षुब्ध ही नहीं कर दिया, अपि तु उसमे प्रांतीयता को जन्म दे दिया।

नेपोलियन के राज्यकाल ने एक दृष्टि से इटली को पुनर्जन्म दिया और विभिन्न युद्ध क्षेत्रों में विजय प्राप्त कर एकता के बन्धनों को दृढ़ बनाया—जिसको रोकने के प्रयत्नों ने राष्ट्रीयता की भावनाओं को उद्दीप्त किया। देशभक्त इस से स्वयं को अप-

मानित समझने लगे और लोकसत्तावादियो ने निरंकुश शासक का प्रतिरोध अपना धर्म बना लिया। प्रारम्भ मे यह आंदोलन सांकेतिक प्रणाली से गुप्त समितियों द्वारा संचालित किया गया। इससे जनता इतनी अधिक प्रभावित हो गई कि शीघ्र ही इटली के बाहर प्रायद्वीप के अन्नरीप आदि में इसका प्रभूत प्रचार हुआ। इटली के राष्ट्रीय आंदोलन की यही विशिष्टता थी। गुप्त समितियों में सबसे अधिक शक्तिशाली "कॉर्बोनारी" थी--जिसकी पताका प्रारम्भ मे (काली, नीली, लाल) तिरंगी थी, कुछ समय के अनन्तर इसे लाल, हरित व श्वेत रगों से युक्त तिरंगी बनाया गया था।

क—नवीन इटली

गुप्त समिति द्वारा संचालित प्रथम विप्लव (१८२०) नेपिल्स नगर में प्रारम्भ हुआ, परन्तु आस्ट्रिया ने अत्यन्त शीघ्र इसका दमन कर दिया। पिडमएट और लंबार्डी ने भी नेपिल्स का अनुसरण कर उसी तरह असफलता प्राप्त की। पेरिस का जुलाई (१८३०) का विप्लव इटली की जनता को वैद्युतिक गति से उत्तेजित करने मे सहायक हुआ। रुमाग्ना, मार्च्चेस, पॅरमा व मोडेना पर विप्लव की पताका लहराने लगी, परन्तु आस्ट्रिया ने पुनः विप्लवियों को ध्वस्त कर राज्यच्युत नरेन्द्र मण्डल को निज-निज आसनों पर स्थापित किया। प्रजातन्त्र और राष्ट्रीयता के उपासकों को अभी शक्ति के उचित प्रयोग की शिक्षा प्राप्त नहीं थी। विप्लव केवल अल्पसंख्यक नेताओं की पुकार थी—जनता का ध्येय नहीं था। इसीलिए यह असफल रहा। फिर भी प्रतिक्रियावादी राजसत्ताओं की दशा भी अत्यन्त संकटापन्न थी। आस्ट्रिया इनका एकमात्र अवलंब था। पर फ्रांस आस्ट्रिया के विपरीत था। यूरोप के प्रमुख सहनशील शासक विद्रोहियो को नैतिक सहायता दे रहे थे। परिस्थिति

वस्तुत: देशभक्तो के लिए उज्ज्वल थी, उसने सुवर्ण अवसर का सदुपयोग किया। इस कालमे यहाँ गणतन्त्रवादी वैधानिक राजसत्ता व पोप के आधीन राज्य संघ की स्थापना चाहने वाले कुल तीन दल थे।

कॉर्बोनारी समिति का एक महत्त्वाकांक्षी देशभक्त युवक मैजिनी पुनर्जीवित इटली का एक स्वप्न देखता था एवं वही देश को अभीष्ट उद्देश्य की ओर ले जाने मे अग्रेसर हुआ। सवोना के कारावास में "नवीन इटली" की गुप्त समिति की इसने स्थापना की व अल्प समय में कार्बोनारी समिति से आगे बढ़कर राष्ट्र-विप्लव की ओर देश को बढ़ा ले गया। इसने जनता को सम्बोधित करते हुए कहा—"जागृत जनता का नेतृत्व युवक को दो, युवक मन की असीम शक्ति से आप अपरिचित है"। पिडमण्ट से समग्र इटली मे समिति के गणतंत्र की स्थापना के लिए दृढ़प्रतिज्ञ युवकवृन्द ने गुप्त रूप से इस आन्दोलन का संचालन किया। मैजिनी ने—जो कि अपने निर्वासित जीवन को फ्रांस और इटली मे व्यतीत कर चुका था, जनता को अतीत की महत्ता एव वर्त्तमानकालीन दासता का स्मरण दिलाते हुए कहा—"आज इस महान् राष्ट्र के पास न अपनी पताका है, न अपनी स्वतत्रता है और न नागरिकता ही है"। ईश्वर, जनता व इटली ही इस समिति की पुकार थी। शिक्षा, साहित्यिक प्रचार व आवश्यकताओं पर विद्रोह ही इसका मार्ग था। इन आदर्शों को जनता में निहित कर देने में ही इसकी पूर्णता थी।

इटली के राष्ट्रीयता-आन्दोलन का सहिष्णुदल ने आर्थिक उन्नति, जनशिक्षा, पोप की अधीनता एवं संघ-निर्माण अथवा एक सहनशील राजसत्ता की स्थापना के उद्देश्य से प्रचार किया इटली के बाहर निर्वासित यहाँ के निवासियो ने महत्त्वपूर्ण

प्रचार द्वारा यूरोप की जन सम्मति अपनी ओर आकर्षित करने में कुछ भी कमी न रखी।

नवनिर्वाचित पोप पॉयस नम ने १८४६ में शासन पद्धति को सुसंस्कृत बना कर प्रजातंत्रवादियो को इटली की स्वतंत्रता के लिए जागरूक बना दिया। टस्कनी, पिडमण्ट और सार्डीनिया ने भी पोप का अनुकरण किया था। परन्तु आग्ट्रिया के हस्तक्षेप ने जनता को क्रुद्ध कर दिया। इसी समय फ्रांसीय १८४८ के विप्लव ने समग्र इटली को प्रज्ज्वलित कर दिया।

(ख) १८४८ का विप्लव

विप्लव के प्रारम्भ में इटली के सन्मुख तीन महान् समस्याये थीं। सर्वप्रथम नेपिल्स और सिसली की जनता वैधानिक सुधारो की पुकार कर रही थी। टस्कनी, पिडमण्ट व पोप के राज्य मे दी गई सुविधाओ से असन्तुष्ट होकर पूर्ण स्वाधीनता की माँग की जाने लगी। लबार्डी व वैनेशिया मे राष्ट्रीयता ही एक प्रमुख समस्या थीं। इसीलिए हम १८४८-४९ के विप्लव को प्रजातांत्रिक और राष्ट्रीयता की दृष्टि से द्विरंजित कह सकते हैं। राष्ट्रीयता के समर्थक राजा थे एवं उपर्युक्त दो सिद्धान्त प्रायद्वीप के दो विपरीत विभागों मे दो विप्लवो द्वारा क्रियान्वित हो रहे थे।

विधान को प्राप्त करने के लिए जनता ने नेपिल्स और सिसली में विद्रोह किया। राजा फार्डिनेण्ड द्वितीय ने जनता की माँग को स्वीकृत किया। इस दृष्टान्त मे अनुप्राणित होकर इटली के अवशिष्ट राज्य मार्च १८४८ में वैधानिक शासन (पोप के राज्य को छोड़कर) को मानने लगे। वियाना के विप्लव और मैटर्निक के पलायन ने राष्ट्रीयवादी मिलान की जनता को आग्ट्रिया के विपरीत उभाड दिया। आस्ट्रिया की सेना को पराजित करके विध्वस्त कर दिया गया, वेनिश

आस्ट्रिया के अधिकार से मुक्त हो गया और गणतन्त्र घोषित कर किया गया। छोटे छोटे राज्य भी आस्ट्रिया के हाथ से निकल गये और इटली निवासी आस्ट्रिया के विपरीत युद्ध करने के लिए तैयार हो गए। पिडमंट ही एकमात्र राज्य था—जो कि विप्लवियो का नेतृत्व कर उन्हें सफल बना सकता था। इसी समय दूरदर्शी युवक–"रिसोर्जीमेण्टो" पत्रिका के–सम्पादक केभूर ने जनता से अपील की—"सार्डियन राजसत्ता का स्वर्ण सुयोग आ गया है, राष्ट्र व राजा के समक्ष अब एक ही मार्ग है—वह है तात्कालिक युद्ध।" पिडमण्ट के राजा चार्ल्स एलबर्ट ने (१८३१से१८४८)जनता का नेतृत्व करना स्वीकृत किया। राष्ट्रीय स्वतंत्रता को प्राप्त करने के लिए जनता ने आस्ट्रिया के विपरीत युद्ध घोषित कर दिया। नेपिल्स के फार्डिनेण्ड, टस्कनी के लियोपोल्ड और पोप ने आस्ट्रिया के विपरीत जनता की सहायता की, परन्तु दुर्भाग्यवश एकता की भावना पर्याप्त मात्रा मे नहीं थी। पोप ने घोषित किया—उनकी सेना केवल स्वयं के राज्य की रक्षा करेगी और फार्डिनेण्ड ने एक आंतरिक विद्रोह के दमन के लिए अपनी सेना को लौटा लिया। यद्यपि लंबार्डी, वैनेशिया, परमा, मोडेना की जनता ने पिडमण्ट के साथ सम्मिलित होने के लिये बहुमत से सम्मति प्रकट की, परन्तु पिडमण्ट को राजा-चार्ल्स एलबर्ट पराजित हो गया एवं आस्ट्रिया के सामने आत्म-समर्पण कर दिया। इस युद्ध का तात्कालि० परिणाम लंबार्डी और वैनेशिया पर आस्ट्रिया का पुनरधिकार था। इटली की पराजय से सहिष्णु राजसत्ता दल अपमानित हो गया और जनता पर उसका प्रभाव हीन हो गया। राष्ट्रीय पुनर्गठन अब उग्र गणतांत्रिक दल के नेता मैजिनी के नेतृत्व मे आगया। "राजतंत्र के युद्ध का अवसान व जनता के संग्राम का प्रारंभ हो गया"।

जनता की प्रथम विजय पोप के राज्य में हुई। मैजिनी ने पोप को राज्य त्याग के लिए बाध्य कर दिया व उसके भौतिक राज्य मे रोमन गणतंत्र की स्थापना की। इसी प्रकार टस्कनी के राजा को बहिष्कृत करके गणतंत्र घोषित किया गया। इन दो गणतंत्रों ने समग्र इटली के एक आदर्श विधान की रचना के लिए सुन्दर प्रबन्ध किया। इसी समय पिडमंट के राजा ने पुनः आस्ट्रिया के विपरीत युद्ध घोषणा करके इटली के द्वितीय स्वतंत्रता संग्राम (१२ मार्च १८४६) को प्रारंभ किया, परन्तु भाग्य उसके विपरीत था। इसीलिए उसकी सेना नुभार-युद्ध में विध्वस्त हो गई। अपमानित राजा ने स्वतः ही राज्य-त्याग किया व उसके पुत्र विक्टर ईमानवेल द्वितीय (१८४६ से १८७८) शासक बन गया एवं उसने आस्ट्रिया के साथ सन्धि करली। एक प्रतिक्रिया की लहर आभासित हुई। फॉडिनेण्ड ने सिसली व टस्कनी पर पुनः अधिकार स्थापित किया। आस्ट्रिया ने वैनिशको हस्तगत किया व फ्रांस के राष्ट्रपति लुई नेपोलियन ने पोप को अपने सिंहासन पर पुनः स्थापित किया। केवल वैधानिक राजतंत्रवादी ईमानवेल को छोड़कर समग्र इटली में निरंकुश शासन चलने लगा। यद्यपि यह राष्ट्रीयता और प्रजातंत्र का संग्राम असफल रहा है, परन्तु इससे अनेक लाभ हुये। संमिलित इटली की जनता ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए एक पवित्र ध्येय ले कर संघबद्धता के साथ संग्राम किया उसे सौभाग्य से "एक ऐसा राज्यवंश" मिला—जो राष्ट्रीयता का प्रतिनिधि था और इटली को ऐसी योग्य जनता मिली जो उसकी रक्षा कर सकती थी।

(घ) सर्वसत्तावादी रूस

पिट्सबर्ग को राजधानी बनाते हुए पीटर महान्(१)ने कहा था—"यह हमारी खिड़की है—जिससे हम पश्चिम यूरोप का निरीक्षण करेंगे"। परन्तु फ्रॉसीय विप्लव के समय इसी खिड़की मे से स्वतंत्रता की किरणें रसिया पर पड़ीं। सम्राज्ञी कैथराइन द्वितीय फ्रांसीय दार्शनिक वॉल्टेयर की शिष्या थी, परन्तु विप्लव के सिद्धान्तों को क्रियान्वित करने के आन्तरिक दृश्य से कैंथराइन ने अपने गुरू की मूर्ति को प्रासाद से हटा दिया व प्रतिक्रिया के रूप से आंदालन का प्रतिरोध किया। कैथराइन की वैदेशिक नीति का अध्ययन-हम निकट पूर्व की समस्याओं में करेंगे। इसका पुत्र पाल प्रथम (१६६६ से १८०१) जन्म से ही निरंकुश राजसत्तावादी था—जो विप्लव के सिद्धान्तो से घृणा करता था, परन्तु अधिनायक नेपोलियन के उत्थान के साथ पुलकित पाल फ्रांसीय सहायता से भारतवर्ष-विजय का स्वप्न देखने लगा था। ऐतिहासिको का कथन है कि ४० हजार रूस सेना भारत पर आक्रमण करने के लिए चली थी व नेपोलियन ने भी सहायता के लिए मिश्र की ओर से आने का वचन दिया था। सम्राट् की आकस्मिक हत्या से यह योजना वहीं भंग हो गई।

१—प्रतिक्रियावादी अलैग्जेण्डर प्रथम (१८०१से१८२५)

इसकी नीति अत्यन्त अस्थिर थी। पहले यह नेपोलियन का मित्र, पुनः शत्रु, पुनः मित्र और अंत में यूरोप के राष्ट्रो का संगठन कर उसके पतन मे अग्रणी हुआ। १८१५ में फ्रांस के नवीन विधान की रचना व बुरबुन वंश का पुनस्स्थापन इसी के प्रभाव से हुआ था। उदार मतावलंबी रूसी सम्राट् ने

(१) हमारी पुस्तक "नवीन यूरोप" मे देखे।

पोलैण्ड निवासियों को धार्मिक व प्राकाशनिक स्वतंत्रता और विधान द्वारा अंश प्रदान करने का आश्वासन दिया। लिभोनिया और कुर्लैण्ड के दासों को मुक्त किया।

रहस्यमय सन्यासिनी क्रूडेना के प्रभाव से इसने पवित्र मैत्री-मंडल के स्थापन की योजना बनाई--जिसे हम देख चुके हैं। फिर भी प्रजा के षड्यन्त्र और पोलैण्ड के विद्रोह ने इसे प्रतिक्रियावादी बना दिया और वह उदारमतावलंबिता को छोड़कर संकीर्ण राज सत्तावादी बन गया। जीवन के शेष अंश को मैटर्निक के साथ नेपिल्स और स्पेन के विद्रोह दमन मे अतिवाहित किया। तुर्की के विपरीत यूनानी विद्रोह को यह दमन के योग्य समझता था। पवित्र पादरियों के हत्याकाण्ड के पश्चात् तुर्की के साथ इसने मैत्री संबन्ध छिन्न कर यूनानी ईसाइयों की सहायता करना प्रारम्भ कर दिया। आन्तरिक शासन व्यवस्था इसके काल की भ्रष्टाचार और निर्दयता की विस्तृत कहानी है। अधिकारीवर्ग से कुलीन भी असन्तुष्ट थे और वे गुप्त समिति द्वारा उदार मत का प्रचार करने लगे थे। इसकी मृत्यु १८२५ मे हुई।

मैटर्निक ने अपने स्मृतिपत्र मे लिखा है—"सम्राट् की नीति महान् और शब्द पवित्र थे, परन्तु इनका-हृदय और मन असंयत थे .....वे स्वयं को प्रतारित करते थे और अपनी भूल का जब इन्होंने अनुभव किया तो उसी ने इन्हे समाधिस्थ कर दिया।"

२ — निकोलास प्रथम — (१८२५ से ५५)

अलेग्जेण्डर के द्वितीय पुत्र निकोलास प्रथम ज्येष्ठ पुत्र कांस्टेण्टाइन की संमति से सिंहासनासीन हुआ, परन्तु उदारमतावलम्बी रूस निवासियों ने दिसम्बर मास मे इसके विरुद्ध "डेकाबारिस्ट षड्यंत्र" करके सामरिक विद्रोह कर दिया। इसका प्रत्यक्ष

उद्देश्य कांस्टेन्टाइन को राजा बनाना और अप्रत्यक्ष उद्देश्य निरंकुश राजसत्ता को समाप्त कर वैधानिक राज-तंत्र को स्थापित करना था। निकोलास ने निर्दयता के साथ विद्रोह का दमन करते हुए कतिपय षड्यन्त्र कारियो को मृत्युदण्ड व कतिपय को निर्वासित कर दिया। ३० वर्ष का इसका राज्य निरंकुशता का रक्षक रहा। वैदेशिक ज्ञान मार्ग और पश्चिम राष्ट्रों के राजनैनिक और दार्शनिक साहित्य, रूसवासियों के वैदेशिक परिभ्रमण व प्रकाशन पर प्रतिबंध लगा दिया। नाट्य शालाओं के अभिनेता तक को राजा के कार्य-कलापो की समालोचना का अधिकार नहीं था। विश्व-विद्यालय के संचालकवर्ग और पाठ्यक्रम को भी राजसत्ता समर्थक रूप में नियत किया। सामरिक शिक्षणालयो की वृद्धि व पुलिस को बन्दिता और निर्वासित करने का "विना प्रतिरोध के" अधिकार दिया। प्रायः डेढ लाख जनता को साईबीरिया मे निष्कासित किया गया। संक्षेप में इसने प्रजा को एक सेना समझा और उसकी प्रगति और भावधारा को स्वयं के नियंत्रण में रखना चाहा।

इसकी वैदेशिक नीति साम्राज्य के विस्तार और पूर्वी यूरोप में आधिपत्य स्थापित करने की थी, क्योकि जनता को यह बाह्य प्रभाव में डालना चाहता था। १८२८ में तुर्की को पराजित करके एड्रियानपोल की सन्धि के अनुयायी होकर इसने यूनान माल्डेविया और वालेचिया को स्वाधीनता प्रदान की। १८३० मे विद्रोही पोलैण्ड ने रूस—सेना को वितारित कर अस्थायी शासन प्रारंभ किया। निर्दयी निकोलास ने विप्लव का दमन कर पोलैण्ड को रूस की अधीनता में एक राज्य बना लिया, पोलैण्ड निवासियों से अस्त्र शस्त्र छीनकर हजारो को निर्वासित किया। माताओं से वयस्क पुत्रो को छीनकर सेना में

प्रविष्ट कर लिया गया। पोल भाषा के स्थान पर रूस भाषा का प्रचलन किया व विश्वविद्यालय को बंद कर अद्भुतालय की सामग्री को रूस की राजधानी में ले जाया गया।

१८४८-४६ के विप्लव मे रूस ने आस्ट्रिया को अपने विद्रोहियो के दमन मे सहायता दी। हंगेरी के देशभक्त कोशाथ के विद्रोह का किस प्रकार निर्दयता के साथ ध्वस किया गया, हम ऊपर बता चुके हैं। क्रीमिया युद्ध के मध्य निकोलास प्रथम की २ मार्च १८५५ मे मृत्यु हो गई। मृत्यु से पूर्व इसने अपने पुत्र से कहा—"तुम शत्रु से संधि कर लेना और दासो को मुक्त कर देना, किन्तु हम हमारे मत मे परिवर्त्तन नहीं कर सकते"। रूस की अवस्था तत्काल इतनी संकटमय थी कि सेनाऐं पराजित हो रही थीं, कोश शून्य था, अधिकारी-वर्ग में भ्रष्टाचार फैल गया था और जनता का असंतोष प्रत्यक्त प्रतिवाद के रूप मे परिणत हो गया था। उदारमत के प्रचार के लिए साहित्य की पांडुलिपियो का प्रकाशन किया गया, समालोचना और आवेदनो द्वारा शासन के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इस हिंसात्मक आंदोलन से रूस का समाज इतना विक्षुब्ध हो गया—जितना कि फ्रांसीय विप्लव से पूर्व हुआ था।

ङ—प्रतिक्रियाशील आस्ट्रिया (१८१५ से ४८)

आस्ट्रिया के समान यूरोप के किसी भी देश की समस्याऐं जटिल नहीं थी। दो राज्यो के संमिश्रण और विभिन्न १२ जातियों-जर्मन, मैगयर्स, चेक, स्लोवक्स, पोल्स, रूथन्स, क्रोट्स, सर्वस, स्लोवेन्स, रूमेनियन्स, यहूदी व इटली निवासियो के सामञ्जस्य से इसका निर्माण हुआ था। आस्ट्रिया-साम्राज्य की नींव १३ वीं शताब्दी मे हैब्सवर्ग के राजा रूडाल्फ प्रथम द्वारा डाली गई थी और यह पवित्र रोमन साम्राज्य का प्रथम निर्वाचित हैब्सवर्ग वंश का प्रथम सम्राट् था। उसके

पश्चात् १६ वीं शताब्दी तक इसकी वंश-
शासन चला रहीं थी--जिसने अपने गौरव एवं शक्ति
शासन का विस्तार किया। यद्यपि १८०६ में
रोमन साम्राज्य भंग हो गया, तथापि हैब्सवर्ग वंश ने
प्रभुता को इटली व जर्मनी में जारी रखा। वियाना कांग्रे
आस्ट्रिया और प्रशिया के युद्धकाल (१८६७) तक हैब्सव
शासक वंशानुक्रम से जर्मन राज्य का राष्ट्रपति होता आ
था। इटली मे हैब्सवर्ग वंश वैनेशिया और लंबार्डी में
एवं परमा, मोडेना, टस्कनी में अप्रत्यक्ष रूप से शासन
रहा था। उसने १८५६ में लबार्डी को, १८६० में मोडेना,
एवं परमा, १८६७ में वैनेशिया को भी खो दिया, परन्तु
ट्रिस्ट और इस्त्रिया के ८ लाख इटालियन प्रथम म
पर्यन्त इसी के अधीन रहे। १८७८ मे आस्ट्रिया ने २०
जुगोस्लाव निवासियो को अधिकृत कर लिया। जाति
आदि की इन्हीं भिन्नताओ से आस्ट्रिया के राष्ट्रीय सं
अनेक रूप धारण किये। फ्रांसिस् द्वितीय ने इन्हीं घटना
कारण अपने साम्राज्य की "दीमक. लगे हुए मका
तुलना की।

प्रतिक्रियावादी मैटर्निक आस्ट्रिया के विभिन्न जाति
दुर्वलताओ को जानते हुए एक को दूसरे से विरुद्ध कर
चलाता था--जिससे राष्ट्र की प्रगति रुक गई। सामन्त
धाओ ने कृषको को दलित किया, नित्य प्रयोजनीय
के मूल्यो में वृद्धि हो गई, प्राकाशनिक स्वाधीनता
गई एवं अर्थका भी सर्वथा अभाव होने लगा। वि
प्रगतिशील जनता उस पुस्तक को अभिरुचि के साथ पढती
जिसे शासन द्वारा अवैध घोषित कर दिया जाता था
वियाना की संगीतकला ही आस्ट्रिया का गौरव था।

द्वितीय (१६६२ से १८३५) के समय जर्मनी का दमन इतिहास मे एक विशेष स्थान रखता है। जर्मनी जो कि वियाना कांग्रेस के पश्चात् एक "भौगोलिक शब्द" रह गया था, ३६ स्वाधीन छोटे छोटे राज्यो का एक संघ था । आस्ट्रिया और प्रशिया क्रमशः इस संघ के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति थे। राज्यसंघ की प्रतिनिधि सभा फ्रेंकफर्ट शहर मे थी। इस सभा को विभिन्न जर्मनी राज्यसमूहों के नियंत्रण की क्षमता थी, परन्तु राष्ट्रपति को इससे भी विशेष अधिकार थे । विधान का परिवर्त्तन सर्व सम्मति से ही हो सकता था। केन्द्रीय शासन की दुर्बलता, सैनिक संगठन के अभाव एवं प्रशिया व आस्ट्रिया के पारस्परिक संघर्ष के कारण राष्ट्रभक्त जर्मन निवासियों में विक्षोभ फैलगया।

(१) जर्मनी

आस्ट्रिया जर्मन राज्य संघ को परराष्ट्र-विभाग समझता था। अर्द्ध शताब्दी तक शक्तिशाली प्रशिया इस ओर से उदासीन रहा। बिस्मार्क ने सत्य ही कहा था— "प्रशिया की नीति वियाना से आती थी, १८१५ व ५० के मध्य-काल में कोई भी कूटनीतिक समस्या नहीं थी—जिसमे प्रशिया ने आस्ट्रिया का समर्थन नहीं किया हो" । जर्मनी को दुर्बल बनाए रखना मैटर्निक का प्रथम उद्देश्य था । प्रशिया द्वारा छोटे छोटे पारस्परिक द्वेष उत्पन्न कर व प्रतिनिधि सभा को दुर्बल बनाकर इसने जर्मनी को अपने अप्रत्यक्ष नियंत्रण में रखा। नवीन विधान मे प्रत्येक जर्मन राज्य को एक एक प्रतिनिधि सभा दी थी, परन्तु सहिष्णु छात्र संघ ने जर्मन प्रतिक्रियाशील कोटजेबू की रसिया के गुप्त संवाददाता होने के संदेह में हत्या करदी । इस सुवर्ण अवसर पर मैटर्निक ने कार्ल्सबैड नगर मे विशेष नियम द्वारा छात्रसंघ की व्यायाम समिति एवं अन्य राष्ट्रीय समितियों को भंग कर दिया कोई

भी विधान जो कि राजसत्ता का समर्थन नहीं करेगा, अमान्य होगा। अनेक नियामकों की नियुक्ति छात्रो एवं अध्यापकों के कार्यकलापों के परीक्षण के लिए की गई, प्रकाशन पर प्रतिबंध लगाया गया। मैटर्निक के राज्यकाल की उल्लेखनीय घटनाएँ १८२० का डर्मस्टड नगर मे विधान के लिए आन्दोलन, १८३०में ब्रांसविक, हैनोवर और सैक्सोनी मे जनता के विद्रोह व १८३७ में हैनोवर में छात्रों का प्रदर्शन थीं।

विश्लेषण से प्रतीत होता है कि इस काल में प्रगति की ओर दो धारायें बह रही थी, जिनने मैटर्निक की प्रणाली का अवसान कर दिया। प्रथम प्रशिया के नेतृत्त्व मे एक आर्थिक संघ का तेरह राज्यो द्वारा "जाल्भरोन"(१८२६) आगम संघ के नाम से स्थापन था—जिसके द्वारा विभिन्न राज्यों के कर आदि आर्थिक नियमों को एकता दी गई। द्वितीय था राष्ट्रीयता का उद्भव—जिसके द्वारा जर्मन कवि, दार्शनिक एवं साहित्यकारों ने सहिष्णु मत का प्रचार कर मातृभूमि के उत्थान में योग दिया। फीस्टे, हैगेल, स्टाईन, बोमर, डाल्माह ने जनता को जर्मनी के ऐतिहासिक पुरातन गौरव से अवगत कराया। बर्लिन, म्यूनिक और लिब्जिक विश्वविद्यालयों मे पुनर्जागरण की भावनायें प्रस्तुत हो गई।

आस्ट्रिया१८३५ फ्रांसिस द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् फार्डिनेण्ड प्रथम आस्ट्रिया का शासक हुआ। मैटर्निक की प्रतिक्रिया प्रणाली इतनी सफल थी कि १८३०के विप्लव का आस्ट्रिया में कोई प्रभाव नहीं हुआ, केवल इटली में सामान्य विद्रोह का आभास हुआ था, जिसे अल्प समय में ही शान्त कर दिया गया। १८४६ में गैलेशिया के विप्लव में कृषकों के असंतोष प्रकट हुये। १८४८ के विप्लव ने आस्ट्रिया और जर्मनी को एक दम उखाड दिया। मैटर्निक ने सत्य ही कहा—"जब फ्रांस को

सर्दी लगती है, तो यूरोप छींकता है"। बमेरिया के राजा ने स्वेच्छा से राज्य त्याग किया, अन्यान्य राजाओं ने वैधानिक राजतंत्र को स्वीकृत किया। प्रशिया के राजा फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ(१८४० से १८६१)ने भी नवीन विधान की रचना की व प्रशिया के सिद्धान्तो को संपूर्ण जर्मनी के लिए अनुकरणीय बना दिया। एलीशन फिलिप्स ने इसके संबन्धमें कहा है-"यह अत्यन्त प्रतिभावान्, मेधावी, सहृदय, सहिष्णुता-वादी राजा था। यह जितनी अधिक विप्लव से घृणा करता था, उतनी ही अधिक अधिनायकवाद से भी"। राजा फ्रेडरिक ने कहा था—"प्रशिया का स्वार्थ आज से समग्र जर्मनी का स्वार्थ होगा"। "गौरव पूर्ण जर्मन विप्लव प्रतिक्रिया की तूफान मे बह गया"। आस्ट्रिया के दबाव से ओटो वान बिस्मार्क के नेतृत्व में प्रतिक्रियाशील मंत्रिमण्डल का संगठन कर पुनः प्रशिया में राजतंत्र-वाद स्थापित किया, परन्तु सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटना थी—विप्लववादियों द्वारा फ्रेंकफर्ट की लोकसभा (डाइट) का आमन्त्रण (१८४८—१८४६)। जर्मनी की यही थी प्रथम राष्ट्रीय संसद्-जिसके प्रतिनिधि बालिग मताधिकार द्वारा प्रत्येक संघीय राज्यों से निर्वाचित थे, जिनका उद्देश्य था—संमिलित जर्मनी का एक विधान बनना, परन्तु आस्ट्रिया ने विधान की पुनरावृत्ति का समर्थन नहीं किया। प्रशिया का राजा फ्रेडरिक भी जनता के विपक्ष में हो गया—जनता ने फ्रेंकफर्ट की लोकसभा द्वारा समस्त जर्मन साम्राज्य के सम्राट् बनने का अनुरोध किया, किन्तु प्रजातंत्रवाद के विप्लवियों द्वारा व्यवस्थापित होने से व आस्ट्रिया के साथ युद्ध की संभावना से इसने अस्वीकार कर दिया। लोक सभा के नियम विशेषज्ञ और अध्यापकों ने मानव के आधारभूत अधिकारों के लिए विवाद में समय नष्ट किया और इन्हीं कारणो से प्रजातंत्र वाद और राष्ट्रीयता की विपत्ति पर

संगठित जर्मनी के निर्माण का यह सुवर्ण सुयोग उत्पत्ति के साथ ही विनष्ट हो गया। फिर भी राजा फ्रेडरिक ने जर्मन एकता के लिए एर्फर्ट शहर में हैनोवर, सैक्सोनी, वाटम्बर्ग, बमेरिया एवं प्रशिया—इन पांच राज्यों को संघ बद्ध करने के लिए एक लोकसभा को आमंत्रित किया, पर आस्ट्रिया के विरोध से यह योजना असफल रही। एर्फर्ट संघ भंग हो गया व १८५० के आल्मुज की संधि के आधार पर प्रशिया ने आस्ट्रिया के समक्ष आत्म समर्पण किया एवं पुरातन राज्य संघ के विधान को अस्वीकार कर दिया।

(२) मैटर्निक का पतन

मैटर्निक के अधिकार तंत्र, गुप्तचरों द्वारा निरीक्षण प्रणाली व निरंकुश दमन ने आस्ट्रिया की दुर्बल जनता को उत्तेजित कर दिया था। तृतीय फ्रांसीय विप्लव की प्रतिक्रिया के रूप में आस्ट्रिया में भी विप्लव प्रारम्भ हुआ। इसके कई कारण थे। (१) औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम से धनी मध्यमवर्ग वैदेशिक पर्यटन एवं साहित्यिक अध्ययन से परिवर्तन के लिए अधीर हो चुका था। सहिष्णु मत के प्रचार पर प्रतिबंध लगा दिया गया। (२) आस्ट्रिया साम्राज्य के कृषकों में असंतोष फैला हुआ था। सामन्त प्रभु की दासता की शृङ्खलाओं मे जकडा हुआ कृषक मुक्ति पाने के प्रयास में था, इसी लिए उसने १८४८ के विप्लव में प्रमुख भाग लिया, परन्तु विप्लव की तात्कालिक भावनाएँ हंगेरी के राष्ट्रीय आंदोलन की देन थी। (३) हगेरी निवासी प्रजातंत्र के आधार पर अपने पुरातन राज्य के पुनः स्थापन के अभिलाषी थे। पर हंगेरी के कुलीन वर्ग के राजनैतिक अधिकारों का एक प्रकार से ठेका ले लिया था व वे सभी कर से मुक्त थे। (४) हंगेरी के लोकसत्तावादी प्रसिद्ध जननायक कोशाथ और

मैटर्निक (१७७३-१८५६)
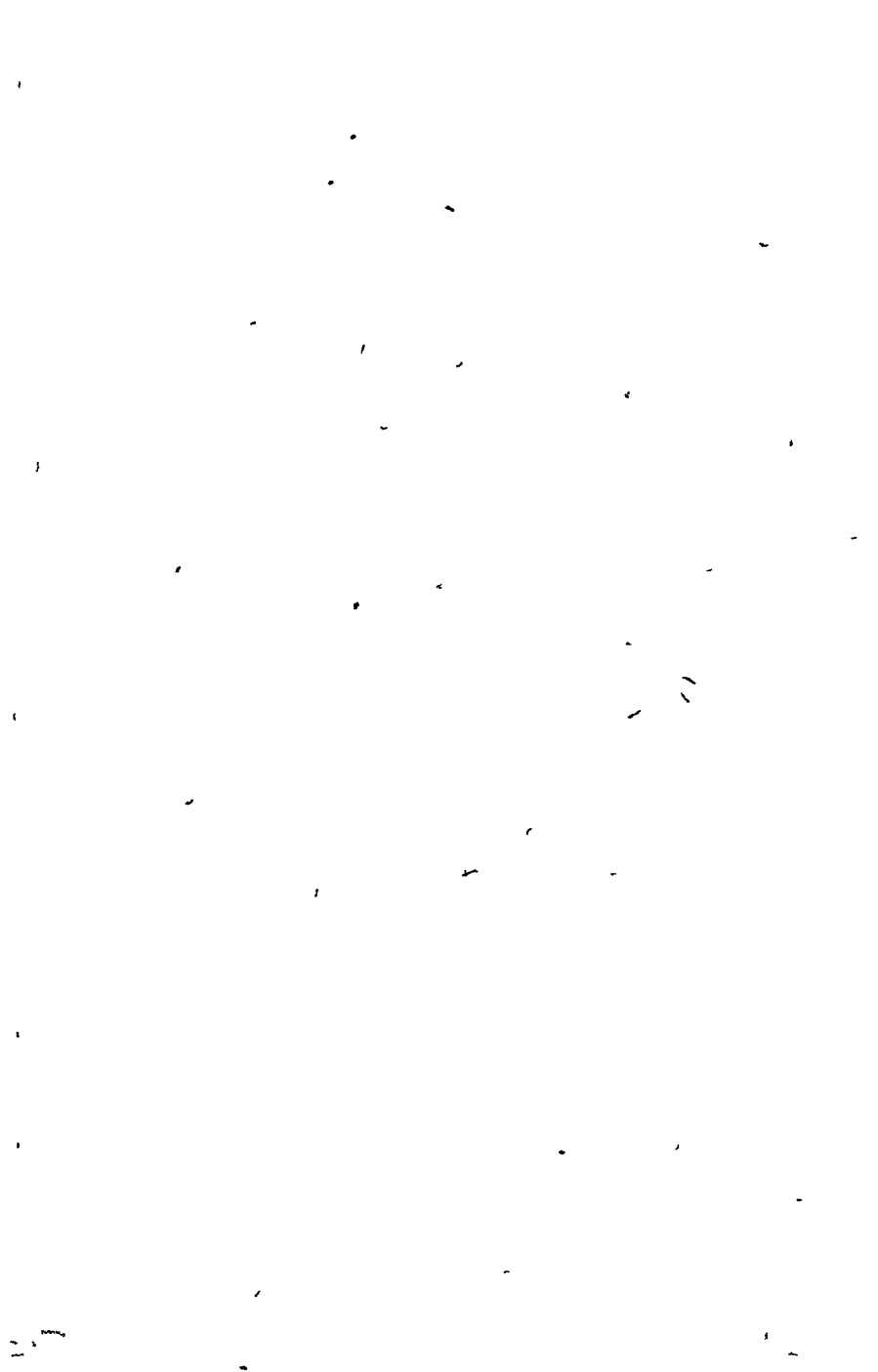
डीक के नेतृत्त्व में कुलीनों पर कर लगाने एवं राष्ट्रीयता के नियंत्रण व अधिकतर व्यक्तिगत स्वतंत्रता की माँगे प्रस्तुत की गई। इसी प्रकार राजनैतिक व आर्थिक कारणो के समन्वय से आस्ट्रिया मे विप्लव का उदय हुआ।

आस्ट्रिया आन्दोलन के पांच अध्याय थे। सर्वप्रथम विप्लव वियाना (मार्च १८४८) में हुआ। इसमें जर्मन जनता ने प्रजातंत्र, नवीन विधान व प्राकाशनिक स्वतंत्रता की मांग की। १३ मार्च को उग्र और उद्दीप्त जनता ने मैटर्निक के निवास स्थान पर आक्रमण किया। इस पर खेद के साथ मैटर्निक ने कहा "मैं एक प्रवीण वैद्य हूँ, किन्तु रोग असाध्य है"। भीत मैटर्निक जो ३६ वर्ष तक यूरोप का महान् अधिनायक था, छद्मवेप मे धोबी की गाड़ी मे बैठकर वियाना से भाग गया। इंग्लैण्ड मे गुप्त रूप से आश्रय लेकर इसने भूतपूर्व फ्रांस के राजा लुई फिलिप व वर्तमान में श्री स्मिथ के साथ अपने अनुभव की तुलना की। द्वितीय विप्लव इटली के मिलान नगर में आरम्भ हुआ—जिसका विवरण हम दे चुके हैं। तृतीय का केन्द्र बोहेमिया की राजधानी प्राग नगर था—यह चेक जाति की राष्ट्रीय वादिता का उग्र रूप था व वस्तुतः जर्मनी के विरोध मे था। इसका ध्येय बोहेमियां में स्वायत्त शासन तथा पश्चिम स्लाव जातियों का समन्वय था। चतुर्थ आन्दोलन मैगयर तथा हंगेरी निवासियो द्वारा बुडापेस्ट नगर में प्रारंभ हुआ था—इसका भी उद्देश्य एक पृथक् हंगेरी निवासियों के प्रजातंत्र और वैधानिक राज्य का निर्माण था। जनप्रिय हंगेरी के नेता कोशाथ ने मार्च के विशेष नियम द्वारा दासत्त्व प्रथा, कुलीन की सुविधाएँ व सामन्त प्रणाली का अवसान किया। किन्तु राष्ट्रवादी हंगेरी निवासियो ने अल्पसंख्यक क्रोट्स, रूमानियन, स्लावेन्स और सर्वस जातियों को स्वाधीनता देने के लिए अस्वीकार कर

दिया। कोशाथ ने कहा—"मानचित्र में हम इन जातियों को नही देखते है"। यही थी पंचम आन्दोलन की मूल भित्ति। इसकी उत्पत्ति विख्यात राजनैतिक पत्रकार लुईस गज की शक्तिशाली लेखनी द्वारा हुई। इस साहित्यिक विद्रोह का प्रधान कार्यालय इलीरिया प्रदेश के आग्राम शहर में था–जिसका उद्देश्य क्रोट्स, स्लोवेन्स, सर्वस को संमिश्रित बनाना था। वर्तमान यूगोस्लेविया के निर्माण का प्रथम सोपान यही था।

संक्षेप में आंदोलन के ५ प्रमुख केन्द्र थे— १—वियाना, २—मिलान, ३—प्राग, ४—बुडापेस्ट, ५—आग्राम। परन्तु इन विभिन्न आंदोलनो में परस्पर संबन्ध तो दूर रहा, विरोध भी था। इन सबका एक मात्र लक्ष्य था—आस्ट्रिया साम्राज्य का पतन। परन्तु विभिन्न जातियो व समस्याओं मे एकता के अभाव होने के कारण यह आन्दोलन असफल रहा। २ दिसम्बर १८४८मे सम्राट् फार्डिनेन्ड ने अपने भ्रातुष्पुत्र फ्रांसिस् जोशेफ के पक्ष में राज्य त्याग किया। फ्रांसिस् जोशेफ ने १८४८ से १६१६ तक राज्य किया—जिसका हम आगे अध्ययन करेंगे।

(३) *हंगेरी*—हंगेरी ने राजा के इस परिवर्तन को अस्वीकृत कर स्वयं को स्वाधीन घोषित कर दिया। पागी हैब्सबर्ग वंश को हंगेरी की जनता पर शासन करने का कोई अधिकार नहीं है। कोशाथ ने कहा—"गणतांत्रिकों के साथ आस्ट्रिया का युद्ध प्रारम्भ होगया"। रसिया की सहायता से फ्रांसिस जोशेफ ने (अगस्त १८४८) विलैगोस के युद्ध में विद्रोहियों का दमन किया। कोशाथ को नियम द्वारा बहिष्कृत कर दिया, उसने पहले तुर्की व पश्चात् इंग्लैण्ड में आश्रय ग्रहण करके अपनी वाग्मिता के बल पर इंग्लैण्ड को रसिया के विरुद्ध उत्तेजना देकर क्रीमिया के युद्ध की सृष्टि की। परिणामतः हंगेरी के वैधानिक

शासन का अंत कर दिया गया, क्रोयाशिया, ट्रांसिल्वेनिया दक्षिण हंगेरी को पृथक् प्रदेश बनाया गया व हंगेरी के अवशिष्ट अंश को ५ जिलो में विभाजित करके आस्ट्रियन अधिकारी को नियुक्त किया गया। धीरे धीरे आस्ट्रिया ने व्यवसाय, कृषि व उद्योग में उन्नति की, परन्तु राष्ट्रीयता और प्रजातंत्रवाद के सिद्धान्त स्वेच्छाचारिता व केन्द्रीभूत शासन की चक्की में पिस गये। विप्लव का एक ही शुभ परिणाम हुआ—वह था सामन्त प्रणाली का अवसान व दास प्रथा का अन्त, जिससे-मानव जाति को प्रभूत लाभ हुआ। जर्मनी, हंगेरी और इटली के राष्ट्रीय आंदोलन का प्रधान केन्द्र आस्ट्रिया था और अंत मे पिडमण्ट व प्रशिया को छोड कर सर्वत्र प्रतिक्रिया की विजय हुई।

(४) समीक्षा—मैटर्निक का पतन एक इतना आश्चर्यमय संवाद था:—जो कि वाटरलू के युद्ध मे नेपोलियन के पतन के पश्चात् यूरोप निवासियों द्वारा सबसे पहले विस्मय के साथ सुना गया था। प्रो० हनेशॉ का कथन है कि— "मैटर्निक का पतन एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है"। यह एक पुरातन शासन प्रणाली व प्रतिक्रियाशील अवसान का समय था। वस्तुतः उसकी नीति एक कुशल दूरदर्शी राजनीतिज्ञ के समान नहीं थी। प्रो० केटिलबी का कथन है-"यह निषेधात्मक अवसरवादी और खंडनात्मक था। रचनात्मक आदर्श का इसके पास सर्वथा अभाव था"। योग्य विचारक फूचे ने इसके दोष पर्यवेक्षण एवं दुर्बलता ज्ञान की प्रशंसा की। तालेरॉ ने कहा-"यह एक ऐसा राजनैतिक है—जिसकी प्रणाली व लक्ष्य प्रत्येक क्षण मे सत्य व सम्मान की उपेक्षा करते हुए परिवर्त्तित होते रहते हैं"।

विजयी राष्ट्रीयता और प्रजातंत्रवाद से प्रभावित होकर भविष्य के समीक्षक मैटर्निक की नीति पर कटुतापूर्ण दृष्टि से

विचार करते हैं। यह स्मरण रखना चाहिये कि बिस्मार्क के अनुसार यह महान् राष्ट्रीय आन्दोलन की उत्पत्ति नहीं थी। जैसा कि इसके राजनैतिक वक्तव्य से प्रमाणित होता है—यह अपने उस युग की–जिसका कि ये संचालन करते थे–गति-विधियों को समझ ही नहीं पाया—"वह एक अवसरवादी था"। यह एक अक्षरशः सत्य है, परन्तु इसके जीवन की सबसे बड़ी भूल यह थी कि इसकी नीति असमन्वयात्मक थी। विश्व के महान् संकट में शान्ति की रक्षा के लिए इसने ऐसे सिद्धान्तों का परीक्षण किया, जो दुर्भाग्यवश टिक नहीं सकते थे, परन्तु यह दोष सिद्धान्तों का था। हैजन ने ठीक ही कहा है—"यद्यपि इसने विप्लवियों को बंदी बनाया, किन्तु उनकी धारणाओं को बंदी नहीं बना सका। इसलिए यह असफल रहा"। उसकी साधारण दृष्टि संकीर्ण थी और वह दोषद्रष्टा था—फिर भी कूटनीतिज्ञ मैटर्निक परिस्थिति के अनुकूल अपनी नीति के परिवर्त्तन और प्रयोग में अत्यन्त कौशल दिखलाता था। नेपोलियन के ध्वंस के लिए राष्ट्रसंघका संगठन, यूरोप की रक्षा के लिए शक्तिगोष्ठी की स्थापना, जर्मनी इटली के विप्लव के विरोध इसी की मेधाशक्ति के चमत्कार थे। प्रत्येक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का यह एक ऐसा महत्त्वपूर्ण व्यक्ति था—जिसके संकेत के बिना किसी भी आंतरिक प्रदेश की नीति निर्धारित नहीं की जा सकती थी। सत्य तो यह है कि जिस युग में इसने जन्म लिया वह उसका समर्थन ही नहीं करता था। उसने एक बार कहा था–"हमने संसार में या तो अत्यन्त शीघ्र अथवा अत्यन्त विलंब से जन्म लिया। विप्लव के पूर्व यदि जन्म लेते तो हम उसके आनन्द का भोग कर सकते थे। यदि विप्लव के अन्त में जन्म लेते, तो हम संसार के पुनर्गठन में योग दे सकते थे"। इसके शब्द में "प्रजातन्त्रवाद केवल दिन को निशा के अंधकार में

परिणत कर देना था"। नेपोलियन ने मैटर्निक के संबंध में एक बार कहा था—"इसने भूल से षड्यंत्र को राजनीति समझ लिया है"। अलैग्जेण्डर प्रथम ने इसे झूठा कूटनीतिक कहा। प्रो० एलीशन फिलिप्स कहता है—"यह एक क्लान्त और दुर्बल-युग का आवश्यक व्यक्ति था—पर यह इसका दुर्भाग्य था कि आवश्यकता से भी अधिक यह जीवित रहा। यद्यपि यह स्वयं वृद्ध और दुर्बल हो चुका था, फिर भी इसने विश्व के यौवन और वेग की उपेक्षा की"। यही इसके पतन का मूल कारण था। उसकी नीति चाहे कितनी ही संकीर्ण और सीमित हो, पर यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि ४० वर्ष के संकटमय काल में इसने सारे यूरोप को शांति और सुरक्षा दी। प्रो० केटिलबी का यह कथन अत्युक्ति नहीं—"इसकी आस्ट्रिया नीति के परित्याग के कारण ही आज संसार के मानचित्र में छिन्न भिन्न दृष्टिगोचर होता है"।

———※———
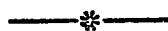
६—बिस्मार्क-युग

(१८४८ से १८७०)

सम्राट् नेपोलियन प्रथम के पश्चात् यूरोप द्वितीय तृतीय विप्लव के साधारण उपद्रवों के अतिरिक्त किसी भी महायुद्ध का शिकार नहीं हुआ। नेपोलियन का नाम यूरोप के अन्य प्रदेशों मे बच्चों की लोरी के काल में प्रयुक्त होता था—और फ्रांस में अनेक महत्वाकांक्षी परन्तु अयोग्य व्यक्ति इस नाम से संबन्ध स्थापित कर स्वयं को गौरवान्वित समझने लगे थे। १८४८ में लुई नेपोलियन जब फ्रांस के द्वितीय गणतंत्र का राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ—तो फ्रांस के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना घटी, क्योंकि चार वर्ष के संक्षिप्त समय में ही यह साम्राज्य वाद के स्थान पर पुनः गणतंत्र स्थापित हो गया। १८५१ में इंग्लैण्ड के राजा प्रिंस एलबार्ट के प्रोत्साहन से लंडन में एक महान् अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी का आयोजन हुआ—जिसमें एक नवीन अन्तर्राष्ट्रीय शांति और व्यवसाय के युग की घोषणा की गई। परन्तु वस्तुतः यह २२ वर्ष का संक्रमण काल इतना महत्वपूर्ण है कि प्रथम फ्रांसीय विप्लव से प्रथम महायुद्ध तक इस प्रकार का समय इतिहास में नहीं आया था। इसी समय इटली का स्वतंत्रता-संग्राम कृतकार्य हुआ। जर्मन साम्राज्य का संगठन, आस्ट्रिया हंगेरी का पुनर्निर्माण, नेपोलियन तृतीय का उत्थान और पतन, रसिया का एशिया में राज्य विस्तार, जापान का जागरण, अमेरिका का गृहयुद्ध, कनाडा का राष्ट्रसंघ, क्रीमिया के युद्ध आदि आमूल परिवर्तन हुए—जो एक नवीन युग की सूचनाएँ थीं। विश्लेषण करने से प्रतीत होता है कि

इस काल में संतुलन शक्ति का परिवर्तन हुआ था। मैटर्निक का युग अब बिस्मार्क युग में परिवर्तित होगया यूरोप के इतिहास में बिस्मार्क ने असंख्य देन दी। इस युग का सबसे बड़ा राजनीतिज्ञ या कूटनीतिज्ञ ही नहीं, अपि तु बिस्मार्क इटली के स्वतंत्रता संग्राम का अप्रत्यक्ष समर्थन, जर्मन साम्राज्य का निर्माण, नेपोलियन तृतीय का पतन, वल्कान राष्ट्र संघ व रुसिया की राजनीति का नियंत्रण आदि का विधाता था, इसीलिए इस काल को हम उसका युग कह कर संमानित करते हैं। लुई नेपोलियन तृतीय भी उसी युग का एक महान् व्यक्ति व सम्राट् था।

(क) लुई नेपोलियन तृतीय

१—प्रारंभिकजीवन (१८१८ से १८४८)

लुई नेपोलियन फ्रांसके तृतीय विप्लव का प्रधान केन्द्र था—यह नेपोलियन के भाई हालैण्ड के राजा लुई बोनापार्टी का पुत्र था। इसका जन्म १८०८ मे हुआ था। डा० सिम्पासन का कथन है कि—"राजवंश में जन्म, सम्राट् का नाम, नेपोलियनकी असंख्य देन, प्रारंभिक निर्वासन, युवावस्था मे परिभ्रमण, विफल आक्रमण, गंभीर इच्छाशक्ति, छद्मवेषी पलायन, द्वीपान्तर और कारागृह का जीवन आदि सभी इसकी जनप्रियता के निमित्त थे। यह दुस्साहसी, पड्यंत्रकारी, विद्रोही, निराशावादियों का अग्रणी था, जिन्होंने इसे महान् ऐतिहासिक प्रतारक बना कर फ्रांस की जनताको चकित कर दिय"।

वाटरलू के युद्ध के पूर्व में यह जनश्रुति है कि—इसके चचा नेपोलियन ने इसका आलिंगन करते हुए कहा था—"कौन कह सकता है कि यही बालक आगे चलकर हमारे वंश के भविष्य को उज्ज्वल नहीं करेगा?"। नेपोलियन की यह युक्ति अक्षरश: चरि-

तार्थ हुई। नेपोलियन के पतन के पश्चात् इसने अपनी माता के साथ इंग्लैण्ड में निर्वासित जीवन व्यतीत किया। इसी समय इसने नेपोलियन के साहित्य और सैण्ट हेलेना मे लिखित चरित्र का पूर्ण अध्ययन किया। नेपोलियन के चरित्र ने उसे अत्यन्त प्रभावित किया। उसमे महत्त्वकांक्षाएँ उदित हुईं और नेपोलियन की न्यूनताओं को पूर्ण करने का इसने पूर्ण प्रयत्न किया।

१८३२ में नेपोलियन के पुत्र (नेपोलियन द्वितीय) की मृत्यु के पश्चात् उस वंश का यह उत्तराधिकारी बन गया व ४ वर्ष बाद इसने स्ट्रसबुर्ग नगर की सेनाओं को विद्रोही बना कर राजा बनने की प्रथम असफल चेष्टा की और इंग्लैण्ड में निर्वासित हो गया। १८३६ में इसने इंग्लैण्ड में "नेपोलय-नीय आईडियाज" नामक पुस्तक लिखा-जिसमें यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया कि "नेपोलियन विप्लव के सिद्धान्तो का दास था—उसका साम्राज्य जनता के अधिकारों का संरक्षण था। प्रजातंत्रवाद का प्रचार नेपोलियन का प्रथम ध्येय था—जिसे निष्ठुर एवं निर्दयी राजाओं ने राज्यच्युत कर दिया"। संक्षेप मे इसने प्रचार द्वारा नेपोलियन के जीवन को एक पौराणिक कहानी बना कर जनता को प्रभावित किया। कुछ समय के अनन्तर फ्रांस में परावर्त्तित होकर इसने १८४० मे बुलौन नगर में बोनापार्टी के पुनः संस्थापन का प्रयत्न किया। इसी समय फ्रांस की जनता सम्राट् नेपोलियन की अस्थियों को हैलेना से पेरिस की ओर ला रही थी। लुई नेपोलियन ने यह निश्चय किया कि वह स्वयं समारोह के साथ इन अस्थियो को ग्रहण करेगा, परन्तु शासन ने इसे होम के दुर्ग में बन्दी बना लिया। अपने इस ६ वर्ष तक के कारावास को इसने "होम विश्व-विद्यालय" का अध्ययन कहा। छद्मवेष में यह पुनः इंग्लैण्ड

पलायन कर गया। १८४८ में विप्लव का संवाद सुनकर यह पेरिस मे आया व पुनः राजधानी छोड़कर चला गया। फ्रांस उसको सम्मान देने के लिए अभी तैयार नहीं था। विप्लव के अनन्तर निर्वाचित विधान सभा का वह किस प्रकार सदस्य और सदस्यता से फ्रांस का निर्वाचित राष्ट्रपति हुआ—यह हम ऊपर बता चुके है।

(२) राष्ट्रपति के रूप में—(१८४८ से १८५२)

२० दिसम्बर १८४८ को लुई नेपोलियन ने राष्ट्रपति पद की शपथ ग्रहण करते हुए कहा—"मैं सर्वदा गणतंत्र का अनुयायी रहूँगा व गणतंत्र के अवसान का जो भी प्रयत्न करेगा. वह राष्ट्र का परम शत्रु होगा"। राष्ट्रपति का कार्यकाल चार वर्ष था एवं पुनर्निर्वाचन विधान द्वारा निषिद्ध था। सबसे पूर्व नेपोलियन ने जनता को गणतंत्र दल को ध्वस्त कर अपनी और आकर्षित करने की चेष्टायें कीं। इसने कहा—"नेपोलियन प्रथम ने प्रजातंत्र, राष्ट्रीयता, शान्ति और धर्म के आधार पर ही साम्राज्य को संगठित किया था। उसकी असफलता परिस्थितियों की विपरीतता के कारण थी। हम गौरव, सामाजिक सुधार और १८१५ की राष्ट्र संघीय संधि के विरोधी रहेंगे—यही हमारा ध्येय है"। प्रभावशील विक्टर ह्यूगो, लामर्टायन, थीयर्स व थिवेडू ने अपनी शक्तिशाली लेखनी द्वारा उपर्युक्त सिद्धान्तों का प्रचार किया। इसका परिणाम यह हुआ कि अशांति और अराजकता से (१८४८ की) त्रस्त कृषक और मध्यमवर्ग ने प्रतिनिधि भवन के ७५० सदस्यों मे ५०० राजसत्तावादियो को मई १८४९ में निर्वाचित किया। भवन में गणतंत्रवादी अल्पसंख्यक हो गए व उनमें राष्ट्रपति के विरोध की शक्ति नहीं रही। विक्षुब्ध गणतांत्रिक दलने १३ जून को एक असफल विद्रोह किया, फलतः विरोधियों को ध्वस्त करने का

लुई नेपोलियन को एक स्वर्ण अवसर मिल गया। उसने सार्व-जनिक सभाओं व प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगाया एवं लुई फैलुक्स के विशेष प्रस्ताव द्वारा गिरिजा के अधिकारियो को शिक्षा मे प्रधानता दी, सदस्यो के वेतन की वृद्धि की। पोप पायस नवम—जिसे विद्रोहियों ने रोम से बहिष्कृत किया था—को भौतिक सत्ता का सामरिक शक्ति द्वारा पुनः अधिकारी बना दिया गया। वृद्धों के लिए बीमा-पद्धति का प्रचलन किया। इन सब संशोधनों के अनन्तर नेपोलियन ने यह अनुभव किया कि उसका कार्यकाल समाप्त होने वाला है, इसीलिए इसने विधान की पुनरावृत्ति द्वारा अपने कार्यकाल की विवृद्धि के आन्तरिक उद्देश्य से प्रादेशिक जनता से अपील की एवं स्वेच्छाचारिता प्रारम्भ की। अपने ऑडिलॉन बैराट् मंत्रिमंड़ल को भंग कर दिया व उसके स्थान पर मॉर्नी, पर्शिग्नी, फ्लिवुरी और सैन्ट आर्नोड इन मंत्रियों के मंडल की नियुक्ति की परन्तु प्रतिनिधि भवन ने नवम्बर १८५० में इसका तीव्र विरोध किया व प्रत्यक्ष युद्ध घोषित कर दिया। राष्ट्रपति ने इसके उत्तर में राष्ट्रीय रक्षा दल के सेना पति चंगारर्नीयर को पदच्युत कर दिया व घोषणा की कि "नेपोलियन का नाम एक संपूर्ण कार्यक्रम है—जिसका अर्थ है-शांति, शृङ्खला अधिकार और धर्म। जनता की आंत-रिक उन्नति एवं बांह्य राष्ट्रीय संमान ही इसकी मूल नीति है"। परन्तु राष्ट्र पति द्वारा सेना पर अधिकार करने के प्रयत्नों से जनता रुष्ट हो गई। एक प्रत्यक्षदर्शी लिखता है—"इस संकट-मय समय में साम्राज्य ही एकमात्र समाधान था, एवं इस समय राजसत्तावादियो का प्राधान्य है—जो कि गणतंत्र-विधान की चक्की में पीसे जा रहे हैं। इस काल में अधिना-यकता अथवा विप्लव मे से एक अवश्यंभावी है"। यह विश्ले-षण वस्तुतः सत्य था।

प्रतिनिधि भवन ने एक विशेष निर्वाचन प्रणाली का प्रयोग किया--जिसके आधार पर उन्हीं को मताधिकार दिया गया--जो तीन वर्ष से अधिक एक ही प्रदेश में प्रत्यक्ष कर देते आये हैं। इसके उपयोग से सार्वजनिक मताधिकार वंचित हो गया व संपत्ति के अधिकारियो को ही मतका अधिकारी बना दिया गया। परिणामतः ३० लाख व्यक्ति मताधिकार से वंचित हो गये। एक अतिरिक्त नियम द्वारा ५० हजार फ्रेंक जमानत देना प्रत्येक पत्र संपादक के लिए अनिवार्य कर दिया। लुई नेपोलियन ने अपने उपवेतन व कार्यकाल की वृद्धि का प्रस्ताव प्रतिनिधि भवन के समक्ष रखा—जो निषिद्ध कर दिया गया। राष्ट्रपति ने अब सामरिक शक्ति द्वारा प्रतिनिधि भवन को भंग कर देने का प्रयत्न किया, एवं अक्टूबर २६, १८५१ में इसने पुनः मंत्रिमंडल को पदच्युत कर संपूर्ण शक्ति को स्वयं में केन्द्रित कर लिया। युद्धमंत्री, गृहमंत्री और पुलिस के अधिकारियों को इसी ने नियुक्त किया।

२ दिसम्बर १८५१ में--नेपोलियन प्रथम के वार्षिक राज्याभिषेक समारोह के दिन--इसने विधान को भग करने का निश्चय किया। प्रतिनिधि भवन को सेना द्वारा परिवेष्ठित किया गया व विशेष घोषणा की कि "विधान का परिवर्तन जिसमें राष्ट्रपति के १० वर्ष के कार्यकाल एवं सार्वजनिक मताधिकार मुख्य थे--आवश्यक है"। मध्य रात्रि में ७८ प्रतिनिधि भवन के सदस्यों को वन्दी बना लिया गया व उसके अनन्तर प्रतिनिधि भवन को भंग कर राष्ट्रपति को गणतंत्र की रक्षा के लिए विशेष अधिकार दिये गए। द्वितीय दिन विक्टर ह्यूगो के नेतृत्व में उग्र जनता विद्रोही हो गई, परन्तु ४ दिसम्बर को बुलिवार्ड्स स्थान मे १५० व्यक्तियों को निर्मम हत्याकाण्ड से ध्वस्त कर विद्रोह का दमन किया गया, हजारों को वंदी बनाया

गया व अनेकों को निर्वासित किया गया। जिनमें विक्टर ह्यूगो भी था—उस काल में इसने कहा—"हम फ्रांस मे तभी आयेंगे जव स्वतन्त्रता की पुनरावृत्ति होगी"। इसके अनन्तर अपनी प्रथम घोषणा के अनुसार इसने विधान में परिवर्तन के संबन्ध मे सार्वजनिक मत लिए ७० लाख व्यक्तियों ने अधिक रूप से इसके कार्यकलापों का समर्थन करते हुए इसके कार्यकाल को १० वर्ष के लिए वढ़ा दिया। गणतंत्र यद्यपि एक वर्ष तक और जीवित रहा, पर वस्तुतः यह मृत हो चुका था। लुई नेपोलियन ने २१ नवम्बर १८५२ को जनमत से स्वयं को नेपोलियन तृतीय के नाम से सम्राट् घोषित किया और इसी प्रकार फ्रांस में द्वितीय साम्राज्य की स्थापना हुई।

(२) सम्राट् नेपोलियन (१८१५ से १८७०)

"लुई नेपोलियन जनता की इच्छा और भगवान् के आशीर्वाद से फ्रांस का सम्राट् बना"। इसका प्रधान कर्तव्य था—नवीन विधान का निर्माण। सम्राट् नौ व स्थल सेना का सेनापति वन गया। युद्ध व शान्ति की घोषणा का निर्णय एव वैदेशिक शक्ति क साथ सन्धि, अपराधी को क्षमा, नियमों का प्रस्तावन व प्रचलन, मुख्यसमिति व विधान सभा का नियंत्रण इसके आधीन था—यद्यपि विधान की प्रत्येक धारामें "राष्ट्र के प्रति उत्तरदायी" शब्द लगा हुआ था। सार्वजनिक मत इसी के अधिकार में था। १० सदस्यों का मंत्रिमण्डल सम्राट् द्वारा निर्वाचित होगा व उसी के प्रति उत्तरदायी होगा। विभिन्न प्रदेश और जिले भी इसके द्वारा नियुक्त शासकों द्वारा शासित होगे। विशेष गुप्तचर विभाग द्वारा शासन की समालोचना एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता का नियंत्रण किया। संक्षेप में शासन संचालन के सम्पूर्ण अधिकार इसी मे ही निहित थे।

विधान सभा को तीन भागों में बांटा गया—१—मुख्य-समिति, २—राज्यपरिषद्, ३—धारा सभा। प्रथम समिति के सम्पूर्ण सदस्य और शेष दोनों के अध्यक्ष सम्राट् द्वारा मनोनीत होते थे। मुख्यसमिति विधान की संरक्षक थी और नियमों के प्रस्तावों का उपस्थापन करती थी, जिन पर शेष दोनों समितियां विचार करती थीं, यद्यपि जनता को सार्वजनिक मताधिकार दिया गया था—परन्तु उसके प्रयोग में इतनी बाधाएँ थीं कि निर्वाचन निष्पक्ष नहीं हो सकता था। एक शब्द में १८५२ में नेपोलियन तृतीय उतना ही स्वेच्छाचारी था—जितना कि १८०४ में नेपोलियन प्रथम। इसके अनन्तर नेपोलियन ने अपने कार्यक्रम की घोषणा की—"जनता यह संदेह करती है कि साम्राज्य का उद्देश्य है युद्ध-परन्तु हम कहते है—हमारा ध्येय है शान्ति व इसके पश्चात् जनता की स्वाधीनता"। परन्तु शान्ति, शृङ्खला, स्वाधीनता और वैदेशिक गौरव इन सब का समन्वय एक असंभव कार्य था। १८५२ से १८६० तक नेपोलियन एक स्वेच्छाचारी सम्राट् था व १८६० से १८७० तक वह उदारनीति का अनुयायी रहा—जिसका विवरण हम आगे देखेंगे।

क—आन्तरिक नीति

नेपोलियन तृतीय ने कहा था—"द्वितीय साम्राज्य फ्रांसीय विप्लव का अन्तिम पुष्प है एवं सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था की एक विशेष शक्ति है"। आंतरिक मामलों में नेपोलियन जनता को नियंत्रित एवं विरोधियों को भी अपनी ओर आकर्षित करने मे एक चतुर राजनैतिक था। १८५३ में नेपोलियन तृतीय ने स्पेन की एक कुलीन महिला यूजीन के साथ विवाह किया। लिप्सन कहता है—'साम्राज्य की सामाजिक एवं आर्थिक सुधार नीति जनता के छीने हुए राजनैतिक अधिकारों की एक

प्रकार से क्षति पूर्ति थी"। फ्रांसीय विश्वविद्यालय में आर्थिक उदारता की शिक्षा दी गई और व्यवसाय में व्यक्तिगत स्वाधीनता को प्रोत्साहन दिया गया। औद्योगिक संघटन किया गया व फ्रांसीय बैंक की विभिन्न शाखाओ का विस्तार किया गया। १८६०में नेपोलियन तृतीय ने आय कर को न्यून कर इंगलैण्ड के साथ व्यावसायिक मैत्री स्थापित की—जिससे दोनों देशों में व्यावसायिक प्रगति हुई। बन्दरगाहों की उन्नति की, नहरों को खुदवाया, मार्गों को सुधरवाया, रेल डाक व तार विभाग को पर्याप्त समृद्ध किया। फ्रांस को सुन्दर बनाने के लिए बैरान हाउस मैन के निरीक्षण में पेरिस में बड़े बड़े सार्वजनिक भवन और नाट्यशालाएं बनवाई। श्रमिकों को संतुष्ट करने के लिए रोटी एवं अवकाशों की व्यवस्था की। एक नियम द्वारा श्रमिको को सहकारी समितियों का सदस्य बनने की सुविधा दी गई। आंशिक रूप से व्यावसायिक संघ की स्वीकृति एवं सबसे पूर्व फ्रांस के इतिहास में हड़ताल के अधिकार को वैध माना गया। दुर्घटना, मृत्यु, एवं वार्द्धक्य के लिए बीमा का प्रचलन किया गया। बेकारी को दूर करने के लिए प्रादेशिक नगरों में शासनिक उद्योगशालाओं की स्थापना की गई। कृषक को व्यक्तिगत संपत्ति का अधिकारी माना गया एवं बाजारों की वृद्धि की गई। अपनी इसी आंतरिक नीति का विश्लेषण करते हुये इसने कहा था—"हम विजय करेंगे, धर्म के लिए, नीति के लिए, भौतिक आराम के लिए व जनता की प्राथमिक आवश्यकताओं की पर्याप्त मात्रा में पूर्ति के लिए"। सम्राट् ने गिरिजा और सिंहासन में एक निकट मैत्री स्थापित की। कथोलिक पादरियों को प्रोत्साहन दिया, इन्हें आर्थिक सुविधाएं देने के साथ साथ इनकी पहले की सुविधाओं का पुनर्स्थापन किया। धार्मिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया गया।

१८६० में पूंजीपतियों व कैथोलिकों ने नेपोलियन का समर्थन नहीं किया। सम्राट् की पोप की स्वाधीनता का ध्वस्त करने वाली इटालियन नीति ने कैथोलिको को रुष्ट कर दिया एवं इंग्लैंड की संधि—जो कि आयकर को कम करने वाली थी—ने १८६०) पूंजीपतियों को विक्षुब्ध बना दिया। इसी समय सहिष्णुदल ने स्वाधीनता के विस्तार के लिए आन्दोलन प्रारम्भ किया। नेपोलियन के "मेक्सिको आक्रमण" की असफलता से उसकी प्रतिष्ठा में बाधा पड़ी। इसीलिए १८६० में इसने धारासभा को वर्ष मे एक बार सम्राट् की नीति की समालोचना करने का आदेश दिया। १८६१ मे इसने बजट की प्रत्येक धारा पर पृथक् २ वोट देने का व ६ वर्ष पश्चात् सदस्यो को प्रश्न करने का अधिकार दिया। प्रकाशन को आंशिक स्वतन्त्रता व जनता को सार्वजनिक सभाओं का अधिकार दिया गया। परन्तु इस उदारनीति ने जनता को संतुष्ट करने की अपेक्षा स्वेच्छाचारी सम्राट् के विरोध और वैधानिक प्रजातन्त्र की स्थापना के लिए उसे एक सुवर्ण अवसर दिया।

१८५१ के हत्याकांड मे मृत गणतांत्रिक सदस्य बोडिन के स्मृति स्तंभ निर्माण के लिए एक आंदोलन प्रारम्भ हुआ। सम्राट् ने इसमें आर्थिक सहायता करने वाले व्यक्तियों को नियम विरुद्ध घोषित कर बंदी बना लिया। इसी समय इन अभियुक्तों की वकालत करने के लिए एक तीस वर्षीय युवक दक्षिण फ्रांस मे आया—जिसका नाम गैम्बेटा था। यह राजनीति में एक महान नेता ही नहीं, अपितु एक विधाता बन गया। न्यायालय मे २ दिसम्बर १८५१ की घटनाओं का विश्लेषण करते हुए इसने एक ऐतिहासिक व्याख्यान दिया— "ओ! १७ साल वर्ष से स्वेच्छाचारिता पूर्ण शासन करने वाले सम्राट्! सुनो! द्वितीय दिसम्बर को हम एक वार्षिक राष्ट्रीय

दिवस के रूप में मानेंगे, क्योंकि उसीदिन हमें मृत व्यक्तियों को श्रद्धाञ्जलि समर्पित करना है। हम प्रतिवर्ष इसे मनाते रहेंगे जब तक कि हमे स्वाधीनता, समानता और एकता की प्राप्ति न होगी व हमारा राष्ट्रीय प्रायश्चित्त पूरा नहीं होगा"। यद्यपि गेम्बेटा अपने अभियुक्तों की रक्षा मे असफल रहा, परन्तु उसी दिन से साम्राज्य के पतन के चिन्ह प्रकट होने लगे। यह स्पष्ट हो गया कि फ्रांस मे एक ऐसा आंतरिक गणतांत्रिक दल है-जो उद्दारनैतिक सम्राट् का पतन चाहता है और फ्रांस की जनता को संगठित करने में व्यस्त है। इसके अतिरिक्त भी एक तृतीय दल ऑलिवर के नेतृत्त्व में वैध राजतंत्रवादी था-जो वैधानिक राजतंत्र का पक्षपाती था। परिणामतः १८६६ में विधान में परिवर्त्तन हुआ और मंत्रिमंडल धारासभा के प्रति उत्तरदायी हो गया। तृतीय दल की नीति का समर्थन कर सम्राट् ने मुख्य समिति को विधान के संरक्षण अधिकारों से वंचित कर धारा-सभा को प्रधानता प्रदान की। २ जनवरी १८७० मे ऑलिवर बहुमत से प्रधान मन्त्री बना और ८ मई को सार्वजनिक मत द्वारा उपर्युक्त नवीन विधान को स्वीकार कर नेपोलियन तृतीय को वंशानुक्रमिक सम्राट् माना गया। परन्तु गेम्बेटा के नेतृत्त्व में गणतंत्र दल ने इसका विरोध किया व ३ मास के अनन्तर जर्मनी द्वारा नेपोलियन के पराजित होने पर गणतंत्र की तृतीय बार स्थापना हो गई।

(ख) वैदेशिक नीति

नेपोलियन की वैदेशिक नीति शान्ति के स्थान पर युद्ध-मय थी, क्योंकि यह चमत्कारपूर्ण व साफल्यमय वैदेशिकनीति के माध्यम से जनता की दृष्टि को गृह से बाहर ले जाना चाहता था। इसके काल मे चार गणनीय युद्ध हुए (१) क्रीमियन संग्राम, (१८५३ से ५६) (२) आस्ट्रिया-सार्डीनियायुद्ध, (१८५६)

३ मेक्सिको के आक्रमण (१८६२ से १८६७) (४) प्रशिया संग्राम (१८७०-७१) इन सब का विशद् वर्णन आगे मिलेगा।

नेपोलियन तृतीय ने फ्रांस को एक औपनिवेशिक साम्राज्य बनाने का प्रयत्न किया। पश्चिम द्वीप समूह में ;पश्चिम अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका और भारतवर्ष' में-जो फ्रांसीय उपनिवेश थे-इसने पुनर्गठित किया। एल्जीरिया को फ्रांस में लीन कर लिया। सुदूर प्रशान्त महासागर के न्यू केलिडोनिया को (१८५३) अधिकृत किया व इंग्लैण्ड के साथ सामरिक प्रदर्शन कर चीन को परास्त किया, टीअन्टसिन (१८६०) की संधि शर्तों के अनुसार फ्रांस को व्यवसाय की सुविधा प्राप्त हुई। इन्डोचीनमें भी इसने फ्रांसीय साम्राज्य की भित्ति स्थापित की।

विदेशनीति में नेपोलियन तृतीय ने अपने चचा से यह शिक्षा ग्रहण की थी कि जनता में राष्ट्रीय भावना का जागरण ही उनके पतन का मुख्य कारण था। इसी लिए दलित इटली जर्मनी, पोलैण्ड और बल्कान राज्यसमूहों की सहायता कर इसने इंग्लैण्ड से मित्रता स्थापित की।

क्रीमिया के संग्राम में इंग्लैण्ड और फ्रांस ने रसिया को पराजित किया। पेरिस नगर में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय महासभा ने १८५२ में नेपोलियन की विजय को मान्यता दी। राष्ट्रीयता के समर्थन में इसने मॉल्डेविया और वालेचिया प्रदेश के संमिश्रण से रूमानिया राष्ट्र के संगठन का (१८५६ से ६१) अनुमोदन किया। इटली में आस्ट्रिया के विपरीत सार्डीनिया के साथ प्लाम्बियर्स की गुप्त संधि की (जुलाई १८५८) । इस सन्धि के अनुसार नेपोलियन ने सार्डीनिया को सामरिक सहायता प्रदान की, परन्तु इसने संधिशर्तों को भंग कर आस्ट्रिया के साथ मैत्री स्थापित करली व सवाय और नाइस 'पर अधिकार करके फ्रांस की प्राकृतिक सीमा को आल्स तक पहुँचा दिया।

इसी नीति की फ्रांस के कैथोलिक वर्ग एवं आस्ट्रिया निवासियों ने भयंकर निन्दाऐं कीं। १८६३ में जब रूसिया ने पोलैण्ड के २ हजार नव युवकों को अनिवार्य सैनिक के रूप में प्रविष्ट किया तो पोलैण्ड निवासियों ने रसिया के विरुद्ध विद्रोह घोषित कर दिया। एक फ्रांसीय लेखक का कथन है-"पोलैण्ड का विद्रोह नेपोलियन के लिए विभिन्न दलों को एकत्रित करने का सुवर्ण सुयोग था"। पोलैण्ड को सहायता करने के लिए नेपोलियन ने रसिया की नीति का विरोध किया, परन्तु रसिया ने बिस्मार्क की सम्मति से विरोध की उपेक्षा करते हुए निर्दयता के साथ विद्रोह का दमन किया। प्रतीत होता है कि शान्ति के लिए नेपोलियन ने आश्वासन देने पर भी एक स्वतंत्रता प्रिय जाति की रक्षा नहीं की। इन सबमें अधिक असफल था- मेक्सिको में हस्तक्षेप। १८६१ में गणतांत्रिक नेता वेनिटो जुवारेज ने राजसत्तावादी मिरामन को परास्त कर दिया। पराभूत मिरामन ने यूरोपीय शक्तिपुंज से सहायता की अपील की-नेपोलियन ने इस गृहयुद्ध के सुयोग से आस्ट्रिया के सम्राट् फ्रांसिस जोशेफ के भाई मैक्समीलियन को शासक बनाने की योजना तैयार की-जिसका उद्देश्य था कि शान्ति स्थापना होने से इंग्लैण्ड, स्पेन व फ्रांस में व्यावसायिक सुविधाऐं बढेंगी एवं ऋण का धन प्राप्त हो जायेगा। इसीलिए मेक्सिको में कैथोलिक साम्राज्य की स्थापना के लिए फ्रांस ने सेनाऐं भेजीं, परन्तु गृहयुद्ध के अवसान होने से संयुक्त राष्ट्र अमेरिका मेक्सिको निवासियों को सहायता करने लगा। दीर्घकालीन युद्ध के पश्चात् मैक्समीलियम को मेक्सिको निवासियों ने गोली से उड़ा दिया व अंत में फ्रांसीय सेना को मेक्सिको छोड़ना पड़ा। ऐतिहासिकों का कथन है कि ४० हजार फ्रांसीय सेना ने प्रतिमास १ करोड़ ४० लाख फ्रांक मेक्सिको में व्यय करके नेपोलियन को ऋणी कर दिया।

व-गणतंत्र के ध्वंस-प्रयत्न मे सम्मिलित होने के कारण यूरोप और संयुक्तराष्ट्र की दृष्टि मे यह घृणास्पद हो गया। "यह कथन असत्य नहीं कि स्पेन का युद्ध यदि नेपोलियन प्रथम के विनाश का कारण था, तो मेक्सिको का युद्ध नेपोलियन तृतीय के पतन का"।

इसकी दूसरी सबसे बड़ी भूल यह थी कि इसने जर्मन राज्यों के संगठन से प्रशिया की शक्तिशालिता को उपेक्षा और उदासीनता की दृष्टि मे देखा। डेन्मार्क के विपरीत स्क्लेसविग-हॉल्स्टीन की समस्या मे नेपोलियन ने प्रशिया को गुप्त रूप से इन्हे अधिकृत करने का परामर्श दिया था। १८६६ में आस्ट्रिया और प्रशिया के युद्ध मे नेपोलियन निष्पक्ष था। सैडोवा के युद्ध के परिणाम स्वरूप प्रशिया यूरोप में सबसे अधिक शक्तिशाली राज्य बन गया था। १८६७ में नेपोलियन ने हॉलैण्ड से लक्सेम्बर्ग को क्रय करने का प्रयत्न किया। प्रशिया-जिसकी सेना लक्सेम्बर्ग मे थी-इसका विरोधी हुआ और लंडन के महासम्मेलन मे लक्सेम्बर्ग को एक निष्पक्ष प्रदेश घोषित किया गया। इसके पश्चात् नेपोलियन स्वयं और सम्राज्ञी यूजीन ने प्रशिया के विरुद्ध युद्ध को अनिवार्य मान लिया था। कूटनीतिक प्रशिया के महामंत्री बिस्मार्क ने फ्रांस को यूरोप की मित्रता से पृथक् कर दिया। नेपोलियन तृतीय ने प्रशिया के विरुद्ध युद्ध घोषित किया व १ सितम्बर १८७० में ८० हजार सेना के साथ सीडान के युद्ध में जर्मनी के हाथो वंदी हो गया। द्वितीय फ्रांसीय साम्राज्य के पतन के पश्चात् ४ सितम्बर १८७० में तृतीय गणतंत्र की घोषणा प्रतिनिधि भवन के सदस्यों ने की।

(४) लुई नेपोलियन का चरित्र

नेपोलियन तृतीय ४४ वर्ष की आयु में राष्ट्रपति बना था। इसके रहस्य-मय चरित्र की समसामयिक भी व्याख्या नहीं कर

सके। थीयर्स ने कहा—"फ्रांसीय जनता ने दो महान् भूल—प्रथम उसने नेपोलियन को मूर्ख और द्वितीय उसे महा पुरुष समझ कर-की"। लॉज ने कहा है—"नेपोलियन असीम शक्तिशाली समाजवादी था, किन्तु प्राचीन राजसत्तावादियो को भी (साम्राज्य-वादियों से घृणा करने वाले) इसे संतुष्ट करना पडा। अपनी इसी नीति से यह असफल रहा"। हेंज का कथन है—"यह जन्मजात सैनिक नहीं था, यह बारूद की गन्ध तक से घृणा करता था, रक्तपात के दृश्य को भी नही देख सकता था, इसका अंतः करण शांतिपूर्ण था। यद्यपि यह अस्त्र-शस्त्रो के प्रदर्शन का प्रेमी था, किन्तु उनके व्यवहार का नहीं। यह जन्म से ही कोमल और दुर्बल हृदय का व्यक्ति था"। उसकी प्रकृति इतनी सहृदय थी कि यह किसी विपत्ति का सामना नही कर सकता था। लिप्सन ने कहा है—'यह एक निपुण राजनीतिज्ञ नहीं था—इसके उद्देश्य महत्वपूर्ण थे, किन्तु उनके साधन अपूर्ण थे। दूरदर्शिता और भावधारा में यह अपने समसामयिको से बहुत आगे बढा हुआ था, किन्तु उनके प्रयोग मे उसकी महान् योजनाये पूरी नही उतरती थी। इसने लोगो मे आकांक्षायें जागृत की, किन्तु उन्हें पूर्ण करने का साहस इसमें नहीं था"। अंत मे इन्हीं कारणो से प्रत्येक दल इसके विरोधी बन गये। पतन से पूर्व ही इसका शरीर दुर्बल और रोगाक्रान्त था। बिस्मार्क जैसे कूटनीतिक के सामने ठहरने की शक्ति भी इसमें नहीं थी।

(५) समीक्षा

१८७० के फ्रांस और जर्मनी के युद्ध मे नेपोलियन तृतीय के साम्राज्य का पतन ही नहीं, अपितु बोनापार्टी-वाद का ही अवसान हो गया। इतिहास में यह एक शोक पूर्ण घटना है कि फ्रांस के पुनर्घटन के (१८६०) पश्चात् भी यह जीवित रहा,

क्यों कि उस काल तक उसने बोनापार्टी वंश को पुनस्स्थापित ही नहीं, अपि तु समग्र यूरोप को अपने गौरव से आप्लावित कर दिया था। नेपोलियन की नीति अयुक्तिपूर्ण थी एवं जो अंश इसने स्वयं ने लेने का प्रयास किया, उसे यह पूर्ण नहीं कर सका। कैटिलवी ने कहा है—"इसने एक स्वेच्छाचारिता पूर्ण निरंकुश प्रशासन का प्रवर्तन किया। परन्तु यह निरंकुश और निर्दय शासक नहीं था। यह अपने मन में नेपोलियन प्रथम की महत्त्वाकांक्षा का स्वप्न देखता था,किन्तु उसे क्रियान्वित करना नहीं जानता था। इसने एक नेपोलियन साम्राज्य की स्थापना विभिन्न स्वार्थों की रक्षा के लिए वीर पूजा के आधार पर करना चाहा"। वर्षा काल के मच्छरों और पानी के बुदबुदों के समान इसके मन में एक पर एक भाव उठते थे। इसके प्रकाशित राजतंत्र वाद से क्या समाजवादी, क्या गणतंत्र वादी व क्या राजसत्तावादी आदि कोई भी संतुष्ट नहीं था। इसकी १८६० के अनन्तर गृहीत सुविधाओं ने जनता का नेतृत्व करने की अपेक्षा अनुकरण कर प्रभाव हीनता प्राप्त की। पादरीवर्ग भी–जिसके हित के लिए इसने सब कुछ त्याग किया–इटली के प्रश्न में इसे "षड्यन्त्रकारी" कहने लगा। प्रो० कैटिलवी. कहता है--"नेपोलियन ने फ्रान्स को शासित करने के लिए एक चमत्कृत दरबार, अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी, प्रगतिशील विदेश नीति--जैसे स्वेज नहर की योजना, मेक्सिको, चीन और सीरिया में आक्रमण आदि--का आश्रय लेकर सामरिक प्रतीष्ठा प्राप्त करने का प्रयत्न किया"।

इसकी वैदेशिक नीति यद्यपि-प्रारम्भ में अत्यन्त सफल थी, पर १८६० के पश्चात् अकृतकार्य रही। न यह किसी शत्रु को ही पराजित कर सका व न किसी मित्र को ही दृढ बना कर अपनी ओर रख सका। डेन्मार्क, पोलैण्ड, आस्ट्रिया, इटली

आदि की सभी योजनाओं में इसका अपमान हुआ। मेक्सिको में कैथोलिक साम्राज्य की स्थापना ने इसके साधनों की दुर्बलता का परिचय ही नहीं दिया, पर साथ साथ प्रतिष्ठा का भी ध्वंस कर दिया। निष्पक्ष व गम्भीर विश्लेषण करने से यह प्रतीत होता है कि नेपोलियन की नीति छिन्न भिन्न थी और वह केवल तात्कालिक समस्याओं के समाधान में ही समर्थ थी। नेपोलियन ने स्वयं कहा—"हम कभी भी दूर की योजना नहीं बनाते हैं, अपि तु वर्तमान की महत्वपूर्ण समस्याओं को प्राथमिकता देते हैं"। इसकी महत्वाकांक्षा, इसके स्वार्थ और सिद्धान्तों में संघर्ष हुआ और साधारण नेपोलियन महापुरुष नेपोलियन के रूप में परिणत न हो सका। प्रिंस अलबर्ट ने नेपोलियन के दृष्टांत के अनन्तर कहा था—"यह प्रतीत होता है कि राज-नीति के सम्बन्ध में ये सर्वदा चिन्तित हैं, परन्तु पक्व और अपरिपक्व धारणाओं का सम्मिश्रण इन्हें एक शौकीन राजनैतिक मात्र बना देता है"। लार्ड पामर्स्टन ने इन शब्दों में कहा—"इसके शब्दों में इतनी योजनायें है, जिस तरह खेतों में खरगोश रहते हैं"। ऐतिहासिक किंगलेक ने इसे क्रीमिया के नाटक का प्रतिनायक कहा। डा० फिशर का कथन है—"इसकी विचारधारायें अस्थिर थीं और अपूर्व व अपरीक्षित विरोधी नीतियों से इसका मस्तिष्क पूर्ण था, यद्यपि इसका सामर्थ्य इनके प्रयोग में सर्वथा असमर्थ था"।

इन हीनताओं के अतिरिक्त यूरोप को इस महापुरुष ने अनेक देन दीं। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति, यूरोपीय महासभा व शक्ति गोष्ठी के परित्यक्त आदर्शों की पुनरावृत्ति के प्रयत्नों से इसने वर्तमान काल की अन्तर्राष्ट्रीय समानता की नींव डाली। इसकी नीति इतनी अधिक स्वार्थपूर्ण नहीं थी, जितनी अन्य राष्ट्रों के नेताओं की। प्रो लॉज ने कठोर शब्दों में इस सम्बन्ध

में कहा—"इसके समय का इतिहास यूरोप के प्रत्येक राष्ट्र का इतिहास है, परन्तु फ्रांस का नहीं"। पर इस कथन का हम समर्थन नहीं करते। फ्रांसीसी जनता की भौतिक उन्नति के लिए दीनों को निवासस्थान, चिकित्सा, शिक्षा और आर्थिक सहायता प्रदान कर इसने फ्रांस को यूरोप का एक सांस्कृतिक केन्द्र बना दिया था—जिसका वर्णन हम ऊपर देख चुके है। यूरोप के राष्ट्रीय आन्दोलन का समर्थन कर इसने फ्रांस के साम्राज्य को भी विस्तृत किया था। संक्षेप में नेपोलियन का पतन इसलिए हुआ कि इसने एक ऐसे सितारे के प्रकाश को अपना पथ-प्रदर्शक बनाया था—जो हतप्रभ हो गया था। इसने यूरोप का नेतृत्व नहीं किया, परन्तु उसे किंकर्त्तव्य-विमूढ बना दिया। अंत में इसको न कोई जान सका और न किसी ने इसका विश्वास ही किया।

(ख) निकट प्राच्य देशों की समस्या

१—प्रथम अध्याय:—यूरोप के इतिहास में निकट प्राच्य देशों का एक राजनैतिक महत्त्व है। जॉन मोर्ले ने इसकी परिभाषा करते हुए लिखा है—"दो विभिन्न जाति दो विपरीत धर्म, दो पृथक् पृथक् स्वार्थों के पारस्परिक संघर्ष से एक जटिल शृंखलित और परिवर्त्तन शील समस्या का उदय हुआ—जिसे हम प्राच्य देशो की समस्या कहते है"। इसी की व्याख्या करते हुए प्रो० मैरियट ने कहा—"पूर्व पश्चिम की रीति नीति सिद्धान्त और धारणाओं का संघर्ष—जो कि दक्षिण पूर्वी यूरोप में हुआ, उसी से इस समस्या का उद्भव हुआ"। अंग्रेजी राजनीति के कोष में यूनान निवासियों के स्वतंत्रता युद्ध तक (१८२१ से १८२९) इस समस्या का नाम भी नहीं था, यद्यपि लीपाण्टो की (१५७१) लड़ाई तक हम

इसका आभास पा सकते हैं। वस्तुतः इसकी अधिकार पूर्ण और संतोष जनक परिभाषा हम आज भी नहीं कर सकते। विचार से डा० मिलर की निम्न परिभाषा अत्यन्त सहज और सरल प्रतीत होती है-"यूरोप से तुर्की साम्राज्य का शनैः शनैः अदृश्य होना और उस अभाव की पूर्ति की समस्या ही वस्तुतः निकट प्राच्य देशो की समस्या है"।

निकट पूर्व की समस्या एक अत्यन्त भयंकर समस्या थी-जो समय के साथ साथ अधिकतम जटिल बनती जाती थी। राष्ट्रीयता और प्रजातंत्र की भावना ने इस युग में एक क्रियात्मक आकार धारण किया—जिसको समझने के लिए हमें प्राच्य देशो की समस्याओ का १८ वी शताब्दी से ध्यान-पूर्वक अध्ययन करना पडेगा। इस समय के मूल आधारों को हम निम्न भागो मे विभाजित कर सकते हैं। (१) तुर्की का दृष्टिकोण और शासनपद्धति, (२) बल्कान राज्य समूहों की स्थिति (यूनान, सर्विया, बुल्गेरिया, रूमानिया, मॉण्टिनिग्रो. बोस्निया, हर्जिगोविना, टॉल्सिल्वेनिया और बुकोविना) (३) कृष्ण समुद्र की समस्या (वाष्फरस, दर्दानेलिश एवं कंस्टाटिनोपिल के प्रभुत्त्व का प्रश्न) (४) रसिया की भूमध्य सागर की ओर राज्य विस्तार की कामना, (५) आस्ट्रिया का ईजियन समुद्र तट तक राज्य विस्तार. (६) यूरोप का शक्तिपुंज और इंग्लैण्ड की प्रतिक्रिया।

लार्ड ऐक्टन ने सत्य ही कहा-"आधुनिक यूरोप का इतिहास तुर्की के राज्य विस्तार से ही प्रारंभ होता है"। एसिया के अंग तुर्की ने अपनी शक्ति द्वारा चार शताब्दी से बल्कान के ईसाई राज्य समूहो को पराजित करके अपना आधिपत्य स्थापित किया था। ईसाई व मुसलमानों के विभिन्न धर्म, विभिन्न जाति, विभिन्न सामाजिक रीति नीति व राज-

नैतिक सिद्धान्त होने से विजयी तुर्की ने मुसलमानो को समानाधिकार नहीं दिया, परन्तु अष्टादश शताब्दी के पश्चात् तुर्की एक पतनोन्मुख राष्ट्र हो गया था। यही थी—यूरोपीय राष्ट्रसमूहों के समक्ष एक महान् समस्या। भ्रष्टाचारी सुलतान सलीम तृतीय का (१७८६ से १८०७) कुशासन, अयोग्यता, सामरिक अवनति, विभिन्न पराजित राज्य समूहों की असन्तुष्टता इसके पतन का मुख्य कारण थी। यद्यपि यूरोप के इतिहास में स्पेन और पोलैण्ड के राज्यों को विभाजित किया, परन्तु तुर्की का विभाजन १८ वीं शताब्दी में सामरिक और भोगोलिक कारणों से स्थगित रहा। १८ व १९ वीं शताब्दी में यूरोप के कूटनीतिज्ञों ने तुर्की के विभाजन की अनेक योजनाएँ तैयार कीं, पर यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि तुर्की की सामरिक शक्ति की समाप्ति पोलैण्ड की तरह पूर्णांशः नहीं हो चुकी थी। १७८८ में तुर्की ने आस्ट्रिया की सेना को पराजित कर दिया था, परन्तु यूरोप के बाहर तुर्की की अवस्थिति होने से यह यूरोप के राजनैतिक केन्द्र से बहुत दूर पडा हुआ था। फिर भी रसिया अपनी महत्त्वाकांक्षिता की पूर्ति तुर्की के पतन मे मानने लग गया था, क्यों कि उसके पश्चिम की ओर राज्यविस्तार में तुर्की ही सबसे बडी बाधा थी। इसीलिए स्वीडेन, तुर्की और पोलैण्ड से उसे बार बार संघर्ष करना पड़ा। १८२५ में रसिया ने स्वीडेन से फिनलैण्ड को, '७७२, १७९३, १७९५ के तीन विभाजनो मे पोलैण्ड के अधिकतर अंशो को अधिकृत किया। तुर्की के विरोध मे रसिया का विशेप स्वार्थ था। वह कृष्ण समुद्र और भूमध्य सागर के यातायात का नियंत्रण और पतित यूनान साम्राज्य की उत्तराधिकारित्ता की कामना रखता था। रसिया का सम्राट् यूनानी गिरिजा का संरक्षक था व तुर्की की अधिकांश प्रजा भी इसी धर्म की अनुयायिनी थी।

महान् पीटर के काल से विगत महायुद्ध तक तुर्की को ध्वंस कर रूसकी उपर्युक्त आकांक्षा की पूर्ति ही प्राच्य देशों की मूल समस्या थी, परन्तु समय समय में इसके साधन उद्देश्य को क्रियान्वित करने के लिए परिवर्त्तित होते रहे। रसिया की प्राच्य देशों में साम्राज्य विस्तार की यह एक धार्मिक योजना थी। ६ वर्ष तक के रूस तुर्की संग्राम के अनन्तर १७७४ में कुजुक-कैनॉर्डजी की संधि द्वारा रूस कृष्णसमुद्र के उत्तरी तट और डॉन और नीपर नदी के मुख प्रदेश का अधिपति बन गया। इसके अतिरिक्त तुर्की से उसने व्यावसायिक और राजनैतिक अधिकार भी प्राप्त किये। तुर्की साम्राज्य के अंतर्गत यूनानी ईसाइयों की धार्मिक रक्षा के लिए रसिया को विशेष अधिकार मिला और एक सार्वजनिक यूनानी गिरिजा के निर्माण को भी स्वीकृत किया गया। तुर्की की राजधानी में रूस के राजदूत की व्यवस्था मान्य की गई व माल्डेविया और वालेचिया प्रदेश मे रूस को ऐसे अधिकार दिये गये—जिनसे तुर्की की आंतरिक समस्याओं में भी रूस हस्तक्षेप कर सकता था। फिर भी रसिया की कैथेराइन द्वितीय इस से संतुष्ट न हुई और उसने १७८८ मे तुर्की के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। चार वर्ष के अनन्तर जॉसी की शर्तों के अनुसार रूस ने क्रीमिया को अधिकृत कर अपने सीमान्त को निस्टर नदी तक प्रसारित कर दिया। मृत्यु से पूर्व कैथेराइन ने गर्व के साथ कहा—"मैं एक दीन कन्या के रूप में रसिया में आई थी, इसने हमें बहुत धनी बना दिया। हमने भी उसे ऐजाव, क्रीमिया व यूक्रेन दिया।" नेपोलियन के साथ तिल्सत की संधि ने (१८०७) रूस को तुर्की पर आक्रमण करने को प्रोत्साहित किया व बुकारेस्ट (१८१२) की संधि से रसिया को बैसेरेबिया मिला और रसिया साम्राज्य प्रथ नदी तक विस्तृत हो गया।

१८१५ तक पूर्व समस्या केवल रूस और तुर्की के मध्य तक ही सीमित थी, परन्तु १६ वीं शताब्दी में नवीन परिस्थितियों का श्रीगणेश हुआ।

२—द्वितीय अध्याय

यूरोप ने नेपोलियन से यह शिक्षा ग्रहण की कि फ्रांस साम्राज्य का स्वार्थ सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। नेपोलियन ने कहा—"५० वर्ष में यूरोप या तो गणतंत्र हो जायेगा, अन्यथा रसिया द्वारा विजित हो जायेगा"। पूर्वीय समस्याओं की दृष्टि से यह कथन सर्वशः सत्य था। सबसे पहले तुर्की साम्राज्य को हस्तगत करने की रूसीय योजना से परिचित होकर यूरोप के संपूर्ण राष्ट्रों ने रूस की अग्रगति के प्रतिरोध की तैयारी की। "तुर्की का सम्मान और अखंडता" इनका एक सामुदायिक नारा बन गया। इसी समय बल्कान के दलित ईसाई राष्ट्रों ने तुर्की के विरुद्ध एक विद्रोह प्रारम्भ किया। यह आन्दोलन प्रजातांत्रिक, राष्ट्रीयता, भावप्रबलता एवं धार्मिकता का समन्वित रूप था। विद्रोही यूनान और सर्विया के निवासी शासक से धर्म, जाति, संस्कार, रूढि व मानसिक दृढ़ि से प्रथक् थे। वे सब अपनी स्वाधीनता, अतीत के गौरव, धार्मिक स्वतंत्रता के पुनस्स्थापन का स्वप्न देख रहे थे। यूरोप के राष्ट्रसंघ के सामने यह विद्रोह एक संकटमय समस्या थी। इंग्लैण्ड और फ्रांस जानता था कि बल्कान के ईसाई भाइयों पर मुसलमान कितनी निर्दयता और निष्ठुरता के साथ अत्याचार कर रहे थे। यूनान यूरोपीय संस्कृति का एक पुरातन केन्द्र था—जिस का ध्वंस देखना एक अपमान पूर्ण और यूरोप के राष्ट्र के लिए असह्य दृश्य था। यदि फ्रांस और इंग्लैण्ड ईसाइयों की रक्षा के लिए हस्तक्षेप करे तो रूस सचमुच ही अपने साम्राज्य की विस्तृति के लिए प्रयत्न करता। रसिया का सहयोग, विद्रोही

का समर्थन एवं तुर्की के साम्राज्य की रक्षा एक साथ संभव नहीं थी, परन्तु आस्ट्रिया क्रान्तिकारियो का परम शत्रु और वैध नीति का समर्थक बन चुका था। बल्कान राज्य समूहो का विद्रोह अवैध और अन्यायपूर्ण था व आस्ट्रिया इसके दमन का संघर्ष में निष्पक्ष होते हुए भी पक्षपाती था। इंग्लैण्ड की जल सेना ने तुर्की की जल सेना को आकस्मिक मुठभेड में ही परा-जित व जहाजी बेडे को ध्वस्त कर दिया, पर इंग्लैण्ड ने युद्ध से विश्राम लेकर रूस को पूर्ण स्वतंत्रता दी। ऐड्रियनपोल (१८२६) की संधि ने एक स्वाधीन यूनान की स्थापना रसिया के संरक्षण में की। सर्विया, माल्डेविया व वालेचिया को रसिया की रक्षा में दे दिया व सम्राट् को राजनैतिक एवं व्यावसायिक विशेष अधिकार प्राप्त हो गये। आगे चल कर यूनान इंग्लैण्ड फ्रांस और रसिया के संयुक्त तत्त्वावधान में आगया; परन्तु प्रजातंत्रवाद और राष्ट्रीयता की विजय हुई व बल्कान राज्य मे रसिया के साम्राज्य का पूर्णशः विस्तार हुआ—परिणामतः यूरोपीय शक्तिपुंज की कूट नीति असफल हो गई।

३—तृतीय अध्याय

तुर्की की दुर्बलता और सुलतान महमूद द्वितीय के महा-प्रदेशपाल महमत अली की महत्त्वाकांक्षा ने प्राच्य समस्याओ के तृतीय अध्याय का उद्घाटन किया। महमत अली–जब नेपोलियन ने मिश्र पर आक्रमण किया था, एक सामान्य तंबाकू-व्यवसायी था। अशान्ति और अराजकता के द्वारा यह मिश्र-का प्रदेश पाल (पाशा) बन गया था व तुर्की के सुलतान ने उसकी नियुक्ति को मान्यता दी। १८०७ मे महमत अली ने अंग्रेजों को मिश्र से वितारित कर दिया, मैमेलुक्स एवं वॉहा-बी के विद्रोह का दमन व सूदान और अरेबिया को विजय किया। यद्यपि यह अशिक्षित था, परन्तु फ्रांसीय सेनानायक की

सहायता से इसने सेना का संगठन किया व विज्ञान, व्यवसाय और शिक्षा के प्रसार से मिश्र को एक उन्नतिशील प्रदेश बनादिया। यूनान-स्वाधीनता-संग्राम मे इसने सुलतान को जो सहायता दी—उसके पुरस्कार स्वरूप यह सीरिया को हस्तगत करना चाहता था। १८३१ मे इसने एक सामान्य बहाने से अपने पुत्र इब्राहीम को पैले टाइन पर आक्रमण करने के लिए भेजा। इसने तुर्की सेना को पराजित किया, एकर और दमास्कस को अधिकृत किया व राजधानी कांस्टेन्टिनोपिल की ओर अग्रसर हुआ। इस संकटमय समय मे सुलतान ने यूरोपीय राष्ट्रसमूह से सहायता माँगी क्योंकि इंग्लएड और फ्रांस वैल्जियम की स्वाधीनता समस्या मे व्यस्त थे। तदनुसार रसिया ने तुर्की को सहायता दी। रसिया की सेना ने तुर्की के राज्य में पदार्पण किया—जिस से राष्ट्रसमूह आंतकित हो गया। अंत में इग्लैएड फ्रांस और आस्ट्रिया ने महमत अली को सीरिया देने के लिए तुर्की को बाध्य किया। १८३३ मे महमत अली संतुष्ट हो गया और इब्राहीम ने युद्ध स्थगित कर दिया।

पर रसिया अब सहायता का पुरस्कार चाहने लगा व तुर्की को आन्केयर-स्केलिसी (जुलाई १८३३) की संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया। यह संधि तुर्की मे रसिया के प्रभाव की चरम शिखर था। वस्तुतः तुर्की रसिया की सामरिक रक्षा में आ गया। रसिया के युद्ध जहाजों को वाष्फरस प्रणाली से आवागमन का अधिकार दिया गया व युद्ध के समय मे इस मार्ग को अन्य राष्ट्रो के लिए प्रतिवद्ध करने का निश्चय किया गया। इंग्लैएड के विदेश मन्त्री पामर्स्टन इस सन्धि के भंग करने पर तुले हुए थे। १८३६ मे पराजित सुलतान महमूद द्वितीय ने इंग्लैएड के साथ व्यावसायिक संधि की और एक प्रशिया के सेनापति भॉन मॉल्टके की अध्यक्षता में सेना को

संगठित कर प्रतिशोध लेने के लिए महमत अली पर आक्रमण किया, परन्तु "सुलतान की रसियन वेष भूषा, फ्रांसीय सामरिक शिक्षा, वेल्जियम की बारूद, तुर्की की टोपी, हंगेरी की ज़ीन और इंग्लिश तलवार से सुसज्जित सेना" को इब्राहीम ने पराजित किया व नौ सेना भी उस में मिल गई। शोक में वृद्ध सुलतान मरगया और १६ वर्षीय उत्तराधिकारी पुत्र अब्दुल मजीद ने यूरोप से सहायता माँगी।

फ्रांसका राजा लुई फिलिप भी भूमध्य सागर के आधिपत्य का स्वप्न देख रहा था। एल्जीरिया को विजय कर ही चुका था और स्पेन के बुरबुन वंश के साथ मैत्री तो पहले से ही थी। "मिश्र के नेपोलियन" मेहमत अली-जो कि फ्रांसीय सिद्धान्तों का अनुयायी था-की सहायता से स्वेज़ नहर को खोदकर फ्रांस ने भारत वर्ष की ओर बढ़ने की योजना तैयार की। पर पामर्स्टन मिश्र में फ्रांसीय आधिपत्य को उतना ही अधिक इंग्लैण्ड के लिए हानिकारक समझता था—जितना कांस्टेन्टिनोपिल पर रसिया के एकाधिकार को। उसने कहा—"प्रत्यक्ष हम तुर्की साम्राज्य के पतन के सम्बन्ध मे—'यह एक मृत शरीर अथवा शुष्क वृक्ष है' आदि आदि सुन रहे हैं, यह पूर्णांशः असत्य है। यदि हम १० वर्ष की शांति यूरोपीय पंचशक्ति के संरक्षण में उसे दें व आन्तरिक शासन को सुसंगठित करें, तो तुर्की पुनः संमानित शक्ति बन जायेगी"। इसी समय मेहमत अली प्रभावशीलता को द्वेषी रूस की भी इंग्लैण्ड के साथ संधि करके लंडन के समझौते (१८४०) के अनुसार बाष्फरस प्रणाली को युद्धकाल में सब राष्ट्रों के लिए निषिद्ध और महमत अली को मिश्र का वंशानुक्रमिक प्रदेशपाल मानलिया गया। तुर्की को पुनः सीरिया, क्रिट और अरेबिया प्राप्त हो गया। यह समन्वय इंग्लैण्ड, रसिया, आस्ट्रिया और प्रशिया इन चार राष्ट्रों की

ओर से किया गया था। पामार्टन की यह एक महान् कूटनीतिक विजय थी। लंडन के इस सम्मेलन से इंग्लैण्ड को चार लाभ हुए (१) तुर्की का संरक्षण, (२) रसिया की अभिलाषा की अपूर्णता, (३) फ्रांसकी पूर्व की ओर प्रगति-रुद्धता व (४) 'महमत अली की महत्त्वाकांक्षिता का नाश। १० वर्ष तक पूर्वीय समस्याऐं शान्त रही। (१८४०-५०)

(४) चतुर्थ अध्याय

समसामयिक ऐतिहासिक किंग्लेक लिखता है—"जब सुलतान के साम्राज्य मे शांति प्रतिष्ठित थी, फ्रांसीय निष्ठुर राष्ट्रपति ने जेरूसालेम में इटली की गिरिजा—समस्या का उत्थान करके विश्व की शांति को भंग किया व अपने गौरव और कीर्ति को अक्षय्य करने का प्रयास किया"। यह कथन अंशतः सत्य है—क्यो कि यह ऐतिहासिक फ्रांसीय सम्राट् का विरोधी था. ये दोनो ही एक महिला मिस् हावार्ड के प्रणयी थे। नेपोलियन तृतीय क्रीमिया युद्ध का प्रधान कारण था, इस मे कोई संशय नहीं। महत्वाकांक्षी राष्ट्रपति संमान, गौरव और ख्याति का प्रयासी था। १७४० की शर्तों के अनुसार तुर्की के आंतरिक जेरूसालेम प्रदेश के रोमन पादरियो को अपने आधीन करने का उसने दावा किया। तुर्की ने भी फ्रांसीय सम्राट् के अधिकार को स्वीकार किया, परन्तु रसिया के राजा नीकोलास ने यूनान पादरियो पर अपने अधिकार को अस्वीकार करने व ईसाई प्रजा की रक्षा के कारण रोष प्रकट किया। मार्च १८५३ मे सम्राट् ने विशेष राजदूत मैन्सिकाफ को तुर्की की राजधानी में भेजकर अपने पवित्र स्थानो के अधिकार का दावा प्रस्तुत किया। यह दावा कुचुक काइनार्डजी की संधि के अनुरूप था।

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट हो गया कि रूस अब अपने सा-

म्राज्य को तुर्की की ओर विस्तृत करने के प्रयास मे था। सम्राट् ने अंग्रेजी राजदूत को तुर्की के विभाजन का परामर्श देते हुए कहा—"तुर्की अब संकटमय स्थिति में है···यह राष्ट्र अब पतनोन्मुख है। तुर्की हमारे समक्ष आज एक अतिशय व्याधिग्रस्त है। हम यह स्पष्ट कहते हैं-यदि यह एक दो दिन में मर जाये और इसकी सम्पत्ति के विभाजन की व्यवस्था अपूर्ण रह गई, तो हमारा बड़ा दुर्भाग्य होगा। यूरोप को यदि अशांति, अराजकता, और महायुद्ध से बचना है, तो इस दशा आने से पूर्व ही प्रबन्ध कर लेना चाहिए, क्योंकि एकबार पतन के पश्चात् इसका पुनरुत्थान असंभव है"। सम्राट् की इस विचार धारा को इंग्लैण्ड ने सम्मान पूर्वक परन्तु दृढ़ता के साथ अस्वीकार किया। मैरियट ने कहा है "इंग्लैण्ड व्याधि के इस निदान से संतुष्ट नहीं था और चिकित्सा की भी आवश्यकता नहीं समझता था"। संतुलन शक्ति को समतल रखने के लिए व्याधिग्रस्त (तुर्की का) की रक्षा इंग्लैण्ड की प्राच्य नीति का एक प्रधान अंग था क्योंकि तुर्की ही रूस की अग्रगति की एक मात्र बाधा थी। अंग्रेजी राजदूत लार्ड स्टैटफोर्ड रैडक्लीफ़ ने तुर्की की राजधानी में अपने परामर्शों से इस प्रकार का प्रभुत्त्व स्थापित किया कि रूस की अवस्था असामञ्जस्यमय हो गई। चतुर रैडक्लीफ ने पादरियो के धार्मिक अधिकार और सम्राट् के ईसाई प्रजा पर राजनैतिक अधिकारो को पृथक् कर दिया। तुर्की ने प्रथम अभियोग को स्वीकार व द्वितीय को अस्वीकार कर दिया—जिसके प्रत्युत्तर में रसिया के राजदूत ने तुर्की की राजधानी को त्याग दिया—रूस ने जुलाई १, १८५३ को अपने अधिकारों की युक्तिपूर्ण रक्षा के लिए माल्डेमिया व वालेचिया को हस्तगत कर लिया। यूरोपीय शक्तिपुंज-इंग्लैण्ड फ्रांस, आस्ट्रिया व प्रशिया-ने युक्तरूप से वियाना से एक पत्र

तुर्की और रसिया को भेजा-जिसमें ईसाई धर्म की रक्षा के लिए काइनार्डजी व एड्रियनपोल की संधि शर्तों के पालन के लिए दोनों को बाध्य किया। परन्तु यह "रक्षा" शब्द द्व्यर्थक था-रूस ने इसे समझा-स्वयं की (जॉरकी)रक्षा में और तुर्की ने समझा-सुलतान की रक्षा मे। लार्ड रैडक्लीफ ने तुर्की को रक्षा का संकीर्ण अनुवाद करने का परामर्श दिया-यद्यपि वियाना के पत्र को रसिया ने स्वीकार किया, परन्तु तुर्की ने उसका विरोध किया। २३ अक्टूबर १८५३ में तुर्की ने रसिया से अधिकृत प्रदेशो को रिक्त करने के लिए कहा व युद्धघोषणा की। इंग्लैण्ड की जनता भारत के शत्रु और पोलैण्ड के निर्यातक रूस के विरुद्ध उत्तेजित हो गई व प्रधामन्त्री लार्ड एबर्डिन ने युद्ध घोषित किया। फ्रांस को भी साम्राज्य की स्थिरता के लिए युद्ध की अत्यन्त आवश्यकता थी। मॉस्को मे नेपोलियन प्रथम को पराजय एवं १८४० में कूटनीतिक अवमानना के प्रतिशोध के लिए फ्रांस भी इंग्लैण्ड के साथ लग गया। १५ हजार सेना के साथ सार्डीनिया के प्रधान मन्त्री कैभूर भी इंग्लैण्ड और फ्रांस में सम्मिलित हो गया। परन्तु आस्ट्रिया और प्रशिया युद्ध में तटस्थ रहे। बिस्मार्क का यह कथन था कि-"निकट प्राच्य समस्या में प्रशिया का कोई स्वार्थ नहीं है व रसिया के विपरीत युद्ध घोषित करने में भी कोई हेतु नहीं है"। फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ (प्रशिया के राजा) ने आस्ट्रिया को यह वचन दिया था कि आवश्यकता के समय वे उसकी सहायता करेंगे। प्रशिया की निष्पक्षता रूस और प्रशिया की मैत्री का प्रथम सोपान था-जिसका दश वर्ष के पश्चात् आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध करते हुए बिस्मार्क ने उपयोग किया।

५—युद्धकी घटनाऐं

युद्ध के प्रारम्भ में रूस ने सिलीस्त्रिया के घेरा डाल दिया

और फ्रांस और अंग्रेज सेना कृष्ण समुद्र के तट पर अवतरित हुई। रूसने सिलीस्त्रिया को परित्याग कर दिया। पराजित रसिया ने कृष्ण समुद्र की निष्पक्षता को अस्वीकार किया। क्रीमिया में मित्रसंघ ने आक्रमण किया परन्तु मौसम की शीतता के कारण रसद की न्यूनता, चिकित्सा की अव्यवस्था, कुशासन व संकीर्ण योजना ने मित्रसंघ की सेना को प्रभूत क्षति पहुंचाई। फ्लोरेन्स नाइटिनगेल—जो कि संसार की सबसे प्रथम सेविका थी—ने घायल सेना की सेवा की। मित्रसंघ ने ऑल्मा (सितम्बर १८५४) बालकलाबा (अक्टूबर २५) व इन्कर्मन (नवम्बर ५) के संग्राम में रूस को पराजित कर दिया। स्कुटेरी में सुव्यवस्थित चिकित्सा के आयोजन से विजय का मार्ग और भी अधिक स्पष्ट हो गया। मित्रसंघ ने अब सिवेस्टोपोल बंदरगाह को अनेक दिनों के अवरोध के पश्चात् विजय कर लिया। फर्वरी १८५५ में रसिया के सम्राट् निकोलास प्रथम की मृत्यु हुई–व इसके पुत्र अलैग्जेण्डार द्वितीय ने मित्र-संघ के साथ पेरिस की सन्धि पर हस्ताक्षर किये।

६—परिणाम

पेरिस की सन्धि (मार्च १८५६) की निम्न लिखित शर्तें थी (१) कृष्णसमुद्र को निष्पक्ष घोषित किया गया। व्यावसायिक जहाजों के लिए यह प्रयेक राष्ट्र के लिए खुला था परन्तु रूस या तुर्की इसके तट पर किसी शस्त्र उद्योग शाला का संचालन नहीं कर सकेंगे। (२) एक अन्तर्राष्ट्रीय समितिडैन्यूब नदी के यातायात के नियंत्रण के लिए नियुक्त की गई व उस-पर साम्राज्य राष्ट्रों को समानाधिकार दिये गये। (३) रसिया ने दक्षिण बेसर्बिया तुर्की को दे दिया और तुर्की की कट्टर ईसाई प्रजा को भी इसने छोड़ दिया।

(४) "तुर्की के स्वातंत्र्य व साम्राज्य को इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया और फ्रांस ने रक्षा का" युक्त आश्वासन दिया व तुर्की को यूरोप की शक्तिगोष्ठी और सार्वजनिक नियमो में अंश ग्रहण करने का अधिकार दिया गया। सुलतान ने "सर्वदा प्रजा के हित के लिए सचेष्ट रहने की प्रतिज्ञा की व दलित ईसाइयो को समानता देने का आश्वासन दिया"। (५) सर्विया की भी स्वाधीनता स्वीकृत की गई। नौ युद्ध को नियंत्रित करने के लिए पेरिस की महासभा ने व्यक्तिगत जंगी जहाजो को अवैध घोषित किया और निष्पक्ष जहाजों के लिए अनियमित युद्ध सामग्री का वहन निषिद्ध कर दिया गया। अवरोध की दृढता के भी नियम बनाये गये।

जटिल प्राच्य समस्या के समाधान की दृष्टि से पेरिस की संधि असफल थी। ६ लाख सेना के बलिदान से जो शर्तें शक्तिगोष्ठी ने बनाई थीं, वे अधिक दिन स्थायी न रह सकीं। सुलतान आंतरिक समस्याओ में स्वाधीन रहा व कम से कम समय के लिए साम्राज्य की रक्षा मे भी समथ हुआ। फ्रांस के इतिहास व नेपोलियन तृतीय की जीवनी मे इंग्लैण्ड की महाराज्ञी और बेल्जियम व बवेरिया के राजा का पेरिस में समागमन उसके अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान और ख्याति का प्रमाण था। इससे फ्रांस में इसका अधिकार दृढ़ ही नहीं हो गया, अपि तु क्रीमिया संग्राम के विजय मे यह अपनी सफलता की पराकाष्ठा पर पहुंच गया। ऋणग्रस्त इंग्लैण्ड ने तुर्की के समर्थन को अपनाकर "एक दुर्बल घोडे पर घुड़दौड का जुआ किया"(लार्ड सेलिसबरी)। रसिया के पुनर्गठन में एक नवीन उत्साह हुआ और यूरोप में राज्यविस्तार के प्रतिरोध हो जाने से वह एशिया की ओर अग्रसर हुआ। आस्ट्रिया मित्र संघ से पृथक् हो गया व पेरिस महासभा में प्रशिया के साथ इतना घृणित व्यवहार

किया गया कि वह १८६६ के आस्ट्रिया व प्रशिया के युद्ध का एक प्रमुख कारण बन गया। इटली के सार्डिनिया राज्य को महासभा में आमंत्रित करने से आस्ट्रिया की प्रतिष्ठा क्षीण हुई, क्योंकि कैभूर ने इटली की स्वतंत्रता और एकता का आवेदन यूरोपीय शक्तिगोष्ठी से किया—जिसके फलस्वरूप इंग्लैण्ड के सहिष्णुदल एवं फ्रांस के नेपोलियन तृतीय ने आस्ट्रिया के विपरीत सहायता देना स्वीकार कर लिया। संक्षेप मे युद्ध का अप्रत्यक्ष परिणाम था—एक नवीन इटली का निर्माण। जब यूरोपीय राष्ट्रसमूह क्रीमिया के युद्ध में व्यस्त था, डेन्मार्क ने स्क्लेसविग हॉल्स्टीन प्रदेश में अपने अधिकार को दृढ कर नवीन जर्मनी के संगठन का सोपान बना दिया।

(ग) इटली की स्वतंत्रता (१८५० से १८७०)

"क्रीमिया के कीचड़ से इटली की स्वतंत्रता-पंकज का उदय हुआ"। इटली का सार्डिनिया राज्य स्वतंत्रता संग्राम में अग्रणी था, यह हम देख चुके है। राजा विक्टर ईमानवेल के मंत्रिमंडल में १८५० में काउण्ट कैभूर नामक एक दक्ष कूट-नीतिज्ञ और चतुर नीतिज्ञ संमिलित हुआ व दो वर्ष पश्चात् सार्डिनिया के प्रधानमत्री के रूप मे १९ वीं शताब्दी की सबसे महत्वपूर्ण घटना–इटली के स्वतंत्रता संग्राम में–सफलता प्राप्त कराई। इसको अध्ययन करने से पूर्व हम दो भागों में बांटेंगे—१—इटली का स्वतंत्रता संग्राम, २—इटली के निर्माता।

(१) इटली का स्वतन्त्रता संग्राम

क—*प्रथम सोपान*—कैभूर का उद्देश्य था कि वह आस्ट्रिया को इटली से बहिष्कृत करके समग्र इटली को सार्डिनिया के आधीन में वैध राजसत्ता की स्थापना करेगा। सब से पूर्व कैभूर स्वाधीन सार्डिनिया और पिडमण्ट को कृषि उद्योग
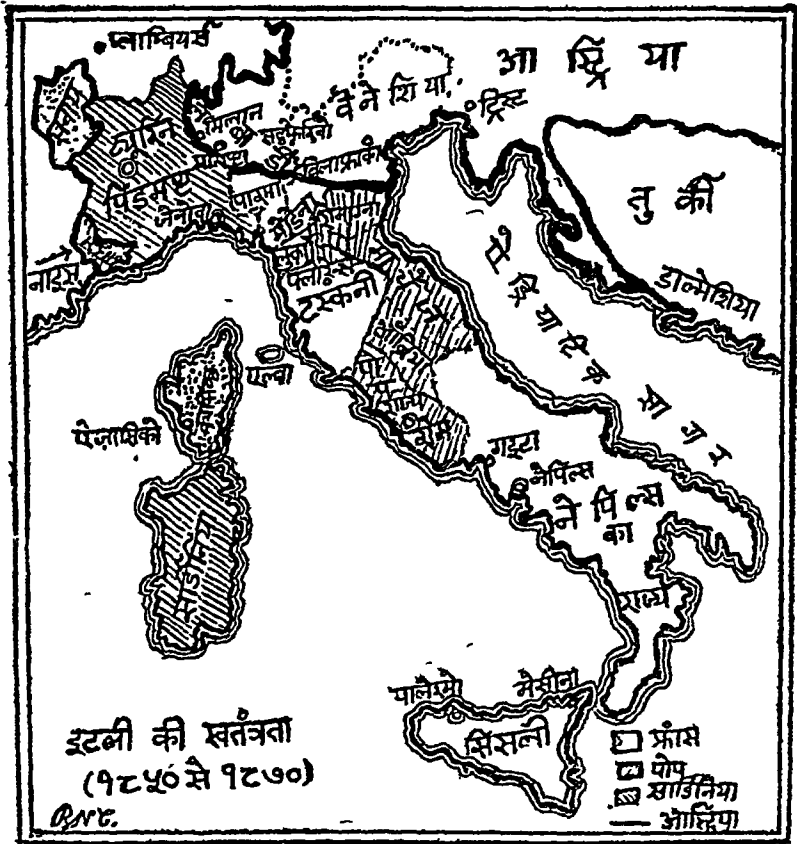
इटली की स्वतन्त्रता (१८५० से १८७०)
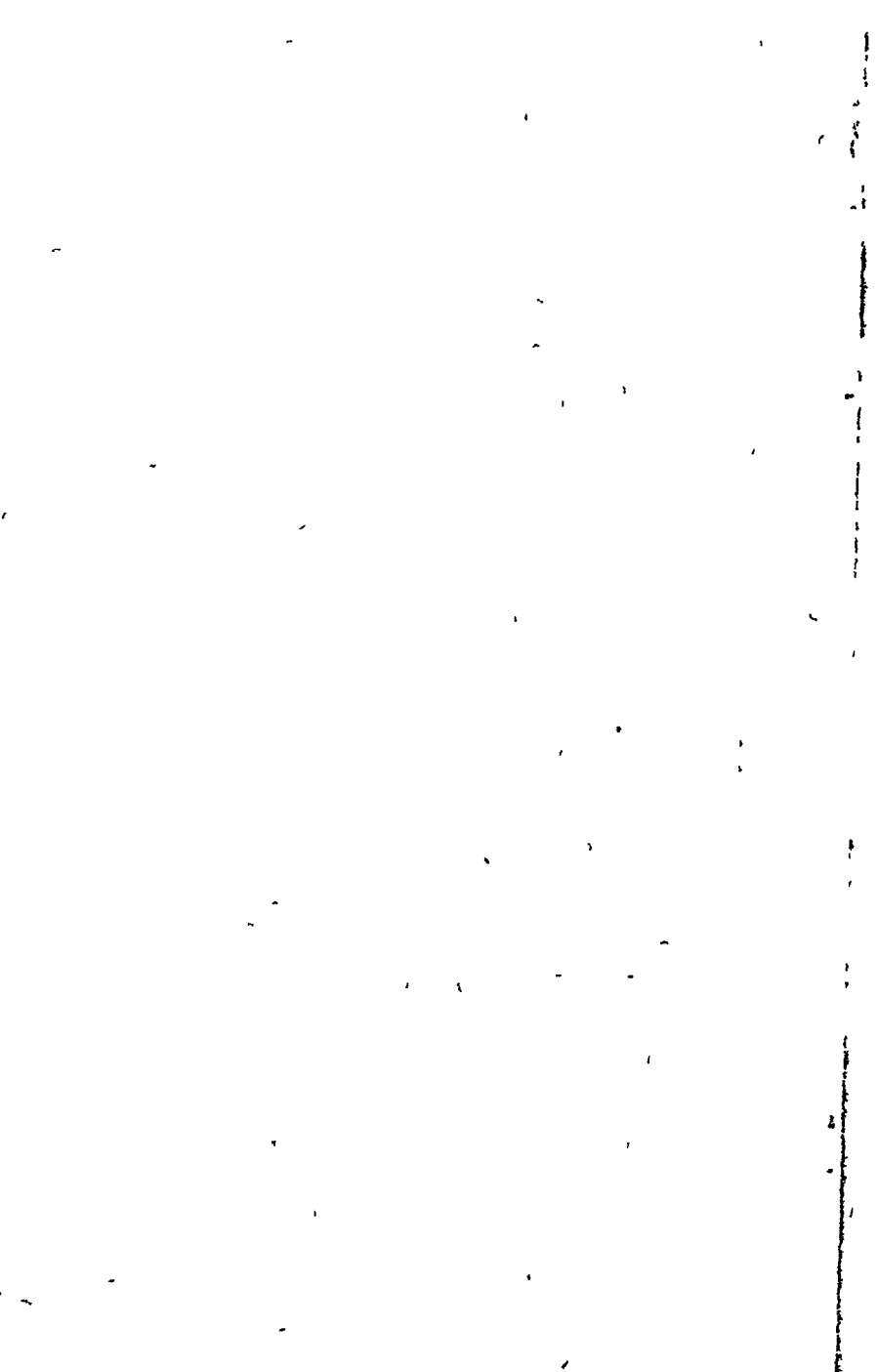
व्यवसाय, यातायात, नियमसंग्रह, शिक्षा का प्रचार व प्राचीन मठ प्रथा का अवसान करके भौतिक उन्नति की ओर ले गया। यद्यपि इसके राज्य में ५० लाख अधिवासी ही थे, परन्तु इसने थोड़े ही समय में अपनी कुशलता से ६० हजार को सेना में प्रविष्ट कर लिया। विगत ४० वर्षों के षड्यन्त्र और विद्रोह के इतिहास ने कैभूर को यह शिक्षा दी थी कि वैदेशिक सामरिक शक्ति की सहायता के बिना आस्ट्रिया को पराजित करना असंभव है। इसिलिए कैभूर ने सार्डीनिया की ओर से फ्रांस और इंग्लैण्ड के साथ रसिया के विरुद्ध क्रीमिया युद्ध में भाग लिया था। युद्ध के अनन्तर पेरिस कांग्रेस में क्षुद्र राज्य सार्डिनिया के प्रतिनिधि रूप मे बड़े बड़े राष्ट्रों के साथ समान स्तर पर इसने भाग लिया था। कांग्रेस मे इसने आस्ट्रिया के प्रतिनिधि के समक्ष ही घोषित किया कि "आस्ट्रिया इटली की स्वाधीनता का शत्रु है और सार्डिनिया की चिरंतन विपत्ति है"। परिणाम यह हुआ कि इटली की स्वतन्त्रता एक यूरोपीय समस्या हो गई। इंग्लैंड क सदस्यो ने इटली के वैदेशिक दमन की तीव्र निन्दाएँ कीं। नेपोलियन तृतीय ने इटली को स्वतंत्रता संग्राम में सहयोग देने का वचन दिया। यह कैभूर की एक महान् कूटनातिक विजय थी। इसी समय निर्वासित मेटर्निक ने कहा था—"यूरोप मे केवल एक ही कूटनीतिज्ञ ह—वह है कैभूर, परन्तु दुर्भाग्य है कि वह हमारे विरुद्ध है"।

पेरिस कांग्रेस के अनन्तर सार्डिनिया के प्रधान मन्त्री ने राष्ट्रीय समिति का संगठन किया—जिससे कि इटली के विभिन्न राष्ट्र स्वाधीनता और एकता" व आस्ट्रिया और पोप को इटली से बहिष्कृत करने के उद्देश्य से सुपरिचित हो जाये। समग्र इटली मे देशभक्त इस आन्दोलन से जागृत होकर स्वाधीनता संग्राम के लिए सन्नद्ध हो गये। इसी समय (१८५८) इंग्लैंड में

निर्वासित इटली निवासी अरसिनी ने नेपोलियन तृतीय की हत्या करने का एक असफल षड्यन्त्र किया, परन्तु नेपोलियन तृतीय ने राष्ट्रीयता के समर्थन में कैभूर को प्लम्बियर्स स्थान में गुप्त संधि के लिए आमंत्रित किया। ७१ जुलाई १८५८ में रहस्यमय साक्षात्कार में यह संधि हुई। इसके अनुसार (१) फ्रांस दो लाख सेना व सार्डिनिया एक लाख सेना का आस्ट्रिया को इटली से बहिष्कृत करने मे उपयोग करेंगे व इसके पुरस्कार स्वरूप नेपोलियन सॅवाय और नाइस् को अधिकृत करेगा। (२) यदि विजय हो गया तो सार्डिनिया को लंवार्डी, वैनेशिया पारमा, मोडेना और रोमाग्ना प्रदेश प्राप्त होगा और विक्टर ईमानवेल इन सब प्रदेशों का वैधानिक राजा बनेगा। (३) टॅस्कनी और अम्ब्रिया प्रदेश पोप के राजसमूह और नेपिल्स पोप की अधीनता में इटली के राज्यसमूह होंगे। (४) विक्टर ईमानवेल की षोडशवर्षीया पुत्री क्लोटाइल्ड के साथ ४३ वर्षीय सम्राट् नेपोलियन के भतीजे दुश्चरित्र कुमार जेरोम का विवाह होगा। सार्डिनिया को इस संधि में दो महान् त्याग करने पड़े— (१) प्रथम राजा की लडकी का दुश्चरित्र जिरोम के साथ विवाह, एव द्वितीय सवाय और नेपिल्स प्रदेश का नेपोलियन को दान। फिर भी कैभूर इस काल में नेपोलियन की मैत्री को अनिवार्य आवश्यकता समझता था।

युद्ध के लिए सज्जित होना कैभूर का प्रथम कर्तव्य था। उसने कहा—"प्रथम अवसर में हम युद्ध ही नहीं करेंगे, अपितु एक बहाना भी निकालेंगे"। दूरदर्शी कैभूर आस्ट्रिया को उत्तेजित करने के लिए सैन्य-संगठन व आस्ट्रिया पर संवादपत्रो द्वारा प्राकाशनिक आक्रमण करने लगा। आस्ट्रिया के माल पर इसने कर भी लगा दिया। विक्टर ईमानवेल ने सार्डीनिया की लोकसभा में घोषणा की—"आस्ट्रिया के साथ हमारे

संबन्ध मैत्री के नहीं है। इटली के विभिन्न भागों से—जो निर्दयता और निष्ठुरता की पुकार आ रही है, उसकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते"। २३ अप्रेल १८५९ को क्रुद्ध आस्ट्रिया ने चुनौती पत्र भेजकर सार्डिनिया की सेना को विघटित करने की धमकी दी। सार्डिनिया ने इसके तीन दिन पश्चात् युद्ध घोषित कर दिया। केभूर ने कहा—"स्वतंत्रता संग्राम प्रारम्भ हो गया, अब हम इटली का निर्माण करेंगे"। फ्रांस ने भी युद्ध घोषित किया।

आस्ट्रिया और सार्डिनिया के द्विमासव्यापी युद्ध में मण्टीवेलो, पैलेस्त्रो व मैजेण्टा की लडाई में सार्डिनिया ने आस्ट्रिया को पराजित किया। सल्फैरिनो १६ वीं शताब्दी का एक महान् संग्राम था—जिस में सार्डिनिया नें विजयी होकर मिलान और लंबार्डी को हस्तगत कर लिया। परन्तु इसी समय नेपोलियन ने सार्डिनिया की संमति के बिना ही आस्ट्रिया के राजा फ्रांसिस् जोशफ के साथ भिलाफ्रांकॉ मे (११ जुलाई) संधि कर रण विराम कर दिया। नेपोलियन के इस आकस्मिक परिवर्तन में अनेक कारण थे—(१) फ्रांस में पादरी वर्ग पोप के विरुद्ध इस युद्ध को अनुचित कहने लगा। (२) प्रशिया राइन नदी के तट पर २४ जून से सैन्य संगठन करने लगा—जिससे नेपोलियन फ्रांस की पूर्व सीमा पर आक्रमण की संभावना से आतंकित हो गया। (३) इटली की देश भक्ति और सार्डिनियां की शक्ति इतनी बढ चुकी थी कि वह उसे एक शक्तिशाली राष्ट्र समझ कर डरने लगा। (४) सल्फैरिनों के युद्ध के भयानक दृश्यों मे यह इतना प्रभावित हो गया कि उसका मस्तिष्क रणविराम की ओर परिवर्तित हो गया। इस संबन्ध में प्रो० एलीशन फिलिप्स कहता है—"सार्डिनिया की प्रत्येक विजय से स्वाधीन इटली का स्वप्न क्रियात्मक होने लगा और भविष्य में शक्तिशाली

इटली फ्रांस पर अक्रमण नहीं करेगा इसका कोई प्रमाण नहीं रह गया था"। कैभूर और सार्डिनिया निवासियो की दृष्टि में यह नेपोलियन का एक बडा विश्वासघात था। विजय के अर्द्ध मार्ग में परित्याग कर शत्रु की और मिलना व पृथक् संधि कर लेना महान् कृतघ्नता का परिचय था। भिलाफ्रांका का रण विराम अब ज्यूरिच की संधि (नवम्बर १८५९) के रूप में परिणत हो गया—जिसकी शर्तोंके अनुसार आस्ट्रिया के पास वैनेशिया रहेगा। टस्कनी और मोडेना के बहिष्कृत राजाओं का पुनस्स्थापन होगा। लंबार्डी प्रदेश फ्रांस को दिया गया व फ्रांस ने सार्डिनिया को दे दिया। पोप की आधीनता में इटली राज्यसंघ की भी योजना बनाई गई।

आत्मसंयम हीन कैभूर ने विक्टर ईमानवेल को इस निन्दनीय संधि को अमान्य करने का परामर्श दिया, किन्तु राजा सुपरिचित था कि जो कुछ मिलता है, वही अच्छा है। हताश होकर कैभूर ने पदत्याग कर दिया। "इसी पदच्युति के साथ साथ वैदेशिक मैत्री की सहायता से इटली की स्वतंत्रता प्राप्ति भी नष्ट हो गई"। लंबार्डी पर सार्डिनिया का अधिकार एक नैतिक विजय थी, क्यों कि संपूर्ण इटली के स्वाधीनता संग्राम का केन्द्र अब सार्डिनिया बन गया था। यह था नवीन इटली के निर्माण का प्रथम सोपान।

(ख) *द्वितीय सोपानः*—इटली की जनता सार्डिनिया की विजय से इतनी उत्साहित हो गई कि टस्कॅनी, परमा, मोडेना, रुमाग्ना व बुलोग्ना मे भी उसने विद्रोह कर शासक को निर्वासित कर दिया। सर्वजन मत से जनता ने अपने प्रदेशों पर सार्डिनिया को अधिकार करने की प्रार्थना की, परन्तु विक्टर ईमानवेल किंकर्तव्य विमूढ हो गया। इसी समय इंग्लण्ड के उदारनतिक दल के मन्त्री (पामरस्टन) ने सार्डिनिया का सम-

र्थन करते हुए कहा—"मध्यम इटली के छोटे छोटे राज्यो को अपने शासक को परिवर्त्तित करने का पूर्ण अधिकार है—जैसे इंग्लैण्ड अथवा फ्रांस वासियों को है"। इस घोषणा मे यूरोपीय शक्तिगोष्ठी ने इस समस्या में हस्तक्षेप नहीं किया। ६ मास पश्चात् कैभूर पुनः सार्डिनिया का प्रधानमन्त्री हो गया। चतुर नेपोलियन तृतीय अपने साम्राज्य, को विस्तृत कर अपनी बाह्य नीति से फ्रांसीय जनता को प्रभावित करना चाहता था। कैभूर ने पुनः नेपोलियन के साथ यह समझौता किया कि फ्रांस् सॅवाय और नाइस् को ले ले व सार्डिनिया को मध्यम इटली के राज्य समूहो पर अधिकार करने का आदेश दे दे, किन्तु दोनो स्थानों पर जनमत संग्रह अनिवार्य होगा। परिणाम यह हुआ कि विक्टर ईमानवेल अप्रेल १८६० में वनेशिया को छोडकर उत्तर मध्यम इटली का सम्राट् वन गया। फ्रांस—सॅवाय और नाइस को अधिकृत करने—की नीति की तीव्र निन्दा देशभक्त इटली व इंग्लैण्ड के राजदूत ने की। राजदूत ने लिखा—"इसका नाम उच्चारण करने से ही राज-सत्ता की निन्दा होती है। इसका यही उद्देश्य है कि यह जब किसी से भी भेंट करता है तो पहले देश की (स्वार्थ) ओर देखता है"। नाइस् प्रदेश में देशभक्तों के सेनानायक गैरीवल्डी की उत्पत्ति हुई थी, इसीलिए उसने कैभूर को कभी भी क्षमा नहीं किया व कहा-"तुम ने हमारी पितृ भूमि का विक्रय कर दिया और हमारी जन्मभूमि मे ही हमें विदेशी वना दिया। हमे तुम अब सहस्र अस्त्र शस्त्र दो-जिससे इस क्षति पूर्ति के लिए हम सिसली पर आक्रमण करे"। पर कैभूर सॅवाय और नाइस् को देकर इटली के निर्माण को अधिक सहज समझता था। अब इटली का स्वतंत्रता संग्राम दक्षिण की ओर से प्रारम्भ हो गया।

(ग) *तृतीय सोपानः*—कैभूर ने कहा-"हमारे शत्रु ने उत्तर की ओर से इटली के कूटनीतिक-निर्माण का प्रतिरोध कर दिया परन्तु हम अब दक्षिण की ओर से विप्लव द्वारा इटली को संगठित करेंगे"। राजा और वैदेशिक मैत्री का परित्याग कर कैभूर ने अब जनता की विद्रोही भावना और मेंजिनी व गेरीवल्डी की सहायता ली। नेपिल्स व सिसली में विद्रोह की आग भभक उठी। राष्ट्रीय समिति के मन्त्री लॉफेरिना ने जनता को जागृत करने मे गणनीय प्रयत्न किये। पिडमंट के राजा ने भी अपनी जेब से ३० लाख रुपये की सहाथता विद्रोहियो को दी। मैंजिनी व उसके शिष्य क्रिस्पी ने आन्दोलन को संगठित किया पर इनकी विजय दो व्यक्तियो-गैरीवल्डी व कैभूर-पर निर्भर थी। सिसली के क्रान्तिकारी गैरीवल्डी-जो अपने निर्वासित जीवन को जेनोवा में अतिवाहित कर रहा था-को विद्रोहियो ने नेतृत्व के लिए आमंत्रित किया। दो शर्तों पर इसने नेतृत्त्व स्वीकार किया (१) सिसली के निवासी विद्रोह का प्रारम्भ करेंगे। (२) इटली और विक्टर ईमानवेल के नाम पर यह विद्रोह होगा। कैभूर भी निष्पक्ष होते हुए इस नीति का निरीक्षण कर रहा था, व गुप्त रूप से इन्हे प्रोत्साहित कर रहा था।

५ मई १८६० मे हजार लाल कमीजो वाली देशभक्त सेना को लेकर गैरीवल्डी सिसली में आया। ३ मास के अन्दर अन्दर इसने नेपिल्स व सिसली क राजा को पराजित किया और विक्टर ईमानवेल के प्रतिनिधि रूप मे सिसली का अधिनायक बन गया। दुर्धर्ष साहसी गैरीबल्डी की प्रशंसा चारों ओर से होने लगी। १६ अगस्त को विजयी गैरीवल्डी नेपिल्स मे प्रविष्ट हुआ और वहां भी उसने स्वयं को अधिनायक घोपित कर दिया। अब उसकी योजना वैनिश और रोम पर आक्रमण

करने की थी, किन्तु यह उसकी भावुकता का परिचय था। इस से आस्ट्रिया और फ्रांस दोनों का इटली के विरुद्ध युद्ध घोषित कर देना निश्चित था। कैभूर ने कहा–"हीन सिद्धान्त, वैदेशिक आक्रमण और भ्रान्त नेता से इटली को बचाना चाहिए"। गैरीबल्डी के पूर्व ही कैभूर ने रोम को अधिकृत करने का प्रयास किया। नेपोलियन तृतीय के पास दूत भेजा गया कि "यदि सार्डिनिया अंब्रिया और मार्चेंश को अधिकार करे तो उनका क्या मत है"। सम्राट् ने उत्तर दिया—"जो करना है–शीघ्र करो"। तदनुसार १० सितम्बर को कैभूर ने पोप के राज्यो पर आक्रमण किया व ७ दिन पश्चात् कैस्टल-फिडार्डो के युद्ध में पोप की सेना को ध्वस्त कर दिया। अंब्रिया और मार्चेंश कैभूर के अधिकार मे आ गये। गैरीबल्डी और कैभूर में अब दौड होने लगी। "यदि हम लोग गैरीबल्डी के लॉ कैटोलिका पहुंचने से पूर्व वाल्तूर्नो नहीं पहुंचे तो राजसत्ता का अवसान हो जायेगा और इटली विद्रोह के कारागार में बन्दी रहेगा" कैभूर। गैरीबल्डी कैपुआ के अवरोध में विलंबित हो गया और कैभूर की विजय हो गई।

इसके पश्चात् सिसली और नेपिल्स आंब्रिया और मार्चेंश में जनमत ग्रहण किया गया। परिणामतः सर्वसम्मति से प्रजा ने सार्डिनिया के अधिकार का समर्थन किया। राजकीय सेना की सहायता से गैरीबल्डी ने कैपुया पर अधिकार कर लिया। २७ अक्टूबर को गैरीबल्डी ने कैभूर की कूटनीति से पराजित होकर विक्टर ईमानवेल के समक्ष आत्मसमर्पण किया। ६ नवम्बर को विक्टर ईमानवेल को नेपिल्स और सिसली का शासक घोषित किया गया—"जो कि इटली के पुनरुत्थान का चिन्ह और देशकी उन्नति का प्रतीक था"।

१८ फरवरी १८६१ में इटली की प्रथम लोक सभा ने दो

वर्ष के दीर्घ संग्राम के पश्चात् ट्यूरीन नगर में विक्टर ईमानवेल को "इटली का राजा" घोषित किया। केवल वैनिस और रोम ही स्वतंत्रता से वंचित थे। छः मास के अनन्तर कैभूर की मृत्यु हो गई।

(छ) *चतुर्थ सोपान*—१८६५ में राजधानी फ्लोरेन्स हो गई। १८६६ में कूटनीतिज्ञ बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के विरुद्ध इटली के साथ संधि की। इस संधि की एक शर्त यह भी थी कि आस्ट्रिया और प्रशिया के युद्ध मे यदि इटली निष्पक्ष रहेगा, तो उसे पुरस्कार के रूप में वैनेशिया प्रदेश मिल जायेगा। ७ सप्ताह के युद्ध मे आस्ट्रिया की सैडोआ मे पराजय हुई और वैनेशिया सार्डिनिया के अधिकार मे आ गया, परन्तु टायराल प्रदेश १६१६ तक आस्ट्रिया के अधिकार में रहा।

(ङ) *पंचम सोपान*—कैभूर ने एक बार कहा था कि—"इटली एक शक्तिशाली राष्ट्र बनेगा और रोम उसकी राजधानी बनेगा"। परन्तु रोम पोप के अधिकार मे था, और फ्रांस के सम्राट् नेपोलियन इसके संरक्षक थे। १८६७ में गैरीबल्टी और उसके पुत्र ने सैनोटी रोम पर आक्रमण किया, परन्तु मैण्टाना के युद्ध में फ्रांस की सेना ने उन्हे पराजित कर पुनः कैप्रेरा द्वीप मे निर्वासित कर दिया। १८७० में जब प्रशिया की सेना ने फ्रांस पर आक्रमण किया तो फ्रांसीय सेना ने रोम का परित्याग किया। फ्रांस की सीडान के युद्ध में पराजय व नेपोलियन तृतीय के पतन का सुयोग पाकर विक्टर ईमानवेल ने रोम को हस्तगत कर लिया। जनमत भी पूर्णतः इसके पक्ष मे था। २ जुलाई १८७१ में विक्टर ईमानवल ने रोम मे प्रवेश किया और वह इटली का ऐतिहासिक नगर पुनः इटली की राजधानी बन गया।

इटली की लोकसभा ने पोप पायस नवम (१८४६ से १८७८) की भौतिक प्रभुता के संरक्षण के लिए एक विशेष नियम स्वीकार किया। राजसत्ता के सम्मान, पदवी, अंगरक्षक और ३० लाख लियर वार्षिक व्यय की सुविधाएँ उसे दी गई। उसके आध्यात्मिक अधिकारो को भी स्वीकृत किया गया, परन्तु पोप ने इस निर्णय को अमान्य कर दिया व स्वतः वन्दी बन गया। इटालियन साम्राज्य के पतन की भविष्यवाणी करते हुए कहा—"आप अपनी हिंसात्मक क्रिया का फल अधिक दिन नहीं भोग सकेंगे। हम पुनः कहते है कि आपका पतन अवश्यंभावी है"।

२—इटली के निर्माता

(क) *मैजिनी:*—१८०५ से १८७२ इटली के पुनर्जागरण में मैजिनी एक दैवी शक्ति था। यह एक नवीन स्वाधीन राष्ट्र का भविष्यवक्ता ही नहीं था, अपितु इटली के युवकों को इसने एक पवित्र संग्राम से अनुप्राणित कर दिया था। १८०५ में जेनोवा शहर मे विश्वविद्यालय के एक अध्यापक और चिकित्सक के परिवार में इसका जन्म हुआ था। बाल्यावस्था में ही देश के अत्याचारों ने इसे प्रभावित कर दिया था—जिससे यह सर्वदा चिन्तित रहता था। अपनी आत्मकथा में यह लिखता है—"छात्र-जीवन के कोलाहलमय समय में हमने अकस्मात यह अनुभव किया कि हम बुड्ढे हो गये। सर्वदा हम काली वेष-भूषा पहन कर देश के कष्टों के लिए शोक प्रकट करना चाहते थे"। १८२१ के असफल विद्रोह के पश्चात् मैजिनी ने अपने जीवन के ध्येय को सबसे पूर्व निश्चित किया। एक दिन जेनोवा नगर के मार्ग मे परिभ्रमण करते हुए इस एक लंबी काली दाढी वाली पुरुष ने एक रूमाल देते हुए कहा—"यह इटली के आश्रय प्रार्थियो के लिए है"। इस साधारण घटना ने इसे इतना

प्रभावित किया—जिस विषय में वह लिखता है—"उस दिन से यह धारणा हमारे मन में प्रतिष्ठित हो गई कि वैदेशिक आधीनता में हमारे देश में जो अन्याय और अत्याचार हो रहे हैं, उनके विरुद्ध संग्राम करना पवित्र कर्तव्य है । आस्ट्रिया द्वारा निर्यातित और निर्वासित देश भक्त इटलीनिवासी आश्रय के लिए स्थान स्थान पर घूमते थे। इनमें से अनेक हमारे जीवन साथी हो गये। हमने उनके नामो व स्वाधीनता संग्रामों की घटनाओं को एकत्रित कर विश्लेषण किया कि इनकी सफलता के क्या क्या मुख्य कारण थे" ?

युवक मैजिनी ने साहित्य सेवा को ही अपने जीवन का मूल लक्ष्य बनाया था । यह ऐतिहासिक नाटक कहानी व उपन्यास लिखने का स्वप्न देखता था, परन्तु राजनैतिक आन्दोलन के लिए इस स्वप्न की बलि उसका प्रथम त्याग था । यह विप्लवी को गुप्त कार्बोनारी समिति का सदस्य बना और १८३० के विप्लव में बन्दी हो गया। बन्दी अवस्था में जेनोवा के प्रदेशपाल ने इसके पिता से कहा—"आपके पुत्र में अलौकिक प्रतिभा है, परन्तु यह गंभीर रात्रि में चिंतामग्न होकर एकाकी घूमता है। इस थोड़ीसी आयु में इसके लिए चिन्ता का विषय ही क्या है ? हम यह नहीं चाहते कि हमारे देश के युवक सर्वदा चिन्तालीन रहे और हम उनकी चिन्ता के विषय तक से अपरिचित रहें"। ६ मास के अनन्तर उसे मुक्त कर दिया गया व अल्प अवधि में ही यह पुनर्निर्वासित हो गया। ४० वर्ष तक इसने अपने निर्वासित जीवन को स्विट्जरलैण्ड, फ्रांस और इंग्लैण्ड में व्यतीत किया। १८३१ मे इसने गुप्त "नवीन इटली समिति" का निर्माण किया—जिसके कार्यकलाप हम मैटर्निक युग मे देख चुके हैं। ४० वर्ष से निम्न आयु के नवयुवक ही इसके सदस्य हो सकते थे और राष्ट्रीय गणतंत्र ही इसका ध्येय

था। इटली की स्वतंत्रता मैजिनी का एक धार्मिक संग्राम था—जिसमें संपूर्ण आत्म त्याग और तन, मन, धन की आहुति इसने लगा दी थी। इसका कथन था—"सिद्धान्त जब देशभक्तों के रक्त से आप्लावित होते हैं तो वे वैद्युतिक गति से प्रसारित होते हैं"। नवीन इटली समिति के सदस्यों को इसने गाँव गाँव में इटली की स्वाधीनता की भावना का जन जन मे प्रचार करने के लिए लगा दिया। जनता के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए इसने कहा "इटली निवासियों को अतीत का इतिहास स्मरण करना चाहिए और स्वाधीनता एवं स्वतन्त्रता की सुविधाओ का अनुभव करना चाहिये। फ्रांस, बेल्जियम व पौलैण्ड के दृष्टान्त का अनुकरण कर आल्पस् पर्वत को लक्ष्य करके एक स्वर मे पुकारना चाहिए कि—"यही है इटली की प्राकृतिक सीमा व विदेशी इस सीमा से बाहर चले जाये"। मैजिनी बंदूक में विश्वास करता था, परन्तु उसके पीछे सिद्धान्त संलग्न थे। वह एक संकीर्ण राष्ट्रवादी नहीं था। फ्रांसीय विप्लव के संबन्ध मे इसने कहा—"विप्लव ने केवल फ्रांस के लिए समानता, एकता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की घोषणा की परन्तु नवीन विप्लव समग्र राष्ट्रों के लिए करेगा"।

इसका मूल मतव्य था कि मुक्ति के लिए आस्ट्रिया से युद्ध अनिवार्य है, परन्तु वैदेशिक शक्ति अथवा कूटनीति पर निभर नहीं रह कर स्वयं को शक्तिशाली बनाना चाहिए। २ करोड जनता के साथ संघर्ष करके आस्ट्रिया सफल नहीं हो सकता। "मुक्ति के लिए एक महान् वस्तु की इटली को आवश्यकता है—वह शक्ति नहीं—आंतरिक विश्वास है"।

इटली के संकटमय समय में—जब कि प्रत्येक नेता इटली की स्वतंत्रता और एकता के आदर्श को स्वप्न समझता था—एकमात्र दूरदर्शी मैजिनी ने ही यह घोषणा की—"यह क्रियात्मक हो सकता है"। इटली के इतिहास में इसका विशेष मह-

त्व इसीलिए है कि इसने अगाध विश्वास को जनता में संचारित किया व जनता को समग्र इटली की स्वाधीनता के लिए ही विद्रोह करने की शिक्षा दी।

प्रजातंत्र मे मैजिनी का गंभीर विश्वास था। इटली में ऐसा कोई वंश नहीं था-जिसका गौरवमय इतिहास जनता को प्रभावित कर सकता था। कोई शक्तिशाली और सम्मानित कुलीन वर्ग नही था—जो कि जनता और राजा में मध्यस्थता कर सकता था। इसका विश्वास था कि राष्ट्रसंघ के हस्तक्षेप से इटली की समस्या का समाधान नहीं हो सकेगा।

हम देख चुके हैं कि मैजिनी के सिद्धान्त जब क्रियात्मक होने लगे, तो असफल रहे। उसमें प्रयोगिक नेतृत्त्व का अभाव था। वह असाहिष्णु और हठि था और शत्रु की शक्ति को न्यून समझ कर उसका वास्तविक अनुमान नहीं कर सकता था। तत्कालिक जनता की दृष्टि में यह "एक उग्र रहस्यमय महापुरुष था"-जिसके भाषण में महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त थे-जिनका प्रयोग में कोई अभिप्राय नहीं था। संक्षेप में इसके कार्यकलाप सफलता के परे थे फिर भी इटली के निर्माताओं में इसका प्रधान स्थान है। लिप्सन कहता है-"मैजिनी एक नवीन पथ-प्रदर्शक है-जिसने अपने जीवन को एक महान् आदर्श और लगा दिया था। इसका प्रचार से जनता की राजनैतिक दृष्टि का आकर्षण हुआ और स्वतंत्रता के लिए शक्तिशाली संगठन बनाने मे सफल हुआ"। इसने स्वयं एक बार कहा था-"महान् कार्यों के पूर्व महान् धारणा का वपन होना चाहिये"। संक्षेप में मैजिनी ने समाज में देशभक्ति के प्रदीप को प्रज्वलित कर इटली के इतिहास में अपना अमर प्रकाश फैला दिया।

(ख) गैरीबल्टी (१८०७ से १८८२)

१९ वीं शताब्दी के अद्वितीय महापुरुष गैरीबल्डी दान-

वीयशक्ति, सुवर्ण केश, रहस्यमय प्रकृति, असाधारण योग्यता, इन्द्र के समान रण कौशल व वीरमूर्त्ति इटली के इतिहास में बार बार देखने को मिलती है और पाठकों के मन को आकर्पित करती है। मैजिनी से दो वर्ष न्यून और कैभूर से तीन वर्ष ज्येष्ठ गैरीवल्डी का जन्म नाइस् नगर के एक सौदागर के परिवार में हुआ था। पिता इसे पुरोहित बनाना चाहता था, किन्तु यह नाविक बनने का अभिलाषी था। इसके जीवनचरित लेखक ट्रवीलिअन कहते हैं-"बाल्यावस्था में इसे इस प्रकार की शिक्षा मिली-जिससे इसका मन स्वतंत्रताप्रिय गंभीर और भावप्रधान बन गया व इसमें गंभीर चिन्तन और मनन की शक्ति का उदय हुआ"। १० वर्षीय स्वतन्त्र नाविक—व्यवसाय व भूमध्य सागर के अनुभवों ने इसे देशभक्त और निर्वासित व्यक्तियों से सम्पर्कस्थापित करने का सुयोग दिया और इन्हीं से इसके जीवन में मुक्तिसंग्राम की अनुप्रेरणाएं मिलीं। "जैसे सन्यासी भगवान् पर विश्वास करते हैं, उसी तरह यह भी इटली में विश्वास करता था"। मैजिनी से परिचित होते ही यह "नवीन इटली समिति" का सदस्य बन गया। इसने लिखा-"हम जब युवक थे, तो ऐसे पथप्रदर्शक की खोज मे थे, जो हमारे कार्य-कलापों को नियंत्रित कर सके। हम एक ऐसे गुरु के अन्वेपण में लगे थे-जो पिपासु हो और दूरतक भी पानी के लिये झरने को निकाल सकता हो। मुझे यह गुरु मैजिनी के रूप में मिला। जब कि सारा विश्व निद्रा में लीन था—उस समय यही एक ऐसा व्यक्ति था जो जाग रहा था। देशभक्ति की पवित्र दीपशिखा को इसी ने प्रज्वलित किया"। १८३३ में गैरीवल्डी ने मैज़िनी के एक असफल पड्यंत्र में भाग लिया व अभियुक्त होकर पलायन किया। प्रथम वार अपने नाम को इसने उस

मुद्रित सूची में प्रकाशित देखा-जिसमें सार्डिनिया शासन की ओर से मृत्युदंड की घोषणा की गई थी।

१८३६ से १८४८ तक गैरीवल्डी पुरातन विश्व में अदृश्य हो गया था। पूर्ण १० वर्ष तक दक्षिण अमेरिका के जंगलों में रहते हुए इसने प्रवासी इटली निवासियों को संगठित किया और गणतंत्र "उरूग्वे" प्रदेश के स्वाधीनता संग्राम में राज-सत्तावादी ब्राजील के विरोध मे संग्राम किया। यह लड़ाई के जीवन को अपूर्व आनन्द समझता था। यहीं पर उसने अनिता के साथ प्रणय—विवाह किया। इस जीवन में गैरीवल्डी ने अनियमित युद्धों का अनुभव प्राप्त किया—जो इटली के लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ।

१८४७ मे इसने इटली से पुनरावृत्त होकर सुधारवादी पोप की सहायता की। १८४८ में जब सार्डिनिया के राजा ने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध घोषित किया तो उसने भी अपनी सहायता इटली को दी, कस्टोजी के पराजय के अनन्तर मैजिनी ने गैरीवल्डी से रोमन गणतंत्र को फ्रांसीय सेना से रक्षित करने का अनुरोध किया। इसने वीरता के साथ इसका असफल प्रयास किया। आस्ट्रिया विजयी हो गया और गैरीबल्डी जीवन बचाकर पलायित हो गया। इसने अपनी आत्मकथा में लिखा—"हम यह विचार आप ही पर छोड़ देते हैं कि उस समय हमारी परिस्थिति कितनी संकटापन्न थी। हमारी प्रिय स्त्री की मृत्यु हो गई, शत्रु ने हमारे पीछे दौड़ लगाई, परन्तु हम कुशलता से भाग आये"। स्त्री की मृत्यु के पश्चात् गैरीवल्डी ने पुनः अमेरिका के न्यूयार्क नगर मे मोमवत्ती के व्यवसाय में चार वर्ष विताये। अपने एकत्रित सामान्य धन को लेकर यह इटली लौट आया व इसने सार्डिनिया के निकट कैप्रेरा द्वीप में एक छोटासा

मकान बनवाया। इसके जीवन चरित के लेखक कहते हैं-"इसी द्वीप में इसने सर्वप्रथम जनता के जमघट, अधिकारियो व राजन्यवर्गों के कोलाहल एवं आधुनिक जीवन की कृत्रिमताओ से दूर होकर एकान्त मे स्वतंत्रता का आस्वाद लिया, परन्तु समुद्र के उस पार से दासत्त्व की शृंखलाओ में बद्ध इटली-निवासियों ने अपनी मुक्ति के लिए इसे पुकारा"।

१८५६ मे गैरीबल्डी ने सर्वप्रथम कैभूर से साक्षात्कार किया और सार्डिनिया के नेतृत्त्व में वैधानिक राजसत्ता की स्थापना को इटली के स्वाधीनता संग्राम का उद्देश्य मान लिया। यह परिवर्त्तन गैरीबल्डी के जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। इसने गणतंत्रवादी और राजसत्तावादियो की विभिन्नताएँ नष्ट कर उन्हे एकत्रित किया, यद्यपि अंतःकरण से यह गणतंत्रवादी ही था। इसके प्रभाव से अनेक देशभक्तों ने लुई नेपोलियन के साथ १८५६ की मैत्री का समर्थन किया—जब कि १० वर्ष पूर्व वे ही लोग नेपोलियन को इटली का घृणित शत्रु समझते थे। गैरीबल्डी का नाम सुनते ही स्वयंसेवक टोली बना-बना कर सेना मे प्रविष्ट हो गये एवं गैरीवल्डी के नेतृत्त्व मे उन्होंने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध में विजय प्राप्त की, परन्तु विलाफ्रांका के रणविराम ने इनकी अग्रगति का प्रतिरोध कर दिया। १८५६ मे सिसली निवासी विद्रोही जनता ने इसका किस प्रकार आमंत्रण किया व किस प्रकार इसने सिसली और नेपिल्स को विजय किया, यह हम स्वतंत्रता—संग्राम के तृतीय सोपान मे पढ़ चुके हैं। विजय से उत्साहित होकर गैरीवल्डी ने किस प्रकार रोम पर आक्रमण करने का प्रयत्न किया व कैभूर ने इसे कैसे रोका, यह भी हम देख चुके हैं।

इसकी सबसे बडी भूल यह थी कि यह एक शुद्ध वीर था एवं कूटनीति और राजनीति से दूर था। इसने यह कल्पना

नहीं की कि इस प्रगति के कारण आस्ट्रिया और फ्रांस से संघर्ष अनिवार्य होगा। "कापुरुषता की कल्पना इसमे अप्राप्य थी"। इसका विश्वास था कि किसी भी राष्ट्रकी स्वाधीनता-प्रेमी जनता का संग्राम अधिक से अधिक शक्तिशाली सत्ता को भी छिन्न भिन्न कर देगा।

गैरीवल्डी में कैभूर के समान कौशल नहीं था, परन्तु आत्मत्याग और निस्स्वार्थ देशभक्ति में यह किसी से भी कम नहीं था। सिसली के आक्रमण के समय इसने राजा विक्टर ईमानवेल से कहा-"यदि आप मेरी जन्मभूमि की तरह किसी भी परामर्शदाता के परामर्श से इटली के किसी भी अंश को विदेशों को नहीं देंगे, तो मै विजय कर सिसली जैसे बहूमूल्य हीरे से आपके राजमुकुट को सुशोभित करूँगा"। फिर भी यह इतना बड़ा राजभक्त था कि सिसली और नेपिल्स का अधिनायक होते हुए भी पोप के राज्य के पतन होते ही इसने स्वयं आत्म समर्पण कर दिया।

गैरीबल्डी का स्वाधीनता संग्राम पूर्ण हो चुका था। तब यह एक थैला अनाज लेकर अपने द्वीप में चला गया, एवं कृषि के कार्य में लग गया। इटली के निर्माताओं में यह सबसे अधिक जीवित रहा। १८७० में गणतांत्रिक फ्रांस का यह सेना-नायक बना व इसके ४ वर्ष बाद इटली लोकसभा का सदस्य बना, परन्तु उपयुक्त पेंसन और ६ लाख रुपया-जो कि इटली शासन की ओर से इसे पुरस्कार स्वरूप दिया जा रहा था-इसने ठुकरा दिया। इस की मृत्यु २ जून १८८२ में हुई। इतिहास के पृष्ठों में इटली के स्वाधीनता-संग्राम का यह "भ्रान्त वीर" आज भी जीवित है—जिसने इतिहास को "महाकाव्य और राजनीति को रहस्य में परिणत कर दिया"।

कैभूर (१८१०-१८६१)

(ग) कैभूर (१८१० से १८६१)

इटली के स्वाधीनता संग्राम के प्रथम १० वर्ष और कैभूर का जीवन अभिन्न हैं। १० अगस्त १८१० में पिडमण्ट के एक कुलीन वंश में इसका जन्म हुआ था। १० वर्ष की आयु में ट्यूरिन के सैनिक शिक्षणालय में यह प्रविष्ट हुआ और सामरिक निर्माता बन गया। सैनिक जीवन मे इसकी रुचि नहीं थी, इसीलिए १८३१ मे इसने अपना पद त्याग कर ग्रामीण संपत्ति के निरीक्षण में १५ वर्ष बिताये। इसी समय इसने इंग्लैण्ड और फ्रांस का परिभ्रमण किया। इसका मन राजनीति मे भाग लेने के लिए अत्यन्त व्याकुल था। इसी लिए इसने कहा–"यदि हम अंग्रेज होते तो हमारा नाम अब तक अविख्यात नहीं रहता"। इंग्लैण्ड से इसने वैधानिक राज सत्ता और लोकतन्त्रवाद की शिक्षा ग्रहण की। १८४२ मे इसने कृषि उन्नयन समिति की स्थापना की व ५ वर्ष पश्चात् "इल् रिसर्जीमेण्टो" नामक एक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इसके उद्देश्य थे, इटली की स्वतन्त्रता, राजा व प्रजा का समन्वय, सुधार का उत्कर्ष व इटली का संघनिर्माण। १८४८ में प्रथम पिडमण्ट की लोक सभा का सदस्य निर्वाचित हुआ, १८५० मे मन्त्रिमण्डल मे कृषि और व्यापार का मन्त्री बना और दो वर्ष पश्चात् सार्डिनिया और पिडमण्ट का प्रधान मन्त्री हुआ—जिस पद पर यह अपने शेष जीवन तक रहा।

इटली का बिस्मार्क कैभूर प्रभावशाली वाग्मी और प्रतिभाशाली कवि नहीं था। इसने स्वयं कहा था–"हम एक कविता रचना नहीं, परन्तु इटली का निर्माण कर सकते हैं"। ये शब्द हमे एथेन्स के राजनीतिज्ञ थैमिस्टोक्लिस् का स्मरण कराते हैं–जिसने कहा था–"हम संगीत नहीं जानते, किन्तु एक सामान्य नगर को महानगर के रूप मे किस प्रकार परिणत किया जा सकता

है, यह जानते हैं।" इटली का मुक्ति संग्राम एक जटिल समस्या थी—जिस मे आस्ट्रिया के आधिपत्य एवं पोप और राज-सत्तावादियों के स्वार्थों का समन्वय था। इसी लिए सर्व-प्रथम इसने साहित्य द्वारा स्वतन्त्रता मंत्रों का प्रचार ही अपना अमोघ अस्त्र बनाया। इसने निर्वासित देश भक्तों को शक्ति-शाली लेखक-सेना के रूप मे परिणत किया—जो देशी व विदेशी संवाद पत्रों मे रचनाएँ प्रकाशित कर इस मुक्ति संग्राम की पृष्ठ भूमि तैयार करने लगे। पिडमण्ट को यह एक आदर्श राष्ट्र बनाना चाहता था—जिसके अनुकरण से समग्र इटली स्वाधीनता संग्राम में सम्मिलित हो। इसने कहा था "पिडमण्ट को ऊँचा उठा कर इटली व यूरोप में इसकी प्रतिष्ठा स्थापित करना चाहिए। यह एक ऐसी नीति अपनायेगा जिसका लक्ष्य एक और उपाय अनेक होगे। आर्थिक और सामरिक संगठन से यह समस्याओं का स्वयं समाधान करेगा।" पिडमण्ट के आंतरिक सुधार से इसने जनता को पर्याप्त मात्रा मे स्वायत्त शासन की शिक्षा दी। यह इसका दृढ़ विश्वास था कि वैदेशिक सहायता के बिना मुक्ति संग्राम की सफलता असम्भव है। इसी लिए इसने फ्रांस की मित्रता को आवश्यक समझा व पेरिस समस्या को यूरोपीय शक्ति के समक्ष ला कर एक महत्व-पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बना दिया। प्लम्बियर्स की गुप्त-सन्धि इसकी राजनैतिक दूरदर्शिता का परिचय है, परन्तु ज्यूरिच की सन्धि के पश्चात् इसका पद त्याग इसकी भावुकता का प्रतीक था। विक्टर ईमानवल ने उस समय कहा था "तुम (कैभूर) और और हम सहकर्मी हैं, किन्तु संकट के समय पद त्याग तुम्हारा एक बचाव है, पर हमारे लिए तो वह भी सम्भव नहीं है, क्यो कि हम इतिहास और देश के प्रति उत्तरदायी हैं। इटली की राजनैतिक एकता एक अनिवार्य आवश्यकता है"।

फिर भी लंबार्डी का अधिकार आंशिक रूप से इसीकी देन थीं।

कैभूर यद्यपि जनतन्त्रवादी अथवा विप्लवी नहीं था, परन्तु इटली की स्वाधीनता के लिए यह विप्लवीय शक्ति के प्रयोग का समर्थन करता था। वह गुप्त रूप से जनता के स्वतन्त्रता आन्दोलन का समर्थक था, किन्तु सार्वजनिक रूप से उसे अस्वीकार करता था। हम देख चुके है कि इसने किस चातुर्य के साथ मध्यम इटली को सर्व सम्मति से पिडमण्ट मे विलीन कर दिया। फ्रांस के सहयोग को भी—सॅवाय और नाइस दे कर—क्रय कर लिया। इसी समय इसने कहा था—"यह अप्रिय सत्य है कि इटली का भविष्य फ्रांस पर निर्भर है"।

पोप के राज्य का आक्रमण (सितम्बर १८६०) कैभूर के जीवन में एक महत्वपूर्ण घटना और राजनैतिक दूरदर्शिता का एक उज्ज्वल दृष्टान्त है। लार्ड ऐक्टन ने कहा है "यद्यपि कैभूर इसमें विजयी हुआ, फिर भी यह विजय एक राजनैतिक असावधानता का परिचय है। इसने गैरीवल्डी को प्रतारित किया।" परन्तु ट्रेवीलिअन की युक्तिपूर्ण निम्न उक्ति से हम इस कथन पर निष्पक्ष विचार करेंगे। "मैजिनी और उसके मित्रो ने इस आंदोलन को उद्दीप्त किया, गैरीवल्डी ने इसे पूर्ण किया और राजा व कैभूर ने इसे पर्याप्त सहायता दी। कैभूर के पथप्रदर्शन के बिना इसकी असफलता सुनिश्चित थी। राजनैतिक दृष्टि से कैभूर सतर्क ही नहीं, अपितु दूरदर्शी चतुर, दक्ष और प्रतिभा सम्पन्न था"। इसी लिए मृत्यु से पूर्व इसने लोक सभा द्वारा यह प्रस्ताव स्वीकृत कराया कि "रोम इटली की राजधानी होगी"। ६ जून १८६१ मे ५१ वर्ष की आयु में इसकी मृत्यु हो गई।

(घ) निर्माताओं की तुलना

हम देख चुके हैं कि मैजिनी, गैरीबल्डी व कैभूर तीनों ही समसामयिक देशभक्त और इटली के निर्माता थे। मैजिनी के कार्य कलाप १८३० से १८४९ गैरीबल्डी, के १८४८ से १८६६ एवं कैभूर के १८५४ से १८६१ तक विस्तृत थे। मैजिनी और गैरीबल्डी इटली के पूर्ण स्वाधीनता संग्राम के प्रत्यक्षदर्शी थे, परन्तु कैभूर की मृत्यु १० वर्ष पूर्व ही हो चुकी थी। भविष्य वक्ता मैजिनी ने इटली के देशभक्तों मे राष्ट्रीयता को अनुप्राणित किया। गैरीबल्डी के वीर साहस ने प्रवासी और निर्वासितों को एकत्रित कर शक्ति प्रदान की। कैभूर की अपूर्व कूटनीति और कुशलता ने इन सबके समन्वय से स्वतंत्र इटली का निर्माण किया। ऐतिहासिक इनकी आपेक्षिक महत्ता के संबन्ध में विवादशील है, परन्तु विप्लव की सफलता के लिए आत्म-संयम और नियंत्रण अनिवार्य है—जिसका वीर गैरीबल्टी में अभाव था। आदर्शवादी मैजिनी जनतंत्रवाद का समर्थक था, पर आदर्शों को क्रियान्वित करने का सामर्य और योग्यता कैभूर के अतिरिक्त इनके पास नहीं थी। हैजिन कहता है—"कैभूर का मन मैजिनी से ठीक विपरीत था। जहाँ मैजिनी चंचल और चिन्ताशील था, वहाँ कैभूर स्थिर और क्रियात्मक था"। कैभूर ने मैजिनी के समान न शत्रु की शक्ति को अलपतम और जनता की शक्ति को अधिकतम महत्त्व दिया, यह उसकी संतुलित विचार धारा का प्रमाण था।

(अ) कैभूर का स्थान

कैभूर की मृत्यु के पश्चात् ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री पामर्स्टन ने इंग्लैण्ड की लोकसभा मे अभिभाषण करते हुए कहा—"कैभूर का नाम ही नैतिक उपदेश का संचार और आख्यान

को विभूषित करता है" । इसका नैतिक ज्ञान यह था कि एक विशेष प्रतिभाशील व्यक्ति असाधारण परिश्रम व अनन्त देशभक्ति द्वारा विभिन्न बाधाओं व विघ्नों का अतिक्रमण करते हुए किस प्रकार इस राष्ट्र को स्वाधीन बना सकता है । इस के नाम के साथ पृथ्वी के इतिहास में एक रहस्यमय अद्वितीय कहानी लगी रहेगी । एक मृत जाति को इस ने पुनर्जीवित किया । इसी लिए हम इसे ही इटली के निर्माताओं मे प्राधान्य देते हैं । यह आन्तरिक रचनात्मकता और वैदेशिक कुशलता का अद्भुत समन्वय था । इटली के इतिहासकार मैजॉडि सत्य ही कहा है– "इटली राष्ट्र का जीवन कैभूर की देन है । इसके अन्य सहयोगियों ने इटली के मुक्ति संग्राम मे स्वयं को समर्पित किया, परन्तु इसे प्रायोगिक रूप देना एक मात्र यही जानता था । इसने षड्यन्त्रकारी, कल्पनाजीवी और गुटबन्दियो से राष्ट्र की रक्षा की और विप्लव व प्रतिक्रिया के मध्य से निकाल कर सुरक्षित ले गया । अन्त में इसने राष्ट्र को संगठित सेना, उच्चतम पताका, व्यवस्थित शासन और वैदेशिक मैत्री प्रदान की " ।

(घ) उद्भासित रूस (१८५५ मे १८८१)

१–प्रगति की ओर:– १८५५ में अलैग्जेण्डर द्वितीय निकोलास प्रथम की मृत्यु के पश्चात रूस का सम्राट् हुआ । इस काल का रूस का आंतरिक इतिहास अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योकि प्रतिक्रिया और प्रतिरोध के स्थान पर रचनात्मक संशोधन प्रारम्भ हुआ । इस ने प्रकाशन को स्वतन्त्रता दी, निर्वासित और राजनैतिक बन्दियों को मुक्त किया । विश्वविद्यालय को स्वतन्त्रता देते हुए वैदेशिक परिभ्रमण के प्रतिबन्ध को हटा दिया । संक्षेप में औद्योगिक, व्यावसायिक, सामरिक, आर्थिक और सामाजिक सभी दृष्टियों से रूस उन्नति की ओर अग्रसर

हो रहा था। दास प्रथा का अवसान इसकी सबसे बड़ी विशेषता थी। रूस मे साढ़े चार करोड़ दास थे-जिनमें केवल राजा के आधीन मे ही २ करोड़ ३० लाख थे, शेष कुलीनों व गिरिजाओ के आधीन थे। ये दास वेगारी, अत्यधिक कर, यातायात का प्रतिबन्ध, कारावास, वेत्राघात इत्यादि से त्रस्त थे। अलैग्जेण्डर ने फर्वरी १८६१ के एक विशेष नियम (उकेश) द्वारा साढ़े तीन करोड़ दासों को मुक्त कर दिया। यह नियम चार सिद्धान्तों पर निर्भर था-(१)रूस ने दासों को नागरिक अधिकार प्रदान कर दासत्व से मुक्त कर कृषक वना दिया। (२) स्वशासित ग्राम शासन—मीर(१)—ने कुलीनो की भूमि को दासों में विभाजित करने के लिए भूमि पर अधिकार किया, (३) व उसके मूल्य निर्धारण का भार एक पंचों की समिति पर डाला गया। यह मूल्य समिति की ओर से कुलीनों को दिया गया। (४) स्वशासित ग्राम समितियों की सहायता के लिए शासन ने ४९ वर्ष की अवधि मे ६ प्रतिशत सूद की शर्तों पर पर्याप्त धन दिया। परिणामतः सम्राट् को जनता "मुक्तिदाता सम्राट्" कहने लगी।

फिर भी इन अवसान के नियमों ने कुलीनो और दासों में असन्तोष की वृद्धि की। कुलीन भूमि सत्ताधिकारिता से बंचित हो गये और क्षतिपूर्ति को लेने के लिए उन्हें विवरण रखना पड़ा। दास को अनेक प्रकार के कर देने पड़े,क्योंकि उसने क्षतिपूर्ति को अपने लाभ में नहीं माना और उसे स्वाधीनता के विपरीत कहा।

अलैग्जेण्डर द्वितीय का समय स्थानीय शासन और नियमों के सुधार का काल था। छोटे छोटे न्यायाधीश भी जनता द्वारा निर्वाचित किये जाने लगे। आवेदन की सुविधा दी गई,अपराधियों के निर्णय के लिए पंचायत प्रथा, नवीन दण्डविधि, शासन और न्याय विभाग का प्रथक्करण आदि गणनीय परिवर्तन किये

(१)"नवीन यूरोप" मे "मीर" के विषय में विस्तृत विवरण है।

गये। स्थानीय शासन विकेन्द्रित कर स्वायत्त शासन बना दिया गया। प्रदेशों में शासन की सुविधा के लिए "जेम्सटभो" के नाम से जनता-निर्वाचित प्रादेशिक समितियों की स्थापना की गई। इन समितियों के कार्य प्रारम्भिक शिक्षाओं का निरीक्षण, चिकित्सा-सहायता, अकाल का निरोध और छोटे छोटे न्यायाधीशों को निर्वाचित करने थे। प्रदेश पाल के पास विशेष निषेधाधिकार होने व आर्थिक अभाव से ये समितियाँ पर्याप्त प्रगति नहीं कर सकीं।

सम्राट् ने रेल, जहाज, वैदेशिक व्यापारों की सुविधा और विद्यालयों की स्थापना कर जनता को प्रगति पर पहुँचाया, परन्तु जनता असन्तुष्ट ही रही।

२—विप्लव और दमन का काल

(क) *पोलैण्ड का विद्रोहः*—१८६३ के पोलैण्ड-विद्रोह ने सुधारवादी सम्राट् को एक भयंकर धक्का पहुँचा कर मत परिवर्तन के लिए बाध्य किया। संकीर्ण स्वायत्त शासन से असुन्तष्ट पोलैण्ड निवासी १७७२ से पूर्व के पोलैण्ड के समान अपने राष्ट्र का "महा पोलैण्ड" और स्वाधीन जनतन्त्र के रूप में निर्माण करना चाहते थे। सैनिक व वैदेशिक सहायता के बिना विद्रोह की असफलता निश्चित थी, क्योंकि निकटतम प्रतिवेशी विस्मार्क रूस का मित्र था। १८६४ में निर्दयता के साथ सम्राट् ने इस विप्लव का दमन किया। परिणामतः सर्वप्रथम पोलैण्ड को स्वायत्त शासन से वंचित करते हुए कृषको को भूमि का स्वामी बना दिया गया। गिर्जा की संपत्ति हस्तगत करली गई व रूस भाषा को वहां की राष्ट्र भाषा बना दिया गया एवं पोलैण्ड के अधिकारियों को पदच्युत करके रूसीय अधिकारियों को नियुक्त कर दिया गया। समसामयिकपोलैण्ड के लेखक ने लिखा है—१८६३ के विप्लवीय ध्वंसोंव शेष पर विस्मार्क की प्रणाली और पोलैण्ड का "रूसीकरण" प्रारम्भ हुआ।

(ख) अराजकवाद

रूसी उपन्यासकार तुर्गेनिव ने अपनी "फादर एण्ड सन्स" पुस्तक में "अराजकवाद" शब्द का प्रथम प्रयोग किया था। उपन्यास का प्रधान नायक वार्जारभ—क़िसी भी अधिकार के सामने सिर नहीं झुकाता था, किसी भी सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता था व रोटी के प्रश्न की महत्ता के कारण-पंचायत, लोकसत्ता और कला तक से घृणा करता था। इसका दृढ़ विश्वास यह था कि हमारे सामाजिक और पारिवारिक जीवन मे ऐसी कोई संस्था नहीं है जिसका पूर्णशः ध्वंस न करना चाहिए। सम्राट् की सर्वसत्ता, गिर्जा की पवित्रता व समाज की बाधकताओं को यह नष्ट करना चाहता था। तुर्गेनिव ने अराजकवाद की परिभापा करते हुए लिखा–"निरर्थक समालोचना और पूर्ण प्रतिवाद ही वस्तुतः अराजकवाद है"। पर अराजकवाद ध्वंसात्मक ही नहीं, रचनात्मक भी था। अराजकवादी निम्न वर्ग के उत्थान से नवीन समाज की रचना करने के पक्ष में थे। धर्म के स्थान पर ये विज्ञान पारिवारिक जीवन का स्वतंत्र प्रेम, व्यक्तिगत संपत्ति के स्थान पर समष्टिगत अधिकार और केन्द्रभूत शासन के स्थान पर स्वशासित स्वायत्त जिला शासन स्थापित करना चाहते थे।

१८६० से १८७० तक अराजकवाद पूर्ण आत्म-निर्भरता के प्रयास मे रहा। इस काल में इसे उपयोगिता वादी सिद्धान्त मिले–जिस प्रकार मोची चित्रकार से बड़ा है आदि। १८७१ से १८७५ मे साहित्य के माध्यम से इन्हीं सिद्धान्तों का प्रचार प्रारम्भ हुआ–जिसके परिणाम स्वरूप महिलायें स्वतंत्र हो गई और उच्च स्त्रीशिक्षा का विकास हुआ। सम्राट् की हत्या के प्रयत्न ने आतंक के राज्य का दमन किया व उसी की निर्दयता से विप्लव के बीजों का वपन हुआ। सैबीरिया में डेढ़

लाख व्यक्तियों को निर्वासित किया गया। अराजकवादी नेता वाक्कूनिन और क्रोपट्किन ने गुप्त प्रचार द्वारा व्यक्तिगत स्वतंत्रता को सामाजिक हित में लगाने का प्रयास किया। पर राजा ने इसका उठने से पूर्व ही दमन कर प्रतिरोध को जन्म दिया। १८७६ और ८१ में अनेक छोटे मोटे असफल विद्रोह हुये। राजा ने छात्रों को विश्वविद्यालय से बहिष्कृत और प्रादेशिक समिति और न्यायाधीशों को स्वयं के नियंत्रण में ले लिया। संक्षेप में स्वायत्त शासन का लोप हो गया। परिणामतः अराजकवाद आतंकवाद में परिणत हो गया और अन्त में १३ मार्च १८८१ में एक बम फेंक कर राजा को मार दिया गया। इसकी मृत्यु से कुछ दिन के लिए यह आन्दोलन शान्त हो गया।

(ग) वैदेशिक नीति

क्रीमिया की पराजय के पश्चात् अलैग्जेण्डर द्वितीय ने सुदूर प्राच्य मे आईगुन (१८५८) की संधि द्वारा आमूर नदी के मुख्यप्रदेश और व्लाडिवोस्टक बन्दरगाह को अधिकृत किया-जिस से प्रशांत महासागर में रसिया का प्रभाव-विस्तार हुआ। मध्य एशिया मे खीवा व तास्खण्ड को हस्तगत कर फारस और अफगानिस्तान की ओर रूस की सीमा को प्रसारित कर दिया। रूस ने प्रशिया के साथ १८६३ में संधि की-जिस ने कि बर्लिन कांग्रेस (१५ वर्ष) तक मैत्री बनाए रखी। यह संधि जर्मनी को आस्ट्रिया और फ्रांस को रूस की निष्पक्षता के कारण विजय करने में सहायक हुई। प्रशिया की विजय के पश्चात् पेरिस की जिस संधि ने इसकी प्रगति पर प्रतिबंध लगाया था-उसको इस ने भंग किया। नौशक्ति को संगठित किया, कृष्ण समुद्र के तट पर अस्त्रशस्त्रालय स्थापित किया। ७ वर्ष पश्चात् तुर्की के

विरुद्ध युद्ध घोषणा की व बशौरेबिया और ककेशास के अभेद्य दुर्ग को अधिकृत किया, परन्तु जर्मनी ने बर्लिन कांग्रेस में इसका साथ नहीं दिया। आगे जाकर इनके लाभ को किस प्रकार क्षति के रूप मे परिणत कर दिया गया, यह हम निकट प्राच्य देशों की समस्या में अध्ययन करेंगे।

(ङ) जर्मन साम्राज्य की स्थापना

१—जर्मनी का संगठनः—हम देख चुके हैं कि १८४८ से १८५० तक के विप्लव काल ने जर्मन संगठन की समस्या को जर्मनी के विभिन्न राज्यों के समक्ष नवीन महत्व दिया। यद्यपि आस्ट्रिया की विजय और प्रशिया की पराजय हुई, फिर भी जर्मनी का पुनरुत्थान प्रगतिशील प्रशिया के नेतृत्व मे ही संभव है और प्रान्तीयता ही राष्ट्रीयता के विकास का एक मार्ग है- ये दो सिद्धान्त जन साधारण के हृदय में जम गये। राष्ट्रीयता के युग में आस्ट्रिया अराष्ट्रीय और राज-सत्तावादी था, प्रगतिशील काल में वह स्थिर था एवं मेटर्निक की नीति के अनुसार सम्पूर्ण जर्मनी पर समरिक शक्ति द्वारा प्रभुत्त्व स्थापित करना चाहता था। स्वाधीनता संग्राम में नेपोलियन की पराजय और प्रशिया की राष्ट्रीय विजय से प्रशिया का गौरव और महत्व ही नहीं बढ़ा, अपि तु एक नवीन आत्म निर्भरता और दृढ़ता का उदय हुआ। स्टाइन और श्कार्नहार्स्ट के सुधारों ने राष्ट्र को जागृत कर उसकी सामरिक और असामरिक भित्ति दृढ़ की। वियाना कांग्रेस ने जर्मनी के दक्षिण राज्यों को प्रशिया के निकट ला कर उनकी रक्षा का भार प्रशिया पर। डाल दिया था। आगम संघ ने प्रशिया को जर्मनी का आर्थिक नेतृत्व प्रदान कर जर्मनी के छोटे छोटे राज्यो को भौतिक उन्नति की ओर अग्रेसर किया था। संक्षेप में यह कथन समीचीन है कि राष्ट्रीयता की दृष्टि से प्रशिया की नीति दुर्बल और

जर्मन-साम्राज्य(१८४८-१८७१)
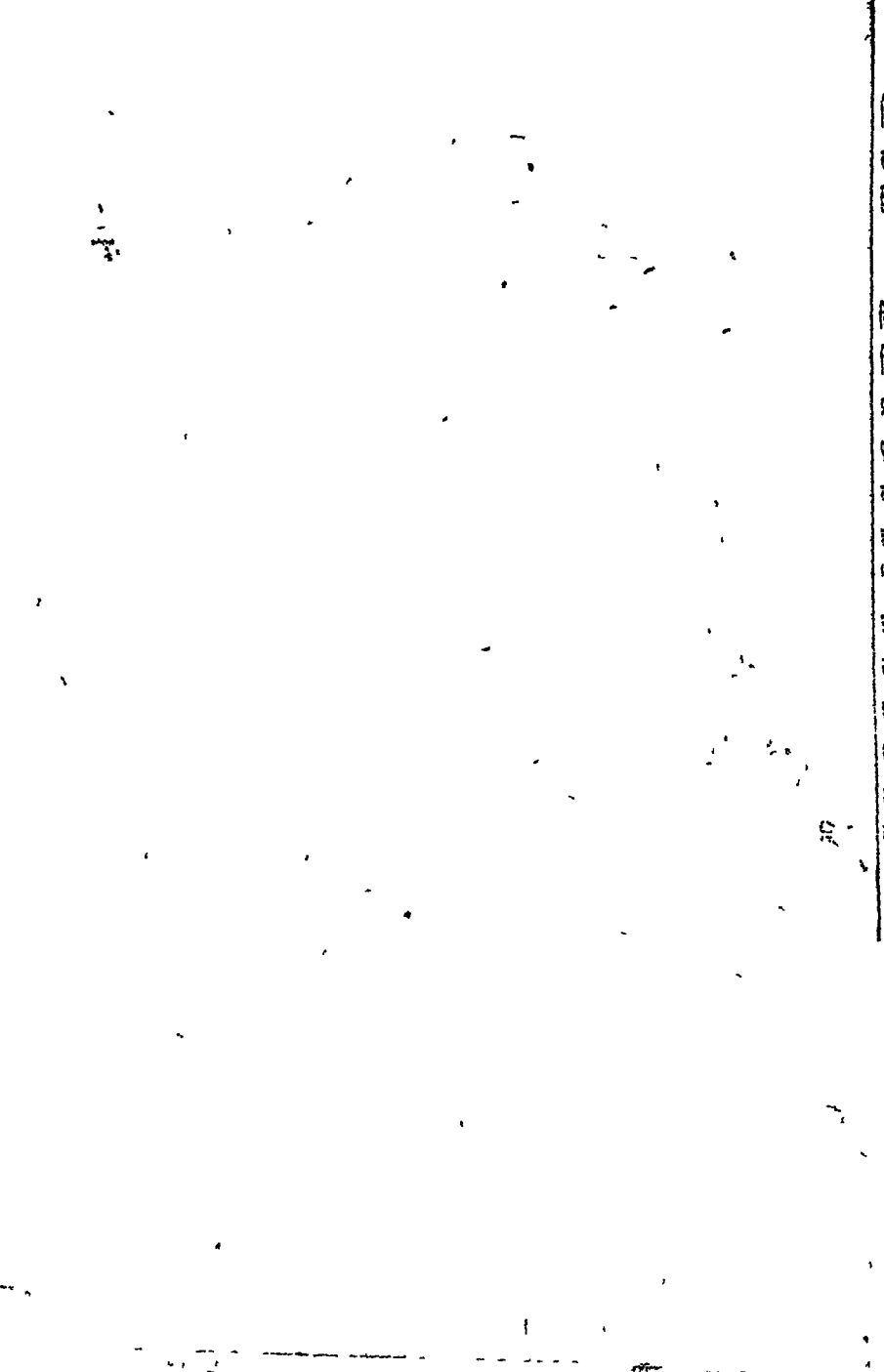
विश्वासघातक थी, परन्तु प्रशिया की वृद्धि में जर्मनी का सामर्थ्य था—और इन दोनों से आस्ट्रिया की अवनति सुनिश्चित थी।

२—प्रशिया के राजा विलियम प्रथम

१८५८ में कुमार विलियम ने अपने ज्येष्ठ भ्राता फ्रेडरिक विलियम की अस्वस्थता के कारण उसका प्रतिनिधित्व स्वीकार किया और तीन वर्ष के अनन्तर भाई की मृत्यु होने से प्रशिया का राजा बन गया—जिससे राजसत्ता मे एक महान् परिवर्तन हुआ। यह एक साहसी, सच्चरित्र, धार्मिक और यथार्थवादी प्रशिया का सैनिक ही नहीं, अपितु दृढ़ संकल्प और प्रत्यत्त माध्यम विश्वासी शासक था। इसका कथन था—"जर्मनी को जो आधीन बना कर शासित करना चाहता है, उसे स्वयं को यत्न करना पड़ेगा"। संपूर्ण जीवन मे ही यह उदार-नीति के विपरीत था—इसके कोई स्थिर सिद्धान्त नही थे। यह समय और परिस्थिति के अनुसार शासन पद्धति में आमूल परिवर्तन का पक्षपाती था। विपत्ति में निर्भीकता, स्पष्टवक्तृता, दृढ़ता और नम्रता इन संपूर्ण विशेषताओ का इसकी नीति में संकलन था। जर्मन ऐतिहासिक भॉन सीबैल का कथन है—"सम्भव और असंभव के निर्णय एवं मानव चरित्र के अन्तस्तल तक पहुँचने की इसमें अद्भुत क्षमता थी"। योग्य राष्ट्र के लिए योग्यतम अधिकारियों की नियुक्ति व उन पर शक्ति और बुद्धि के माध्यम से पूर्ण विश्वस्तता इसका अद्वितीय गुण था—जिसने जर्मनी के पुनरुत्थान में पूर्ण योग दिया। इसकी देनों को हम बिस्मार्क के चरित्र में देखेंगे।

३—बिस्मार्क की नियुक्ति

आल्मूज के आत्म—समपर्ण के पश्चात् दुर्बल मन्त्री मैन्ट्यूफैल को पदच्युत किया गया एव सहिष्णु दल ने वैधानिक भित्ति पर जर्मनी की एकता करने के

उद्देश्य से प्रशिया के मन्त्रि मण्डल का निर्माण किया। जर्मन राज्य की ऐसिनाक कांग्रेस में जर्मन की राष्ट्रीयता व एकता के लिए उसनें कार्यक्रम प्रस्तुत किया। प्रतिनिधित्त्व की अपेक्षा प्रशिया की सामरिक शक्ति में इसे अधिक विश्वास था। बन्दूक से ही आल्मूज की संधि का भंग और जर्मनी का संगठन हो सकता है। इसी लिए इसने भॉन मोल्टके को प्रेशया का सेनानायक व भॉन रून को युद्ध मन्त्री नियुक्त किया। १८५९ की शीतकालीन प्रशिया की लोक सभा में एक अधिनियम प्रस्तुत किया गया– जिसमें ३९ नवीन पदाति और १० अश्वारोही सैनिक दलों के प्रवेश की मांग थी। लोकसभा ने इसे अस्वीकार कर दिया, परन्तु निर्भीक राजा (२ जनवरी १८६१ का पद ग्रहण) ने विधान की अवहेलना और नियम के बिना स्वीकार हुए ही सेना-प्रवेश प्रारम्भ करा दिया। सहिष्णु दल ने राजा के अधिकारों के विरुद्ध पद त्याग कर दिया। राजसत्ता के विपरीत तीव्र प्रतिवाद होने लगे व वजट को अस्वीकार कर दिया गया। इसी समय युद्ध मन्त्री रून ने भर्न बिस्मार्क को—जो कि पेरिस में राजदूत था–आमंत्रित कर मन्त्रिमण्डल के अध्यक्ष बनाने का परामर्श दिया। २३ सितम्बर १८६२ में इसी परामर्श के अनुसार बिस्मार्क मन्त्रिमण्डलीय नेता के रूप में नियुक्त हुआ। राजा विलियम ने एक साहसी दृढ़ संकल्पशील, कुशल राजनैतिक और सर्वोच्च कूटनैतिक को प्रशिया के भविष्य निर्माण की बागडोर सौंप दी—जिस से यूरोप के इतिहास में एक नवीन युग की सृष्टि हुई।

४—बिस्मार्क की नीति

संघर्षप्रिय और एकतंत्रवादी बिस्मार्क की नियुक्ति ने राजतंत्र के विरोधियों को दुर्बल बना दिया था। बिस्मार्क ने जर्मनी की महत्त्वपूर्णसमस्या का निर्णय केवल "भाषणों और बहुमतों से

ही नहीं होगा परन्तु शक्ति और रक्तपात के द्वारा होगा। जर्मनी प्रशिया की उदार नीति पर निर्भर नहीं करता, अपितु उसकी शक्ति पर आधारित है"। यह नवीन राजनैतिक दर्शन अपनी घोषणा द्वारा अभिव्यक्त किया-जिसका आज भी पश्चिम जगत के राजनैतिक कोष में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह अलंकारपूर्ण शब्द रचना एक भयानक राजनैतिक अस्त्र था-जिसके अन्तस्तल तक बिना पहुँचे ही विद्रोही-दल शब्द-प्रयोग के विरुद्ध प्रतिवाद करने लगा। लोकसभा और मंत्री का संबन्ध विच्छिन्न हो गया। बिस्मार्क ने "अलंकित शब्दमय भवन" कहकर लोकसभा की निन्दा की। बिस्मार्क के विपरीत व्यक्तिगत विरोधिताएं इतनी उभरी हुई थीं कि इन्हे अपनी संपत्ति तक को भाई के नाम करा देने का परामर्श दिया गया। बिस्मार्क ने अपनी नीति के सम्बन्ध मे कहा—"जनता जिस पर थूकती है—वही हमारा राजनैतिक मार्ग है। प्रायः लोग हम से यह आशा रखते है कि हम प्रशिया की उन्नति के लिए विभिन्न तंतुओं को संचित कर रज्जु बनायेंगे"। इसने अपने एक शक्तिशाली प्रतिद्वंद्वी को द्वन्द्वयुद्ध की चुनौती दी, किन्तु उसने अस्वीकृत कर दिया। ४ वर्ष तक (१८६२—१८६६) इसने लोकसभा और जनता के विरुद्ध अटलता और दृढता के साथ संग्राम किया एव राजसत्ता का समर्थन और रूस के परामर्श ही इसके एकमात्र सहायक थे। २८ वर्ष तक यह जर्मनी का सर्वसत्ताधिकारी था-जिसमें प्रारंभिक ६ वर्षों के काल मे इसने ३ महायुद्ध लडे। आस्ट्रिया को जर्मनी से बहिष्कृत कर दिया, प्रशिया राजतंत्र के नेतृत्व में जर्मन साम्राज्य की स्थापना की व सहिष्णु दल को शान्त कर दिया। प्रशिया की समस्या को इसने संपूर्ण जर्मनी पर डाल दिया और आंतरिक विवादों के व्रण को राष्ट्रीय विजय के मरहम से स्वस्थ किया। इसके

पास न कोई निश्चित रचनात्मक राजनैतिक कार्यक्रम था और इसकी नीति और चरित्र जटिल और प्रतिवादपूर्ण थे। यह स्वाधीन, अभिमानी साहसी दृढ संकल्प व संघर्ष प्रिय व्यक्ति था। जितनी इसकी क्षुधा थी-उतनी ही उसकी तीक्ष्ण दृष्टि थी। इसकी अभिलाषा और प्रतिभा जितनी अधिक महान् थीं, शरीर भी उतना ही अधिक मोटा ताजा था। प्रो० कैटिलबी ने कहा है—"यह राजनीति का एक ऐसा कलाकार था-जो अपनी इच्छा के अनुसार प्रत्येक वस्तु को बनाता था। यह साधनो के क्षेत्र में अवसरवादी था-उद्देश्यों का नहीं। सूक्ष्म दृष्टि से यह सुयोग का लाभ उठाता था और नियत निर्णयों का वह निस्संकोच और असदिग्ध रूप से उपयोग कर अपने अभीष्ट को सिद्ध करता था"। नियुक्ति के साथ ही प्रशिया के नेतृत्त्व में जर्मनी का संगठन इसका ध्येय हुआ-और आस्ट्रिया की पराजय उसी का एक प्रधान अंग था। मंत्रिमंडल के नेता बन ने से पूर्व इंग्लैण्ड मे परीभ्रमण करते हुए इसने कहा था-"जैसे ही प्रशिया की सेना शक्तिशाली और संगठित हो जायेगी, हम आस्ट्रिया के साथ जर्मनी के प्राचीन ऋण का भुगतान लेंगे—एवं जर्मनी के राज्य संघों को भंग कर स्वतंत्र जर्मनी का निर्माण करेंगे"। सबने इसे मिथ्या पूर्ण धमकी समझा, किन्तु दूरदर्शी डिसराईली ने सत्य ही कहा था—"इम से (बिस्मार्क से) सतर्क रहो, यह जो कहता है-वही करता है"। जर्मनी के साम्राज्य संगठन के विभिन्न अध्यायों का अब हम अध्ययन करेंगे।

(५) पोलैण्ड की समस्या

प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय समस्या १८६३ का पोलैण्ड का प्रथम विप्लव था—जिसका विवरण हम रूस के वर्णन मे पा चुके हैं। बिस्मार्क ने कहा—"पोलैण्ड की समस्या जर्मनी के जीवन मरण का प्रश्न है। क्या स्वाधीन पोलैण्ड प्रतिवेशी प्रशिया का

डैनजिग और थार्न पर अधिकार स्वीकार करेगा ? पितृभूमि के स्वार्थों को पर राष्ट्र के हितों पर बलिदान करना—जर्मनी का एक विचित्र राजनैतिक रोग है"। कुशल बिस्मार्क आस्ट्रिया को पराजित करने के लिए रसिया की सहायता चाहता था। पोलैण्ड के विप्लव के सुयोग से उसने अलैग्जेण्डर के साथ एक सन्धि की और आश्वासन दिया कि पलायित पोलैण्ड विप्लवियों को प्रशिया में आश्रय नहीं देंगे और न किसी प्रकार की सहायता ही उन्हें यहाँ से मिलेगी। विक्षुब्ध विप्लवी समिति ने बिस्मार्क को मृत्युदण्ड घोषित किया परन्तु रसिया की मित्रता को बिस्मार्क ने क्रय कर लिया था।

प्रतिक्रियावादी आस्ट्रिया ने जर्मन राज्यों के सुधार के लिए फ्रैंकफर्ट नगर में जर्मनी के नरेन्द्र मंडल का एक अधिवेशन आमंत्रित किया। फ्रांसिस् जोशेफ ने प्रशिया के राजा विलियम को व्यक्तिगत रूप से निमंत्रित किया परन्तु दूरदर्शी बिस्मार्क यह जानता था कि यह चतुर आस्ट्रिया की जर्मनी पर प्रभुता स्थापित करने की एक नवीन चाल थी। राजा विलियम और उसकी रानी आमंत्रण को स्वीकार करने के पक्ष मे थे, किन्तु चतुर बिस्मार्क ने उसे अस्वीकार करने का परामर्श दिया। राजा और बिस्मार्क में अत्यन्त वाद-विवाद होने पर अनेक तर्कों के पश्चात् मंत्री के त्याग-पत्र की धमकी से उसने आमंत्रण को अस्वीकार करने का निर्णय किया। इस घटना का विवरण करते हुए बिस्मार्क अपनी आत्मकथा मे लिखता है—"जब प्रस्ताव को अस्वीकार करने के लिए हमने राजा को बाध्य किया तो मेरे ललाट मे पसीना आ गया और मैं अत्यन्त उत्तेजित हुआ"। अस्वीकार करते हुए राजा के आँसू आगये और बिस्मार्क ने विक्षोभ से भवन के कांच तोड दिये। प्रशिया की अस्वीकृति से आस्ट्रिया की प्रचेष्टाऐं विफल हो गई। प्रो०ग्रान्ट

रॉवर्ट्सन कहता है–"प्रशिया के एक शब्द में जर्मनी पर आस्ट्रिया की प्रभुता करने की प्रचेष्टा ही लीन नहीं हो गई, अपितु उसकी योजना ही अब नाम विशेष रह गई"। आस्ट्रिया के साथ प्रशिया के युद्ध का बीज वपन हो गया।

६—स्क्लेशविग–हाल्स्टीन का प्रश्न

स्क्लेशविग–हाल्स्टीन का प्रश्न एक जटिल समस्या थी। पामर्स्टन ने कहा था–"केवल तीन व्यक्ति ही इस समस्या को समझते हैं–(१) महारानी विक्टोरिया के स्वर्गीय स्वामी, (२) जर्मन अध्यापक–जो उस समय एक मस्तिष्क चिकित्सालय में था, (३) एक मैं स्वयं"–परन्तु पामर्स्टन ने भी अन्त में स्वीकार किया कि "मैं भी इसे भूल गया"। डेन्मार्क के राजा इन दोनों स्थानों का अधिपति था, यद्यपि उस राष्ट्र का इन से कोई प्राकृतिक सम्बन्ध नहीं था। ये दोनों राज्य पृथक् पृथक् रूप से डेन्मार्क के राजकीय परिवार में सम्मिलित थे और प्रत्येक राज्य में उत्तराधिकारी के नियम और सम्पत्ति विभिन्न थीं। किन्तु पृथक् पृथक् रूप में इनका विक्रय अथवा हस्तान्तरण नहीं हो सकता था न राजा इन्हें स्वयं के राज्य में ही प्रत्यक्षतः लीन कर सकता था। स्क्लेशविग से जर्मन राज्यसंघ का कोई संबन्ध नहीं था, परन्तु हाल्स्टीन जर्मन राज्य संघ का सदस्य था और डेन्मार्क के राजा को भी राज्य संघ में एक आसन प्राप्त था। हाल्सटीन के अधिवासी अधिकतः जर्मन थे और स्क्लेशविग डेनमार्क निवासियों की प्रचुरता थी। डेन्मार्क निवासी इसे डेन्मार्क के अधीनता में और जर्मनी अपने के आधिपत्य में रखना चाहते थे। यह समस्या राष्ट्रीयता का प्रश्न और उत्तराधिकारी के निर्णय का विवाद था।

१८४८ में डेन्मार्क के राजा फ्रेडरिक सप्तम ने (१८४८ से

१८६३) अपने राज्य के लिए जब एक नवीन संविधान की घोषणा की, तो जर्मन प्रजा ने जर्मनी के समर्थन और अस्त्र शस्त्रों के प्रोत्सान से विद्रोह कर दिया । इसी समय यूरोप के प्रमुख राष्ट्रों ने हस्तक्षेप किया व प्रसिद्ध लंडन की संधि को (१८५२) इस समारोह के हल के लिए स्वीकार किया। इसकी शर्तों के अनुसार डेन्मार्क राष्ट्र की "एकता और अखंडता" की घोषणा की और ग्लाक्सबर्ग के क्रिश्चियन नवम को उत्तराधिकारी निर्णीत किया। डेन्मार्क के राजा ने जर्मन निवासियों को नागरिक अधिकार प्रदान और सांस्कृतिक रक्षा का आश्वासन दिया। किन्तु अल्पकाल में ही यह प्रतीत हुआ कि डेन्मार्क के नरेन्द्रों–फ्रेडरिक और क्रिश्चियन नवम–की कामना जर्मन प्रजा को दमन कर उसका डेन्मार्की–करण में है । १८६३ मे स्क्लेशविग को पूर्णतः डेन्मार्क के अधीन कर हाल्सटीन के हस्तगत करने की पृष्ठभूमि तैयार की । इसी समय फ्रेडरिक सप्तम की मृत्यु हुई और क्रिश्चियन नवम राज्यासीन हुआ। इन अधिकारों से जर्मनी में महान् विक्षोभ हुआ–क्योंकि नवीन सम्राट् ने भी उसी नीति पर चलना प्रारम्भ किया। जर्मन राज्य संघ ने (दिसम्बर) अपनी सेना द्वारा हाल्स्टीन पर अधिकार करके स्वर्गीय फ्रेडरिक सप्तम के पुत्र को फ्रेडरिक अष्टम के नाम से दोनों राज्यों का अधिपति घोषित कर दिया।

महत्त्वाकांक्षी बिस्मार्क इन दोनों राज्यों को प्रशिया में लीन करना चाहता था व इसकी पूर्ति के लिए आस्ट्रिया के प्रधान मन्त्री काउण्ट रेचबर्ग के साथ इसने एक गुप्त संधि की जिसकी शर्तों के अनुसार आस्ट्रिया और प्रशिया जर्मन राज्यों के हस्तक्षेप के बिना युक्त रूप से इस समस्या का समाधान करेंगे। इनने डेन्मार्क को १८६३ के नवीन विधान को ४८ घंटे के अन्दर अन्दर निषिद्ध करने की चुनौती दी। इंग्लैण्ड की

सहायता पर निर्भर और दुर्बल डेन्मार्क ने अल्पकाल के कारण लोकसभा को सम्मति के बिना विधान के परिवर्तन में असमर्थता प्रकट की। परिणामतः युद्ध प्रारम्भ हो गया व १५ दिन के मध्य में ही यह युक्त सेना दोनों छोटे राज्यों को अधिकृत कर डेन्मार्क की ओर बढने लगी। इंग्लैण्ड के प्रधान मंत्री पामर्स्टन ने—जिसने कि पहले कुटिलता से कहा था—"कोई भी वैदेशिक शक्ति डेन्मार्क के अधिकारों में हस्तक्षेप नहीं कर सकेगी"—लंडन में (अप्रेल–जून १८६४) एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया। चतुर बिस्मार्क ने डेन्मार्क के राजा का आस्ट्रिया के समर्थन को इस निमित्त से प्रसिद्ध किया कि "डेन्मार्क का कुशासन जर्मनी में घृणित है"। बिस्मार्क ने महासभा के अधिवेशन में इन दोनों राज्यों पर जर्मनी की प्रभुता का इतना तर्क वितर्क के साथ दावा किया कि सम्मेलन किसी निर्णय तक नहीं पहुंच सका। लार्ड क्लारेण्डन प्रशिया के दूत को सत्य ही कहा था—"आप जब आये थे तब भी अधिवेशन के नेता थे, और जब जा रहे हैं, तब भी है"।

प्रशिया और आस्ट्रिया ने पुनः डेन्मार्क के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ करके डेन्मार्क को पराजित कर दिया, परन्तु विजयी प्रशिया और आस्ट्रिया की सेना ने स्क्लेशविक–हालस्टीन में जब प्रवेश किया, तो अधिकार के लिए उनमें परस्पर विवाद खड़ा हो गया। इस पर आस्ट्रिया के राजदूत से बिस्मार्क ने कहा—"हम दोनों इन दोनों राज्यो के सामने खड़े हैं, जिस प्रकार एक सुन्दर परोसी हुई थाली के सामने दो अतिथि प्रीति-भोज मे खड़े होते हैं। उनमें एक—जिसे कम बुभुक्षा होती है—अत्यन्त क्षुधार्त को खाने से रोकता है"। इस संघर्ष को मिटाने के लिए दोनों राष्ट्रों के मध्य गैस्टीन की संधि हुई—जिसके अनुसार दोनों राज्यों पर युक्त अधिकार स्वीकार किया गया,

किन्तु प्रशिया स्क्लेशविग और आस्ट्रिया हाल्स्टीन पर साक्षात् प्रभुत्त्व रखेगा। यह स्मरण रहे कि भौगोलिक सीमाओं में हाल्स्टीन प्रशिया के निकट और आस्ट्रिया से दूर था। हाल्स्टीन में भी कील बन्दरगाह का नियंत्रण, नहर खनन करने का अधिकार और प्रशिया के आगम संघ मे हाल्स्टीन का विलय आदि विशेष अधिकार प्रशिया को दिया गया। इस प्रकार ही बिस्मार्क जर्मन साम्राज्य के संगठन के उद्देश्य से प्रथम युद्ध द्वारा प्रशिया की सीमा में ही वृद्धि नहीं की, अपितु आस्ट्रिया के साथ युद्ध के बीज बो दिये।

७–आस्ट्रिया का युद्ध

बिस्मार्क का प्रधान उद्देश्य जर्मनी से आस्ट्रिया को वहिष्कृत करना था। उपर्युक्त समाधान उसी का एक सोपान था। बिस्मार्क ने कहा– "हमने छोटे छोटे गड्ढों को भर दिया। परन्तु वस्तुतः उसने उन्हे और भी गम्भीर बना दिया। हस्तक्षेप का सुयोग आस्ट्रिया ने दिया। आस्ट्रिया प्रशिया के विरुद्ध प्रचार करने लगा। गैस्टीन के समझौते को भंग कर यह घोषित किया कि इन दोनों राज्यों की समस्या का हल जर्मनी का राज्य संघ करेगा। वस्तुतः यह बिस्मार्क की नीति का ही प्रतिफलन था। जिस दिन से यह प्रशिया का प्रधान मन्त्री बना, आस्ट्रिया को इसने आगम संघ मे प्रविष्ट नहीं दिया। आस्ट्रिया के विपरीत इटली की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर इसने एक व्यावसायिक संधि की, पोलैण्ड के विद्रोह में रूस को समर्पित किया व अन्त में वह जर्मन राज्य संघ के सुधार का दावा करने लगा–जिसमें आस्ट्रिया का वहिष्कार और सार्वजनिक मताधिकार से निर्वाचित जर्मन लोक-सभा की स्थापना प्रमुख थे।

बिस्मार्क ने कूटनीति द्वारा आस्ट्रिया को यूरोप के समक्ष

राष्ट्रों की मित्रता से वंचित कर दिया। यह जब रसिया में राजदूत था, तो क्रीमिया के युद्ध व पोलैण्ड के विद्रोह में राजनैतिक शतरंज को इतनी कुशलता के साथ खेला कि रसिया इस विषय में आस्ट्रिया का समर्थन नहीं करेगा, यह सुनिश्चित हो गया था। पेरिस में राजदूत रहने के काल में फ्रांसीय सम्राट् को भी इसने प्रभावित किया और उसे दृढ़ करने के लिए बियारिट्ज में नेपोलियन से साक्षात्कार किया। वेल्जियम और राइन प्रदेश में क्षतिपूर्ति का आश्वासन देकर इसने फ्रांसीय सम्राट् को निष्पक्ष बना दिया। इटली के साथ भी जैसा हम देख चुके हैं—आस्ट्रिया द्वारा अधिकृत वैनेशिया प्रदेश देने का आश्वासन देकर संधि की (८ अप्रेल १८६६) इटली ने सामरिक सहायता देने का भी वचन दिया, यदि जर्मनी तीन मास के अन्दर अन्दर युद्ध घोषणा कर दे। यह सन्धि पारस्परिक रक्षा व संदेह से पूर्ण थी"।

संघर्ष के निमित्त तयार करने के लिये बिस्मार्क जर्मन राज्यों का पुनर्गठन और सेना में वृद्धि करने लगा। इसी समय एक युवक ने विस्मार्क की हत्या का असफल प्रयत्न किया, यदि वह सफल हो जाता तो आस्ट्रिया की पराजय नहीं होती।

युद्ध प्रारम्भ होते ही प्रशिया ने, माल्टो के नेतृत्व में बोहामिया पर आक्रमण किया, एवं आस्ट्रिया की द्विगुणित सेना को जुलाई १८६६ में सैडोवा अथवा कोनिगराट्स में ध्वस्त कर दिया। २४ हजार आस्ट्रिया सैनिकों को बंदी बना लिया गया। इटली में आस्ट्रिया पराजित हो गया। प्रशिया ने आस्ट्रिया के साथ प्राग की संधि (२३ अगस्त १८६६) की—जिसकी शर्तों के अनुसार आस्ट्रिया ने वैनेशिया प्रदेश इटली को व प्रशिया को ४ करोड़ रुपये युद्ध की क्षति पूर्ति के रूप में दिये। पुरातन जर्मन राज्य संघ को भंग कर दिया गया व प्रशिया के नेतृत्त्व

में उत्तर जर्मन राज्यों के संघ बनाने को स्वीकार किया गया—जहां आस्ट्रिया का कोई भाग नहीं रहेगा। प्रशिया ने स्कलेशविग-हाल्स्टीन, हैनोवर, हैसी-नासाऊ, फ्रेंकफर्ट आदि २८ हजार वर्गमील पर अधिकार कर लिया।

(क) युद्ध का परिणाम

प्राग की संधि जर्मन संगठन का एक महत्वपूर्ण सोपान है। प्रथमतः, इस संधि से उत्तर जर्मन राज्य संघ का निर्माण हुआ—जिसके संचालन के लिए निर्मित संविधान ने "संघीय-सदन" की व्यवस्था की—इसके ४३ सदस्यों में १७ प्रशिया के थे। इस से स्पष्ट होता है कि एक दो राज्यों के सामान्य समर्थन से बहुमत प्रशिया का सुरक्षित था। इसी प्रकार विभिन्न राज्यों के व्यक्तिगत स्वार्थों को राष्ट्र के हित में समर्पित करने के उद्देश्य से निर्वाचित लोकसभा (राइकस्टाग) पुरुष मतदाताओं द्वारा संगठित की गई। द्वितीयतः, जैसा कि कैटिलवी ने कहा है—"जब प्रशिया की विजय हुई तो प्रशिया-वाद की भी विजय हुई—अर्थात् सामरिक राष्ट्र विजयी राष्ट्र हुआ और सामरिक राष्ट्रपति का ही जनता समर्थन करने लगी"। तृतीयतः, प्रशिया के विजय से बिस्मार्क और उसकी एकतंत्रात्मक नीति की प्रतिष्ठा बढी। इसी समय अमेरिका का गृह युद्ध भी हुआ, परन्तु राष्ट्रपति लिंकन सफल प्रजातंत्रात्मक नीति से विजयी हुआ। चतुर्थः, आस्ट्रिया का जर्मनी से सम्बन्ध छिन्न हो गया और गेरी के साथ आस्ट्रिया की मैत्री "असालीक" की स्थापना से दृढ हो गई। आस्ट्रिया का साम्राज्य "आस्ट्रिया-हंगेरी" के रूप में द्वैध राजतंत्र हो गया। सम्राट् एक ही था, पर वही हैंगेरी का राजा भी था। इन दोनों देशों की विभिन्न राजधानी, लोकसभा और आंतरिक प्रशासन पद्धति थी। पंचमतः, युद्ध से इटली को पर्याप्त लाभ ...

... रुष्ट कर

...पक्ष बना

डाल्मेशिया और इस्त्रिया को छोड कर समग्र वैनेशिया प्रदेश इटली को प्राप्त हो गया।

(८) फ्रांस और जर्मनी के युद्ध के कारण

बिस्मार्क ने एक बार स्वयं कहा था—"फ्रांस के साथ युद्ध इतिहास की एक अनिवार्य युक्ति है"। दक्षिण राज्यों के मिलाने के बिना जर्मन संगठन अपूर्ण था--जिसकी प्रमुख बाधा फ्रांस था। इसीलिए यह कहना अत्युक्ति नहीं कि फ्रांस और प्रशिया का युद्ध १८६६ से ही आन्तरिक रूप से प्रारम्भ हो गया था।

प्रशिया की विजय ने फ्रांस की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा पर बाधा ही नहीं पहुंचाई, अपितु राष्ट्रीय महत्ता पर एक महान् आघात किया। ऐतिहासिक डी,ला, गर्शे का कथन है कि "फ्रांस वासियों के मन में बिना युद्ध के ही एक प्रकार की पराजयात्मक भावना प्रेरणा देने लगी और ये समझने लगे कि अब यूरोप मे उनका प्रभाव हीन हो गया है"। गणतांत्रिक नेता थीयर्स ने कहा-"सैडोवा के युद्ध में आस्ट्रिया की नहीं, फ्रांस ही की पराजय हुई है"। फ्रांसीय निम्नता के प्रदर्शन से जर्मनी अत्यन्त रुष्ट था, उसने उपर्युक्त उक्ति को असंगत माना। परन्तु नेपोलियन प्रथम के घाव को जर्मनी अभी भर नहीं पाया था। फ्रांस अनेक वर्षों से जर्मनी को दुर्बल और विभाजित रखने की नीति पर था। यह निर्णय करना असंभव है कि इनमें कौन ठीक मार्ग पर था। एमिल लडविग ने बिस्मार्क के जीवन चरित्र में सत्य ही कहा है—"जब तक यूरोप में नेतृत्त्व और आधिपत्य शक्ति और संधि की भावना रहेगी, तब तक एक राष्ट्र बिना युद्ध के अन्य राष्ट्र को संगठित नहीं होने देगा"।

फ्रांस ने आस्ट्रिया और प्रशिया के युद्धकाल मे निष्पक्षता के मूल्य रूप में लक्सेम्बर्ग का जब दावा किया तो विरोध का श्रीगणेश हो गया। परन्तु लंडन की संधि (१८६७) में लक्से- जर्मन रा

म्बर्ग को यूरोप के शक्तिपुंज ने एक अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा समिति का निर्माण कर निष्पक्ष घोषित कर दिया। थीयर्स ने फ्रांसीय लोकसभा में भाषण दिया—"जर्मनी का संगठन आगे नहीं बढना चाहिए"। नेपोलियन ने कहा—"बिस्मार्क ने मुझे प्रतारित कर यूरोप के समक्ष अपमानित किया"। इस वातावरण में युद्ध अनिवार्य हो गया।

स्पेन की उत्तराधिकारिता का निर्णय युद्ध का तात्कालिक कारण बना। जर्मनी के दक्षिण राज्य का कुमार लियोपोल्ड स्पेन के शासक बनने के लिए आमंत्रित किया गया। यह मुराट का पौत्र था--इसके संबन्ध में यह आशा थी कि फ्रांस और प्रशिया दोनों प्रसन्न रहेगे। सम्राट् नेपोलियन तृतीय ने उसे प्रशिया के स्पेन पर आधिपत्य करने की एक योजना बताया। मार्च १८७० में बर्लिन मे बिस्मार्क की अध्यक्षता मे इस समस्या का निर्णय किया गया। कुमार लियोपोल्ड ने फ्रांस को संतुष्ट करने के लिए राजा बनाना अस्वीकृत किया। फ्रांस ने प्रशिया के राजा से यह दावा किया कि वे यह प्रतिज्ञा करें कि भविष्य में कोई भी उनके वंश का व्यक्ति स्पेन का शासक नही बनेगा।। एल्म्स में जुलाई १३ को फ्रांस के राजदूत के साथ राजा विलियम प्रथम का वार्तालाप हुआ और यह समस्त विवरण बिस्मार्क को तार द्वारा सूचित कर दिया गया। विस्मार्क ने फ्रांस की इस राजनैनिक हीनता को अतिरंजित करके द्वयर्थक बनाकर प्रचार किया। फ्रांस वासियो की दृष्टि में इसे उनके दूत की अवमानना और जर्मन वासियों के समक्ष यह एक असंगत दावा था—अतः दोनो का विक्षोभ स्वाभाविक हो गया। नेपोलियन तृतीय की बेल्जियम विजय योजना का प्रचार कर इसने इंग्लैण्ड को फ्रांस से रुष्ट कर दिया एवं इटली को रोम प्रदान का लोभ देकर निष्पक्ष बना

दिया। रसिया और आस्ट्रिया तो मित्र थे ही। संक्षेप मे इसने अपने कूटनीतिक कौशल से फ्रांस को यूरोपीय राष्ट्रसंघ से असहायकर युद्ध घोषणा कर दी। द्रुत गति से ४॥ लाख सेना के साथ जर्मनी एल्सस् प्रदेश में प्रविष्ट कर वीसेन्बर्ग और स्पीचेरेन के युद्ध में फ्रांस को पराजित कर लोरेन में पहुँचा। प्रशिया के राजकुमार ने फ्रांसियों को वर्थ के युद्ध में ध्वस्त किया। इस पराजय से फ्रांस के ओलीवर मंत्रिमंडल ने पदत्याग कर दिया। सीडान के युद्ध में (७ सितंबर १८७०) अनेक तोपों और अस्त्रशस्त्र सज्जित ८०,००० फ्रांसीय सेना के साथ नेपोलियन तृतीय ने आत्म समर्पण किया।

फ्रांस पुनः गणतंत्र हो गया और नवीन अस्थायी प्रशासन ने युद्ध को चालू रखा। जर्मन सेना राजधानी की ओर अग्रेसर हुई और फ्रांसीय शासन पेरिस छोड़कर तूर्स में चला गया। १६ सितम्बर को पेरिस परिवेष्टित हो गया। इसी समय उग्रगणतांत्रिक गैम्वेटा बेलून में चढ़ कर पेरिस के बाहर आया व शत्रु के प्रतिरोध के लिए जनता का अधिनायक बन गया। समग्र राष्ट्र—गैरीवल्डी और उसका लडका भी—सेना में प्रविष्ट हो गये। मेज और स्ट्रास्वर्ग का पतन हुआ। जनवरी १८७१ में भरसालिस के प्रासाद में प्रशिया के राजा विलियम प्रथम को जर्मनी के नवीन साम्राज्य का 'सम्राट्" घोषित किया। इसके पश्चात् पेरिस का पतन हो गया और अस्थायी प्रशासन के प्रतिनिधि थीयर्स और विस्मार्क में संधि शर्तों के लिए साक्षात्कार हुआ—जिसमें फ्रेंकफर्ट की निम्न 'संधि (१० मई १८७१) शर्तें निश्चित की गई। फ्रांस ने अपने मूल्यवान् आल्सस्-लोरैन प्रदेश को—जिसमें मेज और स्ट्रास्बर्ग नगर था, परन्तु बेलफोर्ट नहीं था (जिसकी परिधि ५ हजार वर्ग मील और जनसंख्या १६ लाख थी)—प्रशिया को दे दिया। तीन वर्ष

में क्षति पूर्ति के रूप में २० करोड़ पौंड चुकाने का निर्णय किया व जब तक यह नहीं पूर्ण करेगा—तब तक प्रशिया की सेना फ्रांस मे रहेगी।

(क) युद्ध के परिणाम

फ्रांस के पराजय से जर्मनी यूरोप का नेता और बिस्मार्क जर्मनी का सर्वेसर्वा बन गया। इससे दक्षिण जर्मनी का राज्यसंघ मे सम्मिलित हो गया और उत्तर जर्मनी राज्य संघ सम्पूर्ण जर्मनी का राज्य संघ बन गया। जर्मन दार्शनिक और लेखक, कवि और ऐतिहासिक, सेना और कूटनीतिक सबने सम्मिलित होकर जर्मनी को तीनो युद्धों की विजय द्वारा स्वतन्त्र राष्ट्र बना लिया। जर्मनी के आॅल्सस लोरेन प्रदेश पर अधिकारो ने फ्रांसीय जनता के हृदय में एक प्रतिशोधात्मक भावना की सृष्टि की—जो प्रथम महायुद्ध का कारण हुआ। आॅल्सस् लोरेन पर किसका अधिकार युक्तियुक्त है—यह कहना सहज नही है। आॅल्सस् में अधिकांश जनता जर्मनी व लोरेन में फ्रांसीय है। यह प्रतीत होता है कि जो युद्ध में विजय होता है—उसीका अधिकार संगत होता है। सीडान की विजय ने रोम की प्रभुता से इटली की स्वतन्त्रता को पूर्ण कर दिया। फ्रांस पुनः गणतन्त्र बन गया और राज सत्ता व बोनापार्टी दल का चिरंतन अवसान हो गया। इस विजय से उल्लासित होकर रूस ने पेरिस संधि द्वारा नियंत्रत कृष्ण समुद्र के यातायात् प्रतिबन्ध को भंग कर दिया। संक्षेप में प्रशिया के विलियम प्रथम तत्कालीन महत्ताम सम्राट् थे और बिस्मार्क अद्वितीय कूटनीतिक था। नेपोलियन तृतीय इंग्लैण्ड के केन्ट ग्राम में निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहा था।

६—जर्मनी के निर्माता बिस्मार्क

आॅटो भॉन बिस्मार्क—जिसका जीवन १८१५ से १८९८

तक के अंश को व्याप्त करता है—१६वीं शताब्दी का महान्तम व्यक्ति था। यह राजनैतिक प्रकाश और पूर्णता से सम्पन्न था। सफलताओं से ही यदि किसी व्यक्ति की महत्ता का निर्णय होता है, तो विस्मार्क के शत्रु तक उसे विश्व का महान् पुरुष कहेंगे। इसका व्यक्तित्व जितना ही चमत्कारपूर्ण था—उतनी ही अद्वितीय राजनैतिक कुशलता भी। प्रशिया को इसने एक साम्राज्य और उपनिवेश दिया—जर्मनी को इस ने एक ऐसी पताका दी जिसका आज भी पृथ्वी के बड़े बड़े राष्ट्र सम्मान करते हैं। जर्मन राज्य की स्थापना ही इसकी देन नहीं थी, किन्तु यूरोप के राजनैतिक केन्द्र को इसने वियाना से बर्लिन में खेंच लिया था।

(क) *जीवन*:—ब्रान्डेनवर्ग के आल्टमार्क स्थान में एक कुलीन परिवार में इसका जन्म हुआ था। बाल्यावस्था में यह शिकार सामरिक शिक्षा अश्वारोहण और जल मन्तरन आदि की शिक्षा प्राप्त की। गटीन्ज़ेन और बर्लिन विश्वविद्यालय में इसके तीन वर्ष द्वन्द्व युद्ध, संघर्ष, वादविवाद और मद्यपान में बीते—मानसिक और मस्तिष्क के विकास में नहीं। अल्प समय के न्यायाधीशकारिता के अनुभव ने इसे विरक्त कर दिया—जिसका परित्याग कर १८३६ में नीफऑफ और स्कानहाउसेन में पारिवारिक जागीर के निरीक्षण में लगा। कैभूर की तरह इसने भी अपनी भूमि में कृषि का उत्थान किया। इसने कहा—"यदि युद्ध आरम्भ नहीं हुआ तो हम अपने जीवन को ग्राम में ही वितायेंगे और कृषि सफलता को ही प्रमुख ध्येय बनायेंगे" ८ वर्ष तक इसने यह काम, विदेशों में परिभ्रमण और स्थानीय राजनीति में भाग लिया। जनता ने इसको नास्तिकतम, मद्यपान और विवाद प्रियता की मूर्ति समझा। छात्रावस्था में इसने अपने को जनतांत्रिक घोषित किया जिसका अभिप्राय प्रतिरोध के प्रति अधीरता थी, पर अल्पकाल-पश्चात् यह

सहिष्णु मनावलम्बी व उससे आगे एक संकीर्ण राज सत्तावादी हो गया–जो इसकी नीति की कुंजी है ।

१८४७ मे बिस्मार्क का विवाह हुआ और उसी वष संयुक्त प्रशिया की लोक सभा (डायट) में स्थान ग्रहण किया। उसी वर्ष इसने प्रजातंत्रवाद को सुविधा प्रदान किया—और मेटर्निक और रूस के सम्राट् को आतंकित कर दिया। १८४७ से ५१ तक प्रशिया का इतिहास वैधानिक संकट, विद्रोह, विप्लव, फ्रेंकफर्ट की लोकसभा द्वारा समर्पित राजमुकुट की अस्वीकृति, ऐर्फट संघ की स्थापना और पराजय व निराशता से पूर्ण था। यह कुलीन युवक इस समय एक स्वाधीन निर्भिक लोकसभा का प्रतिवादी, उग्र संकीर्णवाद का समर्थक. एक तंत्रवाद का पृष्ठ पोषक और स्पष्ठ वक्ता के रूप में इतिहास में पदार्पण किया। इन चार वर्षों मे बिस्मार्क ने प्रजातंत्रवाद के विद्रोह में प्रमुख भाग लिया। इसने कहा—"इस शताब्दी के देश भक्त विप्लवियों से आत्म बलिदान की जो भावना देखते है, उससे हम आतंकित हैं"। इसकी दृष्टि मे विप्लवियों का समर्थन परम अपराध था। इसीलिए एर्फट कार्यक्रम की असफलता से इसे परम हर्ष हुआ--अन्यथा प्रशिया की राज सत्ता वैधवादी वन जाती। इस सम्बन्ध में इसने दृढता के साथ कहा था—"फ्रेंकफर्ट का राज मुकुट यद्यपि उज्ज्वल है, पर उसका सोना प्रशिया के राजमुकुट के गलाने से ही प्राप्त हो सकता है। हमें यह भी विश्वास नहीं है कि इसके पुनर्निर्माण से यह प्रशिया के विधान मे संगत हो जायेगा। प्रशिया की राजसत्ता समग्र जर्मनी में विस्तृत होनी चाहिए। स्वार्थ के लिए युद्ध करना ही महान् शक्ति की भित्ति है •• "हम जन्म से ही प्रशियन हैं और प्रशियन ही रहेगे, यही हमारे अधिकांश देशवाशियों का मत है"।

१८५१ मे बिस्मार्क ने नेतृत्व की एक अद्वितीय शक्ति को अभिव्यक्त कर राजा की दृष्टि को आकर्षित किया, परन्तु इसकी संघर्ष-प्रियता से राजा भी घबडाता था और इसे प्रतिक्रियावादी और रक्तपिपासु समझता था। राजा की दृष्टि मे बिस्मार्क की शिक्षा अपूर्ण थी, फिर भी इसे फ्रैंकफर्ट की राज्यपरिषद् में प्रशिया का प्रतिनिधि नियुक्त किया। यहाँ पर अपने ८ वर्ष के काल मे बिस्मार्क ने जर्मनी-समस्या के समाधान का उपाय और आस्ट्रिया के बहिष्कार की योजना तैयार की। फ्रैंकफर्ट की राज्य परिषद् मे सिगरेट पीने का अधिकार आस्ट्रिया ही को था, परन्तु इसने भी सिगरेट पीकर आस्ट्रिया की प्रतिष्ठा को चुनौती दी और आस्ट्रिया के प्रतिनिधि के कोट को उतार कर हैप्सबर्ग साम्राज्य को प्रत्यक्ष अपमानित किया।

१८५६ में बिस्मार्क रसिया की राजधानी सैन्ट पीटर्सबर्ग मे प्रशिया का राजदूत नियुक्त हुआ। सम्राट् अलैग्जेण्डर द्वितीय से व्यक्तिगत मैत्री स्थापित कर रूस के मित्रता सम्बन्धों को दृढ बनाया। इसके अनन्तर पेरिस मे अल्प काल तक राजदूत रहा—जिसमें इसने नेपोलियन के चरित्र, मंत्री और साम्राज्य का विश्लेषण किया और फ्रांस के पराजय की पृष्ठ भूमि तैयार की। सितंबर १८६२ में जैसा कि हम देख चुके हैं—राजा विलियम ने इसे मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष नियुक्त किया। उसके अनन्तर किस प्रकार इसने रक्तक्रान्ति और शक्ति-प्रयोग द्वारा जर्मन साम्राज्य की स्थापना की—यह वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं। आगे हम अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में जर्मनी की संरक्षण नीति का विश्लेषण करेंगे।

(१०) इटली और जर्मनी की तुलना

बाह्य दृष्टि से इटली और जर्मनी के स्वाधीनता संग्राम में अनेक समानतायें हैं। इन दोनो राष्ट्रों में अभीष्ट सिद्ध करने के

लिए अग्रणी होने का कार्य शक्तिशाली दो राज्यों—जर्मनी में प्रशिया, इटली में पिडमण्ट व सार्डिनिया—ने किया। दोनों ही स्थानो पर सफलता व उन्नति मन्त्रियो के—प्रशिया में विस्मार्क व पिडमण्ट मे कैभूर—कौशल से हुई। दोनो राज्यो का ही सामान्य शत्रु आस्ट्रिया था। परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर इन दोनो की समस्याएँ—उनके समाधान के माध्यम और परिणाम विभिन्न प्रतीत होंगे। १८५२ मे कैभूर पिडमण्ट का प्रधान मन्त्री बना व नौ वर्ष के अनन्तर इसने तिरंगा (हरित, रक्त, श्वेत) झंडा, वैनिस और रोम को छोड कर, समग्र इटली पर लहरा दिया। १८६२ में विस्मार्क राजा विलियम का प्रधान मन्त्री बना व नौ वर्ष—उतनी ही अवधी के अनन्तर प्रशिया की ज्ञील का प्रतीक संपूर्ण जर्मनी की पताका बन गया। इटली के निर्माता कैभूर ने जनता के मत की प्रधानता दी, परन्तु जर्मनी के निर्माता विस्मार्क ने उसकी अवहेलना की। ऐतिहासिक फ़ाइफ ने कहा है—"बिस्मार्क ने अपने निर्दिष्ट ध्येय की प्राप्ति के लिए उदासीन राष्ट्र को शक्ति—प्रयोग से संगठित किया"।

जर्मन राष्ट्रीयता का परिणाम राजसत्ता की अभिवृद्धि हुई और इटली के स्वतंत्रता संग्राम से वैधानिक राजसत्ता की विजय हुई। हम देख चुके हैं कि कैभूर सार्वजनिक मतो और लोकसभा की ओर प्रतिक्षण देखता था, किन्तु बिस्मार्क ने बल-प्रयोग से लोकसभा को नियंत्रित किया। इटली एकीकरण में सार्डिनिया इटली मे विलीन हो गया, परन्तु जर्मनी के एकत्रीकरण मे विभिन्न राष्ट्र प्रशिया में लीन हो गया। बिस्मार्क ने कहा था—"हम प्रशिया निवासी हैं, और प्रशिया निवासी ही रहेंगे"। संक्षेप में "सार्डिनिया रोम मे लीन हो गया और जर्मनी बर्लिन में लीन हो गया"।

——*——

७—निकट प्राच्य की समस्या

(१८५६ से १९१४)

रसिया के एक राजनीतिज्ञ ने सत्य ही कहा है—"निकट प्राच्य देशों की समस्य' एक प्रकार की गठिया वात है—जो कभी हाथ में कभी पाँव मे और कभी शरीर के अन्य अङ्गों मे फैल जाता है। यह सौभाग्य है कि यदि यह पेट तक नहीं पहुँचे"। यदि हम १८५६ और १९१४ के बॅल्कान के मानचित्र की तुलना करे तो यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि एक समस्या के समाधान से पूर्व ही दूसरी समस्या की शृंखला पैदा हो गई। समस्या का स्थायी समाधान नहीं हो पाया।

साधारणत: इस समस्या को हम चार भागो मे विभाजित कर सकते है। प्रथम समस्या का उद्भव बॅल्कान जनता द्वारा तुर्की के आधिपत्य को समाप्त कर यूरोप' द्वारा अपने राष्ट्र की स्वाधीनता के स्वीकृति के लिए हुआ। दूसरा प्रश्न प्रत्येक राष्ट्र की आन्तरिक आर्थिक और अन्य समस्याओं का समाधान कर शासन को शक्तिशाली बनाने से सम्बद्ध था। तृतीय उन राष्ट्रो की साम्राज्य विस्तार की कामना बढी हुई थी—जिसको वे पारस्परिक संघर्ष अथवा तुर्की को बहिष्कार द्वारा पूर्ण करना चाहते थे। चतुर्थ यूरोप के विभिन्न राष्ट्रों के पारस्परिक विरुद्ध स्वार्थों की पूर्ति थी—जिसे वे इस सुयोग मे संपन्न करना चाहते थे।

(क) रूमानिया का प्रश्न

१—रूमानिया की स्थापना

क्रीमिया युद्ध के अनन्तर माल्डेविया और वालेचिया के

बल्कॉन-राज्य (१८७८-१९१४)
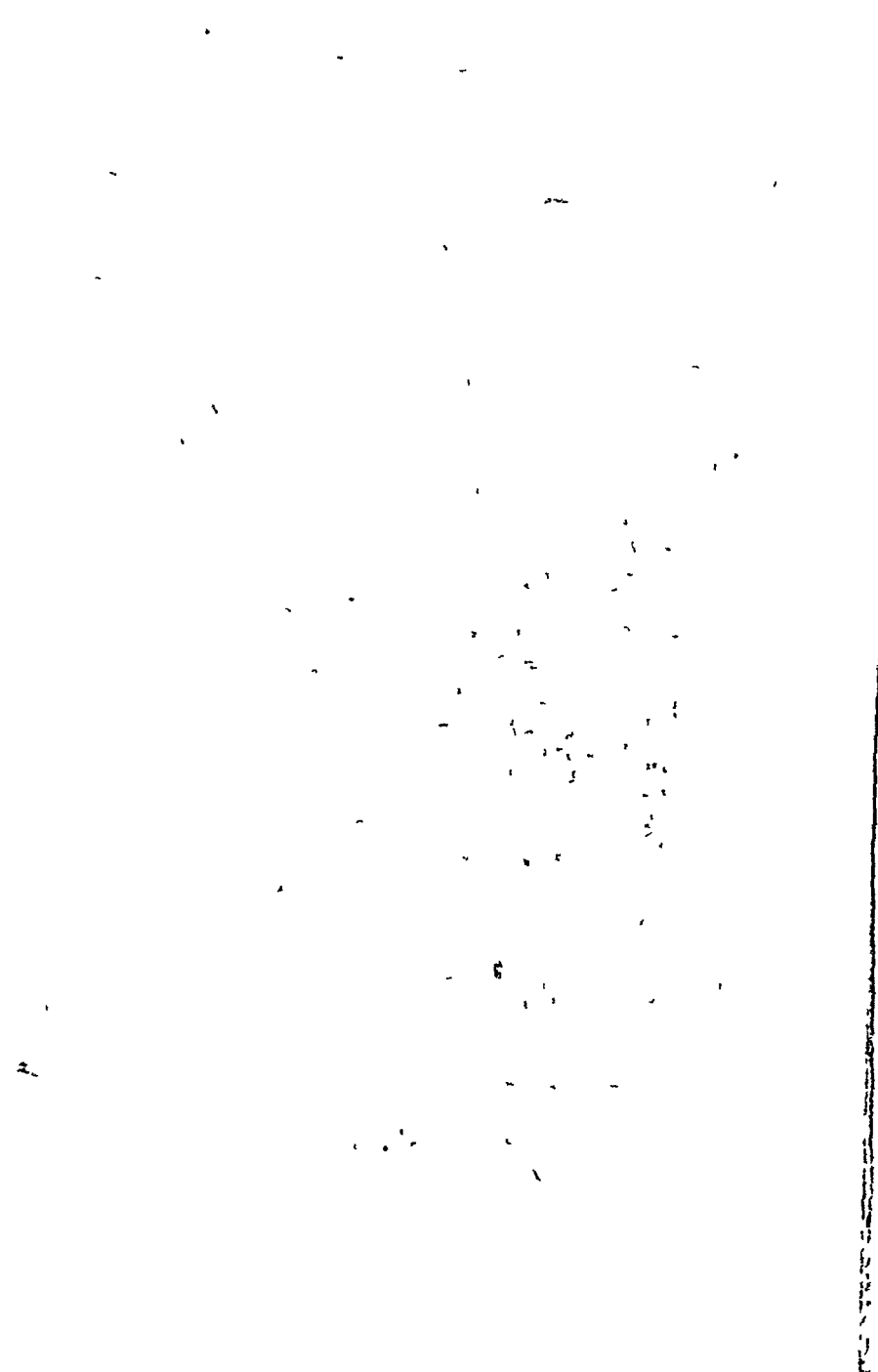
दो प्रदेशो से प्रथम उपद्रव प्रारम्भ हुये। पेरिस की महासभा मे इन दोनों प्रदेशो को प्रायोगिक स्वाधीनता प्राप्त हुई थी-परन्तु वे दोनो प्रदेश एक दूसरे से संघबद्ध और अपनी स्वतंत्रता को तुर्की द्वारा स्वीकृत कराना चाहते थे। नेपोलियन तृतीय और अलैग्जेण्डर द्वितीय इन दोनों प्रदेशो की जनता के पक्ष में थे। तुर्की इनके संघ का विरोधी था और इनके अनुकरणों से अपने साम्राज्य मे भी राष्ट्रीय आन्दोलन से आशंकित आस्ट्रिया भी इसके विपक्ष में था। तुर्की की अखंडता का समर्थक इंग्लैण्ड भी इन प्रदेशो की जनता के साथ नही था। इसी समय माल्डेविया और वालेचिया में सार्वजनिक निर्वाचन हुआ-जिसका परिणाम तुर्की के अनुकूल रहा। फ्रांस ने तुर्की पर निर्वाचन में अनियन्त्रितता का आरोप कर पुनर्निर्वाचन की मांग की। इंग्लैण्ड ने तुर्की के पक्ष मे फ्रांस के हस्तक्षेप का प्रतिवाद किया, परन्तु नेपोलियन तृतीय ने इस संघ को इंग्लैण्ड के लिए हितकर बताया, क्योकि यह रसिया के विस्तार मे प्रतिबंधक था। अंततः पुनर्निर्वाचन हुआ और जनता का मत ने "संघ" के समर्थन को प्रमाणित किया। यूरोप के शक्तिपुंज ने यह घोषणा (अगस्त १८५८) की—"ये दो प्रदेश राजनैतिक दृष्टि से पृथक् रहेगे। प्रत्येक की अपनी पृथक् लोकसभा व पृथक् शासक होगा। सुलतान के अधीन ही ये निष्पक्ष और स्वायत्त शासन मय राष्ट्र रहेंगे एवं इन दोनो राष्ट्रो की सामान्य समस्याऐं संयुक्त आयोग द्वारा निर्णीत होगी"। शक्तिपुंज के हस्तक्षेप का उत्तर देने के लिए इन दोनो राज्यो की जनता ने अलैग्जेण्डर कूजॉ को ही दोनों राज्यो का शासक चुना। अपमानित शक्तिपुंज ने २३ दिसम्बर १८६१ में इन दोनों राज्यों के संघ को स्वीकार कर लिया और यह नवीन युक्त राष्ट्र "रूमानिया" के नाम से व्यवहृत हुआ और इसकी राजधानी बुकारेस्ट हुई।

२—राजा कूजॉ (१८५६ से १८६६)

सानवर्ष तक राजा कूजॉ इस नवीन राष्ट्र की आंतरिक समस्याओ के समाधान में व्यस्त रहा । इसने शिक्षा को प्रोत्साहित कर राजधानी में विश्वविद्यालय की स्थापना की । मठो की संपत्तियों पर अधिकार किया । अनिवार्य श्रमिक कर का अन्त कर कृषको को सम्पत्ति का प्रभु बना दिया परन्तु सामन्त प्रणाली के अवसान से जनता इस पर असन्तुष्ट हो गई और फर्वरी १८६६ में बुकारेस्ट के एक विद्रोह से इसे पदच्युत कर दिया गया । जर्मनी के होहेन्ज़ोलेरैन राजवश के कुमार कैरोल को रूमानिया का राजा बनने के लिए जनता ने आमंत्रित किया । यूरोप के जर्मनी और आस्ट्रीया को छोड कर संपूर्ण शक्तिपुंज ने इसका विरोध किया पर अंत में इसे मान्यता दे दी ।

३—राजा कैरोल (१८६६से १६१४)

राजा कैरोल ने जो कि प्रथम महायुद्ध पर्यन्त रूमानिया का राजा था—वैधानिक राजसत्ता का प्रवर्त्तन कर अपने राज्य को नवीन रूप दिया । इसने रेले, उद्योग व कृषि का उन्नयन और धर्म्म की स्वाधीनता का विकास किया ।

वैदेशिक नीति में जर्मनी की पक्षपातता स्वाभाविक थी, परन्तु जनता अपनी परराष्ट्र नीति को निरपेक्ष देखना चाहती थी । फिरभी उसने अपने जीवन काल में इसके प्रत्यक्ष विरोध नहीं किया । इसके मरते ही रूमानिया ने (१६१६) जर्मनी के विरुद्ध मित्रसंघ के समर्थन में युद्ध घोषित कर दिया ।

(ख) दक्षिण स्लाव आन्दोलन

१—आन्दोलन के कारण—रूमानिया के निर्माण के पश्चात् निकट प्राच्य की समस्या दश वर्ष पर्यन्त शान्त रही ।

पेरिस की कांग्रेस से तुर्की ने आधीनस्थ ईसाई प्रजा की उन्नति का आश्वासन दिया था। १८६१ मे अब्दुल अजीज जब तुर्की का सुलतान बना तो इसने यातायात, सार्वजनिक शिक्षा और साम्राज्य को आधुनिक बनाने के प्रयत्न किये, परन्तु स्थानीय प्रशासन में कोई परिवर्त्तन नहीं हो सके। बॅल्कान के राष्ट्र समूह ने–सर्विया, बोस्निया, मण्टीनीग्रो व बुल्गेरिया–अत्याचार से त्रस्त हो कर स्वाधीनता प्राप्ति के लिए गुप्त समिति का संगठन किया। स्लाव जाति के एकीकरण के लिए रूस ने भी इसका आन्तरिक रूप से जनता को उभारने के उद्देश्य से समर्थन किया। १८६७ में मास्को मे स्लाव–जाति–सम्मेलन के अधिवेशन मे एक केन्द्रीय कार्यकारिणी की स्थापना हुई। इसका प्रधान कार्यालय मास्को और शाखा बुकारेष्ट में रखी गई। स्लाव युवक रसिया विश्वविद्यालय म पढ़ने के लिए आने लगे और तुर्की के बहिष्कार के लिए प्रचार कार्य विभिन्न रूपों मे प्रारम्भ हो गया।

सर्विया दक्षिण स्लाव आन्दोलन के संगठन मे अग्रणी था परन्तु इसके राजाकी आकस्मिक हत्या से संपूर्ण योजनाये ही अपूर्ण रह गईं। जुलाई १८७५ मे हर्जीगोवीना के कृषक तुर्की के बलात् कर संचय के प्रति विद्रोही हो गये व उनने कर देना निषिद्ध कर दिया। इसे शान्त करने के लिए प्रेषित तुर्की की सेना को भी पराजित कर दिया। वोस्निया (मई), सर्विया और मण्टीनिग्रो (जून) ने भी तुर्की के विरुद्ध युद्ध घोषित किया। बुल्गेरिया ने भी विद्रोह किया और तुर्की के अधिकारियो में एक सौ को मार दिया। इसके प्रतिशोध के लिए तुर्की ने निर्दयता के साथ बुल्गेरिया निवासियो को ध्वस्त किया। इंग्लैण्ड का अनुमान है कि इन ध्वस्त व्यक्तियो की संख्या १२ हजार थी। कुछ एक ऐतिहासिक तो इन्हे ३० हजार तक बताते है।

इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री साम्राज्यवादी डिसरैली (लार्ड-बेकन्सफिल्ड) रसिया के विस्तार को रोकने व भारतवर्ष की रक्षा के लिए तुर्की की अखण्डता की नीति का समर्थक था, परन्तु उदार ग्लैडस्टोन ने उपर्युक्त हत्याकांड की निन्दा करते हुए कहा–"तुर्की अपनी सामग्री को लेकर बुल्गेरिया व यूरोप से चला जाये–जिसको इसने ध्वस्त और अपवित्र बना दिया है"। राइकस्टाड की सन्धि मे (जनवरी १८७७) आस्ट्रिया ने रूस को अपने प्रभाव को बोस्निया व हारजीगोविना मे व्यापक बनाने के उपलक्ष में तुर्की व रूस संग्राम मे स्वयं की निष्पक्षता का आश्वासन दिया। जर्मनी ने भी आस्ट्रिया का अनुमोदन किया।

२–रूस तुर्की संग्राम (१८७७–१८७८)

२४ अप्रेल १८७७ में रूस ने तुर्की के विरुद्ध युद्ध घोषित किया। रूमानिया, सर्विया और मण्टीनिग्रो ने भी इसे सहयोग दिया। यद्यपि प्लेवना के युद्ध मे रूस अंशतः असफल रहा, फिर भी उसने कार्स के दुर्ग को अधिकृत कर लिया और तुर्की की राजधानी से १६० मील दूर रह गया। पराजित तुर्की ने मार्च १८७८ मे रूस के साथ सन स्टीफैनो की संधि की।

इसकी शर्तों के अनुसार माण्टीनिग्रो और सर्विया को स्वाधीन राष्ट्र स्वीकार किया गया। तुर्की ने रूस और आस्ट्रिया के युक्त नियंत्रण मे बोस्निया और हारजीगोविना के सुधार की प्रतिज्ञा की। निर्यातित आर्मेनिया निवासियो के अधिकार को मान्यता देने का भी इसने वचन दिया। रसिया को एशिया में बाटूम और कार्स, यूरोप में बैसारेबिया और दोब्रूदजा के अंश प्राप्त हुए। रूमानिया को बैसारेबिया की क्षतिपूर्ति के रूप में दोब्रूदजा के कियदंश दिये गये व उसकी स्वाधीनता स्वीकृत की गई। नवीन वृहत बुल्गेरिया की स्थापना इस संधि की मुख्य शर्त थी। इसे तुर्की के आधीन में स्वायत्त शासन मिला। संक्षेप

में यूरोप मे तुर्की साम्राज्य का अवसान हो गया। रूस के इतिहास में यह एक महत्वपूर्ण विजय थी। पेरिस की संधि को भंग कर दिया गया और बॅल्कान राज्य समूह में रूस का प्रभाव व्यापक हो गया। इसी लिए इंग्लैण्ड ने इस संधि का तीव्र विरोध किया।

३—बर्लिन कांग्रेस (१८७८)

बुल्गेरिया और रसिया को छोड़कर इस संधि से कोई भी संतुष्ट नहीं था। आस्ट्रिया बुल्गेरिया जैसे प्रतिवेशी को शक्तिशाली नहीं देखना चाहता था। बिस्मार्क ने भी आस्ट्रिया का समर्थन किया। रूमानिया युद्ध मे सहयोगी होते हुए भी बैसारेबिया से वंचित होने के कारण अप्रसन्न था। इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री डिसरेली ने घोषणा की—"सन स्टीफैनो की संधि ने समग्र तुर्की के यूरोपीय राज्य को रूस के शासनाधीन बना दिया, परिणामतः कृष्ण समुद्र एक रूस की झील बन गई"। इसे संशोधित करने के लिए इंग्लैण्ड ने शक्ति गोष्ठी के एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन को बर्लिन मे आमन्त्रित किया। रूस जर्मन की मैत्री को दृढ़ और आस्ट्रिया को शक्तिशाली बनाने का इच्छुक बिस्मार्क इस महासभा (१३ जुलाई १८७२) का अध्यक्ष था। कांग्रेस ने उपयुक्त संधि को भंग कर निम्न रूप से बर्लिन संधि को मान्यता दी।

रसिया के लाभ को संकीर्ण कर बैसारेबिया, कार्स, बाटूम और आर्मेनिया मे निहित किया गया। तुर्की ने रूमानिया की स्वाधीनताको स्वीकृत किया व उसे दोब्रुद्जा का एक भाग दिया। आस्ट्रिया को बोस्निया और हार्जीगोविना का प्रशासनाधिकार दिया गया व नोवी बजार मे सैनिक आवास को स्वीकृति दी। कार्स और बाटूम पर रूस का जब तक अधिकार रहेगा, इंग्लैण्ड साइप्रस द्वीप को अपने आधीन

रखेगा। ट्यूनिस को भविष्य में हस्तगत करने के लिए फ्रांस ने इच्छा प्रकट की। नवीन इटली ने अल्बेनिया व ट्रिपोली के अधिकार का दावा किया। सर्विया और मण्टीनिग्रो की स्थिति उसी रूप में मान्य की गई। यूनान को कुछ नही मिला, परन्तु बुल्गेरिया की हानि सब से अधिक हुई। इसे संकीर्ण एक तृतीयांश (सन स्टीफैनो की सीमा) व तुर्की के अधीन मे एक स्वाधीन राष्ट्र बना दिया गया। इसके दक्षिण का "पूर्व रूमोलिया" एक ईसाई राज्यपाल के शासन में तुर्की को दे दिया गया। मैसिडोनिया पुनः तुर्की के अधिकार में आ गया।

(४) समालोचना

डिसरेली ने अपने राष्ट्र को "सम्मानपूर्ण शान्ति" प्रदान करने का गर्व था। यद्यपि बर्लिन कांग्रेस मे इसकी नीति साहसपूर्ण व सफल थी, परन्तु उपर्युक्त शर्तों में से ही १९१२ और १९१३ के बॅल्कान युद्ध और १९१४ के महायुद्ध का उदय हुआ। "पुनः यूरोप में तुर्की की स्थापना हुई" उसका यह एक अभिमान पूर्ण उद्घोष था। तुर्की ने ३० हजार वर्ग मील और २५ लाख सन स्टीफैनो की संधि में खोई हुई जनता को पुनः प्राप्त किया, फिर भी इसका क्षेत्र और जन संख्या आधे से भी न्यून हो गई—जिसका पुनरस्थापन असम्भव हो गया। ऐतिहासिकों का कथन है कि—"डिसरेलो ने तुर्की की पीडाओ को बढा दिया और अवसान की अवधि को व्यर्थ विस्तृत कर दिया। मैसिडोनिया पर तुर्की के पुनराधिकार होने से १९१२ में प्रथम बल्कान युद्ध और बुल्गेरिया की संकीर्णता से १९१३ का द्वितीय बल्कान युद्ध का जन्म हुआ"।

जर्मन साम्राज्य के समर्थन से वॅल्कान प्रायद्वीप में आस्ट्रिया का प्रवेश इस संधि का एक महत्वपूर्ण परिणाम था। युगोस्लेविया और सर्विया को अधिकृत करने की आस्ट्रिया की

कामना ने एक नवीन बॅल्कान समस्या की सृष्टि की। प्रो० कैटिलबी ने सत्य ही कहा है—"१८७८ से महायुद्ध तक आस्ट्रिया का अनवरत प्रसार हुआ"।

इस संधि ने अल्पकाल के लिए बॅल्कान प्रायद्वीप में रूस की अग्रगति को प्रतिरोध कर उसे एशिया में साम्राज्य विस्तार के लिए बाध्य कर दिया, परन्तु ३० साल के बाद उसकी यह कामना पुनर्जीविन हो गई व १९१४ में अपने पुरातन प्रतिद्वंद्वी इंग्लैण्ड के समर्थन से यह पुनर्जय के लिए अग्रेसर हुआ।

तुर्की इससे असन्तुष्ट था, यह कोई आश्चर्य का विषय नहीं है। तुर्की के परम मित्रों ने ही संकट के समय उसके साम्राज्य की अवनति में अधिकतम योग दिया। साइप्रस पर इंग्लैण्ड की अधिकार व बोस्निया हारजीग विना मे आस्ट्रिया का नियंत्रण "एक नैतिक समर्थन हीन राजनैतिक डकैती थी"। इस संधि द्वारा नवनिर्मित राष्ट्र समूह की स्थिनि अस्पष्ट और जटिल थी—जो भविष्य मे अशान्ति और उपद्रव का सन्देश दे रही थी।

प्रो० हैजन का कथन है—"बर्लिन कांग्रेस ने १८१५ की वियाना कांग्रेस के समान निर्यातित जनता की वैधानिक अभिलाषाओं का विरोध अथवा पूर्णतः अवहेलना की। बुल्गेरिया से मैसिडोनिया को पृथक कर जनता के विरुद्ध मे तुर्की के साथ सम्मिलित कर देना एक अनुचित उपाय था—जिससे भावी युद्ध के बीज वपन हुए।

इन सब त्रुटियो के होते हुए भी बर्लिन का निर्णय प्रायः ३७ वर्ष तक स्थायी रहा। यूरोप के शक्तिपुञ्ज की शिथिलता और विभिन्न राष्ट्रों के पारस्परिक द्वन्द्व ही इस स्थायिता के प्रमुख निमित्त थे। तत्काल में प्राच्य देशो की जटिल समस्याओ को ध्यान में रख कर उनके समाधान का मार्ग निर्धारित करने वाला

कोई दक्ष राजनैतिक नहीं था। भविष्य मे प्रायद्वीप में युद्ध प्रारम्भ होना सुनिश्चित था।

तुर्की के यूरोपीय साम्राज्य से ५ स्वाधीन राज्यो की स्थापना हुई--(१) रूमानिया, (२) बुल्गेरिया, (३) सर्विया, (४) मण्टीनिग्रो और (५) यूनान। आगामी २० वर्ष पर्यन्त बुल्गेरिया ने ही प्राच्य समस्याओं को जीवित रखा, यद्यपि मिश्र, आर्मेनिया, यूनान और सर्विया मे सामान्य उपद्रव हुए।

(ग) बुल्गेरिया का प्रश्न

बुल्गेरिया के चार प्रमुख प्रश्न थे—विधान, उपयुक्त राजा का निर्वाचन, रूमेलिया के साथ संयुक्तता, रसिया का हस्तक्षेप। वधानिक समस्या के समाधान के लिए लोकसत्तात्मक नवीन विधान का निर्माण किया गया, परन्तु निरंकुश कार्यकारिणी के साथ इसका समन्वय असम्भव था। जनता भी लोकसत्ता के अनुभव से हीन थी, इसीलिए यह विधान असफल रहा।

जनता ने नवीन राष्ट्र के प्रथम राजा के रूप मे बैटेनवर्ग के अलैग्जेण्डर को निर्वाचित किया—जो कि रसिया के सम्राट् अलैग्जेण्डर द्वितीय का भतीजा था। १८७९ से १८८६ तक इसने योग्यता के साथ शासन किया। "यद्यपि यह एक विचक्षण राजनैतिक, साहसी सेनानायक व गणनीय व्यक्ति था", परन्तु बुल्गेरिया की लोक सभा "सोब्राञ्जे" और रूस के प्रतिनिधि ने इसका विरोध किया। १८८१ के पश्चात् सम्राट् अलैग्जेण्डर तृतीय के आधिपत्य को अस्वीकार करने से रूस ने इसे राज्य-त्याग के लिए बाध्य किया। इसके उत्तराधिकारी सैक्से-को-बुर्ग गोथा के राजा फार्डिनेण्ड १९१४ के महायुद्ध में बुल्गेरिया को जर्मनी के समर्थन मे सम्मिलित किया।

पूर्व रूमेलिया के साथ संघ बद्धता एक जटिल समस्या थी। बर्लिन कांग्रेस मे बुल्गेरिया से पूर्व रूमेलिया को कृत्रिम उपाय से पृथक करने से दोनो राज्यो मे असन्तोष और विद्रोह फल गया था। १८८५ मे तुर्की के राज्यपाल को रूमेलिया निवासियों ने बहिष्कृत कर बुल्गेरिया के राजा अलैग्जेण्डर को शासक निर्वाचित कर दोनों राज्यों को संघबद्ध कर दिया। इस आन्दोलन का एक महान नेता स्टैम्बुलव एक पुरातन (शून्यवादी) अराजकवादी होटल वाले का सपूत और १८८६ से १८९४ तक बुल्गेरिया का अधिनायक था। सर्विया ने इस संघ के विरुद्ध सतुलन शक्ति की रक्षा के लिए युद्ध घोषित किया। बुल्गेरिया ने सर्विया को पराजित किया और आस्ट्रिया की मध्यस्थता में बुकारेष्ट की सधि से शान्ति स्थापना हुई। इसी समय शक्तिगोष्ठी के अधिवेशन में बुल्गेरिया-संघ के प्रश्न का विश्लेषण कर रूमेलिया और बुल्गेरिया के संघ को स्वीकार किया गया। यह आश्चर्य है कि जो राष्ट्र (इंग्लैण्ड और आस्ट्रिया) बर्लिन कांग्रेस मे रूमेलिया को बुल्गेरिया से पृथक् करने मे अग्रणी था, वही अब इनके एकीकरण का समर्थन करने लगा। वस्तुतः यह सत्य था कि नवीन बुल्गेरिया रसिया के विपरीत नीति पर चल रहा था, अत एव रूस के प्रतिबंध के लिए इंग्लैण्ड और आस्ट्रिया की दृष्टि मे तुर्की के साथ साथ बुल्गेरिया का पुनर्जीवन भी अनिवार्य हो गया। लार्ड सैलिसबरी ने कहा—"तुर्की का मित्र स्वाधीनता प्रिय संयुक्त बुल्गेरिया विभाजित बुल्गेरिया से वैदेशिक आक्रमण के प्रतिरोध में अधिक शक्तिशाली हो गया"। १८८६ में सुलतान अब्दुल हमीद ने भी संयुक्त बुल्गेरिया को स्वीकार किया, परन्तु रसिया बुल्गेरिया मे अपने साम्राज्य विस्तार के लिए दृढ-प्रतिज्ञ था। बुल्गेरिया का राजा अलैग्जेण्डर इस अभीष्ट का प्रत्यक्ष विरोधी था। स्टैम्बु-

लव ने जनता को संगठित कर "बुल्गेरिया बुल्गेरियावासियो के लिए ही है" यह उद्घोषणा कर रसिया के विपरीत प्रचार किया। राजा अलैग्जेन्डर ने लिखा—"रसिया हम से घृणा करता है, क्यों कि वह हम से भीत है। परन्तु इस घृणा से हमें आनन्द होता है, क्यो कि जनता हमारा समर्थन करती है"। रूस के सम्राट् ने अलैग्जैण्डर को पदच्युत कर एक रूसीय शासक को मनोनीत करने के पक्ष मे था। २१ अगस्त १८८६ में बुल्गेरिया के कुछ सेनानायको ने रसिया के उत्कोच से राजधानी सोफिया के प्रासाद में प्रविष्ट होकर राजा को बन्दूक की धमकी से राज्य त्याग पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया। इस समय महारानी विक्टोरिया ने लिखा—"मेरा दुःख अनिर्वचनीय है"। बुल्गेरिया की जनता ने पुनः इसे राजा बनने को आमन्त्रित किया, परन्तु रसिया के दबाव से इसने इस बार स्वयं ही राज्यत्याग किया। इसके उत्तराधिकारी राजा फार्डिनेण्ड ने १९१८ तक राज्य किया और रसिया के साथ मित्रता स्थापित की। इसके राज्य काल में बुल्गेरिया ने प्रचुर उन्नति की।

(घ) आर्मेनिया की समस्या

१८९६ से १८९८ तक निकट पूर्व की आर्मेनिया समस्या ने यूरोप की दृष्टि को आकर्षित किया। कैस्पियन और कृष्ण-समुद्र के मध्य अस्पष्ट भौगोलिक सीमा मे आर्मेनिया की ईसाई प्रजा तुर्की द्वारा निर्यातित हो रही थी। १८७८ की बर्लिन कांग्रेस में इंग्लैण्ड ने तुर्की को ईसाइयों की सुविधा और सुशासन देने के लिए बाध्य किया गया परन्तु यह एक आशीर्वाद न होकर अभिशाप था। सुलतान अब्दुल हमीद यूरोप की शक्ति-गोष्ठी की पारस्परिक विरोधिता का सुयोग ले कर ईसाई प्रजा को उचित शिक्षा देना चाहता था। तुर्की के एक राजनैतिक ने

कहा था—"आर्मेनिया की समस्या का एक ही मार्ग है—वह है आर्मेनिया को समाप्त करना"। विद्रोह को निमित्त बना कर १८६४ व ६५ में तुर्की के निवासियो ने ५० हज़ार आर्मेनिया निवासियों की अवर्णनीय अत्याचारों के साथ हत्या की। १८६६ में तुर्की की राजधानी में एक बैंक पर विद्रोही जनता ने आक्रमण किया जिसके परिणाम स्वरूप एक दिन मे ६ हजार आर्मेनिया निवासियों को मार दिया गया।

इस हत्याकांड के समय प्राच्य समस्याओ के समाधान का ठेकेदार "यूरोपीय शक्तिपुंज" क्या कर रहा था? रसिया आर्मेनिया वासियो को शून्यवादी समझता था और ये ईसाई नहीं थे, इसीलिए वह इस ओर से उदासीन था। हत्याकान्ड के संवाद से इंग्लैण्ड में तीव्र प्रतिवाद जागृत हुआ। मिश्र के प्रश्नो में इंग्लैण्ड से रुष्ट फ्रांस ने भी ईसाइयों के समर्थन को अस्वीकार कर दिया। जर्मनी के राजा ने विरोध करना तो दूर रहा, अपितु सुलतान को उसके जन्म-दिवस पर अपनी एक हस्ताक्षरित चित्र मित्रता के निदर्शन स्वरूप भेजा। सैलिसबरी ने सुलतान को "महान् हत्याकारी" की पदवी दी। विचारे आर्मेनिया निवासी विभिन्न राष्ट्रो के पारस्परिक संघर्ष मे पिस गये यह स्पष्ट हो गया कि तुर्की की अखंडता का खंडन इंग्लैण्ड ने दुर्बल घोडे पर दाव लगाया था।

(ङ) यूनान का प्रश्न

आर्मेनिया विद्रोह के पश्चात् उपद्रव यूनान मे प्रारम्भ हुआ। १८३३ मे यूरोप के शक्तिपुंज ने १७ वर्षीय जर्मन युवक ऑटो को (१८३३-१८६२) नवीन यूनान का राजा बना दिया था। यह अल्प व्यस्क था और इसका धर्म भी जनता से पृथक् था, इसी लिए यह आन्तरिक समस्याओं को समझ नही पाया। २६ वर्ष तक इसका शासन राजनैतिक अराजकता, प्रशासनिक

और आर्थिक दुर्बलता व सामाजिक अव्यवस्थाओं मे ही है व्यतीत हुआ। अन्त में १८६२ में एक सामरिक विद्रोह में जनता ने इसे राज्य च्युत कर डेन्मार्क के कुमार जार्ज को प्रथम जार्ज के रूप यूनान का शासक बना दिया—जिसने १८६३ से १९१३ तक मे शासन किया।

यूनान की बाह्य आकांक्षाऐं अत्यन्त जटिल थी। १८३२ की निर्धारित सीमा से यूनान संतुष्ट नहीं था। अनेक यूनानी आयोनियन द्वीप समूह, क्रीट द्वीप, थैसेली, ऐपिरस और मैसिडोनिया में रह रहे थे। इन सब स्थानों को तुर्की की दासता से मुक्त कराना यूनान का ध्येय था। सर्व प्रथम यूनान की दृष्टि थैसेली और ऐपिरस पर पड़ी। क्रीमिया के युद्ध के समय पर इन दो स्थानों पर यूनान ने आक्रमण किया परन्तु पेरिस की महासभा ने यूरोप के दावे को अस्वीकार कर दिया। रूस तुर्की (१८७७-७८) संग्राम मे उसी घटना की पुनरावृत्ति हुई व शक्तिगोष्ठी ने पुनः उपयुक्त दोनों प्रदेशों से सेना अपसारित करने के लिए यूनान को बाध्य किया। लार्ड बेकन्सफील्ड ने कहा था—"यूनान का महान् भविष्य है, इसीलिए वह प्रतीक्षा कर सकता है"। १८८० में जब यूनान प्रेमी ग्लैडस्टोन इंग्लैण्ड का प्रधान मन्त्री हुआ तो तुर्की को ऐपिरस का एक तृतीयांश व थैसेली का अधिकांश यूनान को देने के लिए वाध्य किया। २० वर्ष पूर्व इंग्लैण्ड के संरक्षण मे जो सात आयोनियन द्वीप समूह १८१५ से विद्यमान थे, इसीने यूनान को प्राप्त कराये थे।

(च) क्रीट का प्रश्न

यूनान का सब से प्रमुख द्वीप तुर्की के अधीन में क्रीट था। यहाँ की जनता भी प्रतिवेशियो से अधिक असन्तुष्ट और विद्रोही थी। १८३० और १९१० के मध्य क्रीट निवासियो ने १४ विद्रोह

किये--जिनका विवरण देना असम्भव है। इनका उद्देश्य स्वाधीनता तक ही नहीं, अपितु यूनान मे विलीन होकर संयुक्त यूनान की स्थापना भी था। १८६६-१८६७ से पूर्व के विद्रोह निरर्थक आश्वासन पूर्ण थे। उसी वर्ष राष्ट्रीयता की भावना से पुनः विद्रोह का सञ्चार हुआ और यूनान निवासी वैनिजेलस के नेतृत्त्व में यूनान में विलीन होने की घोषणा करने लगे। तुर्की ने युद्ध प्रारम्भ किया व ३० दिन व्यापी युद्ध में यूनान की सहायता होते हुए भी क्रीट निवासी पराजित हो गये। शक्तिगोष्ठी ने शान्तिरक्षा बॅल्कान को महायुद्ध से बचाने के लिए मध्यस्थता कर शान्ति स्थापित की। थैसेली के सीमान्त के छोटे छोटे स्थान यूनान तुर्की को देने के लिए बाध्य हो गया। युद्ध की क्षतिपूर्ति देना स्वीकार किया। क्रीट की समस्या के समाधान को अन्तर्राष्ट्रीय द्वेषता ने और भी अधिक जटिल कर दिया। तुर्की के मित्र आस्ट्रिया और जर्मनी ने इस सम्मेलन में भाग नहीं लिया। इंग्लैण्ड, इटली और फ्रांस ने क्रीट को तुर्की के आधीन एक स्वायत्त शासन वाला प्रदेश निश्चय किया--जिस व्यवस्था से तुर्की क्रीट और यूनान कोई भी सन्तुष्ट नहीं था। क्रीट को चतुर्मुख शक्ति के अधीनस्थ (इंग्लैण्ड, इटली, रसिया व फ्रांस) तुर्की का एक प्रदेश मान लिया और यूनान के राजकुमार को शासक नियुक्त किया गया। तुर्की सेना को अपसारित करने पर भी तुर्की की पताका क्रीट के झंडे के साथ लहराती रही। १६०८ के तुर्की वासियो के विद्रोह के अवसर पर यूनान के साथ संयुक्तता की पुनः असफल प्रचेष्टा की। १६१२ के बल्कान युद्ध के पश्चात् शक्तिगोष्ठी ने क्रीट और यूनानी संयुक्तता को स्वीकार किया।

(२) बर्लिन-बगदाद रेल्वे

१८८१ मे तुर्की सेना का पुनर्गठन जर्मन सेनानायक के

तत्वावधान मे प्रारम्भ हुआ था। तुर्की यूनान के संग्राम में जर्मन सेनापति गोल्टज़ ने यूनान को पराजित किया। औद्योगिक व्यवसायिक पर्यटक तुर्की के कोने कोने में पहुँच गये और तुर्की की राजधानी मे वर्लिन बैंक की स्थापना हुई। बर्लिन से वगदाद पर्यन्त जर्मनी की रेल्वे निर्माण योजना सबसे प्रमुख थी—जो कि निकट प्राच्य में जर्मनी की मूल नीति थी। १८६६ में तुर्की ने अनातोलिया की एक जर्मन कम्पनी की रेल्वे-लाइन निर्माण की एक विशेष सुविधा दी थी। जर्मनी की योजना यह थी कि वर्लिन से कान्स्टान्टिनोपल और बगदाद व बसरा को रेल्वे लाइन द्वारा संबद्ध कर दिया जाये। यह सत्य हैं कि यूरोप की शक्तिगोष्टी इस कामना का सम्पूर्ण अर्थ नहीं समझ पाई थी, परन्तु अल्प समय के अनन्तर यह प्रतीत हुआ कि जर्मनी का—इस रेल्वे के मध्ययम से—तुर्की पर सामारिक नियंत्रण करना एक उद्देश्य था। युद्ध के समय वॅल्कान को कैजर के अधीन करना भी द्वितीय ध्येय था। तुर्की के संकटकाल में उस पर अपना साम्राज्य स्थापित करना जर्मनी का तृतीय लक्ष्य था। इस योजना से सीरिया में फ्रांसीय शक्ति और पूर्व में ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा पर भी आतंक की स्थापना हो गई थी। प्रथम महायुद्ध में यह आतंक क्रियात्मक हो गया और युद्ध के पश्चात् अपूर्ण वगदाद रेलवे का नियंत्रण तुर्की, ब्रिटिश और फ्रांस के अधीन में आगया और जर्मनी का प्राच्य साम्राज्य का स्वप्न नष्ट हो गया।

३—बल्कान राष्ट्रों का मित्र जर्मन

जर्मन साम्राज्य को संगठित करने के लिए २० शताब्दी के प्रारम्भ में वल्कान राज्यो में जर्मनी का प्रभाव व्यापक हो गया। जर्मनी के राजपरिवार (हो हेन जोलारन) में से ही रूमानिया और यूनान के राजा थे और बुल्गेरिया के फॉर्डिनण्ड

भी इसके मित्र थे। आस्ट्रिया, इटली और तुर्की भी जर्मन-प्रणाली मे सम्मिलित हो गया था। फिर भी यूरोप की शक्ति गोष्ठी ने—फ्रांस, इंग्लैण्ड और रूस इन तीनों का गुट्ट बनाकर-इसका उत्तर दिया। निकट प्राच्य में जर्मनी के समर्थन से आस्ट्रिया रूसिया और सर्विया के विरुद्ध अपने प्रभाव के विस्तार मे प्रयत्नशील था—जिससे प्रथम महायुद्ध को प्रेरणा मिली।

(ज) नवीन तुर्की का आन्दोलन

१—आन्दोलन का प्रभाव—१६०८ में पूर्वीय समस्या एक नवीन रूप में उपस्थित हुई। जुलाई में तुर्की की जनता ने एकता और उन्नति के ध्येय से "नवीन तुर्की समिति के नेतृत्व में विद्रोह किया। तुर्की की प्रजातंत्र और राष्ट्रीयता की भावना लोगों मे भर गई थी और वे उसे पतनोन्मुखता से बचाकर नवीन लोकसत्तात्मक राष्ट्र बनाना चाहते थे। आन्तरिक कुशासन को ध्वस्त कर वैदेशिक अधिकार से मुक्त कर तुर्की को विश्व के उन्नतिशील राष्ट्रो में ये स्थान दिलाना चाहते थे। इसी लिए गुप्त समिति द्वारा नवीन तुर्की आन्दोलन का प्रचार हुआ २३ जुलाई को "एकता व उन्नति की समिति" ने सालोनिका में १८७६ के विधान की घोषणा की—जिसे कि सिंहासनासीन होने के पश्चात् सुलतान ने भंग कर दिया था। अब चतुर और कुटिल सुलतान ने इस विधान को स्वीकार कर लोकतंत्र की स्थापना का आश्वासन दिया। जनता को धार्मिक, प्रकाशनिक और व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्रदान की व ४० हजार गुप्तचरो को पदच्युत कर दिया, परन्तु थोडे ही समय मे इसने इन सुविधाओं का अन्तकर सामरिक शक्ति द्वारा प्रतिक्रियावाद की स्थापना की। मई १६०६ में "नवीन तुर्की" की सेना

कान्स्टान्टिनोपल में प्रविष्ट हुई व सुलतान को पदच्युत कर उसके भ्राता मुहम्मद पंचम को तुर्की का सुलतान घोषित किया।

२—बुल्गेरिया की स्वाधीनता

इस प्रकार तुर्की के नए नवीन सुधार के युग की सृष्टि हुई-जिसका इंग्लैण्ड ने भी समर्थन किया। विप्लवियो ने प्रजातंत्र प्रणाली पर विधान निर्माण किया, किन्तु पुनः राष्ट्रीय उत्थान के लिए धार्मिक निस्ठुरता और संकीर्ण तुर्कीकरण की नीति से प्रतिक्रिया का श्रीगणेश हो गया। नवीन तुर्की के आन्दोलन ने अनेक प्रश्नों को जन्म दिया। अक्टूबर १९०८ मे तुर्की के आन्तरिक विद्रोह का सुयोग पाकर बुल्गेरिया के राजा फार्डिनेण्ड ने बर्लिन की संधि को भंग कर स्वयं को स्वाधीन राजा घोषित कर दिया। यद्यपि तुर्की के साथ युद्ध अवश्यम्भावी था, फिर भी रसिया की मध्यस्थिता से अप्रेल १९०९ में तुर्की की लोकसभा ने आर्थिक क्षतिपूर्ति के अवसान पर बुल्गेरिया की स्वाधीनता को स्वीकार कर लिया।

३—आस्ट्रिया की नीति

बुल्गेरिया की स्वतंत्रता के दो दिन पश्चात् ७ अक्टूबर को आस्ट्रिया ने बोस्निया और हरजीगोविना को साम्राज्य लीन करने की घोषणा की। बर्लिन कांग्रेस मे आस्ट्रिया को यहां शासनाधिकार प्राप्त हुआ था। मैजिनी ने भविष्य वाणी की थी—"जब निकट प्राच्य की समस्या का समाधान होगा, तब यूरोप में आस्ट्रिया समस्या का उद्भव होगा"। १८६६ में जर्मनी से बहिष्कृत होने के अनन्तर आस्ट्रिया दक्षिण पूर्व की ओर प्रभाव विस्तार करने लगा। बोस्निया, हर्जीगेविना के हस्तगत करने से आस्ट्रिया का डाल्मेशिया-तट पर भी प्रभुत्त्व होगया और ईजीअन और एड्रियाटिक समुद्र पर उसका

प्रभाव स्थापित हो गया। पर इससे इटली और सार्विया मे आस्ट्रिया के प्रति विरोध जागृत हो गया यद्यपि जर्मनी के समर्थन से तत्काल युद्ध नहीं हुआ, किन्तु उसके बीज अंकुरित हो गये थे और वह अनिवार्य था।

४—सर्विया का स्वार्थ

आस्ट्रिया के साथ सर्विया का संघर्ष अवश्यम्भावी था, क्योंकि ऐड्रियाटिक समुद्र के तट का अधिकार उसका एक आर्थिक प्रयोजन था। सर्विया तुर्की के अधीनता से सबसे प्रथम मुक्त हुआ था व वोस्निया—हरजीगोविना एवं डाल्मेशिया की क्रोट्स और स्लोवेन्स जातियों का नेतृत्व ग्रहण कर रखा था। इनकी पराधीनता से उसके स्वार्थ निर्बाध नहीं थे। फ्रांस और इंग्लैण्ड इसके साथ थे। आस्ट्रिया की नीति से रसिया अत्यन्त रुष्ट था। इन सबने मिलकर महायुद्ध की बारूद का संचय किया।

(क) ट्रिपोली का युद्ध

नवीन राष्ट्र इटली भी तुर्की की ओर साम्राज्य विस्तर का प्रयासी था व उसने उत्तरी अफ्रीका के तट को फ्रांस द्वारा ऐल्जिरीया और ट्यूनेशिया व इंग्लैण्ड द्वारा मिश्र को अधिकृत करने के कारण हस्तगत करने की कामना की। केवल ट्रिपोली ही अब इटली के लिए शेप रहा गया था। नवीन तुर्की की यूरोपीय नीति की विरुद्धता व जर्मनी का ट्रिपोली में वैज्ञानिक अन्वेषण के सन्देह ने इटली को तत्काल युद्ध करने की प्रेरणा दी। २५ सितम्बर १९११ में इटली ने अकस्मात् तुर्की के विरुद्ध युद्ध घोषित कर तटवर्ती नगर ट्रिपोली, बैंगाजी व दिसना को अधिकृत कर लिया। इटली की नौसेना ने रोड्स और डोडेकॉनीज द्वीप को हस्तगत कर लिया। अक्टूबर १९१२

मे लऊसाने की संधि से पराजित तुर्की ने ट्रिपोली को इटली को भेट कर दिया।

(अ) प्रथम बल्कान युद्ध (१९१२–१९१३)

१—बलकानसंघ:—बॅल्कान से नवीन संकट का पुनः उदय हुआ। महान् क्रीट के नेता मैनिजेलॅस के नेतृत्त्व में ईसाई राष्ट्र समूह ने तुर्की के निर्यातन से मेसिडोनिया को मुक्त करने के लिए बॅल्कान-संघ का निर्माण किया, जिसके सदस्य यूनान सर्बिया, माण्टीनीग्रो और बुल्गेरिया थे। यह सत्य है कि मैसिडोनिया के सुधार के लिए शक्तिगोष्ठी ने अनेक प्रयत्न किये थे। १९०३ मे इस समस्या के समाधान का सम्पूर्ण अधिकार इसीने आस्ट्रिया और रसिया को दे दिया था। मुर्स्टेग के समझौते के अनुसार आस्ट्रिया और रसिया ने तुर्की के सुधारों का प्रयोग करने के लिए मैसिडोनिया में युक्त अधिकार स्थापित किया। कर को संचित करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक समिति को नियुक्त किया गया, परन्तु नवीन तुर्की इन राष्ट्रों के हस्तक्षेप से असंतुष्ट था। बॅल्कान राज्यसमूह ने स्वयं ही अक्टूबर १९१२ मे शक्तिगोष्ठी के प्रतिवाद होते हुए भी मैसिडोनिया को मुक्त करने के उद्देश्य से तुर्की के विरुद्ध युद्ध घोषित किया।

(२) युद्ध की घटनाऐं

तुर्की पर संघ ने चारों ओर से आक्रमण किये। बुल्गेरिया वासियो ने एड्रियानपोल को परिवेष्ठित कर तुर्की सेना को पराजित किया। सर्बिया नोवी बाजार पर आक्रमण कर अल्बेनिया व दुराजो बंदरगाह को अधिकृत कर लिया। माण्टीनिग्रो ने दूसरी ओर से अल्बेनिया और यूनान ने थैसेली पर आक्रमण कर सैलोनिका को हस्तगत कर लिया। ईजियन समुद्र पर भी

इनने अधिकार स्थापित कर लिये। यूरोप की शक्तिगोष्ठी ने इसी समय तुर्की की रक्षा का पुनः प्रयास किया व निश्चय किया कि तुर्की केवल कान्स्टान्टिनोपल्ला, जामिना और अल्बेनिया के स्कुटरी इन तीनों शहरों पर ही अधिकार रखेगा! निष्पक्षता के लिए रूमानिया को दूसरा दर्जा दिया गया, परन्तु तुर्की ने एड्रियानपोल को छोडने से अस्वीकार कर दिया—जिससे युद्ध पुनरावृत्ति हुई। वल्कान संघ ने द्रुत गति से उपर्युक्त तीनों नगरों पर अधिकार कर पराजित तुर्की को मई १६१३ के लंडन संधि सम्मेलन में योग देने को बाध्य कर दिया।

(३) लंडन की संधि

१६१३ की लन्डन सन्धि में थ्रेस प्रदेश के एकांश जिसमें तुर्की की राजधानी अवस्थित थी—को छोड कर तुर्की को सम्पूर्ण राज्य छोडना पडा। अल्बेनिया को स्वायत्त शासन दिया। क्रीट यूनान के साथ सम्मिलित हो गया। कान्स्टान्टिनोपल की ओर बुल्गेरिया के प्रसार ने रूस को अतंकित किया, परन्तु अल्बेनिया के प्रश्न ने पुनः उपद्रव को जन्म दिया। सर्विया चाहता था कि इस प्रदेश को विभाजित कर माण्टीनिग्रो और स्वयं लेलें—आस्ट्रिया ने इस से असहमति व्यक्त की। इंग्लैड, फ्रांस और रसिया ने सर्विया का समर्थन किया। १६५३ के प्रथम भाग में इन्हीं कारणों से आस्ट्रिया और रसिया मे संग्राम की तैयारी होने लगी। फ्रांस ने रूस को व जर्मनी ने आस्ट्रिया को सहयोग देने का आश्वासन दिया। इस सम्मेलन के अध्यक्ष व इंग्लैड के राष्ट्रमन्त्री एडवर्ड ग्रे ने सम्पूर्ण राष्ट्रों में शान्ति स्थापित करने का सफल प्रयत्न किया व १५ मास के लिए यूरोप का वातावरण पुनः शान्त हो गया।

(ट) द्वितीय वल्कान युद्ध (१६१३)

वल्कान संघ में शान्ति पुनः भंग हो गई। विजित सम्पत्ति

के विभाजन में इसके सदस्य परस्पर लड पडे। यूनान सर्विया और बुल्गेरिया मैसिडोनिया को अधिकृत करना चाहते थे व जून १६१३ में पारस्परिक दावे निर्णय करने के लिए बुल्गेरिया के विपरीत सर्विया, रूमानिया, यूनान और माण्टीनिग्रो ने युद्ध घोषित किया। एक मास के संग्राम मे बुल्गेरिया पराजित हो गया व आस्ट्रिया की मध्यस्थता से अगस्त १६१३ में बुकारैष्ट की संधि स्वीकृत हुई। बुल्गेरिया ने रूमानिया को सिलीखिया और द्रुत्र्-द्जा के अधिक अंश प्रदान किये; यूनान, सर्विया और मण्टीनिग्रो को मैसिडोनिया के अधिक अंश दिये; तुर्की को ऐड्रियानेपोल और थ्रेस के कुछ अंशों का अधिकार दिये। इन से बुल्गेरिया की प्रचुर क्षति हुई।

यद्यपि तुर्की को इस संधि से प्रभूत लाभ हुआ, फिर भी ईसाई राष्ट्रों की स्वाधीनता और विस्तृतता से यूरोप में तुर्की साम्राज्य का एक प्रकार से अन्त हो गया। तुर्की के पास अब केवल कान्स्टान्टिनोपल, ऐड्रियानेपोल, बाष्फरस और दर्दा नेलिस की प्रणाली शेष रह गई। रूमानिया को सबसे अधिक लाभ हुआ—इसके राज्य की सीमा २६८७ वर्ग मील तक और प्रजा-प्रायः तीन लाख अधिक बढ गई और यह बल्कान का सबसे बृहत्राष्ट्र हो गया। बुल्गेरिया मैसिडोनिया में ६ हजार वर्ग-मील व १ लाख २५ हजार प्रजा का लाभ हुआ। नोवी बाजार के अधिकार से माण्टीनिग्रो द्विगुणित हो गया। सर्विया की जन संख्या (४½ लाख) डेढ गुणा बढ गई और इसकी सीमा (३३ हजार वर्ग मील) द्विगुणित हो गई। यूनान को क्रीट, ईजियन द्वीप समूह, मैसिडोनिया में सालेनिका और थासस् द्वीप मिला। उसकी जन संख्या में २० लाख व सीमा में १५ हजार वर्ग मील वृद्धि हुई।

बुल्गेरिया तुर्की—विजय के फल को छीन लेने से अपने

प्रतिवेशियो को क्षमा नहीं कर सका। रूस पुनः आस्ट्रिया के विपरीत बल्कान संघ का संरक्षक बन गया। जर्मनी ने तुर्की की सेना के पुनर्गठन का भार लिया। आस्ट्रिया की बुल्गेरिया समर्थन नीति से असन्तुष्ट सर्विया प्रतिशोध स्वरूप आस्ट्रिया से बोस्निया, हरजोगोविना की स्लाव प्रजा को अपने अधिकार में लेना चाहता था। आस्ट्रिया भी बॅल्कान प्रतिद्वन्द्वी सर्विया को सामरिक पराजय द्वारा उचित शिक्षा देने के लिए युद्ध के निमित्त का अन्वेषण कर रहा था—जिसका विस्तृत वर्णन अग्रिम अध्यायो में करेंगे। जहां तक यह विदित हुआ है—१६१३ में इटली के राष्ट्र विभाग को आस्ट्रिया ने सूचित किया कि वे सर्विया के विपरीत युद्ध करना चाहते हैं और त्रिराष्ट्रीय मैत्री के अनुसार इटली के सहयोग की आशा करते है।

२३ जून १६१४ को आस्ट्रिया के युवराज फ्रांस फार्डिनेन्ड को सर्विया के अराजकवादी बोस्निया के प्रमुख नगर सिराजेवो में मार दिया। हिसाब पूर्ण करने के लिए एक सुवर्ण सुयोग मिल गया। हत्याकाण्ड क बम की आग ने महायुद्ध के लिए संचित बारूद मे चिनगारी लगा कर महान् विस्फोट किया।

——*——
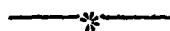
८—सशस्त्र शान्ति का युग

(१८७१ से १९१४)

(क) यूरोप के प्रमुख राष्ट्रों की आंतरिक समस्या

१—तीन प्रधान लक्षण

फ्रेंकफर्ट संधि के पश्चात् प्रायः अर्द्ध शताब्दी तक यूरोप मे शान्ति रही। यह समय आन्तरिक संगठन और रचनात्मक आन्दोलन का काल था। इस युग के तीन प्रधान लक्षण थे—प्रथम औद्योगिक क्रान्ति, द्वितीय श्रमिक आन्दोलन और तृतीय सैनिक राष्ट्रीयवाद। आगे हम इनकी विस्तृत व्याख्या कर रहे हैं।

(क) *औद्योगिक क्रान्ति*—इस युग में औद्योगिक परिवर्तन इतने अधिक चमत्कारपूर्ण हुए कि एक आविष्कार दूसरे को भी पीछे ढकेल कर आगे बढ़ा। शिल्पकला के स्थान पर यंत्रो की प्रचुरता हुई, वाष्प के स्थान पर विद्युत का प्रसार हुआ व साइकिल के स्थान पर रेल और मोटरो का प्रचार हुआ। पैट्रोल के सफल परीक्षन से वायुयान का उदय हुआ। तारों के स्थान पर बेतार वार्त्ता का प्रचलन हुआ और कोयले के स्थान पर तैल द्वारा शक्ति का उत्पादन किया जाने लगा। इसी प्रकार चिकित्सा आदि अन्याय वैज्ञानिक धाराओं में भी प्रगति हुई। उत्पादन की प्रचुरता और यातायात की सुविधा से अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय की प्रसार हुई व समग्र संसार की जनता आर्थिक दृष्टि से एक दूसरे पर अधिक निर्भर हो गई। आत्म-निर्भरता का सिद्धान्त अब लुप्त हो गया।

औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम स्वरूप विभिन्न राष्ट्रों में नवीन समस्या का उदय हुआ। श्रमिक जैसा नूतन वर्ग अपने अधिकारों का दावा करने लगा। महिला—आन्दोलन को भी प्रोत्साहन मिला। मेरी उल्स्टोनक्रैफ्ट और जॉन स्टुवर्ट मिल ने अष्टादश और उन्नीसवीं में महिलाओ के राजनैतिक और वृत्ति-निर्वाह की स्वाधीनता का प्रचार किया। अधिक सामाजिक सुरक्षा, शिक्षा का प्रसार, आर्थिक स्वतन्त्रता बीसवीं शताब्दी के महिला जागरण के प्रमुख कारण थे। नवीन स्कूल और कालेजो ने विगत महायुद्ध के पश्चात् शिक्षा की अपूर्व सुविधाएं दी और सार्वजनिक परीक्षाएं भी उनके लिए खोल दी गई। विवाहित महिला संपत्ति की अधिकारिणी हो गई और अन्य प्रतिबन्ध भी इनसे हटा दिये गये। इंग्लैण्ड मे राजनैतिक समानता महिलाओ को मिली, यद्यपि नाजी जर्मनी, फ्रांस और इटली मे इन्हे मताधिकार से वंचित किया गया। संक्षेप में वृत्ति निर्वाह, सामाजिक स्वाधीनता, आर्थिक सुविधा, राजनैतिक एव नियमों का समानताओं ने साधारण महिला के जीवन मे एक विराट् क्रान्ति को जन्म दिया।

(ख) श्रमिक आन्दोलन

(अ) श्रमिक संघ :—इस युग की दूसरी विशेषता श्रमिक वर्ग की स्थिति का आमूल परिवर्तन थी। यद्यपि औद्योगिक क्रान्ति ने किसी भी सुविधावादी वर्ग की सृष्टि नहीं की, फिर भी नवीन सुयोगों, सुविधाओ और आविष्कारों के प्राचुर्य ने मानव को यन्त्र का दास बना दिया और चारों ओर बेकारी दिखाई देने लगे। यहीं आकर पूँजीपति और श्रमिक में वर्ग भेद हो गया। एक ओर पर्याप्त धन, विशेष सुविधा और श्रमिक के क्रय की शक्ति और दूसरी ओर दीन, हीन, दैनिक

वेतन पर जीवित रहने वाला बेचारा श्रमिक। अर्थहीन, उद्योग रहित व अनुभवहीन श्रमिक इस परिस्थिति में आ गये थे कि उन्हें रोटी के लिए पूँजीपति पर निर्भर रहना आवश्यक हो गया था। पूँजीपतियों ने इनकी दयनीय अवस्था से पूर्ण लाभ उठाये। असह्य और अस्वास्थ्यकर परिस्थिति में श्रमिक-वर्ग से अधिक से अधिक काम लेकर उसके प्रतिदान मे अत्यन्त अल्पमात्रा पूंजीपतियो ने उसे दी। नवीन यन्त्रो की सृष्टि ने श्रमिकों को बेकारी का भी शिकार बना दिया। श्रमिक वर्ग द्वारा एक कार्य को बारंबार करने से उनकी उदासीनता और रुचिहीनता से पारदर्शिता के होते हुए भी इस औद्योगिक संगठन ने उनकी मानसिक शक्ति का विकास नही होने दिया। इस न्यूनता को दूर करने के लिए श्रमिक आन्दोलन ने तीन प्रकार से प्रयत्न किये। प्रथम प्रयत्न श्रमजीवी संघ का संगठन—इसका उद्देश्य था श्रमिको को एकत्रित कर उनके हितों की सामुदायिक रूप से रक्षा करना। १८७१ मे इंग्लैण्ड के मन्त्री ग्लैडस्टोन ने इस संघ को वैधानिकता प्रदान की। फ्रांस के मन्त्री वाल्डेक रूसो ने १८८४ में इसे मान्यता दी। यद्यपि जर्मनी में विस्मार्क ने १८७८ में श्रमजीवी-संघ को निपिद्ध कर दिया, फिर भी प्रशासन ने श्रमजीवियों के हित के लिए अनिवार्य वीमा, दुर्घटना में आर्थिक सहायता, वार्द्धक्य में पेन्शन आदि का प्रवन्ध किया। प्रत्येक श्रमजीवियो के लिए इस संघ में योग देना अनिवार्य नहीं था, परन्तु नेता इसकी सदस्यता के लिए श्रमिकों को वाध्य करते थे। इस संघ ने सदस्यो के शुल्क से अत्यन्त धन संचित कर उसे श्रमजीवियों की आर्थिक स्थिति के संस्कार में लगाया। हड़ताल इस संघ का प्रमुख अस्त्र था—अपने साथ साथ अन्य संगठनों को भी यह सहानुभूति प्रदर्शन के लिए हड़ताल करने को वाध्य करता था। अन्त मे यह आम-

हड़ताल की घोषणा करा देता था। उद्योगशालाओं का द्वारावरोध पूँजीपति का प्रधान अस्त्र था।

यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि श्रमिक संघ ने श्रमजीवियों के काम के समय को घटा दिया, वेतन को बढ़वा दिया और विभिन्न उद्योगो के श्रमिक वर्ग के रहन सहन स्तर को ऊँचा उठाया, परन्तु अपने प्रभु के साथ संघर्ष करने के लिए अपने सदस्यो को यह कठोरता के साथ बलात् नियन्त्रित करता था जो कि एक प्रकार का अत्याचार था। श्रमिक की उत्पादन मात्रा और वेतन का भी इसने निरीक्षण किया और श्रमिक को अधिक द्रुत और अधिक समय तक काम करने में भी निरुत्साहित किया। संक्षेप में श्रमिक संगठन ने सदस्यो को श्रमिक वर्ग के हित के लिए आत्मसमर्पण की शिक्षा प्रदान की।

(आ) प्राशासनिक सुधार

श्रमिक संघ ने श्रमिको के हित के लिए प्रशासन को जागरूक बना दिया। विभिन्न राष्ट्रों में नियुक्ति की अवधि काम के घंटों, स्वास्थ्यकर वातावरण, न्यूनतम वेतन व समय समय प्राशासनिक निरीक्षण के अतिरिक्त नियमों द्वारा व्यवस्थाएँ की गई। अन्य भी अनेक सुविधाएँ दी गई—जैसे—श्रमिक क्षतिपूर्ति के नियम, रुग्णावस्था और बेकारी के लिए राष्ट्रीय बीमा की योजना, वार्द्धक्य के लिए पेन्शन आदि। काल की गति से उद्योग के प्रभु भी उद्भासित हो गये और श्रमिकों को सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न करने लगे।

(इ) समाजवाद

श्रमिक वर्ग इतने पर भी सन्तुष्ट न हो सका व इन सुधारों को वास्तविक दोपों के मूलोच्छेद मे असमर्थ मानने लगा। इसकी यही धारणा समाजवाद के रूप में परिणत हो गई।

"समाजवाद" शब्द का अर्थ अस्पष्ट है। कुछ ने इसको विद्रोह की भावना समझा, कोई इसे अराजकवाद और आदर्श समाज की स्थापना का प्रयत्न व आर्थिक हित की योजना मानते थे। जोड ने सत्य ही कहा है—"समाजवाद एक ऐसी टोपी है—जिसकी बनावट बिगड चुकी है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति इसको धारण करता है"। यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि समाजवाद की शाखा-प्रशाखाएँ समाजवादियों के ही समान विस्तृत हैं। फिर भी मूलतः इसके तीन सामान्य सिद्धान्त है—आधुनिक औद्योगिक सभ्यता और पूँजीवाद के विरुद्ध आक्रमण इसका प्रमुख आधार है। वेतनजीवी वर्ग के विशेष सुविधा व अधिकार इसका द्वितीय सिद्धान्त है। व्यक्तिगत सम्पत्ति व उत्पादन शक्ति का समष्टिकरण इसका तृतीय सिद्धान्त है।

समष्टिगत अधिकार के सम्बन्ध मे अनेक मत भेद है। दो प्रश्न इस विषय मे विचारणीय है—प्रथम उत्पादन के साधन किस प्रकार के सामूहिक अधिकारी के पास रहने चाहिए व द्वितीय कब और किस प्रकार से व्यक्तिगत अधिकार समष्टिगत अधिकार में लीन होंगे। फ्रांस और जर्मन के समाजवादी और इंग्लैड के श्रमिक दल समुदायवाद पर विश्वास करते हैं—जिसका उद्देश्य उत्पादन के साधनों पर व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि का प्रभुत्व स्थापित करना है। फ्रांस और इटली के श्रमिक संघवाद और अमेरिका के औद्योगिक संघ और इंग्लैण्ड के समिति समाजवादियो का लक्ष्य श्रमिकों को विभिन्न व्यवसायिक रूप रेखा पर संगठित कर हड़ताल आदि साधनो द्वारा उनका उत्थान करना था। अराजक साम्यवादी बाकुनिन और क्रपट्किन सर्वत्र साम्यवाद का प्रचार करते थे और ऐसे समाज की कल्पना करते थे—जिसमे सब सदस्य विवेकशील, समानता और बन्धुत्व के भाव से ओतप्रोत हों—जिनके लिए किसी

शासन संस्था, नियम, पुलिस और कारावासों की आवश्यकता न रहे। वेतन-प्रणाली का अवसान हो। यह समाज को राजकीय हस्तक्षेप से हीन व सर्वथा स्वतंत्र बनाना चाहता था।

यह एक आश्चर्य का विषय है कि समाजवादी अपने सिद्धान्तों के प्रयोगिक—प्रकारो मे एक मत नहीं हैं। समुदायवादी लोकतंत्र और वैधानिक उपाय से अपने लक्ष्य तक पहुँचना चाहते थे। श्रमिक संघवादी औद्योगिक नियंत्रण के लिए वर्ग संघर्ष, गुप्तनाश, बहिष्कार और हड़तालो के माध्यमों से समाजवाद स्थापित करना चाहते थे। साम्यवादी विद्रोह द्वारा पूंजीपतियो के अवसान व समाज मे पूर्ण समानता—स्थापन को प्रमुख साधन मानते थे। साम्यवादियों के दो प्रमुख दलों में प्रथम सहिष्णु दल आर्थिक सुधार और राष्ट्रीय हित की प्राथमिकता देता था, परन्तु उग्रदल पूंजीपतियो का विघातक और विश्वव्यापी क्रान्ति का समर्थक था एवं मध्यमवर्गीय संस्थानो तक से विपरीत था।

आधुनिक समाजवाद का प्रवर्तक कार्ल मार्क्स था। इसके पूर्वतम काल में इंग्लैण्ड के टामस हाजस्किन, (१८८७ से १८६६) विलियम थमसन (१७८५ से १८३३) राबर्ट ओयेन, (१७७१ से १८५८) व फ्रांस के फूरियर (१७७२ १८३७) सैन्ट–सीमन (१७६० से १८२५) एवं प्राउधन (१८०६ से १८६५) आदि गणनीय व्यक्तियो ने समाजवाद का प्रसार किया। १७६३ और १८४८ के मध्य में प्रत्यक्ष रुप से समाजवाद का परीक्षण फ्रांस और अन्यान्य देशो में किया, परन्तु आदर्श समाजवादी शक्तिशाली राजनैतिक दल का गठन नहीं कर सके। मार्क्स ने एञ्जेल्स के सहयोग से समाजवादी सिद्धान्तों को नवीनता प्रदान कर अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी आन्दोलन को जन्म दिया।

(ई) कार्ल मार्क्स और उसके सिद्धान्त

प्रशिया के रेनिस प्रदेश में १८१८ मे मार्क्स का जन्म ट्रीयर नगर में हुआ था। बौन व बर्लिन विश्वविद्यालय के अध्ययन काल में इसने हैगेल के आदर्शवादी दर्शन का सूक्ष्मतम ज्ञान प्राप्त किया। युवक अवस्था में इसने नवीन जर्मनी के गणतांत्रिक और विप्लवी आन्दोलन का समर्थन किया। १८४२ में एक उग्र संवाद पत्र की सम्पादकता भी इसने की–जिसे एक वर्ष के अनन्तर प्रशिया के प्रशासन ने बन्द कर दिया। अपनी स्थिति को अरक्षित समझ कर यह पेरिस में गया व वहीं फ्रांसीय समाजवादी एञ्जिस (१८२० से १८६५) का परम मित्र बन गया। एञ्जिस ही इनके अवशिष्ट जीवन का दक्षिण–हस्त था। पेरिस के वहिष्कार के अनन्तर मार्क्स अपने परिवार के साथ अल्पकाल तक ब्रुशेल्स में रहा। इस समय इसकी प्रतिष्ठा का प्रचार इतना वढ गया था कि १८४७ में इसे जर्मन साम्यवादी संघ के घोषणा-पत्र लिखने के लिए पेरिस मे आमन्त्रित किया। १८४८ मे "सुप्रसिद्ध साम्यवादी घोषणा-पत्र" (कम्यूनिष्ट मैनिफैस्टो) को इसने प्रकाशित किया–जिसको "आधुनिक समाजवाद" का जन्म दिवस कहा जाता है। इसके कुछ दिन वाद यह लन्डन में शरणार्थी रहा–जहां इसने अपनी अमर पुस्तक "दास कैपिटल" की रचना की।

मार्क्स के चार मूल सिद्धान्त थे। (१) "अर्थ मानव का आधार भूत प्रयोजन है। धर्म, कला, दर्शन और भावना का उदय और अस्त अर्थ में ही होता है। इतिहास की भौतिक कल्पना का सिद्धान्त इसी तत्त्व पर निर्भर है"। इसका विश्वास था कि भविष्य के इतिहास में श्रमजीवियों की विजय और पूँजी-पतियों का विनाश अंकित होगा। (२) यह आर्थिक विचार "वर्ग संघर्ष" के रूप मे अभिव्यक्त होता है। वर्तमान समाज दो

शत्रुओ में विभक्त है-प्रथम श्रमजीवी एवं पूँजीपति। इन दोनो की मित्रता असम्भव है। ये दोनो एक दूसरे के ध्वंस मे ही अपना हित देखते है। (३) श्रमजीवियो का युक्ति द्वारा समर्थन करने के लिए इसने "मूल्य के नियम" नाम से एक नवीन आर्थिक सिद्धान्त का प्रवर्त्तन किया। इसका मंतव्य था कि— "वस्तु का मूल्य उसके निर्माण मे व्यय किये गये 'आवश्यक सामाजिक-श्रम,' पर निर्भर है। श्रमिक जितने मे अपने श्रम को वेचता है, उससे अधिक उत्पत्ति करता है। यह अन्तर "अतिरिक्तार्ध" कहलाता है-जिसका उपभोग श्रमिक को प्रतारित कर-पूँजीपति करता है"। इन दो वर्गों के संघर्ष का यही प्रमुख कारण है। (४) मार्क्स के विचारों में "पूँजीपति की अतृप्त पिपासा के परिणाम से व उत्पादन शक्ति के केन्द्रीभूत होने से पूँजीवाद का पतन सुनिश्चित है। छोटे पूँजीपतियों को बडे बड़े पूंजीपति हड़पने का यत्न करते है और इस प्रकार उत्पत्ति के साधन कुछ एक व्यक्तियों के हाथो में केन्द्रित हो जाते है"। "ऐसी स्थिति मे बुभुक्षु मानव जब उठेगा तो समाजवाद की स्थापना अनिवार्य होगी। उसके संघर्ष में छोटे पूँजीपति भी सम्मिलित हो जायेंगे"।

यद्यपि "साम्यवादी घोषणा-पत्र" (कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो) मे विप्लव को प्रोत्साहित किया गया किन्तु "दास कैपिटल" में हम इसे वैज्ञानिकवादी पाते हैं। पर इन दोनों मे ही अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद की ही पुष्टि की गई।

(उ) समीक्षा

"मूल्य के नियम" और "इतिहास की भौतिक-धारणा" मार्क्स की दो प्रमुख देन हैं-जिन पर संसार के विचारको ने विभिन्न दृष्टिकोण व्यक्त किये हैं। आधुनिक समालोचको का मंतव्य है कि मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद श्रमिक-क्रान्ति को क्रिया-

न्वित करने के पश्चात् वहीं स्थिर हो जायेगा । मार्क्स के सिद्धान्तों का आधार था-पूँजीपतियो और श्रमिको का विरोध और यही क्रान्ति का स्रष्टा है। परन्तु वर्तमान इतिहास यह प्रकट करता है कि आधुनिक औद्योगिक प्रसार. श्रमिक और पूँजीपतियो मे विरोध नहीं, समन्वय स्थापित कर रहा है और आज के श्रमिक संघ व राष्ट्र इन दोनों को एक दूसरे पर निर्भर बना रहे हैं। इसी लिए इसके मूल्य नियम से व पूँजीपति और श्रमिक के पृथक्-करण से अनेक अर्थशास्त्र विशारद सहमत नहीं है। अनवरत आर्थिक आन्दोलन के पश्चात् आधुनिक श्रमिक मार्क्स के मतानुसार क्रांतिकारी नहीं है-आश्चर्य का विषय यह है कि रसिया एक ही राष्ट्र ऐसा है-जहां औद्योगिक विकास-पर्याप्त मात्रा मे नहीं हुआ-वहां पर क्रान्तिकारी मार्क्स-वाद का प्रचार हुआ। विस्तृत उद्योग में छोटे छोटे उद्योग लीन हो जायेंगे-यह सत्य है, किन्तु उस से उद्योग का विकास ही होगा और श्रमिक को भी सुयोग मिलेगा। अभी तक वह समय नहीं आया है-जिसमे कि ऐतिहासिक समाजवाद के अन्तिम निर्णय तक पहुँच सकें। शिक्षित समाज मे पूँजीपतियों का पक्षपात है, परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि बीसवी शताब्दी के यूरोप मे ऐसा कोई राष्ट्र नही है-जहां समाजवाद का प्रभाव न पड़ा हो। पूँजी और साम्राज्यवादी इंग्लैण्ड-जहाँ कि अर्थशास्त्रज्ञ एक मत नही थे-वहां भी इसका प्रसार हुए बिना नही रह सका और आज हम स्वीकार करेंगे कि इंग्लैण्ड में भी कोयला, लोहा इत्यादि का राष्ट्रीयकरण कर समाजवाद को क्रियान्वित किया जा रहा है।

मार्क्स का समाजवाद अन्तर्राष्ट्रीय सम्पत्ति थी। "श्रमिकों के लिए कोई एक विशेष राष्ट्र नहीं है, ये तो सारे विश्व मे विस्तृत है। अपने स्वार्थ-सिद्धि के लिए इनका एकत्रीकरण

स्वाभाविक है"। इस चेतना को जागृत करने के लिए मार्क्स ने १८६४ में "अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ" की स्थापना की-जिसको इतिहास में "प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघठन" कहा जाता है। इसमें यूरोप के प्रत्येक देश के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। स्वयं मार्क्स ने इसके कार्यक्रम प्रस्तुत किये थे और यूरोप के प्रत्येक राष्ट्र मे इसके अधिवेशन होते थे। सम्भवतः पेरिस का स्वशासित जिला शासन (१८७०) इसी से प्रभावित था। १८६८ में मार्क्स समाजवादी अराजकवादी-अथवा शून्यवादियो-के नेता बाकुनिन् के साथ समन्वित हो गया, परन्तु मार्क्स और बाकुनिन् परस्पर विवाद करने लगे। फ्रांस और जर्मनी के १८७० के युद्ध में बाकुनिन् ने फ्रांस और मार्क्स ने जर्मनी का समर्थन किया। परिणामतः १८७२ में मार्क्स ने बाकुनिन् और उसके अनुयायियों को संघ से बहिष्कृत कर दिया। बाकुनिन् के बहिष्कार से यह श्रम संगठन दुर्बल हो गया और १८७६ की जिनेवा कांग्रेस के पश्चात् यह स्वतः ही भंग हो गया।

समाजवादियों ने अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को पुनर्जीवित करने के लिए दो प्रचेष्टाऐं की। १८८६ में मार्क्स की मृत्यु के पश्चात् "द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय संघ" की स्थापना हुई। इसके अधिवेशन मे विभिन्न दलों ने समाजवाद को क्रियान्वित करने के लिए अनेक उपायों व माध्यमों पर विचार करते हुए युद्ध और शान्ति की भी विवेचना की। परन्तु यह स्पष्ट हो गया कि यदि युद्ध प्रारम्भ हो जाय तो प्रत्येक समाजवादी दल अपने राष्ट्र का समर्थन करेगा। द्वितीय श्रमिक सघ भी प्रथम महायुद्ध की घोषणा के साथ साथ बुदबुदे के समान विलीन हो गया। १६१६ मे साम्यवादी रूस के नेतृत्व में तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन का जन्म हुआ-जिसका प्रधान कार्यालय मास्को था। यह सगठन निश्चय ही क्रांतिकारी था,

इसीलिए यह समाजवाद के स्थान पर साम्यवादी बन गया। "इसका मूल उद्देश्य था–क्रान्ति के माध्यम से समाजवाद की स्थापना"।

संकीर्ण क्रांतिवादी मार्क्सवाद का प्रसार चीन और रूस को छोड़ कर संसार के अन्य राष्ट्रो मे नहीं हुआ। फ्रांस भी "श्रमिक संघ वादी" मार्क्सवाद के तीव्र विरोधी हो गया था। इस सिद्धान्त के जन्म दाता प्राउधन को "वर्ग संघर्ष"मे विश्वास था, परन्तु वह मार्क्स की तरह केन्द्रीय शक्ति को दृढ़ बना कर पूँजीपतियो के स्थान पर श्रमिक वर्ग के अधिनायकवाद की स्थापना का विरोधी था। इसलिए उसके आन्दोलन का उद्देश्य उत्पादन तथा वितरण के साधनों को श्रमिक सघो के आधीन करना था। जर्मनी मे मार्क्सवाद का प्रचार समाजवादी जन-तांत्रिक दल के संस्थापक फार्डिनेण्ड लैसले (१८६२) के नेतृत्त्व मे हुआ–जिसकी स्वाधीन प्रियता, सस्कृति और ज्ञान ने बिस्मार्क को भी प्रभावित किया। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में एडवर्ड बर्नस्टाइन ने "संशोधनवाद" का प्रचार किया। इसने मार्क्स के आर्थिक सिद्धान्तों को स्वीकार करते हुए भी आक-स्मिक क्रांति द्वारा राज्यसत्ता के उन्मूलन का विरोधी था। यह प्रकट किया कि "मार्क्स की भविष्यवाणी सत्य नहीं हुई, इसी लिए उसके सिद्धान्तों का सशोधन करना चाहिए"। वह धीरे धीरे सुधार और विकास के नियमानुसार परिवर्त्तन का पक्षपाती था। इतिहास मे इसका यह सिद्धान्त "विकासवादी समाजवाद" के नाम से विख्यात है। फिर भी आगे चल कर-यह अन्तर्राष्ट्रीयता के स्थान पर राष्ट्रीयता एवं उपनिवेशो और साम्राज्यवाद का समर्थन करने लगा–जिससे यह पूँजीपतियों के समाजवाद की शृंखला में फँस गया।

रसिया मे राजनैतिक और आर्थिक स्थिति रक्त क्रान्ति के

अनुकूल थी, इसीलिए १९१७में क्रान्तिकारी मार्क्सवाद रक्तमय वर्ग-संघर्ष के पश्चात् "श्रमजीवियो के अधिनायकवाद" का संस्थापक बना—जिसके नेता लेनिन और वर्त्तमान से स्टालिन हैं। इसकी विशद व्याख्या हम आगे करेंगे।

संक्षेप में औद्योगिकवाद व श्रमिक आन्दोलन बीसवी शताब्दी की दो महान् विशेषताऐं हैं एवं तृतीय है सामरिक राष्ट्रीयवाद।

(ग) सामरिक राष्ट्रीयवाद

इस युग मे अन्तर्राष्ट्रीयता का सर्वातिशय प्रचार हुआ। महिला आन्दोलन और समाजवाद, व्यवसाय और उद्योग, यातायात की सुविधा, शिक्षा का विस्तार इत्यादि प्रत्येक वस्तुओ से एक अन्तर्राष्ट्रीय भावना का उद्भव हुआ। प्रो० कैटिलवो का कथन है—"धर्म से भूकम्प प्रदर्शक यन्त्र, चिकित्सा शास्त्र से नौ प्रधावन इत्यादि प्रत्येक मनुष्य की क्रियाये एक अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन से निर्णीत होती थीं"।

राजनैतिक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय भावना अधिक स्पष्ट और सफल हुई। बॅल्कान, सुदूर चीन और अफ्रीका का एक सामान्य उपद्रव भी यूरोप के प्रत्येक राष्ट्र को हिला देता था—और इन समस्याओं के समाधान के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन की अनिवार्य आवश्यकता थी। मोरक्को की समस्या, कांगों के स्वाधीन राष्ट्र का निर्माण, लक्षेम्बर और बेल्जियम में शक्तिगोष्ठी द्वारा सुरक्षा की व्यवस्था, चीन मे अन्तर्राष्ट्रीय आक्रमण—ये सभी अन्तर्राष्ट्रीय सहकारिता के लक्षण थे। १८५६ में पेरिस की कांग्रेस ने नौ युद्ध के नियमो का निर्णय किया एवं १८६४ की जिनेवा की सभा ने युद्ध काल में चिकित्सा-व्यवस्था को निष्पक्ष कर दिया। इस समय से ही जॉर निकोलास द्वितीय के नेतृत्व में अन्तर्राष्ट्रीय पचायत के लिए १८६६ और १९०७ में

"हेग-सम्मेलन" के दो अधिवेशन हुए। प्रथम "हेग-सम्मेलन" में ५९ स्वाधीन राष्ट्रों मे से २६ एवं द्वितीय में ४४ प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। सम्मेलन अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए अकृतकार्य रहा, क्योंकि निरस्त्रीकरण के सम्बन्ध में मौलिक विभिन्नताएँ थीं।

इस अन्तर्राष्ट्रीय सहयोगात्मक भावना में राष्ट्रीय चेतना अन्तर्हित थी—जिसने सम्मेलन को भंग कर दिया। बॅल्कान राष्ट्रों के मुक्ति संग्राम, पोलैण्ड की स्वाधीनता के प्रयास, आस्ट्रिया-हंगेरी की विभिन्न जातियों की राष्ट्रीय भावना, नवीन जर्मनी के साम्राज्य विस्तार के प्रयत्न, असन्तुष्ट इटली की अफ्रीका में विस्तार की योजना, एशिया की कान्स्टेन्टिनोपल के अधिकृत करने की कामना, फ्रांस की जर्मनी के विपरीत प्रतिशोधात्मक भावना—ये सब प्रथम महायुद्ध के संघीभूत कारण थे। इनके अतिरिक्त औद्योगिक और सैनिक क्षेत्रों में भी राष्ट्रों में पारस्परिक विरोध जागृत हुआ। संसार के प्रत्येक राष्ट्र ने अन्य राष्ट्रों से धन संचय और बाजार के एकाधिकार के उद्देश्य से प्रतियोगिताएँ की। परिणामतः एक राष्ट्र ने दूसरे राष्ट्र के औद्योगिक ध्वंस के लिए कर और अन्यान्य प्रतिबंध लगाकर अपनी सीमा मे माल के आयात को प्रतिबद्ध कर दिया। राष्ट्रीय प्रतिद्वन्द्विता का प्रदर्शन सामरिक-प्रतियोगिता मे इतना अधिक प्रकट हुआ कि प्रत्येक राष्ट्र दूसरे से अधिक शस्त्र और सैनिक संगठन का प्रयास करने लगा। आधुनिक सैनिकवाद का प्रचार इतिहास मे तीन बार हुआ। प्रथम फ्रांसीय विप्लव की सामरिक आवश्यकता और नेपोलियन की महत्त्वाकांक्षा से १८-१९ वीं शताब्दी में उदय हुआ, इसीलिए हम कह सकते है कि फ्रांसीय लोकतंत्रवाद से ही इस सैनिक राष्ट्रीयवाद की उत्पत्ति हुई और अनिवार्य सैनिक प्रवेश की

शिक्षा विश्व को सब से पूर्व फ्रांस ही ने दी। द्वितीय का प्रचार प्रशिया ने किया। प्रशिया की सामरिक शक्ति और वैज्ञानिक युद्ध-प्रक्रिया ने जर्मनी को संगठित किया और फ्रांस को १८७० में पराजित कर जर्मन साम्राज्य को स्थापित किया। प्रशिया की सामरिक शिक्षा इतनी अधिक सूक्ष्म और वैज्ञानिक थी—जिसके सम्बन्ध मे आज भी कहा जाता है—"स्वीडान मे शिक्षक ही की विजय हुई"।

१८७० में फ्रांस की विजय का परिणाम अनिवार्य सैनिक प्रवेश की भित्ति पर सेना का पूर्णतः पुनर्गठन था। इसी प्रकार फ्रांस और जर्मनी की सामरिक प्रतियोगिता एक दूसरे को संदिग्ध दृष्टि से देखने लगी और सैनिक शिक्षा और सङ्गठन प्रचुर मात्रा मे बढ़ा। १८८५ मे फ्रांस की सेना मे शान्ति के समय ५ लाख व्यक्ति थे और अधिक संख्या वाले जर्मनी मे केवल ४ लाख ८७ हजार संख्या थी। वीस वर्ष पश्चात फ्रांसीय सेना ४५ हजार बढ़ गई और जर्मनी सेना ५ लाख ५ हजार तक पहुँच गई परन्तु जर्मनी के लिए दो सीमान्तो की रक्षा करना अनिवार्य था, क्योकि फ्रांस और रसिया मित्र थे और रसिया भी स्वयं को सशस्त्र कर रहा था। इसीलिए १९१३ में जर्मनी ने एक विशेष सैनिक नियम द्वारा सेना को आठ लाख तक बढ़ा दिया व इसकी प्रतिक्रिया से फ्रांस ने भी अनिवार्य सैनिक प्रवेश की अवधि को तीन वर्ष तक बढ़ा दिया—जिससे १५ दिन मे वह ४० लाख सेना को एकत्रित कर सके।

इंग्लैण्ड छोड़ कर यूरोप के अन्य राष्ट्रों ने भी इन्ही दोनो का अनुकरण किया। चारों ओर समुद्र से परिवेष्ठित होने से १९१४ मे उपनिवेशो के साथ इंग्लैण्ड की सेना केवल ढाई लाख थी, परन्तु १९०६ के पश्चात् इंग्लैण्ड ने जर्मनी के साथ नौशक्ति की प्रतियोगिता में भाग लिया। १९०६ में इंग्लैण्ड ने "ड्रेड-

नॉट" के नाम से नवीन प्रकार के सामरिक जहाज का निर्माण किया और विश्व के दो शक्तिशाली राष्ट्रों के समान केवल अपनी नौशक्ति को बढ़ाना चाहा। जर्मनी के नवीन सम्राट् विलियम द्वितीय ने भी इस युद्ध-जहाज का अनुकरण कर नौशक्ति को इतना संगठित किया कि इंग्लैण्ड भी आतंकित हो गया? क्योंकि इस प्रगति से जर्मनी ५ वर्ष में ही नौशक्ति के क्षेत्र मे इंग्लैण्ड का अतिक्रमण कर जाता। इंग्लैण्ड के नौ-मन्त्री चर्चिल ने (१९११ से १९१४) १९११ मे यह घोषणा की "कि वैदेशिक नौशक्ति की अपेक्षा इंग्लैण्ड की नौशक्ति की वृद्धि होना रक्षा के लिए अनिवार्य है"। इसने जहाज निर्माण का ऐसा कार्यक्रम बनाया—जिससे जर्मनी से नौशक्ति की ६० प्रतिशत वृद्धि हो जाय। समय समय पर इंग्लैण्ड ने जर्मनी के साथ समन्वय करने के लिए सशस्त्र प्रतियोगिता के प्रतिबंध को प्रस्तावित किया, परन्तु जर्मनी ने अपनी शक्ति को इंग्लैण्ड से ६० प्रतिशत न्यून नहीं रखना चाहा। इस प्रकार यूरोप के प्रत्येक राष्ट्र ने प्रत्यक्ष रूप से शान्ति का नारा बुलन्द किया और अप्रत्यक्ष रूप से युद्ध के लिए सन्नद्धता की। अपने सैन्य संगठन को समर्थित करने के लिए प्रत्येक ने अपने प्रतिवेशी की आक्रमणात्मक भावना को उद्धृत करते हुए इसे अनिवार्य सिद्ध किया।

प्रथम महायुद्ध के पूर्व आधुनिक यूरोप के इतिहास में औद्योगिकवाद, श्रमिक आन्दोलन और सामरिक राष्ट्रीयवाद ये तीनों धारायें थीं, जो यूरोप के प्रमुख राष्ट्रों के आन्तरिक इतिहास के अध्ययन की भूमिका है।

२—जर्मनी (१८७१ से १९१४)

क-संघीय विधान—इस काल मे यूरोपीय इतिहास में जर्मनी सब से अधिक प्रभावशाली हुआ। विलियम प्रथम फ्रांस

के भरसालिस प्रासाद मे "जर्मन सम्राट्" घोषित किया गया था–यह हम देख चुके है। परन्तु सम्राट् की यह पदवी वैधानिक दृष्टि से असंगत प्रतीत होती थी, क्योंकि जर्मनी एक "साम्राज्य-संघ" था। साम्राज्य और संघ दो विरुद्ध धारणाये हैं और इसीलिए जर्मन साम्राज्य-संघ अर्द्धशताब्दी से अधिक जीवित नही रह सका। जर्मनी १६३३ तक अमेरिका के युक्त राष्ट्र कनाडा और आस्ट्रेलिया की तरह एक संघीय राष्ट्र था। यह एक २६ राष्ट्रो का एक असम्पूर्ण संघ था— जिसमें प्रत्येक राष्ट्र स्थानीय समस्याओ मे पूर्ण प्रभुत्त्व रखता था व प्रत्येक की पृथक् कार्यकारिणी, विधान सभा व न्याय-प्रणाली थी। इसके अतिरिक्त एक केन्द्रीय व संघीय प्रशासन था—जिसमे विधान सभा के दो भवन कार्यकारिणी सभा और सर्वोच्च न्यायालय थे। निम्न राष्ट्रीय भवन "राइकस्टाग" समग्र साम्राज्य का सार्वजनिक पुरुष मताधिकार से निर्वाचित एक प्रतिनिधि मण्डल था। उच्च-भवन—जिसका नाम "बुन्देसरॉट" था— मे प्रत्येक राज्य से समान प्रतिनिधि पारस्परिक समन्वय से सम्मिलित थे। प्रशिया के १७, बवेरिया के ६, सैक्सेनी और वाटम्बर्ग के प्रत्येक ४ व १७ छोटे छोटे राज्यों का प्रतिशः एक प्रतिनिधि नियत था। संघीय कार्यकारिणी प्रशिया के राजा (काइज़र) के हाथ मे केन्द्रित थी व संघ के राज्यमन्त्री की नियुक्ति का भार भी सम्राट् पर ही था। संघ के नियमों के लिए राजा के हस्ताक्षर अनिवार्य थे, यद्यपि राजमन्त्री ही सर्व-सर्वा था। बिस्मार्क स्वयं इस विधान का निर्माता था। यह स्मरण रखना चाहिए कि लोक-सभा "रॉइक-स्टाग" मे विपरीत मतों अथवा अविश्वास के व्यक्त करने पर भी राज्य-मन्त्री का पदत्याग नहीं हो सकता था।

संक्षेप मे जर्मन साम्राज्य-संघ की दो विशेषताएँ थी-प्रथम राजसत्ता का प्राधान्य, द्वितीय प्रशिया का नेतृत्त्व। जर्मन

संघ राजसत्तावादियो का एक समुदाय था व राजाओं की सम्मति से ही इस के विधान का निर्माण हुआ था। इसी लिए उच्च भवन "बुन्देसरॉट" जो कि नरेन्द्र प्रतिनिधियों का संघ था, लोकसभा "रॉइक स्टाग" पर प्रभुत्त्व रखता था। नियम के प्रयोग की शक्ति भी विभिन्न राजाओ के ही अधिकार में थी।

संघ में प्रशिया का प्राधान्य था। यह दो तृतीयांश प्रदेशों का ही अधिकारी नही, परन्तु समग्र जनता का (३/५) तीन पंचमांश इसके निवासी थे। "रॉइकस्टाग" मे इसके २३५ आसन थे और "ब्रुन्डेसरॉट" में २० मत थे–जिससे विधान के सशोधन पर इसका पूर्ण प्रभुत्त्व था। प्रशिया का राजा ही जर्मनी का वंश परम्परागत सम्राट्, सेनापति और वैदेशिक नीति का संचालक था। साम्राज्य के प्रधान मन्त्री की नियुक्ति भी यही करता था–जो प्रशिया के आन्तरिक मत्रिमंडल का अध्यक्ष था। प्रशिया के सामरिक संगठन व नियम–सग्रह जर्मनी के प्रत्येक राज्य मे प्रयुक्त हुए। शासन की संपूर्ण समितियों का यही सभापति था और प्रशिया की राजधानी ही सपूर्ण संघ की राजधानी थी। एक शब्द मे जर्मनी साम्राज्य प्रशिया ही का प्रभुत्त्व था।

(ख) प्रधान मन्त्री–विस्मार्क (१८७१ से १८९०)

ग्रान्ट राबर्ट्सन का कथन है–"१८७१ से १८९० तक का जर्मनी का इतिहास भिस्मार्क का जीवन–चरित ही नहीं, अपितु यूरोप का अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास है"। १८७१ में बिस्मार्क संघ का प्रथम प्रधानमन्त्री नियुक्त हुआ एवं इस काल में बिस्मार्क की नीति रचनात्मक थी और शान्ति, संगठन और उन्नयन इसके राजनैतिक जीवन का प्रधान उद्देश्य था। बिस्मार्क ने कहा "जर्मनी का निर्माण सम्पूर्ण हो गया है और जर्मनी अब एक तृप्त शक्ति है"।

(अ) आंतरिक नीति (१८७१ से १८९०)

कैटिलबी का कथन है—"समाजवादी, सहिष्णु, संकीर्ण-दल, प्रकाशन, जनता और लोकसभा के विद्रोह होते हुए भी बिस्मार्क एक एसा महापुरुप था-जिसने विरोधियों को कभी डरा कर, धमका कर व दमन कर अपने मूल ध्येय स्वैर शासन की स्थापना की। आन्तरिक नीति में यह एक अधिनायक था"। इसने अपने विरोधियों को घृणात्मक दृष्टि से देखा और अनेक स्थानो पर इसके निर्णय भ्रान्ति पूर्ण सिद्ध हुए। शत्रुओं को पराजित कर साम्राज्य को संगठित करना ही इसका प्रधान उद्देश्य था। इसने सघके क्षेत्र को विस्तृत व साम्राज्य-बैंक, साम्राज्य नियम सग्रह, साम्राज्य रेल्वे एवं नवीन सिक्कों "मार्क" का प्रवर्त्तन किया। अधीनस्थ राष्ट्रों की पृथक् सत्ता से यह प्रसन्न नहीं था व उनकी पृथक् मनोवृत्तियों का भी इसने नियंत्रण कर व्यवस्थित जर्मनी-करण-नीति का व्यवहार किया। ३५ लाख पोल, १½ लाख डेन और २० लाख फ्रांसियों को जर्मनी सभ्यता का अनुसरण करने के लिए इसने आर्थिक वैज्ञानिक और शैक्षणिक सुविधाएं प्रदान कीं, किन्तु इसका प्रभाव सर्वथा विपरीत हुआ तथा उनमे जर्मनी के विरुद्ध राष्ट्रीय भावना का जागरण हुआ।

(आ सांस्कृतिक युद्ध (१८७१ से १८७८)

बिस्मार्क की परम शत्रु कैथोलिक गिरिजा थी। बिस्मार्क १८६६ से ही रोमन गिरिजा के विरुद्ध था। यदि १८७० के युद्ध में फ्रांस विजयी होता तो बिस्मार्क ने कहा—"राइन के कैथोलिक प्रदेश पोप के अधिकार में चले जाते"। जर्मनी में भी पोप की प्रचुर शक्ति थी व पादरी वर्ग पर भी पूरा प्रभुत्व था। कैथोलिक दल राष्ट्र के विरुद्ध था एवं पोप के समर्थन से बिस्मार्क

के प्रत्येक कार्यक्रम की तीव्र निन्दाऐं करता था। बिस्मार्क राजनैतिक उद्देश्य से पोप की शक्ति के ह्रास के लिए सन्नद्ध व संघर्षशील था। बिस्मार्क ने कहा—"पोप की सार्वभौमिकता राष्ट्र को चुनौती देती है। इसने भौतिक शक्ति पर अधिकार कर सम्राट् के नियमों को अमान्य कर दिया है। संक्षेप में पोप के अतिरिक्त प्रशिया मे कोई भी विदेशी शक्तिशाली नहीं है"। राजसत्ता और धार्मिक सार्वभौमिकता का संघर्ष शताब्दियों से चला आरहा है। नास्तिक वैज्ञानिक विरचाऊ एवं धर्म विशेषज्ञ डा० डालिङ्गर की सहायता से बिस्मार्क ने पोप की प्रभुता को अस्वीकार किया। १८७१ में "राइकस्टाग" में कैथोलिक दल के ६३ सदस्यों ने विन्डयर्म्ट के नेतृत्त्व में बिस्मार्क की नीति का अनुशासित वैधानिक विरोध किया। बिस्मार्क ने इस दल को भंग करने के लिए १७८१ में एक विशेष नियम द्वारा संकीर्ण ईसाई धर्मावलंबियों को जर्मनी से बहिष्कृत कर दिया और इस विषय की पुरोहितों द्वारा समालोचना को भी अवैध और दण्डनीय घोषित कर दिया। १८७३ मई में अनिवार्य कानूनी विवाह का प्रवर्त्तन पादरियों के लिए किया व प्रत्येक पुरोहित को राजकीय शिक्षणालय व विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के लिए बाध्य किया गया। सार्वजनिक बहिष्कार को निषिद्ध किया एवं धार्मिक दंड के विपरीत प्रत्यावेदन का अधिकार दिया। कैथोलिक शिक्षणालयों के निरीक्षण का प्रबन्ध कर पुरोहितों की पदच्युति के राष्ट्रीय अधिकार को घोषित किया। दो वर्ष पश्चात् संपूर्ण धार्मिक श्रेणियां अथवा वर्गों को भंग कर दिया।

पोप ने उपर्युक्त नियमो को निरर्थक घोषित किया व कैथोलिक पादरियों के लिए इसका पालन निषिद्ध कर दिया। बिस्मार्क ने कठोर दमन नीति को अपनाते हुए उत्तर दिया कि "हमारी

आत्मा या शरीर कनोशा* नहीं जायेंगे"। बिस्मार्क ने इस सप्त-वर्ष व्यापी धार्मिक संघर्ष को "सांस्कृतिक युद्ध" (कुल्टुरकैम्फ) के नाम से व्यवहृत किया। लिओ त्रयोदश जब पोप हुआ, तो बिस्मार्क ने समझौता करना चाहा व कैथोलिको के विरुद्ध नियमों को लागू नहीं किया। चतुर लिओ त्रयोदश ने शास्त्रीय अधिकारों को ठीक रखा और १८८७ में साम्राज्य और पोप के मध्य एक प्रकार की मैत्री स्थापित हुई—जिसके फलस्वरूप पोप ने कैथोलिक दल को साम्राज्य सेना संगठन के विपरीत मत देने से निषिद्ध कर दिया। बिस्मार्क का आत्म-समर्पण उसकी पराजय का निदर्शन था, परन्तु सहिष्णु और समाजवादी दल भी साम्राज्य के विपरीत जा रहा था, इसीलिए यह समझौता करने के लिए बाध्य हो गया।

(३) समाजवादी दल से संघर्ष

१८७८ में सम्राट् की हत्या के दो प्रयत्न किये गये। बिस्मार्क को समिति, सभा, प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगा कर पुलिस राज्य स्थापना के लिए विवश किया गया। जर्मनी में समाजवादी प्रजातन्त्र-दल सबसे अधिक संगठित राजनैतिक दल था—जिसका ध्येय शान्तिपूर्ण उपायों से राजसत्ता का विरोध था। इसीलिए समाजवादी नेताओ को बन्दी बना कर उनकी सम्पत्ति और प्रकाशन को बलात् हस्तगत कर लिया गया। २७ वर्ष के काल में १४०० प्रकाशन प्रतिबद्ध, ६०० को निर्वासित एवं १५०० को बन्दी बनाया गया। श्रमिक संघ को अवैध घोषित किया गया और सभाभवनो पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

---

* १०७० ई० मे पोप ग्रेगरी सप्तम और सम्राट् हैनरी चतुर्थ के समय हैनरी ने इटली के प्रमुख नगर कैनोशा मे पोप के सामने आत्म-समर्पण किया था।

परन्तु इस दमन नीति से गुप्त समितियों का उद्भव हुआ और जर्मनी के बाहर स्विट्जरलैण्ड में बिस्मार्क के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ हुये। समाजवादी प्रजातन्त्र दल ने निर्वाचन में अधिक आसन प्राप्त किये व १८६० में पराजित बिस्मार्क ने किसी विशेष नियम की आवृत्ति नहीं की। यह संघर्ष की अस्वीकारात्मक प्रणाली थी।

बिस्मार्क ने अप्रत्यक्ष रूप से समाजवादी सिद्धान्तो को स्वीकृत कर श्रमिकों के हित के लिए अनेक नियम पास किये—जिन्हें इतिहास में राज्य-समाजवाद का परीक्षण कहा जाता है। १८८३, ८४ व ८६ में यथाक्रम रुग्णता, दुर्घटना और वार्द्धक्य के लिए राजकीय बीमे की व्यवस्था की गई। १६११ में इन सब को सम्मिलित कर सामाजिक बीमे का प्रवर्तन किया गया। संसार के इतिहास में बिस्मार्क ने ही सबसे पूर्व श्रमिकों के कल्याण के लिए इस पद्धति को अपनाया व इंग्लैण्ड और फ्रांस ने भी इसका अनुकरण किया। श्रमिक संगठन को गुप्त रूप से प्रोत्साहित किया गया। काम के घन्टों को न्यून और उद्योग-शालाओं को नियन्त्रित किया गया। फिर भी बिस्मार्क समाज-वादी प्रजातन्त्र दल को सन्तुष्ट नही कर सका एवं अन्त में अप्रत्यक्ष रूप से उसने अपनी पराजय स्वीकार की।

(ई) सम्राट् फ्रेडरिक तृतीय (६ मार्च से १५ जून १८८८)

२५ वर्ष के संक्रमणकाल के अनन्तर मार्च १८८८ मे सम्राट् विलियम प्रथम का ६१ वर्ष की आयु में अवसान हुआ। बिस्मार्क ने अपनी आत्म कथा मे लिखा-"राजाओं में ऐसे उच्च कुल और चमत्कृत स्वभाव का व्यक्ति हमने अपने जीवन में नहीं देखा, जो सब को आकर्षित कर लेना था"। मृत्यु के बाद उसका पुत्र फ्रेडरिक तृतीय ६६ दिन के रोगग्रस्त राज्यकाल के अनन्तर १५ जून १८८८ में मरगया। उसका पुत्र कैज़र

विलियम द्वितीय जर्मनी का सम्राट् हुआ और इतिहास में एक नवीन युग की सृष्टि की

(उ) कैजर विलियम द्वितीय (१८८८ से १९१८)

बिस्मार्क का पदत्याग:—महत्त्वाकांक्षी २९ वर्षीय युवक सम्राट् चिन्तन शील विलियम द्वितीय राज्याभिषेक के अनन्तर स्वयं शक्ति को केन्द्रीभूत करने के प्रयत्न में था। अनुभवहीन, अधीर, अस्थिर व भावुक सम्राट् बिस्मार्क के स्वैर शासन को सहन नहीं कर सका। उसने कहा—"साम्राज्य एक है—उसका सर्वाधिकारी भी एक ही हो सकता है-चाहे हम या बिस्मार्क" मार्च १८९० में अभिलाषी सम्राट् ने बिस्मार्क को "आदेश" देना प्रारंभ किया। यह एक ऐसा शब्द था—जो बिस्मार्क ने अपने प्रभु से कभी नहीं सुना था। बिस्मार्क ने कहा-"यह आदेश द्वार के बाहर तक ही रहेगा"। सम्राट् ने स्पष्टी करण किया कि उन्हीं का आदेश क्रियान्वित होगा-चाहे उसका बिस्मार्क पालन करे या अन्य। बिस्मार्क ने कहा—"महामान्य सम्राट्? क्या मैं यह समझूँगा कि मैं आपके मार्ग में प्रतिबंधक हूँ"। उत्तर मिला "हाँ"। प्रधान मन्त्री ने त्याग-पत्र देते हुए कहा—"हम नत-जानु होकर सेवा नहीं कर सकते" व सम्राट् ने इसे स्वीकार कर लिया। जर्मनी के निर्माता का पतन हुआ और कैजर स्वयं ही अपना मन्त्री बन गया। बिदाई के समय सम्राट् ने इसे अनेक पदवियों से सम्मानित किया व इसकी देनों के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। यह अपने विश्राम काल में एकाकी रहा व १८९८ तक जीवित रहा। राबर्टसन का कथन है—"इस समय आन्तरिक नीति के संघर्ष का समन्वय हो सकता था, परन्तु वैदेशिक नीति में सम्राट् और ये दोनो मूलत: विपरीत थे-जिनका समन्वय असम्भव था"।

(ग) समीक्षा

बिस्मार्क एक अलौकिक शक्तिशाली पुरुष था। इसका रहस्यमय चरित्र इसके भक्तों की दृष्टि में भी कभी कभी विवाद पूर्ण हो जाता है। पर इसके परम शत्रु भी यह स्वीकार करेंगे कि नेपोलियन, मैटर्निक फ्रेडरिक महान् और वालपोल की नीति का भी उनके साथ ही ध्वंस हो गया, किन्तु बिस्मार्क की प्रणाली अमर रही। कुछ एक समालोचक कहते हैं कि बिस्मार्क की नीति का परित्याग करते ही जर्मनी की प्रथम महा युद्ध में पराजय हो गई, इस विवाद पूर्ण विषय पर हम अधिक नहीं कहना चाहते। यह सत्य है कि बिस्मार्क ने रक्तपात और शक्तिप्रयोग मे आधुनिक जर्मनी का निर्माण किया था, परन्तु इतिहास में इसका स्थान निर्धारित करते हुए हमें महान् कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, क्योंकि जर्मनी-निवासी इसे अन्य और बाहर की जनता इसे दूसरी ही दृष्टि से देखती थी। कुछ लोगों का मत है कि इसने शक्ति प्रयोग कर दमन की नीति को ग्रहण किया एवं लो तंत्र-वाद का ध्वंस किया। जर्मनी का एकत्रीकरण, यूरोप में जर्मनी के प्रभुत्त्व की स्थापना, सशस्त्र शान्ति-स्थापन, सहिष्णु प्रजातन्त्र-वादियों का पराजय, सम्राट् की सार्वभौमिकता, पैतृकशासन, अभीष्ट सिद्धि के लिए वैध अवैध उपायों का प्रयोग, राष्ट्रीय जीवन के लिए युद्ध की आवश्यकता ये सब बिस्मार्क के जीवन और प्रणाली की अमूल्य देन हैं-जिनका आज भी जर्मनी और यूरोप मे अनुकरण किया जाता है। समय समय पर बिस्मार्क असफल रहा-जैसे समाज वादियों व कैथोलिकों का दमन आदि-परन्तु यहां पर भी इसने "प्रेम और पदाघात" की नीति का प्रयोग कर जर्मनी को भौतिक उन्नति ही नहीं दी, परन्तु संघीय शासन को शक्तिशाली बना दिया। संरक्षण-कर, शिल्प-शिक्षा का प्रबंध, सामरिक शिक्षण

आधुनिक यूरोप का इतिहास
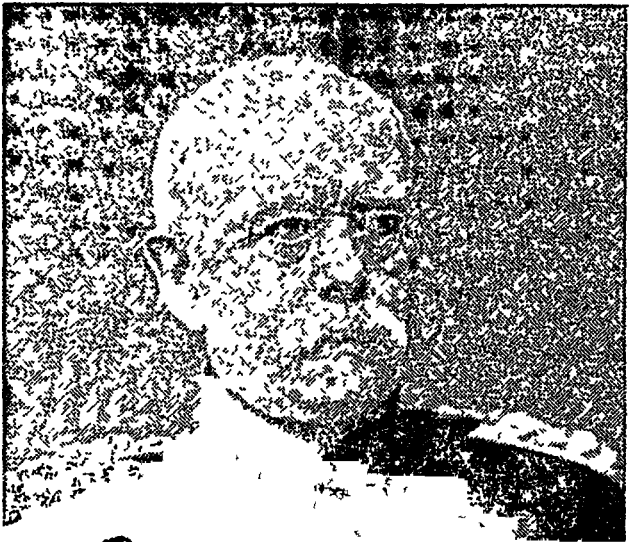
बिस्मार्क (१८१५-१८६८)
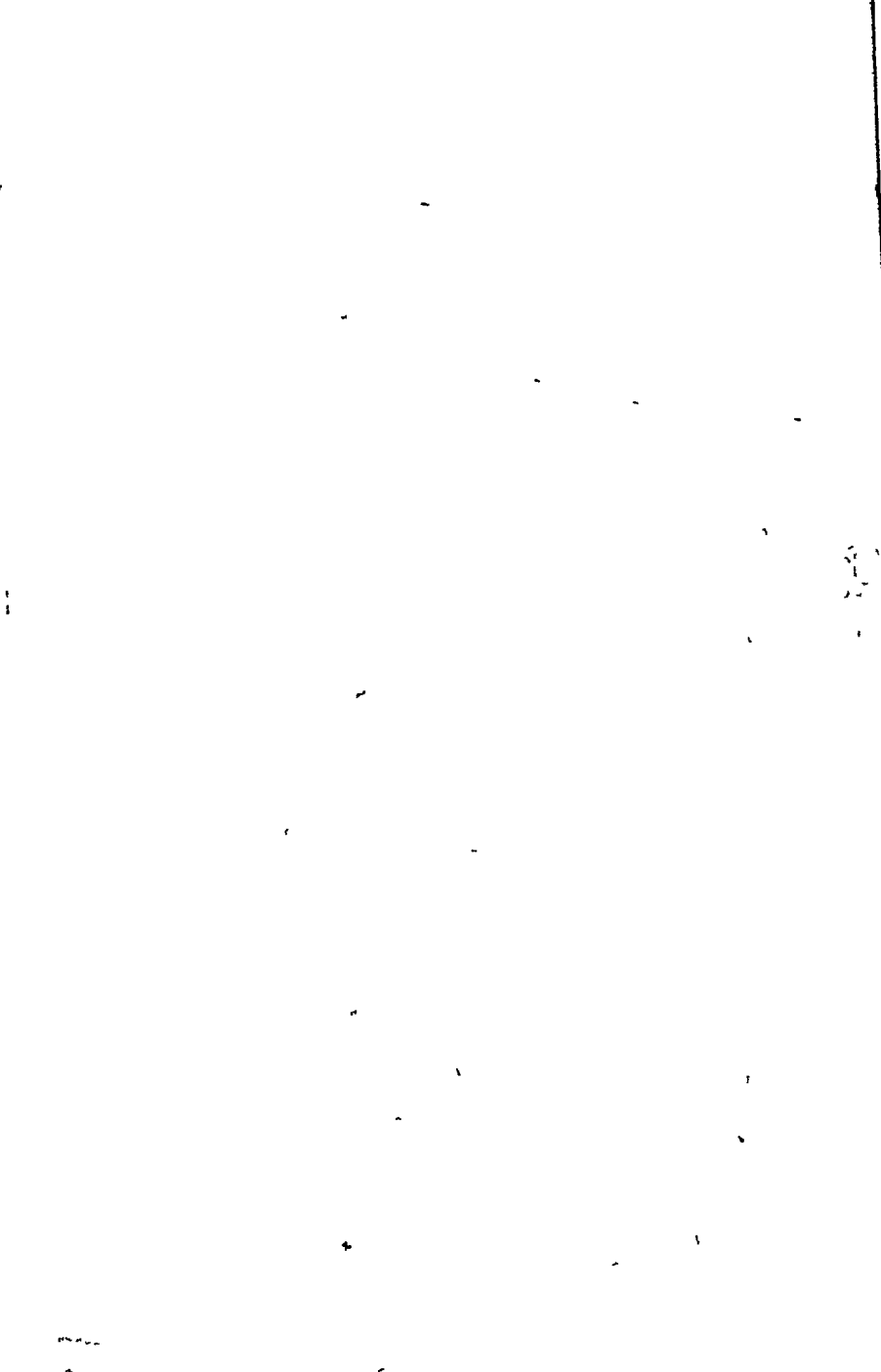
की व्यवस्था, आधुनिक सामाजिक रीतियों की रचना, समाजवादी नीति इन सबने बिस्मार्क को जर्मनी के लिए प्रातः-स्मरणीय बना दिया।

वैदेशिक विषयों में बिस्मार्क एक अपूर्व कलाकार, विलक्षण राजनैतिक और चतुर कूटनीतिज्ञ था। वृद्ध सम्राट् विलियम प्रथम ने सत्य ही कहा था—"बिस्मार्क एक अद्वितीय जादूगर था—जो पांच गेंदों से एक साथ खेल सकता था—व उनमे से दो हर समय हवा मे रहती थीं"। ये पांच गेंद आस्ट्रिया, फ्रांस, रसिया, इंग्लैण्ड और इटली थी। आवश्यकता होने पर इन्हीं पर वह जादू का प्रयोग करता था और फ्रांस को कूटनीति से पृथक् रख लेता था। मध्य-यूरोप मे आस्ट्रिया व इटली के साथ त्रिसदस्यीय मैत्री स्थापित करके नवीन जर्मन साम्राज्य को इसी ने संगठित कर शत्रु के आक्रमण से सुरक्षित रखा। पूर्व सीमान्त मे रसिया के साथ समन्वय कर इंग्लैण्ड को महा द्वीपीय गुट्ट से पृथक् कर यूरोप में २० वर्ष तक शान्ति का संरक्षण किया—जिसका विशद वर्णन हम अग्रिम अध्यायों में देंगे।

बिस्मार्क युग में हम इसके गुणो को प्रत्यक्ष देख चुके हैं, परन्तु इसके चरित्र में कुछ हीनतायें भी थीं। प्रो. ग्राण्टराबर्ट सन् का कथन है—"इसके चरित्र में उदारता, क्षमा, शीलता, दयालुता, मौनता व आत्मसंयम का अभाव था। यह प्रतीत होता है कि संसार मे वह केवल घृणा ही करना जानता था, क्षमा नहीं"। पदत्याग के अनन्तर इसकी यह धारणा थी कि सम्राट् इसे पुनः आमंत्रित करेंगे, परन्तु सम्राट् की इसने तीव्र निन्दा की अत्यन्त दुःख के साथ सम्राट् ने कहा कि—"आश्चर्य है—इतना महान् व्यक्ति भी इतना नीच हो सकता है"।

बिस्मार्क सर्व प्रथम प्रशिया व पुनः जर्मन निवासी था एवं

यूरोप के सर्वथा विरुद्ध था। राजसत्ता के समर्थन में इसने कहा—"दूरदर्शी और योग्य परामर्शदाताओं के अभाव से राजसत्ता विपन्न हो जायेगी"। राजसभा में महिलाओं के प्रभाव की निन्दा करते हुए इसने कहा—"राजा का राज्य महिला का राज्य है। दुष्ट महिला तो दुष्ट होती ही हैं, परन्तु शिष्ट उससे भी भयंकर होती हैं"। शक्ति ही बिस्मार्क के जीवन का मूल केन्द्र था। ज्ञान, निर्णय, विचार और अनुभव ही थे—इसकी उन्नति के सोपान। इतिहास में अपने स्थान का निर्णय करते हुए इसने कहा—"कैभूर हमसे भी महान् था। हमारे समर्थन में राष्ट्र और सेना थी, परन्तु उसके पीछे कोई भी नहीं था"। संक्षेप में सफलता और असफलता दोनो ही ने इसका आलिंगन किया और १६ वीं शताब्दी के राजनैतिक क्षेत्र में इनसे उच्च चरित्र और निश्चयात्मक पूर्णता नहीं मिलती। हम इसका जितना अधिक विश्लेषण करते हैं, रहस्य उतना ही अधिक गम्भीर और अगाध होता जाता है। यूरोप के मान चित्र और बिस्मार्क की प्रणाली इसकी साक्षी है। रावटसन का कथन है "जर्मनी के इतिहास में बिस्मार्क एक दानवीय शक्ति थी—यह अपूर्व अद्वितीय और अलौकिक शक्ति इतिहास में अत्यन्त विरल है"।

(घ) कैजरकी आन्तरिक नीति (१८६० से १६१४)

१८६० से १६१४ तक नवीन कजर के नेतृत्त्व में जर्मनी वैज्ञानिक और औद्योगिक उत्कर्ष की ओर अग्रेसर हुआ। निकट प्राच्य मे प्रवेश और विश्व में जर्मनी के प्रभुत्त्व का विस्तार ही इसका ध्येय था, परन्तु शासन को प्राजातान्त्रिक पद्धति पर चलाने के लिए जनता ने आन्दोलन किया। निर्वाचन प्रथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रचलित थी—जिसमें मतदाता तीन श्रेणियों में कर के स्तर के अनुसार विभाजित थे। तृतीय वर्ग के मतदाता ८ प्रतिशत व प्रथम श्रेणि मे ५ प्रतिशत होते हुए

भी निर्वाचक मंडल में उनके आसन समान थे। इसके संशोधन के लिए आन्दोलन समाजवादी प्रजातंत्र दल के नेतृत्त्व में प्रारम्भ हुआ। आसनों के पुनर्वितरण के लिए इस दल की ओर से माँग प्रस्तुत की गई। १६१२ के निर्वाचन में समाजवादी दल "राइकस्टाग" मे ११० आसन अधिकृत करने से शक्तिशाली राजनैतिक दल बन गया। विभिन्न राज्यो की विधान-सभाओं मे भी श्रमिक आसन-संग्रह के लिए आन्दोलन प्रारम्भ किया।

मंत्रिमंडल की उत्तरदायिता के लिए जनता ने माँगे प्रस्तुत करना प्रारम्भ किया। लोकसभा में विलियम द्वितीय की विवेक हीन घोषणा से जर्मनी और इंग्लैण्ड के सम्बन्ध असन्तोषपूर्ण हो गये। जनता ने भी लोकसभा में सम्राट् की नीति की तीव्र निन्दाएँ कीं। शिक्षित समाज ने भी निरंकुश शासक को चुनौती दी। बर्लिन के अध्यापक देल्ब्रुक ने १६१४ में लिखा—"जर्मन इतिहास के विद्यार्थियो को यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि एक युद्ध की महान् पराजय की आवृत्ति से ही लोक-सभा सैनिक नियंत्रण की अधिकारिणी होगी"। जर्मन प्रधान मन्त्री भार्न बुलो अपनी पुस्तक "इम्पीरियल जर्मनी" में लिखते हैं—"जर्मन राष्ट्र में प्रतिभा का प्राचुर्य है, परन्तु राजनैतिक दक्षता के विकास के लिए इसे अवसर नहीं मिले"। मसेन ने अपने राष्ट्र के सम्बन्ध में सत्य ही कहा—"वे मुक्त नागरिक नहीं हैं"।

यदि प्रशासन स्वेच्छाचारी था, तो प्रतिवादी भी शक्तिशाली थे। समाजवादी प्रजातंत्र दल का उत्कर्ष इस युग की विशेषता थी। कार्ल मार्क्स एवं लैसले के अनुयायी समाजवादी सम्मिलित रूप से इस दल के स्रष्टा थे—व इनका ध्येय था—सामरिकवाद का ध्वंस, व्यक्तिगत सम्पत्ति का नाश और गणतंत्र की स्थापना। इस कार्यक्रम से यह स्पष्ट है कि यह दल अंशतः राजनैतिक और अंशतः सामाजिक था। भीत सम्राट् ने समाज-

वाद के विपरीत कुछ भी प्रयोग नहीं किये, परन्तु दुर्बलता के सुयोग पर इस दल ने संगठन को विस्तृत किया। यही कारण है कि १६१४ में जर्मनी का यह सबसे महान् राजनैतिक दल था।

बिस्मार्क के चार उत्तराभिकारी हुए। प्रथम कैपरोवी भॉन दुर्बल, अनभिज्ञ व भूतपूर्व सैनिक था–जिसने १८६० से १८६४ तक शासन संचालित किया। वृद्ध होहेनलोही ६ वर्ष तक प्रधान मन्त्री पद पर था। १६०० में उसकी मृत्यु के पश्चात् साहसी भॉन वुलो ने कैजर की नीति को क्रियान्वित किया। १६०६ में चतुर्थ उत्तराधिकारी बेथमैन–हालवेग हुआ और प्रथम महायुद्ध तक कैजर की इच्छा का इसने प्रयोग किया।

(३) फ्रांस का तृतीय गणतन्त्र (१८७० से १६१४)

१८७१ के भयावह संवत्सर ने फ्रांस के आंतरिक इतिहास में वैदेशिक पराजय की प्रतिक्रिया, राजनैतिक संकट और सामाजिक गृह–युद्ध की सृष्टि की।

(क) राष्ट्रीय रक्षा प्रशासन—(१८७० से १८७५) ४ सितम्बर १८७० में स्वीडैन में नेपोलियन तृतीय की पराजय व आत्म समर्पण के साथ साथ हम देख चुके हैं कि फ्रांस में तृतीय गणतन्त्र का उदय हुआ और युद्ध को परिचालित करने के लिए एक अस्थाई शासन पर दायित्व डाला गया—जिसका नाम इतिहास मे "राष्ट्रीय रक्षा प्रशासन" है। १२ फरवरी १८७१ को पेरिस के पतन के द्वितीय दिन राष्ट्रीय संसद् बोर्डो नगर में जर्मनी के साथ सन्धि के अनुमोदन और स्थायी विधान के निर्माण के लिए सम्मिलित हुई। जर्मनी के साथ संधि की गई, परन्तु युद्ध की क्षति पूर्ति न होने तक जर्मनी की सेना को फ्रांस के अधिकार में रखने का निर्णय किया गया। ४ वर्ष तक विधान रचना नहीं हुई एवं अस्थायी शासन चलता रहा।

अस्थायी प्रशासन के इतिहास का हम चार विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन कर सकते हैं। (अ) प्रशासन के आंतरिक शत्रु—स्वशासित जिला शासन—का दमन करना पडा। (आ) युद्ध की क्षतिपूर्ति करनी पडी। (इ) राष्ट्रीय सेना का पुनर्गठन करना पडा। (ई) फ्रांस के भविष्य के निर्णय के लिए नवीन संविधान बनाना पडा।

(अ) स्वशासित जिला शासन का दमन

जर्मनी ने पेरिस में प्रथम मार्च को प्रवेश किया व इसके १७ दिन पश्चात् स्वशासित जिला शासन का विद्रोह प्रारम्भ हुआ। स्वशासित जिला शासन अभिमान, क्षुधा, राजनीति गणतन्त्रवाद, समाजवाद और अराजक वाद से समन्वित एक असाधारण विस्फोट था। पेरिस इसकी मूल भित्ति थी—जिसने एक शताब्दी में दश वार फ्रांस पर शासन करने मे असफल प्रयत्न किया। पेरिस की स्थिति "घायल और वेदना से अंध-पशु के समान थी"। पेरिस की जनता के समय अस्थाई प्रशासन से कोई सहयोग नही प्राप्त किया और राजसत्तावादी बोर्डो की राष्ट्रीय संसद् ने राष्ट्रीय रक्षा दल को—जो राजधानी का एकमात्र रक्षक था—भंग कर दिया। इस रक्षा दल के सैनिक प्रति दिन केवल ३० सैन्ट वेतन पाते थे और जब प्रशासन ने इसको भी अस्वीकार कर दिया तो विद्रोह स्वाभाविक हो गया। आर्थिक और व्यावसायिक अव्यवस्था, राजसत्ता के पुनरस्थापन की आशंका एवं अत्यधिक केन्द्रीभूत शक्ति का प्रयोग, समाजवादी आन्दोलन, अराजकवादियों का उपद्रव ये सब विद्रोह के सम्मिलित कारण थे—जिनका निमित्त शासन द्वारा राजधानी से तोपों का अपाकरण था। जनता ने सैनिकों के अस्त्रों को

छीन लिया, और राष्ट्रीय * संसद् की घोषणाओं को अमान्य कर स्वशासित जिला शासन की घोषणा की। लाल पताका को विद्रोहियों ने लहराया, विप्लवी-पंचांग एवं राष्ट्रीय उद्योगशाला को स्थापित किया व प्रत्येक प्रदेश समूहों को इसी के अनुकरण की प्रेरणा दी—जिससे कि समग्र फ्रांस एक स्वशासित जिला संघ बन जाये—जिसका सर्वाधिकारी श्रमिक होगा। यह घोषणा की गई कि एक नवीन युग का उदय हो गया है। राजनैतिक प्रबंध और धार्मिक संसार का अवसान हुआ, भ्रष्टाचार, धन-शोषण, नौकरशाही एवं सामरिकवाद का भी नाश हो गया और श्रमिक को दासत्व से मुक्त किया गया। पेरिस के निर्वाचन ने इस उद्देश्य का समर्थन किया। राष्ट्र-पति थीयर्स के समक्ष एक ही मार्ग था कि शक्ति-प्रयोग द्वारा इस विद्रोह का अन्त किया जाये, क्यों कि एक वैदेशिक शत्रु फ्रांस के अधीन में था और ऐसे काल में गृह-युद्ध उचित नहीं था। स्वशासित जिला-शासन के सदस्यों को गोली से उड़ा दिया गया—जिसके परिणाम स्वरूप विद्रोहियों ने बंदी पेरिस के प्रमुख नागरिकों को मार दिया। प्रशासन ने विद्रोहियों का निर्दयता पूर्ण हत्याकाण्ड से दमन किया। कहा जाता है कि १७ हजार उग्र सदस्य मारे गये थे एवं ४५ हजार बन्दी व निर्वासित किये गये थे। सीन नदी रक्त से लाल हो गई थी। साम्राज्यवाद इस शताब्दी के अंत तक दुर्बल हो गया, पूंजीवादी और श्रमिक मे इसकी स्मृति अमर हो गई।

(आ) क्षतिपूर्त्ति

स्वशासित जिला शासन के विद्रोह को दमन करने के अन-

---

* बोर्डों के अधिवेशन के अनन्तर यह निश्चय किया गया था कि राष्ट्रीय संसद् पुनः भरसालिस में सम्मिलित होगी।

न्तर राष्ट्रीय पुनर्गठन की समस्या ही मुख्य थी। सबसे प्रथम फ्रांसियों का यह कर्तव्य हो गया था कि वे शीघ्र से शीघ्र जर्मनी को युद्ध की क्षति पूर्त्ति दे दें. जनता ने स्वेच्छा और उत्साह से इस अर्थ का संचय किया। शासन को जहां ३०० करोड फ्रेंक की आवश्यकता थी—जनता ने ४२०० फ्रेंक जमा कराया। परिणामतः २ वर्ष पूर्व ही जर्मन सेना फ्रांस से अपसारित हो गई। बिस्मार्क भी इस आशातीत प्रगति से आश्चर्यान्वित हो गया। इतना ही नहीं, उद्योग और व्यवसाय भी इतना बढ़ा कि १८७८ की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी मे इस आर्थिक उन्नति से सपूर्ण यूरोप चकित हो गया।

इ—सैनिक संगठन

व्यक्तिगत स्वार्थों का त्याग कर सेना को पुनर्गठित किया गया। स्वीडेन के युद्ध (१८७०) ने फ्रांस की मौलिक अयोग्यता और असामर्थ्य को प्रगट किया। इसीलिए १८७२ के सैनिक नियम द्वारा जर्मनी के अनुकरण पर फ्रांसीय सेना को पुनर्गठित करने के लिए अनिवार्य सैनिक प्रवेश प्रारम्भ किया गया—जिन्हें पॉच वर्ष तक शिक्षा ग्रहण कर संरक्षित सेना के रूप मे परिणत करने का निश्चय किया। सामरिक संगठन का जनता ने उत्साह के साथ अनुमोदन किया और बिस्मार्क भी आतंकित हो गया।

(ई) संविधान—निर्माण

संविधान की समस्या अत्यन्त जटिल थी। राष्ट्रीय ससद् में राजसत्ता-वादियो का प्राधान्य था, यद्यपि जनता प्रजातन्त्र में पक्षपात रखती थी। राजसत्ता-वादियो के संसद् मे तीन दल थे—प्रथम नेपोलियन दल—साम्राज्यवादी नेपोलियन तृतीय के पुत्र को राजा बनाना चाहता था, इसकी संख्या ३० थी। द्वितीय

वैधवादी दल—जो बुरबुन वंशीय चार्ल्स दशम के पौत्र चैम्बेर्ड के कुमार का समर्थक था—इसके सदस्य १०० थे। तृतीय आर्लियन वादी थे—जो आर्लियन वंश के शासक लुई फिलिप के पौत्र पेरिस के कुमार के समर्थक थे—इनकी संख्या ३०० थी।

(उ) थीयर्स

१८७१ में संसद् ने थीयर्स को कार्यकारिणी सभा का प्रधान अधिकारी नियुक्त किया। इसके कुछ काल पश्चात् रीवैट नियम द्वारा इसे गणतंत्र का राष्ट्रपति निर्वाचित किया गया। थीयर्स ने कहा था—"सिंहासन एक है, और प्रार्थी तीन हैं। गणतंत्र वाद एक ऐसी प्रशासन प्रणाली है, जो सबको समानता देती है"। इसीलिए वह गणतंत्र वाद का समर्थन करने लगा। राजसत्ता-वादियों ने रुष्ट होकर १८७३ मे इसे पदच्युत कर दिया। थीयर्स ७३ वर्ष की आयु में फ्रांस का राष्ट्रपति बना था। युवक अवस्था से ही थीयर्स का नाम फ्रांस की राजनीति मे सुपरिचित था। यह एक अद्भुत प्रतिभाशाली, कुशल लेखक चतुर राजनैतिक और निष्पक्ष ऐतिहासिक था। १८७० के युद्ध में इसने जनता को उत्तेजित करने मे विशेष भाग लिया था. परन्तु फ्रांस के पुनर्गठन में उसने जो देशभक्ति प्रदर्शित की-उससे इसे "फ्रांस का मुक्तिदाता" कहा गया।

(ऊ) मैक मोहन

थीयर्स की पदच्युति के अनन्तर मैक-मोहन राष्ट्रपति नियुक्त हुआ। राजसत्तावादियों ने पारस्परिक समन्वय कर एक दल बनाने का यत्न किया। वधवादी दल के पुत्रहीन कुमार चैम्बार्ड को फ्रांस का "हैनरी पंचम" के नाम से और प्रतिद्वन्द्वी आर्लियन्स वंश के कुमार को उसका उत्तराधिकारी बनाना निश्चित किया, परन्तु पताका के सम्बन्ध में ये एक मत नहीं

हो सके। हैनरी पंचम ने तिरंगे झन्डे को अस्वीकार कर श्वेत पताका का समर्थन किया–जिससे इनका समन्वय भंग हो गया। यद्यपि राष्ट्रपति मैक–मोहन राजसत्ता का पक्षपाती था, फिर भी राजसत्ता–वादियो के पारस्परिक अन्तर होने के कारण उनमे कोई भी दल संसद् मे बहुमत बनाकर विधान निर्माण में अयोग्य था। वाग्मी गैम्बेटा ने गणतंत्र का प्रचार गांव गांव मे फैला दिया एवं उपनिर्वाचन में क्रमशः इनकी शक्ति संसद् में बढने लगी। १८७३ मे राष्ट्रपति की अवधि ७ वर्ष नियत की गई। अन्त मे एक ऐसे संविधान का निर्माण किया गया—जिसमें उत्तरदायी मन्त्रि–मण्डल, मुख्य समिति, सार्वजनिक मताधिकार द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि–भवन और राष्ट्रपति की व्यवस्था थी–क्योंकि क्या राजसत्ता और क्या गणतंत्र, ये ही थे दोनो के सामान्य आधार। राजनैतिक इतिहास मे यह एक महत्त्व पूर्ण बात है कि एक प्रो० वालेन के विशेष मत से ही इस विधान को स्वीकार किया गया था। हम देख चुके हैं कि १७८९ के अनन्तर यह विधान नवम था, परन्तु यही १८८४ के एक सामान्य परिवर्त्तन के पश्चात् सब से अधिक दिन तक स्थायी रहा। यह एक ऐसा संक्षिप्त विधान था—जिसमे मानव के न आधारभूत अधिकार थे, न कोई सिद्धान्तों का विश्लेषण था।

(ख) १८७५ का संविधानः—यह नवीन विधान इंग्लैण्ड की लोकसत्ता के आदर्श पर बना था। इसके अनुसार राष्ट्रीय संसद् के दो भवन सम्मिलित रूप से राष्ट्रपति का निर्वाचन करेंगे—जिसका कार्यकाल ७ वर्ष तक रहेगा। विधान में उत्तराधिकारी की कोई व्यवस्था नहीं थी। राष्ट्रपति को विधान प्रस्तुत करने के लिए दोनो भवनों की सम्मति अनिवार्य थी। स्वीकृत नियमों को प्रयुक्त करने के अधिकार भी इसी के पास थे। राष्ट्र-

पति ही सेनानायक व नियुक्ति का पूर्ण अधिकारी था । मुख्य समिति की स्वीकृति से यह प्रतिनिधि-भवन को अवधि से पूर्व ही भंग कर नवीन निर्वाचन का आदेश दे सकता था, परन्तु ये सब अधिकार प्रयोग में नहीं आने से नाम मात्र के ही रह गये । इसका कारण यह है कि नियम के अनुसार राष्ट्रपति के प्रत्येक प्रस्ताव पर एक उत्तर-दायी मन्त्री के हस्ताक्षर अनिवार्यतः होने चाहिएं । राष्ट्रपति के पास प्रचुर क्षमा के अधिकार थे । वस्तुतः राष्ट्रपति एक वैधानिक सत्ता थी । प्रकृत कार्य कारिणी सभा मन्त्रि मण्डल था—जो संसद् के प्रति उत्तरदायी था । संसद् के दो भवन थे—मुख्यसमिति—जिसमें ४०वर्ष से अधिक आयु वाले ३०० सदस्य ६ वर्ष तक के लिए अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होते थे । प्रतिनिधि भवन का निर्वाचन सार्वजनिक मत द्वारा चार वर्ष तक के लिए होता था । संक्षेप में यह नवीन विधान राजसत्ता और गणतन्त्र वाद का समन्वय था ।

(ग) प्रमुख घटनाएं:—नवीन निर्वाचन में प्रतिनिधि भवन में गैम्बेटा के नेतृत्त्व में गणतंत्र-वादियों का बहुमत होने से उनने मैक मोहन को पदच्युत कर जूल्स ग्रेवी को राष्ट्रपति चुना । महान् मैकमोहन के पतन से सामरिक शक्ति द्वारा राजसत्ता का पुनः स्थापन चिरकाल के लिए रुद्ध हो गया ।

(अ) बुलांजारवादी आन्दोलन

१८८३-८४ में एक विशेष नियम द्वारा गणतंत्र-पद्धति को स्थाई घोषित किया गया और राजपरिवार को राष्ट्रपति पद के लिए प्रार्थी होना अस्वीकार कर दिया । १८८५ के निर्वाचन में राजसत्ता-वादियों ने प्रतिनिधि भवन की आधी सीटों को अधिकृत कर लिया है । गणतंत्रवादी गेम्बेटा के नेतृत्त्व में सुविधा वादी एवं संघर्ष-प्रिय क्लीमेंन्श शो के नेतृत्त्व में उग्रदल के रूप

में दो भागों में विभक्त हो गये। इसी समय सेनानायक बुलांजार-जो सुयोग्य वाग्मी और दक्ष अश्वारोही था-का उदय हुआ-जिसका उद्देश्य था, प्रजातंत्र को ध्वंस कर स्वयं के नेतृत्त्व में अधिनायकवाद की स्थापना करना। इसने प्रतिशोधात्मक सिद्धान्तों को प्रचारित किया और जर्मनी से ऐल्सस्लोरेन को पुनः हस्तगत करने का दावा किया। १८८८ में इसे प्रादेशिक सेनानायक बना कर भेजा गया, परन्तु थोड़े ही दिन बाद बिना अवकाश लिये ही यह पेरिस चला आया और इसी लिए इसे पद-च्युत किया गया। परन्तु जनवरी १८८९ में यह प्रतिनिधि भवन में पेरिस की ओर से निर्वाचित हो गया। यदि वह उसी काल सामरिक प्रयोग कर स्वयं को अधिनायक घोषित करता, तो सफल हो जाता, परन्तु इसके पास स्पष्ट कार्य-क्रम का अभाव था, यद्यपि इसमें जनता को मोहित करने की अलौकिक शक्ति थी। इसने सुवर्ण अवसर को खो दिया एवं भीत गणतंत्र-वादियो ने उसे बन्दी बनाने की आज्ञा दी व इसने फ्रांस से पलायन किया और अल्पकाल पश्चात् ब्रुशल्स में आत्म हत्या की।

इसी समय पेनामा कम्पनी दीवालिया हो गई—जिससे बड़े बड़े पूंजीपतियो को प्रचुर आर्थिक क्षति हुई। शासन द्वारा जांच करने पर यह प्रतीत हुआ कि राष्ट्रीय संसद् के सदस्य और प्राशासनिक अधिकारियों ने भी उत्कोच ग्रहण किया-जिससे इसकी ऐसी स्थिति हो गई। राजसत्ता-वादियो द्वारा इसका अतिरंजन के साथ प्रचार करने पर भी गणतन्त्र-वादी ही विजयी हुये। शिक्षा, उद्योग, व्यवसाय और औपनिवेशिक साम्राज्य का विस्तार इतना अधिक हो गया कि फ्रांस विश्व में केवल इंग्लैण्ड के ही पीछे रह गया। १८९३ मे पोप लिओ त्रयोदश ने कैथोलिकों को गणतंत्र के समर्थन का आदेश दिया।

(आ) ड्रेफुस अभियोग

बुलांजार के पतन के पश्चात् प्रसिद्ध ड्रेफुस का अभियोग गण-तंत्र का एक आंतरिक संकट था। इसका विवरण यह है—१८६४ में आल्सस् प्रदेश में यहूदी सैनिक अधिकारी आल्फ्रेड ड्रेफुस सामरिक गुप्त संवाद शत्रु तक पहुंचाने के अपराध में वन्दी बना लिया गया। गुप्तरूप से इस अपराध पर विचार करने पर इसे अपराधी पाया गया और पेरिस के सैनिक विद्यालय के समक्ष उसे अपमानित और आजीवन गायना के डेविल द्वीप में निर्वासित किया गया। उसने स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने का यत्न किया, परन्तु पानमा कांड में यहू-दियों के अधिक सम्मिलित होने के कारण जनता इससे घृणा करने लगी थी। अतः कुछ नहीं सुना गया।

१८६६ में इसी कांड की पुनरावृत्ति हुई। गुप्त-चर-विभाग के उच्च अधिकारी पीकर्ट ने इस अभियोग के पत्रजातों का निरीक्षण किया व उसे यह प्रतीत हुआ कि यह ड्रेफुस को फँसाने का जाल है। उसने यह भी घोषित किया कि ईस्टर हेजी ने इस षड्यंत्र की रचना कराई है, इसलिए इस अभियोग पर पुनर्विचार होना चाहिए। शासन अधिकारियों ने इसकी अवहेलना करते हुए उसको ट्यूनिश में परिवर्त्तित कर दिया व हैनरी को उस स्थान पर नियुक्त किया। इसी समय यह कांड एक सामाजिक राजनैतिक और वैधानिक संघर्ष का केन्द्र वन गया। ड्रेफुस की निर्दोपता के पक्षपातियों को शान्ति, सम्पत्ति, देशभक्ति और धर्म का परम शत्रु माना जाता था। गिरिजा राजसत्ता वादी और सैनिक अधिकारियो ने ड्रेफुस को अभि-युक्त प्रमाणित करने लिए "सीपारो" के शब्दों में इसकी निर्दो-पिता को "अराजक वादी, समाजवादी, धर्म व पताका के शत्रु और यहूदी-संघ के समर्थन का एक प्रयत्न कहा"।

कैटिलबी के शब्दों में "यह एक स्वतन्त्रता और अधिकार धर्म और विज्ञान, विश्वास और समालोचन, स्वैरतन्त्र और गणतन्त्र, संकीर्णता और उदारता, विद्रोह और शान्ति का संघर्ष था"।

ड्रेफुस का विरोधी दल प्रथमतः सफल हुआ। हिस्टर हेजी के षड्यन्त्र पर विचार हुआ एवं वह निर्दोष प्रमाणित हुआ। परिणामतः पीकर्ट को बंदी बनाया गया। प्रसिद्ध उपन्यासकार ऐमिल जोला—जिसकी जनप्रिय पुस्तक "जॉ ए. क्यूज" ने ड्रेफुस विरोधियों की तीव्र निन्दा की थी—को बन्दी बना कर एक वर्ष का कारावास दंड दिया गया। जोला इंग्लैण्ड भाग गया एवं ड्रेफुस अभियोग पर पुनः आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, किन्तु शासन ने इसकी समाप्ति की घोषणा करदी।

१८९९ में गुप्तचर विभाग के अधिकारी हैनरी ने कहा कि डेफुस् के विरुद्ध पत्रजात जाली बनाये गये थे एवं उसने आत्म-हत्या कर ली। हिस्टर हैजी ने भी यह स्वीकार किया और फ्रांस से पलायित होगया। प्रधान मन्त्री वाल्डे रूसो ने पुनर्विचार का आदेश दिया एवं अभियोगी को द्वीप से फ्रांस लाया गया। पुनः यह दोषी प्रमाणित हुआ, परन्तु विशेष परिस्थिति होने पर इसे केवल १० वर्ष के कारावास का दंड दिया गया। राष्ट्र-पति ने इसे क्षमा कर दिया और ड्रेफुस मुक्त हो गया। पर इससे कोई भी संतुष्ट नहीं हुआ।

अंततः १९०६ मे इसे निर्दोष सिद्ध करने के लिए पुनर्विचार हुआ—जिससे यह पूर्ण निर्दोष प्रमाणित हुआ। उसके दंड के प्रतिकार में समारोह के साथ उसे सम्मानित किया गया एवं परम वीर चक्र प्रदान किया। पीकर्ट को सेनापति पद पर उन्नति दी गई व आगे चलकर यह युद्ध मन्त्री हो गया। जालो जिसकी मृत्यु इंग्लैण्ड में हुई थी—पेन्थियन मे विशेष समारोह

के साथ समाधिस्थ किया गया एवं षड्यंत्रकारी अधिकारियों को सेना विभाग से पदच्युत किया गया ।

ड्रेफुस की विजय गणतंत्र की विजय नहीं, परन्तु सैनिक अधिकार से नागरिक अधिकार की भी विजय थी। इससे विरोधी राजसत्ता-वादी और सैनिक चिरकाल के लिए दुर्बल हो गये ।

(इ) गिरिजा के साथ संघर्ष

गणतंत्र और गिरिजा का संघर्ष १६०१ मे समिति के नियम द्वारा वाल्डेक रूसो मन्त्रिमण्डल से प्रारम्भ हुआ। इस नियम से प्रत्येक समिति को शासन से स्वीकृत होना अनिवार्य था। धार्मिक शिक्षित समितियों को विशेषतः भंग कर धार्मिक संपत्ति और मठों को अधिकृत कर लिया गया। उग्र वामपन्थी गिरिजा और राष्ट्र को पृथक् करने के लिए प्राकाशनिक आन्दोलन सचालित करने लगे। १६०४ में पादरियों द्वारा शिक्षादान प्रथा को प्रतिबद्ध कर धर्मनिरपेक्ष शिक्षणालय स्थापित किये। पोप पायस दशम और उसके उत्तराधिकारी लिओ त्रयोदश ने फ्रांसीय राष्ट्रपति के इटली के राजा का आतिथ्य स्वीकार करने की तीव्र निन्दा करते हुए कहा-"यह सर्वसत्ता सम्पन्न धार्मिक अधिपति का महान् असम्मान है"। परन्तु प्रशासन ने १६०५ के विशेष नियम द्वारा नेपोलियन की विशेष मैत्री को अमान्य कर राष्ट्र और गिरिजा को पृथक् कर दिया।

(ई) समाजवाद का प्रसार

राजसत्ता धर्म व पादरी वर्ग के पतन के साथ सामाजिक समस्या का उद्भव हुआ। जर्मनी और इंग्लैण्ड के अनुकरण पर फ्रांस के श्रमिक सुधार के लिए अतिरिक्त नियम-स्वीकृत किये गये। १८८४ में श्रमिक संघ को वैध घोषित किया गया व इसके १४ वर्ष पश्चात् श्रमिक की क्षतिपूर्ति के विशेष नियमों का

अनुमोदन किया गया। १६०६ और १६१० में यथाक्रम १० घंटे का कार्य-समय व वार्द्धक्य में पेन्शन की व्यवस्था की गई। यह कहना अत्युक्ति नहीं कि वाल्डेक रूसो मन्त्रि मण्डल में समाजवादी मन्त्री मिलैरेण्ड के प्रभाव से श्रमिक के हित के लिए उपर्युक्त सुविधाऐं मिल सकी। अन्य दो मन्त्री विवियानी और ब्रिअण्ड ने श्रमिक आन्दोलन को शान्त करके फ्रांसीय उद्योग को प्रगति की ओर अग्रसर किया। परन्तु श्रमिक संघ वादियों ने १६१० में एक महान् रेल्वे हडताल से क्रान्ति को उभाडने का प्रयत्न किया। कुशल समाजवादी प्रधान-मन्त्री ब्रिआण्ड ने श्रमिकों को सेना में प्रविष्ट कर इस हडताल को भंग कर दिया। श्रमिको का कर्तव्य रेल्वे लाइन और रेल की सुरक्षा निर्धारित किया—जिससे पुनः शान्ति स्थापना हो गई।

४—इटली (१८७१ से १६१४)

इटली का इतिहास स्वतंत्रता-संग्राम की समाप्ति के अनन्तर १६ वी शताब्दी पर्यन्त एक षड्यन्त्र, असन्तोष, निराशा, दीनता एवं अव्यवस्थाओ का इतिहास है। लुई जी स्टर्जो ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "इटली इवं फासिज्मों" में लिखा है— "विभिन्न जातियो का इटली स्वाधीनता संग्राम के लिए एकत्रीकरण इतनी शीघ्रता से किया गया था कि वह दृढमूल नहीं हो सका। पिडमण्ट जैसे छोटे प्रदेश से स्वाधीनता का प्रकाश सम्पूर्ण इटली में एक दान के रूप में राष्ट्रीयता का संचार कर रहा था। शिक्षित समाज ने इस स्वायत्त शासन की भावना का अनुमोदन किया-किन्तु जनता की चेतना में इसकी समुचित प्रतिध्वनि नहीं हुई"। ऐसी स्थिति में इस कृत्रिम संगठन मे एक आध्यात्मिक, वास्तविक एवं स्वाभाविक एकता का समन्वय ही उन्नीसवीं शताब्दी की राष्ट्रीय समस्या थी।

(क) *पोप*:—नवीन राष्ट्र और गिरिजा के सम्बन्ध भी एक केन्द्रीय समस्या थी। पायस नवम ने संरक्षण नियम को अस्वीकृत किया था एवं एक विशेष धार्मिक नियम द्वारा लोकसभा के निर्वाचन में कैथोलिकों का मतदान व-इटली सम्राट की नौकरी में नियुक्त होने को निषिद्ध कर दिया (नान एक्सपेडिट्) १८७८ में पायस नवम की मृत्यु हो गई व उसके उत्तराधिकारी लिओ त्रयोदश ने उसी की नीति का अनुसरण किया, परन्तु वह सामान्यतया सहिष्णु थी। १६०५ मे पायस दशम ने पादरियों के प्रतिबन्धो को आंशिक रूप से हठा दिया, परन्तु पोप बैनिडिक्ट पंचदश (१६१६) ने पुनः प्रतिबन्ध प्रारम्भ कर दिये। १६२२ में पायस एकादश ने इटली-सेना को जब सम्मानित किया तो यह प्रतीत हुआ कि अब स्थाई समझौता सम्राट् और पोप के मध्य होने वाला है।

(ख) *अपूर्ण सुधार*—इस नवीन राज्य की आन्तरिक समस्याएँ अत्यन्त जटिल थीं—जिनमें एकत्रित राज्यों मे प्रादेशिक भावना की वृद्धि के लिए एक ही रीतिनीति का प्रचलन किया गया। न्याय व्यवस्था एवं प्रशासन को परिवर्तित कर केन्द्रीभूत कर दिया गया। स्थानीय प्रशासन फ्रांसीय आदर्श पर संचालित किया गया। अनिवार्य सैनिक प्रवेश को चालू कर रेल्वे का राष्ट्रीय करण किया गया। सिसली के मैफिया और नेपिल्स की कैमोररा गुप्त समितियों व डकैतियों को ध्वस्त करने के लिए विशेष प्रवन्ध कर दिया गया। १८६७ में प्रधान मन्त्री डेप्रेटिस ने शिक्षा के प्रसार के लिए अनिवार्य शिक्षानियम प्रवर्तित किया—जिसे उपयुक्त और पर्याप्त रूप से व्यवहार में नहीं लाया जा सका। दीनता ही नवीन राष्ट्र का एक महान् प्रश्न था। कुशासन और भ्रष्टाचार, उत्कोच और अव्यवस्था,

राष्ट्रीयऋण, सैनिक भार, सार्वजनिक उन्नति का व्यय, दक्षिण प्रदेशों के सामान्य अभाव एवं वित्त के सुधारों मे अत्यन्त समय लग गया। कार्य अत्यन्त अधिक था व निम्न वर्ग को ही इसे वहन करना पडा। समय समय पर प्रशासन इतना दुर्बल हो गया कि उसके सामने दिवाला आ गया।

(ग) *सामाजिक और आर्थिक समस्य* —राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से इटली का यह काल संकट-काल था। योग्य लोक सत्तावादी क्रिस्पी के निर्देश में राजनीति भी एक षड्यन्त्र, भ्रष्टाचार और निन्दा की कहानी बन गई थी। अधिकारो के केन्द्रीभूत करने से स्थानीय शासन नष्ट हो गया और केन्द्रीय शक्ति भी स्वार्थ सिद्धि का एक महान् केन्द्र बन गई। सामाजिक दृष्टि से जनता विभिन्न थी। निम्न वर्ग अशिक्षित एवं मतदान अधिकार से वंचित थे एवं कैथोलिक व अन्यान्य धार्मिक—वर्ग भी प्रशासन से असन्तुष्ट थे। आर्थिक दृष्टि से कृषि प्रधान दक्षिण अविकसित था। औद्योगिक उत्तर में श्रमिक-वर्ग के क्रमोगत आन्दोलन ने प्रशासन को महान् संकट में डाल दिया। जनसंख्या की द्रुत वृद्धि से दीनता और आर्थिक समस्या और भी गम्भीर बन गई—जिसके समाधान के लिए जन संख्या को दक्षिण और उत्तर अमेरिका में स्थानान्तरित किया गया। १८६३ और १८६४ में सिसली के श्रमिकों ने विद्रोह किया व १८६८ मे मिलान में विद्रोही श्रमिकों ने पेरिस विप्लव की तरह गृह-युद्ध प्रारम्भ किया। प्रशासन ने इन आन्दोलनो का सफलता के साथ दमन किया। परन्तु इनकी समाजवाद विरोधी नीति को निन्दित किया गया। जनता के इस असन्तोष का प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि विक्टर ईमानवल तृतीय के उत्तराधिकारी राजा हंबर्ट की एक अराजकवादी ने हत्या करदी। विक्टर ईमानवल तृतीय एक नव युवक सहानु-

भूतिशील, प्रजातन्त्रवादी राजा था—जिसके सिंहासनासीन होने पर इटली का भाग्योदय हुआ। प्रवासी उद्योग व्यापार की उन्नति से अपने देशों में पर्याप्त धन भेजने लगे—जिससे दीनता कुछ कम हो गई। अंगूर के खेत और उत्तर की उद्योग-शालाओं द्वारा प्रस्तुत सामग्री का भी देशों मे अधिक विक्रय होने लगा। आर्थिक उन्नति के साथ साथ व्यापारिक नौसाधनो की भी वृद्धि हुई व कैथोलिक पहले से अधिक संतुष्ट प्रतीत हुए। १९०३ में इटली—राजनीति का एक महान् पुरुष प्रधान मन्त्री जी आलिटी था—जिसकी नीति श्रमिकों के उत्थान से सम्बद्ध थी। इसने समाज वीमा नियम को संशोधित किया। १९०४ में एक नवीन शिक्षानियम को पास किया। १९०५ में सर्व प्रथम वजट में वचत दिखाई दी एवं १९१२ में एक मत दान नियम का प्रवर्तन सार्वजनिक पुरुप मताधिकार पर किया। परन्तु इटली में समाजवादी दल का प्रचार हुआ व फ्रांस के प्रभाव में आकर श्रमिक संघ के सिद्धान्तों के अनुसार ध्वंस, हड़ताल आदि का प्रयोग किया जाने लगा। १९१४ में एक आम हड़-ताल ने औद्योगिक—जीवन को ४८ घन्टे तक स्थगित कर दिया। अन्त में श्रमिक अपने अपने काम में लग गए एवं यह आम हड़ताल असफल हो गई, क्यों कि इसने साधारण जीवन को अव्यवस्थित कर दिया।

घ—वैदेशिक नीति

इटली की वैदेशिक नीति में तीन प्रधान समस्यायें थीं। पोप को "मेटिकन के वंदी" की जो उपाधि दी गई थी—उसमें परिणामतः फ्रांस और आस्ट्रिया इटली की आन्तरिक समस्या में हस्तक्षेप करेंगे? या नहीं? यह प्रथम समस्या थी। द्वितीय इटली के विदेश-अधिकृत प्रदेशों की—ट्रेन्ट्रिनो, ट्रेस्टो मुक्ति के उपाय का चिन्तन था—जो मुक्ति प्रार्थी उग्र देश भक्तों की ओर से

"इररीडेन्ट वाद" के नाम से किया जा रहा था। यह मुक्तिदल डल्मोनिया, आल्बेनिया और पूर्व सीमान्त प्रदेशों को भी इटली के अधीन मे लाना चाहता था। तृतीय नवीन साम्राज्य के गौरव और प्रतिष्ठा को बढ़ाने के लिए उपनिवेशों में साम्राज्य विस्तार करके भूमध्य सागर को एक इटली की झील बनाना था।

ये तीन समस्यायें राजनीति की एक प्रमुख जटिलता थी। फ्रांस से भीत एक दल पराधीन प्रदेशों की मुक्ति के लिए आस्ट्रिया व जर्मनी के साथ मित्रता का प्रयासी था एवं अन्य दल प्राजातांत्रिक और पादरी विरोधी फ्रांस को इटली की समस्या के समाधान के लिए सर्वोत्तम सहायक समझते थे। इसी समय भ्रान्त इटली ने ट्यूनिश (१८७६) एवं ट्रिपाली (१८७८) के अधिकार के इंग्लैण्ड के आमंत्रण को अस्वीकार कर दिया, इसीलिए १८८१ मे जब फ्रांस ने ट्यूनिश को अधिकृत किया तो इटली अत्यन्त रुष्ट हो गया। इसकी तात्कालिक प्रतिक्रिया यह हुई कि इटली ने आस्ट्रिया और जर्मनी के साथ त्रिमुख मैत्री स्थापित (१८८२) की—जिसका विवरण हम अन्तर्राष्ट्रीय प्रकरण मे देंगे। कुछ समय पश्चात् इटली ने यह अनुभव किया कि त्रिमुख मैत्री से उसे कोई लाभ नहीं हुआ, इसी लिए उसने बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे फ्रांस और इंग्लैण्ड के साथ एक सीमित गुट्ट बनाने का प्रयत्न किया। लुई जी स्टर्जो का कथन है—"इटली यूरोप की राजनैतिक कठपुतली बन गया। कभी इधर और कभी उधर उसने शक्तिसंचय का यत्न किया, परन्तु इस कुशल नीति की अपेक्षा उसे केवल निराशाऐं मिली। एटली की परिस्थिति भी विषम थी एवं राजनीति भी अस्थिर थी। इसने अनेक बार सुयोगों की अवहेलना की। इसी लिए इसे न मित्रों से सहायता मिली व न इसी ने दी"। औपनिवेशिक समस्या प्रधान मन्त्री क्रिस्पी के प्रभाव से १८८१ में जब

फ्रांस ट्यूनिश पर और इंग्लैण्ड ने मिश्र पर अधिकार किया तो लोहित सागर और सोमानिलैण्ड में क्षतिपूर्ति के आन्दोलन से विवृद्ध हुई। शेष प्रदेश स्थानीय सुलतान द्वारा शासित थे। मसोवा के बन्दरगाह से इटली सेना ने अफ्रीका के सोमानिलैण्डमें प्रवेश किया व ऐबिसीनिया के राजा के साथ प्रत्यक्ष संघर्ष में लग गई। १८९६ में एडोवा के युद्ध में पंचगुण सुलतान की सेना ने इटली को पराजित किया—जिसके परिणाम से क्रिस्पी का पतन हुआ और इरीट्रिया और लोहित सागर का इटली-सीमान्त लघु बन गया।

२० शताब्दी के प्रारम्भ में फ्रांस की मरक्को में अग्रगति व जर्मनी के भूमध्य सागर के प्रभाव-विस्तार ने इटली को भी उत्तर अफ्रीका में साम्राज्य विस्तार की प्रेरणा दी। "नवीन तुर्की आन्दोलन" का सुयोग पाकर १९११ मे इटली ने तुर्की पर आक्रमण किया व ट्रिपोली और सिरीनाइका को हस्तगत कर लिया-जिसको अफ्रीका मे इटली का उपनिवेश "लीबिया" कहा जाता है।

आस्ट्रिया के अधीन इटली भाषा भाषी प्रदेशों की समस्या त्रिमुख मैत्री में योगदान करने से समाप्त हो गई। २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इटली और फ्रांस के समन्वय, आस्ट्रिया और जर्मनी के बलकान में हस्तक्षेप से त्रिमुख मैत्री में इटली अधिकतर गौण सदस्य रह गया। इसके साथ साथ मुक्तिदल का आन्दोलन भी बढ़ गया। १९१४ के महायुद्ध के प्रारम्भिक काल में आन्तरिक विद्रोह होने के कारण इटली निष्पक्ष घोषित किया गया, परन्तु मई १९१५ में इटली त्रिमुख-गुट्ट में इंग्लएड रसिया और फ्रांस के साथ लंडन की संधि के अनुसार सम्मिलित हो गया। इटली को यह आश्वासन दिया

गया कि यदि मित्रराष्ट्र विजयी हुए तो उसे ट्रेन्टिनो, डाल्मेशिया, सैवेनिको एवं समग्र पराधीन प्रदेश (फ्यूम को छोडकर) दिये जायेंगे। जिस पर आगे विचार करेंगे।

५—रूस (१८८१ से १९१४)

रसिया यूरोप का सबसे विराट् राष्ट्र था—जिसकी जन संख्या पैंतालीस करोड (विश्व का एक द्वादशांश) क्षेत्रफल विश्व का एक षष्ठांश (दो लाख वर्गमील) था। स्वैरतन्त्र जार के अधीन में हम देख चुके हैं कि दो ही प्रधान वर्ग थे-कुलीन और कृषकों का बहुमत था। रसिया का इतिहास ४ भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम नेपोलियन युद्ध से क्रीमिया युद्ध तक—जिस समय अलैग्जेण्डर के सुधारों और आदर्शों ने इसे अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान दिया। द्वितीय क्रीमिया युद्ध से रूस जापान युद्ध-जिस समय दासों की मुक्ति एवं विभिन्न सुधारों का सर्वप्रथम प्रयोग किया गया। तृतीय रूस जापानी युद्ध से प्रथम महायुद्ध पर्यन्त है-जिसमें प्रथम लोकसभा की स्थापना हुई। चतुर्थ प्रथम महायुद्ध से द्वितीय महायुद्ध पर्यन्त,इस काल में स्वैरतन्त्र का पतन व सोवियट समाजवादी गणतंत्र की रक्त-मय क्रान्ति द्वारा स्थापना हुई। परन्तु प्रत्येक कालों में राष्ट्रीय निराशा, प्रतिक्रिया व चक्रवत् परिवर्त्तन हुए।

क—अलैग्जेण्डर तृतीय (१८८१ से १८९४)

अलैग्जेण्डर तृतीय ३६ वर्ष की आयु में जब राजा बना, तब समसामयिक फ्रांसीय ऐतिहासिक रैम्बॅड लिखते हैं—"इसके सिंहासनारोहण के साथ साथ प्रतिक्रिया-काल का प्रारम्भ अर्द्धशताब्दी में सर्व-प्रथम एक महिला को सार्वजनिक फाँसी देने से हुआ"। यह संकीर्णवादी, कठोर, कट्टर एवं साम-रिक व्यक्ति था—जो प्रतिक्रिया और स्वैरतन्त्र का मूर्तिमान्

रूप था। इसके त्रयोदशवर्षीय राज्यकाल ने अलैग्जेण्डर के सम्पूर्ण सुधारों पर पानी फेर दिया। इसने आतंकवादियों को निर्वासित किया और प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगाया। धर्म-नियामक समिति के प्रधान विडोनास्टेफ और नियमविशेषज्ञ प्लेवे इसके प्रधान परामर्शदाता थे। "एक सम्राट्, एक गिरिजा एवं एक रसिया" ये ही इसकी निरंकुशतापूर्ण नीति थी। प्रतिक्रिया की नीति को एक प्रकार का दर्शन बना दिया गया। समाजवादी, सुधारवादी, अराजकवादी इत्यादियों को इसने निर्वासित, बंदी व दंडित किया एवं विशेष सामरिक नियम की घोषणा करके आतंक का विस्तार किया। रूसीयकरण की नीति को अपनाया गया। रूसी को ही राष्ट्र-भाषा घोषित किया गया। दोर्पत के जर्मन विश्वविद्यालय को रूसीय संस्थान बना दिया गया। धर्म-विरोधियों को बहिष्कृत किया गया, यहूदियों के नगर से बाहर निकलने पर प्रतिबन्ध था। इनमें से कुछ को सम्पत्ति, कृषि एवं आवागमन से वंचित किया। परिणामतः प्रत्येक नगर मे दीन हीन यहूदियों का एक पृथक् मुहल्ला हो गया और १८८० व १९०० के मध्य १५ लाख यहूदियों ने रूस त्यागकर अमेरिका में आश्रय लिया। यहूदियों में एक नवीन राष्ट्रीयता का आन्दोलन "जीओन वाद" के नाम से प्रारम्भ हुआ--जो पैलेस्टन को अपना आदि निवास मानने लगा।

१८९२ में उद्योग की उन्नति के लिए सर्जियसडि—विटी को वित्त और व्यापार मन्त्री नियुक्त किया। विटी रसिया को आत्मनिर्भरता की नीति का प्रयोग कर उद्योग के उत्कर्ष पर ले गया। प्रत्येक वर्ष मे चार सौ मील रेल्वे निर्माण किया गया, यातायात के मार्गों को बढाया गया। उत्पादन की वृद्धि से नवीन नवीन नगरों की स्थापना हुई—श्रमिक श्रेणी की वृद्धि हुई व श्रमिक समस्या का उद्भव हुआ।

(ख) निकोलास द्वितीयः (१८९३ से १९१७)

१८९४ में अलैग्जेण्डर की मृत्यु के पश्चात् इसके पुत्र २६ वर्षीय निकोलास द्वितीय ने राज्य भार ग्रहण किया। महारानी विक्टोरिया की पौत्री के साथ इसका विवाह हुआ था, परतु यह एक दुर्बल, दैव-विश्वासी एवं योगनिष्ठावान् व्यक्ति था। राजा होते ही इसने घोषणा की—"स्वैरतन्त्र के सिद्धान्तों की दृढ़ता एवं पिता की स्मृति की चिरंतनता के लिए मैं कुछ भी परिवर्तन नहीं करूंगा"। पब्रिडोनोस्टेफ को इसने पवित्र गिरिजा का सर्वाधिकारी व प्लेवे को गृह मन्त्री (१९०२) नियुक्त किया। प्रथम एकादृश वर्ष इसने रूसीकरण एवं साम्राज्यवाद की नीति के कियान्वयन मे व्यतीत किये। फिनलैंड निवासियों की स्वाधीनता को कम कर दिया, दार्शनिक, विप्लववादी एवं शिक्षित सम्प्रदाय के विपरीत युद्ध घोषणा की। गुप्तचरों की नियुक्ति की व यहूदियों पर और भी कठिन प्रतिबन्ध लगाये। पर विटी के पथ-प्रदर्शन में रसिया मे औद्योगिक क्रान्ति का प्रारम्भ हुआ। खनिज, रूई, लोहा, तांबा, टीन आदि की उद्योग शालाएँ स्थापित हुई और विदेशो का वित्त आमन्त्रित किया गया। यातायात की सुविधाऐं बढाई गई, राष्ट्रीय ऋण का परिशोध किया गया। संक्षेप में रसिया का आर्थिक अभ्युत्थान हुआ।

किन्तु विप्लवी आन्दोलन क्रमशः बढता गया। १८९८ में कार्ल मार्क्स के अनुयायियों ने 'सामाजिक प्रजातन्त्र दल की स्थापना की। १९०० में क्रान्तिकारी समाजवादी दल की स्था-' पना हुई—जो कि भू संपत्ति का पुनर्विभाजन कर कृषको मे वितरित करना चाहते थे। १९०३ में सामाजिक प्रजातन्त्र दल दो भाग में बँट गया।

अधिकांश वामपन्थी दल में सम्मिलित हो गये—जिनका

नाम "वॉल्सेविक" हो गया। शेष दक्षिण पंथी "मैनशेविक" कहलाये। उनका ध्येय एक ही था, किन्तु साधनों में मतभेद था। ये विभिन्न दल प्रतिनिधि प्रशासन एवं प्राकाशनिक स्वतन्त्रता के इच्छुक थे व इसके दमन के लिए प्लेवे ने इन्हें बन्दी" निर्वासित एवं पुलिस द्वारा तंग कराया। मंत्री त्रिटी ११ वर्ष के शासन काल के पश्चात् १६०३ मे पदच्युत कर प्रतिक्रियावादी प्लेवे को गृह मन्त्री बनाया गया। इसकी निरंकुश नीति से आक्रान्त होकर जनता ने १६०४ जुलाई में इसकी हत्या करदी। इसी समय रूस और जापान का युद्ध प्रारम्भ हुआ—जिसका विशद विवरण हम दूर प्राच्य के अध्ययन में देखेंगे। सितम्बर १६०५ में पराजित रूस ने पोर्टस माउथ की संधि की—परिणामतः जनता ने अयोग्य शासन को बदलने की पुकार और आन्दोलन द्वारा प्रदर्शन किया। निकोलास द्वितीय ने इसको अग्राह्य किया एवं ट्रेपाव को पुलिस का उच्चतम अधिकारी नियुक्त किया—जिससे पुनः दमन नीति प्रारम्भ हो गई।

१— १६०५ का विद्रोह

इस काल के आन्दोलन में सबसे अग्रगण्य दल सामाजिक प्रजातन्त्र दल ने दो सिद्धान्त क्रियान्वित किये—प्रथम यह कि क्रान्तिकारी प्रचार उद्योग और कारखानों मे ही हो सकता है। द्वितीय राजनैनिक क्रान्ति के द्वारा ही सामाजिक परिवर्तन संभव है। यद्यपि सम्राट् ने ४८६७ व्यक्तियों को एक ही वर्ष में विना विचार के कारावास एवं निर्वासन दण्ड दिया था, फिर भी पेट्रोग्राड में सम्मिलित जेम्स्टभर्स के प्रतिनिधियों ने ११ मांगें पेश की थी (१) विना विचार एवं वन्दीपत्र के किसी को भी दण्ड नहीं दिया जाये। (२) प्रकाशन, भाषण व सार्वजनिक सभाओं की स्वाधीनता। (३) स्थानीय शासन की स्वतन्त्रता। (४) जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि ही विधान का निर्माण और

शासन के प्रति उत्तरदायी होंगे। (५) विशेष नियमों को निषिद्ध कर दिया जाये। (६) संविधान निर्माण के लिए विधान-सभा को आमन्त्रित किया जाये। जनता की उत्तेजना अत्यन्त बढ गई थी—जिसके विस्फोट के लिए केवल एक चिनगारी ही की आवश्यकता थी।

जनवरी १६०५ में सम्राट् की हत्या का भी असफल प्रयत्न किया गया। २२ जनवरी १६०५ मे-जिसे रूस पंचांग में "रक्त रविवार" कहते हैं-एक हड़तालियों का विराट् प्रदर्शन हुआ—जिसका अधिनायक पादरी गैपन था। यह जुलूस राज-प्रासाद में जाकर जोर से अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति करने गया। जैसे यह आगे बढ़ता गया-सशस्त्र सैनिकों ने गोली से उडा दिया। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप गॉव गाँव में विद्रोह जागृत हो गया—चाहे इनकी मांगे स्वीकृत न हुई हो। कृषक ने सामन्त प्रभुओं के मकान जला दिये। पुलिस अधिकारियो की एवं जार के चाचा सरजे की भी हत्या की गई।

२—डूमा (१६०६)

३ मार्च १६०५ में जारने घोषणा की कि जनता जिसमें विश्वास करती है, ऐसे व्यक्ति के परामर्श से ही विधान सम्बन्धी प्रश्न पर विचार किया जायेगा। इस घोषणा का उद्देश्य था कि लोक सभा "डूमा" (१० मई १६०६) की स्थापना की जायेगी, जो केवल परामर्श देगी। संपत्तिहीन व्यक्तियों—जैसे श्रमिक, शिक्षक डाक्टर आदि-को मतदान का अधिकार नहीं दिया गया। इसका परिणाम सामान्य राजनैतिक हड़ताल हुई। खुरु स्टैलेवने श्रमिक प्रतिनिधि समिति के रूप मे एक केन्द्रीय श्रम-संगठन स्थापित किया—जो श्रमिको के हित को ध्यान में रख कर अपना कार्यक्रम निर्धारित करेगा। संवाद-पत्र, बिजली, रेलवे आदि अनिवार्य जीवनीय साधन भी बन्द

हो गये। निरंकुश जार ने पराजित होकर ३० अक्टूबर को एक विशेष घोषणा-पत्र प्रकाशित किया। अक्टूबर का यह घोषणा-पत्र सुधार आंन्दोलन में एक नवीन युग का जन्मदाता रहा। वाचन, समितिनिर्माण, सार्वजनिक सम्मेलन, लेखन आदि स्वाधीनताओ को अस्वीकार किया गया। निर्वाचन पद्धति का परिस्कार किया गया-जिससे श्रमिकों और वेतन भोगियों को भी मताधिकार प्राप्त हुआ। यह भी घोषित किया गया कि लोकसभा की (डूमा) स्वीकृति के विना कोई भी नियम वैध नहीं माना जायेगा। प्रतिक्रिया-वादी पवि-डोनोस्टफ को पद च्युत किया गया और उदार विटी को पुनः प्रधान मन्त्री बनाया गया। नवम्बर में सम्राट् ने फिनलैण्ड को स्वायत्त शासन दिया और रसिया में सार्वजनिक पुरुप मताधिकार का भी प्रचलन हुआ। दिसम्बर मे मास्को में पुनः विद्रोह हुआ और पाँच हजार को मार दिया गया। इसी समय विद्रोहियों में भी फूट हो गई। सहिष्णु दो दलों में विभाजित हो गये। प्रथम उग्र सहिष्णु दल ने-जो कि वैध प्रजातन्त्र का पक्षपाती था-इतिहास के अध्यापक पोल मिल्यू क्रन्फ के नेतृत्व में यह दावा किया कि लोकसभा प्रजा के प्रति उत्तरदायी होगी एवं जार केवल वैधानिक शासक होगा। इस दल का नाम इतिहास में "कैडे-ट्स" है। दूसरा संकीर्ण सहिष्णु दल था—जो कि अक्टूबर की विशेप राजकीय घोपणा का समर्थन करता था और लोकसभा को निरंकुश शासक का नियंत्रण समझता था। इतिहास में इसे "अक्टूबर दल" कहा जाता है। विटीको पदच्युत करके संकीर्ण सत्तावादी स्टलिपिन (१९०६ से १९११ को प्रधानमन्त्री बनाया गया।

प्रथम लोकसभा का "डूमा" रसिया के इतिहास में महान् समारोह के साथ ७ मई १९०६ को निकोलास द्वितीय द्वारा

उद्घाटन हुआ। इसमें ४०० सदस्य थे। जिसमें १५३ कैडेट्स, १०७ श्रमिक दल, ६३ स्वायत्त शासन के पक्षपाती एवं ७ प्रतिक्रियावादी आदि थे। पर "डूमा" आधारभूत नियमों का परिवर्त्तन नहीं कर सकती थी। सम्राट् ने विशेष घोषणा द्वारा सेना, विदेश नीति आदि के अधिकार को स्वयं में केन्द्रित कर लिया था। कार्यकारिणी सभा को नियंत्रित करने के कारण लोकसभा और कार्यकारिणी से संघर्ष प्रारम्भ हुआ-परिणामतः राजा ने उत्तरदायी मंत्रिमण्डल को अस्वीकृत कर जुलाई १९०६ में लोकसभा को भंग कर दिया। हताश होकर अर्ध प्रतिनिधि फिनलैण्ड के वाइबुर्ग नगर में एकत्रित हुए। इस सम्मेलन में एक विशेष प्रस्ताव पास कियागया—जिसमें "जनता को कर देने एवं सामरिक सेवा को बन्द करने का निर्देश दिया गया", क्योकि सम्राट् ने इसके साथ विश्वासघात किया है। परन्तु जनता ने प्रतिनिधियों का समर्थन नहीं किया। निरंकुश स्टलिपिन ने ६०० को मृत्युदंड व ३५ हजार को विना विचार के साईबेरिया में निर्वासित कर दिया।

मार्च १९०७ में डूमा का द्वितीय निर्वाचन हुआ। पुनः उपर्युक्त घटनाओं की आवृत्ति हुई व चार मास पश्चात् इसे पुनः भंग कर दिया गया। निकोलास द्वितीय ने एक विशेष नियम का प्रवर्तन किया-जिसके द्वारा मतदान प्रथा को—श्रेणी-प्रणाली में विभाजित एवं सामन्त वर्ग को प्रधान्य देकर-संकीर्ण बना दिया। संशोधित निर्वाचन नियम के अनुसार अक्टूबर में तृतीय डूमा का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ—जिसमें संकीर्णवादियों का ही प्रधान्य था। ५ वर्ष पर्यन्त यह डूमा एक परामर्शदात्री समिति के रूप मे सम्राट् का प्रशासन का समर्थन करती रही। श्रमिक वर्ग का बीमा, प्राथमिक शिक्षा का प्रसार इत्यादि योजनाएँ स्वीकृत हुई। परन्तु स्टलिपिन ने क्रान्तिकारी और

सामाजिक प्रजातन्त्र का दमन किया। १९११ में इसकी हत्या कर दी गई और १९१२में द्वितीय डूमा को भंग कर दिया गया। रासपुटिन नाम के एक धार्मिक जादूगर सम्राट् निकोलास द्वितीय का प्रधान परामर्श दाता बन गया एवं स्वैरतन्त्र का पुनस्स्थापन किया गया। क्रांतिकारी समाजवादी दल विप्लव में सम्मिलित नहीं था। समाजवादियों को पकड़ कर साईबेरिया में निर्वासित किया गया, एवं पड्यन्त्र कारियों की हत्या की गई। १९१२ से १९१७ तक की चतुर्थ- "डूमा" में प्रतिक्रियावादियों का प्रधान्य था। आगे जाकर १९१७ का विद्रोह और निकालास द्वितीय का पतन किस प्रकार हुआ—इसका अध्ययन हम आगे करेंगे। भिनोग्राडाफ नामक प्रसिद्ध रूसीय विद्वान के शब्दों में "सुधार—आन्दोलन की सफलता का परिणाम—जनता मे असन्तोष, अनास्था एवं अभाव था–जिसने १९१७ की रक्तमय क्रान्ति को जन्म दिया"। स्वैरतन्त्रवादी जार ने रसिया और निज वंश की स्थायिता व रक्षा के सुयोग को स्वतः ही खो दिया।

(ख) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

(१८७१ से १९१४)

१—जर्मन पर राष्ट्र नीति (बिस्मार्क-काल)

१८७१ से १८९० तक यूरोप की राजनीति का अन्तर्राष्ट्रीय पक्ष जर्मनी का बिस्मार्क था। परन्तु बिस्मार्क के उद्देश्य शान्तिपूर्ण थे। इस काल में यह सम्पूर्ण यूरोप में जर्मनी के आधिपत्य को अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों के मध्यम से विस्तृत करना चाहता था। यह समझता था कि युद्ध की पुनरावृत्ति से जर्मनी की शक्ति नष्ट हो जायेगी और उसका संगठन दुर्बल हो जायेगा। इसीलिए १८७५ मे जब जर्मन जनता में

द्रुतगति से फ्रांस द्वारा क्षतिपूर्ति करने के कारण विक्षोभ एवं प्रतिशोध की भावनाये जागृत हुईं, तो इसने अपने कौशल के साथ उसे शान्त किया। बिस्मार्क ने कहा था—"जर्मन साम्राज्य में आक्रमणात्मक भावना नहीं है"। युद्ध में विजय प्राप्त करना जर्मनी के लिये कोई आवश्यक नहीं है, किन्तु रक्षा में हम इतने शक्तिशाली होना चाहते हैं कि किसी भी बड़े से बड़े संकट का हम निर्भयता के साथ सामना कर सकें"। सैडोवा और सीडान के युद्धो मे जर्मनी को जो क्षति हुई थी—उसकी पूर्ति के लिए बिस्मार्क ने एक नवीन सन्तुलन शक्ति की स्थापना और "यथास्थिति" की सुरक्षा को मूल ध्येय बनाया। बिस्मार्क यह जानता था कि पराजित फ्रांस फ्रैंकफर्ट की सन्धि का प्रतिशोध युद्ध के द्वारा कभी न कभी अवश्य लेगा। फ्रांस को यदि मित्र मिल गये तो वह और भी भयानक हो जायेगा। इसीलिए गुच के शब्दों मे "फ्रांस का यूरोपीय राष्ट्रों से सम्पूर्ण पृथक्करण ही बिस्मार्क की नीति थी–जिससे कि फ्रांस जर्मनी को चुनौती नहीं दे सके व जो लाभ जर्मनी ने संचित किया है, उसकी सुरक्षा हो सके।" राबर्टसन् के शब्दों में "मध्य यूरोप को संगठित करना ही इसका मुख्य व एकमात्र उपाय था। फ्रास का पृथक्करण एवं महाद्वीप में जर्मन आधिपत्य का विस्तार ये एक ही उद्देश्य के दो परिणाम थे"।

जर्मन-प्रधान मन्त्री ने अपने कुटनैतिक कौशल और राजनैतिक दक्षता द्वारा जमनी की रक्षा के लिए विभिन्न राष्ट्रों से मैत्री स्थापित की एवं शत्रुओं को किसी से सम्बद्ध नहीं होने दिया। मैजाडे ने मैटर्निक के चरित्र के सन्बन्ध मे कहा है—"यूरोप मे सर्वदा एक न एक अध्यक्ष रहेगा"। यह कथन सत्य है, क्यो कि मैटर्निक प्रणाली के अन्त के पश्चात् बिस्मार्क का उदय हुआ। केवल अन्तर इतना ही हुआ कि वियाना की

अपेक्षा बर्लिन राजनैतिक केन्द्र बन गया। बिस्मार्क ने आस्ट्रिया और इटली के साथ ही मैत्री स्थापित नहीं की, परन्तु रूस को भी अपने साथ संश्लिष्ट रखा। इंग्लैण्ड की उदारनीति और लोकसत्ता से यद्यपि यह घृणा करता था, फिर भी उसके साथ इसने सौहार्द स्थापित किया। केवल १८८० के पश्चात् उपनिवेशों की समस्याओ को छोडकर बिस्मार्क के अन्तिम दिवस तक ये दोनों राष्ट्र परस्पर मित्र थे। जर्मनी की नौशक्ति की दुर्बलता से इंग्लैण्ड के साथ संघर्ष का कोई कारण नहीं था। बिस्मार्क कहा करता था कि "एक पानी के चूहे और जमीन के चूहे मे परस्पर लड़ाई नहीं हो सकती"।

(क) स्वैरतान्त्रिक सौहार्द

प्रशिया के प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त होने के पश्चात् रसिया के साथ मित्रता स्थापन ही बिस्मार्क का प्रमुख लक्ष्य था। हम देख चुके हैं कि जर्मन साम्राज्य की स्थापना रसिया के अप्रत्यक्ष सहयोग से ही हुई, क्योंकि यदि फ्रांस के आक्रमण के समय रूस जर्मन पर आक्रमण कर देता तो फ्रांस पर इसकी विजय असम्भव थी। अथवा सैडोवा के युद्ध के (१८६६) अनन्तर बिस्मार्क ने पराजित राष्ट्र के (आस्ट्रिया) साथ पवित्र सम्बन्ध रख कर आस्ट्रिया को भी मित्र बना रखा था। १८७२ मे इसने राजनीतिक कूटनीति द्वारा जर्मनी, रसिया और आस्ट्रिया में "त्रि-स्वैरतान्त्रिक सौहार्द" स्थापित किया। "पवित्र राजसत्ता की रक्षा, विप्लवी अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ एवं समाजवाद की प्रगति का प्रतिरोध" ही इस सौहार्द का ध्येय था। बर्लिन नगर म महान् प्रीतिभोज और समारोह के साथ इन तीनों राष्ट्रों ने परस्पर यह समझौता किया। सम्राट् विलियम रूस और आस्ट्रिया की राजधानी में अतिथि हुआ। १८७३ में इटली का राजा विक्टर ईमानवेल भी बर्लिन में आया व

अप्रत्यक्ष रूप से इस समझौते का समर्थन किया। हालैण्ड और स्वीडेन के राजा ने इस स्वैरतन्त्र की मक्का मे आकर जर्मन सम्राट् को सम्मानित किया। संक्षेप में शान्ति पूर्ण नीति द्वारा यूरोप मे जर्मनी का प्रभाव विस्तृत होने लगा, परन्तु इन सब सौहार्दों की स्थापना में कोई लिखित सन्धि नहीं थी।

(ख) रूस–जर्मनी मतभेद

१८७४ और १८७५ में जर्मनी और फ्रांस में युद्ध की आशंका हो गई—जिस समय रूस एक अनिश्चित मित्र प्रतीत हुआ। उसी दिन से सम्भवतः बिस्मार्क आस्ट्रिया के साथ अधिक और दृढ़ मैत्री स्थापन के लिए बद्ध-परिकर हो गया। जब १८७८ में रूस-तुर्की युद्ध के परिणाम से बिस्मार्क की अध्यक्षता मे बर्लिन कांग्रेस का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ, तब चतुर "ईमानदार दलाल" बिस्मार्क ने रसिया के विरुद्ध आचरण किया। हम देख चुके हैं कि बॅल्कान में किस प्रकार बुल्गेरिया को छोटा कर विजयी रूस को कांग्रेस का मत मानने के लिए बाध्य किया गया था। यद्यपि यूरोपीय संघर्ष की सम्भावना नहीं थी, फिर भी जर्मनी रसिया की मित्रता से वञ्चित हो गया। गुच के शब्दों में "बर्लिन कांग्रेस की महान् राजनैतिक देन रूस जर्मन विच्छेद थी"। ऐक्साकाफ ने लिखा—"बर्लिन कांग्रेस रसिया की जनता के विरुद्ध एक षड्यन्त्र है, रसिया को यहाँ एक प्रकार से बुद्धू बना दिया गया"। मास्को राजपत्र के सम्पादक कैटकाफ ने लिखा—"जर्मनी ने रसिया को प्रतारित ही नहीं किया, अपितु यह बता दिया कि कान्स्टेन्टिनोपिल की ओर राज्य-विस्तार का मार्ग बर्लिन ही की ओर से है"। क्रुद्ध रूस सम्राट् ने १८७९ में जर्मन राजदूत से कहा, "यदि जर्मनी एक शतवर्ष की मित्रता को रखना चाहता है, तो उसे अपनी नीति में परिवर्तन करना ही पड़ेगा"। इसने जर्मन

सम्राट् को लिखा "१८७० की रूसीय सहायता को कभी भी नहीं भूलने का आश्वासन आपने दिया था, परन्तु जर्मन पर-राष्ट्र नीति का परिणाम हमारी आशंका है कि दोनों ही राष्ट्रों के लिए भयंकर होगा"। युद्ध मन्त्री मिलूटिन ने फ्रांस के साथ मैत्री-स्थापन का वार्त्तालाप प्रारम्भ किया। रूस की इन धमकियों से बिस्मार्क इस सिद्धान्त पर पहुंच गया कि रूस के साथ जर्मनी की मैत्री दृढ नहीं रह सकती। १८७५-१८७६ में रूस प्रधान मन्त्री गार्ट्सकॉफ ने आल्सॅस लोरेन की रक्षा के लिए विस्मार्क की संधि-योजना को अस्वीकृत कर दिया। रूस तुर्की युद्ध के समय रसिया ने यह पूछा था कि यदि रूस आस्ट्रिया पर आक्रमण करे तो जर्मनी निष्पक्ष रहेगा या नहीं? तब विस्मार्क ने यह उत्तर दिया कि—" जर्मनी अपने स्वार्थ को देखेगा"। बर्लिन कांग्रेस के समय रूस प्रतिनिधियों ने पुनः विस्मार्क के साथ सन्धि स्थापन का प्रयत्न किया था, परन्तु विस्मार्क ने कहा था—"भौगोलिक स्थिति एवं रूस का स्वैर-तन्त्र, सन्धि को कभी भी भग करने में योग दे सकता है व जर्मनी को निम्न बनाया जा सकता है"। विस्मार्क ने फिर कहा था—"हमारे जीवन का मूल ध्येय रूस के साथ मैत्री स्थापित करना है, परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि हम अपने देश की सम्पूर्ण रक्षा को उसी पर निर्भर बना दें। बर्लिन कांग्रेस में मैं स्वयं को एक रूस प्रतिनिधि समझता था। रूस का ऐसा कोई प्रस्ताव मेरे पास नहीं आया-जिसका मैंने समर्थन नहीं किया। मैं यह सोचता था कि रूस हम को पुरस्कृत करेगा"। रूस जर्मनी को आस्ट्रिया से विच्छिन्न करना चाहता था-जिससे कि जर्मनी पूर्ण रूस पर निर्भर हो जाये, परन्तु स्वार्थ की दृष्टि से यह स्वीकार करना असम्भव था। रूसीय सम्राट् ने "त्रि स्वैर-तांत्रिक सौहार्द" से स्वयं को हटा लिया एवं विस्मार्क ने इसके

प्रत्युत्तर में आस्ट्रिया के साथ १८८६ मे द्वि मैत्री स्थापित करने का निर्णय किया।

आस्ट्रिया के विदेश मन्त्री एन्ड्रासी ने–जो कि रुस के विरुद्ध एक शक्तिशाली मित्र की खोज मे था—बिस्मार्क के साथ अगस्त मे संधि सम्बन्धी वार्तालाप किया। बिस्मार्क ने कहा—"यदि अकारण रशिया जर्मनी पर आक्रमण करे तो आस्ट्रिया क्या करेगा"? एन्ड्रासी ने उत्तर दिया—"आस्ट्रिया पूर्ण शक्ति के साथ जर्मनी की सहायता करेगा"। बिस्मार्क ने कहा—"तब ये दोनो राष्ट्र परस्पर मित्रता स्थापित क्यों न करें"। एन्ड्रासी ने कहा—"हम भी बड़े इच्छुक हैं"। दोनो ने यह निश्चय किया कि वियाना मे सम्मिलित होकर दोनों शर्तों का निर्धारण करेंगे। परन्तु जर्मन सम्राट् ने बिस्मार्क को वियाना जाने से तार द्वारा निषिद्ध किया एवं कैजर और जॉर ३ सितम्बर को अलैग्जेण्ड्रोवो में वाद–विवाद को सुलझाने के लिए मिले। जॉर ने अपने उस पत्र के लिए—जिससे जर्मनी असन्तुष्ट हुआ था—पश्चात्ताप किया व कहा—"न इसमे कोई चुनौती है व न आतंक का ही कारण है"। कैजर ने यह समझ लिया कि जर्मनी के विरुद्ध युद्ध करने की कोई इच्छा रूस की नही है, केवल बिस्मार्क इसे अतिरंजित कर रहा है। इसने बिस्मार्क से कहा—"तुम यदि हमारे स्थान पर होते तो तुम्हे विदित होता कि मैत्री विच्छेद कितना कठिन है, क्यों कि जार हमारा मित्र ही नहीं, अपितु व्यक्तिगत सम्बन्धी भी है। १७ वष मे प्रथम बार तुम हम से एक मत नही हो"? बिस्मार्क ने कहा—"आस्ट्रिया के साथ मैत्री का अभिप्राय रसिया पर आक्रमण नहीं है। यदि आस्ट्रिया पर रूस आक्रमण करे तो जर्मनी की स्वार्थ उसकी सहायता के लिए बाध्य करेगा–चाहे सन्धि रहे या नही रहे। क्यों कि विजयी रूस, पराजित आस्ट्रिया व शत्रु फ्रांस से परिवेष्ठित जर्मनी की

रक्षा असम्भव है"। सितम्बर १६ को कैजर ने विस्मार्क से कहा—"आस्ट्रिया के साथ रक्षात्मक सन्धि के लिए मैं तैयार हूं, परन्तु रूस सम्राट् को इसकी सूचना देनी होगी"। आस्ट्रिया यह चाहता था कि सन्धि रसिया के विरुद्ध आस्ट्रिया की रक्षा के लिए हो, परन्तु विस्मार्क चाहता था कि यह रक्षणात्मक सन्धि फ्रांस और रसिया दोनों के विरुद्ध हो। इसी समय पेरिस के जर्मन राजदूत होहैनलोही से कैजर ने परामर्श लिया—उसने कहा—"प्रथमत: हम आस्ट्रिया का विश्वास नहीं करते। द्वितीयत: हम यह नहीं सोचते कि रसिया जर्मनी का वास्तविक शत्रु है। तृतीयत: फ्रांस और रूस की सन्धि फ्रांस और रूस की सन्धि को जन्म देगी—जिससे युद्ध अवश्यम्भावी है"। विस्मार्क २४ सितम्बर को वियाना में सन्धि शर्तें नियत कर चुका था—जिसके अनुमोदन के लिए कैजर के पास भेजा। पर कैजर ने उत्तर दिया—"विश्वासघातकता से स्वेच्छा राज्यच्युति श्रेष्ठ है"। विस्मार्क ने त्याग-पत्र की धमकी दी, अन्त मे कैजर को ही पराजित होना पडा। ७ अक्टूम्बर को वियाना में संधि स्वीकृत हुई—जिसकी चार निम्न शर्तें थीं—(१) यदि दोनो में से एक पर रूस आक्रमण करे, तो एक दूसरे की सहायता करेगा व एक साथ ही सन्धि स्वीकृत करेंगे। (२) यदि दोनों में से एक पर अन्य शक्ति आक्रमण करे, तो दूसरा हितैषी निष्पक्षता का अवलम्बन करेगा। पर यदि रूस हस्तक्षेप करे, तो दूसरे को प्रत्यक्ष सहायता देना होगा। (३) यदि रसिया अस्त्र शस्त्रों का विस्तार करे—जिससे दोनो में से किसी एक की भी रक्षा संदिग्ध हो, तो दोनो की और से जॉर को सूचना दी जायेगी कि वह यदि एक पर आक्रमण करे तो दोनो के आक्रमणों के समान समझा जायेगा"। (४) पाँच वर्ष तक यह सन्धि चलेगी—यदि इसकी समाप्ति के लिए वार्तालाप

न हुआ तो यह तीन वर्ष और चलेगी व फिर भंग हो जायेगी। ये सब शर्तें गुप्त थीं।

बिस्मार्क ने कहा था—"यदि इस सन्धि का प्रस्तावन अधिक कठिन था तो इसका पालन सहज और सरल होगा। युद्ध के भय और आतंक के स्थान पर इस सन्धि से सर्वत्र शान्ति संचारित हुई"। गुच के शब्दों में "बिस्मार्क ने जर्मनी की रक्षा का एक चमत्कृत प्रबन्ध ही नहीं किया, परन्तु वियाना और बर्लिन के अन्तर को निर्मूल कर दिया। १८६६ के जर्मन रक्षा के कार्यक्रम को इस माध्यम से पूर्ण किया, इस सन्धि में रक्षात्मक शब्द द्वयर्थक था। जब भी बिस्मार्क चाहता, "रक्षात्मक" शब्द से आस्ट्रिया की सहायता अस्वीकार कर सकता था, क्यों कि "रक्षात्मक" और "आक्रमणात्मक" का कोई नियामक नहीं था। इसी कूटनीति से इसने आस्ट्रिया को अपने हस्तगत कर लिया। यह सन्धि बिस्मार्क की राजनैतिक सफलता का चरम शिखर थी। आस्ट्रिया-सन्धि प्रणाली में तीन मुख्य केन्द्र बिन्दु थे। बवेरिया के राजा ने एक ' गुप्त-पत्र मे यह लिखा था कि जर्मनी व आस्ट्रिया की मित्रता का इंग्लण्ड समर्थन करेगा"। डिस्रैली जर्मनी के साथ सन्धि करने के लिए इच्छुक था, परन्तु प्रजातन्त्रवादी इंग्लैण्ड व स्वैरतन्त्र जर्मनी ने इसके क्रियान्वयन करने के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया। बॅल्कान में रूस का आधिपत्य जर्मनी के लिए हानिकर था—इसीलिए बॅल्कान में आस्ट्रिया का समर्थन करने की एक नवीन नीति को रूस के प्रतिरोध के लिए जर्मनी ने ग्रहण किया। डान्यूब नदी के तट जर्मनी के आधीन में आ गये-जिससे रूमानिया भी इस सन्धि में सम्मिलित हो गया। इसके अतिरिक्त भी दो और लाभ थे-आस्ट्रिया-राजसत्ता के समर्थन से जर्मनी के विरोध के लिए उन्मुख स्लाव-प्रभाव को प्रतिहित कर दिया

गया—जिससे कि हैप्सबर्ग वंश स्थायी हो गया। आस्ट्रिया के आन्तरिक इतिहास में जर्मन और मैगेयर जाति को एकत्रित कर अन्यान्य जातियों को गौण बना दिया। इससे दो असुविधाऐं भी थीं-पोलैण्ड की समस्या और बल्कान की ओर आस्ट्रिया की प्रगति से युद्ध की भविष्य में आशंका।

(घ) त्रिराष्ट्रीय मैत्री (१८८२)

जब फ्रांस ने ट्यूनीशिया को अधिकृत किया,(१८८१)तो इटली रुष्ट होकर बिस्मार्क के साथ सम्मिलित हो गया एवं १० मई, (१८८२)को इन शर्तों को स्वीकृत किया। (१)यदि अकारण इटली पर फ्रांस आक्रमण करे तो शेष दोनों उसका समर्थन करेंगे। (२) यदि फ्रांस जर्मनी के विरुद्ध आक्रमण करे तो इटली जर्मनी की सहायता करेगा। (३) यदि दो या एक हस्ताक्षरित शक्ति में से एक पर आक्रमण किया गया, तो शेष दो उसकी सहायता करेंगे। (४)यदि एक महाशक्ति इन तीनों में से एक पर आक्रमण करे, तो शेष निष्पक्ष हितैषिता का अवलंबन करेंगे। (५)यह सन्धि भी इसी प्रकार से ५ वर्ष व ३ वर्ष तक के लिए थी। इसका आंशिक उद्देश्य फ्रांस और आंशिक रूस का विरोध था। १८८३ मे रूमानिया भी गुप्त सन्धि द्वारा इस मैत्री में सम्मिलित हो गया।

बिस्मार्क कभी भी एक ही मार्ग पर नहीं चलता था। यद्यपि उसने त्रिराष्ट्रीय मित्रता को दृढ बनाया था, परन्तु रूस को रुष्ट या विक्षुब्धक रना इसकी नीति नहीं थी। यद्यपि सार्वजनिक तार-सम्बन्ध बर्लिन और पिट्सबुर्ग में विच्छिन्न हो चुका था, परन्तु "व्यक्तिगत तारों" को बिस्मार्क ने चतुर कूटनीति द्वारा पुनः प्रारम्भ किया। १३ मार्च १८८१ में अलैग्जेण्डर द्वितीय की हत्या के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी अलैग्जेण्डर तृतीय ने अराजकवाद के प्रतिबंध के लिए जर्मनी के साथ मित्रता की

इच्छा अभिव्यक्त की। चतुर बिस्मार्क ने तत्काल यह घोषित किया कि द्विराष्ट्रीय मैत्री ने अन्य मैत्रियों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा दिया है। जून १८८१ मे आस्ट्रिया, रसिया और जर्मनी का "त्रि-स्वैरतांत्रिक" संघ स्थापित हुआ—जिसकी निम्न शर्तें थी। (१) यदि इनमे से एक भी चतुर्थ शक्ति के साथ युद्ध करे तो अपर सब हितैषी निष्पक्षता का अवलंबन करेंगे। विशेषतः तुर्की मे इसका प्रयोग अन्तर्हित था। (२) रसिया ने बर्लिन सन्धि में आस्ट्रिया को जो विशेष सुविधाऐं दी गई थीं—उनकी रक्षा के लिए आश्वासन दिया। बॅल्कान राज्य के किसी भी प्रायोद्वीप का परिवर्तन इन तीनो ही की सहमति से होगा। (३) कृष्ण समुद्र से भूमध्य सागर तक की यातायात की प्रणाली युद्ध-काल में सबके लिए प्रतिबद्ध रहेगी। यह समझौता अत्यन्त गुप्त रहेगा व तीन वर्ष चलेगा। मार्च १८८४ में स्कैयर्नविस के वार्तालाप मे इस सन्धि की पुनरावृत्ति की गई। संक्षेप में बिस्मार्क की प्रथम दशवर्षीय परराष्ट्र नीति सम्पूर्ण रूप से सफल थी। आस्ट्रिया और इटली ही इसके मित्र नही थे-रसिया भी पुनर्जीवित त्रि-स्वैरतांत्रिक दल का सदस्य था। इंग्लैण्ड के साथ बन्धुत्त्व और वैवाहिक सम्बन्ध थे व रूमानिया भी जर्मन नीति का समर्थक था। जर्मन सेनानायक गोल्ट्ज तुर्की सेना को संगठित करने के लिए भेजा गया। फ्रांस मिश्र इंग्लैण्ड व ट्यूनिश के सम्बन्ध मे इटली में विच्छिन्न हो गया। गुच के शब्दो में "महापुरुष बिस्मार्क ने एक दानवीय शक्ति के रूप मे यूरोपीय परराष्ट्र नीति पर नियंत्रण किया व छोटे छोटे व्यक्ति उसकी हँसी और क्रोध के पात्र बन गये"। १८८५ और १८८६ मे बुल्गेरिया-समस्या ने आस्ट्रिया और रूस के सम्बन्ध को शिथिल किया। जर्मनी ऐसी विषम परिस्थिति में आगया कि यदि वह आस्ट्रिया का समर्थन करता

तो युद्ध अवश्यंभावी था। इसीलिए ११ मई १८८७ में बिस्मार्क ने रूस के साथ पुनर्बीमा-संधि पृथक् रूप से तीन वर्ष के लिए की। (१) यदि एक तृतीय शक्ति युद्ध करे, तो दूसरा हितैषी निष्पक्षता का अवलंबन करेगा, परन्तु आस्ट्रिया और फ्रांस के युद्ध में इसका प्रयोग नहीं होगा-यदि वह युद्ध हस्ताक्षरित दलों में किसी के आक्रमण का परिणाम हो। (२) जर्मनी ने बॅल्कान में रूस के पुरातन अधिकार को स्वीकृत किया-विशेषतः बुल्गेरिया और पूर्व रूमेलिया में। (३ कृष्ण समुद्र-प्रणाली के प्रतिबंध के सिद्धान्त को दोनों ही ने स्वीकृत किया। यदि इस सम्बन्ध में तुर्की के साथ रूस का विवाद हो तो जर्मनी नैतिक और कूटनीतिक समर्थन करेगा-सामरिक नहीं। यह सन्धि आस्ट्रिया के सम्राट् से गुप्त थी-परन्तु १८७९ की सन्धि की सूचना ज़ॉर को दी गई थी।

(ङ) औपनिवेशिक विस्तार

बिस्मार्क जर्मन साम्राज्य को उपनिवेशों में विस्तृत करने का पक्षपाती नहीं था। इसने कहा—"उपनिवेश जर्मनी की दुर्बलता के कारण होंगे, क्योंकि शक्तिशाली नौ-शक्ति के अभाव में जर्मनी की रक्षा करना असम्भव है एवं जर्मनी की भौगोलिक स्थिति नौ शक्ति वृद्धि के विपरीत है"। परन्तु परिस्थिति इतनी जटिल थी कि बिस्मार्क को औपनिवेशिक विस्तार की नीति को अपनाना ही पड़ा। औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम में जर्मन के व्यापार, जनसंख्या अर्थ और व्यवसाय में प्रभूत उन्नति हुई। औद्योगिक व्यवसाय के लिए आवश्यक कच्चे माल का संचय एवं उसके विक्रय के लिए उपनिवेशों की अनिवार्यता थी। जर्मन-जनता ने औपनिवेशिक विस्तार के लिए समितियों का संगठन किया व लोक सभा में आन्दोलन प्रारम्भ किया। कुशल कूटनीतिज्ञ बिस्मार्क ने बाध्य होकर अफ्रीका में उपनिवेशों का

विस्तार किया। १८८४ से १८६० तक अफ्रीका में जर्मनी टोगोलैण्ड, कैमैरून, दक्षिण पूर्व अफ्रीका, नियुगिनी के एक तृतीयांश, सैमोआ, ऐंग्रापिक्वीना इत्यादि को अधिकृत कर औपनिवेशिक साम्राज्य की नींव डाल दी। बिस्मार्क जानता था कि औपनिवेशिक विस्तार इंग्लैण्ड को एक प्रकार की प्रत्यक्ष चुनौती होगी व परिणाम में फ्रांस और इंग्लैण्ड में सन्धि स्थापना होगी। इसीलिए इतने सुचारु रूप से इस नीति को क्रियान्वित किया कि इंग्लैण्ड को विक्षुब्ध होने का कोई अवसर नहीं मिला। पदच्युति के ५ वर्ष पश्चात् जब बिस्मार्क ने हैंबुर्ग बन्दरगाह में एक विराट् जर्मन जहाज का प्रदर्शन किया तो प्रधानमन्त्री बुलो से कहा—"वस्तुतः हम प्रभावित हो गए हैं, सत्य ही यह एक नवीन युग है और एक नवीन संसार है"। इस नवीन युग में इंग्लैण्ड और जर्मनी मे नौशक्ति की प्रतियोगिता सम्राट् विलियम के काल में किस प्रकार प्रारम्भ हुई—यह हम आगे देखेंगे।

(च) समीक्षा

समसामयिक जर्मन ऐतिहासिक न्यूमैन ने कहा—"मध्य यूरोप की तीस वर्ष की राजनीति का अर्थ बिस्मार्क था"। किन्तु यह अधिक अच्छा होता—यदि यह कहता—"२० वर्ष के लिए समग्र महाद्वीप की राजनीति का अभिप्राय बिस्मार्क था"। बिस्मार्क के जीवन-चरित लेखक रावर्टसन् का कथन है कि "१८७० के पश्चात् बिस्मार्क की परराष्ट्र नीति इतनी अभेद्य और रहस्यमय थी—जिसका विश्लेषण करना अत्यन्त कठिन है"। स्टॉक और होहेनलोही के स्मारक-पत्र व सीवेल और जर्मन राजकुमार की दिनचर्या-लेखा इस काल के विषय में हमें कुछ प्रकाश नहीं देते। शासक की घोषणा और बिस्मार्क के कार्यक्रम में अत्यन्त अन्तर है।

बिस्मार्क ने कूटनीति को एक नवीन रूप दिया। विदेशनीति इसके मत में "सर्वदा व्यक्तिगत और गुप्त रूप से परिचालित करनी चाहिए"। प्रचार और उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल से यह घृणा करता था। विजय केवल मिथ्या, षड्यन्त्र, प्रतारणा के माध्यम से उतनी ही मात्रा में सम्भव है—जितनी कि युद्ध से। बिस्मार्क ने यह कहा कि "हमे स्मरण रखना चाहिये कि हमने सम्पूर्ण संसार को जय नहीं किया। तीन प्रतिवेशियों से परिवेष्टित होकर ही हमें रहना पड़ेगा"।

शक्तिशाली गुट्ट जर्मन आधिपत्य का ध्वंस कर सकता था, यह बिस्मार्क भली भांति जानता था। इसीलिए उसने ऐसी सन्धि और उपसन्धि द्वारा इतनी जटिल जर्मनी संरक्षण-प्रणाली को जन्मदिया—जिसके अनुसार यदि आस्ट्रिया जर्मनी पर आक्रमण करे, तो रसिया निष्पक्ष रहेगा। यदि रूस आक्रमण करे, तो आस्ट्रिया निष्पक्ष रहेगा। यदि फ्रांस आक्रमण करे तो इटली रक्षा करेगा। यदि फ्रांस और रूस आक्रमण करे, तो आस्ट्रिया और इटली इसकी रक्षा करेंगे। राबर्टसन् ने कहा है—"यह एक ऐसा जादूगरी का खेल था—जिसका परिचालन बिस्मार्क जैसा कूटनीतिक ही कर सकता था। इसने फ्रांस को ही सब राष्ट्रों से पृथक् नहीं कर दिया, अपितु सब राष्ट्रों को यथा-स्थित रख कर यूरोप में शान्ति रक्षा की"।

बिस्मार्क की प्रणाली मे अनेक दोष भी थे। आस्ट्रिया और इटली की संधि की भित्ति दुर्बल थी। एक से अधिक बार बिस्मार्क ने रूस के स्वार्थ की रक्षा करने के लिए इंग्लैण्ड को अपने प्रति उदासीन बना दिया। सत्य है कि इनके पतन के समय १८६० में इंग्लैण्ड और जर्मनी के सम्बन्ध सन्तोष-जनक थे, परन्तु इंग्लैण्ड त्रिराष्ट्रीय मत्री से पृथक था। यद्यपि फ्रांस भी पृथक हो गया था फिर भी बिस्मार्क ने न तो फ्रांस को निरस्त्र

किया था व न संतुष्ट ही किया था। उसने फ्रांस के विरोध में एक ऐसा राजनैतिक संगठन किया—जिससे फ्रांस विवश होकर मित्र का अन्वेषण करने लगा। इसीलिए बिस्मार्क के उत्तराधिकारी कैजर विलियम द्वितीय के लिए राजनैतिक अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो ने अत्यन्त जटिल समस्या का उद्भव किया—जिसके लिए बिस्मार्क आंशिक रूप से दायी था। डा० गुच का कथन है—"बिस्मार्क के २८ वर्षीय अधिनायक काल में जर्मनी की परराष्ट्र नीति एक ही व्यक्ति की मेधा और इच्छा के द्वारा परिचालित होती थी, परन्तु १८६० के पश्चात् सम्राट्, महामन्त्री और विदेश मन्त्री इन तीनों की नीति का एक अस्थिर समझौता हुआ"।

(छ) कैजर विलियम द्वितीय (१८६० से १९१४)

जर्मन परराष्ट्र नीति का संचालन बिस्मार्क के पश्चात् ३० वर्षीय प्रतिभाशाली, कर्तव्य परायण नवीन युवक जर्मन सम्राट् ने स्वयं किया। व्यक्तिगत योग्यता और शासन की योग्यता इसमें बहुत थी, परन्तु अहंभाविता और आत्म-नियंत्रण के अभाव ने विदेश-नीति में इसे असफल कर दिया। कूटनीति में आवश्यक आत्म-संयम और नियंत्रण, वास्तविक और गम्भीरता का इसमें अभाव था। ठन्डे मस्तिष्क से यह जटिल समस्या का समाधान नही कर सकता था और निष्प्रयोजन ही अपमानित कर देता था। शत्रु को मित्र बनाने का कौशल इसमें नहीं था और संधि भंग करने मे भी चतुर था।

अ—कैजर की नीति

कैजर की नीति बिस्मार्क से पूर्णतः विभिन्न थी। जर्मनी के आधिपत्य को संसार मे व्यापक करना इसका मूल ध्येय था, क्योंकि जर्मन-जाति विश्व के जय के लिए अत्यन्त समर्थ

थी—यह इसकी धारणा थी। अपने स्मृति-पत्र में इसने लिखा है—"चेम्बरलेन ने अपनी पुस्तक "दी फाउन्डेशन ओफ दी नाइन्टिन्थ सेंचरी" में जर्मन-प्रभुत्त्व का प्रथम प्रचार किया व शिक्षा दी कि जर्मन जाति एक दिन सम्पूर्ण विश्व की प्रभु बन जायेगी। बिना जर्मनी की सहायता से अन्तर्राष्ट्रीय किसी भी घटना का निर्णय नहीं हो सकता"। इस विश्व व्यापी प्रभुत्त्व की नीति को इतिहास मे "वेल्ट-पोलिटिक्" कहा गया। जर्मन साम्राज्य के विस्तार के लिए जर्मनी के उपनिवेशों को अधिकृत करना इस नीति का अनिवार्य अंग था। जर्मन जन-संख्या की वृद्धि और आर्थिक स्वार्थ के लिए इसका अधिकार आवश्यक था। उपनिवेश-विस्तार के पश्चात् इसने विराट् नौ शक्ति के संगठन की योजना प्रस्तुत की। नौशक्ति के अभाव में इंग्लैण्ड के आक्रमणों से उपनिवेशो की रक्षा असम्भव थी। कैजर की विदेश नीति में तीन मूल सिद्धान्त थे—विश्व को राजनैतिक प्रभुत्त्व, साम्राज्य विस्तार और नौ शक्ति की वृद्धि। इसने कहा—"हम और हमारी २५ सेनाओं के अतिरिक्त संसार में कोई संतुलन शक्ति नहीं है"। इसकी राष्ट्रनीति प्रगतिशील, उग्र और विस्तृत थी। यह अदूर-दर्शी और असावधान था व इसके पास ऐसी नीति भयावह थी। समय समय पर यह ऐसी सामरिक शक्ति का प्रयोग करता था—जैसे तेज तलवार, घूंसा और सुशिक्षित सेना आदि। सैनिक प्रभुत्त्व के विस्तार के प्रयत्न से ही प्रथम महायुद्ध की सृष्टि हुई थी।

जर्मन प्रधान मन्त्री कैप्रिवी (१८६० से १८६४) ने कैजर के निर्देशानुसार रसिया के साथ संरक्षण सन्धि को १८६० में पुनरावृत्त नहीं किया, क्योंकि जर्मन नीति को गुप्त में विश्वास नहीं था। बिस्मार्क द्वारा निर्मित तार-सम्बन्धों को

भी इसने विच्छिन्न कर दिया। कैजर यह विश्वास करता था कि संरक्षण सन्धि आस्ट्रिया की दृष्टि में जर्मनी को घृणित कर देगी—जिसका परिणाम भयानक होगा। कैजर ने कहा—"इसकी प्रयोजनीयता अब नष्ट हो गई। रूस निवासी तन मन से अब इसका समर्थन नहीं करते"। परिणामतः फ्रांस और रूस की प्रत्यक्ष मित्रता प्रारम्भ हो गई। फ्रांसीय नौ-जहाज १८६१ में क्रान्स्डाट् में रूसीय मित्रता-स्थापन वार्ता के लिए गया और जॉर भी मित्रता के लिए व्याकुल हो गया-जिसके परिणाम मे रूस के नौ-जहाजों ने फ्रांस के तुलौन बन्दरगाह में दो वर्ष पश्चात् सामरिक प्रदर्शन किया। फ्रांस और रूस ने एक सामरिक समझौता किया-जिसके अनुसार गुप्त रूप से दोनो ने पारस्परिक रक्षा का बचन दिया। इसकी घोषणा १८६५ में की गई। कैजर ने जॉर निकोलास द्वितीय को फ्रांसीय मैत्री के लिए निषिद्ध किया व कहा—"फ्रांस और रूस की मित्रता से हम घबडाते नहीं है, परन्तु यह स्वैरतन्त्र के सिद्धान्त के विरुद्ध है व गणतन्त्र को उच्च आसन देती है"। विलियम द्वितीय एवं निकोलास द्वितीय के पत्र व्यवहार को इतिहास मे "विली-निकी पत्र-व्यवहार" कहा जाता है। एक पत्र मे कैजर ने कहा-"निकी, तुम हम पर विश्वास करो। चिरकाल के लिए भगवान् ने फ्रांस को अभिशप्त कर दिया"। परन्तु इन सब प्रयत्नों के होने पर भी फ्रांस और रूस की मैत्री दृढ ही बनती गई। इसने रूस और फ्रांस के साथ सद्भावना प्रदर्शित करने के लिए १८६५ में जापान को लियाओटंग प्रायोद्वीप से बहिष्कृत करने का समर्थन किया, १८६६ में रसिया के लिए इंग्लैण्ड संधि प्रस्ताव को अस्वीकार किया। १६०८ में जर्मन, रूस और फ्रांस की मत्री का विफल प्रयत्न किया, परन्तु फ्रांस और रसिया से यह वास्तविक मित्रता नहीं चाहता था। फ्रांस को अफ्रीका में

उपनिवेश वृद्धि की इसने प्रेरणा दी व १८६८ मे फैसोडा घटना में इसने इसका साथ नहीं दिया। १९०४-१९०५ में रूस जापान युद्ध मे रसिया कों इसने कोई सहायता नहीं दी। परन्तु आस्ट्रिया को समर्थन कर सुयोग का लाभ उठाने के लिए बॅल्कान की ओर प्रोत्साहित किया। तुर्की की समर्थन नीति का अवलम्बन करने से रसिया के साथ मित्रता स्थापित करने का अवसर चिरकाल के लिए नष्ट हो गया। अफ्रीका की बुअर जाति को सहायता देकर इसने साम्राज्य-वादी इंग्लैण्ड को रुष्ट कर दिया। इन सब नीतियों के अवलम्बन से ही जर्मनी यूरोप की दृष्टि से गिर गया व विचारक इसकी नीति को "प्रतारणा की नीति" कहने लगे।

हम देख चुके हैं कि बिस्मार्क की औपनिवेशिक नीति ने इंग्लैण्ड को असन्तुष्ट नहीं किया था। इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री ग्लैडस्टन ने घोषणा की थी-"यदि जर्मनी औपनिवेशिक शक्ति का प्रयासी है तो ईश्वर उसका मंगल व कल्याण करे। संसार में सभ्यता के विस्तार के लिए हम और जर्मनी साथ साथ बढ़ेंगे"। बिस्मार्क के पतन के साथ साथ १८९० मे कैजर ने इंग्लैण्ड निरीक्षण किया व कहा—"इंग्लैण्ड को हम अपना घर ही समझते हैं। जर्मनी के साथ साथ इंग्लैण्ड की-जो ऐतिहासिक मित्रता है-उसकी हम यथा-शक्ति रक्षा करेंगे"। इस मित्रता के परिणाम में १८९० की एक विशेष सन्धि द्वारा जर्मनी ने होलिगोलैण्ड द्वीप को अधिकृत किया (१८०७) व इसके परिवर्त्तन मे इंग्लैंड ने जर्मनी से वीटू और जंजीबार लिये। कील नहर के खनन से हैलिगोलैण्ड का सामरिक महत्त्व अत्यन्त बढ़ गया था। इंग्लैण्ड मे जर्मनी द्वारा हैलिगोलैण्ड के अधिकार की अत्यन्त निन्दाऐं हुई। स्टैनले ने कहा-"अच्छे कपड़े के स्थान पर जर्मनी ने इंग्लैण्ड को केवल बटन दिया"। कैजर

ने उल्लसित होकर घोषणा की–"बिना युद्ध और क्रन्दन के ही यह सुन्दर द्वीप हमारे अधिकार मे आ गया"। कैजर की नौ शक्ति की वृद्धि के लिए इस द्वीप का अधिकार एक महत्त्व पूर्ण घटना थी। १८६३ मे जब इंग्लैण्डने पुनः फ्रांस के विरुद्ध अफ्रीका–विभाजन के सम्बन्ध में सन्धि का प्रस्ताव किया, तो जर्मनी ने इसे अस्वीकार कर दिया।

(आ) अंग्रेज–जर्मन–सम्बन्ध

दक्षिण अफ्रीका में इंग्लैण्ड और जर्मनी की विरोधिता सर्व-प्रथम प्रकट हुई। १८६६ में जेम्सन के आक्रमण की असफलता के पश्चात् जब जर्मन–सम्राट् ने राष्ट्रपति क्रूगर को अभिनन्दन तार दिया, तो इंग्लैण्ड में इसका तीव्र प्रतिवाद हुआ। जर्मन जनता ने बुअर जाति को जो प्रोत्साहन इंग्लैण्ड के विरुद्ध युद्ध करने के लिए दिया—उससे इंग्लैण्ड अत्यन्त क्षुब्ध हो गया। सैलिसबरी ने सत्य ही कहा था—"आक्रमण एक मूर्खता का प्रमाण था, परन्तु तार उससे भी अधिक मूर्खता का निदर्शन था"। कैज़र ने १६०१ मे महारानी विक्टोरिया की मृत्यु के पश्चात् इंग्लैण्ड में सहानुभूति प्रकट के लिए पदार्पण किया, परन्तु इसका कोई फल नही हुआ।

इंग्लैण्ड के अनेक शत्रु थे और महाद्वीप मे यह अत्यन्त अलोकप्रिय था। चीन मे जर्मनी द्वारा क्याउचाऊ अधिकार और रूस द्वारा पोर्ट-आर्थार के प्रतिवाद करने से ये दोनों इंग्लैण्ड के विरोधी हो चुके थे। अफ्रीका की फैसोडा घटना ने फ्रांस के साथ इसके मनोमालिन्य को जन्म दिया था। वस्तुतः सत्य यह था कि आक्रमणात्मक साम्राज्यवादी नीति इस पारस्परिक विरोधिता के प्रधान कारण थे। १८६६ मे जब निको-लास द्वितीय ने हैग मे एक अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति सम्मेलन का आह्वान किया तो ऐसी आशंका थी कि तीन शक्तियों मे से कोई

भी इंग्लैण्ड पर आक्रमण करेगी, क्यो कि इंग्लैण्ड उस समय वन्धु-हीन और एकाकी था। यदि फ्रांस रूस और जर्मन की इंग्लैण्ड के विरुद्ध संधि असफल हुई, तो उसके लिए आंशिक रूप से (मन्त्री भॉन वुलो के कथनानुसार) "जर्मनी का फ्रांस पर अविश्वास और फ्रांस की प्रतिशोधात्मक भावना ही उत्तर दायिनी थी"। इसी समय लार्ड आक्सबोर्ड ने कहा था—"जर्मनी और इंग्लैण्ड की राष्ट्रीय विरोधिता की भावनायें प्रथम वार अभिव्यक्त हो गई। यूरोप की शक्तियों से विच्छिन्न रहने के कारण इंग्लैण्ड का संकट पर्याप्तमात्रा में बढ़ गया है"। कुछ राजनैतिक जर्मनी और इंग्लैण्ड के समझौते की संभावना करते थे। १८९९ से १९०१ तक जोशेफ चेम्बॉरलेन ने इंग्लैण्ड अमेरिका और जर्मनी के एक शक्तिशाली मित्र-संघ की स्थापना का प्रस्ताव किया, परन्तु कैजर ने इसे अमान्य किया, क्यों कि इसका उद्देश्य रसिया के विपरीत था। विफल होकर इंग्लैण्ड ने सुदूर पूर्व मे रसिया के सम्राज्य विस्तार के प्रतिरोध के लिए जापान के साथ १९०२ में सन्धि की।

वर्लिन-वगदाद रेल्वे योजना से भारत-प्रवेश के प्रयत्न ने इंग्लैण्ड को आतंकित किया। जव जर्मनी पारस समुद्र मे एक नौ केन्द्र के अधिकार के लिए प्रयत्नशील था, तो लार्ड लैन्स-डाउन ने स्पष्ट ही प्रकट किया कि "इंग्लैण्ड सर्वशक्ति से इस प्रयत्न का प्रतिरोध करेगा"। स्थानीय शासन ने इंग्लैण्ड की घोषणा से भीत होकर जर्मनी को नौ केन्द्र स्थापन व रेल्वे को विस्तृत करने के लिए निषिद्ध कर दिया।

कैजर की नवीन नौ नीति ने इंग्लैण्ड के साथ संघर्ष के वीज-वपन किये। इंग्लैण्ड ने पुरातन शत्रु फ्रांस के साथ मित्रता स्थापित करने का वर्तालाप प्रारम्भ किया, क्यो कि जर्मन नौ-नियम इंग्लैण्ड की शक्ति से भी अधिक जहाज निर्माण

की योजना से परिपूर्ण थे। नौ समस्या मे केवल जहाज निर्माण प्रतियोगिता ही नहीं, चुनौती और राष्ट्र की सतर्कता भी प्रमुख रूप से सम्मिलित थी। एडवर्ड सप्तम की कूटनीति, दूरदर्शिता और व्यक्तिगत कुशलता के परिणाम से इंग्लैण्ड ने महा द्वीपीय विवाद का अवसान कर १९०४ में फ्रांस के साथ सन्धि पर हस्ताक्षर किये। फ्रांस का परराष्ट्र मंत्री डेल्कासी इस सन्धि का निर्माता था। मिश्र में पुरातन विवाद की निष्पत्ति हुई और फ्रांस ने इंग्लैण्ड के अधिकार को स्वीकृत किया। उत्तर अफ्रीका के मरक्को प्रदेश में फ्रांस के अधिकार का समर्थित करने का आश्वासन इंग्लैण्ड ने दिया। न्यूफाउन्डलैण्ड की मछली—समस्या का समाधान भी दोनो के मध्य सन्तोषजनक रूप से हुआ। पश्चिम अफ्रीका के इंग्लैण्ड और फ्रांस के उपनिवेशों मे समझौते से एक सीमान्त निर्धारित किया गया—जिससे फ्रांस को १४ हजार वर्गमील प्राप्त हुए। इसी प्रकार श्याम, मेडागास्कर, तिब्बत और हैन्राईडीज में पारस्परिक द्वन्द्व का एक निर्दिष्ट निर्णय हो गया। फ्रांस और स्पेन की एक विशेष सन्धि द्वारा अफ्रीका के कलह का निर्णय हो गया।

इंग्लैण्ड और फ्रांस का गुट यूरोप के अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास में एक विप्लव था, परन्तु दोनो राष्ट्र इससे अत्यन्त उल्लसित थे। लार्ड रोजबरी ने घोषणा की—"मेरा शोकपूर्ण व स्थिर विश्वास है कि यह समझौता इंग्लैण्ड को जटिलता में फँसा देगा"। जर्मनी से इंग्लैण्ड इसी सन्धि द्वारा पूर्णांशः विच्छिन्न हो गया व अन्तर्राष्ट्रीय समस्या में इंग्लैण्ड और फ्रांस का सम्पर्क क्रमशः बढ़ने लगा। इसके परिणाम में दोनो राष्ट्रों में आत्मविश्वास का संचार हुआ व इटली ने त्रिराष्ट्रीय मैत्री में सम्मिलित होते हुए भी इंग्लैण्ड के साथ समझौता करने का प्रयास किया। यह सन्धि इंग्लैण्ड और रसिया के विवाद का

निर्णय करने वाली थी। १६०७ में रसिया ने इंग्लैण्ड और फ्रांस के साथ संयुक्त होकर त्रिराष्ट्रीय दल का निर्माण किया।

१६०७ में इंग्लैण्ड और रसिया की सन्धि ब्रिटिश परराष्ट्र-नीति में द्वितीय कूटनीतिक क्रान्ति थी—जो कि फ्रांस की सन्धि के तीन वर्ष पश्चात् हुई। रूस-जापान-युद्ध, (१६०४—५) मरक्को का संकट (१६०५—६) व नवीन जर्मन नौ नियम (१६०६) इन तीन घटनाओं के परिणाम से ही यह समन्वय हुआ था। जापान द्वारा रूस की पराजय होने से रूस की सुदूर पूर्व की ओर अग्रगति प्रतिहत हो गई थी। आन्तरिक विद्रोह भी इससे इतना फैल गया कि अब इंग्लैण्ड रूस के आक्रमण से पूर्णांशः निर्भय हो गया।

२ मरक्को-संकट (१६०५—६)

मरक्को का संकट प्रथम महायुद्ध से पूर्व एक महत्वपूर्ण घटना थी—जिसके परिणाम से इंग्लैण्ड और फ्रांस के सम्बन्ध दृढ़ हो गए व प्रथम महायुद्ध की पृष्ठभूमि तैयार हुई। १६०४ की इंग्लैण्ड व फ्रांस की सन्धि से इस समस्या का उद्भव हुआ।

मरक्को उत्तर अफ्रीका में एक स्वाधीन मुसलमान प्रदेश था। लोहे की खान और जिब्राल्टर के निकट होने से इसका आर्थिक एवं सामरिक महत्व था और यूरोप के प्रमुख राष्ट्र इसे हस्तगत करने के प्रयास में थे। पड़ौसी अैल्जीरिया पर फ्रांस का अधिकार होने से फ्रांस मरक्को का दावा करता था। १६०४ की इंग्लैण्ड और फ्रांस की सन्धि के अनुसार फ्रांस ने मरक्को के आन्तरिक प्रशासन में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ किया। फ्रांस ने रसद-कर की जमानत पर मरक्को के सुलतान को आर्थिक ऋण दिया था और आन्तरिक सुधार के लिए जैसे—तार, मार्ग-निर्माण, राष्ट्रीय बैंक की स्थापना—आदि की प्रस्तावना

की थी। यह शान्तिपूर्ण आर्थिक प्रवेश फ्रांस के अधिकार की सूचना थी। कैजर ने फ्रांस के विरुद्ध सुलतान को समर्पित किया। इस समस्या के समाधान के लिए चतुर सुलतान ने जर्मन-सम्राट् द्वारा प्रोत्साहित होकर एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आमन्त्रण किया। फ्रांस ने मरक्को की समस्या में हस्तक्षेपात्मक जर्मन नीति की तीव्र निन्दा की, परन्तु कैजर सम्मेलन के आमंत्रण मे बद्ध-परिकर था। मार्च १६०५ के अन्त मे जर्मन सम्राट् ने टैञ्जियर का निरीक्षण किया और सुलतान को अपने संरक्षण में लेकर उच्च स्वर से घोषणा की कि "वे मरक्को की अखण्डता, सुलतान की राजसत्ता, आर्थिक और व्यावसायिक एकता का समर्थन करेंगे"। परिणामतः सुलतान ने फ्रांस के सुधार कार्य-क्रमों को अमान्य किया और अन्त मे अमेरिका की मध्यस्थता से फ्रांस के परराष्ट्र मन्त्री डेल्कासी ने पद त्याग किया व अधिवेशन में फ्रांस ने सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया। १६०६ जनवरी में अल्जेसिरास में सम्मेलन प्रारम्भ हुआ—जिससे जर्मनी की कूटनीतिक विजय हुई। यह अधिवेशन एक समान संघर्ष था। बुलौ ने कहा था—"हम न विजित हैं, न पराजित हैं"। अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण के अधीन में फ्रांस को पुलिस, राष्ट्रीय बैंक आदि का अधिकार मिला था, परन्तु फ्रांस में मरक्को का विलय अमान्य किया गया। यूरोप के समग्र राष्ट्रों को समान व्यापारिक और आर्थिक सुविधाएँ दी गईं। बुलौ ने कहा था-"मरक्को के अधिकार में फ्रांस के लिए दरवाजा ही बंद नहीं किया, परन्तु एक ऐसा घण्टा लगा दिया—जो थोड़े से भी संकट की सूचना देता रहेगा"। परन्तु जर्मनी की इस अधिवेशन में एक प्रकार से पराजय हुई थी। कूटनीतिक दृष्टि से आस्ट्रिया को छोड़ कर किसी ने भी इसका समर्थन नहीं किया था। फ्रांस, रसिया, स्पेन, इटली और युक्त राष्ट्र ने इसका प्र-

त्यन्त विरोध किया था। कैज़र की इंग्लैण्ड और फ्रांस की मैत्री विच्छन्न करने की योजना असफल हो गई और रसिया भी उनमें मिल गया। प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय संकट ने यूरोप को दो श्रेणियो मे विभक्त किया—प्रशिया, रसिया, फ्रांस, इंग्लैण्ड, इटली एक ओर एवं आस्ट्रिया और जर्मनी एक तरफ—जैसा कि महायुद्ध से पूर्व १६१४ में यूरोपीय शक्तियों का विभाजन था।

१६०५ और १६०६ मे जो प्रश्न पूछा गया-वह आज भी यों का यों चल रहा है। यदि फ्रांस और जर्मनी में संघर्ष प्रारम्भ हो जाता तो क्या इंग्लैण्ड फ्रांस की सहायता के लिए सन्धि के अनुसार बाध्य होता ? १६०६ से १६१४ तक इंग्लैण्ड की अनिश्चित वैदेशिक नीति ने फ्रांस को सदेह मे डाल दिया। सर एडवर्ड ग्रे, इंग्लैण्ड के परराष्ट्र मन्त्री, ने बार बार जर्मनी को चेतावनी दी कि इंग्लैण्ड के लिए फ्रांस और जर्मनी के युद्ध मे निष्पक्ष रहना असम्भव है, परन्तु पहले फ्रांस और पश्चात् रूस के सामरिक सन्धि-प्रस्ताव को इसने दृढ़ता के साथ ठुकरा दिया था। इसका विश्वास था कि कोई भी ऐसी सन्धि इंग्लैण्ड की नीति को संकुचित कर देगी एवं जर्मनी को एक प्रकार की चुनौती देगी। शक्तिशाली एवं स्वाधीन फ्रांस की रक्षा के लिए दोनों देशो के नेताओं के वार्तालाप का अवसर इंग्लैण्ड ने दिया। जुलाई १६१२ में फ्रांस और इंग्लैण्ड ने एक निर्दिष्ट नौ संधि स्वीकृत की-जिसके अनुसार फ्रांस की एक नौशक्ति भूमध्य सागर में इंग्लैण्ड और फ्रांसीय स्वार्थ की रक्षा करेगी एवं इंग्लिशचल में इंग्लैण्ड देखेगा। मई १६१० मे रसिया के साथ भी सन्धि का गुरुत्त्व-पूर्ण वार्तालाप प्रारम्भ किया। परन्तु इंग्लैण्ड ने जर्मनी के साथ भी सन्धि करने का असफल प्रयत्न किया। १६१२ में जर्मनी और इंग्लैण्ड की नौ प्रति-

द्वन्द्विता को कम करने के लिए उपनिवेशों में इंग्लैण्ड ने जर्मनी को विशेष सुविधाऐं दी। ३ अगस्त १९१४ में सर एडवर्ड ग्रे ने लोकसभा में घोषणा की कि "इंग्लैण्ड फ्रांस के समर्थन में जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषणा के लिए बाध्य नहीं है"। यद्यपि इस मत को युक्ति द्वारा समर्थित कर सकते हैं, परन्तु आज यह स्पष्ट है कि इंग्लैण्ड और फ्रांस के राजनीतिज्ञों ने इंग्लैण्ड द्वारा फ्रांस के समर्थन में युद्ध-घोषणा को "एक नैतिक विवशता" कहा। ८ अगस्त १९१८में लायेड जार्ज ने कहा था-"फ्रांसके साथ हमारा एक समझौता है कि यदि विना दोष फ्रांस पर किसी ने आक्रमण किया तो इंग्लैण्ड उसकी सहायता करेगा। हमारे मत में "समझौता" एक कठिन शब्द है। उचित शब्द इसके स्थान में होगा—"युद्ध में योगदान की विवशता"—यद्यपि कोई सन्धि इस विषय मे नहीं थी।"

३—त्रिशक्ति गुट

जर्मनी की नौशक्ति के जन्म दाता मन्त्री टिर्पिट्स ने १९वी शताब्दी के शेष भाग में जर्मनी के युद्ध जहाज निर्माण की विशाल योजना बनाई व बजट की अधिकांश आय को इसी में व्यय करना प्रारम्भ किया। कैजर ने कहा था कि "जर्मनी के भविष्य का निर्णय पानी मे ही होगा"। १९०६ के विशेष जर्मन नौ नियम द्वारा पाँच बड़े जहाज "क्रुवीजर्स" का निर्माण व नौ विभाग के व्यय को एक तृतीयांश बढ़ाया गया। यही था इंग्लैण्ड और रसिया के समझौते का तृतीय मुख्य कारण। इसी समय जर्मन सम्राट् जार के साथ सन्धि करने के लिए (जुलाई १९०५) बोजोर्को में विशेष रूप से साक्षात् सम्मिलन हुआ एवं दोनों ने सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये। परन्तु रूस के परराष्ट्र विभाग ने इस सन्धि को अमान्य कर दिया। युद्ध के पश्चात् उन संधि शर्तों को सम्राट् के व्यक्तिगत पत्रों में पड़ा

हुआ पाया गया। इंग्लैण्ड और जर्मन के सम्बन्धो को सुधारने के लिए एक दो और भी असफल प्रयत्न किये गये। १६०७ के ग्रीष्म काल में इंग्लैण्ड और रसिया में निर्दिष्ट रूप से समझौता हो गया—जिससे फारस, अफगानिस्तान और तिब्बत में इंग्लैण्ड और रसिया के पारस्परिक विरोधी स्वार्थों में सामञ्जस्य स्थापित किया गया। सुविधा एक दूसरे को इतनी दी गई—जिससे यह व्यक्त होता है कि ये दोनों जर्मनी से कितने अधिक आतंकित थे।

फ्रांस और रसिया की मैत्री (१८६५), इंग्लैण्ड और फ्रांस का समझौता (१६०४), इंग्लैण्ड और रसिया का सम्बन्ध (१६०७)—इनने मिलकर त्रिशक्ति गुट को पूर्ण कर दिया। लार्ड आक्सफोर्ड ने कहा—"रूस के भारत आक्रमण के आतंक-जिनने कि ब्रिटिश कूटनीतिज्ञों को वर्षों तक निश्चिन्त नही रहने दिया-को इस समझौते ने चिरकाल के लिए अन्त कर दिया"। कहां तक इंग्लैण्ड ने अपनी कूटनीतिक एकाकिता को भंग कर इस गुट की स्थापना करने में लाभ उठाये, इस सम्बन्ध में मत विभाजित हैं। पाठकों को यह स्मरण रखना चाहिए कि त्रिशक्ति गुट में कोई सामरिक सन्धि नहीं थी, न जर्मनी के विरुद्ध ही कोई निर्दिष्ट शर्त थी। इसीलिए जर्मनी और आस्ट्रिया के विपरीत यह एक रक्षणात्मक संगठन था। इसने फ्रांस को अधिकतर सुरक्षित किया, प्रतिशोधवादियों को युद्ध के लिए उत्तेजित किया एवं १६११ के पश्चात् हिंसात्मक भावना को अनुप्रेरित करके आल्सस् लोरेन के पुनरधिकार की प्रवृत्ति को जागृत किया। यद्यपि रसिया इंग्लैण्ड के सहयोग और समर्थन पर निर्भर नहीं रह सकता था, परन्तु एशिया में रूस के राज्य विस्तार की गति प्रतिहत होने से बॅल्कान में पुनः आस्ट्रिया के विरुद्ध स्वार्थ सिद्धि की धारणा को जागृत किया। जर्मनी के विरुद्ध नौ प्रति-

योगिता में रूस और फ्रांस के समर्थन से इंग्लैण्ड अधिकतर शक्तिशाली बन गया। इस समझौते के संवाद ने नौ संघ, प्रशिया के सेनानायक व जर्मन जाति संघ में उद्वेग का संचार किया। जर्मनी इंग्लैण्ड के सफल साम्राज्यवाद व महाद्वीपीय शक्ति का विरोधी था। बॅल्कान में इंग्लैण्ड रूस और आल्सस् लोरेन में फ्रांस का समर्थन करेगा—यह धारणा ही जर्मनी को अधिक आतंकित करती थी। जर्मन परराष्ट्रमन्त्री वेथमैन हालवेग ने कहा था—"इंग्लैण्ड अच्छी तरह से जानता है कि फ्रांस की दृष्टि आल्सस् लोरेन पर है, एवं फ्रांस में प्रतिशोध के आन्दोलन (रमांसे) की प्रतिध्वनि वह स्पष्ट सुन रहा था। विश्व में द्वन्द्व का उद्भव इंग्लैण्ड द्वारा फ्रांस और रूस की नीति के समर्थन से ही हुआ था"।

इसी समय जर्मनी ने इंग्लैण्ड के राजा एडवर्ड सप्तम के विरूद्ध में यह आरोप लगाया कि फ्रांस, रसिया, जापान, इटली, युक्त राष्ट्रों और उपनिवेशोंको संगठित कर इंग्लैण्ड ने जर्मनी को परिवेष्टिन करने की एक नवीन नीति को ग्रहण किया है-जिससे कि जर्मनी का उत्थान न हो सके। १९१४ में हम देखेंगे कि इस आरोप की किस प्रकार पुनरावृत्ति हुई।

१९०७ से यूरोप कृत्रिम रूप से दो सशस्त्र दलों में विभक्त हो गया था। प्रत्येक दूसरे का गुप्त रूप से निरीक्षण करता था और अविश्वास एवं संशय की दृष्टि से देखता था। राजकीय परिस्थिति अत्यन्त भयानक थी। प्रत्येक राष्ट्र स्वयं को शक्तिशाली बना रहे थे एवं इसी प्रकार प्रथम महायुद्ध की बारूद संचित हो रही थी। लार्ड आक्सफोर्ड ने कहा था, "हम एक बर्फ के मार्ग से चल रहे है—व यूरोप की शान्ति अदृश्य दुर्घटना पर ही अवलंबित है"। इस दुर्घटना का किस प्रकार प्रारम्भ हुआ—इसका वर्णन हम अग्रिम ७ वर्षों के इतिहास में देखेंगे।

४—फ्रांसीय दृष्टिकोण

इंग्लैण्ड प्रथम महा युद्ध के उदय का दायी नहीं था, उसे तो परिस्थिति ने वाध्य किया। जर्मनी और फ्रांस की शत्रुता ही युद्ध का प्रमुख कारण थी। सीडान (१८७०) में फ्रांस की पराजय एवं बिस्मार्क की पृथक्करण नीति ने फ्रांस की जनता को प्रतिशोध-पिपासु बना दिया। फ्रांस इस पृथक्करण से जितना क्षुब्ध हुआ, उतना ही आतंकित था। फ्रांस अब मैत्री-स्थापना के लिए व्यग्र हो गया। डा० गुच का कथन है—"१६ वीं शताब्दी के अन्त और २० शताब्दी के प्रारम्भ में यदि किसी राष्ट्र ने दूर-दर्शिता और कूटनीतिक कौशल का प्रदर्शन किया, तो वह एक मात्र फ्रांस था। अन्तर्राष्ट्रीय धारा और जर्मन राष्ट्र की नवीन नीति से यह सुपरिचित था"। जब कैजर ने रसिया के साथ पुनर्बीमा सन्धि को (१८६०) भंग कर दिया, तब फ्रांस ने रूस के समक्ष (१८६५) द्विमैत्री-स्थापन को प्रस्तावित किया। जब नौ प्रतियोगिता से कैजर ने इंग्लैण्ड की जनता को रुष्ट कर दिया, तब फ्रांस ने इंग्लैण्ड के साथ (१६०३) समझौता कर लिया। १६०७ में इंग्लैण्ड और रसिया की सन्धि से इन तीनों राष्ट्रों में एक त्रिशक्ति गुट की स्थापना हुई—जिसकी दृढ़ता का परीक्षण आगादिर संकट में हुआ।

५—आगादिर संकट (१६११)

यह संकट मरक्को को फ्रांस द्वारा अधिकृत करने से उद्भूत हुआ था। आल्जेसिरास के समझौते की अवहेलना करके आन्तरिक अराजकता के निमित्त फ्रांस ने अपनी सेना को मरक्को में भेज दिया व अपसरण के लिए निषेध कर दिया। इसी लिए जर्मनी ने युद्ध जहाज "पैन्थर" को अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए मरक्को के आगादिर बन्दरगाह में भेजा। फिर एक संकट का

उदय हुआ और इंग्लैण्ड ने दृढ़ता के साथ फ्रांस का समर्थन किया। जर्मनी ने भी इस प्रश्न के समाधान के लिए युद्ध को आवश्यक नहीं समझा। यह प्रतीत होता है कि जर्मनी तैयारी के लिए समय चाहता था, और जर्मनी के युद्धोत्सक दलों का प्रधान्य भी नहीं हुआ थो। सामरिक, नौ शक्ति एवं आर्थिक गठन मे भी वह सन्नद्ध नहीं हो पाया था। 'इसीलिए जर्मनी ने इस विवाद को शान्तिपूर्ण रीति से हल किया एवं फ्रांस को मरक्को पर संरक्षण का अधिकार इस शर्त पर दिया कि वह "उन्मुक्त द्वार" का नीति अवलम्बन करेगा। फ्रांस ने इसके परिवर्तन में जर्मनी को अफ्रीका के कांगो प्रदेश का एक अंश दिया। आगादिर की घटना १६१४ के युद्ध की सूचना थी एवं अप्रत्यक्ष रूप से जर्मनी की पराजय थी। त्रिशक्ति गुट को दुर्बल बनाने की अपेक्षा इसने आशातीत शक्ति प्रदान की। परन्तु जर्मनी इस अपमान को सहने के लिए प्रस्तुत नहीं था।

६—रूस का दृष्टिकोण

१६ वीं शताब्दी के अन्त मे रसिया की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति फ्रांस और इंग्लैण्ड की तरह संकट-पूर्ण थी। प्रथमतः बॅल्कान प्रायद्वीप में आस्ट्रिया के साथ इसके स्वार्थ का संघर्ष होता था। बिस्मार्क और कैजर ने आस्ट्रिया की समर्थन नीति को अपनाया व रसिया से सम्बन्ध छिन्न कर लिया। जर्मनी ने तुर्की सेना संगठन, बर्लिन-बगदाद रेल्वे की योजना और प्रत्यक्ष प्रचार द्वारा तुर्की की अखण्डता का समर्थन कर रसिया को परम शत्रु बना लिया। रसिया ने इसीलिए १८६५ में फ्रांस और १६०७ में इंग्लैण्ड से मैत्री स्थापित की। इससे रसिया इतना शक्तिशाली हो गया कि निकट प्राच्य समस्या के समाधान के लिए वह एकाकी ही पर्याप्त था।

७—आस्ट्रिया का दृष्टिकोण

आस्ट्रिया ने जर्मनी के प्रोत्साहन से बॅल्कान प्रायद्वीप में १६ वीं शताब्दी के अन्त में अपने प्रभुत्व को व्यापक बनाने का प्रयत्न किया। १६०८ मे बोस्निया और हरजीगोविना पर अधिकार करके आस्ट्रिया ने सर्विया को विक्षुब्ध कर दिया था एवं रसिया के बॅल्कान की ओर प्रभाव विस्तार में प्रतिरोध की सृष्टि की थी। १६०८ में महायुद्ध नहीं हुआ—इसका प्रमुख कारण यही था कि रूस अप्रस्तुत था, अन्यथा सार्वजनिक नियम भंग करने का जो साहस आस्ट्रिया ने किया, रसिया उसको अवश्य चुनौती देता। आस्ट्रिया के जहाँ दो शत्रु थे—वहाँ एक परम मित्र भी था। सैडोवा के युद्ध (१८६६) के पश्चात् जर्मनी ने आस्ट्रिया के सौहार्द को इतना वृद्ध किया कि १८८६ में द्विसन्धि की स्थापना हुई। तीन वर्ष पश्चात् इटली भी इसमें सम्मिलित हो गया। कैजर के शब्दों में "सशस्त्र जर्मनी आस्ट्रिया के समर्थन के लिए (१६१४) सन्नद्ध और दृढ़ परिकर था"।

८—महायुद्ध की पृष्ठ—भूमि

यह स्पष्ट था कि यूरोप के सभी राष्ट्र भविष्य के युद्ध के लिए तैयार हो रहे थे। सितम्बर १६११ मे इटली ने तुर्की पर युद्ध घोषित किया। अक्टूबर १६१२ में प्रथम बॅल्कान-संग्राम प्रारम्भ हुआ—जिसके दो वर्ष बाद निकट प्राच्य-समस्या ने प्रथम महायुद्ध को जन्म दिया। प्राच्य समस्या के प्रकरण में हम देख चुके हैं—किस प्रकार दो अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के परिणाम से आस्ट्रिया और रसिया, एवं आस्ट्रिया व सर्विया मे संघर्ष उत्पन्न हुआ।

इंग्लैण्ड और जर्मनी के सम्बन्ध अधिकतर बिगड़ गये। जर्मन प्रधानमन्त्री बेथमैन्-हालवेग और सहिष्णु इंग्लैण्ड के

मन्त्री ऐस्क्विथ ने पारस्परिक मैत्री-स्थापना का प्रभूत प्रयत्न किया। ६ फरवरी १६१२ में इंग्लैण्ड के युद्ध मन्त्री लार्ड हैल्डेन जर्मनी मे इंग्लैण्ड-जर्मनी की सन्धि का प्रस्ताव लेकर आया, परन्तु नौ प्रश्नों ने वार्तालाप को भंग कर दिया, क्यों कि यदि जर्मनी किसी एक भी राष्ट्र के साथ युद्ध में व्यस्त रहे तो इंग्लैण्ड ने उस समय निष्पक्ष रहने को अस्वीकार कर दिया। कैजर के स्मृति पत्रो में इस सन्धि-प्रस्ताव को इंग्लैण्ड की एक "कूटनीतिक घृष्ठता" कहा गया—जिसका उद्देश्य जर्मनी के नौ नियम को स्थगित करना था। पर इसके परिणाम मे नौशक्ति प्रतियोगिता अपेक्षाकृत बढ़ने लगी। जून १६१२ में विशेष नौ नियम द्वारा जर्मनी ने तीन युद्ध जहाज, दो सशस्त्र क्रुवीजर्स और प्रति वर्ष छै पनडुबी बनाने का निश्चय किया। मार्च १६१३ में चर्चिल के नौ शक्ति के अवकाश के प्रस्ताव को जर्मनी ने अस्वीकृत किया और १६१४ में जर्मनी ने भी २६ करोड़ रुपये तक नौ शक्ति पर व्यय करने का निश्चय किया। भू सेना की भी प्रतियोगिता विभिन्न राष्ट्रो में प्रारम्भ हो गई। १६१२—१६१३ में दो नवीन नियमों द्वारा शान्ति समय में ही जर्मन सेना को बढ़ा कर ८ लाख ७० हजार कर दिया गया। जुलाई १६१३ में रूस ने भी सेना में वृद्धि की और फ्रांस में भी सैनिक शिक्षा को-दो वर्ष की अपेक्षा तीन वर्ष बढ़ा दिया। शान्ति के समय रूस की सेना १२ लाख व फ्रांस की ६ लाख ५० हजार थी।

जनवरी १६१३ में पयेनकारे फ्रांस का राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ— जिसको जर्मनी ने जर्मन—विरोधी युद्ध की घोषणा करने वाला समझा। वेथमैन-हालवेक ने लिखा है—"पयेनकारे की प्रत्येक घोषणा हिंसा, प्रतिशोध व संकीर्ण राष्ट्रीयवाद से पूर्ण थी"। १६१४ के प्रथम भाग में फ्रांस समाजवादियों से, और इंग्लैण्ड आयरिश देशभक्त और सार्वजनिक मताधिकार आन्दो

लनों से आन्तरिक रूप में व्यस्त थे। १६१५ के ग्रीष्मावकाश में जर्मनी ने कील नहर को विस्तृत कर बड़े बड़े युद्ध-जहाजों के यातायात को सुविधा-पूर्ण व सहज बना दिया। इसी समय २८ जून १६१४ में आस्ट्रिया सम्राट् के भतीजे व उत्तराधिकारी फ्रांज फार्डिनेण्ड को बोस्निया की राजधानी सिराजेवो में मार दिया गया। आस्ट्रिया का शासन सर्विया को उचित शिक्षा देने के लिए बद्ध परिकर हुआ। जमंनी के समर्थन से आस्ट्रिया ने एक समिति द्वारा हत्याकाण्ड की जांच और उचित दण्ड देने के लिए सर्विया के समक्ष निन्दनीय शर्त का प्रस्तावन (२३ जुलाई) किया। डिकिन्सन का कथन है—"आस्ट्रिया यह अच्छी तरह जानता था कि सर्विया में आस्ट्रिया—विरोधी आन्दोलन का दमन करने का ऐसा सुयोग फिर कभी नहीं मिलेगा"। सर्विया ने कुछ दावे स्वीकृत किये, परन्तु हत्याकाण्ड की जांच के लिए आस्ट्रिया के दावे—जैसे प्रकाशन को बन्द करना, समितियों को भंग करना, प्रचार कार्य में व्यस्त अधिकारियों और शिक्षकों की पदच्युति, आस्ट्रिया के अधिकारियो द्वारा सर्विया में इस विरोधी प्रचार की जांच करना—पूर्णांशः स्वीकृत करना प्रभुता के सिद्धान्तो के विपरीत था। २६ जुलाई को आस्ट्रिया ने अपनी सेना को भेजा और २८ जुलाई को युद्ध घोपित कर दिया।

(६) आस्ट्रिया और सर्विया के संघर्ष की महायुद्ध में परिणति

आस्ट्रिया और जर्मनी बॅल्कान प्रायद्वीप में ही इस संघर्ष को सीमित रखना चाहते थे, परन्तु रसिया ने सर्विया के दमन से आस्ट्रिया—साम्राज्य के विस्तार को सहन नहीं कर सका। जॉर ने सर्विया को २७ जुलाई को तार दिया कि "किसी भी परिस्थिति मे रसिया सर्विया के भाग्य निर्माण मे उदासीन नहीं रहेगा", एवं आस्ट्रिया को सतर्क किया कि "यदि आस्ट्रिया सेना

सर्विया में प्रवेश करेगी तो रूस भी अपनी सेना को एकत्रित करेगा। एडवर्ड ग्रे ने एक प्रमुख चतुर्मुख राष्ट्रों के निष्पक्ष सम्मेलन को इस समस्या के शान्तिपूर्ण समाधान के लिए आमन्त्रित किया, परन्तु जर्मनी और आस्ट्रिया ने इसे अस्वीकार कर दिया, क्योंकि सिराजेवो का हत्याकाण्ड "सम्पूर्ण रूप से" आस्ट्रिया की समस्या थी व सर्विया में आस्ट्रिया को इसके निर्णय के लिए पूर्ण अधिकार अपेक्षित थे। ३१ जुलाई को आस्ट्रिया बेलग्रेड पर बम वर्षा करने लगा। सर्विया ने २८ जुलाई से ३० तक बार बार जॉर से तार द्वारा सहायता की अपील की एवं रूस ने अपनी सेना को आस्ट्रिया और जर्मनी के सीमान्त में एकत्रित किया। ३१ जुलाई को रूस के सैन्य एकत्रीकरण को निमित्त बना कर जर्मनी ने रसिया को एक चुनौती दी कि "यदि वह १२ घण्टे के मध्य सीमान्त से सैन्य को अपसारित नहीं करेगा तो वह भी सैन्य-संचय के लिए बाध्य होगा"। उसी दिन जर्मनी ने फ्रांस से प्रश्न किया कि "यदि रूस–जर्मन संग्राम हो तो फ्रांस क्या करेगा"? फ्रांस ने कहा –"वह अपने स्वार्थ को देखेगा"। १ अगस्त को जर्मनी ने रूस और ३ अगस्त को फ्रांस के विरुद्ध युद्ध घोषित किया। इटली ने निष्पक्षता की घोषणा की। २ अगस्त को जर्मनी ने निष्पक्ष राष्ट्र लक्समबर्ग पर आक्रमण किया–और ४ तारीख को बेल्जियम ने इंग्लैण्ड के राजा जार्ज पञ्चम से सहायता की अपील की। इंग्लैण्ड के राजनैतिक सर्वदा से ही बेल्जियम को निष्पक्ष रखने का प्रयत्न कर रहे थे। एडवर्ड ग्रे ने जर्मनी को १२ घण्टे की एक चुनौती दी कि "जर्मनी बेल्जियम से सैन्य का अपसारण करे", परन्तु जर्मनी ने इसे अमान्य कर दिया। ४ अगस्त की मध्य रात्रि से इंग्लैण्ड ने भी जर्मनी पर युद्ध घोषित किया। प्रधान मन्त्री ऐस्कविथ ने इंग्लैण्ड की लोकसभा के समक्ष भाषण देते हुए कहा—"यदि

हम से यह पूछा जाये कि हम किस लिए संग्राम कर रहे हैं ?—तो हम दो वाक्यों में इसका उत्तर दे सकते हैं। सर्व-प्रथम हम एक पवित्र अन्तर्राष्ट्रीय विवशता की स्थायिता और द्वितीय छोटे छोटे राष्ट्रों को अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि की अवहेलना कर शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा ध्वंस करने के विपरीत लड़ रहे हैं"।

२ अगस्त को जर्मन प्रधान मन्त्री वेथमैन-हालवेग ने लोक-सभा रॉइक्स्टैग के सामने घोषणा की—"सदस्यो ! हम एक संकट मे हैं और वेल्जियम की निष्पक्षता को भंग करना हमारा प्रयोजन है। प्रयोजन के लिए कोई बन्धन नहीं है। कैजर के शब्दों की हम एक पुनरावृत्ति करते हैं कि 'जर्मनी पवित्र अन्तःकरण से युद्ध में प्रवेश कर रहा है'। वर्षों तक जर्मन साम्राज्य की उन्नति व शक्ति की विरोधिता का ही परिणाम यह युद्ध है। हम परिश्रम के फल की प्राप्ति एवं अतीत की बपौती के संरक्षण और भविष्य के निर्णय के लिए संग्राम कर रहे है। राष्ट्र की शक्ति—परीक्षण का यह समय है। इसमें विजय की भावना नहीं है, परन्तु भगवान ने जो भी स्थिति हमे दी है—उसकी रक्षा की दृढ़ता है। हमारी सेना भूमि-क्षेत्र में अग्रसर हो रही है, जहाज संघर्ष के लिए प्रस्तुत है और इसके समर्थन मे समग्र जर्मन राष्ट्र है। हम पवित्र अन्तःकरण की प्रेरणा से ही युद्ध घोषित कर रहें हैं"।

स्वीडेन
डेन्मार्क
सागर
जर्मनी
रशिया
फ्रांस
आस्ट्रिया-हंगेरी
रूमानिया
सागर
बुलगेरिया
स्पेन
·१९१४ में·
यूरोप
भूमध्य
सिसली
अफ्रीका
सागर

१९१४ में यूरोप

९-प्रथम महायुद्ध

(१९१४ से १९१८)

(क) महायुद्ध के कारण

दार्शनिक एरिस्टोट्ल ने सत्य ही कहा है "सामान्य घटना से ही महान् राजनैतिक आन्दोलन की सृष्टि होती है परन्तु इसके कारण अन्तर्निहित रहते हैं"। अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से निष्पक्ष विश्लेषण करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि सिराजेवो का हत्याकाण्ड एक सामान्य घटना थी और यूरोप के राष्ट्रसमूह एक महा युद्ध के विना ही इस संघर्ष का समाधान शान्तिपूर्ण उपायों से ही कर सकते थे। परन्तु यह समाधान क्रियान्वित नहीं हो सका—इससे विदित होता है कि इसके पीछे अनेक कारण लगे हुए थे। इसीलिए हम युद्ध के कारणों को तात्कालिक और अन्तर्निहित दो भागों मे बांट सकते हैं। अन्तर्निहित कारण तात्कालिक कारण से अधिक महत्वपूर्ण है; किन्तु एक महायुद्ध की सृष्टि केवल एक घटना अथवा एक कारण से ही नहीं होती। निम्नलिखित कारणों ने सम्मिलित होकर ही प्रथम महायुद्ध की सृष्टि की।

(अ) अन्तर्निहित कारण

युद्ध एक चिरन्तन पाश्चात्य संस्थान

सुधार के काल से २०वीं शताब्दी पर्यन्त यूरोप एक विभिन्न प्रतियोगी राष्ट्रों का सम्मिश्रण था। प्रत्येक राष्ट्र अपने स्वार्थ को पूर्ण करने के लिए युद्ध को ही माध्यम मानता था। प्रत्येक युग मे हम देख चुके हैं कि

सभ्यता की प्रगति के साथ साथ अशान्ति और अराजकता का भी प्रभूत प्रसार हुआ व वह अधिकतर जटिल बन गई। यह प्रतीत होता है कि इन पारस्परिक स्वार्थों का निर्णय करना एक-मात्र रण देवता ही के हाथ था। युद्ध की प्रयोजनीयता के सम्बन्ध मे जर्मन सेना-नायक माल्टोके ने यह कहा था—"चिर-न्तन शान्ति एक स्वप्न है, परन्तु यह सुन्दर स्वप्न नहीं है। युद्ध ईश्वर की पृथ्वी की शृङ्खला के लिए एक अपूर्व देन है। युद्ध के अभाव में संसार स्थिर हो जायेगा और भौतिकवाद में ही लीन हो जायेगा"। जर्मन दार्शनिक नीशे ने कहा, "मानव युद्ध को भुला देगा, यह एक दुराशा मात्र है। जिस प्रकार मानव मानव में संघर्ष स्वाभाविक है, तो फिर मानवों के समुदाय राष्ट्रों में संग्राम का होना एक प्राकृतिक तथ्य है"।

१—राष्ट्रीयवाद का आधिपत्य

फ्रांसीय विप्लव के पश्चात् प्रत्येक स्वाधीन राष्ट्र देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत हो रहा था। जब कभी एक शृङ्खलित, विभाजित और दलित जाति ने दासता से मुक्ति पाने के लिए देश-भक्ति को ग्रहण किया तो उसी का परिणाम राष्ट्रीयता हुई। देश-भक्ति और राष्ट्रीयता इतने अधिक मात्रा मे बढी कि यह देश-भक्ति, राष्ट्रीयता और उग्र-राष्ट्रीयता आत्म-पूजा के रूप में परि-णत हुई। इसीलिए एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की प्रगति, शक्ति और उन्नति से द्वेष करने लगा। २०वीं शताब्दी में "राष्ट्रीय सम्मान" शब्द के अधिक प्रयोग से शान्ति की रक्षा करना असम्भव हो गया था। प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य था कि वह राष्ट्र की रक्षा व सम्मान के लिए युद्ध करे। उग्र देशभक्त अपने देश की महत्ता का गर्व करते थे। इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध कवि टेनिसन का "स्वप्न-जिसमें सारा विश्व स्वाधीन और लोकतन्त्र संघ का प्रारूप था"—क्रियान्वित नहीं हो सका।

२—नवीन साम्राज्यवाद

औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम से पाश्चात्य के प्रगतिशील राष्ट्रों ने पिछड़े हुए क्षेत्रों को उन्नत और उनके साधनों का शोषण करने के लिए पारस्परिक कलह प्रारम्भ किया। इंग्लैण्ड यह कहता था कि विश्व को सभ्य बनाने का भार श्वेत जाति पर ही है। उसके साम्राज्य-विस्तार का उद्देश्य था—सभ्यता और सांस्कृतिक विकास। नवीन साम्राज्यवादियों ने यह घोषणा की कि "पीत चीन निवासी व अफ्रीका और भारतवर्ष की कृष्ण जाति का उत्थान हमारा परम पवित्र कर्तव्य है"। सत्य है कि कुछ राष्ट्रों में इस प्रकार का पवित्र संकल्प भी था, परन्तु यह निश्चित है कि यह साम्राज्यवाद का प्रारम्भ अभिमान और शक्ति से ही हुआ था एवं उपनिवेशों का आर्थिक शोषण ही इसका लक्ष्य था।

३—सैनिक प्रतियोगिता

प्रत्येक राष्ट्र जब युद्ध को ही अपनी सफलता का एकमात्र वैध उपाय मानता था तो उसके भू और जल-साधनों की वृद्धि का एक प्रधान लक्ष्य बनना स्वाभाविक था। ऐसे वातावरण में सामरिकवाद का प्रभूत प्रचार हुआ। प्रत्येक यूरोपीय राष्ट्र ने अनिवार्य सैनिक प्रवेश को लागू किया व प्रत्येक ने अपनी नीति को 'आक्रमणात्मक' न कह कर 'रक्षात्मक' कहा। इसीलिए वैद्युतिक गति से स्थल और नौ सेना की वृद्धि हुई। जब तक अपने प्रतिवेशियों और प्रतिद्वन्द्वियों से सैनिक-संगठन को बढ़ा नहीं लेता था, कोई भी राष्ट्र अपने आपको सुरक्षित नहीं समझता था। यह अस्त्र शस्त्र व सैनिक प्रतियोगिता—जैसे कि इंग्लैण्ड और जर्मनी—इतनी व्ययशील हुई कि परिणामतः जनता पर अत्यधिक कर लगाये गये। अस्त्रशस्त्र की वृद्धि ने आतंक को जन्म दिया। आतंक

से विश्वास अविश्वास के रूप मे परिणत हो गया और महा-संग्राम की प्रस्तुति हुई।

४—गुप्त कूटनीति

इस प्रकार की पारस्परिक अविश्वास और हिंसात्मक-भावना की राष्ट्रों की गुप्त कूटनीति से अधिक वृद्धि हुई। अन्तर्राष्ट्रीय संधियों और समझौतों का प्रचार नहीं किया गया। जनता यह तक नहीं जानती थी कि क्यो और कब उन्हे युद्ध मे योगदान के लिए बाध्य किया जायेगा। बिस्मार्क की १८७६ की आस्ट्रिया के साथ द्विसन्धि, (१८८२) त्रिशक्ति-मैत्री (१८८७ में) पुनर्बीमा सन्धि आदि सभी गुप्त प्रतिज्ञाएँ थीं। युद्ध का होना और भी अवश्यंभावी बन गया था, क्योंकि एक राष्ट्र को केवल अपने ही नहीं, अन्य राष्ट्रों के कलहों में भी योग देना पड़ता था। इस काल के राजनीतिज्ञो ने मानवता के स्वार्थ की अव-हेलना कर केवल राष्ट्र के संकीर्ण स्वार्थ के लिए इन गुप्त संधियों का प्रचलन किया था। समग्र जनता को अन्धकार में रख कर ये जनता के रक्त और अर्थ को ध्वंस कर उसे एक रहस्यमय विनाश मार्ग की ओर ले गये।

५—त्रिशक्ति गुट और त्रिराष्ट्रीय मैत्री

संरक्षण की भावना ने संधि की आवश्यकता को बढ़ाया। १९०७ मे जैसा कि हम देख चुके हैं—यूरोपे दो शत्रु दलों मे विभाजित हो गया। प्रथम, त्रिराष्ट्रीय मैत्री—जर्मनी, आस्ट्रिया और इटली। द्वितीय, त्रिशक्ति गुट—इंग्लैण्ड, रसिया और फ्रांस। एक दल दूसरे को सन्देह और अविश्वास की दृष्टि से देखने लगा। कैजर ने अपने स्मृतिपत्र मे लिखा है, "इंग्लैण्ड के राजा एडवर्ड सप्तम ने एक जर्मन विरोधी नीति को पेरिस और पिट्सबुर्ग के अधिकारियों के व्यक्तिगत वार्तालाप और

सम्बन्धों से नियमित बना दिया। जर्मनी अब पूर्ण रूप से शत्रुओं द्वारा परिवेष्टित हो गया और जाल को समेटते ही जर्मनी उसमे फँस गया। मृत एडवर्ड भी जीवित हम से अधिक शक्तिशाली है"। हम मैटर्निक युग मे अध्ययन कर चुके हैं कि यूरोप की शक्तिगोष्ठी शान्ति स्थापना में असफल क्यों हुई, वे ही असफलता के कारण यहाँ भी विद्यमान थे। १८९९ में हैग्-अधिवेशन में अन्तर्राष्ट्रीय-पंचायत की स्थापना के लिए २६ राष्ट्र उपस्थित थे। १९०७ के हैग के द्वितीय अधिवेशन में ४४ राष्ट्र उपस्थित हुए, परन्तु उपर्युक्त दोनो दलों मे इतना अधिक वैमनस्य था कि प्रतियोगिता की भावना का उच्छेद नहीं हो सका। यूरोप के इन दो दलों में विभाजित होने से कोई भी अदूरदर्शी राष्ट्र पुरातन संधि के संशोधन के लिए युद्ध-घोषणा कर सकता था व अपने मित्रो को भी उसमें योगदान के लिए बाध्य कर सकता था।

६—अन्तर्राष्ट्रीय अशान्ति

महायुद्ध के पश्चात्—भरसालिस की सन्धि में जर्मनी को ही युद्ध के लिए दायी बनाया गया था। वस्तुतः जर्मनी युद्ध का अभिलाषी था, किन्तु उसका प्रारम्भ उसने नहीं किया। जनता अनेक बार संग्राम चाहती है, पर कर नहीं पाती। प्रश्न तो यह है कि जब इस समस्या का उद्भव हुआ तो क्या यूरोपीय राष्ट्र संघ ने अन्तःकरण से शान्ति स्थापना का प्रयत्न किया था? अर्थात ऐसा कोई अन्तर्राष्ट्रीय संगठन था—जो कि शक्ति-प्रयोग द्वारा आक्रमणकारी राष्ट्र को दबा सकता था? यह सत्य है की अन्तर्राष्ट्रीय अशान्ति ही युद्ध का प्रमुख कारण थी। अन्तर्राष्ट्रीय सगठन नहीं रहने से शान्ति-संरक्षण नहीं हो पाया।

७–प्रादेशिक संघर्ष

महायुद्ध की घोषणा कोई आश्चर्यमय घटना नहीं थी। वस्तुतः आश्चर्य तो यह है कि यह संघर्ष पहले ही क्यों नहीं प्रारम्भ हुआ। राष्ट्रों में प्रादेशिक संघर्ष अनेक और गंभीर थे। फ्रांस आल्सस् और लोरेन पर पुनरधिकार चाहता था। इटली ट्रीस्ट और ट्रेन्टिनों, का अधिकार बॅल्कान में आस्ट्रिया और रसिया का साम्राज्य विस्तार, इंग्लैण्डके आयरलैण्ड, मिश्र, और भारत एवं तुर्की के अधीनस्थ राष्ट्रों का स्वाधीनता आन्दोलन आदि ने सम्मिलित रूप से प्रादेशिक संघर्ष की सृष्टि की। जनमत से राष्ट्र के भविष्य निर्माण एवं आत्म-निर्णय के मार्ग को स्वीकार नहीं किया गया था।

८–व्यावसायिक द्वन्द्व

राष्ट्रों के विभिन्न आर्थिक संघर्षों ने भी अन्तर्राष्ट्रीय विरोध का संचार किया। प्रत्येक राष्ट्र व्यापार की वृद्धि के लिए उपनिवेश चाहता था—जहाँ अधिक जन संख्या जाकर रह सकती हो और वहां के कच्चे माल से राष्ट्र का उद्योग उन्नत हो सकता हो। उपनिवेशों के बाजार में प्रस्तुत सामग्री के विक्रय से भी अर्थ-लाभ हो सकता था। पूंजीपतियों ने इस लाभ को उठाने के लिए पूंजी लगाई एवं प्रशासन को अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए सशस्त्र बनने की प्रेरणा देने लगे व इसने विदेशी माल पर अधिक से अधिक कर लगाने को वाध्य किया। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा कि पूंजीपतियों का आर्थिक समर्थन और इंग्लैण्ड के प्रस्तुत द्रव्य और फ्रांस जर्मनी की प्रस्तुत सामग्री की प्रतियोगिता ने युद्ध को अनिवार्य बना दिया था।

९–जर्मनी की अभिलाषा

हर्नशा का कथन है कि "जर्मनी ने निश्चित रूप से महा-

युद्ध का संगठन, तैयारी और विस्फोट किया । इसमें न कोई तर्क है न सन्देह ही" । मैरियट का कथन है "युद्ध के प्रधान कारण जर्मनी में प्रशियावाद के प्रचार और विश्व राजनीति मे आधिपत्य की आकांक्षा से उद्भूत हुए, क्यों कि प्रशिया का उत्थान युद्ध के मार्ग से ही हुआ था और बिस्मार्क की नीति रक्त और शक्ति ही की थी" । प्रो० ऐन्सर कहता है—"कैजर हिंसात्मक उपाय और भ्रान्त नीति का भण्डार था-जिससे महायुद्ध की सृष्टि हुई" ।

निष्पक्ष विश्लेषण से यह प्रतीत होता है कि जर्मन राष्ट्र पर ये आरोप लगाना अन्याय है । यद्यपि जर्मनी के कुछ लेखक आज भी इसकी सत्यता को स्वीकार करते हैं । तथ्य तो यह है कि जर्मनी आस्ट्रिया का पूर्ण रूप से समर्थन करता था । जर्मन लेखक बर्नहार्डी ने अगस्त १९१४ में लिखा—"वियाना और बर्लिन मे युद्ध की तैयारी पूर्ण हो गई है । कानिगराट्स को निगराट्स के युद्ध में पराजित आस्ट्रिया के ५० वर्ष बाद जर्मनी की नीति पुनः वियाना द्वारा ही प्रभावित होने लगी । हम लोग दुर्बल चित्त से इस महान् संग्राम मे योगदान नहीं कर रहे हैं, परन्तु हम इसके आकांक्षी हैं" । जर्मनी ने कील नहर को खोदा, स्थल सेना को त्रिगुणित, जल सेना को द्विगुणित और राँइख बैंक मे सुवर्ण को संचित किया । यह तो सत्य है कि इंग्लैण्ड के विश्व व्यापी साम्राज्य की क्षति जर्मनी चाहता था । दूर प्राच्य में जर्मनी ने किस प्रकार इंग्लैण्डका प्रतिवाद किया—इसका अध्ययन हम आगे करेंगे । १९१४ मे जर्मन के राजकुमार ने इंग्लैण्ड की लोकसभा के सदस्य से कहा था, "आप आँख मीच कर रहिये और हमें फ्रांस के उपनिवेश को सर्व प्रथम अधिकृत करने दीजिये" । उसके पिता कैजर ने कहा "जर्मनी का उपनिवेश-स्थापन उद्देश्य

तभी पूर्ण होगा जब जर्मनी महा-समुद्रों का प्रभु बन जायेगा"। अन्तर्राष्ट्रीय अभिलाषा जर्मनी की यह थी यदि १९१४ में युद्ध नहीं होता तो रसिया बल्कान का नेता बन जाता, फ्रांस का ध्वंस असम्भव हो जाता।

जर्मनी के सामाजिक प्रजातंत्र दल का इतना अधिक विकास हुआ कि जनता की दृष्टि को बाह्य की ओर ले जाने के लिए युद्ध-घोषणा अनिवार्य हो गई—जिससे श्रमिक आन्दोलन शिथिल पड़ जायें। स्वतंत्र प्रशासन पर आक्रमण करने वाले श्रमिक संघ की प्रगति को प्रतिबद्ध करने का यही एकमात्र उपाय था। १९१३ मे प्रसिद्ध अमेरिका के लेखक फुलार्टन ने लिखा था "ऐसे अनेक प्रमाण है कि जर्मनी के शासक अन्त में, आर्थिक समस्या के समाधान के लिए युद्ध को ही जीवन-मरण का माध्यम बना लेंगे"। जर्मनी का आर्थिक संकट वस्तुतः अगाध था। उसके पास पूंजी, कच्चे माल, नवीन बाजार इत्यादि का अभाव था—जिसकी पूर्ति के लिए युद्ध करना पड़ा।

सिद्धान्त, जीवन और इतिहास के विभिन्न दृष्टिकोण भी इसके प्रमुख कारण थे। १९ वीं शताब्दी के अन्त में और २० वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जर्मन दार्शनिक और संवाद-प्रचारकों ने महायुद्ध की पृष्ठभूमि तैयार की। प्रथम धारणा उनकी यह थी कि जर्मन जाति (ट्यूटन) अन्य जातियों से उन्नत है और यह ईश्वरीय प्रेरणा है कि वह समग्र विश्व को घेर लेगी। शक्ति द्वारा जर्मन संस्कृति का (कुल्टर) प्रचार करके विश्व को ये लोग बताना चाहते थे कि जर्मनी ही विश्व की सभ्यता की माँ है। डार्विन के सिद्धान्त को परिवर्तित कर के "शक्तिशाली व सामरिक राष्ट्र ही जीवित रह सकता है" इस नवीन सिद्धान्त को मान्यता दी गई। जनता को "युद्ध के महत्व, प्रसिद्धि और गौरव" की शिक्षा दी गई। तात्कालिक लेखक बर्नहार्डी ने लिखा था—

"युद्ध केवल एक प्राणी शास्त्र ही नहीं है, अपितु एक नैतिक प्रयोजन और सभ्यता की प्रगति के लिए अत्यन्त आवश्यक है"। जर्मनी अन्तर्राष्ट्रीय संधि और समझौते को अभिमान में तुच्छ समझता था। जब इंग्लैण्ड के राजदूत गास्केन ने जर्मनी को बेल्जियम से सैन्य अपसरण की चुनौती दी—तो जर्मन प्रधान मन्त्री बेथमैन-हालवेग ने कहा था—"बेल्जियम की निष्पक्षता-संधि जिसके लिए इंग्लैण्ड अपने चिर सम्बन्धी मित्र से युद्ध करने जा रहा है— एक कागज का टुकड़ा है परन्तु हम उसके साथ स्थायी मित्रता के आकांक्षी थे"। इस पर राजदूत ने कहा—"महाशय! उस पत्र में आप के और हमारे दोनों ही के हस्ताक्षर हैं"। बेल्जियम की निष्पक्षता १८३९ और १८७० में इंग्लैण्ड और जर्मनी ने स्वीकृत की है। इसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों की इसने अवहेलना की।

१०—मनोवैज्ञानिक कारण

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि विभिन्न राष्ट्रों में असन्तोष और अविश्वास का पूर्ण संचय हो गया था। फ्यूटर ने सत्य ही कहा है—"सृष्टि के आदि-काल से बड़े बड़े राष्ट्रों मे संघर्ष होता आ रहा है व युद्ध की सम्भावना रहती रही है। परन्तु युद्ध के प्रारम्भ के लिए ऐसे एक असन्तोष और कलह की आवश्यकता है—जिसका समाधान असम्भव है"। युद्ध करने से पूर्व राष्ट्र, क्षति और लाभ की सम्भावना करता है। जर्मनी का यूरोप पर सामरिक प्रभुत्व वर्तमान संग्राम का लाभ था—जिसको वह तलवार, घूंसे और अस्त्र-शस्त्रों के प्रदर्शन से स्थापित करना चाहता था। कैटिलबी ने सत्य ही कहा है—"जब तक युद्ध की आवश्यकता में मानव राजनैतिक अस्त्र के रूप मे विश्वास करेगा, समय समय पर युद्ध अवश्य होगा। ऐतिहासिकों को १९१४ का युद्ध कैसे हुआ? यह प्रश्न न कर

यह पूछना चाहिए कि गत ४० वर्षों तक शान्ति कैसे रही ?" विभिन्न राष्ट्रों का यह मनोवैज्ञानिक विश्वास था कि युद्ध से ही उनकी सम्पूर्ण समस्याओं का हल होगा। फ्रांस की राजनैतिक स्वाधीनता, नेपोलियन का पतन, इटली और जर्मनी का संगठन युक्त राष्ट्रों की स्वतन्त्रता, प्राच्य की विजय, साम्राज्य का विस्तार आदि सभी युद्ध ही के मार्ग से हुए।

(आ) तात्कालिक कारण

१—सिराजेवो—हत्याकाण्ड

तात्कालिक कारणों में प्रधान सिराजेवो का हत्याकाण्ड था—जिसका विशद विवरण हम पिछले अध्याय में पा चुके हैं। जर्मनी और आस्ट्रिया ने रूस और सर्विया को इस हत्याकाण्ड का उत्तरदायी माना एवं रसिया और फ्रांस ने जर्मनी को ही आस्ट्रिया को प्रेरित करने का जिम्मेदार समझा। रसिया और फ्रांस के इस विश्वास का इतना प्रचार हुआ कि कैजर को ही जर्मनी की पराजय के पश्चात् महायुद्ध का अपराधी माना गया। इस संक्षिप्त पुस्तक मे २३ जुलाई से २ अगस्त तक की १० दिन की घटनाओ के विवरण के लिए स्थान नहीं है।

२—बेल्जियम की निष्पक्षता—भंग

जर्मनी के सेनानायक ने फ्रांस को पराजित करने के लिए एक नवीन योजना तैयार की—जिसे इतिहास मे "स्लीफैन योजना" कहा जाता है (१६०६) एक साथ दो सीमान्तों मे फ्रांस और रसिया के साथ युद्ध करना जर्मनी के लिए असंभव था। इसी लिए इस योजना में फ्रांस और जर्मन के सीमान्त पर अवस्थित दुर्गों को अधिकृत करके फ्रांस को पराजित करने को प्राधान्य दिया गया। इस योजना के अनुसार बेल्जियम पर आक्रमण

करना सेनानायक माल्टोके की दृष्टि में आवश्यक था। उसने मई १६१३ में कहा था—"जितनी देर हम करते हैं उतना ही हमारा विजय का सुयोग नष्ट हो रहा है। ६ सप्ताह में फ्रांस की विजय करना संभव है"। इसकी निष्पक्षता का किस प्रकार भंग कर इंग्लैण्ड को युद्ध में योगदान के लिए बाध्य किया गया—इसका वर्णन हम ऊपर दे चुके है।

३—निकट प्राच्य की समस्या—

यह समस्या भी अत्यन्त जटिल थी—जिसका विशद् वर्णन हम ऊपर दे चुके है। आस्ट्रिया की स्लाव दमन नीति से सर्विया-निवासी विक्षुब्ध हो गये थे और यह हत्याकाण्ड आस्ट्रिया-शासन को ध्वंस करने का ही राष्ट्रवादियों का गुप्त प्रयत्न था। वैलिन को मृत्यु से पूर्व कहा था—"हम महायुद्ध पर्यन्त जीवित नहीं रहेगें, पर तुम रहोगे और यह निकट प्राच्य की समस्या से ही प्रारम्भ होगा"। महान् प्रतिभाशाली और दूरदर्शी बिस्मार्क की यह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य हुई।

(इ) समीक्षा—

इतिहासविदो के समक्ष यह जटिल समस्या है कि महायुद्ध के लिए कौन दायी है? भरसालिस सधि में विजयी मित्रसंघ ने कैजर को ही दोषी ठहराया, परन्तु जर्मन आस्ट्रिया, रूस, फ्रांस और इंग्लैण्ड के राजकीय पत्रों के प्रकाशन से फे ने अपनी पुस्तक "ऑरिजिन ऑफ दी वर्ल्ड वार" में सबको समान रूप से उत्तरदायी सिद्ध किया। प्रत्येक राष्ट्र अपने अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए अग्रणी था।

सर्विया ने स्लाव जाति की एकता की कामना की—जो उस समय आस्ट्रिया और रूस की प्रजा थी। आस्ट्रिया पुनरुत्थान का प्रयासी था। रूस तुर्की की ओर साम्राज्य वृद्धि चाहता

था। जर्मनी यूरोप की संतुलन शक्ति को त्रिशक्ति मैत्री के अनुरूप बनाना और आर्थिक लाभ प्राप्त करना चाहता था। फ्रांस आल्सस् लोरेन पर पुनरधिकार और इंग्लैण्ड जर्मनी की नौ शक्ति का ध्वंस चाहता था। इनमें से कोई भी एकाकी होकर युद्ध करने के लिए तैयार नहीं था।

सर्विया युद्ध के प्रति इसलिए दायी है कि उसके मंत्री पासिच ने आस्ट्रिया के राजकुमार के हत्याकारियों को दण्ड नहीं दिया। प्रो० फे का कथन है कि "हत्याकांड से तीन सप्ताह पूर्व ही यह षड्यन्त्र पासिच को विदित था"। इसकी रक्षा के लिए उसने कोई प्रयत्न नहीं किया। आस्ट्रिया इसलिए दायी है—क्योंकि उसके विदेश मंत्री बर्कटोल्ड ने सर्विया को एक ऐसी चुनौती दी-जिसमें केवल ४८ घंटे का समय दिया गया और जिसको एक स्वाधीन राष्ट्र नहीं मान सकता था। सर्विया क द्वारा स्लाव जाति के आन्दोलन को ध्वंस करना ही उसका मूल उद्देश्य था। जर्मनी ने १९०८ से आस्ट्रिया की बॅल्कान नीति का समर्थन कर युद्ध को अवश्यंभावी कर दिया था। जर्मनी इसलिए भी दोषी था कि युद्ध दर्शन का प्रचार यूरोप वासियों को इसी ने दिया था और अपने अस्त्रशस्त्रों की वृद्धि कर सामरिक प्रतियोगिता की सृष्टि की थी। ग्रे के शांति-प्रस्ताव की अस्वीकृति भी एक निमित्त थी। रसिया इसलिए दोषी है कि उसने सर्विया को आस्ट्रिया के विरुद्ध प्रेरित और गुप्त रूप से सैनिक सहयोग दिया था। रसिया ने अपनी सेना का एकत्रीकरण ऐसे समय में किया, जब जर्मनी आस्ट्रिया को शान्ति पूर्ण निर्णय का परामर्श दे रहा था। फ्रांस इसलिए दायी है कि रूस के सैनिक प्रदर्शन के प्रतिरोध के लिए उसने कुछ भी नहीं किया था। फ्रांस ने मौनता से युद्ध घोषणा में रूस का समर्थन किया। इंग्लैण्ड प्रत्यक्ष रूप से अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा

कम दोषी था। ग्रे ने सर्विया के प्रश्न को शान्ति पूर्ण मार्ग से सुलझाने के लिए प्रभूत प्रयत्न किये थे। फ्रांस और रसिया को उसने यह कहा था—"यदि आप अन्याय करें या आप की नीति अयुक्तिपूर्ण हो, तो इंग्लैण्ड आपका समर्थन नहीं करेगा"। जर्मनी को इसने कहा था कि "यदि आप युद्ध घोषणा करें, तो इंग्लैण्ड फ्रांस और रसिया का समर्थन करेगा"। परन्तु ग्रे ने अधिक दृढ़ता का प्रदर्शन नहीं किया, यदि वह ऐसा करता तो संभवतः युद्ध टल जाता।

पाठकों को यह स्मरण रखना चाहिए कि महायुद्ध की उत्तरदायिता का अन्तिम निर्णय अभी तक भी नहीं हुआ। एन्सर, लैंगसम, गुच, प्राइब्राम, सोन्टाग, फे, ब्रिकले, आर्मस्ट्रांग, हैजेन, लिप्सन इत्यादि लेखक आस्ट्रिया, रसिया जर्मनी, फ्रांस और इंग्लैण्ड को समष्टि रूप से युद्ध का दायी घोषित करते हैं। लायड जार्ज ने सत्य ही कहा है—"उस काल में कोई भी राजनैतिक युद्ध की तात्कालिकता का निर्णय नहीं कर सका, इसीलिए शान्ति के लिए हार्दिक प्रयत्न नहीं किए गये"। सिराजेवो के हत्याकांड ने संचित बारूद में चिनगारी का काम किया और समग्र यूरोप में विस्फोट कर दिया।

(ख) महायुद्ध की घटनाएँ

(क) अगस्त से दिसम्बर १९१४

जब युद्ध घोषणा हुई, तो विचारकों ने समझा कि अत्यन्त शीघ्र ही यह समाप्त हो जायेगा, पर अल्पकाल में ही यह समग्र विश्व में व्याप्त हो गया। अफ्रीका, मिश्र, भारतवर्ष, एशिया, आस्ट्रेलिया, कनाडा, चीन, जापान, युक्तराष्ट्र, दक्षिण, अमेरिका का गणतन्त्र, उद्योग, वित्त, प्रचार, भूमि, समुद्र-वायु, श्वेत, काले, पीत, महिला, पुरुष, सेना, नागरिक आदि सर्वत्र विजय, पराजय अथवा रक्षा की व्यवस्था में अभूतपूर्व मात्रा में व्याप्त हो गये। इतिहास में फ्रांस और जर्मनी का का युद्ध छै मास और आस्ट्रिया और प्रशिया का युद्ध छै सप्ताह ठहरा था, परन्तु जिस प्रकार इसमें समय अधिक लगने लगा, उसी प्रकार पाश्चात्य सभ्यता की आर्थिक, सैनिक, और शारीरिक शक्ति का परीक्षण प्रारम्भ हो गया।

जर्मनी को स्लीफेन योजना को क्रियान्वित करने का सामरिक रेल्वे-प्रणाली, अनुशासित सैनिक संगठन एव व्यवस्थित भौगोलिक स्थिति के कारण पूर्ण विश्वास था। पर यह क्रियान्वित होना इसलिए असंभव हो गया, क्यों कि आस्ट्रिया रूस को रोक नहीं सका और परिणामतः जर्मनी को फ्रांस और रूस दोनो के सीमान्तों पर युद्ध करना पड़ा। यद्यपि आगे चलकर तुर्की ने भी जर्मनी की सहायता के लिए युद्ध घोषणा की, पर इससे भी जर्मनी को विशेष लाभ नहीं हुआ। त्रिशक्ति गुट की सैनिक संख्या अपरिमित और साधन असीम थे। विशेषतः इंग्लैण्ड का सामरिक आधिपत्य जर्मन व्यवसाय के लिए हानिकारक था। त्रिशक्ति गुट में भी आन्तरिक अनेकता थी एवं

रूस की भौगोलिक स्थिति व अप्रस्तुति भी एक असुविधा थी। यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रारम्भ से ही त्रिशक्ति गुट स्थायी युद्ध से विजय की आकांक्षा रखता था और जर्मनी तात्कालिक एवं द्रुत आक्रमणों से।

१—जर्मन आक्रमण

हर्नशा के शब्दों में जर्मनी की बेल्जियम की निष्पक्षता भंग करना एक अपराध ही नहीं अपितु महान् भूल थी। नैतिक दृष्टि से इसने स्वीकृत संधियों को ही अमान्य नहीं किया, पर छोटे छोटे राष्ट्रों को हड़पने की भी चेष्टा की। परिणामतः नैतिक दृष्टि से इंग्लैण्ड का हस्तक्षेप अनिवार्य हो गया। अपने स्मृति-पत्र में कैजर ने यह लिखा है कि "यदि हम बेल्जियम की निष्पक्षता भंग नही करते, तो फ्रांस अवश्य करता"। यह कथन नैतिक दृष्टि से सर्वथा अयुक्तिसंगत है।

२—पश्चिम सीमान्त

दुर्धर्ष जर्मन-सेना ने लक्सम्बर्ग को अतिक्रमण कर बेल्जियम में प्रवेश किया, परन्तु उन्होने लीज़ शहर में जर्मन सेना को तीन दिन तक अवरुद्ध कर उनके कार्यक्रम को विलंबित कर दिया। जर्मनी ने इस प्रकार की तोपें संचित कीं—जो २८ मन तक की बारूद को १५ मील तक फेंक सकती थी। शत्रु-राष्ट्र इस महाध्वंस यन्त्र से चमत्कृत हो गये। बेल्जियम की राजधानी का पतन २० अगस्त को हुआ और सेना ने एन्टवर्प मे पलायन किया। फ्रांसीय और इंगलिश सेना ने भी बेल्जियम में प्रवेश किया। वह जर्मनी की अग्रगति को तो नहीं रोक सकी, पर विलंबित अवश्य कर दिया। चार्लीराय, मोन्स, नामूर नगरो पर जर्मनी का अधिकार हो गया।

जर्मन सेना अब फ्रांस की ओर बढ़ी व लीली को हस्तगत

किया। पिकार्डी और सैम्पेग्ने को भी अधिकृत किया व पेरिस की ओर अग्रसर हुई। फ्रांसीय सेना मार्ने नदी के तट से पलायित हो गई और सितम्बर मे जर्मन सेना पेरिस से केवल १५ मील दूर रह गई। शासक-वर्ग बोर्डो में भाग गये। सितम्बर ६ और १० में मार्ने नदी के (४ दिन व्यापी) युद्ध में फ्रांसीय सेनानायक जाफ्रे ने जर्मन-अग्रगति को प्रतिहत किया और ऐशन नदी के तट तक पीछे हठने के लिए बाध्य कर दिया। मार्ने का प्रथम युद्ध विश्व की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इस विजय ने फ्रांस ही की जर्मन आधिपत्य से रक्षा नहीं की, अपि तु संपूर्ण यूरोप को की। उत्तर में फ्रांस के बन्दरगाहों के लिए अब जर्मनी लालायित हुआ-जिससे कि इंग्लैण्ड और फ्रांस का सैनिक सम्बद्ध विच्छिन्न हो जाये। ६ अक्टूबर को एन्टवर्प का पतन हुआ और प्रायः बेल्जियम के अवशिष्ट अंशों ने भी आत्म-समर्पण किया। यप्रेस के चारों ओर एक भयानक युद्ध प्रारम्भ हुआ-जर्मन सेना यहां पर भी प्रतिरुद्ध होने के कारण पीछे हठी। यह है जर्मन अग्रगति का द्वितीय प्रतिरोध।

३-पूर्व सीमान्त

७ अगस्त को रूस ने जर्मनी पर आक्रमण किया, परन्तु जर्मन सेनानायक हिंडनवर्ग ने २६ अगस्त को ७ दिन व्यापी टैनेन-वर्ग के युद्ध में रूस सेना को ध्वस्त किया। आस्ट्रिया-सेना गैलेशिया में रूस द्वारा पराजित हुई। रूस की अग्रगति को रोकने के लिए हिंडनबर्ग ने पोलैण्ड पर असफल आक्रमण किया और इस वर्ष के अन्त में आस्ट्रिया सर्विया की विजय नहीं कर सका और पूर्व में रूस और जर्मन का सीमान्त २०० मील लम्बा हो गया।

४—नौयुद्ध

जर्मनी की अपेक्षा इंग्लैण्ड की नौशक्ति द्विगुणित थी। इसीलिए जर्मनी का तटावरोध अति सहज ही में हो गया परन्तु धूर्त्त जर्मनियों ने पनडुबियों से इंग्लैण्ड के जहाजों को डुबोना प्रारम्भ कर दिया। जर्मन-पनडुबी एमडेन और कार्ल्स-रू के ध्वंसात्मक प्रयोग सर्वजन विदित है। पर फाकलैण्ड द्वीप के युद्ध में एक जर्मन-जहाज-दल पराजित हुआ। इससे यह स्पष्ट हो गया कि इंग्लैण्ड पर जर्मनी का साक्षात् आक्रमण सफल नहीं हो सकेगा।

५—उपनिवेश

जर्मनी इस वर्ष टोगोलैण्ड, कैमेरून, आदि उपनिवेशों से वंचित हो गया। दक्षिण पश्चिम और पूर्व अफ्रीका में इंग्लैण्ड के विरुद्ध राष्ट्रीयवादी बूअर जाति के विद्रोह से जर्मनी को सामान्य सहायता मिली। नवम्बर में जापान ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर जर्मन बन्दरगाह क्याउ-चाऊ पर अधिकार किया। इसी समय तुर्की ने भी जर्मनी के सहयोग के लिए युद्ध घोषित किया। मध्य-यूरोप से निकट प्राच्य तक जर्मनी के समर्थक राष्ट्रों का एक विस्तृत सीमान्त बन गया।

ख—१६१५

१—पश्चिम सीमान्त

जर्मनी ने यप्रेस पर अप्रेल में द्वितीय बार नवीन नवीन अस्त्र शस्त्रों व विषाक्त गैसो के साथ आक्रमण किया। यप्रेस के एक मास स्थायी द्वितीय युद्ध ने इंग्लैण्ड को प्रभूत क्षति के साथ साथ पीछे हटने को बाध्य किया था, फिरभी उसने साहस के साथ जर्मनी के प्रतिरोध में भी कोई कमी उठा न रखी। मित्र राष्ट्र ने आर्टायस और सेम्पेग्ने को अधिकृत करने के लिए दोबार

विफल आक्रमण किये और इस वर्ष पश्चिम सीमान्त में जर्मन ने केवल प्रतिरोधात्मक युद्ध किया।

२—पूर्व सीमान्त

रूस ने आर्मेनिया और काकेशस प्रदेशों में तुर्की सेना को ध्वस्त किया और आस्ट्रिया को भी पराजित किया। रूस सम्राट् निकोलास कार्पेथियन पर्वत के निम्न-भाग तक पहुंच गया। इसी समय हिंडनबर्ग ने पोलैण्ड मे मसूरियन झील के निकट रूस सेना को पूर्ण रूप से पराजित किया। पोलैण्ड की राजधानी वार्शो, विलना, ग्रोडनो, ब्रेस्ट-लिटाव्स्क पर अधिकार किया। जर्मन सेनानायक मैकेन्शन ने गैलेशिया से निकोलास को पश्चात् किया एवं विभिन्न छोटे छोटे युद्धो में रूस-सेना को ध्वस्त किया। रसिया पोलैण्ड और पश्चिम वाल्टिक प्रदेशों से वंचित हुआ—जिससे आन्तरिक विद्रोहों का प्रादुर्भाव हुआ।

३—दक्षिण पूर्व सीमान्त—

रूस की जनशक्ति असीम थी। यदि इसके पास पर्याप्त मात्रा में अस्त्र शस्त्र होते, तो यह १॥ करोड़ सेना को संगठित कर सकता था। इस अभाव की पूर्ति के लिए मित्रराष्ट्र ने मारमोरा सागर व वास्फरस से रूस को रसद पहुँचाने के लिए गौलिपली पर आक्रमण किया। गौलिपली प्रायद्वीप में मित्रराष्ट्र की सेना उतरी, परन्तु आची-वाबा के पहाड़ में यह तुर्की को पराजित नहीं कर सकी और यह योजना असफल ही रही। अक्टूबर में बुल्गेरिया भी जर्मनी-दल मे सम्मिलित हो गया व इसने सर्विया को जीत लिया। मैसोपोटेमिया में तुर्की के प्रभाव को रोकने के लिए इंग्लैण्ड ने वसरा और कुथ-अल-इमारा को अधिकृत किया। पर बगदाद के आक्रमण को तुर्की ने असफल कर दिया एवं कुथ में तुर्की ने पुनः इनको घेर कर इंग्लिश सेना को आत्म-समर्पण के लिए बाध्य किया।

(४) नौयुद्ध एवं उपनिवेश-संग्राम

१९१५ वां वर्ष में इंग्लैण्ड को नौयुद्ध में अति क्षति हुई। पनडुबियों द्वारा जर्मनी ने ब्रिटिश द्वीप समूहों को अवरुद्ध किया एवं इंग्लैण्ड के अनेक व्यापारिक जहाजो को डुबो दिया गया। ७ मई को इंग्लैण्ड के लुसीटानिया जहाज—जिसमें युक्त राष्ट्र के यात्री थे—को डुबो दिया गया। पर उपनिवेशों में जर्मनी की पराजय हुई। इंग्लैण्ड ने अफ्रीका के बूअर विद्रोह का दमन किया और एक एक करके जर्मन उपनिवेशों को हस्तगत कर लिया। इसी समय ट्रेन्ट और ट्रिस्ट को अधिकृत करने के लिए इटली ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषित किया। इस वर्ष के युद्ध के विषय में प्रो० सॉइमण्डस का कथन है—"जर्मनी का निकट प्राच्य में राज्य विस्तार का स्वप्न क्रियान्वित हो चुका था, बर्लिन, वियाना, कांस्टेन्टिनोपल व बगदाद में परस्पर संबन्ध स्थापित हो गया—जिसने विजय की सूचना दी"।

ग—१९१६

१—पश्चिम सीमान्त

जर्मनी ने दुर्भेद्य भरदुन दुर्ग पर इतने वेग से आक्रमण किया कि १२ घन्टे में १० लाख गोलियां (तोप द्वारा) फेंकी। ८० वर्ग मील को अधिकृत कर भरदुन शहर के चार मील निकट तक सेना पहुँच गई। फ्रांस सेनानायक पेतॉ ने घोषणा की कि "बस, जर्मन अब आगे नहीं बढ़ेगा"। ७ मास तक अनेक युद्ध करने के पश्चात भी जर्मनी केवल तीन मील आगे बढ सका। इसी समय से मित्र राष्ट्र का भाग्य बढ़ने लगा। सोम में मित्र राष्ट्र ने प्रत्याक्रमण प्रारम्भ किया—जिसमे हवाई जहाज टैंक आदि नवीन अस्त्र शस्त्र सज्जित थे। यद्यपि जर्मनी पराजित

नहीं हुआ—फिर भी मित्रराष्ट्र की १०० मील तक की अग्रगति से भरदुन नगर सुरक्षित हो गया। जर्मन सेनानायक लुडेन्डार्फ ने कहा—"यह एक दानवीय युद्ध है, सेना शक्ति क्षीण हो रही है। हमारी मानसिक शक्ति भी दुर्बल हो रही है और भयानक रूप से धन, जन और सामग्री की हानि हुई है। यदि युद्ध और चले तो हमारी पराजय निश्चित है, क्यो कि शत्रु का धन और साधन—बल हम से अत्यन्त अधिक है"।

२—पूर्व सीमान्त

जब जर्मनी भरदुन के अधिकार के यत्न में था, आस्ट्रिया सेना इटली को पराजित करने के लिए वैनेशिया की ओर बढ़ी पर इटली विजयी हुआ। रूस सेना ने ब्रुसीलव के नेतृत्व में गैलेशिया और बुकोविना पर पुनः अधिकार किया और आस्ट्रि-या की ओर बढ़ी, परन्तु हिंडनवर्ग ने इसे इतना पराजित किया कि रूस अब आन्तरिक विद्रोह में ही व्यस्त हो गया। रूमा-निया ने अगस्त मे मित्रराष्ट्रों के समर्थन में युद्ध घोषित किया। पर जर्मन सेना ने ट्रांसिल्वेनिया की विजय से समग्र रूमानिया को हस्तगत कर लिया। मैसोपोटेमिया में इंग्लैण्ड की नगण्य-सी विजय हुई।

३—नौयुद्ध

जर्मन नौ बेड़े को ब्रिटिश जहाजों ने पनडुबियों से अत्यन्त क्षति होने पर भी बन्दरगाहों में ही अवरुद्ध रखा। ३१ मई को जुटलैण्ड के नौयुद्ध में जर्मनी पूर्णरूप से पराजित हुआ—परिणामतः इंग्लैण्ड को रसद और अस्त्र शस्त्र सहज ही में रूस व फ्रांस को पहुंचाने का मार्ग मिल गया। इसी समय युक्त राष्ट्र के राष्ट्रपति वुडरो विलसन ने युद्ध की शांति के लिए असफल मध्यस्थता की, क्योंकि शांति का समय अभी नहीं आया था।

घ—१९१७

यह वर्ष विश्व के इतिहास का अत्यन्त संकटपूर्ण काल था। जर्मनी अंतिम निर्णय के लिए शेष शक्ति का प्रयोग कर रहा था और मित्रराष्ट्र युद्ध को विस्तृत करने मे लगा था।

१—पश्चिम सीमान्त

जर्मनी ने पश्चिम सीमान्त को सामरिक शक्ति से इतना दृढ बनाया—जिसको इतिहास में "हिंडनबर्ग रेखा" कहा जाता है। इग्लैण्ड ने ऐरास पर विफल आक्रमण किया। फ्रांस सेनापति नीवेल ने ५० मील की सीमा तक रीम्स के निकट असफल युद्ध किया। यप्रेस के तृतीय युद्ध में कुछ भी अन्तिम निर्णय नहीं हो पाया। कैम्बराय के संग्राम में इंग्लैण्ड सफल होते हुए भी जर्मन अधिकृत क्षेत्रों को मुक्त नहीं कर पाया।

२—पूर्व सीमान्त

इस वर्ष की सब से महत्वपूर्ण घटना रूस की पूर्ण पराजय थी। रूस ने तीन वर्षव्यापी असफल युद्ध किया, पर इसका परिणाम अत्यन्त भयानक था। अस्त्रशस्त्रों के अभाव, खाद्य सामग्री की न्यूनता, संधि का दुष्प्रचार, विश्वासघातकता और षड्यन्त्र के प्राचुर्य ने स्वैरतन्त्र विरोधी दलों को एकत्रित किया। युद्ध-मन्त्री को बंदी बनाया गया। योगी रास्पुटिन की हत्या की गई। फर्वरी १९१७ में पैट्रोग्रड नगर में श्रमिक-वर्ग ने हड़ताल कर दी—सेना भी इनमें सम्मिलित हो गई और ड्यूमा(१) ने मार्च में ज़ॉर द्वारा स्वेच्छा-राज्य त्याग कर जाने पर अस्थायी शासन की घोषणा की। इस प्रकार ३० वर्ष पुराने रोमानाव वंश का उच्छेद हो गया। नवीन प्रशासन ने कैरीनस्की

१—इसके उत्थान का विस्तृत परिचय हमारे "नवीन यूरोप" से प्राप्त करिये।

के नेतृत्त्व मे जर्मनी के विपरीत युद्ध प्रारम्भ किया। जुलाई में रूस ने गैलोशिया को हस्तगत किया, परन्तु सेना विद्रोही हो गई। पौलैण्ड और फिनलैण्ड ने स्वतन्त्रता घोषित की। जर्मनी ने रीगा को हस्तगत किया। सेनानायक कार्नीलाव की प्रतिक्रिया-क्रान्ति असफल हुई। श्रमिक नेता लेनिन और ट्राट्स्की ने कैरीनेस्की के अस्थायी प्रशासन को भंग कर साम्यवाद की स्थापना की। लेनिन ने सामन्त प्रभुओं की भूसम्पत्ति को अधिकृत कर १५ डिसम्बर को जर्मनी के साथ, ब्रेस्ट लिटान्स्क मे रणविराम पर हस्ताक्षर किये। यद्यपि ट्र ट्स्की रूस की भू और क्षतिपूर्त्ति देने के लिए तैयार नहीं था, पर जर्मनी ने उसके इस प्रस्ताव को अस्वीकृत किया व पैट्रोग्रड की ओर अग्रसर हुआ। फर्वरी १९१८ में यूक्रेन स्वाधीन हो गया एव अब रूस ने जर्मनी की शर्तें स्वीकृत कर मार्च १९१८ में निम्नलिखित समन्वय-पत्र पर हस्ताक्षर किये—(१) यूक्रेन के स्वाधीन गणतंत्र को स्वीकृत किया गया। (२) ऐस्थोनिया, लिवोनिया, कुर्लैण्ड, लिथुयानिया और पोलैण्ड के भविष्य को जनता की इच्छा पर जर्मनी द्वारा निर्णय करने का निश्चय किया गया। (३) वाटूम, अरदाहान और कार्श की स्वाधीनता का (काकैशस पर्वत के निकट) निर्णय तुर्की की सम्मति पर छोड़ा गया। (४) फिनलैण्ड और जार्जिया को स्वतन्त्र घोषित किया। रसिया ने जर्मनी की आर्थिक क्षतिपूर्ति और सुविधायें देने का आश्वासन दिया। रसिया ने लाख वर्गमील भूमि और साढ़े छ करोड़—३४ प्रतिशत जनसंख्या-जन समुदाय से (जिसमें ३२ प्रतिशत कृषिभूमि, २५ प्रतिशत चुकन्दर के खेत, ५४ प्रतिशत औद्योगिक केन्द्र और ८ प्रतिशत कोयले की खानें थीं) वंचित हो गया।

ब्रेस्ट लिटान्स्क की सन्धि युद्ध की एक महत्वपूर्ण घटना थी। रूस की पराजय जनता की दृष्टि से एक ईश्वरीय देन थी–

जिसके परिणाम से पुरातन-प्रशासन का अवसान और साम्यवाद की स्थापना हुई। जर्मनी पूर्व सीमान्त में पूर्णतः विजयी हुआ एवं पश्चिम सीमान्त में सेना के प्रयोग करने में समथ हो गया। पर रूस आर्थिक क्षतिपूर्ति नहीं दे सका और नवम्बर १९१८ में साम्यवाद ने जर्मनी मे आंतरिक विद्रोह का संचार किया।

३—युक्तराष्ट्रीय हस्तक्षेप

१९१५ में हम देख चुके हैं कि युक्तराष्ट्र के यात्री लुसीटेनिया जहाज में जर्मनी द्वारा डुबो दिये गये थे। १९१६-१९१७ में इस पनडुबी के आक्रमण से युक्तराष्ट्र की प्रभूत क्षति हुई। फ्यूटर के शब्दों मे, जिस युक्ति से इंग्लैण्ड युद्ध में आने के लिए बाध्य हुआ था—युक्तराष्ट्र भी उसी उद्देश्य से युद्ध में सम्मिलित हुआ। इसी समय जर्मनी और माक्सको की मैत्री-योजना राष्ट्रपति विल्सन के आदर्शवाद, प्रजातन्त्रवाद व रूस में साम्यवाद की स्थापना ने अमेरिका की जनता को ६ अप्रेल को युद्ध घोषणा के लिए बाध्य किया।

४—इटली और तुर्की का संग्राम

रसिया से सन्धि करने के पश्चात् जर्मन सेना ने आल्पस् को अतिक्रमण किया और इटली सेना को दो युद्धों में ध्वस्त करके वैनिश के द्वार पर पदार्पण किया। परन्तु आक्रमणकारी की अग्रगति का मित्रराष्ट्रों के आक्रमण से यहीं अन्त होगया। मैसोपोटेमिया में इंग्लैण्ड ने कुथ और बगदाद पर अधिकार किया, सीरिया में जैरूसालेम को हस्तगत किया।

५—नौयुद्ध

जर्मनी ने स्वेच्छाचारिता के साथ इंग्लैण्ड के सामुद्रिक आधिपत्य को नष्ट करने के लिए नवीन आविष्कृत "यूनौ" द्वारा

आक्रमण करना प्रारम्भ किया । छै मास में ४० लाख टन (११२ करोड मन) मित्रराष्ट्रों के जहाजों को इसने समुद्र में बलिदान कर दिया। युक्त राष्ट्र की नौशक्ति की सहायता पाने से इंग्लैण्ड इस वर्ष के अन्त में पनडुबियों के आक्रमण को नवीन नवीन अस्त्र शस्त्रों के प्रयोग से रोक पाया । जर्मनी की ६ मास तक युद्ध समाप्त होने की आशा भंग हो गई ।

ङ--१९१८

१--पश्चिमी सीमान्त

यद्यपि जर्मनी परिश्रान्त हो चुका था, फिर भी वर्ष के प्रारम्भ मे विभिन्न रण क्षेत्रों में विजयी हुआ । मार्च में ब्रेस्ट लिटाव्स्क की सन्धि रूस से हुई । मई में बुकारेस्ट की सन्धि से रुमानिया को पराजित किया । लुडेन्डॉफ के नेतृत्त्व में जर्मनी की शेष शक्ति व मेधा का प्रयोग किया गया। फ्रांस और इंग्लैण्ड को पृथक् करने के लिए पेरोन क्षेत्र में आक्रमण प्रारम्भ किया। मित्र राष्ट्र के सेना नायक फांच ने बेथून और यप्रेस में जर्मन अग्रगति का अवरोध किया। चतुर लुडेन्डॉफ ने मर्न नदी का अतिक्रमण करके चट्ट्वा थियरी का प्रभुत्व राष्ट्र को दिया। युक्त राष्ट्र की सेना ने फ्रांस में पदार्पण किया और फाच में राइन्स ने जर्मन अग्रगति का प्रतिरोध किया। जुलाई में फॉच के नेतृत्व में मित्र सेना ने जर्मनी को मार्न नदी में पराजित कर हिडनवर्ग—रेखा के निकट विजय प्राप्त की। अक्टूबर में जर्मन सेना फ्रांस से बहिष्कृत हो गई। इटली में आस्ट्रिया का आक्रमण असफल हुआ। इंग्लैण्ड ने डामस्कस् और बेरुत पर अधिकार किया। सलोनीका से मित्रराष्ट्र की सेना बुल्गेरिया की ओर अग्रेसर हुई। समुद्र में जर्मनी का पनडुब्बी आक्रमण भी असफल रहा। सितम्बर में बुल्गेरिया,

३१ अक्टूबर को तुर्की, ४ नवम्बर में आस्ट्रिया ने आत्म-समर्पण किया। ६ नवम्बर को कैजर ने राज्य त्याग किया। इसके दो दिन पश्चात् जर्मनी ने रणविराम पर हस्ताक्षर किये एवं युद्ध का अन्त हो गया।

२—शान्ति का प्रबन्ध

(क) *सामान्य परिचय*—प्रथम महायुद्ध १५६५ दिन चला--जिसमें साढे छ करोड़ सेना एकत्रित की गई। संचित सेना में एक करोड़ तीस लाख अर्थात् प्रति पांच में से एक की मृत्यु हुई, दो करोड़ २० लाख अर्थात् प्रति तीन में से एक घायल हुए जिनमें ७० लाख अंग हीन हो गये। १७८६ से १६१३ तक जितने युद्ध हुए—उन सब में मिलाकर जितने व्यक्ति और धन की क्षति हुई थी-इस अकेले मे हीं उससे दुगणी क्षति हुई। संक्षेप में एकत्रित सेना की दो तृतीयांश सेना मरी थी एवं मृत व्यक्तियो में से भी दो तृतीयांश मित्रराष्ट्र के थे। सम्पत्ति का ध्वंस भी प्रभूत हुआ था। प्रथम तीन वर्ष में ५० करोड़ रुपया प्रतिदिन व्यय था। केवल १६१८ में प्रति दिन एक अरब रुपया व्यय हो गया था, अर्थात् प्रति घन्टे में ५ करोड़। सम्पूर्ण आर्थिक क्षति अनुमानतः १२००००००००००) रुपये थी।

जर्मनी ने जब आत्म-समर्पण किया तो रणविराम की शर्तों के अनुसार इसे बेल्जियम आदि हस्तगत प्रदेशो से सैनिक अपसरण और इनके निवासियों का पुनस्थापन करना पड़ा। युद्ध की प्रधान सामग्री पनडुबी, युद्ध जहाज, सेतु, दुर्ग, मोटर, रेल आदि का समर्पण और मित्र राष्ट्रों की बंदी सेना को मुक्ति देना पड़ा। राइन नदी का वाम तट मित्रराष्ट्रों के सैनिक अधिकार में आ गया। इंग्लैण्ड ने जर्मनी के तटावरोध को स्थायी रखा। एक शब्द में जर्मनी इतना दुर्बल और रक्षाहीन हो गया कि युद्ध

की कल्पना तक नहीं कर सकता था। जर्मनी ने यह स्वयं स्वीकृत किया कि युक्त-राष्ट्र के राष्ट्रपति विलसन की २७ सितम्बर १६१८ की घोषणा के आधार पर ही स्थायी संधि निर्णय की जायेगी—जिसके अधिवेशन के लिए पेरिस नगर को ही चुनना पड़ा।

१—अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन

१६१६ के प्रारम्भ में विजयी मित्रराष्ट्र के प्रति-निधि वर्ग संधिशर्तों का निर्णय करने के लिए पेरिस महानगरी मे एकत्रित हुए—इस सम्मेलन में ३२ राष्ट्रों ने भाग लिया था। पर किसी शत्रु राष्ट्र और रसिया को भी इसमें आमन्त्रित नहीं किया गया था। अमेरिका के प्रतिनिधि बुलिट को मास्को में लेनिन के संधि वार्तालाप (मार्च) करने के लिए भेजा गया था। लेनिन ने तटावरोध के अंत, राजनैतिक और व्यावसायिक सम्बन्धों का पुनस्स्थापन व आर्थिक ऋण का अन्त, राजनैतिक अभियुक्तों की पूर्ति व मित्रराष्ट्रों के सैनिक अपसरण को शर्तों के रूप में प्रकट किया। पर इन सब को मित्र संघ ने अस्वीकार किया। केवल डा० नान्सेन के प्रस्तावानुसार रसिया को खाद्य-सामग्री देना स्वीकार किया गया। इस अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में ६० प्रतिनिधियों ने भाग लिया—जो सब विषयों के विशेषज्ञ थे। शीघ्रता के साथ शान्ति स्थापना का यत्न करने के लिए प्रधान प्रधान १० व्यक्तियों की कार्यवाहक उच्च समिति का निर्माण किया गया—जिसमें निम्न ५ राष्ट्र सम्मिलित थे। (१) अमेरिका के युक्त राष्ट्र, (२) फ्रांस, (३) जापान, (४) इटली, (५) इंग्लैण्ड।

२—राष्ट्रपति विल्सन

चार महापुरुष ही इस अधिवेशन के कर्ता धर्ता—युक्तराष्ट्र
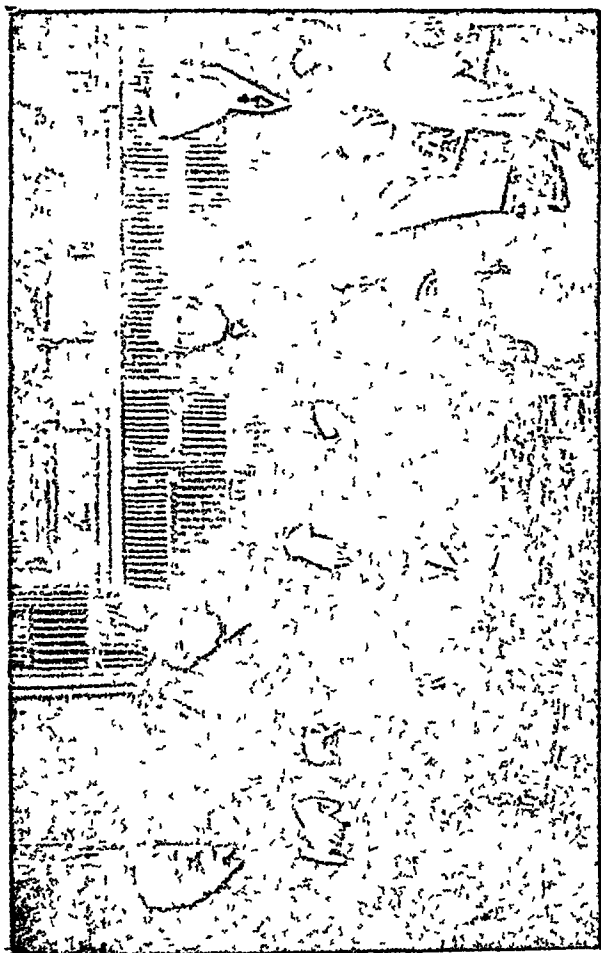
आरलैण्डो, लायड जार्ज, क्लीमेन्सो, विल्सन।
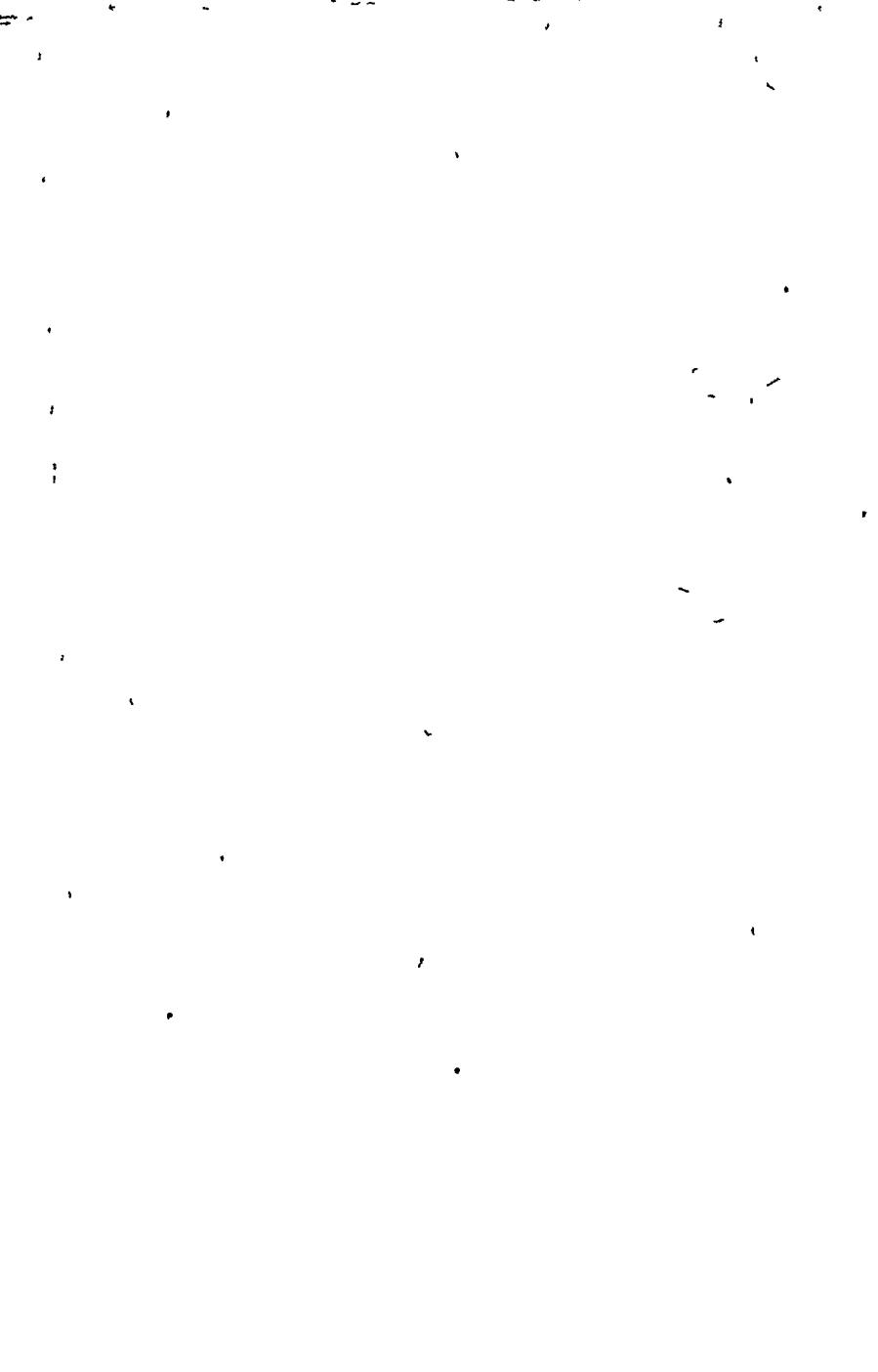
के राष्ट्रपति विल्सन, फ्रांस के प्रधान मन्त्री क्लीमेन्सो, इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री लायड जार्ज और इटली के प्रधान मन्त्री सीनर आरलेण्डो—थे। विल्सन के सचिव कार्नेल हाउस ने लिखा है—"१६१६ में विल्सन अपनी शक्ति और प्रभाव के चरम शिखर पर था। नैतिक और आध्यात्मिक विषयों में इस प्रकार का प्रभावशाली वक्ता दूसरा नहीं था। पेरिस में निस्स्वार्थ और अनवरत श्रम के साथ इतना काम किसी ने नहीं किया"। विल्सन हैरिस ने लिखा है—"पेरिस में इसका उद्देश्य था—चतुर्दश केन्द्रविन्दुओं के आधार पर सन्धि का निर्माण करना। यद्यपि यह असफल रहा, तो भी प्रचेष्टा में इसने कोई कमी न रखी। चार महापुरुषों में से यही एक ऐसा व्यक्ति था—जो कि शान्ति को चिरस्थायी बनाने के लिए नवीन नवीन आदर्शों और कल्पनाओं के प्रयोग में लगा था। इसने लाभ की अपेक्षा त्याग अधिक किया, परन्तु इसका विश्वास था कि राष्ट्रसंघ ही विश्व में चिरन्तन शान्ति रख सकेगा"। स्टेनार्ड बेकर ने कहा है—"जैसे ही इसका उद्देश्य महान् था, उसी प्रकार इसका अपरिसीम साहस, शक्ति और असाधारण धैर्य था। शान्ति अधिवेशनों में सबसे अधिक इसने काम किया और सबसे कम इसने मनोरञ्जन में भाग लिया"। लान्सिंग ने इसकी अन्तर्राष्ट्रीय नीति और न्याय की प्रशंसा की, परन्तु उसकी योग्यता और माध्यम के सम्बन्ध में समीक्षक एक मत नहीं हैं। केनिस लिखता है—"यह न कोई महान् नेता, भविष्यवक्ता या दार्शनिक ही था, परन्तु मानवता के महान् आदर्शों से अनुप्राणित होकर पारस्परिक विरोध और संघर्ष के अवसान के लिए इसने अभिनव संस्थान—राष्ट्रसंघ—की स्थापना कर महत्ता प्रकट की। इसके सिद्धान्तों और धारणाओं को अंततः हम अप्रायोगिक, असंपूर्ण और भ्रान्त पाते हैं। इसकी न कोई योजना थी व न रचनात्मक धारणा ही। यह प्रतीत

होता है कि इसकी विचार धारा धर्म से ओत-प्रोत थी"। विल्सन के समर्थक लान्सिंग ने भी इसकी योग्यता और अप्रत्युत्पन्नमति पर असन्तोष प्रकट किया है। पेरिस मे विल्सन राजनैतिक दृष्टि से केवल एकाकी था।

३—क्लीमेन्सो

क्लीमेन्सो को फ्रांस निवासियों ने "महान् विजेता" और "शेर" की उपाधि दी। युक्तराष्ट्र में गृह युद्ध के समय (७ वर्ष पूर्व) यह एक संवाद दाता था। यद्यपि यह अतिशय अनुभवी था, पर इसकी वृत्ति संशयालुता–पूर्ण थी। १६१७ से १६२० तक फ्रांस का यह प्रधान मन्त्री और युद्ध मन्त्री निर्वाचित हुआ था। क्लीमेन्सो लैंगसम के शब्दों मे सम्मेलन का सबसे कुशल कूटनीतिज्ञ एवं संसार की समस्याओं व मानव-प्रकृतियों का व्याख्याता था। मनोरंजन में इसने कहा था—"ईश्वर के १० आदेश हैं, किन्तु विल्सन के चतुर्दश हैं"। एक बार इसने और कहा था—"लायड जार्ज स्वयं को नेपोलियन समझते हैं, परन्तु विल्सन स्वयं को ईसा मसीह समझते हैं"। यह दूरदर्शी राजनीतिज्ञ अमेरिका के आदर्श और इंग्लैण्ड की आशाओं के मध्य से स्वयं की रक्षा, स्वार्थों की पूर्ति और जर्मनी को क्षीण, हीन बना सका। कैनिस के शब्दों में "पेरीक्लिस जिस प्रकार एथेन्स के उत्थान के लिए प्रयत्नशील था, उसी तरह यह भी फ्रांस के उत्थान के लिए चिन्तित था। पर इसने बिस्मार्क की राजनीति का अनुकरण किया। फ्रांस ही इसका स्वप्न था एवं मानवता सत्य थी। इसका विश्वास था कि जर्मनी को नियंत्रित रखना चाहिए"। कार्नेल हाउस् ने कहा है—"यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का असाधारण नेता था, शान्ति और युद्ध दोनो का ही इसने साहस, दृढ़ता

और मेधा के साथ समर्थन किया व समग्र संसार का जनप्रिय हुआ"।

४—लायडजार्ज

इंग्लैण्ड का प्रमुख प्रतिनिधि और उदारदल का नेता लायडजार्ज १६१६ से इंग्लैण्ड का प्रधान मन्त्री था—जो सम्मेलन के नेताओं में से एक प्रमुख था। सम्मेलन में भाग लेने से पूर्व इसने जनता की सम्मति पाने के लिए दिसम्बर १६१८ में पुनर्निर्वाचन कराया—और पूर्णशः सफलता प्राप्त की। इसके सफेद बाल, असाधारण परिश्रम, सतर्क मन, भावुकता और चातुरी मनोरंजकता और विश्वास योग्यता ने विभिन्न समस्याओं के समाधान मे पूर्ण योग दिया। कैनिस के शब्दों में "इसके अभ्रान्त निर्णय और मध्यम मार्ग अद्वितीय थे। चरित्र के विश्लेषण, स्वार्थ त्याग, स्पष्ट वक्तृता—आदि इसकी विशेषताओं से सम्मेलन अधिक सुशोभित हुआ"। लांसिग के शब्दों में "यद्यपि इसका व्यवहार नीरस, परन्तु इसका मन अत्यन्त सचेष्ट था और वैद्युतिक गति से यह अन्तिम निर्णय कर सकता था। आधारभूत सिद्धान्तों की इसे कोई परवाह नहीं थी। अपनी भूल को यह हँस कर स्वीकृत कर लेता था। चार महापुरुषों में यह इतना शक्तिशाली वक्ता था कि इसके विरोधी इससे भीत थे। पर इसमें न स्थिरता थी और न कूटनीतिक कौशल ही। पेरिस में इसकी सफलता उत्तम परामर्श का ही परिणाम थी"। इसका मूल सिद्धान्त यह था कि जर्मनी की शक्ति को सर्वथा इतना क्षीण कर दिया जाये कि वह युद्ध के लिए पुनः प्रस्तुत न हो सके और महायुद्ध के दायियो को दंड दिया जाये।

५—आरलेण्डो

इटली का प्रधानमन्त्री आरलेण्डो शिक्षित, उत्तम वक्ता व

कुशल कूटनीतिज्ञ था–जो निर्वाचन से पूर्व सिसली में यामक शिक्षक था। यह अंग्रेजी नहीं जानता था, इसीलिए इसका प्रभाव सम्मेलन में कम था। गुच का कथन है—"आरलेण्डो में न अधिकार शक्ति ही थी न योग्यता ही। इसीलिए सम्मेलन के प्रमुख नेताओं ने इसकी अवहेलना की"। प्रत्यक्षदर्शी हैरिस का कथन है—"इटली का प्रतिनिधि मंडल नकली चेहरा पहन कर संमेलन के कार्यक्रमों का मौन निरीक्षण करता था"। समय समय मे गुप्त सन्धि की पूर्णता के लिए इटली के स्वार्थ को दृष्टि में रख कर यह जब बल देता था तो विल्सन बिगड़ जाता था।

उपर्युक्त नेताओं के अतिरिक्त यूनान से वेनिजेलास, सर्विया के पाचिस, इंग्लैण्ड के बालफोर, पोलैण्ड के डमोस्की, जापान के सयोञ्जी और वेल्जियम के हैमन्स गणनीय व्यक्तियों में से थे।

६—चतुर्दश केन्द्रबिन्दु—

यह कहा जाता है कि राष्ट्रपति विल्सन ने पेरिस कांग्रेस में वियाना कांग्रेस का कोई उल्लेख ही नहीं किया, क्योंकि इसका विश्वास था कि पुरातन स्मृति से उन्हे समर्थन प्राप्त नहीं हो सकेगा। कांग्रेस के इन दोनों अधिवेशनों में अनेक समानताएँ हैं। यदि राष्ट्रपति विल्सन अतीत की भूलों की ओर ध्यान देता, तो उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती। वियाना कांग्रेस (१) के विषय मे सचिव जेन्टस का कथन इसमें भी प्रयुक्त होता है, क्योंकि युद्ध की समाप्ति से मित्रराष्ट्रों में संधि-शर्तों के सम्बन्ध में समन्वय नहीं था। प्रत्येक राष्ट्र की आशायें और आकांक्षायें व विभिन्न विभिन्न कार्यक्रम थे। दिसम्बर १९१६ और जनवरी १९१७ में मित्रराष्ट्रों ने शान्ति की शर्तों का प्रचार किया था।

---

१. वियाना कांग्रेस पृष्ट १८० मे देखें।

सोवियत राष्ट्र ने विभिन्न राष्ट्रो की गुप्त संधियों को भी प्रचारित किया था—जैसा जापान को 'शान्टुग, इटली को पराधीन अंश, रसिया को कान्स्टेन्टिनोपल, फ्रांस को आल्सस्-लोरेन, अरब मे इंग्लैण्ड और फ्रांस का आधिपत्य पूर्व-पत्र में ही निर्णीत हो चुके थे।युक्त राष्ट्रीय हस्तक्षेप से जॉर अलेग्जेण्डर के समान विल्सन ने भी आदर्शवादी सिद्धान्त से शत्रु-प्रदेशों के पुनर्गठन की योजना बनाई—जिसका समर्थन प्रमुख राष्ट्रों ने किया था। सार्वजनिक घोषणा द्वारा राष्ट्रपति ने निष्पक्ष, न्यायपूर्ण और स्थायी शान्ति के लिए प्रचार किया। विल्सन ने कहा, "जनता की इच्छा और मानवीय संगठित सिद्धान्त के आधार पर हम एक नियम राज्य का निर्माण चाहते है। न्याय और अन्याय, दोषी और निर्दोष पर हम निष्पक्ष विचार करना चाहते हैं"। इन्हीं भावनाओं के आधार पर इसने अपने कार्य-क्रम को निम्न चतुर्दश केन्द्र-बिन्दुओं में विभाजित किया:—(१) संधि की शर्तें स्पष्ट होंगी, (२) नौ नयन की स्वाधीनता, युद्ध और शान्ति के समय, अन्तर्राष्ट्रीय समन्वय के आधार पर सब राष्ट्रों को प्राप्त होगी, (३) आर्थिक प्रतिबन्धों का अवसान, (४) अस्त्र शस्त्र का नियंत्रण, उपनिवेशो का निष्पक्ष वितरण, (६) रूस से सैन्य अपसारण, (७) बेल्जियम की सर्वसत्ता का पुनस्थापन, (८) फ्रांसीय राज्य से विदेशी सैन्य का अपसारण और आल्सस् प्रदेश का पुनराधिकार, (९) राष्ट्रीयता के आधार पर इटली के सीमान्त का संशोधन, (१०) आस्ट्रिया-हंगेरी के स्वायत्त शासन की व्यवस्था, (११) रूमानिया, सर्विया और माण्टिनिग्रो से सैन्य अपसारण, सर्विया का समुद्र तक विस्तार एवं बल्कान राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध का निर्णय, (१२) तुर्की-साम्राज्य की सीमान्त रक्षा व्यवस्था एवं दार्दानेलिश में मुक्त यातायात का प्रबन्ध, (१३) स्वाधीन पैलैण्ड का अन्तर्रा-

ष्ट्रीय नियन्त्रण के आधार पर पुनस्स्थापन, (१४) शान्ति और-मैत्री के लिये राष्ट्र संघ की स्थापना।

इस कार्यक्रम को मित्रराष्ट्रो के प्रमुख राजनीतिज्ञो ने स्वीकृत किया और इसी के आधार पर शान्ति की व्यवस्था हुई।

७—सम्मेलन की समस्यायें

५८ समितियों के १६०० अधिवेशनों द्वारा सम्मेलन ने निम्न समस्याओं का समाधान किया—(१) राष्ट्रसंघ का प्रतिश्रव, (२) फ्रांस की सुरक्षा का प्रश्न, (३) सार उपत्यका की कोयले की खान की समस्या, (४) क्षति पूर्ति का निर्णय (५) पोलैण्ड का पुनस्स्थापन, (६) इटली और जुगोल्साविया के मध्य फ्यूम का संघर्ष, (७) जापान का शान्टुंग अधिकार, (८) आदिष्ट योजना द्वारा राष्ट्र संघ के निर्देश में जर्मनी के उपनिवेशों का विभाजन (९) कैजर का विचार। यह संघर्ष मतभेद होने से बढ़ गया था। विशेषतः इटली और जुगोस्लाविया में फ्यूम, चीन और जापान में शान्टुंग, फ्रांस और अमेरिका में सुरक्षा प्रश्न इटली ने थोड़े दिन के लिए सम्मेलन को त्याग किया और जापान ने संधि मे हस्ताक्षर नहीं करने की धमकी दी। अन्त में जर्मनी का प्रतिनिधि मंडल ब्रकडार्फ-राण्टजाऊ, जर्मन विदेश मंत्री, के नेतृत्त्व में २९ अप्रेल को पेरिस पहुँचे—जिन्हें पुलिस द्वारा घेर कर रखा गया व किसी से वार्तालाप नहीं करने दी। ७ मई को ३०० पृष्ठ का संधिपत्र उनको दिया गया व कहा गया कि तीन सप्ताह में लिखित रूप से इस पर अपने विचार व्यक्त करें। २९ मई को जर्मन का प्रति प्रस्ताव संमेलन के अधिकारियों के समक्ष पहुंचा जिसमे यह प्रकट किया गया कि "क्रांति के पश्चात् जर्मनी में स्वैरतंत्र का अन्त और प्रजातन्त्रवाद की स्थापना हुई है एवं नवीन जर्मनी राष्ट्र संघ में समानाधिकार

प्राप्त कर सदस्य बनना चाहता है। आल्सस्-लोरेन का भविष्य निर्णय निष्पक्ष अधिकारी के निर्देश में सार्वजनिक मत ग्रहण द्वारा होगा। उच्च साइलीशिया यदि जर्मनी के आधीन रहे तो जर्मनी क्षतिपूर्ति की प्रचेष्टा करेगा।" डान्जिग और मेमेल को जर्मनी से लेने के प्रस्ताव की निन्दा की गई और कहा गया कि प्रजातन्त्र जर्मनी पर ये कठोर नियन्त्रण अन्याय हैं। १६ जून को इसके उत्तर में मित्र राष्ट्र ने पोलैण्ड—सीमान्त में जर्मनी को सामान्य सुविधाएँ दीं, पर यह घोषणा की कि "यदि ५ दिन के मध्य जर्मनी इस संधि पर हस्ताक्षर नही करें तो रणविराम का अन्त हो जायगा और युद्ध पुनः प्रारंभ हो जायेगा।" इस घोषणा के प्रतिवाद में सीडेमैन (जर्मन प्रधानमंत्री) और राण्टजाऊ ने पद त्याग किया और जून २१ को गस्ताव बयुर जर्मनी का प्रधान मत्री बना। मित्रराष्ट्र ने २३ जून सोमवार को सायं ७ बजे तक हस्ताक्षर—अवधिको बढ़ा दिया। जर्मन परराष्ट्र मंत्री हार्मन मूलर और उपनिवेश मंत्री वेल संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए पेरिस में आये व घोषणा की कि "शक्ति के प्रयोग से ही हम संधि-पर हस्ताक्षर कर रहे हैं, परन्तु ऐसी अन्यायपूर्ण संधि न हुई व न होगी।" २८ जून १९१९ में आस्ट्रिया—राजकुमार के हत्याकांड के पंचवर्षीय दिवस में भरसालिस के सुन्दर प्रासाद में मूलर और वेल ने सर्व प्रथम समग्र मित्रराष्ट्रो के समक्ष संधि पर हस्ताक्षर किये* अन्य प्रतिनिधियो ने अपने अपने राष्ट्रों के प्रथम अक्षर के क्रमानुसार हस्ताक्षर किये। कार्नल हाउस् ने उसी दिन अपनी दिनचर्या-(टिप्पणी) में लिखा-"व्यक्ति गत रूप से हम इससे पूर्ण विपरीत संधि चाहते थे।" शक्तिकी व्यवस्था ५ विभिन्न सन्धियों

---

* चीन ने जापान के विरुद्ध प्रतिवाद के लिए संधि मे हस्ताक्षर नहीं किया था।

द्वारा हुई थी। प्रथम जर्मनी के साथ भरसोलिस संधि (२८ जून १११६); द्वितीय आस्ट्रिया के साथ सैन्ट जर्मेन सन्धि (१० सितम्बर १६१६); तृतीय बुल्गेरिया के साथ निउली संधि (२० नवम्बर १६१६); चतुर्थ हंगेरी के साथ ट्रियानन संधि (४ जून १६२०); पंचम तुर्की के साथ सेव्रेस की संधि (१० अगस्त १६२०) अन्तिम सन्धि को राष्ट्रवादी तुर्की ने अस्वीकृत किया था और तीन वर्ष के संघर्ष के पश्चात् ६ जुलाई १६२३ मे लाउसानी की संधि ने इन शर्तों को संशोधित किया।

(ख) भरसालिस की सन्धि

इतिहास में भरसालिस की संधि सबसे विस्तृत है—जिसमें ४४० आधार-नियम, १५ अध्याय और २५० प्रकाशित पृष्ठ थे। प्रथम अंश राष्ट्रसंघ का प्रतिश्रव था—जिसकी २४ धाराओं द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति, सुरक्षा और सहकारिता की व्यवस्था थी। प्रारम्भ में राष्ट्र संघ के ३२ राष्ट्र सम्मिलित थे और विशेष आमन्त्रण से वाद में १३ राष्ट्र और मिल गए थे। राष्ट्र संघ के विशद विवरण का हम पृथक् रूप में अध्ययन करेंगे।

१—भूमि सम्बन्धी शर्तें

जर्मनी ने फ्रांस को आल्सस्-लोरेन, वेल्जियम को मोरेस्नेट, यूपेन एवं माल्मेडी, मित्रराष्ट्र को वाल्टिक सागर के बन्दरगाह मेमेल, * पोलैण्ड को पोजेन, पश्चिम प्रशिया, उच्च साइलीशिया एवं पूर्व प्रशिया के एकांश (जनमत की इच्छा के आधार पर) दिया। अन्तर्राष्ट्रीय आयोग के निरीक्षण में जर्मन

---

* ५ वष के पश्चात् सामान्य संघर्ष के परिणाम से मेमेल लिथुयानिया प्रदेश का स्वाधीन वन्दरगाह घोषित किया गया था।

नारवे
स्वीडेन
फिन्लैंड
उत्तरी सागर
इंगलैंड
जर्मनी
सोवियत रसिया
पोलैंड
फ्रान्स
स्विटजरलैंड
आस्ट्रिया
हंगेरी
इटली
स्पेन
टर्की
बुल्गेरिया
जर्मनी की क्षति
१९१९ में
यूरोप

१९१९ में यूरोप

के प्रधान जिला सार की उपत्यका को रखा गया। ...-सार के कोयले की खानों का लाभ उठायेगा एवं १५ वर्ष कर... र जनमत संग्रह द्वारा सार का भविष्य-निर्णय होगा। सेतु...: सीमान्त में स्क्लेसविग का भविष्य भी जनमत द्वारा निर्णीत होगा। डाञ्जिक को राष्ट्र संघ के आधीन में "स्वाधीन नगर" घोषित किया गया। संपूर्ण औपनिवेशिक साम्राज्य-चीन, श्याम, लाइवीरिया मरक्को, मिश्र और तुर्की—जर्मनी ने राष्ट्र-संघ को समर्पित किया। आदिष्ट प्रणाली द्वारा संघ ने विजेताओं को-फ्रांस को केमेरून और तोगोलैण्ड, इंगलैण्ड को जर्मन पूर्व अफ्रीका, जापान को प्रशान्त सागर के महाद्वीप—बांट दिये। बेल्जियम, पोलैण्ड, चैकोस्लोवाकिया, आस्ट्रिया व जुगोस्लाविया की स्वाधीनता को जर्मनी ने स्वीकृत किया। लक्सीम्बर्ग भी जर्मन आगम संघ से मुक्त हो गया।

२—सामरिक शर्तें

मार्च १६२० तक जर्मनी की सेना की संख्या एक लाख तक ही रहेगी। अनिवार्य सैनिक प्रवेश निषिद्ध होगा, राइन के पूर्व तट के ३० मील क्षेत्र में असैनीकरण हो जायगा। अस्त्र शस्त्रों के संचय पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया। जर्मन के उच्च सैनिक पदों का अवसान हो गया। प्रतिवर्ष ५ प्रतिशत से अधिक सेना को पदच्युत नहीं कर सकेगा। जर्मन नौ सेना में केवल ६ युद्ध जहाज, ६ साधारण जहाज, १२ ध्वंसकारी जहाज और १२ पनडुबियां-कुल १५ हजार टन रह सकेंगा। नवीन जहाजों का निर्माण नहीं हो सकेगा, कील नहर को समग्र राष्ट्रों के लिए खोल दिया जायेगा। बाल्टिक समुद्र के पास दुर्ग नहीं बनाया जा सकेगा और होलिगोलैण्ड के विशेष सामरिक प्रबंधों को ध्वंस करना पड़ेगा। सम्राट् कैजर द्वितीय

को महा युद्ध के दायी के अभियुक्त के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना होगा।

३—आर्थिक शर्तें

युद्ध के दायी जर्मनी को सामरिक, असामरिक,....रिको (मित्र राष्ट्रों के) की क्षत्रि पूर्ति के लिए बाध्य किया गया—जिसकी मात्रा एक अन्तर्राष्ट्रीय आयोग निर्धारित करेगा। १५ अरब रुपया १ मई १९२१ तक देना होगा, शेष मात्रा ३० वर्ष में प्रतिवर्ष १ अरब ५० करोड़ के हिसाब से चुकानी पड़ेगी। जर्मनी को १६ सौ टन से अतिरिक्त जहाजों का मित्रराष्ट्रों को समर्पण करना होगा एवं उसके आर्थिक क्षेत्रों से ध्वस्त फ्रांसीय प्रदेशों की क्षतिपूर्ति की जायगी। ७० लाख टन कोयला प्रतिवर्ष फ्रांसको, ८० लाख प्रतिवर्ष वेल्जियम को, ४५ लाख टन प्रतिवर्ष इटली को अनवरत १० वर्ष तक देना होगा। युद्ध काल में वेल्जियम और फ्रांस से जो कुछ भी चित्र (विशेषतः लुवैन विश्वविद्यालय की सामग्री) विजय पताका आदि लिये गये थे—उनका प्रत्यावर्तन किया गया।

संक्षेप में जर्मनी को एक अष्टमांश (२५ हजार वर्ग मील) क्षेत्र और ६० लाख जन संख्या से वंचित किया गया। कच्चे माल—तेल, लोहा, कोयला, शीशा, खाद्य-सामग्री आदि की प्रभूत क्षति हुई। औद्योगिक केन्द्र छिन्न भिन्न हो गये। ऐतिहासिक वैन्स ने कहा है—"लोहा का ६५%, कोयला का ४५%, शीशे का ५७%, कृषि उत्पादन का १५% एवं औद्योगिक सामग्री की १० प्रतिशत हानि हुई।" उपनिवेशों में जर्मनी १० लाख वर्ग मील और एक करोड़ वीस लाख अधिवासियों से वंचित हो गया जिनमें रबड़, तैल, सण आदि प्रचुर मात्रा में थे। व्यवसायी जहाज ५५ लाख टन से ४ लाख कर दिया गया। इसके साथ साथ रूस की ब्रेस्ट लिटाव्स्क की संधि और रूमा-

निया की बुखारेष्ट की संधि को रद्द कर मित्रराष्ट्रों को संपूर्ण क्षमता प्रदान की गई। उपर्युक्त शर्तों के पालन के लिए बाध्य करने के उद्देश्य से मित्रराष्ट्रों ने राइन नदी के वाम तट और सेतुओं पर सैनिक अधिकार किया एवं सम्पूर्ण क्षतिपूर्ति तक मित्र सेना जर्मनी में रखने का निश्चय किया

ग—सैन्ट जर्मन संधि

आस्ट्रिया के साथ १० सितम्बर १९१९ मे मित्रराष्ट्र ने इस संधि पर हस्ताक्षर किये-जिसके द्वारा हंगेरी, चैकोस्लोवाकिया, पोलैण्ड और जुगोस्लाविया की स्वाधीनता को स्वीकृत किया गया। इटली को आस्ट्रिया ने दक्षिण टायराल, ट्रेन्टिनो, ट्रीस्ट, इस्त्रिया, चेर्सो और लुशीन के द्वीप दिये-जुगोस्लाविया को बोस्निया, हरजीगोविना डाल्मोशिया के समुद्र तट और द्वीप—समूह दिया। चैकोस्लोवाकिया को बोहेमिया, मुराविया, आस्ट्रिया अधिकृत साइलीशिया और निम्न आस्ट्रिया के प्रदेश दिये। पोलैण्ड को गैलोशिया और रूमानिया को बुकोविना दिया गया। संक्षेप में आस्ट्रिया को छिन्न भिन्न कर इसकी जन संख्या को ३ करोड़ १० लाख से ६० लाख बना दिया गया। जर्मनी से आस्ट्रिया को पृथक् कर गणतंत्र घोषित कर दिया गया। आस्ट्रिया की सेना की संख्या ३० हजार कर दी गई और ३० वर्ष की सीमा में अन्तर्राष्ट्रीय आयोग द्वारा निर्धारित क्षतिपूर्ति के लिए बाध्य किया गया।

घ—बुल्गेरिया के साथ निऊली सन्धि

२७ नवम्बर १९१९ को मित्रराष्ट्र ने बुल्गेरिया के साथ संधि की। परिणामतः यूनान को थ्रेस, सर्बिया को मैसिडोनिया व जुगोस्लाविया को स्ट्रूमनिट्सा मिला। इसके अतिरिक्त रूमानिया को दब्रूद्जा, ३७ वर्ष में नौ करोड़ क्षतिपूर्ति, २० हजार सेना व ३३ हजार बन्दूकें नियत की गई।

ङ–हंगेरी के साथ ट्रियानन सन्धि

४ जून १६२० को मित्रराष्ट्र ने हंगेरी के साथ उपर्युक्त संधि स्वीकृत की। इससे रूमानिया को ट्रान्सिल्वेनिया और बनाट का अर्द्धांश, जुगोस्लाविया को क्रुयाशिया और बनाट के अर्द्धांश, चैकोस्लोवेकिया को स्लोवाक प्रदेश देना पड़ा। जो हंगेरी पहले १ लाख २५ हजार वर्ग मील क्षेत्र और २ करोड़ १० लाख जन संख्या शाली था, वह अब ३६ हजार वर्ग मील और ८० लाख जन संख्या युक्त रह गया। इसकी सेना भी ३५ हजार तक सीमित की गई।

(च) तुर्की के साथ सेव्रेस की सन्धि

१० अगस्त १६२० में मित्रराष्ट्र ने सुलतान, के प्रतिनिधि के साथ उपर्युक्त सन्धि की–जिसके द्वारा तुर्की, मिश्र, सूडान, मरक्को, ट्रिपोलिटेनिया, ट्यूनीशिया और साइप्रश से वंचित हो गया। ऐरेबिया, पैलेस्टाइन, मैसोपोटेमिया और सीरिया स्वतंत्र हो गये। तुर्की के मध्य भाग में विभिन्न प्रभाव-क्षेत्र बनाये गये–जिनके अनुसार इटली को आनाटोलिया, रोड्स, और डोडेकनीज द्वीप; यूनान को एड्रियन पोल. गैलीपली प्राय द्वीप, व स्मार्ना; फ्रांस को साइलीशिया; इंग्लैण्ड को मैसोपोटेमिया, पैलेस्टाइन जार्डन व सीरिया दिया गया। दार्डानोलिस और वाष्फरस को अन्तर्राष्ट्रीय समिति के आधीन रखा गया। संक्षेप में तुर्की का साम्राज्य केवल कांस्टेन्टिनोपल नगर और उसके आस पास तक ही सीमित रह गया। सुल्तान मुहम्मद षष्ठ के प्रतिनिधि ने इस संधि पर हस्ताक्षर किये थे, परन्तु तुर्की की अंकारा नगर की राष्ट्रीय परिषद् ने जन नायक मुस्तफा कामल पाशा के नेतृत्व में इस असम्मान पूर्ण संधि को अमान्य किया और त्रिराष्ट्रों के साथ युद्ध घोषित किया। ६ जुलाई १६२३ को मित्र-

राष्ट्र ने सेव्रेस की सन्धि को अमान्य कर तुर्की के साथ लउ-साने की सन्धि स्वीकृत की—जिससे तुर्की केवल सीरिया, पैले-स्टाइन, मैसोपोटेमिया और मिश्र के आधिपत्य से वंचित हुआ और किसी प्रकार की क्षति इसे नही हुई। विदेशियो के आन्तरिक हस्तक्षेप से रहित होकर तुर्की पुनः एक स्वाधीन गण-तंत्र राष्ट्र बन गया।

३—महायुद्ध के परिणाम

महायुद्ध के महत्व पूर्ण परिणाम यह थे कि आस्ट्रिया, तुर्की रूस और जर्मन—साम्राज्य का खण्डन और स्वैरतन्त्र का अव-सान हो गया। छै नवीन राष्ट्रो की स्थापना हुई-पोलैण्ड, चैको स्लोवाकिया, लिथुयानिया, लैटविया, ऐस्थोनिया और फिन-लैण्ड। इन छै पुरातन राष्ट्रो को संगठित और विस्तृत किया गया-सर्विया, (जुगोस्लाविया मे लीन हुआ) यूनान, रूमा-निया, इटली, फ्रांस और डेन्मार्क। १६१४ में यूरोप में २१ सर्व-सत्तात्मक राष्ट्र थे—जिनके स्थान पर अब २७राष्ट्र हो गए। साम्य-वादी रूस ने भी राष्ट्रीयता के सिद्धान्त को स्वीकृत किया। गण-तन्त्र वाद और स्वायत्त-शासन का आन्दोलन नवीन रूप मे विशेषतः इंग्लैण्ड के उपनिवेशो में—दिखाई पड़ा। दीर्घकालीन संग्राम के पश्चात् स्वाधीनता—प्रेमी आयरलैण्ड निवासियों ने १६२१ में लंडन की सन्धि द्वारा गणतन्त्र स्थापित किया और डी मैलेरा को प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित किया। इसी समय भारतवर्ष मे भी राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी की प्रेरणा से असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ एवं १६१६ के नवीन विधान का पूर्णतया विरोध किया गया। मिश्र और पूर्व अफ्रीका मे भी राष्ट्रीयता के आन्दोलन का पूर्ण प्रसार हुआ। प्रत्येक राष्ट्र मे अल्प संख्यक जनता के संरक्षण के लिए शिक्षा,

भाषा, धर्म और संस्कृति की समानता की विशेष व्यवस्था राष्ट्र संघ के निरीक्षण में की गई।

लोकसत्तात्मक गणतंत्र का सम्पूर्ण स्थानों पर प्रचार हुआ और रूस के अतिरिक्त सभी स्थानों पर प्रजातन्त्रवादी शासन स्थापित हो गया। १९१४ में केवल ६ महान् शक्ति राजसत्तावादी थी। १९१९ में इटली, इंग्लैण्ड और जापान ये तीन ही रह गये। यूरोप के हैब्सवर्ग, रोमानाव, और होहैनजोलैरन वंशों का पतन हुआ। १९३९ में यूरोप में १६ गणतन्त्र थे। आस्ट्रिया, चैकोस्लोवाकिया, जर्मनी, जुगोस्लाविया, रूमानिया, वेल्जियम, फिनलैण्ड, एस्थोनिया, लैटविया, लिथुयानिया, जापान आदि सभी स्थानों पर प्रजातन्त्रवाद की भित्ति पर नवीन विधान निर्मित हुए। स्त्रियों को मताधिकार दिया गया। थोड़े समय बाद नवीन शासन की अस्थायिता व जटिल अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान में अशक्तता होने से प्रजातन्त्र पर एक अविश्वास का संचार हुआ—जिसके परिणाम से अधिनायकों का अभ्युदय हुआ—जिनने जनता को रक्षा का आश्वासन दिया। आर्थिक व राजनैतिक परीक्षणों के लिए तीन—बोल्शेविकवाद, फाशिस्टवाद, नाजीवाद—आन्दोलनों की सृष्टि हुई—जिनका विशेष विवरण हम आगे प्राप्त करेंगे। युद्ध के पूर्व में केवल छ बड़े बड़े राष्ट्र ही अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं में भाग लेते थे, परन्तु अब पोलैण्ड जैसे छोटे छोटे राष्ट्र भी इस दिशा में बढ़े। आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को पेरिस की शान्ति-परिषद् ने व्यापक रूप से व्यवहृत किया, परन्तु इससे मध्य यूरोप के मानचित्र में पूर्ण परिवर्तन हुआ एवं राजनैतिक व आर्थिक अन्तर्राष्ट्रीय संबन्ध जटिल हो गये। कूटनैतिक सम्बन्ध और आर्थिक द्वन्द्व यूरोप में पुनः व्यापक हो गये।

शान्ति की स्थायिता के उद्देश्य से राष्ट्र संघ और अन्तर्राष्ट्रीय

न्यायालय की स्थापना सार्वदेशिक समस्याओं के समाधान के लिए की गई, परन्तु यह सफल न हो सका। आर्थिक क्षति के परिणाम से खाद्य सामग्री के अभाव और श्रमिक-वर्ग मे असन्तोष आदि का प्रसार हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में अब इनका स्थान महत्त्वपूर्ण हो गया। सामयिक दृष्टि से धर्म का भी पुनरुत्थान हुआ, विशेषतः आध्यात्मिकता और योग जनप्रिय हुआ तथा एक पूर्ण संतोष, शांति, सहिष्णुता व उदारतासे नवीन ससार का दर्शन हुआ। अवरुद्ध शिक्षा का प्रसार शेष धन से किया गया और शिक्षा को जीवन और शांति के लिए अनिवार्य माना गया। चीन, जर्मनी, इटली और रूस के युवक युवतियां राजनीति व अर्थ नीति मे गंभीर रूप से भाग लेने लगे एवं उनने संगठित रूप से युवक आन्दोलन को जन्म दिया—जिसने सैनिक शिक्षा को पूर्णतः संगठनके उद्देश्य से प्राधान्य दिया। अन्तर्राष्ट्रीय समस्या के समाधान के लिए राष्ट्र-संघ का नियमित अधिवेशन होने लगा। अमेरिका के युक्त राष्ट्र ने युद्ध और शांति वार्तालापो में प्रमुख भाग लेकर प्रचुर संमान प्राप्त किया। दक्षिण अमेरिका के भी छोटे छोटे राष्ट्र सब से पूर्व राष्ट्र-संघ के सदस्य हुये। युद्ध ने विज्ञान व उद्योग के प्रसार के लिए विस्तृत क्षेत्र तैयार किया। औषधियां, नौ जहाज, वायुयान, पैट्रोल आदि के आविष्कारो मे विशेष प्रगति हुई। निरस्त्रीकरण का आन्दोलन यद्यपि वाचिकतया पूर्ण विस्तृत हुआ, किन्तु यह स्थायी न हो सका। चारों ओर पुनः आतंक दिखाई देने लगा और सर्वत्र शस्त्र प्रतियोगिताएँ प्रारंभ हो गई। युद्ध ने आर्थिक भित्ति को इतना हिला दिया था कि संपूर्ण विश्व के लिए नवीन आर्थिक संगठन अनिवार्य हो गया था। १६२६ तक एक ऐसा विश्वव्यापी संकट आया कि तीन करोड़ व्यक्ति बेकार हो गये, विभिन्न राष्ट्र दीवालिया हो गये एवं अशांति की सृष्टि हुई।

१९३९ में यह स्पष्ट प्रतीत हुआ कि गत बीस वर्षों का समय केवल एक रण-विराम का काल था।

४—जर्मनी की असफलता

महा युद्ध के प्रारंभ मे जर्मनी के पास सामरिक शक्ति, आर्थिक साधन और योग्य सैनिक थे। इस दृष्टि से हम विश्लेषण करने पर इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते है कि द्रुतगति से आक्रमण करने पर जर्मनी विजयी हो सकता था। मित्रराष्ट्र के प्रतिरोध ने जर्मन—अभीष्ट को सफल नहीं होने दिया और युद्ध केवल धैर्य का परीक्षण रह गया। इस प्रकार के संघर्ष में जर्मनी का पतन गणित के समान अटल था। युद्ध की प्रभूत क्षति से जर्मनी की मानवीय शक्ति दुर्बल हो गई। एक उच्च-पदस्थ अंग्रेज सेनानायक ने लिखा है—"१९१८ में जर्मन सामरिक शक्ति का पतन जर्मन—सेना की क्रमागत क्षति एवं सुरक्षित सेना के अभाव के कारण हुआ"। इंग्लैण्ड के सामुद्रिक प्रभुत्व से जर्मनी का आर्थिक अवरोध भी हो गया। जर्मन सेनानायक लुडेन्डार्फ ने स्वीकार किया था कि" यदि युद्ध अधिक दिन स्थायी होता, तो हमारी पराजय सुनिश्चित थी। आर्थिक दृष्टि से हमारी परिस्थिति अत्यन्त संकटमय थी—जिसके परिणाम से जर्मनी में खाद्याभाव और जनता में मानसिक व नैतिक क्षीणता का उदय हुआ"। प्रतिरोध की क्षमता शारीरिक और मानसिक ह्रास से क्रमशः नष्ट हो गई। युद्ध के अन्तिम वर्ष बर्लिन में प्रतिसप्ताह प्रतिव्यक्ति को केवल दो सेर रोटी, तीन सेर आलू, एक पाव मांस, (सर्वदा नहीं) एक पाव चीनी, सामान्य मक्खन और मुरब्बा मिलता था। वियाना की परिस्थिति इससे भी अधिक संकटापन्न थी। इन अभावों ने जनता को सर्वशः हीन बना दिया। इस विषय में हिटलर ने अपने जीवन—चरित में पूर्ण विश्लेषण किया है। मित्र सेना ने जर्मनी

को पराजित करने के साथ साथ जर्मनी में अशान्ति और अराजकता की उत्पत्ति की एवं स्वैरतन्त्र का पतन होकर सामाजिक प्रजातन्त्र की स्थापना हुई। रसिया का विद्रोह भी जर्मनी के पतन का प्रमुख कारण बना। राजनैतिक धारणा सीमित नहीं रहती। बोल्शेविकवाद ने जर्मनी में प्रचार पाकर विद्रोह का संचार किया। अन्त में अमेरिका के भौतिक साधन और हस्तक्षेप ने जर्मन जनता के मानसिक धैर्य का अवसान किया। रूस का त्याग और फ्रांस का असीम साहस भी जर्मनी की पराजय के प्रमुख स्तम्भ थे।

५—समीक्षा

पेरिस के शान्ति—सम्मेलन मे दो विभिन्न सिद्धान्तों का संघर्ष था-एक आदर्श सिद्धान्त, निष्पक्ष न्याय और वास्तविकता का था, दूसरा प्रायोगिक सिद्धान्त, शक्ति संतुलन, संरक्षण, भूमि और आर्थिक क्षति पूर्ति था। परिणामतः विजेताओं के अन्तिम सिद्धान्त ही की विजय हुई। प्रथम को जहाँ तहाँ केवल शोभा की दृष्टि से प्रयुक्त किया गया। आदर्शवादी राष्ट्रपति विल्सन कूटनैतिक वस्तुवादी क्लीमेन्सो और चतुर लायड जार्ज के समक्ष पराजित हुआ। अन्त में शान्ति-परिषद् वियाना कांग्रेस के समान-एक ही सिद्धान्त द्वारा प्रभावित हुई—जिसमे विजयी को पुरस्कृत और शांति को सुरक्षित करना ही एक मात्र लक्ष्य था। प्रो. बैन का कथन है—"दोनों संमेलनो मे (वियाना और पेरिस) केवल इतना ही अन्तर था कि वियाना में संतुलनशक्ति और पेरिस में राष्ट्रीयता के सिद्धान्त को प्राधान्य दिया गया, परन्तु पवित्र मैत्री और राष्ट्र संघ की स्थापना इन दोनो का एक अद्भुत सादृश्य था। दोनो स्थानों पर पराजित की हानि और विजेता के लाभ का पूर्ण ध्यान रखा गया था।"

पेरिस की संधि के समर्थक और प्रचुर निन्दक भी हैं।

असंख्य जटिल समस्याएं व पारस्परिक स्वार्थों का संघर्ष—जैसे इटली के प्रतिनिधि का फ्यूम की समस्या में संमेलन त्याग, जापान का चीन की समस्या में असहयोग—इतने समृद्ध रूपों में परिषद् के समक्ष थे—जिनका समन्वय असंभव नहीं तो कठिन अवश्य था। राष्ट्रपति विल्सन की धारणा मानव जाति को संगठित कर नियम के राज्य की सृष्टि करनी थी। प्रो. वेल्स के शब्दों मे राष्ट्रपति के इस आन्तरिक विश्वास ने संसार को अनेक वर्षों तक चमत्कृत कर दिया। डा० डोलन कहता है—"जब राष्ट्रपति यूरोप पहुँचा, तो यूरोप-कुम्हार के पास खिलौना तैयार करने के लिए मिट्टी के समान-प्रस्तुत था। इतिहास में समग्र राष्ट्रों ने किसी भी एक व्यक्ति का इतनी मात्रा मे अनुकरण नहीं किया—जो इस प्रकार के विश्व का निर्माण करना चाहता था—जिसमे न युद्ध हो, न अवरोध न पारस्परिक संघर्ष एवं द्वन्द्व ही हो"।

१६१६ और १६२३ की संधियों का जब हम विश्लेषण करते हैं, तो देखते हैं कि प्रत्येक राष्ट्र ने अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को ही प्राधान्य दिया था। जनता के आन्दोलन और समाचार-पत्रों के प्रचार ने भी समय समय पर कार्यक्रम में बाधायें पहुंचाई। भरसालिस की सन्धि अनेक राष्ट्रों द्वारा निर्मित थी—जिससे इसे राजनैतिक, आर्थिक, सामरिक, नौ आदि विभिन्न विभागों में विभाजित किया गया। जर्मनी को पूर्णांशः ध्वस्त करना ही इनका प्रमुख ध्येय था। अनिर्दिष्ट आर्थिक धाराओं ने जर्मनी को और भी कुचल दिया। लैन्सिंग के शब्दों में "यह संधि अत्यन्त कठोर और निन्दनीय थी—जिसका क्रियान्वयन असम्भव था"। ब्रुलिट के प्रतिपादन से अमेरिका ही जर्मनी को खंडित, ध्वस्त और निर्यातित करने में अग्रणी था और सन्धि के प्रतिवाद मे ही इसने प्रतिनिधित्व से परित्याग किया था।

जर्मन-प्रधान मन्त्री बेथमैन हालविग ने अपने स्मृति-पत्र में लिखा है—"संसार मे पराजित को दासत्व की शृङ्खलाओं में जकड़ने मे इस संधि से भयङ्कर कोई भी प्रयोग नहीं किया गया।" जर्मनी के एक प्रमुख पत्र ने उस समय लिखा था—"यह सन्धि जर्मन राष्ट्र की समाधि थी। इतिहास मे ऐसी कोई हत्या शिष्टता और सभ्यता, परन्तु इतनी कुटिल समानता के आधार पर नहीं की गई थी"। राष्ट्रीयता के सिद्धान्त को भी स्वार्थीय दृष्टि से प्रयुक्त किया गया। उदाहरण रूप से डाञ्जिग को—जहां कि जर्मन जनता का प्राधान्य था—एक पृथक् नगर घोषित किया गया एवं पोलैण्ड को व्यावसायिक सुविधायें दी गईं। आत्म-निर्णय के सिद्धान्त का भी खण्डन किया गया—जैसा कि आस्ट्रिया के जर्मन निवासियों को जर्मनी से पृथक् किया गया व रूमानिया में आस्ट्रिया जनता को मिला दिया गया।

प्रो० वैल्स ने सम्मेलन को "एक पुरातन कूटनीतिक षड्यन्त्र कहा है। यदि वियाना—कांग्रेस मन्त्री और राजाओं का जम-घट था, तो पेरिस की शांति-परिषद् प्रधान मन्त्रियों की अधि-नायकता थी"। अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं से ये परिचित नहीं थे और न इनने विशेषज्ञों पर ही यह भार डालने का यत्न किया। सम्मेलन के कार्यक्रम से यह भी प्रतीत होता है कि ये सच्चे दिल से शान्ति के प्रयासी नहीं था। आरलैण्डो ने कहा था—"राष्ट्रसंघ में मेरी आस्था है, परन्तु फ्यूम की समस्या का समा-धान पहले करना चाहिये"। ऐसे वातावरण में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और समन्वय एक कल्पना थी। लिप्सन ने सत्य ही कहा है—"जर्मनी की सन्धि—शर्तें इतनी अनुचित और अन्यायपूर्ण थीं—जिनसे जर्मनी में एक प्रतिशोध की भावना का उद्भव हुआ"। प्रो० कार का कथन है—"भरसालिस की सन्धि एक

आदिष्ट सन्धि थी और जर्मनी के लिए दासता की शृङ्खला थी"। एक जर्मन प्रतिनिधि ने सम्मेलन में कहा था—"हम जानते हैं-- सन्धि की प्रत्येक शर्त जर्मनी के प्रति घृणा की अभिव्यक्ति है"। विल्सन के सिद्धान्तों के अधिकांश राष्ट्रसंघ की व्यवस्था को छोड़ कर इसमें प्रयुक्त नहीं किये गये थे।

मित्रराष्ट्रों को ही सर्वथा दोषी ठहराना न्याय नहीं है, क्योंकि समस्या की जटिलता पर हम पहले ही प्रकाश डाल चुके है। एक शास्त्रीय निष्पक्ष निर्णय का सर्व सम्मति से मान्य करना असम्भव था। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि जर्मनीके ध्वंसात्मक आक्रमण और अत्याचारों ने त्रस्त-जनता में किस प्रकार प्रतिशोध भावना को जन्म दिया था। शान्ति की स्थापना ऐसे समय की गई थी—जब कि मित्रराष्ट्र अत्यन्त संकट में थे और जर्मनी के कृत्य उनकी आँखों के सामने नाच रहे थे। भूमि-विभाजन में जाति और राष्ट्रीयता के सिद्धान्त ही को प्राधान्य दिया गया था। १९१४ से १९१९ तक का यूरोपीय मानचित्र निष्पक्ष न्याय का आंशिक निदर्शन था। जो समालोचक जर्मनी का समर्थन करते हैं, उन्हे ब्रेस्ट—लिटाव्स्क की संधि पर ध्यान देना चाहिए। जनरल स्माट्स ने सत्य ही कहा— "हम इस संधि पर हस्ताक्षर कर रहे है, इसलिए नहीं कि यह संतोषजनक है, परन्तु युद्ध की समाप्ति अनिवार्य है। ध्वंसात्मक भावना के अवसान से ही वास्तविक शान्ति की स्थापना होगी। हमारे अंतःकरण के परिवर्तन से ही मानवता और दया का संचार हो सकता है।" लायड जार्ज ने स्पष्ट कहा था—"इस संधि की शर्तें मृत वीरों के रक्त से लिखित हैं— ... हमारा यह कर्त्तव्य है कि जर्मनी का पुनरुत्थान न हो। जर्मनी कहते हैं— हम हस्ताक्षर नहीं करेंगे, संवादपत्र और राजनीतिज्ञ विरोध के

लिए प्रस्तुत हैं। परन्तु हम कहते हैं—और जर्मन निवासियों! आप स्वीकृत करो! यदि भरसालिस में नहीं, तो बर्लिन में आपको हस्ताक्षर करने होंगे"। संक्षेप में विजयी राष्ट्रों ने अपनी शर्तों को शक्ति से मान्य कराया।

१०—यूरोप का विस्तार

(१७८९ से १९२९)

१६ वीं शताब्दी का प्रधान लक्षण संसार में यूरोप का प्रसार है। १५ वीं शताब्दी से अनवरत आर्थिक, व्यावसायिक, प्रचार और स्वाधीनता के अन्वेषण में यूरोप के विभिन्न राष्ट्रो पुर्त-गाल, स्पेन, हालैण्ड, फ्रांस, व इंग्लैण्ड—का यूरोप से बाहर प्रभूत प्रभाव स्थापित हो गया। परन्तु गत शताब्दी में यूरोप के निवासी औद्योगिक और यांत्रिक क्रान्ति के परिणाम स्वरूप उत्तर अमेरिका के पश्चिमांश, अफ्रीका के तट, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड इत्यादि स्थानों में प्रवासी बन गए और नवीन नवीन उपनिवेशों की स्थापना की।

क—विस्तार के कारण

१—आर्थिक—

नवीन नवीन आर्थिक विचार धाराओ ने उपनिवेशों के मूल्य को बढ़ा दिया। औद्योगिक जनता की वृद्धि होने से सुख और सुविधा के लिए स्थानान्तरण आवश्यक हो गया। प्रत्येक औद्योगिक राष्ट्र में यंत्र द्वारा प्रस्तुत सामग्री जीवन की आव-श्यकताओं से अधिकतम बढ़ गई। विलासिता के साधन अत्यन्त प्राप्त हुए, किन्तु निवास स्थान की समस्या इतनी गंभीर हो गई कि जनता को नवीन स्थानों के अन्वेषण मे तत्पर होना पड़ा। आर्थिक समस्या का एक दूसरा पहलू भी था—क्यों कि औद्योगिक विकास के परिणाम से रबर, तैल, धातु आदि कच्चे माल के लिए यूरोप अधिकतर अन्य राष्ट्रों पर निर्भर हो गया

था। इसके अतिरिक्त इंग्लैण्ड का खाद्याभाव भी एक समस्या थी। यह प्रतीत होता था कि इस संकट से परित्राण का केवल एक ही मार्ग है—वह है औपनिवेशिक उद्योग। समय समय पर बेकारी और आर्थिक संकट ने भी इस उद्योग को क्रियान्वित करने की प्रेरणा दी। प्रत्येक राष्ट्र के औद्योगिक साधनों द्वारा उत्पादित सामग्री इतनी प्रचुर मात्रा में हो गई कि प्रत्येक राष्ट्र के लिए उस सामग्री के विक्रय के उद्देश्य से उपनिवेश की स्थापना वांछनीय ही नहीं, अनिवार्य भी हो गई। वृहत् परिमाण में उत्पत्ति, विश्वव्यापी बाजार एक दूसरे के लिए प्रयोजनीय हो गया। औद्योगिक यूरोप उपनिवेश की सहायता के बिना आत्म-निर्भर नहीं बन सका।

२—राजनैतिक—

राजनैतिक कारण आर्थिक कारणों के समान महत्त्वपूर्ण नहीं थे, परन्तु यूरोप के विस्तार में ये भी अपना स्थान रखते थे। राजनैतिक आन्दोलनकारी असन्तुष्ट होकर विदेशों की ओर निकल पड़े। आयरलैण्ड निवासी इसी प्रकार इंग्लैण्ड के अत्याचारों से त्रस्त होकर अमेरिका में जाकर बस गये। महत्त्वाकांक्षी, उद्यमी और बुद्धिमान् व्यक्ति अतिशय संपत्तिशाली बनने के लिए उपनिवेशों में जाने लगे, क्योंकि उपनिवेशों में सोना, चाँदी, रत्न आदि प्राप्त होते थे। जब इंग्लैण्ड-निवासी विभिन्न स्थानों पर व्यावसायिक प्रगति करने लगे तो इंग्लैण्ड का शासन-यद्यपि उदासीन था—फिर भी वह प्रसिद्ध किलेक के शब्दों में "मानचित्र को लाल बनाने में" अभिरुचि रखता था।

३—आविष्कार की प्रेरणा—

आविष्कार की प्रेरणा साहसी नवीन युवकों को दुर्गम

मार्ग और प्राकृतिक बाधओं को अवहेलना करते हुए सफलता की ओर ले गई। कैलिफोर्निया, दक्षिण अफ्रीका, अलस्का एवं आस्ट्रेलिया में सोना और मूल्यवान धातुओं के आविष्कार ने इस आन्दोलन को सबल बनाया।

४—धर्म प्रचार की भावना—

यूरोप के ईसाई-मतावलंबियों की धर्म-प्रचार की भावना भी संसार में नवीन उपनिवेश की स्थापना का एक कारण था। उनका उद्देश्य-असभ्य और पिछड़ी हुई मानव जाति को भी पाश्चात्य सभ्यता और ईसाई धर्म से प्रभावित करना था। चीन व अफ्रीका में धर्म प्रचारकों ने ही प्रवेश कर यूरोप निवासियों के लिए आर्थिक शोषण के लिए द्वार उन्मोचन किया। अधर्मियों को धार्मिक बनाने की यह पवित्र 'भावना भूमि के अधिकार, सांस्कृतिक लोभ और राजनैतिक विजय' के रूप में परिणत हो गई।

५—मनुष्यत्ववाद की धारणा—

कुछ एक ऐतिहासिक जैसे-सीले का कथन है—"मनुष्यत्व-वाद की धारणा भी यूरोप के विस्तार का प्रमुख कारण थीं। आज तो यह स्वीकृत करना ही पड़ेगा—कुछ एक यूरोप निवासियों ने सर्वप्रथम नवीन नवीन स्थानों में पदार्पण कर उन्हें भौतिक पथ-प्रदर्शन किया। पर सम्पूर्ण यूरोप निवासी ही परोपकार की भावना से ही उपनिवेशों में कष्ट सहने के लिए गये यह कहना संगत नहीं है"। "असभ्य जाति को सभ्य बनाना श्वेत जाति का कर्त्तव्य है"-*यह नारा यूरोप निवासियों का विश्व के लिए प्रतारणा मात्र था* क्योंकि इस उद्देश्य में शोषणनीति ही अन्तर्हित थी।

६—आक्रमणात्मक राष्ट्रीयवाद

सत्य तो यह है कि यूरोपीय राष्ट्रों में देश भक्ति की चेतना

इतने अधिक मात्रा में थी कि ये अन्य देशों की सुविधाओं को अपनी उन्नति पर बलि चढ़ाने को तैयार थे। १६ वीं शताब्दी मे राष्ट्रीयता का इतना प्रचार हुआ कि प्रत्येक राष्ट्र ने राज्य—विस्तार को एक ध्येय बना लिया। पाश्चात्य–जगत् की सभ्यता के चमत्कार ने इन लोगों मे यह विश्वास जागृत किया कि उनकी सभ्यता ही संसार में सर्वोत्तम है। इसी विश्वास को क्रियान्वित करने के लिए ये शक्ति से अन्य दुर्बल राष्ट्रों पर सांस्कृतिक प्रभुत्त्व स्थापित करने मे लग गये।

७–सामरिक दृष्टिकोण

२० वीं शताब्दी के प्रारम्भ में उपनिवेशों को सामरिक साधन युद्ध की विजय के लिए महत्त्वपूर्ण उपाय माने जाने लगे। प्रथम महायुद्ध मे भारतवर्ष की सामरिक सहायता से ही इंग्लैंड विजयी हुआ। इंग्लैण्ड के अनुकरण पर अन्य राष्ट्र भी बढ़ गये, क्योंकि विश्वयुद्ध में उपनिवेश ही पर्याप्त सहायता करने में समर्थ थे। संक्षेप में समुद्र के उस पार उपनिवेश स्थापन, जन-संख्या के आधिक्य, कच्चे माल की आवश्यकता, प्रस्तुत सामग्री का विक्रय आदि एकान्तः अनिवार्य था और इस दिशा में विश्वव्यापी प्रतियोगिता अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की प्रमुख अङ्ग बन गई।

८–विस्तार का प्रथम काल–(१७८६ से १८२५)

अष्टादश शताब्दी के अन्त और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में औपनिवेशिक विस्तार मे यूरोप के राष्ट्रो ने विशेष प्रगति नहीं की, क्योंकि अधिकांश राष्ट्र प्रभूत प्रयत्न करने पर भी इस ओर अधिक सफल नहीं हो सके। तुर्गत का कथन–"उपनिवेश तो फल है—जो कि पकते ही पेड़ से गिर जाता है" अक्षरशः सत्य है। वस्तुतः १७८६ और १८२५ में ऐसा कोई एक

राष्ट्र नहीं था—जिसने कि क्षति नहीं उठाई हो केवल इंग्लैण्ड का साम्राज्य ही इस क्षति को सह सका, पर फ्रांस, हालैण्ड, स्पेन और पुर्तगाल का पतन हो गया।

(क) फ्रांस की क्षति

फ्रांस ने अमेरिका में सैन्ट लारेन्स एवं मिसीसिपी के तट की भूमि को सप्तवर्षीय युद्ध के परिणाम में इंग्लैण्ड को दे दिया एवं १८२५ में उसका साम्राज्य केवल पश्चिम भारतीय द्वीपपुंज में दो एक द्वीप, भारतवर्ष एवं दक्षिण अमेरिका में दो चार स्थान इसके अधिकार में थे।

(ख) हालैण्ड की हानि

हालैण्ड एक समय में यूरोप के व्यावसायिक और पर्यटकों में अग्रणी था। परन्तु उपनिवेश स्थापना की दृष्टि से इसकी जनसंख्या न्यून थी। आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड में इसके जो उपनिवेश थे—उनकी यह उन्नति नहीं कर सका। उत्तर अमेरिका मे एमस्टर्डम को इसने इंग्लैण्ड को दे दिया। नेपोलियन प्रथम के युद्धकाल में दक्षिण अफ्रीका, सिलोन, गायना और दक्षिण अमेरिका से भी यह वंचित हुआ। १८२५ में इसका साम्राज्य मालाय द्वीपपुंज में दो एक द्वीप और भारत के पश्चिम भाग में एक दो छोटे वन्दरगाहों के अतिरिक्त विस्तृत नहीं था।

(ग) स्पेन की स्थिति

आन्तरिक विद्रोह स्पेन अथवा पुर्तगाल साम्राज्य के पतन के प्रमुख कारण थे। १७८६ में स्पेन के अधिकार में सब से अधिक उपनिवेश थे। उत्तर अमेरिका में मिसीसिपी के पश्चिम क्षेत्र, कनाडा के सीमान्त पर्यन्त की भूमि, मध्य और दक्षिण अमेरिका इसके आधीन थे। नेपोलियन प्रथम ने १८०१ में लूसियाना को

हस्तगत किया और १८१६ मे युक्तराष्ट्र को फ्लोरिडा का विक्रय कर दिया। मध्य दक्षिण अमेरिका के अवशिष्ट प्रदेश विद्रोह द्वारा स्वाधीन हो गये। १८२५ में स्पेन को केवल कैनेरीज, क्यूबा, पेटोरिको, फिलिपाइन द्वीप समूह ही अधिकार में थे।

(घ) पुर्तगाल की अवस्था

स्पेन के अमेरिका उपनिवेश ने स्वतन्त्रता का जो दृष्टान्त दिया, पुर्तगाल उपनिवेश ब्राजील उसके दृष्टान्त से अनुप्राणित होकर १८२२ में स्वाधीन हो गया। १८२५ में भारतवर्ष और अफ्रीका के तट में दो एक स्थान और छोटे छोटे द्वीपों को छोड़ कर पुर्तगाल के साम्राज्य का अवसान हो गया।

ब्रिटिश-साम्राज्य का प्रसार—इंग्लैण्ड से अमेरिका मे वर्तमान युक्त राष्ट्र स्वतन्त्रता-संग्राम की स्वाधीनता के कारण पृथक् हो गये। यद्यपि कनाडा की जनता ने भी सामान्य उपद्रव किया, परन्तु चतुर इंग्लैण्ड ने राष्ट्रीय साधनों को एकत्रित कर एक नूतन साम्राज्य की स्थापना की।

आस्ट्रेलिया—कैप्टेन कुक (१७६८) के आविष्कार से सर्व प्रथम आस्ट्रेलिया मे उपनिवेश स्थापित हुआ। १७८७ में एक ब्रिटिश नौ सेना ने आस्ट्रेलिया में न्यू साउथ वेल्स और टस्मेनियां को अधिकृत किया। यह नवीन उपनिवेश अपराधियों के निर्वासन के लिए प्रारम्भ में निर्दिष्ट किया गया। मार्ग और सेतु का निर्माण, स्कूल और गिरिजा की स्थापना से क्रमशः इस नूतन उपनिवेश की उन्नति हुई। अधिवासियों की वृद्धि के साथ साथ न्यू कासिल में कोयले का आविष्कार व भेड़ के उपयोग ने इसे क्रमशः समृद्धिशाली बना दिया। इंग्लैण्ड के आर्थिक संकट और दीर्घकालीन यूरोपीय युद्ध में व्यस्त रहने

से जनता मे स्थानान्तरण का आन्दोलन प्रचलित हो गया। इंग्लैण्ड ने भी अनेक प्रयत्न व योजनायें की—जिनमें आक्सले, मैकक्वेरी इत्यादि साहसी अन्वेपकों के कार्यक्रम के परिणाम से सिडनी के सात सौ मील तक का क्षेत्र परिचित हो गया।

(च) कनाडा

यदि आस्ट्रेलिया का उपनिवेश—स्थापन एक अपराधियों के निर्वासन का क्षेत्र था, तो कनाडा में इंग्लैण्ड ने विगत शताब्दी मे वैधानिक योजना का परीक्षण किया। इंग्लैण्ड कनाडा में अपने आधिपत्य को दृढ़ बनाना चाहता था। ब्रिटिश उपनिवेश कनाडा में दो विशेषताएँ थीं—प्रथम यह थी कि इसका सबसे वृहत् प्रदेश कुईवेक में फ्रांसियों का प्रधान्य था एवं द्वितीयतः यह स्वाधीन गणतन्त्र युक्तराष्ट्र का प्रतिवेशी था। प्रथम विशेपता के परिणाम में इंग्लैण्ड को एक सम्पूर्ण विभिन्न धर्मजाति और राजनैतिक अभिलाषा से उनका सामना करना पड़ा और द्वितीय से अमेरिका के प्रभाव और प्रचार से अनुप्राणित होकर यह स्वाधीन गणतन्त्र के दृष्टान्त का अनुकरण करने लगा। १७७४ में अमेरिका स्वतन्त्रता संग्राम के प्रारम्भ मे लार्ड नार्थ ने कुईवेक—धारा का प्रयोग कर फ्रांसियों को नागरिक अधिकार एवं धार्मिक स्वाधीनता प्रदान की। अमेरिका संग्राम के अवसान के पश्चात् युक्तराष्ट्र से अनेक निवासी कनाडा में आकर बसने लगे—जिनका उद्देश्य कनाडा और अमेरिका को मिलाकर स्वाधीन राष्ट्र का निर्माण करना था। इन्हें इतिहास मे "युक्त साम्राज्य का अनुयायी" कहा जाता है। ये फ्रांसीय अधिवासियों से संघर्प करने लगे—जिनके समाधान के लिए ब्रिटिश शासन ने १७९१ मे एक "कनाडा-धारा" के नाम से विशेप अधिनियम स्वीकृत किया। फ्रांसीय उपनिवेश को निम्न कनाडा और इंग्लिश वासस्थान को उच्च कनाडा घोपित कर

दोनों को पृथक् कर प्रत्येक को वैधानिक अधिकार दिये गए। प्रत्येक मे दो भवन और एक मनोनीत कार्यकारिणी सभा थी। इसके परिणाम में युक्तराष्ट्र से अधिक व्यक्ति आने लगे और एक स्वतन्त्रता के आन्दोलन की सृष्टि हुई। प्रतिनिधि लोक सभा के प्रति कार्यकारिणी सभा के उत्तरदायी न होने के कारण दोनों में संघर्ष हुआ व इसके सुधार के लिए किस प्रकार इंग्लैण्ड ने स्वायत्त शासन का प्रवर्तन किया—यह हम आगे अध्ययन करेंगे।

(छ) भारतवर्ष

भारत की समस्या आस्ट्रेलिया और कनाडा से पूर्णशः विभिन्न थी। यहां न तो अपराधियों का निर्वासन एवं न वैधानिक प्रश्न ही था। दो शताब्दी से यहां व्यवसाय के लिए इंग्लैण्ड की "ईस्ट इंडिया कम्पनी" नाम से एक संस्था चल रही थी—जो अराजकता और राजनैतिक अव्यवस्था के सुयोग से आन्तरिक साम्राज्य-स्थापना का प्रयत्न कर रही थी। सीले का प्रसिद्ध कथन है—"इंग्लैण्ड ने भारत को मनोयोग के विना ही जीत लिया"। इस वाक्य में सत्यता और असत्यता का निरूपण हमें नहीं करना है, परन्तु यह तथ्य है कि प्रारम्भ मे इंग्लैण्ड की साम्राज्य विस्तार की नीति में भारतवर्ष-विजय सम्मिलित नहीं थी, परन्तु इंग्लैण्ड के व्यवसायियों ने भारतवर्ष की राजनैतिक दशा में योग दान को घृणा की दृष्टि से देखा। राबर्ट क्लाइव ने आर्कट मे फ्रांसियो को व पलासी के युद्ध में मुसलमान नवाब सिराजुद्दौला को पराजित कर बंगाल को हस्तगत किया। १७७३ के लार्ड नार्थ के नियंत्रण नियम और १७८४ के पिट के अधिनियम से इंग्लैण्ड—शासन को भारतवर्ष में महाराज्यपाल की नियुक्ति और राजनैतिक नियन्त्रण का अधिकार मिला। इसी समय इंग्लैण्ड को शक्तिशाली मराठा

सरदारों, मैसूर के हैदरअली, महत्वाकांक्षी टीपू सुलतान और ईर्ष्यालु फ्रांस का सामना करना पड़ा। योग्य प्रथम महाराज्यपाल वारेन हैस्टिंग्स ने (१७७२ से १७८५)—जिसे रैमशे मुइर ने "अष्टादश शताब्दी का सबसे बड़ा अंग्रेज महापुरुष" कहा है—भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्य का संरक्षण कर मराठा आदि प्रतिद्वन्द्वियों को पराजित व प्राशासनिक सुधार करके ब्रिटिश प्रभुत्व को व्यापक बना दिया। लार्ड कर्नवालिश (१७८६ से १७६२) ने हैस्टिंग्स के अपूर्ण सुधारों को पूर्ण किया और टीपू सुलतान को पराजित किया। लार्ड-वैलेसली (१७६८ से १८०४) ने मैसूर को जीत कर सब से अधिक राज्य-विस्तार के प्रयत्न किये। लार्ड साम्राज्य का विस्तार इतनी मात्रा में हुआ कि मराठाओं का पतन और राजपूताना पर परोक्ष अधिकार स्थापित हो गया। जब १८२३ में यह भारतवर्ष से गया, तब तक गंगा के सम्पूर्ण तट, (अवध को छोड़कर) मध्यप्रदेश और समग्र दक्षिण प्रदेशों में ब्रिटिश अधिकार स्थापित हो चुका था। इसी प्रकार स्थानीय अव्यवस्था, अशान्ति, फ्रांसीय चुनौती, भारतवासियों की विभिन्नता और पारस्परिक विद्रोह से ही इंग्लैण्ड के एक वृहत् उपनिवेश की स्थापना हुई।

ज—विविध विस्तार

ब्रिटिश साम्राज्य का चतुर्थ विस्तार फ्रांस के विप्लव और नेपोलियन की पराजय से हुआ था। हालैण्ड से गुड द्वीप, सिलोन, गायना के एकांश, स्पेन से ट्रिनीडड, फ्रांस से मोरीशस, सेचिलिस और माल्टा अधिकृत किये गये। संक्षेप मे इंग्लैण्ड ही इस काल में सबसे विस्तृत औपनिवेशिक शक्ति थी और संसार में चारों ओर यह फैला हुआ था।

यह विश्वव्यापी विस्तार सामुद्रिक नियंत्रण के अधिकार, नौ शक्ति और द्वीपता के कारण था।

६—द्वितीय काल (१८२५ से १८६८)

नेपोलियन के पतन से बर्लिन—कांग्रेस तक यूरोप की समस्या ने उपनिवेशो को नियंत्रित किया। इंग्लैण्ड ने इस काल मे यूरोपीय समस्याओं में गौण रूप से भाग लिया। इसे केवल मूक द्रष्टा कहा जा सकता है। यद्यपि ऐतिहासिक इस काल को ब्रिटेन के एकाधिकार का युग कहते हैं। उपनिवेश—विस्तार की दृष्टि में इंग्लैण्ड का एक भी राजनैतिक साम्राज्यवादी नही था। एक निर्दिष्ट उपनिवेश नीति के अभाव में नवीन दायित्व और भार अनियन्त्रित एवं अव्यवस्थित रूप से इंग्लैण्ड को ग्रहण करना पड़ा।

क—इंग्लैण्ड का विस्तार

कनाडा—उत्तर अमेरिका में आधुनिक कनाडा, प्रशान्त महासागर और सैन्ट लोरेन नदी तक विस्तृत हो गया। युक्त राष्ट्र और कनाडा के मध्य की सीमा का निर्णय किया गया। हडसन खाड़ी की लोम-व्यवसाय की कम्पनी माण्ट्रील की उत्तर पश्चिम कम्पनी के साथ युक्त हो गई। इंग्लैण्ड से आत्याधिक मात्रा मे जनसंख्या का भी स्थानान्तरण हुआ। कोलम्बिया में सोना का आविष्कार, प्रशान्त रेल्वे, नहर, मार्ग के निर्माण से कनाडा समृद्धि-शाली हो गया।

(ख) आस्ट्रेलिया

इस काल में आस्ट्रेलिया की भी प्रभूत उन्नति हुई। न्यू साउथ वेल्स और विक्टोरिया टस्मानिया में अपराधियों के निर्वासन का प्रबंध किया गया। दक्षिण और पश्चिम आस्ट्रेलिया सोना और तांम्बे के आविष्कार से प्रचुर उन्नत हुआ। समग्र आस्ट्रेलिया इंग्लैण्ड के शासनाधीन हो गया।

(ग) न्यूज़ीलैण्ड

इस काल में न्यूज़ीलैण्ड ब्रिटिश साम्राज्य भुक्त हो गया। १८४० की वाइतांगी की सन्धि द्वारा इस द्वीप के निवासी माउरी जाति ने महारानी विक्टोरिया के शासन को स्वीकार किया। इसके पश्चात् सोना के आविष्कार, भेड़ों और कृषि की सुविधाएँ श्वेतनिवासियों की संख्या को बढ़ाने में सहायक हुई। शोषण के लिए श्वेत न्यूज़ीलैण्ड में रहने लगे। स्थानीय जनता (माउरी) और विदेशियों में संघर्ष प्रारम्भ हुआ—अन्त में विदेशियों ही की विजय हुई।

(घ) दक्षिण अफ्रीका

यहाँ पर ब्रिटिश साम्राज्य की स्थिति जटिल थी। इस भूखंड के निवासी काफ्री, जुलू, बुअर और हाटेन्ट्स यूरोपनिवासियों का तीव्र प्रतिवाद करने लगे। परिणामतः सीमान्त में एक क्रमागत संघर्ष प्रारम्भ हुआ और ब्रिटिश साम्राज्य ने समग्र जातियो को अधिकृत कर लिया। हालैण्ड के कुछ कृपक बुअर भी दक्षिण अफ्रीका में बसने लगे और अंग्रेज निवासियों के विपरीत कठोर व्यवहार की तीव्र निन्दाएँ करने लगे। १८३६ से १८४० में सात हजार हालैण्ड निवासी ब्रिटेन अधिकृत दक्षिण अफ्रीका से उत्तर की ओर (नाटाल) चले गये। इसी को इतिहास मे "महान् यात्रा" कहा जाता है। १८४२ मे ब्रिटिश प्रशासन ने नाटाल को हस्तगत किया—और ६ वर्ष पश्चात् समग्र बुअर को पुनः आधीन कर लिया। बुअर जाति पुनः उत्तर के ट्रांसवाल प्रदेश में चली गई। इंग्लैण्ड ने ट्रांसवाल की स्वाधीनता को स्वीकृत किया और आरेञ्ज नदी के उपनिवेश को स्वतन्त्र मान लिया। १८७० के पश्चात् किस प्रकार ब्रिटिश साम्राज्य पुनः ट्रांसवाल का प्रभु बना—यह हम आगे अध्ययन करेंगे।

(ङ) भारतवर्ष

इस काल में भारतवर्ष में ब्रिटिश शक्ति का प्रसार भी गणनीय था। यद्यपि इंग्लैण्ड यहां व्यवसाय करने आया था, परन्तु १६ वीं शताब्दी में साम्राज्य-स्थापन उसकी एक सुनिश्चित नीति बन गई थी। १८४३ मे सिन्ध, व १८४६ में पंजाब को ब्रिटिश साम्राज्य में लीन किया गया और बर्मा व अफगानिस्तान को पराजित कर ब्रिटिश सीमा को प्रसारित किया गया। महा-राज्यपाल डलहौसी ने (१८४८ से १८५६) सतारा, करौली, नागपुर आदि स्थानों को हस्तगत किया। ब्रिटिश कुशासन जब्त की नीति, तार रेल्वे आदि के विस्तार ने प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की सृष्टि की। यद्यपि अवध, दिल्ली, रोहिलखंड, राजपूताना में विद्रोह का प्रसार हुआ, परन्तु पंजाब के सिखों ने अंग्रेजों की सहायता की-जिससे सहज ही में इसका दमन हो गया। परिणामतः कम्पनी की समाप्ति हो गई और ब्रिटेन के एक विशेष भारत-सचिव के अधिकार मे शासन चला गया। सेना में भी पूर्णांशः परिवर्तन किये गये व इसके २० वर्ष पश्चात् १ जनवरी १८७७ में दिल्ली के एक महान् दरबार में रानी विक्टोरिया को भारतवर्ष की महारानी घोषित किया।

१०—नवीन ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सिद्धान्त

१—यह स्पष्ट है कि क्षेत्र विस्तार का सिद्धान्त नवीन ब्रिटिश साम्राज्यवाद की भूल थी। यद्यपि ब्रिटिश शासन को अपने इस सिद्धान्त को प्रायोगिक रूप देने के लिए अनेक संकटों का सामना करना पड़ा, परन्तु परिस्थिति और उपनिवेश निवासियों के प्रयोजन ने इसी मार्ग को अपनाने के लिए बाध्य किया। वस्तुतः परिस्थिति अभिलाषा अथवा आकांक्षा से उच्च है, क्यो कि आकांक्षा का उदय परिस्थिति से ही होता है।

२—क्रमशः नवीन क्षेत्रों पर अधिकार होने से एक नवीन साम्राज्यवाद का उद्भव हुआ। प्राचीन व्यावसायिक प्रणाली जो संरक्षण की नीति पर चलती थी–उसके स्थान पर अब स्वाधीन व्यवसाय के सिद्धान्त का उद्भव हुआ। विशेष नौ नयन नियमावली–जिसने अमेरिका के उपनिवेशों को विद्रोह करने के लिए बाध्य किया था–पूर्णांशः निषिद्ध कर दी गई।

३—व्यावसायिक स्वतन्त्रता के साथ साथ ब्रिटिश प्रशासन उपनिवेशों मे नियमित योजना के आधार पर अंग्रेज़ जनता को स्थानान्तरित करने लगा। यह सत्य है—इस विषय में विभिन्न समितियों ने—जैसे एडवर्ड, गिबन, वेक-फिल्ड के नेतृत्व में—सर्व-प्रथम निर्देश दिये। प्रशासन ने अविकसित भूमि को अपने अधिकार में व्यवस्थित करने के लिए ले लिया और इन समितियों को सहायता दी। यह भूमि उपनिवेश—निवासियों को सामान्य मूल्य पर बेची गई। जब पर्याप्त मात्रा में ये लोग उपनिवेशों में रहने लगे, तो स्थानान्तरण रोक दिया गया।

४—साम्राज्य की उन्नति और उत्कर्ष के साथ साथ एक नवीन मानवता और सार्वजनिक कल्याण की भावना उपनिवेश नीति में सम्मिलित हुई। १८३२ के विशेष नियम द्वारा दास-प्रथा की समाप्ति एक नवीन चेतना का निर्देशन था।

५—औपनिवेशिक नीति का सबसे अधिक परिवर्तन औपनिवेशिक स्वायत्त-शासन के स्वीकार करने से हुआ। सर्व-प्रथम उपनिवेश कनाडा ही था—जहां इसका प्रयोग किया गया। वस्तुतः इसी प्रकार से कनाडा के उपद्रव को शान्त कर उसे स्वतंत्र उपनिवेश गोष्टी में रखा गया। कनाडा में उत्तरदायी कार्यकाकारिणी की मांग उग्र जनता ने की। निम्न कनाडा—जहाँ पर फ्रांसियो की प्रधानता थी—जाति के प्रश्न ने समस्या को और

भी जटिल कर दिया। १८३७ में विद्रोह प्रारम्भ हो गया और लार्ड डरहम को विशेष रूप से कनाडा में शान्ति—रक्षा के लिए नियुक्त किया गया। यद्यपि शासक के रूप में यह पूर्णशः सफल नहीं था, परन्तु यह औपनिवेशिक स्वायत्त शासन का एक जन्मदाता था—जिसने इसकी पद्धति निर्धारित की। मृत्यु से पूर्व इसने कहा—"एक दिन कनाडा हमारा स्मरण करेगा"। वह दिन शीघ्र ही आ गया, परन्तु उसने अपने जीवन का त्याग कर एक जाति की सृष्टि की थी। १८४० के एक विशेष नियम द्वारा उच्च और निम्न कनाडा को स्वायत्त-शासन की पृष्ठ-भूमि पर संयुक्त कर दिया गया। १८६७ के विधान द्वारा कनाडा के राज्य समूहों का एक संघ स्थापित किया गया और केन्द्रीय शासन को विशेष अधिकार दिये गये। १० वर्ष में न्यू ब्रांसविक, नोवा-स्कोशिया, प्रिंस एडवर्ड द्वीप इत्यादि इस संघ में सम्मिलित हो गये। इसी सर्व-प्रथम संगठन ने साम्राज्यवाद की नीति मे एक क्रान्ति उपस्थित की और वर्तमान ब्रिटिश साम्राज्य की बुनियाद डाल दी।

संघीय कार्यकरिणी लोक-सत्ता के प्रति उत्तरदायी थी। ब्रिटेन का सम्राट् महाराज्यपाल की नियुक्ति, विधान के परिवर्तन और ब्रिटेन के नियमों के विपरीत नियमों के रद्द करने का अधिकारी था। वस्तुतः महाराज्यपाल जनता के निर्णयों में हस्तक्षेप नहीं करता था। १८५२ में आस्ट्रेलिया के उपनिवेश—समूहों को विधान-सभा के निर्वाचन द्वारा अपने अपने प्रशासन की रूपरेखा निश्चित करने का विशेप अधिकार दिया गया। अफ्रीका में केप उपनिवेश को १८५३ में स्वायत्त शासन मिला परन्तु बुअर समस्या ने दक्षिण अफ्रीका के प्रदेश को विशेष सुविधाएँ मिलने में विलम्बित कर दिया। १८५४ मे न्यूजीलैण्ड को स्वायत्त शासन दिया गया। भारतवर्ष और

अन्यान्य उपनिवेशों को स्वायत्त-शासन के अधिकारी नहीं समझा गया।

(क) युक्तराष्ट्र की विस्तृति

ऊपर दिये गये विवरण से स्पष्ट है कि इंग्लैण्ड संसार में साम्राज्य विस्तार करने में सबसे अग्रणी था—जिसके लिए इस युग को हम ब्रिटेन के "औपनिवेशिक एकाधिपत्य" का युग कहते हैं। परन्तु तीन और साम्राज्यों ने भी इस शताब्दी में राज्य विस्तार का प्रयत्न किया। सुदूर पश्चिम में ऐटलाण्टिक के उस पार अमेरिका के युक्त राष्ट्र मैक्सिको-युद्ध द्वारा एक विशाल सम्राज्य—जो कि एटलाण्टिक से प्रशान्त महा-सागर तक विस्तृत था—स्थापित कर रहा था। ये फ्रांस से लुशियाना (१८०३) स्पेन से फ्लोरिडा, (१८१६) मैक्सिको से अरीजोना (१८३३) और कैलीफोर्निया इत्यादि पर अधिकार किया।

(ख) रसिया की प्रगति

इसी समय रसिया भी द्रुतगति से एशिया में अपने साम्राज्य को दृढ़ और विस्तृत कर रहा था। पोलैण्ड, फिनलैण्ड ही नहीं, अपितु दक्षिण के काकेसस प्रदेश, मध्य एशिया का विशाल क्षेत्र तुर्किस्तान, चीन के आमूर प्रदेश और उत्तरी जापान के सखालीन द्वीप के अर्द्धांशों पर इसने अधिकार स्थापित किया। संक्षेप में फारस सागर के दक्षिण तट पर्यन्त, भारतवर्ष के उत्तर पश्चिम सीमान्त एवं प्रशान्त महासागर पर्यन्त इसकी सीमा विस्तृत थी। धीरे धीरे प्रशान्त-समस्या में यह एक महत्त्व-पूर्ण राष्ट्र ही नहीं, विश्व-शक्ति बन गया।

(ग) फ्रांस का विस्तार

फ्रांस भी औपनिवेशिक प्रतियोगिता में पीछे नहीं था। फ्रांसीय पताका के अपमान के प्रतिशोध के लिए उत्तर अफ्रीका

के अल्जीरिया प्रदेश में फ्रांस ने अभियान किया एवं १८३० में उसे अधिकृत कर लिया। यद्यपि फ्रांसीय गणतन्त्र-सिद्धान्त से उपनिवेश-स्थापन विरुद्ध था, फिर भी अल्जीरिया प्रदेश का परित्याग नहीं किया गया। १८५८ मे इसे फ्रांस के साम्राज्य मे लीन कर लिया। अल्जीरिया की विजय से प्रतिवेशी मरक्को और ट्यूनिश का अधिकार अवश्यंभावी हो गया-जिससे साम्राज्य और भी अधिक बढ़ा। अफ्रीका के पश्चिम तट और सेनिगल में फ्रांसीय उपनिवेश स्थापित किया। लुई फिलिप के राज्य-काल में फ्रांस ने मेहमत अली के प्रोत्साहन मे मिश्र पर अधिकार करने का प्रयत्न किया। तीस साल पश्चात् फ्रांसीय विज्ञान और अर्थ की सहायता से स्वेज नहर का खनन किया गया। प्रशान्त महासागर में तहीती, मारक्वेसस्, न्यू-कैलिडोनिया पर अधिकार किया गया। १८६२ में दक्षिण अनाम को विजय कर इंडोचीन में फ्रांसीय अधिकार स्थापित हुआ। हम देख चुके हैं कि लुई नेपोलियन तृतीय ने किस प्रकार फ्रांसीय उपनिवेश विस्तार के लिए मैक्सिको अधिकार का विफल प्रयत्न किया। इसी प्रकार प्रशान्त महासागर, इन्डोचीन और अफ्रीका में आधुनिक फ्रांसीय साम्राज्य को विस्तृत किया गया।

११-तृतीय युग (१८७८ से १६१४)

महायुद्ध से चालीस वर्ष पूर्व औपनिवेशिक समस्या के समाधान के लिए यूरोपीय राष्ट्रों में पारस्परिक द्वन्द-द्वेष प्रारम्भ हुआ। दो नवीन राष्ट्र-इटली और जर्मनी-औपनिवेशिक प्रतियोगिता में संमिलित हुए। सुदूर-प्राच्य में जापान-जो कि इतने दिन एक प्रकार का शान्त द्रष्टा था-साम्राज्य-विस्तार की ओर अग्रसर हुआ। साम्राज्य-विस्तार के साथ साथ व्यावसायिक एकाधिकार की भावना और उपनिवेशों के आर्थिक साधनों को हस्तगत करना विभिन्न राष्ट्रों के मुख्य उद्देश्य थे। यूरोप के महान्

राष्ट्र उपनिवेश-समूहों के सामरिक महत्त्व से भी सुपरिचित हो गये। यातायात की सुविधाओं के साथ साथ यह स्पष्ट प्रतीत हुआ कि युद्ध के समय उपनिवेश यूरोप को शिक्षित सैन्य-बल से सहायता दे सकते हैं। संक्षेप मे संसार के पिछड़े हुए देशों में यूरोप का प्रवेश व्यापक हो गया व परिणामतः एक नवीन युग की सृष्टि हुई। रैम्से मूइर के शब्दों में "विश्व के अनधिकृत क्षेत्रों के नियंत्रण के लिए यूरोपीय राष्ट्रों में एक पारस्परिक प्रतियोगिता के युग का उदय हुआ और सुदूर चीन व श्याम, मरक्को अथवा सूडान वा प्रशान्त महासागर के द्वीप की समस्याओं ने विश्व की शान्ति को विचलित कर दिया एवं सामरिक मनोवृत्ति का विकास हुआ।" इंग्लैण्ड साम्राज्य विस्तार को एक धार्मिक योजना समझता था, फ्रांस आल्सस् लोरेन की क्षतिपूर्ति के लिए अफ्रीका और चीन में उपनिवेश का अन्वेषण कर रहा था। जर्मनी विश्वव्यापी साम्राज्य का स्वप्न देख रहा था।

संसार में दो ही ऐसे क्षेत्र थे—जो यूरोप के अधिकार से वंचित थे, १—अफ्रीका, २—दक्षिण प्रशांत।

अफ्रीका का विभाजन—अफ्रीका का विभाजन इस काल की एक अपूर्व आश्चर्यजनक घटना है, क्योंकि यह विशाल भूखण्ड शान्तिपूर्ण मार्ग से ही यूरोपीय राष्ट्रों में विभाजित हो गया।

अफ्रीका का महाद्वीप सब से अधिक अन्धकारपूर्ण देश कहा जाता था—जिसके विषय में हम सब से कम जानते हैं। उत्तर में फ्रांस ने अल्जीरिया को प्राप्त किया और दक्षिण में इंग्लैण्ड एवं डच बुअर आरेञ्ज और वाल नदी तक बढ़ा। पुर्तगाल, फ्रांस और ब्रिटेन ने पूर्व और पश्चिम अफ्रीका के छोटे छोटे स्थानों एवं बन्दरगाहों पर अधिकार किया था। मिश्र स्वाधीन

अफ्रीका का विभाजन (१८८०-१९१४)

परन्तु तुर्की के नियंत्रण मे एक करदाता प्रदेश था। इस अन्धकार-पूर्ण महाद्वीप के अधिकांश मरुस्थल और पर्वतीय थे। इनसे यूरोप भी परिचित नहीं था। यहाँ निग्रोजाति रहती थी और उपनिवेश-स्थापना के लिए यह एक उपयुक्त स्थान था। धर्म प्रचारक, पर्यटक, परिव्राजक और आविष्कारकों ने सर्वप्रथम अफ्रीका के आन्तरिक प्रदेशो मे प्रविष्ट होकर यूरोपीय राष्ट्रो की दृष्टि को आकर्पित किया। बार्टन, स्वेन, ग्राण्ट, बेकर, लिविंग्-स्टोन, स्टैनले इत्यादियो ने चार महानदियों—नील, नाइजर, कांगो, जाम्वेसी—की धाराओं का आविष्कार किया।

वेल्जियम की वि तृति—यह एक आश्चर्य का विषय है कि वेल्जियम के राजा लियोपोल्ड द्वितीय ने १८७६ में राजधानी ब्रुशेल्स मे एक अन्त राष्ट्रीय भूविशेषज्ञ सम्मेलन को निमंत्रित किया—जिसका उद्देश्य अफ्रीका के अन्धकारमय प्रदेशों को आविष्कृत कर उनमे सभ्यता के आलोक का प्रसार करना था। व्यवसाय और उद्योग की उन्नति इसका लक्ष्य थी। एक "अन्तर्राष्ट्रीय अफ्रीका-समिति" का संगठन किया गया—जिसकी विभिन्न शाखाएँ सम्पूर्ण यूरोप में खोली गईं। लियो-पोल्ड की आर्थिक सहायता से स्वाधीन राष्ट्र कांगो की स्थापना हुई। १९०८ मे वेल्जियम शासन ने इस उपनिवेश को प्रत्यक्षतः लियोपोल्ड की व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में राज्य-लीन कर लिया।

पुर्तगाल के लाभ—वेल्जियम के दृष्टान्त का यूरोपीय शक्तियो ने अनुकरण करना प्रारंभ किया। पुर्तगाल ने अंगोला-प्रदेश में एक विशाल उपनिवेश स्थापित किया एवं पूर्व अफ्रीका में मुजांबिक को भी हस्तगत किया।

इटली का विकास—अफ्रीका के विभाजन में यद्यपि

इटली सब से अंत में सम्मिलित हुआ था, फिर भी इरीट्रिया एवं इटलीय सोमालिलैण्ड को अधिकृत किया। १६११-१२ के तुर्की के साथ संघर्ष के परिणाम में इसे ट्रिपोली और सिरोनिका प्राप्त हुआ। ऐबीसिनिया-अधिकार के असफल प्रयत्न हुए और उत्तर अफ्रीका मे फ्रांस ने राज्य-विस्तार को अवरुद्ध कर दिया। (१)

जर्मनी के अंश—अफ्रीका मे जर्मन उपनिवेश-स्थापन की योजना का अध्ययन हम बिस्मार्क की परराष्ट्रनीति में कर चुके हैं। बिस्मार्क की अनिच्छा होते हुए भी जर्मनी ने अफ्रीका में केमेरुन, तोगो लैण्ड, दक्षिण पश्चिम और दक्षिण पूर्व अफ्रीका के उपनिवेश स्थापित किये। (१)

स्पेन का लाभ—अफ्रीका के उत्तर पश्चिम तट में स्पेन ने भी एक छोटे प्रदेश को अधिकृत किया एवं १६०६ में जिब्राल्टर के विपरीत स्थान मे एक प्रभाव-क्षेत्र विस्तृत किया। (१)

फ्रांस का विस्तार—फ्रांस को अफ्रीका के उपनिवेश-स्थापन से प्रभूत लाभ हुआ। १८८२ में ट्यूनिश व १६१२ में मरक्को को हस्तगत कर इसने समग्र मरुस्थल को अपने अधीन में लिया। सैनिगल, आइवरी तट, कांगो प्रदेश को भी सम्मिलित किया (१)। १८६६ में मैडागैस्कर द्वीप को हस्तगत किया।

ब्रिटेन का विस्तार—अफ्रीका के सब से अधिक अंश ब्रिटेन के अधिकार में आये। मानचित्र से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उत्तर में काहिरो से दक्षिण में केप पर्यन्त एक क्रमागत भूखंड ब्रिटेन के अधिकार में था। दक्षिण अफ्रीका एवं रोडेशिया प्रदेश ने ब्रिटिश साम्राज्य की सीमा को टांगानैका झील और जर्मन पूर्व अफ्रीका की सीमा पर्यन्त विस्तृत किया। अफ्रीका

(१) मानचित्र में देखिये।

के ब्रिटिश साम्राज्य में मिश्र, सूडान, उगांडा, ब्रिटिश पूर्व अफ्रीका, रोडेशिया, वेचुवाना लैण्ड, ट्रांसवाल, ब्रिटिश दक्षिण अफ्रीका, गैंबिया, सियरा लिओन, गोल्ड तट और नाइजीरिया के वृहत् प्रदेश सम्मिलित थे।

दक्षिण अफ्रीका में विस्तृति—दक्षिण अफ्रीका मे ब्रिटिश साम्राज्य-विस्तार एक जटिल कहानी है। हम देख चुके हैं कि ट्रांसवाल और आरेञ्ज राज्य को ब्रिटेन ने स्वाधीनता दी थी। ट्रांसवाल से संघर्ष १८७७ में ब्रिटिश साम्राज्य में विलीन करने से ही प्रारम्भ हुआ। १८८१ में अस्पष्ट रूप में जुलू और बुअर जातियों के साथ संघर्ष के पश्चात् ब्रिटेन ने अपनी संशोधित नीति के अनुसार ट्रांसवाल को सामित स्वाधीनता दी। बुअर जाति के राष्ट्रीयवादी आन्दोलन को इस ब्रिटेन की दुर्बलता और अनिश्चित नीति से प्रोत्साहन मिला। इसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप सिसिल रोड्स के नेतृत्त्व मे एक तीव्र ब्रिटिश राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। रोड्स काहिरो से केप पर्यन्त ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार का स्वप्न देखता था—जिसको क्रियान्वित करने के लिए रोड़ेशिया प्रदेश की स्थापना की। संरक्षित वेचुवानालैण्ड और रोडेशिया के ब्रिटिश उपनिवेशों ने ट्रांसवाल और आरेञ्ज दो डच गणतन्त्रों की सीमा को अवरुद्ध कर लिया। ट्रांसवाल में सोने और हीरे की खान के आविष्कार के परिणाम से बहुसंख्यक अंग्रेज-जिन्हे "विटलैण्डर्स" कहा जाता है-खानो में काम करने के लिए प्रविष्ट होने लगे। खान के श्रमिक व बुअर अधिकारियो के पारस्परिक सम्बन्ध जातिगत विभिन्नता और धार्मिक विषमता से प्रत्येक वर्ष के अनन्तर अधिकतर बिगड़ गये। १८९५ मे विटलैण्डर्स ने रोड्स-जो कि केप उपनिवेश का प्रधानमन्त्री था-के समर्थन व डाक्टर जेम्सन के सशस्त्र अभियान से ट्रांसवाल शासन को

अधिकृत करने का प्रयत्न किया। इस आक्रमण ने संघर्ष को बढ़ा दिया एवं १८९९ में बुअर युद्ध प्रारम्भ हुआ। यह संघर्ष दो बुअर गणतन्त्रों-ट्रांसवाल और आरेञ्ज व अंग्रेजों के विपरीत हुआ था। ट्रांसवाल—सेना ने आशातीत साहस और शौर्य का प्रदर्शन कर ब्रिटिश सेना को अनेक स्थानों मे पराजित किया, परन्तु ब्रिटिश साम्राज्य के अपरिसीम साधनों ने बुअर वर्ग को पराभूत किया। १९०२ में शान्ति-स्थापना हुई एवं बुअर-गणतन्त्र ब्रिटिश साम्राज्य में विलीन हो गया। इस संघर्ष में अंग्रेजों की नीति की तीव्र निन्दा की गई, परन्तु पाँच वर्ष में ही उत्तरदायी स्वायत्त-शासन इन दो प्रदेशों को दिया गया एवं आठ वर्ष में ये नाटाल और केप के साथ दक्षिण अफ्रीका-संघ में सम्मिलित हो गये-जिसका प्रथम प्रधान-मन्त्री लुइस बोथा था। १९१४ में स्माट्स और बोथा के नेतृत्व में बुअर सेना ने जर्मन पूर्व अफ्रीका को विजय किया एवं १९३४ मे दक्षिण अफ्रीका ने इंग्लैण्ड को पुनः जर्मनी के विपरीत द्वितीय महायुद्ध में सामरिक सहायता प्रदान की।

मिश्र का अधिकार—मिश्र में ब्रिटेन के प्रभाव की व्यापकता ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास में एक विचित्र अध्याय है। अभिलाषी मेहमत अली की योजना एवं उसके उत्तराधिकारी की अतिव्ययिता ने मिश्र को आर्थिक दृष्टि से दरिद्र बना दिया। १८७५ में खिदाइव इस्माइल ने डिसरेली को स्वेज नहर के अंश ४० लाख पौंड में बेच दिये। १८७६ मे पुनः आर्थिक संकट का उदय हुआ एवं खिदाइव इस्माइल ने वैदेशिक ऋण की पूर्ति को बन्द कर दिया। इंग्लैण्ड और फ्रांस ने-जो मिश्र के सबसे अधिक ऋण मांगते थे-मिश्र की आर्थिक स्थिति की एक जांच की—जिसके परिणाम में मिश्र पर इन दोनों राष्ट्रों का आर्थिक नियंत्रण स्थापित हो गया।

६ वर्ष तक ये दोनों राष्ट्र पारस्परिक सहयोग से मिश्र पर आर्थिक नियन्त्रण करते रहे व इसके आर्थिक उत्थान के प्रयत्न में लगे रहे। किन्तु यह द्वैत आर्थिक—प्रणाली असफल हुई। स्थानीय कर्मचारी और यूरोपीय अधिकारियो में द्वेष यहाँ तक फैला हुआ था कि एक दूसरे को घृणा करता था। यूरोपीय राष्ट्र-समूह ने इस्माइल को राज्य—च्युत किया, परन्तु १४०० यूरोपीयों की उच्च पदों पर नियुक्ति करने से राष्ट्रीय विरोध प्रारम्भ हुआ। १८८२ मे राष्ट्रीयवादी अरबी बें ने सामरिक शक्ति द्वारा शासन को अधिकृत किया एवं विद्रोहियों को "मिश्र मिश्र निवासियों के लिए है" यह नवीन नारा प्रदान किया। इस काल में यूरोपीयों का जीवन और संपत्ति अत्यन्त संकटमय थी। इंग्लैण्ड और फ्रांस ने संयुक्त सशस्त्र हस्तक्षेप का निश्चय किया, परन्तु अन्त में फ्रांस ने सहयोग देने से इन्कार कर दिया। अतः इंग्लैण्ड ने अकेले ही गार्नेट उलसेली के नेतृत्त्व में इस विद्रोह का दमन किया। इसी से मिश्र में ब्रिटेन के राजनैतिक नियंत्रण का प्रारम्भ हुआ-जिसका समर्थन उदार-मतावलंबी ग्लेडस्टोन ने किया था।

सूदान—मिश्र के विद्रोह के दमन के पश्चात् इंग्लैण्ड नेमिश्र के आर्थिक और राजनैतिक जोवन के उत्थान के लिए अनेक योजनाएँ प्रस्तुत कीं, परन्तु अकस्मात् सूदान में धर्मान्ध, संकीर्ण "मेहदी" के नेतृत्त्व में विद्रोह प्रारम्भ हुआ। सूदान मिश्र के आधीन में एक प्रदेश था और वहाँ इंग्लैण्ड ने मिश्र की सहायता के लिए सेनापति गार्डन को भेजा। परन्तु इंग्लिश सेनापति को मेहदी ने बन्दी बनाकर खार्टुम में हत्या कर दी। विजयी मेहदी ने सूदान में एक आतंक और ध्वंस के राज्य की स्थापना की। सेनापति कीचनर ने १८९६ और १९०० में सूदान को विजय कर निरंकुश मेहदी का दमन किया। सूदान को इंग्लैण्ड और मिश्र के संयुक्त

नियंत्रण में रखा गया एवं १६१४ में मिश्र को इंग्लैण्ड का संरक्षित प्रदेश घोषित किया गया।

इसी प्रकार विना युद्ध के ही यूरोपीय राष्ट्र-समूहों ने अफ्रीका के विभाजन को पूर्ण किया, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष और द्वेष की उत्पत्ति यहीं से हुई। कांगो मे फ्रांस और पुर्तगाल की विरोधिता, टयूनीशिया मे फ्रांस और इटली के पारस्परिक संघर्ष, मिश्र व फैसोडा मे (श्वेत नील) इंग्लैण्ड से फ्रांस का विरोध, मरक्को में जर्मनी और फ्रांस का संघर्ष इन सबने समुदायशः महायुद्ध की पृष्ठ-भूमि तैयार की।

एशिया में विस्तार—एशिया में इस समय चीन में यूरोप के उपनिवेश स्थापित हुये और जापान की राष्ट्रीय चेतना का जागरण हुआ—जिसका अध्ययन हम दूर-प्राच्य में करेंगे। चीन के दक्षिण में फ्रांस टांगकिंग और अनाम व इंग्लैण्ड ने वर्मा को अधिकृत किया। मलाया-राज्य संघ, सरवक, उत्तर वोर्नियो, न्यूगिनी व दक्षिण प्रशांत द्वीप-समूह ब्रिटिश साम्राज्य मे लीन हो गये। १६०० में आस्ट्रेलिया के प्रदेशों से भी एक संघ स्थापित किया गया। स्पेन से अमेरिका ने फिलिपिन द्वीप-पुंज को हस्तगत किया।

१२—चतुर्थकाल (१६१४ से १६३६)

प्रथम महायुद्ध के अनन्तर जर्मनी की औपनिवेशिक शक्ति का अवसान हो गया। जर्मन पूर्व अफ्रीका वेल्जियम और इंग्लैण्ड में विभाजित किया गया। टोगोलैण्ड और कैमेरुन को भी फ्रांस और ब्रिटेन में आधा आधा बाँट दिया गया। जर्मन दक्षिण पश्चिम अफ्रीका संयुक्त दक्षिण अफ्रीका मे लीन हो गया जर्मनी के उत्तर प्रशान्त महासागर के द्वीप पुंज एवं शान्टुग

जापान को दिया गया। समोवा को न्यूजीलैण्ड एवं दक्षिण प्रशान्त द्वीपपुंज आस्ट्रेलिया को दिया गया। महायुद्ध के समय में इंग्लैण्ड के विभिन्न उपनिवेशों ने इंग्लैण्ड को सामरिक, आर्थिक और रसद की सहायता दी। यह स्मरण रखना चाहिए कि इंग्लैंड का औपनिवेशिक साम्राज्य ही सबसे अधिक विस्तृत था। वह समग्र विश्व का एक पंचमांश भूखण्ड और एक चतुर्थांश जन-संख्या का अधिकारी था—जिसमें विश्व की प्रत्येक जाति धर्म और विभिन्न सभ्यताओं के नियम व प्रतीक प्राप्त होते थे। प्रधान प्रधान उपनिवेशो को इंग्लैण्ड ने युद्धकालीन मंत्रिमंडल, पेरिस की सधि और राष्ट्र-संघ मे प्रतिनिधित्व दिया। इस नवीन नीति के परिणाम से १६२५ मे उपनिवेश के लिए एक पृथक् मन्त्री नियुक्त किया गया। १६२६ में साम्राज्य-सम्मेलन आमंत्रित किया गया एवं उपनिवेश-समूहों को ब्रिटिश साम्राज्य के आधीन में आन्तरिक और वैदेशिक सहायता दी गई, यद्यपि इंग्लैण्ड के राजमुकुट के संमान और भक्ति के अनुकरण को सबने स्वीकृत किया। वेस्ट मिनिस्टर के अनुविधान द्वारा १६३१ मे वैधानिक रूपरेखा और प्राशासनिक व्यवस्था में सामान्य परिवर्त्तन किये गये। १६३५ मे भारतवर्ष को संघीय विधान, प्रादेशिक स्वतन्त्रता और उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल प्रदान किया गया।

१६२२ में मिश्र पर १६१४ मे घोपित ब्रिटेन के संरक्षण का अवसान हो गया, परन्तु १६३६ तक विशेप सामरिक और शासनिक सुविधाएँ ब्रिटेन ने अपने अधिकार मे रखी। १६२७ में इंग्लैण्ड ने आदिष्ट प्रदेश ईराक को स्वाधीन कर दिया। मिश्र और ईराक के साथ इंग्लैण्ड ने विशेष संधि की-जिसके परिणाम स्वरूप जर्मनी के विपरीत इनने भी द्वितीय महायुद्ध मे इंग्लैण्ड को सहायता दी। पैलेस्टाइन अरब में और यहूदियों के

पारस्परिक संघर्ष ने ब्रिटिश शासनादेश पद्धति प्रचलित रखी।

१६२२ में आयरलैण्ड को औपनिवेशिक स्वायत्त-शासन दिया गया, परन्तु १६३६ में आयरलैण्ड ने स्वयं को पूर्ण स्वाधीन घोषित कर द्वितीय महायुद्ध में निष्पक्ष घोषित किया। उत्तरी आयरलैण्ड (अलस्टर) आज भी इंग्लैण्ड के आधीन है।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् इंग्लैण्ड के अधिकार में केवल चार उपनिवेशों को ही स्वायत्त शासन मिला था—कनाडा, न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका। औपनिवेशिक सम्मेलनों में इंग्लैण्ड ने अपनी नीति का विश्लेषण किया—जिस प्रकार १६२६ में ओपनिवेशिक स्वायत्त शासन की व्याख्या करते हुए प्रधान मन्त्री वाल फुरने कहा था—"इंग्लैण्ड और उपनिवेश ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत होते हुए भी समान स्तर पर स्वाधीन हैं और आन्तरिक और वैदेशिक नीतियों में वे दोनों स्वतन्त्र हैं। यद्यपि ये एक ही राजा को संमान प्रदर्शित करते हैं और स्वेच्छा से ब्रिटिश साम्राज्य-संघ के सदस्य हैं"। १६३१ में वैस्ट मिनिस्टर के विशेष राजघोषणा-पत्र में यह उल्लेख किया गया कि इंग्लैण्ड की लोक-सभा के कोई नियम उपनिवेशों की संमति के बिना उन पर प्रयुक्त नहीं होंगे। १६३२ मे साम्राज्य के विभिन्न उपनिवेशो में आर्थिक सम्बन्धों को दृढ करने के लिए ओटावा नगर (कनाडा) मे उपनिवेशों के प्रतिनिधियों के साथ इंग्लैण्ड ने कर-संबन्धी समझौता किया। यह समझौता ब्रिटेन की आर्थिक नीति के परिवर्तन का निदर्शन एवं स्वाधीन व्यवसाय के सिद्धान्त का परित्याग कर विशेष साम्राज्य सुविधा की नीति का अनुसरण है।

———*———

११--दूर-प्राच्य

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से दूर प्राच्य का इतिहास एक आन्दोलन की अनेक धाराएँ है। पश्चिम का पूर्व में यह एक शक्ति द्वारा अनधिकार-प्रवेश की कहानी है। अनिच्छा होते हुए भी प्राच्य निवासियों पर आक्रमण किया गया और उनकी तीन हजार वर्ष की एकान्तता को भंग किया गया। चीन और जापान का इतिहास भी इसी प्रकार का है। चीन में आर्थिक-प्रचुरता व रक्षा-हीनता ने विदेशियो को आमन्त्रित किया एवं अल्प-काल में ही इनने समग्र चीन पर नियंत्रण कर लिया। जापान इतना चतुर और कुटिल था कि शत्रु के अस्त्र और कौशल का अनुकरण करके इसने स्वयं को सुरक्षित और शक्तिशाली बनाया व चीन का परम मित्र बन गया। जापान ने व्यवसाय और क्षेत्र-प्रतियोगिता में योगदान किया एवं अपने प्रतिवेशी चीन के एकांश पर प्रतारणा द्वारा आधिपत्य विस्तृत किया। प्रायोगिक क्षेत्र में प्राच्य एकान्त, आत्म-निर्भर, पृथक् और शान्ति-प्रिय था, परन्तु यूरोपीय शक्ति ने बल-प्रयोग द्वारा इसकी एकान्तता का ध्वंस कर दिया।

क-प्रथम-काल (१७८६ से १८६१)

(चीन की एकान्तता और वैदेशिक बहिष्कार का समय)

चीन १६ वीं शताब्दी पर्यन्त यूरोप से पूर्णशः विच्छिन्न था। प्राचीन काल मे यूरोप से चीन मे रेशम रोम-निवासी लाते थे एवं कूटनीतिक सम्बन्ध चीन के पवित्र सम्राट्

के साथ अरब और फारस से स्थापित हुए थे। कैथोलिकों ने अपने धर्मप्रचारको को चीन में भेजा था। भू-पर्यटक चीन का प्रदर्शन करके पश्चिम में यह प्रचार करने लगे कि चीन अर्थ का भंडार है। यूरोप के लिए चीन स्वर्ण आगार था एवं अवसर और सुयोग की यूरोप प्रतीक्षा कर रहा था। चीन के दक्षिण तट में षोडश शताब्दी से ही यूरोपीय व्यवसायी-मैकाऊ में पुर्तगालीय, कैन्टोन में अंग्रेज स्पेन और डचनिवासी-जोंक के समान रक्त शोषण के लिए चिपक रहे थे। यद्यपि चीन इन्हे नहीं चाहता था, फिर भी इन्हे हठा नहीं सकता था। चीन सम्राट् ने इनको अपमानित किया एवं विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये। इन्हें सम्राट् के प्रति संमान प्रदर्शित करने के लिए साष्टांग प्रणाम (काटाऊ) करना होता था। शासन इनके व्यक्तिगत जीवन मे हस्तक्षेप करता था, विशेप प्रकार के कर लगाता था। संक्षेप मे इन्हे हीन-दृष्टि से देखा जाता था। पर उन व्यवसायियों ने प्रतिवन्धो और अवमाननाओ को सहते हुए भी व्यवसाय के विस्तार मे कोई कमी न रखी।

इसी समय यूरोप के प्रमुख राष्ट्र रूस ने उत्तर की ओर से चीन के साथ व्यावसायिक सम्वन्ध स्थापित करना प्रारम्भ किया। १६८६ में चीन के पवित्र सम्राट् ने रूस से प्रथम व्यावसायिक संधि की। परन्तु रूस की व्यावसायिक सुविधाओं को कठिनाई के साथ सीमित किया गया-उसे समुद्र के मार्ग से व्यवसाय नहीं करने दिया व साष्टांग प्रणाम के लिए वाध्य किया। ये व्यवसायी जव चलते चलते अनेक दिनों में आकर पहुँचते थे, तो इन्हे सैनिक परिवेष्टन के साथ राजधानी में लाया व विक्रय तक रखा जाता था। इस प्रकार के प्रतिवन्धो के कारण रूस के व्यवसाय की वृद्धि नहीं हो सकी।

समुद्र के मार्ग से यूरोप के अन्यान्य राष्ट्र चीन से चाय, रेशम, अफीम एवं अन्यान्य वस्तुओं का व्यवसाय करते थे। इसके लिए वे स्थानीय अधिकारियो को उत्कोच तक देते थे। इंग्लैण्ड की ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने भी चीन मे अपने व्यवसाय को विस्तृत किया था। १७६२ मे इसने लार्ड मैकार्ट ने एवं १८१६ में लार्ड आमहर्स्ट को भेज कर विशेष सुविधाऐं प्राप्त करने का विफल प्रयत्न किया। सम्राट् जार्ज तृतीय के पुरस्कार को चीन के सम्राट् ने राजकीय कर समझा और व्यावसायिक सन्धि को अमान्य कर दिया। सम्राट् चीअन लुंग ने जार्ज तृतीय को लिखा—"आपके दूतने यह प्रत्यक्ष देखा होगा कि हमारे देश मे सब सामग्री मिलती है। आपके देश की अद्भुत और चमत्कार पूर्ण सामग्री का प्रयोजन हमें नही है"। घृणा की भावना और आर्थिक आदान प्रदान के अभाव से चीन के द्वार पश्चिम व्यवसायियों के लिए उन्मुक्त नही थे। परन्तु अफीम एक ऐसी वस्तु थी-जिसका प्रयोजन चीन से अधिक से अधिक बढ़ने लगा।

पूर्व और पश्चिम के इस संघर्ष का प्रारम्भ ब्रिटेन के बल प्रयोग से हुआ। १८३४ मे ब्रिटेन ने लार्ड नेपियर को चीन में व्यावसायिक अधिकारी नियुक्त किया। नेपियर ने समान अधिकार का दावा एवं चीन के आधिपत्य को अस्वीकृत किया। परिणामतः चीन मे ब्रिटिश व्यवसाय बन्द कर दिया गया। एक वर्ष पश्चात् नेपियर की मृत्यु हुई एवं अफीम व्यवसाय के प्रश्न से प्रथम चीन अथवा अफीम युद्ध का उदय हुआ।

१–अफीम युद्ध–(१८३६ से १८४२) १७७३ से इंग्लैण्ड भारत वर्ष से चीन मे अफीम भेजता था। क्रमशः इसकी मांग बढ़ने से १५ वर्ष मे इस व्यवसाय की चतुर्गुणित वृद्धि हो गई।

पर १७२६ से बार बार विशेष नियमों द्वारा चीन सम्राट् ने चीन में अफीम के निर्यात को अवैध घोषित कर दिया । १८०० में निर्दिष्ट रूप से इसके पूर्ण प्रतिरोध के लिए अधिकारी की नियुक्ति की, परन्तु स्थानीय चीन अधिकारी के गुप्त प्रोत्साहन से अफीम व्यवसाय की गुप्त रूप से प्रभूत वृद्धि हुई । १८३६ में चीन कमिश्नर लिन को इस व्यवसाय के निरीक्षण के लिए नियुक्त किया गया । उसने अंग्रेजों को सम्पूर्ण माल के समर्पण की मांग पेश की—जब इसे अस्वीकार किया गया, तो सम्पूर्ण ब्रिटिश निवासियों का अवरोध किया । कैन्टोन के अंग्रेज अधिकारी कैप्टेन ईलियट ने २० हजार अफीम के सन्दूक समर्पण करने का आदेश दिया । इस अफीम को जला दिया गया । लिन् ने अंग्रेजो के जहाजों को जब्त एवं भविष्य के लिए इस व्यवसाय के प्रतिबन्ध की प्रतिज्ञा करा कर यह निश्चय किया कि जो इसे असान्य करेगा, उसे मृत्यु-दण्ड दिया जायेगा । ईलियट ने इस मांग को अस्वीकृत किया व कैन्टोन का परित्याग कर मैकाऊ चला गया ।

अंग्रेजों के दो जहाज-जो कैन्टोन के पास थे—उन्होंने गोलियां चलाकर युद्ध का प्रारम्भ किया । २६ चीन जहाजों को—जो कि यहां आये थे-पराजित कर भगा दिया गया । तीन वर्ष पर्यन्त यह युद्ध चलता रहा और विदेशियों ने हांगकांग व संघाई को हस्तगत किया । प्राचीन राजधानी नानकिंग पर आक्रमण और पेकिंग का अवरोध किया । सामरिक दृष्टि से चीन सम्राट् ने पराजित होकर नानकिंग की सन्धि पर हस्ताक्षर किये ।

२—नानकिंग की संधि—(१८४२) प्रथम पाश्चात्य सन्धि ब्रिटेन के साथ चीन ने १८४२ में स्वीकृत की । चीन ने ब्रिटेन को हांगकांग दिया एवं युद्ध की क्षति पूर्ति के रूप में ६० लाख

पौंड देना स्वीकार किया । इसके अतिरिक्त दक्षिण चीन के पाँच बन्दरगाह–कैन्टोन, फूचाऊ, निंग्पो, अमाय, संघाई— यूरोपीय व्यवसाय के लिए उन्मुक्त कर दिये गये व प्रतिज्ञा की कि राजकीय आदान प्रदान में विदेशियों को समानता प्रदान की जायेगी। चीन ने यह भी माना कि नियमित व न्यायसंगत कर-प्रणाली की व्यवस्था की जायेगी। *कोहांगों* के एक चीन व्यवसायीदल के (जो केवल यूरोपीयो के साथ व्यवसाय कर सकता था) एकाधिकार का अवसान किया गया।

३–समीक्षा—ब्रिटिश तोपो ने चीन को पाश्चात्य व्यवसाय के लिए उन्मुक्त किया एवं यूरोप के अन्यान्य राष्ट्रों ने भी इससे प्रभूत लाभ उठाया। अमेरिका और फ्रांस ने १८४४ मे नार्वे व स्वीडेन ने १८४७ मे चीन के साथ इस संधि का अनुसरण कर व्यावसायिक सन्धि की। विजेताओ का यह मत था कि यह सन्धि उनकी एकता और न्याय-संगत माँग की ही विजय है। पर यह उनके अपमान का ही परिणाम था। विश्लेषण से यह प्रतीत होता है कि शक्ति के प्रयोग से पाश्चात्यों के अन्यायपूर्ण अधिकार का समथन ही इस संधि का उज्ज्वल दृष्टान्त है। ग्लैडस्टोन ने सत्य ही कहा था—"इससे अन्यायपूर्ण युद्ध के कारण और कहीं नहीं देखे गये व किसी भी युद्ध में इतने असंमान और अनीतिपूर्ण प्रणाली इंग्लैण्ड को नहीं मिली—जितने युद्ध हम ने देखे और सुने है"। सरजैम्स ग्राहम ने भारतवर्ष के महाराज्यपाल वॅन्टिन्क को लिखा था—"चीन के साथ व्यवसाय ही हमारा उद्देश्य है। विजय और पराजय दोनों की भयंकर है एवं शक्ति के द्वारा कभी भी व्यवसाय की वृद्धि नहीं हो सकती। दुर्बल चीन को पराजित करने में न कोई प्रतिष्ठा है और न गौरव है"। वस्तुतः इंग्लैण्ड को इस युद्ध से

व्यावसायिक सुविधाएँ मिलीं, परन्तु महत्ताएँ नहीं। चीन लेखक वंग चिंग वाई चीन निवासियों के दृष्टिकोण से लिखता है–"विदेशियों ने यह प्रतीत करने का प्रयत्न किया कि पाश्चात्य शक्ति चीन के साथ कूटनीतिक और व्यावसायिक समानता का दावा करती है, परन्तु वस्तुतः सत्य तो यह है कि चीन-निवासी अफीम के बुरे प्रभाव से बचने की चेष्टा करते थे। अफीम से भी भयानक साम्राज्यवाद का विष था—जिसने चीन निवासियों को पतित कर दिया था"।

यह सत्य है कि सन्धि की शर्तें चीन के लिए अत्यन्त अपमान जनक थीं और चीन जनता के रक्त से लिखी गई थीं। ब्रिटेन की विजय वर्तमान अस्त्र शस्त्र, पाश्चात्य सभ्यता एवं वैज्ञानिक युद्ध-प्रणाली की विजय थी। इसी विजय से १६ वीं शताब्दी में यूरोप की दूर-प्राच्य नीति की नींव डाली गई थी—चीन का उन्मोचन, विश्व शक्ति मे जापान का प्रवेश और प्रशान्त-समस्याका उदय आदि। चीन को यह स्पष्ट प्रतीत हो गया था कि यूरोप बल-प्रयोग द्वारा अपने अधिकार की स्वीकृति के लिए दुर्बल चीन को बाध्य कर सकता है। इस युद्ध के परिणाम से अफीम व्यवसाय चीन मे अत्यन्त बढने लगा एवं वैदेशिक व्यवसायियों को विशेष सुविधाएँ मिलीं। यदि चीन इस युद्ध में विजय प्राप्त करता, तो ब्रिटिश और यूरोपीय व्यवसायियों को पूर्णशः उच्छिन्न कर देता।

(४) द्वितीय चीन युद्ध–चीन के साथ कूटनीतिक आदान प्रदान और चीन परराष्ट्र विभाग में दूतावास की भी व्यवस्था नहीं थी। चीननिवासी विदेशियों को असभ्य वैदेशिक दानव कह कर पुकारते थे। जब कैन्टोन बन्दरगाह को व्यवसाय के लिए उन्मुक्त करने का प्रयत्न किया जाने लगा, तो चीनियों ने यह प्रचार प्रारम्भ किया कि "यदि एक भी असभ्य सामान्य

प्रतिरोध की प्रचेष्टा करें, तो उसे मार दो एवं उनकी संख्या वृद्धि को बन्द कर दो"। ब्रिटिश प्रधान मन्त्री पामर्स्टन के अधिकार शक्ति और प्रतिरोध की घोषणा ने—"यदि प्रयोजन होगा, तो कैन्टोन मे एक भी भवन खड़ा नहीं रहेगा"—द्वितीय महायुद्ध की पृष्ठ—भूमि तैयार की थी। संक्षेप में एक मानसिक परिवर्तन हुआ था। यूरोपीय व्यवसायी चीन में विशेष सुविधाओं के आकाङ्क्षी थे। १८५६ मे एक फ्रांसीय कैथोलिक धर्म—प्रचारक को क्वांसी प्रदेश के चीन अधिकारियों ने विद्रोह प्रचार के अपराध मे फांसी दी। फ्रांसीयों ने यह दावा किया कि फ्रांसीय प्रजा के विचार एक चीन के फ्रांसीय न्यायालय में ही निर्णीत होने चाहिएं। उसी समय ब्रिटिश जहाज ऐरो—जो कि अफीम को गुप्त रूप से चीन में लेजा रहा था—चीन अधिकारियों द्वारा पकड़ लिया गया। परिणामतः इंग्लैण्ड और फ्रांस ने चीन के विरुद्ध १८५७ में युद्ध—घोषणा कर दी। अल्पकाल के अनन्तर पराजित चीन ने संधि कर ली। चीन के गृह—युद्ध *"ताइपिंग विद्रोह"* ने (१८५१ से ६४) चीन सम्राट् को त्रस्त कर दिया एवं टिएणसिन की संधि १८६१ में स्वीकृत हुई।

५–टिएणसिन की संधि—(१८६१) चीन ने इंग्लैण्ड और फ्रांस को विशेष क्षतिपूर्ति दी एवं वैदेशिक प्रचारकों व पर्यटकों को चीन—परिभ्रमण की सुविधाएँ दी गईं। उनके व्यक्तिगत जीवन और संपत्ति के संरक्षण का आश्वासन भी दिया गया एवं व्यावसायिक आदान—प्रदान की स्वतन्त्रता दी गई। चीन में वैदेशिक प्रजा के विचार के लिए (अपराध पर) विदेशियों को बाह्यसीमीय अधिकार दिये गये। ब्रिटेन को कोलून मिला एवं ११ नवीन बन्दरगाहों को (पहले के ५ मिला कर १६) व्यवसाय के लिए खोल दिया गया।

१८६१ दूर प्राच्य में यूरोपीय विस्तृति के प्रथम काल का अन्त हुआ। उसी वर्ष इन्हे व्यावसायिक स्वतन्त्रता चीन के आयात कर का नियन्त्रण व वाह्यसीमीय प्रभुता का अधिकार प्राप्त हुआ। शक्ति के द्वारा चीन की एकांतता का अवसान हुआ एवं वैदेशिक सेना की सहायता से चीनसम्राट् ने *ताइपिंग* विद्रोह का दमन किया, क्योंकि "चीन के मांचूवंश ने ही यूरोप को विशेष अधिकार दिये थे व उसकी रक्षा में ही इसका स्वार्थ था। १८६१ में चीन ने वैदेशिक कार्यालय—*सुंगलीयामेन*—की स्थापना की-जिससे चीन के मत का परिवर्तन प्रतीत होता था। अंग्रेज सेनापति गार्डन को जिसने इसे युद्ध में सहायता दी थी—सामरिक सहायता के पुरस्कार स्वरूप पदवी, पदक और वेष—भूपाओं से सम्मानित किया गया। १८७३ में सबसे पूर्व वैदेशिक दूत का स्वागत किया गया व इसके चार वर्ष पश्चात् प्रथम चीन दूत लंडन में गया। इसके थोड़े समय वाद यूरोपीय विभिन्न राष्ट्रों में चीनीय दूतावासों की स्थापना हो गई।

ख—द्वितीय काल (१८६१ से ९५)

प्रथम काल में हम विवेचना कर चुके हैं कि वैदेशिक व्यवसाय के लिए चीन का उन्मोचन पाश्चात्यों का प्रधान उद्देश्य था। अग्रिमकाल में व्यवसाय के साथ साम्राज्य, चीन के साथ जापान और आर्थिक के साथ राजनैतिक आक्रमण पाश्चात्यों का विशेष लक्ष्य वन गया था। तीन महत्वपूर्ण परिवर्तन सुदूर प्राच्य में हुए। प्रथमतः पाश्चात्य शक्तियों ने व्यावसायिक आर्थिक शर्त को पूर्णतः व्यापक बनाया। द्वितीयतः वे राजनैतिक आधिपत्य की एक नवीन योजना वना रहे थे—जिसके परिणाम में चीन के अधीनस्थ प्रदेशों पर ये विजय करने लगे। तृतीयतः जापान का अद्भुत अभ्युदय पाश्चात्य राष्ट्रों के अनुकरण पर

हुआ-जिसने सम्पूर्ण संसार को चमत्कृत कर दिया और प्रशान्त महासागर मे एक नवीन युग का श्रीगणेश हुआ।

१—आर्थिक विस्तृति—चीन में वैदेशिक व्यवसाय की प्रभूत उन्नति हुई। प्रशिया (१८६१) डेनमार्क एवं नीदरलैण्ड (१८६३) स्पेन (१८६४) बेल्जियम (१८६५) इटली (१८६६) आस्ट्रिया हंगेरी (१८६६) जापान (१८७१) पेरू (१८७४ ब्राज़ील (१८८१) एवं पुर्तगाल (१८८७) ने चीन सम्राट् के साथ व्यावसायिक सन्धि की। ब्रिटिश प्रदूत मार्गरी के हत्याकांड के परिणाम मे इंग्लैण्ड ने चीन से १८७६ की चेफू सन्धि द्वारा क्षतिपूर्ति के रूप में आन्तरिक यातायात कर का (*लिकिन*) अवसान कर दिया एवं चार बन्दरगाहों को खोल दिया। यात्रियो के लिए सुविधा और विशेष विचार की व्यवस्था व यांगसी नदी में आर्थिक लाभ ब्रिटेन को इस सन्धि से हुए।

२—चीन की क्षति—पाश्चात्त्य शक्ति-पुंज केवल व्यावसायिक सुविधाओं से ही सन्तुष्ट नहीं था, अपितु साम्राज्य विस्तार का भी आकांक्षी था। रूस ने इस विषय मे प्रथम पथ-प्रदर्शन किया। क्रीमिया युद्ध के परिणाम में यूरोप में रूस की विस्तृति के प्रतिहत होने से यह पूर्व मे चीन और दक्षिण में अफगानिस्तान की ओर बढ़ने लगा। १८५३ मे *आइगून* की संधि-शर्तों द्वारा चीन से रूस ने आमूर नदी के तटस्थ भूखंड को अधिकृत किया। इसके दो वर्ष पश्चात् चीन के मित्र के रूप में व्लाडिवोस्टक बन्दरगाह को हस्तगत किया। इन स्थानों पर अधिकार करने से रूस कोरिया और मन्चूरिया की सीमा पर्यन्त पहुंचा। १८७५ में रूस ने जापान से सखालिन द्वीप को लिया। १८८१ में तुर्किस्तान सीमान्त मे इली प्रदेश को भी रूस मे विलीन कर लिया।

रूस का अनुकरण करके फ्रांस ने टांकिंग और अनाम में १६ वीं शताब्दी के शेष भाग में फ्रांसीय आधिपत्य को स्थापित किया। इसी समय शक्ति के सन्तुलन के लिए इंग्लैण्ड ने वर्मा (१८८६) को विजय किया और उत्तर में सिकिम (१८६०) को अधिकृत किया। श्याम के एकांश को ब्रिटेन और फ्रांस ने बांट लिया और शेष को निष्पक्ष राज्य घोषित किया। जापान ने पाश्चात्य अनुकरण कर के १८८१ में चीन से लूचू द्वीप पुंज को हस्तगत किया-जिससे प्रशान्त समस्या व चीन संरक्षण के प्रश्न ने एक नवीन रूप धारण किया।

३—जापान का उत्थान—जापान का प्राचीन इतिहास चीन के समान आत्मनिर्भरता और एकांतता का इतिहास था। पुर्त्तगाल, स्पेन और नीदरलैण्ड के व्यवसायी १६ शताब्दी से ही जापान में आने लगे थे। कैथोलिक धर्म प्रचारक भी इन्हीं का अनुसरण कर रहे थे। पर जापान निवासियों की शत्रुता और घृणा ने विदेशियों को जापान से पृथक् किया। १६३७ में दो विशेष राजकीय घोषणाओं द्वारा पाश्चात्य संसार से जापान के सम्वन्ध को विच्छिन्न कर दिया गया। डच और चीनियों को छोड़ कर अन्य आने वाले विदेशियों के लिए मृत्यु—दंड घोषित किया गया एवं जापानियों के लिए भी वहिर्गमन प्रतिबद्ध कर दिया गया। ५० टन से अधिक जहाज बनाना भी जापानियों के लिए निषेध था। दो सौ शताब्दी पर्यन्त जापान ने एक आवरण के पीछे एकांत जीवन व्यतीत किया। परिणामतः इसे अत्यन्त व्यावसायिक व आर्थिक क्षति हुई एवं जनता को अनेक वार दुर्भिक्ष का सामना करना पड़ा।

१६ वीं शताब्दी में चीन मे यूरोप के विस्तार का प्रभाव जापान पर पड़ा। जापान के समुद्र में रूस के जहाजो का आवागमन प्रारम्भ हुआ। डचों ने अंग्रेजों की चीन में व्यापार-

वृद्धि का संवाद जापान को दिया। फलतः जापान ने अपने आपको और अधिक सुरक्षित करने के लिए एक विशेष घोषणा की कि "विदेशी जहाज यदि जापान की सीमा में आने का प्रयत्न करें तो उसे तोप से उड़ा दिया जायगा"। प्रथम चीन-युद्ध मे प्रतिवेशी चीन के पराजित होने से जापान की रक्षा संकटपूर्ण हो गई। जापान ने डचों से तोपों का क्रय किया एवं उनकी उचित व्यवस्था कर सामरिक प्रणाली का संशोधन किया परन्तु राष्ट्रीय पृथक्करण को जापान ने और भी दृढ़ बना दिया।

जापान का पाश्चात्य सम्बन्ध यूरोप से न होकर अमेरिका से प्रारम्भ हुआ। १८४६ में अमेरिका के एक जहाज ने संकट की स्थिति में जापान से असफल आश्रय प्रार्थना की। अमेरिका को भी व्यावसायिक विकास एवं जहाजो के आश्रय के लिए प्रशान्त सागर मे एक बन्दरगाह का प्रयोजन था। १८५३ मे युक्तराष्ट्र का नौ-सेनानायक पेरी चार युद्ध जहाज लेकर योडो की खाड़ी मे (वर्तमान टोकियो) आ पहुंचा और जापान से अमेरिका के जहाजों के यातायात की मान्यता का अनुरोध किया। इसने जापान-सम्राट को एक प्रार्थना-पत्र एवं पाश्चात्य तार व रेल्वे-प्रणाली के दो नमूने भेट किये और कहा—"एक वर्ष के पश्चात मैं इनका उत्तर लूँगा"। निर्दिष्ट तिथि में आठ युद्ध जहाज चार हजार सेना के साथ लेकर वह पुनः जापान में आया। योडो मे जापान ने वाद विवाद किया परन्तु कोई उत्तर नहीं दिया गया। प्रारम्भ मे यह कहा गया—"विदेशी हमे चमत्कृत और प्रभावित करने के लिए अद्भुत वैज्ञानिक यंत्र भेंट करेंगे, किन्तु यह एक प्रतारणा है इसके द्वारा वे हमें अर्थ-शून्य और दीन हीन बना देंगे"। विदेशी आवागमन के समर्थक कहते थे—"अपने राज्य की उन्नति के लिए जापान को अमेरिका

से सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए"। अन्त में दूसरा पक्ष स्वीकृत हुआ, क्योंकि अमेरिका के आठ जहाजों ने उन्हें भीत कर दिया। एक सन्धि द्वारा आवश्यकीय सामग्री के लिए अमेरिका के दो जहाजों को बन्दरगाह में आवागमन की स्वीकृति दी गई। व्यवसाय के सम्बन्ध में कोई शर्तें नहीं थीं किन्तु वह तो अन्तर्हित था ही। इसी प्रकार जापान का द्वार खुल गया एवं विदेशी यहाँ भी चीन की तरह व्यावसायिक सुविधा के लिए दौड़ पड़े। इंग्लैण्ड ने भी जापान से संधि कर जहाजों को मरम्मत करने की सुविधा प्राप्त की। १८६७ में १५ प्रमुख राष्ट्रों ने जापान के साथ व्यावसायिक सम्बन्ध स्थापित किया। बन्दरगाह खोल दिये गये, व्यावसायिक और कूटनीतिक सम्बन्ध वाह्यसीमीय अधिकार, पर्यटन सुविधा, धार्मिक स्वाधीनता और अतिरिक्त कर की मुक्ति प्राप्त की।

४—जापान का विप्लव—(१८६७) यहाँ तक के प्रारम्भिक काल में चीन और जापान का इतिहास एक सा ही था एवं पाश्चात्यों से विभिन्नता के आधार पर ही सम्बन्ध स्थापित किया गया था। विदेशी अपने विकास के लिए इन दो राष्ट्रों का धीरे धीरे शोषण कर रहे थे। भविष्य में प्राच्य और पाश्चात्य सभ्यता का संघर्ष अनिवार्य और अवश्यंभावी था—जो कि प्राचीन यूनान, रोम, स्पेन और भारतवर्ष के इतिहास में अद्वितीय था। इस संघर्ष का परिणाम इन दोनों राष्ट्रों में पृथक् पृथक् हुआ। चीन पराजित हो गया, परन्तु उसने पाश्चात्य सभ्यता की विशिष्टताओं को स्वीकृत नहीं किया। जापान ने पराजित होने से पूर्व ही पाश्चात्य सभ्यता की विशेषताओं को अंगीकार कर संगठित होने का प्रयत्न किया।

जापान से पाश्चात्य संबन्ध का प्रथम परिणाम एक राज-

नैतिक आन्दोलन था। १६ वी शताब्दी के मध्यकाल पर्यन्त जापान एक सामन्त प्रणाली, सामरिक वाद और वर्ग-भेद के आधार पर ही स्थित था। मुख्य मुख्य शक्तिशाली सामन्त-वर्ग डामियो अथवा "महान् सामन्त" कहा जाता था। इनके अधीनस्थ योद्धाओं को *"सामुराई"* कहा जाता था। मिकैडो का शासन द्वादश शताब्दी से ही नाम मात्र का था। यद्यपि उसका लोग समान करते थे—फिर भी वह *क्यूटो* में आच्छादित की तरह शान्त जीवन बिताता था। वास्तविक अधिकार यूडो के *सोगान* को (सेनापति) थे। शास्त्रीय मत से यह सम्राट् का प्रतिनिधि था, पर यह इतना अधिक शक्तिशाली हो गया था कि इसने सम्पूर्ण शक्ति को स्वयं में केन्द्रित कर सम्राट् को दुर्बल बना दिया। यह सामन्त वर्ग का नेता था। सामन्त—प्रणाली की प्रधानता ने इसके अधिकारो को विस्तृत नही होने दिया।

५—पुनरुत्थान—पाश्चात्य देशो के आगमन ने जापान मे विदेशी—विद्रोह आन्दोलन को जन्म दिया एवं विदेशियों के साथ क्रमशः छोटे छोटे संघर्ष होने लगे। इस आन्दोलन का परिणाम सम्राट् की शक्ति के पुनस्स्थापन और सोगान की पदच्युति की मांग हुई—जिसका लक्ष्य' विदेशियो का बहिष्कार था। १८६७ में "सम्राट् को उन्नत और विदेशियो का बहिष्कार करो"—जनता के इस नारे के साथ साथ सोगान का पतन हो गया और मिकैडो को सर्वाधिकार दिये गये। सामान्त-प्रणाली का अवसान किया गया, कुलीनो को पेंशन दी गई और तोकूगावा, सातशूमा एवं चोसू वंशो की प्रमुखता को नष्ट कर समाज को तीन विभिन्न श्रेणियों मे विभाजित किया गया। १८६८ में एक जापानी लेखक के शब्दों मे "जापान ने पाश्चात्य सिद्धांतों एवं आदर्शों को यथा—संम्भव प्रायोगिक रूप दिया"। स्थानीय

शासन का फ्रांस के अनुकरण पर सुधार किया गया। सामरिक संगठन में भी नवीनता लाई गई। प्राचीन सामन्त सेना के स्थान मे अनिवार्य सैनिक प्रवेश व जर्मनी सामरिक प्रणाली पर सेना को शिक्षित और दीक्षित किया जाने लगा। नौ सेना को अंग्रेजों के आदर्श पर एकत्रित किया गया। ब्रिटेन के औद्योगिको एव निर्माताओं के सिद्धान्तों का प्रयोग किया गया एवं अल्प समय मे रेल्वे, जहाज, तार, खनि और उद्योग-शालाओं की स्थापना की गई। जापानीय जहाज कंपनी भी प्रारंभ हुई। व्यवसाय के विकास के लिए व्यावसायिक-संघ एवं एक राष्ट्रीय औद्योगिक प्रदर्शनी भी संयोजित की गई। १८७२ में सार्वजनिक अनिवार्य शिक्षा का (इंग्लैण्ड के केवल दो वर्ष पश्चात्) प्रयोग किया गया। विश्वविद्यालय, औद्योगिक और यान्त्रिक शिक्षणालय, राष्ट्र के तत्त्वावधान में संचालित कर विदेशों से शिक्षक व विशेषज्ञ आमन्त्रित किये गये एवं शिक्षा में अंग्रेजी को अनिवार्य स्थान दिया गया। जापान के धर्म सिन्तोवाद को केवल राजा ही का धर्म (राष्ट्र का नहीं) घोषित किया गया। जापानियों को विदेश-भ्रमण की सुविधा एवं विदेशी सिद्धान्तों की धारणा जानने व अनुकरण के लिए शिष्ट मण्डल भेजे गये। अंग्रेजी तिथि पत्रों का उपयोग किया गया। भूमि-कर लगाया गया एवं समस्त भूमि का पुनर्माप किया गया। नियमों में संशोधन करने के लिए विदेशीय विशेषज्ञों की सहायता ली गई। जर्मनी के अनुकरण पर १८८६ मे एक संविधान की रचना हुई और पाश्चात्य विचार तीन विभिन्न स्तरों में से सम्पूर्ण जापान मे प्रविष्ट हो गये। प्रथम दशक में इंग्लैण्ड के उपयोगिता-वादी सिद्धान्तों को अपनाया गया। द्वितीय दशक में फ्रान्सीय प्रजातन्त्र-वाद एवं

रूसो के सिद्धान्तों को जापानी में अनुवादित किया गया। अन्तिम दशक मे जर्मनी के राष्ट्रीयवाद और राजनैतिक प्रभाव का विस्तार हुआ। केवल २० वष में जापान पूर्ण रूप में परिवर्तित हो गया। सामरिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक और औद्योगिक दृष्टि से राष्ट्र का विकास हुआ और जनता हित अहित को समझने लगी।

६—वैदेशिक नीतिः—नवीन जापान विदेशियों की विभिन्नता संधि को स्वीकृत करने के लिए तैयार नहीं था। १८७१ में संधियो के संशोधन के लिए उसने युवाकुरा के नेतृत्त्व में एक प्रतिनिधिमंडल यूरोप में भेजा। इसने प्रतिवाद किया कि संधि के समय जापान अंधकार में था और विदेशियों ने उसे संधि के लिए बाध्य किया था। यद्यपि प्रतिनिधि—मंडल ने अनेक पाश्चात्य विशेषताओं का शिक्षण प्राप्त किया था, परन्तु वह सफल नहीं हुआ। जापान इस सिद्धान्त पर आ गया कि जापानियो की अवमानना शक्ति द्वारा की गई थी और उसी माध्यम से अब उसका अन्त हो सकता है। संक्षेप में दूर प्राच्य की समस्या में शक्ति को ही प्रधानता दी गई। आत्मरक्षा के लिए अब जापानी सामरिक शक्ति के संचय में लग गये।

१८७२ में जापान ने चीन के साथ अन्य विदेशी राष्ट्रों की तरह संधि–स्थापना का दावा किया। जब जापानी जहाजों के लिए कोरिया ने बन्दरगाह खोलना निषिद्ध कर दिया, तो इसने तोपों से उन्हें उड़ाना प्रारम्भ किया। चीन से संघर्ष हुआ एवं १८७४में फार्मोसा द्वीप पर आक्रमण किया। १८७९ में इन्होंने लूचू द्वीप को हस्तगत किया। यूरोपीय शक्तिपुंज फिर भी संधि की पुनरावृत्ति के लिए तैयार नही था। अन्ततः शक्ति के प्रदर्शन के उद्देश्य से जापान ने कोरिया में चीन के प्राधान्य को चुनौती दी।

७–चीन जापान युद्धः—(१८६४–६५) कोरिया प्राय-द्वीप में जापान का स्वार्थ अत्यन्त प्राचीन था। षोड़श शताब्दी में चीन के साथ इसने कोरिया नियन्त्रण के लिए एक असफल संघर्ष किया था और भौगोलिक स्थिति भी जापान को कोरिया में हस्तक्षेप के लिए बाध्य कर रही थी। वेल्जियम का नियन्त्रण जिस प्रकार इंग्लैण्ड की एक राष्ट्रीय नीति थी, उसी प्रकार की स्थिति जापान के लिए कोरिया के अधिकार में थी। जापानी, कहते थे–"यदि कोरिया विदेशियों के हस्तगत हो गया, तो वह एक प्रकार की जापानियो के हृदय पर एक कटार है एवं स्वाधीनता के लिए महान् संकट है"। कोरिया चीन के अधीन था, परन्तु दुर्बल चीन कोरिया को यूरोपीय हस्तक्षेप से सुरक्षित करने के अयोग्य था। आन्तरिक अरा-जकता की सुविधा प्राप्त कर विदेशियों ने कोरिया मे व्याव-सायिक सम्बन्ध स्थापित किये। रूस साम्राज्य–विस्तार की नीति से कोरिया नियन्त्रणों के लिए अग्रेसर हो रहा था। चीन जापान युद्ध केवल चीन का आक्रमण ही नहीं, परन्तु विदेशियों को चुनौती थी। एक जापानी कूटनीतिक ने सत्य ही कहा था–"हम यह निश्चित रूप से कहते है कि जब तक हमारा उद्देश्य सफल नहीं होगा–कोरिया–त्याग नहीं करेंगे। कोरिया मे हम अपनी स्वाधीनता और भविष्य के लिए लड़ रहे हैं। एक वार यदि कोरिया यूरोपीय शक्ति के अधीन चला गया तो हमारी स्वाधीनता विपन्न हो जायेगी"। कोरिया में चीन के प्रभाव को नष्ट करने के लिए जापान २० वर्ष पहले ही से सुधार दल को प्रोत्साहित कर रहा था। १८७६ में जापान ने कोरिया के साथ एक विशेष सन्धि में कोरिया को स्वाधीन स्वीकार किया था। १८८४ के उपद्रव के पश्चात् इसने चीन के साथ वह सन्धि की–जिसमें यह अंगीकार किया कि कोई भी शक्ति

(चीन या जापान) विना सूचना दिये (एक दूसरे को) कोरिया में सेना नहीं भेजेगी। १८९४ में टोंगहाक्स ने-राजनैतिक दल-जिसके कार्यक्रम सुधार एवं विदेशियो के बहिष्कार थे-विद्रोह किया। कोरिया के प्रशासन ने चीन-सम्राट् से सहायता मांगी। परिणामतः २५०० व्यक्ति भेजे गये। जापान ने इसका सन्धि-भंग के आधार पर प्रतिवाद किया और प्रत्युत्तर मे आठ हजार सेना कोरिया मे भेजी। इसी समय तक विद्रोह का दमन हो चुका था, परन्तु चीन और जापान की सेना पारस्परिक संघर्ष के लिए तैयार थी। चीनियो ने दोनो सेनाओं के अपसारण एवं कोरिया मे पारस्परिक हस्तक्षेप के अभाव का प्रस्तावन किया। जापान ने इसे अस्वीकार करते हुए कहा "दोनों राष्ट्रों को सहयोग से कोरिया के आन्तरिक सुधार के लिए युक्त कार्य-क्रम बनाना चाहिए"। चीन ने जापान के इस मत को असान्य किया। कूटनीतिक वार्तालाप युद्ध का निश्चित कारण था। जापान युद्ध के लिए बद्ध परिकर था, क्योंकि बाऊ के शब्दों मे-"उसे यूरोपीय शक्ति पुंज को सामरिक शक्ति का प्रदर्शन अनिवार्य था—जिसके द्वारा वह सन्धियो का संशोधन चाहता था"।

८—युद्ध की घटनाएें:—अगस्त १८९४ में चीन के एक जहाज को—जिसमे कोरिया के लिए एक विशेष सेना जा रही थी—जापान ने डुबो दिया। परिणामतः दोनों में परस्पर युद्ध-घोषणा हो गई। नौ मास व्यापी युद्धमें जापान पूर्णतया विजयी हुआ। सितम्बर मे कोरिया से चीन-सेना को जापान ने अप-सारित किया एवं यालु नदी के युद्ध में चीन-जहाजों को ध्वस्त कर दिया गया। एक जापानी सेना ने मंचूरिया पर आक्रमण किया व शेष वाहिनी लियाउटंग प्रायद्वीप में अवतरित हुई। किंगचाऊ एवं ताकीन का पतन हुआ व नवम्बर मे चीन का

दुर्भेद्य बन्दरगाह पोर्ट आर्थर जापान के अधिकार में आ गया। १८९५ के प्रारंभ में जापान शान्टुंग में प्रविष्ट हुआ एवं वाई-हाई-वाई को हस्तगत किया। राजधानी अब विपन्न हो गई व चीनीय दूत ली हुगचांग ने संधि का प्रस्ताव किया। अप्रेल १८९५ में सिमोनेशेकी संधि द्वारा चीन ने कोरिया की स्वाधीनता को स्वीकृत किया; जापान को फार्मोसा, (पेस्काडोर्स)द्वीप एवं लियाऊटांग प्रायद्वीप दिया गया। जापान को चीन ने पाश्चात्य शक्तियों के समान विशेष व्यावसायिक सुविधा दी व चार बन्दरगाह खोल दिये गये।

९—परिणाम:—यह युद्ध कैटिलवी के शब्दों में "दूर प्राच्य के आधुनिक इतिहास में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है, जिसका मेलिक महत्त्व है"। (१) उसके परिणाम में "अनैक्य-संधि" के संशोधन का सुयोग जापान को मिला। उसके सामरिक शक्ति को तो बढ़ा ही लिया था, अब विदेशियों को बाह्यसीमीय अधिकार एवं आयात निर्यात कर की स्वतन्त्रता नष्ट हो गई व जापान के हाथ में आ गई। संक्षेप में वैदेशिक आधिपत्य का अवसान हो गया। (२) इस युद्ध से जापान ने केवल अपने राष्ट्रीय संमान ही का पुनरुद्धार नहीं किया, परन्तु जापान साम्राज्यवादी बन गया। सफलता से उत्साहित हो कर प्रथम दशक में ही उसने विशाल रूस साम्राज्य को पराजित किया एवं पंच दश वर्ष में ही कोरिया को हस्तगत कर दूर-प्राच्य के क्रमागत विस्तार का श्रीगणेश किया। (३) चीन जापान युद्ध ने चीन की दुर्बलता को प्रत्यक्ष कर दिखाया—वह केवल पाश्चात्त्य शक्ति से ही पराजित नहीं हुआ, अपितु एशिया में भी पूर्णशः जापान द्वारा पराभूत हो गया। चीन में अत्यन्त शोक और विक्षोभ का संचार हुआ व चीन ने सुधार के आन्दोलन को अपना कर मांचू-साम्राज्य को पाश्चात्त्य सभ्यता में

दीक्षित किया। यूरोप में चीन की हीनता से अफ्रीका के समान यहां पर भी विभाजन की भावना की उत्पत्ति हुई व प्रत्येक राष्ट्र विशेष सुविधा भूमि--अधिकार और प्रभाव का विस्तार करने लगा। चीनीय अखण्डता अग्राह्य हो गई। एक ऐतिहासिक लिखते हैं—"यूरोप मे ऐसा कोई राजनीतिक नहीं था, जो १६ वीं शताब्दी के अन्त में चीन के सम्पूर्ण अवसान से असहमत हो"। (४) शक्ति के प्रदर्शन से दूर--प्राच्य में जापान यूरोप के राष्ट्रों का एक प्रमुख प्रतियोगी बन गया। जापान की आकांक्षा और एशिया मे विस्तृति ने एक भय का संचार किया—जिसे जर्मन--सम्राट् कैजर द्वितीय ने "पीतातंक" के नाम से व्यवहृत किया है। (५) यह युद्ध संक्षेप में एक काल का—पाश्चात्त्य व्यवसाय के लिए चीन के उन्मोचन के समय—अवसान कर चीन की राजनैतिक दुर्बलता और खंडता के युग का उद्घाटन करता हैं। परिणाम में चीन ने अपने ६ प्रदेश रूस, फ्रांस, अंग्रेज आदि विदेशियो को दे दिये।

(ग) तृतीयकाल (१८६५ से १६१६)

चीन-जापान युद्ध से १६१६ की भरसालिस संधि पर्यन्त के काल को जापान और यूरोपीय शक्तियों के चीन पर आक्रमण का युग कह सकते हैं। प्राच्य की समस्या का प्रत्येक द्वीप में प्रसार हो रहा था। चीन की अखण्डता पर यूरोपीयों का आक्रमण एवं अन्तर्राष्ट्रीय विरोधिता, रूस साम्राज्य का विस्तार संतुलन शक्ति का संरक्षण, मित्र व शत्रु के रूप में जापान का परिणमन, १६०२ में इंग्लैण्ड और जापान की संधि, चीन का जागरण और पुनरुत्थान, युक्त प्रतियोगिता के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का स्थापन एवं "उन्मुक्त द्वार" की नीति का अवलम्बन इस काल के विशिष्ट लक्षण थे।

इस युग में हम छै प्रधान धाराओं का अवलोकन करते हैं—

(१) आक्रमण, (२) यूरोपीय प्रतियोगिता (३) पाश्चात्य शक्तियों की सहयोग नीति (४) रूसीय आकांक्षा, (५) जापान का साम्राज्यवाद, (६) चीन का जागरण।

१—यूरोपीय आक्रमण—यह नवीन युग शक्ति के हस्तक्षेप से प्रारम्भ होता है। जापान की विजय ने रूस की अभिलाषाओं पर महान् आघात किया। रूस के विदेश मन्त्री विटी ने कहा था—"हम जापान को, अपने द्वीप को छोड़ कर एशिया के भूखंडों में अधिकार विस्तृत नहीं करने देंगे—इससे हमारे दूर प्राच्य की नीति शांतिमय नहीं रहेगी"। ली हुंगचांग के निवेदन से जॉर ने चीन के संरक्षण के लिए जापान को एक विशेष पत्र दिया एवं पोर्ट आर्थर व लियाऊटांग प्राय-द्वीप से चीन को वापस करने के लिए कहा, "अन्यथा दूर-प्राच्य का राजनैतिक संतुलन नष्ट हो-जायगा"। जर्मनी और फ्रांस ने रूस का समर्थन किया। केवल इंग्लैण्ड ने इस धमकी को अमान्य किया था। विवश होकर जापान ने उपर्युक्त स्थानों को लौटा दिया एवं आर्थिक क्षति-पूर्ति का आश्वासन लिया। जापान रूस के अनधिकृत हस्तक्षेप को कभी भी क्षमा नहीं कर सका। इसी समय इंग्लैण्ड और जापान की १९०२ की संधि का बीज-वपन हुआ, क्योंकि इंग्लैण्ड भारतवर्ष की ओर रूस के साम्राज्य-विस्तार से त्रस्त था।

२-यूरोपीय प्रतियोगिता—युद्ध की क्षति-पूर्ति के लिए चीन वैदेशिक शक्तियों से ऋण लेने के लिए बाध्य हुआ एवं वैदेशिक आर्थिक नियंत्रण की नवीन नीति का प्रारम्भ हुआ। १८९५ में फ्रांस और रूसने प्रथम ऋण दिया। टांकिंग और चीन के सीमान्त का निर्धारण क्वांगसी, क्वांगटुंग एवं यूनान मे खनन की सुविधा, अनाम रेल्वे की चीन पर्यन्त विस्तृति व नवीन

बन्दरगाहों के उन्मोचन के अधिकार फ्रांस को प्राप्त हुए। १८९६ में रूस को मंचूरिया में अनूकुल सुविधा, ट्रांस-साइबीरियन रेल्वे की व्लाडीवोस्टक पर्यन्त विस्तृत, खनन और विशेष सामरिक अधिकार-पोर्ट आर्थर, क्याऊ-चाऊ में नौ केन्द्र स्थापन आदि प्राप्त हुए। केवल जर्मनी को ही कुछ सुविधा नहीं मिली। १८९७ मे दो जर्मन कैथोलिक धर्म प्रचारको की शांटुंग प्रदेश मे हत्या करने के अपराध मे जर्मनी ने क्याऊ-चाऊ को हस्तगत किया और क्षतिपूर्ति की मांग की। विशेष संधि द्वारा जर्मनी ९९ वर्ष के लिए क्याऊचाऊ के चारो ओर ५० हजार मीटर क्षेत्र में विशेष सुविधाओ का अधिकारी हो गया। इससे यूरोप की अन्य शक्तियां आंतकित हो गई एवं पारस्परिक सुविधाओ की प्रतियोगिता प्रारम्भ की। १८९७ मे रूस ने पोर्ट आर्थर एवं तालियनवान को हस्तगत किया एवं रेल्वे निर्माण की सुविधा प्राप्त की। फ्रांस ने क्वांग-चोवान का पट्टा और टनकिन से यूनान तक रेल्वे निर्माण करने का अधिकार एवं एक फ्रांसीय प्रतिनिधि को चीनीय पोस्ट आफिस का संचालक नियुक्त करने की (१८९८ में) सुविधाएँ प्राप्त की। इंग्लैण्ड हांगकांग के क्षेत्र का विस्तार, चीन की नदियों में नौ-परिचालन की सुविधा, वाई-हाई-वाई का ९९ वर्ष का पट्टा और एक अंग्रेज की कर-विभागीय अधिकारी के रूप में नियुक्ति का अधिकारी हुआ। इटली भी यूरोपीय राष्ट्रों का अनुकरण करने लगा, परन्तु महाराज्ञी शीशी ने इसके दावे को अमान्य कर दिया। इस प्रकार धीरे धीरे चीन के विभाजन की योजना क्रियान्वित होने लगी। यूरोपीय शक्ति-पुंज ने चीन में प्रारम्भ-क्षेत्र विस्तृत करना प्रारंभ किया। मंगोलिया, मंचूरिया व चीन आधीनस्थ तुर्किस्तान को रूस के, यांग्सी नदी का तट इंग्लेण्ड के, क्वांसी फ्रांस के, फूकियान जापान के व शांटुंग जर्मनी के प्रभाव-सीमान्त में आ गये।

सामरिक और आर्थिक दृष्टि से यूरोपीय शक्ति-पुंजद्वाराअब पारस्परिक प्रतियोगिताएँ प्रारम्भ हो गई। रूस, फ्रांस, जर्मनी और इंग्लैण्ड रेल्वे निर्माण की सुविधा पहले ही प्राप्त कर चुके थे। पैकिंग-हैंगकाऊ-रेल्वे लाइन के लिए इंग्लैण्ड के विरुद्ध बेल्जियम के दावे का फ्रांस और रूस ने समर्थन दिया। इंग्लैण्ड ने नौ-शक्ति का प्रदर्शन कर संतुलन शक्ति की रक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण खनिज और रेल्वे सुविधाएँ प्राप्त कीं। अमेरिका, रूस, फ्रांस और जर्मनी ने भी इसी नीति का अनुसरण किया। इस अन्तर्राष्ट्रीय विरोधिता के तीन महत्त्वपूर्ण परिणाम हुए (१) उन्मुक्त द्वार के सिद्धान्त, (२) मुष्टि-विद्रोह, (३) इंग्लैण्ड और जापान की १६०२ की संधि।

३—पाश्चात्य सहयोग नीति

उन्मुक्त द्वार के सिद्धान्त—अमेरिका के युक्त-राष्ट्र ने सर्वप्रथम उन्मुक्त द्वार के सिद्धान्त का चीन में प्रयोग किया। १८४४ से युक्त-राष्ट्र ने चीन के साथ व्यावसायिक मैत्री स्थापित की। अग्रिम दशक में उसके युद्ध-जहाज यूरोपीय शक्ति-पुंज के टाकू दुर्ग तक अग्रसर हुए, परन्तु आक्रमण में भाग नहीं लिया। विशेष व्यावसायिक और कूटनीतिक सुविधा युक्त-राष्ट्र को १८६० में प्राप्त हुई—जैसे—कर नियत करने के अधिकार, चीन में युक्तराष्ट्रीय प्रजा के लिए बाह्यसीमीय अधिकार आदि। १८७१ में उसने सामरिक प्रदर्शन कर कोरिया को अपने बन्दरगाह युक्त-राष्ट्र को खोलने के लिए बाध्य किया एवं आठ युद्ध-जहाजों से जापान का भी द्वार उन्मोचन किया। इस प्रकार प्राच्य की व्यावसायिक प्रतियोगिता में युक्तराष्ट्रों ने प्रारम्भ में शक्ति के प्रयोग से अपना अभीष्ट सिद्ध किया। परन्तु व्यावसायिक क्षेत्र को छोड़ कर चीन के विभाजन और प्रभाव—विस्तार में इसने कोई भी भाग नहीं लिया था। १८६८ में स्पेन को

पराजित कर इसने प्रशान्त महासागर के फिलिपाइन द्वीप—समूह को हस्तगत किया। राज्य विभाग के सचिव जान हे ने सितम्बर १८६६ में टोकियो, रोम, पेरिस, लंदन, बर्लिन और पिट्सबर्ग को एक विशेष घोषणा द्वारा विभिन्न राष्ट्रों के समान व्यवसायिक सुयोग, एक ही प्रकार के कर और बन्दरगाहों के महसूल और चीनीय संधि कर-व्यवस्था की विशेष सुरक्षा के लिए आमन्त्रित किया। वस्तुतः यह द्वार उन्मोचन चीन के लिए नहीं, अपितु यूरोपीय राष्ट्रो के लिए था। हे के शब्दों में "प्रत्येक राष्ट्र को उन्मुक्त द्वार की नीति स्वीकार कर अपने प्रभाव क्षेत्र में दूसरे राष्ट्रो के माल को बिना प्रतिबन्ध के आने जाने की सुविधा ही युक्त-राष्ट्र का प्रधान लक्ष्य था"। अमेरिका के पत्र में यह स्पष्ट किया गया कि "चीन के प्रभाव क्षेत्र में एक राष्ट्र अन्य राष्ट्र को समान व्यवसायिक अधिकार यदि दे, तो अन्तर्राष्ट्रीय विरोधिता और संघर्ष के स्थान पर एकता और सहयोग की स्थापना संभव होगी। परिणामतः चीन के आन्तरिक सुधार और अखंडता की सुरक्षा होगी"। रूस को छोड़ कर सभी राष्ट्रों ने इस नीति को अस्वीकार किया। इसी प्रकार अमेरिका ने अपने व्यावसायिक स्वार्थ की सुरक्षा की और चीन मे वैदेशिक विरोधिता के अवसान का प्रयास किया। सहयोग के नवीन सिद्धान्त ने अत्यधिक अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता की क्षति पूर्ति की एवं-यूरोपीय नग्न आक्रमणात्मक नीति की यह प्रतिक्रिया हुई।

मुष्टि (बाक्सर) विद्रोहः—यह विद्रोह विशेषतः विदेशियों के विरुद्ध हुआ था। आंशिक रूप से मांचू—वंश के संरक्षण के लिए सम्राट् की यह एक चाल थी। यदि यूरोपीय विद्वेष के बहिष्कार की भावना चीन-निवासियों मे जागृत हुई थी, तो

वर्षों से मांचू-वंश की अयोग्यता और चरित्र हीनता ने ही इस आन्दोलन को जन्म दिया था। मांचू-वंश एक विदेशी वंश था-जिसने १७ वीं शताब्दी में चीन को विजय किया था। चीन मे विदेशी आधिपत्य की स्थापना का दायित्त्व इसी पर था। वंश की रक्षा के लिए चतुर सम्राज्ञी ने जनता के विद्वेष को विदेशियों की ओर ढकेल दिया। धर्म-प्रचारकों ने भी विद्रोहियों के रक्त को गर्म कर दिया, क्योंकि उनका प्रचार राजनैतिक प्रभुत्त्व की सूचना थी। वे केवल ईसाइयो की रक्षा के लिए विशेष नियम और बाह्य-सीमीय अधिकारी ही नहीं थे, अपितु बलात्कार भी करने थे। जनता इनसे अतिशय रुष्ट थी। इसी लिए समय समय पर सामान्य उपद्रव होते थे और विदेशी धमकी देकर और भी सुविधाएँ प्राप्त करते थे। इसी समय युक्त-राष्ट्र के चीनीय दूत वर्लिनगेम चीन से सौहार्द-स्थापन के प्रयत्न में था, तो धर्म-प्रचारको के विरुद्ध जनता ने असंतोष प्रदर्शित किया। राष्ट्रीयवादी चीन यूरोपीय प्रतियोगिता को सहन नहीं कर सका एवं जापान की विजय ने राष्ट्रीय चेतना को जागृत किया। सम्राट् क्वांगसू की पाश्चात्य-सभ्यता के अनुकरण की नीति ने इस विद्रोह की बारूद में चिनगारी लगाने का काम किया। चीन-जापान युद्ध के पश्चात् नवीन चीन का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ-जिसका मुख्य उद्देश्य पाश्चात्य सभ्यता के आधार पर चीन का पुनर्गठन एवं मांचू-वंश का ध्वंस था। सम्राट् ने इस आन्दोलन का समर्थन किया और विशेष घोषणा द्वारा जापान की तरह चीन को भी प्रगतिशील बना दिया। चीनी भाषा के माध्यम से पुरातन परीक्षा बन्द कर दी गई, नवीन पाठशालाएँ स्थापित की गई एवं विदेशी साहित्य के अनुवाद करने के लिए एक विशेष विभाग खोला गया। चीनीय व्यक्ति विदेशो मे पर्यटन और विज्ञान अध्ययन के लिए

आये। कहा जाता है कि राष्ट्रीयता की मूल्यवान् सम्पत्ति पुरुष की शिखाओ तक के मुंडाने का समय आ गया था।

इसके परिणाम मे एक प्रतिक्रिया का उदय हुआ—जो कि वैदेशिक प्रभाव का अवसान चाहता था। संकीर्णवाद की संचित शक्ति और अंध-विश्वास ने भी इस विद्रोह मे प्रमुख प्रेरणा दी। सम्राज्ञी शी-शी ने इस अवसर पर सामरिक शक्ति का प्रयोग कर सम्राट् क्वांग्सू को अपने अधिकार में लिया व विशेष घोषणा द्वारा सम्राट् की संरक्षक बन गई। सुधार-विरोधी और वैदेशिक आन्दोलन के विपरीत यह नेत्री बन गई—विशेष घोषणाएँ रद्द की गईं व समाचार-पत्रो का दमन किया गया। प्रतिक्रिया इतनी शक्तिशाली थी कि १८६६ मे पेकिंग के दूतावास ने चीन सम्राट् से रक्षा की विशेष प्रार्थना की। विदेशी विरोधी आन्दोलन का उदय गुप्त मुष्टि समिति से हुआ था—जो "विदेशियो का बहिष्कार और मांचू-वंश की रक्षा करो" इन नारों से जनता को उत्तेजित करती थी। इसी समय शक्ति-पुंज ने चीन-प्रशासन से विदेशियों की रक्षा के लिए प्रार्थना की, परन्तु १६०० के जून और जुलाई में हत्याकाण्ड, अग्निकाण्ड और सार्वजनिक विद्रोह अत्यन्त मात्रा में बढ़ गये। विद्रोहियों ने पेकिंग और टीएणसिन पर अधिकार किया। राजधानी में सेना "मुष्टि-समिति" में सम्मिलित हो गई। मांचूवंश प्रत्यक्ष रूप से इसका साथ दे रहा था। चीनीय ईसाई और विदेशियो पर सर्वत्र आक्रमण प्रारम्भ हुए और जर्मन और जापान के दूतों की हत्या की गई। पेकिंग मे यूरोपीयो ने दूतावास में आश्रय लिया और ये ६ सप्ताह तक चीन जनता के साथ युद्ध करते रहे। सात राष्ट्रों द्वारा प्रेरित अन्तर्राष्ट्रीय सैनिक सहायता से ही इसका परित्राण हो पाया। विद्रोहियों का दमन कर प्रतिशोध लिया गया। वृद्धा सम्राज्ञी और राज-

परिवार ने पेकिंग से पलायन किया। विदेशियों के बहिष्कार की नीति पूर्णांशः विफल हुई और वह अन्तर्राष्ट्रीय नीति का भंग करने से संसार की दृष्टि में अपराधी प्रमाणित हो गया। चीन का भविष्य अब विभिन्न राष्ट्रों पर निर्भर हो गया।

परिणामः—मुष्टि-आन्दोलन पाश्चात्य नीति के विपरीत एक सार्वजनिक राष्ट्रीय—विद्रोह था। चीन के विभाजन का स्वर्ण सुयोग इस समय यद्यपि था, परन्तु युक्त राष्ट्र ने उन्मुक्त द्वार की नीति की घोषणा कर चीन की अखंडता का (१६००) समर्थन किया। इंग्लैण्ड और जर्मनी ने भी इस नीति का अनुमोदन करते हुए एक समझौता किया कि चीन में भूमि विस्तार का प्रयत्न नहीं करेंगे। शक्तिपुंज ने अत्यन्त अधिक क्षतिपूर्ति—६७,०००,००० पौंड का दावा किया। इसके लिए विदेशियों को आयात कर का ठेका दे दिया गया। उत्तर चीन और पेकिंग रेलवे में विदेशियों की सेना की स्थापना और दूतावास पर विदेशी रक्षकों का प्रबन्ध चीन ने स्वीकार किया था। इसके अतिरिक्त व्यावसायिक सन्धियों के संशोधन की सम्मति एवं वैदेशिक कार्यालयों के सुधार की प्रतिज्ञा की गई।

४—रूसीय आकाङ्क्षा—विद्रोह के दमन से रूस को कोई लाभ नहीं हुआ। हम देख चुके हैं कि रूस-साम्राज्य का विस्तार क्रमशः दूर प्राच्य में हो रहा था। मंचूरिया, बाह्य मंगोलिया पूर्व तुर्किस्तान, अमूर नदी इत्यादि में रूस का शांतिपूर्ण प्रवेश हो चुका था व इनके द्वारा रूस ने अपने सीमान्त को कोरिया पर्यन्त बढ़ा दिया था। जापान को स्वयं का प्रतिद्वन्द्वी समझ कर १८६५ लियाऊटांग प्रायःद्वीप से बहिष्कृत किया एवं दो

वर्ष पश्चात् पोर्ट आर्थर को भी हस्तगत किया। ली हुंगचांग के समर्थन से रूस ने मंचूरिया से व्लाडिवोस्टक पर्यन्त रेल्वे-निर्माण का अधिकार प्राप्त किया था। मुष्टि—विद्रोह का सुअवसर पा कर रूस ने मंचूरिया को हस्तगत किया। विदेशियों ने इस अनधिकृत साम्राज्य-विस्तार का तीव्र प्रतिवाद किया एवं इसके परिणाम में आतंकित जापान और भीत इंग्लैण्ड में संधि हो गई।

५—जापान का साम्राज्यवाद—

इंग्लैण्ड और जापान की संधिः—१९०२ मे इंग्लैण्ड और जापान ने एक संधि द्वारा उन्मुक्त द्वार के सिद्धांत को स्वीकृत किया और यह भी प्रतिज्ञा की कि कोई भी दो शत्रु यदि किसी एक पर आक्रमण करे, तो अन्य तत्काल ही उसकी सहायता करेगा। १९०५—११ मे इस संधि की पुनरावृत्ति हुई एवं कोरिया मे जापान क अधिकार को स्वीकृत किया गया। १९२२ तक यह संधि विद्यमान थी। इस संधि को चीन और अमेरिका मे निन्दा और उपद्रवकारी प्रयास कहा गया। पर इतिहास मे यह सर्व प्रथम प्राच्य का एक अग्रणी राष्ट्र जापान यूरोप के प्रमुख राष्ट्र इंग्लैण्ड से समान शर्तों पर संयुक्त हुआ। इसकी नीव पर जापान ने साम्राज्यवाद की नीति का अवलोकन किया—जिसने भविष्य मे दूर प्राच्य की शांति मे महान् भय की सृष्टि की। इंग्लैण्ड ने भारतवर्ष की ओर रूस की प्रगति को रोकने व रूस और जापान तक ही संघर्ष को सीमित रखने के लिए ही यह संधि की थी। इसका प्रथम परिणाम रूस जापान संघर्ष (१९०४-५) था। यद्यपि फ्रांस और रूस १८९४ की संधि के अनुसार परस्पर मित्र थे, परन्तु यदि फ्रांस रूस की सहायता करता, तो इंग्लैण्ड जापान को करता। इसी लिए जापान ने समुद्र मे आधिपत्य विस्तृत किया और विजयी हुआ।

रूस जापान युद्ध–(१९०-४१९०५ –जापान और इंग्लैण्ड की संधि के अनन्तर रूस अपने संकट को समझकर छ मास के अन्तर अन्तर में तीन वार में मंचूरिया से सैनिक अपसारण का जापान को आश्वासन दिया। किन्तु प्रथम वार धूर्त रूस ने अपनी सेना को मंचरिया के एक अंश से हटा कर दूसरे स्थान पर एकत्रित किया। द्वितीय वार सैन्य–अपसारण से अस्वीकार कर दिया और चीन को सात शर्तें दीं—जिनमें रूस का मंचूरिया मे आर्थिक व व्यावसायिक एकाधिकार प्रधान था। शक्ति–गोष्ठी ने इसका प्रतिवाद किया और चीन भी किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहा था। १९०३ में मास्को और पोर्ट आर्थर को रेल द्वारा रूस ने संयुक्त कर दिया और दूर प्राच्य में एक रूसीय राज्य-पाल की नियुक्ति कर मंचूरिया को रूसीय प्रदेश बनाने की पृष्ठ—भूमि तैयार की। एक विशेष आज्ञा—पत्र लेकर जब रूसीय सेना को कोरिया में लकड़ी काट ने के लिए भेजा, तो जापान ने हस्तक्षेप किया। उसने कहा—रूस और जापान एक पारस्परिक समझौता करें—जिसमें चीन और कोरिया की अखंडता का समर्थन मुक्त द्वार नीति सिद्धान्त का अवलम्बन, कोरिया में जापान और मंचूरिया मे रूस के स्वार्थ का समर्थन हो। रूस ने इन शर्तों को असान्य किया। जॉन हे ने १२ मई १९०३ को अमेरिका के राष्ट्रपति को लिखा—"रूसीय प्रतिनिधि कैसिनी चीन का विभाजन चाहता है एवं मंचूरिया पर दावा करते हुए उसने कहा है—चीन का विभाजन अवश्यंभावी है और मंचरिया हमारा है"। जापान ने युद्ध करने का निश्चय किया व १९०४ फर्वरी में दश वार संधि पत्रो के निर्माण और ध्वंस के बाद जापान ने संधि वार्तालापों को भंगकर युद्ध—घोषणा कर दी।

युद्ध की घटनाएँ—इस युद्ध मे विशाल यूरोपीय राष्ट्र रूस की क्षुद्र प्राच्य राष्ट्र जापान द्वारा पूर्णशः पराजय हुई

सामरिक साधन और आकार प्रकार में यदि तुलना की जाये तो मान लो कि "एक वामन साहस और कौशल द्वारा एक महान् दानव को पराजित कर रहा है"। मई १९०४ में जापान यालू नदी के युद्ध में, अगस्त मे लियाऊटांग के युद्ध मे, अक्टूबर में १० दिन व्यापी शाही के युद्ध मे, पोर्ट आर्थर के दीर्घ अवरोध में, फर्वरी १९०५ में मुग्डैन के युद्ध मे जापान पूर्णशः विजयी हुआ। पोर्ट आर्थर जापान के अधिकार मे आ गया, परन्तु विजयी जापान के पास युद्ध को जारी रखने के लिए पर्याप्त साधन नहीं थे। रूस के पास साधन तो थे, किन्तु योग्य सैनिक नहीं थे। युद्ध का निर्णय इसीलिए समुद्र ही में हुआ। रूस के बाल्टिक नौ-जहाजो को जापानीय जहाजो ने टूशिमा (मई १९०५) के युद्ध में ध्वस्त किया। जापानी सेना-नायक टोगो के कौशल की तुलना हम नेल्सन के साथ कर सकते है।

परिणामः—रसिया ने अगस्त १९०५ में जापान के साथ पोर्ट समाउथ की संधि पर हस्ताक्षर किये—जिसके अनुसार उसने जापान को लियाऊटांग प्रायद्वीप, पोर्ट आर्थर बन्दरगाह दक्षिण की अर्द्ध रूसीय रेलवे दिया। इसके अतिरिक्त साखालिन द्वीप के दक्षिण अर्द्धांश जापान को मिले—जिनको रूस ने १८७५ में लिया था। उसने मंचूरिया का त्याग किया व चीन को दे दिया। कोरिया मे जापान के प्रभाव को स्वीकृत किया। इस युद्ध में कोई क्षति पूर्त्ति नहीं थी।

यह सत्य है कि युद्ध के सामान्य लाभ और आर्थिक क्षति-पूर्त्ति की शर्तों के न रहने से जापान मे इस संधि का तीव्र विरोध किया। जापान के नेताओ ने अपूर्व साहस, सामरिक दक्षता, रण-कौशल एवं अनुशासित योजनाओ के प्रमाण समग्र विश्व को दिये व सर्वप्रथम प्राच्य की प्रतिष्ठा और गौरव की स्थापना की। रूस स्वयं का ही शत्रु था। वह जितना विस्तृत था, उतना

ही विभाजित। वह अपने प्रतिद्वन्द्वी के साधन, शक्ति और रणकौशल के सम्बन्ध में भ्रान्त धाराणाएँ रखता था। वहाँ के नेताओं की यह धारणा थी कि दूर प्राच्य की समस्या का निर्णय यूरोप ही में होगा। युद्ध के सीमान्त से रूस का शस्त्रागार अत्यन्त दूरी पर स्थित था। जनता के विद्रोह, नेताओं की विरोधी नीति, असहयोग और विभिन्नता से रूस की पराजय हुई।

रूस, जापान, चीन, भारतवर्ष और समग्र यूरोप पर इस युद्ध का प्रभाव पड़ा। सर्वप्रथम दूर प्राच्य में रूस की अग्रगति इससे प्रतिहत हो गई एवं जार को पुनः निकट प्राच्य बल्कान में हस्तक्षेप के लिए बाध्य होना पड़ा। रूस के आन्तरिक विद्रोहों ने (१) ड्यूमा की स्थापना में प्रेरणा दी।

इस विजय से जापान के सम्मान की अत्यन्त वृद्धि हुई। दक्षिण मन्चूरिया के अधिकार से चीन के साथ निकट सम्बन्ध स्थापित हो गया और वह दूर प्राच्य का नेता बन गया। वस्तुतः वह प्रत्यक्ष रूप से समाजवादी बन गया और चीन में यूरोपीय राष्ट्रों से इसने प्रतिद्वन्द्विता व प्रतियोगिता प्रारम्भ की। १९१० में इसने कोरिया को जापान-साम्राज्य में विलीन व शान्टुंग को अधिकृत किया। प्रथम महायुद्ध में चीन को "२१ माँगों" का दावा दे कर प्रशान्त महासागर की नवीन नीति का उद्घाटन किया।

चीन में इस युद्ध के दो परिणाम हुये। पाश्चात्त्य राष्ट्रों ने सुविधा और सुयोग पाकर पारस्परिक प्रतियोगिता प्रारम्भ की एवं अन्त में सहयोग की नीति को ही पारस्परिक ध्वंस से श्रेष्ठ समझा। चीन का राष्ट्रीय जागरण भी इसी युद्ध से प्रारम्भ

१-पृष्ठ नं० ३९८—३९९ देखिये।

हुआ। १९११ मे यूरोपीय आक्रमण की प्रतिक्रिया स्वरूप चीन का महत्त्वपूर्ण विप्लव हुआ। इस जागृति का अध्ययन हम आगे करेंगे।

भारतवर्ष मे भी कांग्रेस के वामपंथी दल ने "लाल-बाल-पाल" * के नेतृत्त्व में सूरत अधिवेशन मे कांग्रेस से पृथक् होकर अंग्रेज राज्यपाल लार्ड कर्जन की बंगाल विभाजन की नीति के तीव्र विरोध मे आन्दोलन प्रारम्भ किया। परिणामत: १९०५ की विभाजन घोषणा के छै वर्ष पश्चात् ब्रिटिश शासन ने अपना प्रस्ताव वापस ले लिया। रूस की पराजय से ब्रिटेन को अधिक लाभ हुआ। १९०७ में फारस और तिब्बत आदि क्षेत्रों के सम्बन्ध मे इंग्लैण्ड और रूस की सन्धि हुई-जिसका हम अध्ययन कर चुके है।

६-चीन का जागरण-दो दृष्टिकोणों से हम चीन के विप्लव पर विचार कर सकते हैं। चीन का इतिहास वंशानुक्रमिक परिवर्तन का इतिहास है—जिसमें प्रत्येक वंश अल्पकाल के लिए राज्य करता है और पतन के पश्चात् अराजकता में से द्वितीय वंश का उत्थान होता है। इस दृष्टि से हम १९११ में मांचू वंश के पतन को मिंग, यूऐन, सुंग इत्यादि वंशो के अनुसार समझ सकते है एवं १९११ के पश्चात् वर्तमान काल तक जो अराजकता और अव्यवस्था चल रही है, उसे भी एक नवीन शासन पद्धति (साम्यवाद) की स्थापना की पृष्ठ भूमि कह सकते हैं। मांचू-वंश के शासक अयोग्य और चरित्रहीन थे। १९०८ में प्रभावशालिनी वृद्ध सम्राज्ञी शीशी की मृत्यु के पश्चात् मांचू-वंश का पतन अवश्यम्भावी हो गया था। एक दृष्टि से १९११ का चीन का विप्लव और १८६७ में जापान का पुनरुत्थान

---

* लाला लाजपतराय, बाल गंगाधर तिलक, विपिन चन्द्रपाल।

जातीय जागरण का निदर्शन एवं निष्क्रियता से क्रियाशीलता की ओर प्रगतिशील था। चीन के विप्लव के सुधारवाद और राष्ट्रीयवाद दो प्रधान लक्षण थे। इस विप्लवी आन्दोलन का अग्रणी गणतन्त्र दल कुमिंग-टांग था-जिसका नेता सुप्रसिद्ध डा. सन्-यात्-सेन था। १८६५ से डा० सन् अथवा सनवेन (चीन में प्रचलित नाम) एक विप्लववादी था। उसने १६११ के मांचू विद्रोह को गणतन्त्र आन्दोलन के रूप में परिणत करने में सफलता प्राप्त की एवं चीन का प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ। १६१२ मे डा० सन् ने अपने पद को योग्य साम्राज्य सेनानायक युवांग शीकाई को संभला दिया। नवीन राष्ट्रपति एक विश्वास घातक था और एक नवीन वंश की स्थापना का प्रयत्न कर रहा था। मृत्यु के पूर्व उसने स्वयं को सम्राट् घोषित किया था, पर १६१६ में उसकी मृत्यु होने से डा० सन् गणतन्त्र दल को पुनर्गठित करने के लिए राष्ट्रपति बन गया। १६२५ पर्यन्त जीवन का शेष काल दक्षिण साम्राज्यवादियों के विरुद्ध गणतांत्रिक सिद्धांतो के समर्थन में व्यतीत किया। डा०सन् मे प्रायोगिक ज्ञान का अभाव था एवं वह सहयोग लेने की कुशलता से वंचित था। सेनानायक के निर्वाचन में इसका दुर्भाग्य था-जिसके परिणाम से अपनी जीवित अवस्था में यह विद्रोह पर सफलता न पा सका। पर इसके उच्च चरित्र, योग्य नेतृत्त्व व गठन शक्ति, स्थिर अभिलाषा और विश्वास ने साम्राज्यवादी रूस को गणतन्त्र चीन का मित्र बनाया एवं जागृत चीन-जनता को एक राजनैतिक प्रकाश दिखाया। उसकी मृत्यु के अनन्तर उसके शिष्य च्यांग-काई-शेक ने गणतन्त्र दल (कोमिंग-टांग) का नेतृत्त्व किया। १६२८ में रूस की सहायता से वह हंकाऊ, नानकिंग, संघाई और पेकिंग को अधिकृत कर आंशिक राष्ट्रीय एकता और नानकिंग को नवीन राजधानी बनाने में सफल हुआ।

डा० सन् के शब्दों में गणतन्त्र दल के तीन प्रमुख सिद्धान्त थे- "राष्ट्रीयवाद, गणतन्त्रवाद और समाजवाद"। राष्ट्रीयवाद आत्मविश्वास, संगठन, शान्ति और अन्तर्राष्ट्रीयता की नीति र निर्भर था एवं पाश्चात्यो के साथ विभिन्नता को नष्ट कर समान अधिकार स्थापन ही इसका उद्देश्य था। गणतन्त्रवाद आंतरिक समस्या में प्रजातन्त्र प्रशासन और सार्वजनिक मताधिकार का प्रयोग था। समाजवाद सामाजिक सुधार, आर्थिक संरक्षा, कृषि की उन्नति व औद्योगिक विकास मे निहित था। संक्षेप में डा. सन् की धारणा थी कि राष्ट्र के आधीन में जनता की सार्वदेशिक उन्नति हो।

चीन का विप्लव एवं प्रथम महायुद्ध ने चीन की स्थिति में आमूल परिवर्तन किये-जिसके परिणाम से रूस और जापान दोनों ही चीन की ओर ही अग्रसर होने लगे। बाह्य मंगोलिया पर रूस ने १९१२ मे आंतरिक अव्यवस्था का सुयोग पाकर अधिकार किया। महायुद्ध में रूस जर्मनी के विरुद्ध लड़ाई करने में व्यस्त था और जापान ने इसी अवसर में साम्राज्य विस्तार प्रारम्भ किया। इंग्लैण्ड के मित्र होने से जापान ने २३ अगस्त १९१४ में जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषणा की। शान्टुंग, क्याऊचाऊ और टीसिंग-टाऊ से टीसीनन् पर्यन्त जर्मन रेल्वे और खनियों को हस्तगत किया।

जर्मनी के विपरीत युद्ध को निमित्त बनाकर उसने चीन की निष्पक्षता-भंग किया। जनवरी १९१५ मे दूर प्राच्य के असाधारण पत्रजातों में २१ मांगों को जापान ने चीन के सामने प्रस्तुत कीं। इनकी पाँच विभिन्न श्रेणियां थीं-प्रथम शान्टुंग, द्वितीय आन्तरिक मंगोलिया, तृतीय लोहा व कोयला की सुविधा, चतुर्थ नौ-नयन एवं पंचम जापान के अस्त्र शस्त्र, धर्म प्रचार व विशेषज्ञो की नियुक्ति आदि से सम्बद्ध थी। राष्ट्रपति युवांग

शीकाई ने इन अभूतपूर्ण मॉगो की प्रथम चार श्रेणियों को स्वीकार कर लिया, परन्तु विश्वासघातक युवांग मे जनता की आस्था नहीं थी, इसीलिए गणतन्त्र चीन ने इस सन्धि को अस्वीकार कर दिया। डा० सन् के शब्दों मे विधान की दृष्टि से लोक सभा ने इस सन्धि की शर्तों को अनुमोदित नही किया था। प्रायोगिक दृष्टि से युवांग शीकाई इस समय एक राष्ट्र-द्रोही अपराधी मात्र था व जनता के प्रतिनिधि के रूप में इस सन्धि पर हस्ताक्षर करने का अधिकारी नहीं था। युवांग शीकाई ने "हुंग सीयन"-सम्राट् कहलाने और स्वयं के वंश की स्थापना की योजना बनाई थी और व्यक्तिगत रूप से जापान की सहायता के लिए उपर्युक्त समझौता किया था।

प्रथम महायुद्ध मे जापान ने शान्टुंग पर अधिकार किया तो युक्त राष्ट्र से लान्सिग द्वारा यह समझौता (१६१७) किया—जिसके अनुसार चीन में जापान के विशेष स्वार्थ को स्वीकृत किया गया। १६१६ के शान्ति—सम्मेलन में हम देख चुके हैं कि किस प्रकार इंग्लैण्ड, अमेरिका, फ्रांस और इटली की सहायता से धमकी द्वारा जापान को शान्टुंग मिला था। १६१६ मे जापान के साम्राज्यविस्तार के युग को भरसालिस की संधि से अवसान हो गया।

घ—चतुर्थकाल (१२१६ से १६४६)

भरसालिस की सन्धि के पश्चात् प्रशान्त महासागर की समस्या ने अत्यन्त जटिल और भयंकर रूप धारण किये। विश्लेषण से प्रतीत होता है कि इसकी चार विशेष धाराऐं थीं। प्रथम चीन में गणतांत्रिक *कुमिंगटांग दल की* विजय, द्वितीय नवीन चीन के प्रति शक्ति गोष्ठी की नीति का परिवर्त्तन, तृतीय रसिया की नीति व चतुर्थ जापान के आधिपत्य विस्तार का प्रयास है।

दूर-प्राच्य (१९१९-१९३९)

प्रथम महायुद्ध के अनन्तर चीन अधिकतर आंतरिक अरा-
कताओ और अव्यवस्थाओं का शिकार हो रहा था। चीन
ा राष्ट्रीयवाद अधिक से अधिक वैदेशिक प्रभाव व विशेषतः
ंग्रेजो से घृणा करने लगा था। दुर्बल केन्द्रीय प्रशासन
त्तेजित जनता और विद्रोही प्रदेशो पर नियंत्रण नही कर
का। परिणाम में गृहयुद्ध व आकांक्षी सेनानायकों मे द्वेष
ारम्भ हो गया।

समय समय पर यूरोपीय शक्तिगोष्ठी ने अपने स्वार्थों के
रक्षण के लिए चीन में शान्ति रखने का प्रयत्न किया। इंग्लैंड,
ांस, युक्तराष्ट्र और जापान ने मिल कर एक चतुर्मुख आर्थिक-
हायता समिति की स्थापना की एवं चीन के लिए ऋण देने
ा प्रबंध किया। फ्रैडरिक ह्वाइट के शब्दों में "इसका उद्देश्य
ीन की व्यावसायिक एवं आर्थिक प्रतियोगिता, आंतरिक
राजकता व ध्वंस से रक्षा करना था"। १६२१ मे वाशिंगटन
निरस्त्रीकरण अधिवेशन का आमन्त्रण किया गया—जिसमें
शान्त महासागर की समस्याओं पर विचार किया गया।
ंग्लैण्ड और जापान ने इस संधि के स्थान पर चतुर्मुख
ौहार्द की स्थापना की। यह सौहार्द दश वर्ष तक विद्यमान
हेगा और इसका उद्देश्य प्रशान्त महासागर में हस्ताक्षरित
ाष्ट्रों के स्वार्थों का संरक्षण और पारस्परिक सहयोग से शान्ति
ापन था। इसके अतिरिक्त नौ शक्ति-संधि द्वारा चीन की
ाखंडता, स्वाधीनता और उन्मुक्त द्वार के सिद्धान्त की पुनरा-
त्ति की गई। युद्ध के समय चीन को निष्पक्षता का अधिकार
िया गया। चीन को विदेशी मालों पर आयात कर लगाने की
ी स्वीकृति दी गई, परन्तु प्रायोगिक सुविधाओं-जैसे न्यायालय
ी सुविधा आदि-का परित्याग नही किया गया। १६२६ मे
ान्तरिक अराजकता का सुअवसर पाकर यह प्रणाली चलती

रही। १६२६ में पेकिंग के एक त्रयोदश राष्ट्रों के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में विशेष व्यावसायिक और वैदेशिक न्यायालय की सुविधाओं को अमान्य करने का निश्चय किया गया। दो वर्ष पश्चात् युक्तराष्ट्र और इंग्लैण्ड ने चीनीय-संधि द्वारा विशेष सुविधाओं को समाप्त कर दिया। इंग्लैण्ड ने सौहार्द को दृढ़ बनाने के लिए हंगकाऊ को लौटा दिया।

इस प्रकार से चीन के पास पर्याप्त साधनों के अभाव और विदेशियों द्वारा विशेष सुविधाओं का परित्याग देर में करने से १६२४ मे कन्टोन की *कुमिंग-टांग*-महासभा में वह साम्यवादी रूस की सहायता के लिए बाध्य हो गया। चीन साम्यवादियों को इस दल के सदस्य बनने का अधिकार दिया गया। चीन की राजनीति रूस के प्रवेश से अधिकतर जटिल हो गई। रूस ने एक विशेष संधि द्वारा मुष्टि-विद्रोह की क्षति पूर्त्ति, बाह्य सीमीय अधिकार व मंगोलिया को लौटाने की प्रतिज्ञा की। यद्यपि रूस ने साम्यवादी प्रचार न करने का आश्वासन दिया था, फिर भी "वाम्पया"-सामरिक शिक्षणालय मे सोवियट सामरिक अधिनायकता में राष्ट्रीय सैनिक शिक्षण प्रारम्भ किया गया। डा० सन-यात-सेन की मृत्यु के पश्चात् (मार्च १६२५) *कुमिंग-टांग* दल वामपंथी और दक्षिणपंथी (क्रमशः राष्ट्रीय और साम्यवादी) शाखाओं में विभाजित हो गया। १६२७ में प्रथम दल के नेता राष्ट्रवादी च्यांग-काई-शेक ने बहुमत प्राप्त कर साम्यवादी सदस्यों को बहिष्कृत और रूस के सम्बन्ध को विच्छिन्न कर दिया। सामरिक शक्ति का संगठन कर च्यांग काइ शेक ने समग्र चीनपर धीरे धीरे अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। परन्तु कुमिंग-टांग दल की दो शाखाओ के पारस्परिक सघर्ष से इस विजय का फल क्षणिक ही रहा। साम्यवादियों ने—च्यांग को अपमानित करने के लिए १६२७ में जब राष्ट्रवादियों ने नानकिंग को विजय

किया था—विदेशियों पर आक्रमण और उनकी सम्पत्ति का ध्वंस प्रारम्भ किया। इसी को इतिहास में "नानकिंग-घटना" कहते हैं। यूरोपीय शक्ति-पुंज ने क्षतिपूर्ति की माँग और जापान ने सहस्र सैनिकों को अवतरित करा कर अपने स्वार्थ की रक्षा का प्रबंध किया। अन्त में साम्यवादियों की पराजय हुई एवं व्यावसायिक वर्ग की सहायता से च्यांग पुनः विजयी हुआ।

१८८८ में च्यांग एक साधारण व्यवसायी के परिवार मे उत्पन्न हुआ था। सामरिक शिक्षा के पश्चात् इसने जापान के टोकियो सैनिक कालेज में उच्च अध्ययन किया। १९११-१२ में इसने विद्रोही सेनाओं का नेतृत्व किया था और १९१३ से २० पर्यन्त यह डा० सैन का प्रथम सचिव था। आर्थिक अनुभव के पश्चात् इसने रूस की नवीन सामरिक वैज्ञानिक पद्धति का अध्ययन किया एवं १९२४ वाम्पोया सामरिक शिक्षणालय का संचालक बना। इसके अनन्तर जैसा कि हम देख चुके हैं—सन की मृत्यु के पश्चात् यह राष्ट्रीय शाखा का नेता बन गया। साम्यवादियों को ध्वस्त करने से च्यांग ने अप्रेल १९२८ में राष्ट्रीयवादी प्रशासन की स्थापना की एवं दो मास मे ही पेकिंग को हस्तगत किया। पेकिंग की विजय से उत्तर प्रदेश की ओर च्यांग का विरोध समाप्त हो गया और इस नगर का नाम "पीपिंग" (उत्तर की शान्ति) एवं नानकिंग को नवीन राष्ट्र की राजधानी घोषित किया गया।

च्यांग ने चीन को संगठित करने के लिए अमेरिका और जर्मनी से विशेषज्ञों को आमन्त्रित किया, परन्तु क्रमिक गृह युद्ध एवं जल—प्लावन इत्यादि प्राकृतिक बाधाओं के कारण चीन की विशेष प्रगति नहीं हो सकी। उत्तर चीन में बाल्शेविक प्रचार से १९२९ मे राष्ट्रवादी रूस की सेनाओं का संघर्ष प्रारंभ हुआ—जिसके परिणाम से कूटनीतिक सम्बन्ध विच्छिन्न

हो गया। इसी समय ४१ राष्ट्रों की "केलाग"–संधि द्वारा इस संघर्ष के अन्त का निश्चय किया गया। अमेरिका व इंग्लैण्ड चीन को सुधार और पुनर्गठन मे सहायता करते थे। पेकिंग से केन्टन पर्यन्त रेल्वे लाइन का निर्माण हुआ। शिक्षा, स्वास्थ्य यातायात और सामाजिक उन्नति भी हुई। राष्ट्रसंघ के विशेषज्ञों ने नहर—प्रणाली में भी प्रगति की। १६३६ मे रास के आर्थिक सुधार से नवीन मुद्राओं का प्रचलन किया गया एवं विदेशियों से समुचित आदान प्रदान होने लगा। इसी समय जापान ने चीन पर पुनः आक्रमण किया, परन्तु एक दशक के पश्चात् चीनके पुनर्गठन, रसिया के प्रवेश और संसार (१६२६ व ३१) के आर्थिक संकट के परिणाम से उसकी विस्तार–भावना का पुनर्जागरण हुआ। जापान की जनसंख्या में भी प्रभूत वृद्धि हुई थी एवं वढ़ी हुई जनता के स्थानान्तरण के लिए जापान को उपनिवेश की आवश्यकता थी। जापान के प्रधान निर्यातनीय वस्तु रेशम के लिए भी वाजार की आवश्यकता थी, इसी लिए प्रतिवेशी चीन को अधिकृत करना इसके लिए अनिवार्य हो गया था।

१६३१ में *कुमिंगटांग* की दो शाखाओं में पारस्परिक स्वार्थों एवं विश्वास–घातकता का संचार हुआ। इसी समय विश्व के प्रमुख राष्ट्र वेकारी, निरस्त्री करण, जनता के उग्र आन्दोलन, निर्वाचन, सुरक्षा, आर्थिक ऋण एवं कृषि समस्या के समाधान मे व्यस्त थे। इसी काल में जापान के एक सैनिक अधिकारी की आन्तरिक मंगोलिया में हत्या हुई एवं दक्षिण मंचूरिया की रेल्वे–लाइन भी ध्वस्त हो गई। यद्यपि इसका प्रमाण नहीं था, पर जापान ने ये आरोप चीन पर ही लगाये। परिणामतः जापान ने १६३१ में सामरिक शक्ति द्वारा मंचूरिया को हस्तगत किया। १६३२ में दो लाख वर्ग मील क्षेत्र एवं

हजार मील रेल्वे जापान के अधिकार में आ गई। नीय अधिकारियों को बहिष्कृत कर जापानियों को नियुक्त या गया व इस नवीन राष्ट्र का नाम माचुंगो रखा गया। चाई के जापानी अधिवासियों ने जापानी-विरोधी आन्दोलन लिये टोकियो प्रशासन से सहायता माँगी। जापानी-सेना चाई में गई और चीनियो का दमन किया। राष्ट्रसंघ ने पान के माचुको-अधिकार का प्रतिवाद किया पर जापान माचुको-परित्याग अस्वीकृत कर दिया। १६३५ में जापान राष्ट्र-संघ की सदस्यता से त्याग-पत्र दे दिया।

१६३४ से ३७ तक चीन के साथ जापान का एक अस्थायी ण-विराम था, पर इसके पश्चात् जापान ने एशिया में एक नवीन समाज" के निर्माण की योजना तैयार की। १६३४ इजी अमाऊ ने (परराष्ट्र-कार्यालय का वक्ता) नवीन-समाज पृष्ठ-भूमि बनाई। जापानियों ने चीन के साथ मैत्री एवं प्राच्य में पाश्चात्य जगत् के हस्तक्षेप के विरोध की नीति अवलम्बन किया। १६३७-३८ में मांचुको के सीमान्त पर पान और रूस में सामान्य सामरिक संघर्ष हुआ। अप्रेल ३६ में एक वर्ष के लिए जापान और रूस मे मछली व्यव- य की सन्धि हुई। चीन ने जापानियों के आधिपत्य के प्रति- ध के लिए सैन्य संगठन किया। पर १६ दिसम्बर १६३६ में ांग को विरोधी सेनानायक उड़ा ले गये और इसने यह कार किया कि वे साम्यवादियों के सहयोग से बाह्य—शत्रु अवरोध करेंगे। १६३७ में जापान ने जोर से नानकिंग आक्रमण किया एवं च्यांग अपनी राजधानी को चुंगकिंग ले गया। १६३८ और ३६ मे जापान ने चीन की राजधानी हस्तगत किया और उत्तरपूर्व व दक्षिण चीन मे साम्राज्य ढ़ाया। चीनियो के दमन लिए वांग चिंग वाई (एक चीनी

विश्वास घातक) के अधीन में जापान प्रशासन की भी स्थापना की। यद्यपि चीन राष्ट्रसंघ का सदस्य था, फिर भी इसे प्रत्यक्ष सहायता न मिल सकी। द्वितीय महायुद्ध पूर्व जापान को चीन में राष्ट्रवादियों से क्रमागत संघर्ष करना पड़ा और आर्थिक दृष्टि से कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। किस प्रकार द्वितीय महायुद्ध में जापान सम्मिलित व ध्वस्त हुआ—यह हम आगे देखेंगे।

---*---

१२—विंश-वर्षीय संक्रमण काल

(१९१९ से १९३९)

यूरोप के इतिहास में बीस वर्ष का यह संक्रमण काल अनेक दृष्टिकोणों से महत्त्वपूर्ण है। इस काल में प्रत्येक राष्ट्र की आन्तरिक स्थिति भी वैदेशिक सम्बन्धो पर आधारित थी। इस प्रकार का कोई भी राष्ट्र न था—जिसमें प्राचीनता के प्रति विप्लव, विभिन्न आन्दोलन और जन जागरण न हुआ हो। १९१७ की रक्तमय क्रान्ति द्वारा रूस के रोमानव-वंश का पतन हुआ। प्रथम महायुद्ध में पराजित होने से जर्मन और आस्ट्रिया में विद्रोह हुआ और होहैनजोलैरन एवं हैब्सवर्ग वंश का अवसान हो गया। अल्पकाल के लिए इन प्रदेशों में साम्यवादी आन्दोलन का प्रसार हुआ। इटली में यद्यपि सवाय वंश ध्वस्त नहीं हुआ, परन्तु इसका प्रभाव १९२२ के विप्लवी फासिस्ट उत्थान से आच्छन्न हो गया। वल्कान में यूनान की राजसत्ता का अन्त कर १९२४ में गणतन्त्र घोषित किया गया एवं ११ वर्ष के अनन्तर सर्वजनमत से पुनः राजसत्ता की स्थापना हुई। तुर्की ने पाश्चात्य विद्रोहों का अनुकरण करके खलीफा और सुल्तान के आधिपत्य का अवसान कर गणतांत्रिक अधिनायक वाद स्थापित किया। जननायक मुस्तफा कमाल पाशा ने रोमन वर्णमाला का प्रयोग किया व महिलाओं को समानाधिकार दिया। यह पाश्चात्य सभ्यता के अनुकरण पर शिक्षा का प्रसार कर तुर्की को उन्नति की

ओर ले गया। स्पेन में आन्तरिक अराजकता का अवसान प्रीमो–डी–रीवेरा (१६२३ से १६३०) के नेतृत्व मे हुआ, परन्तु १६३० मे इसके पतन होने से पुनः स्पेन में राजनैतिक संघर्ष प्रारम्भ हो गया । प्रादेशिक राष्ट्रीयवाद, साम्यवादी और फासिस्ट हस्तक्षेप से १६३६ से १६३६ तक भयानक गृह–युद्ध की उत्पत्ति हुई–जिसमें राष्ट्रीय सेना का अधिनायक फ्रैंको विजयी हुआ । चीन में युद्ध और विप्लव साथ साथ चल रहे थे–जिसका अध्ययन हम कर चुके हैं। आयर–लैण्ड के गृह–युद्ध, भारत और पैलेस्टीन में जनता के स्वाधीनता के लिए किये जा रहे आन्दोलनों ने ब्रिटिश साम्राज्य की शान्ति को भंग किया । साम्यवादी आन्दोलन, श्रमिक जागरण एवं आम हड़तालो ने फ्रांस और ब्रिटेन के प्रशासन को दुर्बल बना दिया ।

उपर्युक्त विद्रोहों और आन्दोलनों के उद्देश्यों का निर्णय करना अत्यन्त कठिन है । पुरातन साम्राज्य के ध्वंस और राज्य—सत्ता वं अवसान से यह प्रतीत होता है कि राष्ट्रीयवाद अथवा प्रजातन्त्रवाद, नारी–जागरण आदि ही इसके साधारण लक्ष्य थे । विगत महायुद्ध के पश्चात् राष्ट्रीयवाद चीन की जागृति की मुख्य प्रेरणा, जापान की शक्ति, फासिस्ट इटली और नाजी जर्मनी के उत्थान का कारण व साम्यवादी रूस की उन्नति थी, परन्तु नवीन जुगोस्लाविया, पोलैण्ड, रूमानिया, बुल्गेरिया आदि की छोटी छोटी जातियां आत्म निर्णय–का अधिकार चाहने लगीं । बाल्टिक गणतन्त्र, एस्थोनिया, लैटाविया और लिथुयानिया को स्वाधीन राष्ट्र के रूप मे स्थापित किया गया । गणतन्त्रवाद का प्रचार इतना अधिक हुआ कि सर्वत्र नवीन संविधान इसी की भित्ति पर खड़े किये गये ।

प्रजातन्त्र वाद के प्रचार होने पर भी इसकी प्रतिक्रिया

के रूप में अधिनायक-वाद का उदय हुआ । विप्लवी साम्य-वादियों के विरुद्ध फासिस्ट इटली और राष्ट्रीय समाजवादी जर्मनी, मध्य और दक्षिण यूरोप में सशक्त हो गये । संक्षेप में यह युग एक अधिनायकवाद का युग है—जिसका आधार प्रजातन्त्रवाद है । यह अधिनायक-वाद भी निरंकुश एकतन्त्र नहीं है, अपितु लोकसत्तात्मक प्रजा—हितैषी और प्रजा के मत-ग्रहण द्वारा स्थापित है । रूस के लेनिन एवं स्टालिन, इटली के मुसोलिनी, जर्मनी के हिटलर, स्पेन के फ्रैंको आदि जननायकों के अधिनायक-वाद उल्लेखनीय हैं ।

(क) फासिस्ट इटली

महायुद्ध के पश्चात् प्रथम चार वर्ष (१६१८ से १६२२) इटली एक संक्रमण काल की ओर से निकला । पेरिस की शांति परिषद् में विजयी अन्य राष्ट्रों को पुरस्कृत किया गया, परन्तु इटली को कुछ भी लाभ नहीं हुआ । १६१६ में डी, अनुन्जियो के नेतृत्व मे विक्षुब्ध इटली ने फ्यूम को अधिकृत किया था और एक वर्ष पश्चात् इसे पुनः छोड़ दिया था । साढ़े छ लाख जनता इटली के महायुद्ध में मरी थी एवं प्रभूत अर्थव्यय करने पर भी इटली को केवल ६ हजार वर्ग मील भूखंड भरसा-लिस—संधि में प्राप्त हुआ था । इसीलिए इटली की जनता इस धारणा पर पहुंच गई कि मित्रराष्ट्रों ने इटली को विजय—फल से वंचित किया । परिणामतः इटली के समाजवादी, साम्यवादी एवं अराजकवादी विद्रोही—दलों ने इस असंतोष और आन्तरिक अराजकता का सुयोग पा कर जनता को आकर्षित करना प्रारम्भ किया । आर्थिक संकट, उद्योग और व्यवसाय की अव्यवस्था, कृषि के विकास का अभाव, बेकारी, राष्ट्रीय ऋण, श्रमिक आन्दोलन, लोक सभा और मंत्रि-मण्डल की दुर्बलता ने

मार्क्स के समाजवाद और श्रमिक संघवाद को आमंत्रित किया।

समाजवादी आन्दोलन:—१६१६ नवम्बर के प्रतिनिधि-सभा के निर्वाचन में ५७४ में से १५६ आसन समाजवादी दल को मिले। रूस के श्रमिक अधिनायक लेनिन के अनुकरण पर राजा की अवमानना की गई, प्रशासन की तीव्र निन्दाएँ की एवं आर्थिक और सामाजिक अव्यवस्थाओं के विपरीत जनता को प्रत्यक्ष रूप से विद्रोह के लिए प्रस्तुत किया। इनने रेल्वे, पोस्ट, तार आदि विभागों में सार्वजनिक हड़तालों का आयोजन किया और उद्योग—शालाओं के ध्वंस की नीति को ग्रहण किया। युद्ध से लौटी हुई सेना (जिसे भंग कर दिया था) इस असन्तोष के कारण सार्वजनिक आन्दोलनों से संबद्ध हो गई। उग्र श्रमिक-वर्ग ने छ सौ उद्योग शालाओं—जिनमें १० लाख श्रमिक काम करते थे—पर अधिकार कर लिया। परन्तु ये अनुशासन व अनुभव हीन एवं अव्यवस्थित थे, इसीलिए श्रमिक—वर्ग के हित के लिए उद्योग-शालाओं के नियंत्रण का परीक्षण असफल हुआ।

इटली के प्रशासन का व्यय चतुर्गुणित हो गया। इटलीय मुद्रा "लीरा" के मूल्य का ह्रास हो गया एवं भरण पोषण की समस्या कठिन हो गई। इटलीयों के शब्दों में—"यद्यपि युद्ध में उन्होंने विजय प्राप्त की, पर शांति का अवसान हुआ"। अधिकांश इटलीय किंकर्तव्य-विमूढ़ थे और दुर्बल राष्ट्रीय प्रशासन के प्रति घृणा करते थे।

इसी समय राजनैतिक लोकप्रिय कैथोलिक दल के नेता लुईगी स्टुर्जो (एक सिसली के पादरी) लोकसत्तावादी सामाजिक सुधार की नीति के आधार पर जमींदारी प्रथाका अवसान कर कृषिकों को भूस्वामी बनाने की योजना में लगा। १६१६ के निर्वाचन में कैथोलिक दल ने प्रतिनिधि सभा में १०१ आसन

में वृद्ध और अनुभवी सहिष्णु राज-
. प्रधान मन्त्री बना, परन्तु आन्तरिक
अधिक बढ़े कि प्रतिनिधि सभा को
पड़ा व जनता को शांति
गया। विभिन्न राजनैतिक दलों के
बढ़ गये। प्रतिनिधि-सभा में समाज-
१०७ हो गये, परन्तु एक नवीन फासिस्ट
। विभक्त सहिष्णु—दल अल्पमत में
जून में जीयोलिटी ने पद—त्याग किया
इतना दुर्बल और उदार था कि
यह नियंत्रण नहीं कर सका।

उत्थानः—इटली की भूसम्पत्ति के
के शिक्षक और शिक्षित
कि राष्ट्र को शक्तिशाली एवं शान्ति-
दल में सम्मिलित हो गये—
को दृढ़ बनाना था। इस दल का नेता
१९२२ में इटली का अधिकारी बना
मार्ग की ओर ले गया। इस समय
को जीवन का प्रधान लक्ष्य और
. सिद्धान्तित कर अनुशासन व
से संगठित हुआ। इन देश-भक्त
. थी-जिसे "काला कमीज" कहा
का नेता ३७ वर्षीय जनप्रिय नायक
मुसोलिनी था। इसके समर्थक वे नाग-
के उत्थान और अवश्यंभावी ध्वंस
थे।

मुसोलिनी (१८८३ से १९४५) इटली के रोमाग्ना प्रदेश में १८८३ में वेनिटो मुसोलिनी का जन्म हुआ। इसका पिता एक साम्यवादी लुहार और माता एक अध्यापिका थी। माता के आदेश से मुसोलिनी ने नार्मल स्कूल में शिक्षा प्राप्त की व एक शिक्षक बना। इसी समय यह एक समाजवादी दल का सदस्य भी था। स्वभावतः विद्रोही प्रकृति व परिस्थिति से असन्तुष्ट होकर यह अपनी नौकरी छोड़कर स्विट्जरलैण्ड चला गया एवं एक समाजवादी पत्र का सम्पादक बन गया। परन्तु श्रमिक संघ का संगठन एवं हड़ताल के प्रचार करने से स्विस् प्रशासन ने इसे वहिष्कृत कर दिया। विफल होकर इसने अपने देश में प्रत्यावर्त्तन किया और थोड़े समय के लिए सामरिक शिक्षा प्राप्त कर आस्ट्रेलिया चला गया। पुनः विद्रोही आन्दोलन से संश्लिष्ट होने के कारण यह यहाँ से भी निष्कासित किया गया। इटली में लौट कर १९११ में इसने ट्रिपोली के आक्रमण के प्रति विरोधिता करने के अपराध में ५ मास तक बंदी-जीवन बिताया। १९१२ में इटली के समाजवादी दल के संवाद-पत्र "*अवन्ती*" का सम्पादक बना।

समाजवादी दल से "महायुद्ध में इटली योगदान करेगा या नहीं" यह इस प्रश्न पर विच्छिन्न हो गया। दल के अधिकांश सदस्य महायुद्ध में सम्मिलित होना नहीं चाहते थे, किन्तु मुसोलिनी चाहता था। इसका यह उद्देश्य था कि इटली एक श्रमजीवी राष्ट्र है और यहाँ की जनता को समाजवादी बनाने का एक ही रास्ता है—वह यह है कि महायुद्ध में सम्मिलित होकर पूंजीवादी-वर्ग का नाश किया जाये। समाजवादी दल का परित्याग कर इसने मिलन शहर में "*इल-पोपोलो डी इटालिया*" संवाद-पत्र का प्रकाशन किया और स्वयं को विद्रोही समाजवादी कहने लगा।

मुसोलिनी (१८८३-१९४५)

१६१५ में इटली की सेना में यह साधारण सैनिक के रूप में प्रविष्ट हुआ व दो वर्ष पश्चात् घायल हो कर इटली लौट आया। आरोग्य लाभ के अनन्तर इसने सेना को छोड़ दिया एवं पुनः *"इल पोपोलो डी, इटालिया"* का संपादन प्रारम्भ किया। इसके द्वारा शान्तिवाद एवं रूसीय साम्यवाद के विपरीत इसने प्रचार किया।

मुसोलिनी की प्रतिष्ठा उसके व्यक्तित्त्व, प्रभावशील वाग्मिता, कर्मठता और स्पष्ट-वादिता के कारण बढ़ी। इसकी आकर्षणशीलता के कारण इसके अनुयायियो की संख्या दिनों दिन बढ़ने लगी। १६१६ में जब इटली में असैनिकी-करण हुआ, तो मुसोलिनी ने भूतपूर्व सैनिकों की एक समिति का आवाहन मिलन नगर में किया। इस समिति का नाम "फासिस्ट" था और इसका उद्देश्य मार्क्स के अनुयायी साम्यवादियों का शक्ति द्वारा दमन कर इटली को एक नवीन प्रगति की ओर ले जाना चाहता था। फासिस्टवादी स्वयं को नियमों से उच्च समझते थे। ये कहते थे कि यदि साम्यवादी आतंकवाद की नीति अपनायेंगे तो ये उसे प्रत्यातंकवाद से ध्वस्त करेंगे। उस वर्ष की लोकसभा के निर्वाचन में मुसोलिनी भी प्रार्थी था, परन्तु वह सफल न हो सका। अग्रिम दो वर्षों में इटली के प्रमुख औद्योगिक केन्द्रो में फासिस्ट समिति की शाखाएँ विस्तृत हो गईं, एवं इसके सदस्यों ने साम्यवादियों की हड़ताल नीति का तीव्र विरोध किया। इस समय शताधिक छोटे छोटे संघर्ष साम्यवादियो से हुए और अन्त में फासिस्टों की विजय हुई। मुसोलिनी प्रचार करने लगा कि "इटली की जनता की शक्ति से ही महायुद्ध मे इटली की विजय हुई, यद्यपि प्रशासन अयोग्य और दुर्बल था। हम रचनात्मक कार्य-क्रम के लिए फासिस्ट सेना का संगठन कर रहे हैं और यह दावा करते हैं कि प्रशासन के

अधिकारी फासिस्ट ही होने चाहिएँ, क्यों कि ये ही प्रथम महायुद्ध में इटली को सम्मिलित कर विजय मार्ग की ओर ले गये थे। अप्रेल १९२१ में निर्वाचित ३५ फासिस्ट सदस्यों ने प्रतिनिधि सभा में राष्ट्रीय फासिस्ट दल का संगठन किया। पुरातन रोम-अभिवादन पद्धति "इलड्यूस" का इनने अनुसरण किया। छोटे छोटे डंडों का संगठन और कटारी ही इनके दल का प्रतीक था।

अक्टूबर १९२२ में नेपिल्स में फासिस्टों के एक सम्मेलन का आयोजन किया। ४० हजार स्वयं सेवको ने इस अवसर पर शहर में परेड की एवं सम्मिलित सदस्यों को लक्ष्य कर मुसोलिनी ने महत्त्वपूर्ण भाषण देते हुए कहा—"यदि प्रशासन का भार हमें नहीं दिया गया, तो हम शक्तिद्वारा शासन को पदच्युत करेंगे"। परन्तु उसने राजकीय शासन—प्रणाली में अपना विश्वास प्रकट किया। २७ अक्टूबर को नेपिल्स से फासिस्ट सेना ने रोम मे प्रवेश किया। सहिष्णु प्रधानमन्त्री लुईगी फैक्टा ने पदत्याग किया एवं मुसोलिनी ने लोक-सभा को एक वृहत् पत्र मे अपनी सर्वोच्च अधिकारिता का पत्र दिया और दावा किया कि—'भवन को भंग किया जाये, नवीन निर्वाचन, वित्तका सुधार, शक्ति शाली विदेश-नीति एवं मंत्रि मण्डल में पांच फासिस्ट सदस्य हों, अन्यथा शक्तिप्रयोग किया जायेगा"। अधिकांश लोकसभा के सदस्यों ने इसे केवल शून्य धमकी समझा, इसलिए राजा विक्टर ईमानवेल को मुसोलिनी के दमन के लिए विशेष नियम घोषित करने का अनुरोध किया। दूरदर्शी राजा ने २९ अक्टूबर को मुसोलिनी को मंत्रिमण्डल निर्वाचित करने के लिए आमन्त्रित किया। मुसोलिनी ने इस समय घोषित किया था कि "कल से इटली में मन्त्रिमण्डल नहीं, परन्तु एक जन-प्रिय प्रशासन प्रारम्भ होगा"। नव

निर्वाचित मन्त्रि मण्डल के १५ सदस्यों में ४ फासिस्ट थे एवं समाजवादी एक भी नहीं था। मुसोलिनी प्रधानमन्त्री था।

फासिस्ट एकाधिकार— आतंकित लोक—सभा से सुचतुर मुसोलिनी ने एक वर्ष के लिए विशेष संकट कालीन अधिकार प्राप्त किये एवं १९२३ के अन्त तक अत्यन्त सतर्कता के साथ शासन के कार्य—क्रम को नियंत्रित किया। इस काल में संपूर्ण राष्ट्र में फासिस्ट संगठन की शाखा प्रशाखाएँ स्थापित की गईं, व स्थानीय प्रशासन का सुधार किया गया। इसके उच्च भाषण, गम्भीर आवाज, विशाल आँखें, असीम श्रम एवं प्रभावशाली आकृति ने राष्ट्र, राजा व लोक—सभा को चमत्कृत किया। अपने अदम्य साहस से इसने समग्र राष्ट्र में शान्ति स्थापित की। हड़ताल का अवसान हुआ एवं समाजवादी आन्दोलन कारी दंडित किये गये। बेकारी का भी आंशिक हल हुआ। सार्व-जनिक निर्माण प्रारम्भ किया गया। व्यय को अल्प कर वित्त के संचय का श्रीगणेश हुआ।

नवम्बर १९२३ में मुसोलिनी ने विप्लवी निर्वाचन नियमों को पास किया। इन नियमों से प्रतिनिधि—सभा के दो तृतीयांश आसन उस राजनैतिक दल को मिलेंगे—जिसे निर्वाचन में बहु-मत प्राप्त होगा। इस प्रकार प्रतिनिधि—सभा में भविष्य के लिए भी फासिस्ट दल का प्राधान्य रहा, क्योंकि शेष एक तृतीयांश आसन विरोधी दलों में आनुपातिक दृष्टि से विभाजित हो जाते थे। १९२४ अप्रैल के प्रथम निर्वाचन में उपर्युक्त नवीन नियम के अनुसार ७५ लाख मतदाताओं में से ४५ लाख मत फासिस्ट दल को प्राप्त हुए—जिससे प्रतिनिधि सभा में दो तृतीयांश आसन इसे मिले। अल्पमत विरोधियो ने—समाजवादी, जन प्रिय कैथोलिक, सहिष्णु—एक तृतीयांश आसन विभाजित किये।

१६२५ में स्थानीय प्रशासन की निर्वाचन प्रणाली को रद्द कर ६ हजार नगर—पालिकाओं की नियुक्ति प्रधान—मन्त्री ने प्रारम्भ की। एक विशेष नियम द्वारा मुसोलिनी लोक सभा के स्थान पर केवल राजा के प्रति उत्तरदायी बन गया एवं उसकी उपाधि "प्रशासन के सर्वोच्च अधिकारी" हो गई। मन्त्रि मंडल की नियुक्ति एवं पदच्युति का इसे सर्वाधिकार था।

जून १६२४ मे प्रतिनिधि—सभा के समाजवादी नेता *गियाकोमो मेटियोटी*—जो कि फासिस्ट आंतरिक गृहमन्त्री के भ्रष्टाचार को प्रकाशित करने की धमकी देता था—अकस्मात् अदृश्य हो गया। दो मास के अनन्तर इसकी मृत—देह एक नदी में मिली। मुसोलिनी ने इस हत्याकांड का कोई दायित्त्व नहीं लिया, एवं प्रकाशन के प्रतिबंध व विशेष सामरिक व्यवस्था से आतंक की सृष्टि की। राजनैतिक विद्रोहियों को बन्दी बनाया गया व समालोचकों को धमकी से शान्त किया गया। स्टुर्जो एवं समाजवादी नेता निर्वासित हो गये और शेष विरोधी फासिस्ट मतावलम्बी हो गये। १६२५ के अन्त मे इटली में पूर्ण रूप से मुसोलिनी का अधिनायकत्त्व स्थापित हो गया।

१६२५ से १६२८ तक के काल मे प्रतिनिधि सभा के बहुमत प्राप्त फासिस्ट दल ने शासन के प्रति विरोधी अधिकारियों को पदच्युत एवं विपरीत राजनैतिक दल को भंग करने का अधिकार प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त राजनैतिक अभियोगियो के विचार के लिए विशेष न्यायालय की स्थापना, विद्रोहियों की संपत्ति की जब्ती, समाचार—पत्रों का नियन्त्रण आदि के लिए अतिरिक्त नियम स्वीकृत किये गये। नियम—प्रस्तुति एवं किसी भी अभियुक्त व्यक्ति को उचित दंड देने के विशेष अधिकार मुसोलिनी को दिये गये। प्रदेशों में राज्यपाल (*पोडेस्ट्स*), जिलों में

जिलाधीश *(प्रिफेक्ट)* व नगरों में उपजिलाधीश *(सब प्रिफेक्ट)* नियुक्त करने की शक्ति भी इसे मिली। १६२८ में एक विशेष नियम द्वारा लोक सभा की निर्वाचन प्रणाली को सर्वजन—मत में परिवर्त्तित किया गया—अर्थात् फासिस्ट दल द्वारा अनुमोदित प्रार्थियों की सूची में जनता केवल संमति या निषेध ही प्रकट करेगी। संक्षेप मे इटली में राजनैतिक प्रजातन्त्रवाद का अवसान एवं व्यक्तिगत स्वतन्त्रता संकीर्ण हो गई।

अधिनायक मुसोलिनी—जनता की दृष्टि में इटली का केन्द्रीय प्रशासन वैधानिक रूप से ही चल रहा था। राजा ही राष्ट्र का नाम मात्र का सर्वाधिकारी था। लोकसभा—जिसमे मुख्य-समिति और प्रतिनिधि सभा ये दो भवन थे—नियम बनाने की अधिकारिणी थी, एवं मन्त्रिमंडल उसी के प्रति उत्तरदायी था। वस्तुतः केवल एक फासिस्ट दल ने समग्र प्रशासन पर नियन्त्रण कर रखा था। फासिस्ट महासभा का अध्यक्ष मुसोलिनी था और यह महासभा ही नवीन नियम, वैदेशिक नीति आदि की रूप रेखा प्रस्तुत करती थी। फासिस्ट विरोधियो को बन्दी व निर्वासित किया गया। *"मैजान्स"* आदि गुप्त समितियों को भंग किया गया। मुसोलिनी ने कहा था—"इटली मे विरोधियों के लिए कोई स्थान नही है"। छोटे छोटे बालक बालिकाओं (८ वर्ष से ही) को सैनिक शिक्षा दी गई एवं फासिस्ट "युवक आन्दोलन" राष्ट्रीय संगठन का एक नवीन चिन्ह बन गया। तलाक पर प्रतिबन्ध लगाया गया एवं वैज्ञानिक जन्म-नियंत्रण को दंडनीय अभियोग समझा गया। संक्षेप में फासिस्ट दल यह चाहता था कि जो भी आदेश वह दे, जनता उसका निर्विरोध पालन करे।

१६३६ में फासिस्ट दल के २० लाख सदस्य थे, जिनका

नेता मुसोलिनी था। इसकी कार्यकारिणी को राष्ट्रीय संचालन-समिति कहा जाता था। फासिस्ट—दल के प्राधान्य के साथ साथ इटली में वैधानिक शासन तंत्र का अवसान हो गया। मुख्य समिति के सदस्य भी आजीवन के लिए मुसोलिनी की संमति से राजा द्वारा मनोनीत किये जाने लगे। १६३१ में एक विशेष नियम द्वारा मृत्यु—दंड का पुनस्थापन किया गया एवं राजा, रानी, राज्य तथा प्रधानमन्त्री के जीवन पर आक्रमण करने वालों के लिए यह दंड नियत हुआ। एक विशेष गुप्त समिति "ओवरा" मुसोलिनी ने लोगों के चारित्रिक निरीक्षण एवं फासिस्ट विरोधी आन्दोलन के दमन के लिए नियुक्त की। समाजवादी नाम रखना तक निषिद्ध कर दिया गया।

१६३४ में एक अतिरिक्त नियम से ८ और ३२ वर्ष के व्यक्तियों पर अनिवार्य सैनिक शिक्षा लागू की गई। यह शिक्षा ३ वर्ष तक नागरिकों (फासिस्ट दल की) में एवं एक वर्ष तक सेना में संमिलित होकर प्राप्त करनी होती थी। इस राष्ट्रीय जागरण के कार्यक्रम में महिलाओं को विशेष महत्त्व नहीं दिया गया।

प्रथम सुसंस्थित राज्य—रोसोनी के नेतृत्व में इटली में श्रमिक संघवाद का प्रचार प्रथम महायुद्ध के काल में इतना अधिक हुआ कि राजनैतिक प्रशासन प्रणाली को रद्द कर आर्थिक वर्ग नियंत्रित प्रशासन-प्रद्धति के प्रयोग के लिए श्रमिक-वर्ग व्याकुल हो गया। १६१६ में राष्ट्रीयवादी श्रमिक संघ-जो कि व्यक्तिगत सम्पत्ति में विश्वास करता था, साम्य-वादियों से प्रत्यक्ष संघर्ष करने लगा। विजयी फासिस्ट श्रमिक-संघवाद इतनी प्रगति की ओर बढ़ा कि १६२५ में उद्योग-पतियों ने यह स्वीकार कर लिया कि श्रमिकों का एकमात्र प्रतिनिधि "फासिस्ट संघ" ही है। १६२६ में संघीय फासिस्ट

श्रमिकों की सदस्य संख्या २४ लाख थी एवं मुसोलिनी ने इनके नियन्त्रण के लिए विविध नियमों का उपयोग किया। औद्योगिक विवादों के निर्णय के लिए ६ श्रमिक, ६ पूंजीपति एवं एक सामान्यवर्ग कुल मिलाकर १३ विशेष प्रतिनिधि समितियां स्थापित की गईं। श्रमिक संघ को सामूहिक ठेका लेने व श्रमिकों पर कर लगाने के अधिकार दिये गये, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय अन्य किसी संगठन से यह वर्ग संबन्ध नहीं रख सकता था; इस समिति का प्रधान मुसोलिनी था।

एक विशेष घोषणा द्वारा मुसोलिनी ने फासिस्ट विरोधी श्रमिक संघ को भंग, तालाबन्दी व हड़ताल को निषिद्ध एवं १६ श्रमिक न्यायालय स्थापित किये-जिनके विरुद्ध कोई आवेदन नहीं हो सकता था। १६२७ मे *"श्रमिक के आधार भूत अधिकार"* नामक एक घोषणा पत्र प्रकाशित किया गया-जिसमें व्यक्तिगत संपत्ति का अधिकार श्रमिक वर्ग को दिया गया एवं उद्योग-पतियों को सप्ताह मे छ दिन व आठ घंटे का कार्यकाल, जीवन-बीमा, अस्वस्थता, दुर्घटना, वार्धक्य व सैनिक शिक्षा के लिए अवकाश निर्धारित करने को बाध्य किया गया। श्रमिक निगमो को श्रमिक वर्ग की शिक्षा व नियुक्ति के प्रबन्ध के लिए अतिरिक्त अधिकार दिये गये। १६२८ के निर्वाचन संशोधन नियम के अनुसार उपर्युक्त १३ समितियों को राज-नैतिक अधिकार भी दिये गये एवं इसके दो वर्ष पश्चात् एक निगम-मन्त्री के अधीन मे इन्हे सुसंगठित कर एक निगम स्थापित किया गया। १६३४ मे एक राष्ट्रीय समिति-जिसमे विभिन्न निगमो के प्रतिनिधि थे, प्रशासन को आर्थिक और राजनैतिक परामर्श देने के लिए स्थापित की गई। १६३८ मे प्रतिनिधि-सभा का स्थान निगम-संघ ने ग्रहण किया, जिसमें ७०० सदस्य थे व प्रत्येक सदस्य मुसोलिनी द्वारा मनोनीत होता

था। मार्च १६३६ में निगम-सभा का प्रथम अधिवेशन राजा की अध्यक्षता में हुआ। इसी प्रकार इटली में सार्वजनिक निर्वाचन-प्रथा का अवसान हो गया।

धार्मिक मैत्री—कैथोलिक जनता को अपने दल में सम्मिलित करने के उद्देश्य से मुसोलिनी ने पोप पायस एकादश के साथ एक स्थायी सन्धि के लिए वार्तालाप प्रारम्भ किया। हम देख चुके हैं कि १८७० के पश्चात असन्तुष्ट पादरी-वर्ग इटली के राजनैतिक दलों से पूर्णशः असहयोग कर रहा था, परन्तु १६२६ की संधि में मुसोलिनी ने पोप के राज्य की सीमा वर्तमान भैटेकन और सैन्ट पीटर (रोम के वाहर) तक निर्धारित कर सर्वसत्तात्मक स्वाधीन राज्य वना दिया। इसके वदले में पोप ने इटली के रोम अधिकार को मान्यता दी एवं अन्तर्राष्ट्रीय और राजनैतिक वाद-विवाद में पूर्णतया निष्पक्ष रहने का आश्वासन दिया। इस मैत्री-संधि के साथ साथ एक आर्थिक समझौता भी हुआ, जिससे पोप को ४० करोड़ रुपया प्रतिवर्ष १८७० से १६२६ तक के लिए क्षतिपूर्ति के रूप में इटली ने देना स्वीकार किया। भविष्य में पोप इटली राष्ट्र की सम्मति से ही इटली के पादरियों की नियुक्ति करेगा; इटली उन्हे वेतन देगा एवं उन्हे राष्ट्र और प्रशासन के प्रति उत्तरदायी होना होगा। राष्ट्र के शिक्षणालयों में धार्मिक शिक्षा पादरियों द्वारा ही दी जायेंगी, परन्तु ये पादरी व इनके अधिकारी राजनैतिक आन्दोलन नहीं कर सकेंगे। विवाह और तलाक गिरजा ही के अधिकार माने गये एवं कैथोलिकों के के साथ इटली राष्ट्र की पूर्ण मैत्री ५८ वर्ष के संघर्ष के अनन्तर स्थापित हो गई। इटली के राष्ट्रीय अवकाश के दिन-जो पहले २० सितम्बर था व इटली ने रोम को इसी दिन अधिकृत किया था—को ११ फर्वरी में (सन्धि-हस्ताक्षर के

दिन) बदल दिया गया। १९३१ में कैथोलिकों की सामान्य समिति को मुसोलिनी ने भंग कर दिया एवं सामान्य संघर्ष होते रहे। १९३८ में यहूदी-विरोधी विशेष नियमों की पोप ने तीव्र निन्दा की थी।

शिक्षा एवं प्रगतिः—फासिस्टवादियों ने सार्वजनिक शिक्षा की विशेष व्यवस्था की थी। शिक्षणालयों की संख्या बढ़ी एवं अनिवार्य उपस्थिति के लिए अतिरिक्त नियम बनाये। १९२१ मे जब मुसोलिनी अधिनायक बना था, केवल ३० लाख बालक बालिकाएँ प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, १९३९ में इनकी संख्या ५० लाख से भी अधिक हो गई थी। केवल एक पंचमांश जनता ही अशिक्षित थी। स्कूलों के शिक्षक अधिकांशतः फासिस्टवादी थे एवं पाठ्य-पुस्तकें भी इसी के अनुरूप थी। स्कूलों की शिक्षा के पश्चात् सामरिक शिक्षा प्राप्त करना भी शिक्षा का अनिवार्य अंग माना जाता था।

मुसोलिनी ने राष्ट्रीयवाद का भी प्रचार किया व अतीत के गौरव और भविष्य की प्रतिष्ठा के लिए सच्चे देश भक्तों को आमंत्रित किया, बेकारी को मिटाने के लिए प्रशासन ने सार्वजनिक निर्माण प्रारम्भ किया। पुरातन स्तंभो व स्मारकों का जीर्णोद्धार किया गया। जूलियस सीजार और आगस्टस् की मूर्तियों का स्थापन कर जनता को अतीत के दर्शन कराये। आधुनिक उन्नति से इटली के महान् भविष्य की आशाएँ हुई। विराट् रेल्वे व युद्ध और व्यावसायिक जहाजों की इतनी वृद्धि हुई कि १९३९ मे ये जर्मनी और फ्रांस के समान हो गये। प्रसिद्ध इटलीय वैज्ञानिक मार्कनी ने बेतार का आविष्कार किया एवं विश्व के साथ यातायात के संबन्ध स्थापित हो गये। वायुयान भी बनाये गये। कृषि का विकास हुआ। कोयले और लोहे के अभाव की पूर्ति के लिए जल स्रोतों से बिजली का उदय किया

गया एवं १९३४ में प्रथम महायुद्ध की अपेक्षा उद्योग भी द्विगुणित हो गया।

आर्थिक आत्म-निर्भरता फासिस्ट नीति का प्रधान अंग थी। संरक्षण नीति के प्रयोग से व्यापार की वृद्धि हुई एवं आर्थिक पुनर्गठन के लिए बैंक और सिक्कों का प्रचलन किया गया। परन्तु १९२९ मे पुनः आर्थिक संकट का उदय हुआ एवं इटली की परिस्थिति अत्यन्त गंभीर हो गई।

वैदेशिक नीतिः—साम्राज्यवाद फासिस्ट चिन्तनशक्ति और आकांक्षा का प्रधान लक्ष्य था। प्रसिद्ध इटलीय लेखक मेरियो कार्ली ने लिखा था-"युद्ध की भावना इटली-निवासियों के चरित्र की भित्ति है और यह भावना फासिस्टो की देन है। इतिहास में हमें एक भी ऐसा मुहूर्त्त बताओ, जिसमे इटली निवासियो ने संग्राम नहीं किया हो"। मुसोलिनी ने एक लेख में लिखा था—"युद्ध ही मानवीय शक्ति का पर्याप्त मात्रा में विकास करना है और साहसी जनता की प्रतिष्ठा को अमर बनाता है"। हम देख चुके हैं कि फासिस्ट इटली के कार्यक्रम में सामरिक वातावरण किस प्रकार व्याप्त था।

साम्राज्यवाद का प्रमुख कारण इटलीय जनता की प्रभूत वृद्धि था। फ्रांस के एक वर्ग-मील मे जहां १८४ व्यक्ति रहते थे, वहाँ इटली मे ३२३। मुसोलिनी ने कहा था—"यदि इतिहास मे इटली अपने गौरव को बढ़ाना चाहता है, तो अर्ध शताब्दी के मध्य इटली की जनसंख्या ६ करोड़ हो जानी चाहिए। यदि जन-संख्या की वृद्धि नहीं हुई, तो हम साम्राज्य स्थापित नहीं कर सकते हैं, केवल एक उपनिवेश रह जायेंगे"।

गुण की अपेक्षा परिमाण को अधिक महत्त्व देकर फासिस्ट प्रशासन ने स्थानान्तरण और ब्रह्मचर्य पर प्रतिबंध लगाया। बाल्य-विवाह और परिवार की वृद्धि को प्रोत्साहित किया

गया। १९३३ में एक संवाद-पत्र के कथनानुसार ९३ इटलीय माताओं ने १२९८ संतान उत्पन्न किये, एवं बड़े दिनों के समय पर "मातृ-पूजा-दिवस" मनाया जाने लगा। १९३९ में इटली की जनसंख्या ४ करोड़ ४० लाख थी।

जनसंख्या की वृद्धि की अपेक्षा इटली के साधन भी अपर्याप्त थे। तैल, लोहा, कोयला आदि आवश्यक सामग्री का भी विदेशो से आयात करना पड़ता था। आर्थिक जीवन की उन्नति के लिए उपनिवेश-विस्तार भी अनिवार्य नीति मानी जाने लगी। दर्शन की दृष्टि से फासिस्टो ने साम्राज्यवाद का समर्थन किया। मुसोलिनी के शब्दो मे "आर्थिक, राजनैतिक और भौगोलिक कारण इटली की विस्तार की नीति के समर्थक थे। फासिस्ट सिद्धान्त में साम्राज्य केवल एक सामरिक, व्यावसायिक व प्रादेशिक शब्द नहीं है, परन्तु एक आध्यात्मिक और नैतिक मार्ग है। फासिस्टवाद साम्राज्य विस्तार को शक्ति का प्रकाश समझता है"। यह मनोवृत्ति इटली की वैदेशिक नीति को संकट की ओर ले गई। १९२२ में नौ, स्थल एवं विमान शक्ति मुसोलिनी के साक्षात् नियंत्रण में आगई एवं संवाद-पत्रो को नियन्त्रित करने के लिए मुसोलिनी ने अपने दामाद काउण्ट सियानो को "प्रकाशन-विभाग" का सर्वोच्च अधिकारी नियुक्त किया।

मुसोलिनी ने महायुद्ध के पश्चात फ्रांस के विरुद्ध आचरण की नीति को ग्रहण कया। फासिस्टों ने फ्रांस को ही पेरिस के सम्मेलन मे इटली को यथोचित पुरस्कृत न करने का दोषी ठहराया। युद्ध की तैयारी करने के उद्देश्य से पूर्व यूरोप मे इटली ने अपनी शक्ति को संगठित किया। १९२३ में डोडेकानिस द्वीप व १९२४ में फ्यूम को हस्तगत किया। १९२५ मे जुगोस्लाविया के साथ व्यावसायिक संधि की—जिससे इटालियों को

जुगोस्लाविया में विशेष सुविधाएँ मिलीं, परन्तु दक्षिण स्लाव "इरीडेन्ट" आन्दोलन ने इटली के साथ मैत्री की तीव्र निन्दाएँ व प्रतिरोध करना प्रारम्भ कर दिया। १६३१ में जर्मनी और आस्ट्रिया की मित्रता का समर्थन करने के लिए प्रथम महायुद्ध की क्षति पूर्ति की समाप्ति, निरस्त्रीकरण एवं जर्मनी व इटली के लिए भरसालिस की संधि की शर्तों के संशोधन की नीति का प्रचार किया।

१६३२ में विदेश-मन्त्री ग्रान्डी ने उत्तर अफ्रीका के प्रदेशों के पुनर्विभाजन की घोषणा की। १६३४ में इंग्लैंड की सहायता से किया मिश्र और इटली अधिकृत सिरनिका के सीमान्त का निर्धारण किया गया। इसी समय इथियोपिया ('ऐबीसीनिया') के हैल सलासी ने अपनी सेना को संगठित किया एवं इटली अधिकृत सौमालिलैण्ड व इरीट्रिया में इटली की सामरिक योजना से आतंकित होकर अपने राज्य के संरक्षण का पूर्ण प्रवन्ध मित्रराष्ट्र को आमन्त्रित कर किया। सीमान्त में इथियोपिया और इटली के सामान्य संघर्ष को निमित्त वना कर इटली ने अपनी सेना को अफ्रीका में भेजा। १६३५ जनवरी में मुसोलिनी ने फ्रांस के साथ संधि की-जिसको इतिहास में *"लावल-मुसोलिनी"* संधि कहा जाता है। इस संधि के अनुसार पारस्परिक औपनिवेशिक मतभेद का अवसान हुआ एवं जर्मनी के राजनैतिक परिवर्तन से यदि आस्ट्रिया की स्वाधीनता विपन्न हो जाये, तो पारस्परिक सहयोग से उसकी रक्षा करना निश्चित किया गया। फ्रांस ने इसी समय इटली को फ्रांसीय सोमालिलैएड, फ्रांसीय रेल्वे (इथियोपिया की राजधानी आदिस अवावा से एडेन के समुद्र-तटीय वन्दरगाह जीवुती तक कुल ४५ हजार वर्ग मील क्षेत्र) दिया। मुसोलिनी ने अपने जीवनचरित्र में लिखा है कि "गुप्त

रूप से लावल ने मुझे इथियोपिया अधिकृत करने को भी प्रोत्साहित किया"।

फासिस्ट प्रशासन ने निर्दोष इथियोपिया के आक्रमण के समर्थन के लिए अफ्रीका की उपनिवेश-वंचना को निमित्त बनाया। असभ्य अफ्रीका-निवासियों को सभ्य बनाने के उद्देश्य का भी प्रचार किया गया एवं प्राकृतिक साधनों की प्राप्ति को भी लक्ष्य बनाया गया। जापान और जर्मनी द्वारा राष्ट्रसंघ के परित्याग एवं फ्रांस के समर्थन से अन्तर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप असम्भव हो गया।

अक्टूबर १९३५ मे अफ्रीका के शेष स्वाधीन प्रदेश ऐबिसीनिया व इथियोपिया-सात मास व्यापी संग्राम के पश्चात् (मई १९३६) इटली के अधिकार में आ गये। सम्राट् हैल सलासी ने अपने परिवार को लेकर एक ब्रिटेन के युद्ध-जहाज मे आश्रय ग्रहण किया। यद्यपि इटली और इथियोपिया दोनो राष्ट्र-संघ के सदस्य थे एवं राष्ट्र संघ की बिना अनुमति के पारस्परिक संघर्ष नहीं हो सकता था, फिर भी इटली ने इन सब की अवहेलना कर विश्व-शान्ति को भंग करने का प्रयत्न किया। राष्ट्र-संघ ने इटली के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्धों का प्रयोग किया-जिसमें विश्व के ५ राष्ट्र सम्मिलित थे। पर इटली ने इन सब को अमान्य कर तीन लाख पचास हजार वर्ग मील और ७० लाख निवासियों की जन्म-भूमि इथियोपिया को अपने साम्राज्य में विलीन कर लिया व राजा विक्टर ईमानवेल ही इसका भी सम्राट् बन गया। १९३७ मे इटली ने राष्ट्र-संघ का त्याग किया। जर्मनी और जापान ने इटली के इस अधिकार की स्वीकृति दी, एवं तीनों राष्ट्रो में किस प्रकार रोम, बर्लिन, टोकियों मे संधि हुई-उसका अध्ययन हम आगे करेंगे। १९३८ में जर्मनी ने जब आस्ट्रिया को हस्तगत किया, तो मुसोलिनी ने हिटलर का समर्थन किया था। १९३९ मे इटली ने एलबेनिया पर आक्रमण कर

राजा जाग प्रथम को पराजित किया एवं उसे इटली के साम्राज्य में (११ हजार वर्ग मील १ लाख जन संख्या) लीन कर लिया।

समीक्षा——फासिस्ट सिद्धान्त साम्यवाद और शान्तिवाद के विरुद्ध सामरिकता, राष्ट्रीयता और अधिनायकता में विश्वास रखता था। कोकर ने सत्य कहा है–"यदि एक केन्द्री–भूत शक्ति जीवन, शासन और राष्ट्र को नियंत्रित करे, तो वहां पर स्वतंत्रता, कला और साहित्य का अवसान अवश्यंभावी है"। विख्यात वैज्ञानिक आयन् स्टाइन के शब्दो मे "फासिस्ट सिद्धान्त के प्रचार ने विज्ञान के उत्कर्ष पर प्रतिबन्ध लगा दिया। वह विज्ञान जगत् के कल्याण की ओर न लेजा कर विश्व के ध्वंस की ओर ले गया"। अनुशासन एवं सामरिक शिक्षा की आवश्यकता प्रत्येक स्वाधीन राष्ट्र की जनता के लिए है, परन्तु इसका अतिशय मात्रा में प्रयोग करने से राष्ट्र का ध्वंस सुनिश्चित हो गया। यह सत्य है कि वैद्युतिक गति की तरह इटली की उन्नति हुई, परन्तु यह विद्युत् के चाकचक्य ही की तरह क्षण-भंगुर थी। किस प्रकार प्रजातन्त्रवाद का ध्वंस कर अधिनायक-वाद ने जनता की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर हस्तक्षेप किया इसका अध्ययन हम पहले कर चुके है। फासिस्ट प्रशासन के कार्यक्रम सामरिक सम्बन्धी, आर्थिक और सामाजिक थे-इन्होंने राष्ट्र के व्यय को चौगुना बना दिया। आर्थिक संकट की अवहेलना करके फासिस्ट प्रशासन ने अपरिमित व्यय प्रारम्भ किया एवं द्वितीय महायुद्ध मे किस प्रकार इटली का ध्वंस हुआ, इसे भी हम आगे देखेंगे। शक्ति और धमकी के प्रयोग से जनता का स्वाभाविक सहयोग इन्हे प्राप्त नहीं हो सका एवं जनता इनसे मुक्ति पाने के लिए सुयोग की प्रतीक्षा करने लगी। परीक्षण के आधार पर ग्रीन ने सत्य ही कहा है—"राष्ट्र की नींव शक्ति नहीं, अपितु जनता की संमति है"। इसीलिए प्रजातन्त्रवाद अधिनायकवाद

से उत्कृष्ट है। अधिनायक वाद के प्रवर्त्तक यद्यपि प्रभाव-पूर्ण, योग्य और सशक्त थे किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् अपनी न्यूनताओं के कारण यह प्रणाली जीवित न रह सकी।

(ख) अप्रसन्न फ्रांस

भरसालिस संधि के पश्चात् फ्रांस की लोक-सभा का नवीन निर्वाचन हुआ-जिसमे सहिष्णु और संकीर्णवादियो ने संमिलित रूप से राष्ट्रीय दल का निर्माण किया था। क्लीमेन्सो, पैन्कारे त्रियान्ड, मिलेराण्ड आदि इसके प्रमुख नेता थे। इनके विरोधी हेरियट के नेतृत्त्व मे उग्र समाजवादी थे। १६१६ से १६२४ तक राष्ट्रीय दल ही फ्रांस के प्रशासन का अधिकारी था।

१६२० के राष्ट्रपति के निर्वाचन मे प्रधानमन्त्री क्लीमेन्सो पराजित हुआ एवं मिलेराण्ड ने यह पद ग्रहण किया। अल्पकाल पश्चात् मिलेराण्ड प्रधानमन्त्री से राष्ट्रपति बन गया एवं १६२४ मे लोकसभा में उग्रदल का बहुमत आने से इसे पद त्याग करना पड़ा। मिलेराण्ड का उत्तराधिकारी नियमज्ञ डुमेर्गो सात वर्ष तक शासन चलाता रहा। १६३१ मे पाल डोमर-जो कि मुख्य समिति का अध्यक्ष रह चुका था, राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ, परन्तु मई १६३२ मे साम्यवादियो ने इसकी गुप्त-रूप से हत्या की। राष्ट्रीय संसद् ने एलवर्ट लेब्राँ को राष्ट्रपति निर्वाचित किया व इसके कार्यकाल (१६४० मे) फ्रांस जर्मनी के आधीन मे चला गया।

महायुद्ध के अनन्तर फ्रांस में दो प्रमुख समस्याएँ थीं। प्रथम पुनर्गठन और दूसरा भरसालिस की संधि का पालन-विशेषतः क्षतिपूर्ति की शर्तें। यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रथम महायुद्ध में फ्रांस की १३ लाख ६४ हजार की मृत्यु और ७ लाख चालीस हजार के घायल हो जाने के कारण जन शक्ति अत्यन्त नष्ट हुई थी—अर्थात् ५७ प्रतिशत सेना का ध्वंस हो गया। युवको का

अर्द्धांश समाप्त हो गया-जिसकी पूर्ति अनेक वर्षों तक नहीं हो सकी। विदेश मन्त्री तारडू ने सत्य ही कहा था कि "इस क्षति का अनुमान करने के लिए इन्हीं अंको का अमेरिका की जनसंख्या पर प्रयोग कीजिये"।

जन संख्या के ह्रास के साथ साथ आर्थिक हानि भी डेढ सौ करोड के लगभग हुई थी एवं उद्योग और व्यवसाय के लिए अर्थ का अभाव हो गया था। तीन लाख भवन और छै हजार सार्वजनिक भवनों का ध्वंस हुआ था। २० लाख व्यक्ति आतंकित होकर देश त्याग गये थे व २० हजार उद्योग-शालाएँ भी छिन्न भिन्न हो गईं थी। १३ हजार वर्ग मील में पुनस्थापन के कार्य को दो वर्ष में करोड़ो रुपयों का व्यय कर पूर्ण किया गया, परन्तु क्षतिपूर्ति के लिए जर्मनी ने अपनी आर्थिक असमर्थता प्रकट की। फ्रांस की मुद्रा का एक दशमांश ह्रास हो गया।

आन्तरिक प्रशासन (१९१९ से १९३९)—१९२१ में महायुद्ध के पश्चात् आन्तरिक संशोधन के लिए संकीर्णवादी और प्रगतिशील दलों ने समन्वित होकर ब्रियाण्ड को प्रधान-मन्त्री निर्वाचित किया, परन्तु आर्थिक स्थिति की गम्भीरता के कारण १९२२ मे भूतपूर्व राष्ट्रपति पेंकारे (१९१३ से १९२०) प्रधान-मन्त्री निर्वाचित हुआ। रेमण्ड पैंकारे १८६० में लोरेन प्रदेश में उत्पन्न हुआ था। यह योग्य नियम-विशेषज्ञ, दूरदर्शी वित्तज्ञ व अक्लान्त परिश्रमी व्यक्ति था। साधुता, सहिष्णुता, और अगाध ज्ञान का भंडार होने से जनता इसका इतना सम्मान करती थी कि फ्रांस के राष्ट्रीय-जीवन का यह एकमात्र निर्माता था। इसने विदेशों से ऋण लिया, करकी वृद्धि की और जर्मनी के रुर प्रदेश को (१९२३) युद्ध की क्षति पूर्ति के लिए अधिकृत किया, पर मूल्य की वृद्धि और प्रत्यक्ष कर के आधिक्य से वामपंथियों के प्रचार ने इसे अलोकप्रिय बना

दिया। १६२४ में वामपंथी उग्र दल का नेता भू० पू० प्रोफेसर हैरियट प्रधान मन्त्री निर्वाचित हुआ। हैरियट ने डावस-योजना को स्वीकार किया एवं इंग्लैण्ड रूस और जर्मनी के साथ "जेनेवा संधि" पर हस्ताक्षर किये। इसके द्वारा प्रस्तावित अतिरिक्त आयात-कर को मुख्य-समिति द्वारा अमान्य करने पर १६२५ मे इसने पदत्याग किया। एक वर्ष तक शासन की स्थिति अत्यन्त डांवाडोल रही।

फ्रांसीय मुद्रा फ्रांक के मूल्य का एक दशमांश ह्रास होने से जुलाई १६२६ मे पैकारे ने पुनः प्रधानमन्त्री का पद ग्रहण किया। इसकी नीति थी कि समग्र राजनैतिक दल सम्मिलित होकर राष्ट्र के संकटकाल मे फ्रांक के मूल्य को पुनस्थापित करने में योग दें। १६२६ मे १२ वर्ष के पश्चात् सर्वप्रथम आय और व्यय से बजट को संतुलित किया गया एवं फ्रांक का मूल्य द्विगुणित हुआ। आर्थिक संकट को दूर करने के लिए फ्रांस की जनता को २० प्रतिशत (आय का) कर देना पड़ा, अतिरिक्त योजनाओं को स्थगित और सेना को भंग करना पड़ा। जुलाई १६२६ में पैंकारे ने पद-त्याग किया। जनता ने उसे फ्रांस का "मुक्तिदाता" कहा।

जुलाई १६३० मे प्रधानमन्त्री तार्दू ने श्रमिकों के लिए बीमारी, वार्धक्य, आकस्मिक दुर्घटना के उद्देश्य से अनिवार्य बीमा का प्रवर्त्तन किया। इसके प्रशासन ने सैनिक-शिक्षा का काल तीन वर्ष से एक वर्ष कर दिया। तार्दू के उत्तराधिकारी हैरियट-मंत्रिमंडल ने अपने नवीन बजट में राष्ट्रीय ऋण के सूद को कम कर व्यय को घटा दिया, परन्तु लौसानी सम्मेलन में क्षतिपूर्त्ति को न्यून बनाने के जर्मनी के दावे का समर्थन करने से हैरियट का पतन हुआ। इसके पश्चात् तेरह महीने में फ्रांस में

१—इसी पुस्तक का "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध" देखिये।

५ मंत्रिमण्डल बदले। परिस्थिति अत्यन्त गम्भीर थी एवं उत्कोच और भ्रष्टाचार ने जनता की दृष्टि में प्रशासन को घृणित कर दिया। आतंकित राष्ट्रपति लेब्राँ ने भूतपूर्व राष्ट्रपति और प्रधान मन्त्री डुमेर्गो को पुनः मंत्रिमंडल बनाने का अनुरोध किया। डुमेर्गो ने राजसत्तावादी, समाजवादी व साम्यवादियों को छोड़कर संयुक्त दल के प्रतिनिधि लेकर मन्त्रिमण्डल का संगठन किया—जिसमें हैरियट, लवाल, ताद्र्‌ और मार्शल पेंता संम्मिलित थे। इस मन्त्रि-मण्डल ने भूतपूर्व प्रशासन के निन्दनीय कार्यों की जाँच की, अधिकारियों की संख्या व वेतन का ह्रास किया, परन्तु जब मन्त्रि-मण्डल ने प्रनिनिधि भवन को भंग करने के लिए विशेप अधिकार प्रधान-मन्त्री को देने का प्रस्ताव किया, तो उग्र प्रतिनिधियों ने इस प्रस्ताव को अधिनायक-वाद की पृष्ठभूमि समझ कर नवम्बर १९३४ में मन्त्रि-मण्डल को पदच्युत किया। मार्शेल में वैदेशिक-मन्त्री बार्थू और जुगोस्लाविया के राजा अलैग्जेण्डर के हत्याकाण्ड, साम्यवादियों के प्रचार, सार प्रदेश में जनमत के अनिश्चित फल की आशंका आदि सम्मिलित रूप से प्रसिद्ध डुमोर्गो मन्त्रिमण्डल के प्रमुख कारण थे।

फ्लैण्डिन-मंत्रिमण्डल अल्प-काल तक रहा, व इसके अनन्तर पियेरी लवाल जून ७, १९३५ में प्रधान मन्त्री बना। इसने राजकर्म-चारियों के वेतन और पेन्शन को न्यून कर दिया। आयकर की वृद्धि की। आवश्यक सामग्रियों के मूल्य को कम किया। नवीन सार्वजनिक निर्माण का प्रारंभ किया, परन्तु वामपन्थी समाजवादी, उग्र समाजवादी एवं साम्यवादियों ने सम्मिलित रूप से जनता-दल की स्थापना की एवं लवाल को पदत्याग के लिए बाध्य किया।

जनता दल—इसके प्रधान उद्देश्य पूंजीवादियों का अंत,

सामाजिक सुधार, प्रजातन्त्र की स्थापना, फासिस्ट सिद्धान्तों का ध्वंस एवं अस्त्र शस्त्र निर्माण-शालाओं के राष्ट्रीय करण थे। नवीन निर्वाचन में ६२ प्रतिशत आसन इसको मिले और इसके प्रमुख यहूदी नेता लिआन ब्लम ने ४ जून १६३६ में मन्त्रि-मण्डल निर्वाचित किया। फ्रांस के इतिहास मे प्रथम बार तीन महिलाएँ मंत्रियों की सचिव नियुक्त हुई। ब्लमाने सप्ताह में उद्योग शालाओं का ४४ घंटे का कार्यकाल व श्रमजीवियों के सामूहिक प्रकार की योजना, वेतन वृद्धि तथा अनिवार्य पंचायत प्रणाली का प्रयोग किया। लवाल के द्वारा न्यून किये हुए वेतनों को इसने फिर से बढ़ा दिया। कोयला-व्यवसाय का पुनर्गठन किया गया एवं एक राष्ट्रीय अन्न कार्यालय खाद्य सामग्री के नियंत्रण व वितरण के लिए स्थापित किया गया। फ्रांक के मूल्य का ३० प्रतिशत ह्रास किया गया। प्रकाशकों का नियमन किया गया व उन्हें आर्थिक सहायता को प्रकाश में लाने के लिए बाध्य किया गया। उचित मूल्य देकर अस्त्र-शस्त्र के कारखानों को भी प्रशासन ने अपने अधिकार मे ले लिया व अन्त में राष्ट्रीय बैंक को संगठित किया गया। सामूहिक रूप से श्रमिक वर्ग संतुष्ट हो गया, परन्तु राष्ट्रीय ऋण के परिशोध में ही आयका एक तृतीयांश व्यय हो जाता था। इसके समाधान के लिए ब्लम ने जब विशेष अधिकार मांगे, तो मुख्य समिति ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। जिससे ब्लम ने पदत्याग किया।

शांति के अंतिम दो वर्ष--(१६३७-१६३६) ब्लम के उत्तराधिकारी उग्र समाजवादी चाऊटैं ने सार्वजनिक निर्माण के व्यय का ह्रास किया एवं सशस्त्र गुप्त-समिति के राजसत्ता की स्थापना के गुप्त षड्यन्त्र का ध्वंस किया। मार्च १६३८ में लोक सभा ने प्रधान मन्त्री को संकटकालीन आर्थिक क्षमता

देने से निषिद्ध कर दिया-इसीलिए इस
दिया। एक मास की अवधि के परचात् दा
वना व इसके पश्चात् उग्र समाजवादी
राष्ट्रीय मन्त्रि मण्डल का नेता निर्वाचित
को लोकसभा ने सीमित विशेष अधिकार
की वृद्धि की गई व राष्ट्रीय रक्षा के लिए ज
लिया गया। सेना को वढ़ाया गया, परन्तु
वैनेश की साम्यवादी रूस के साथ सम्बन्ध
के विरोध में नवम्बर १६३८ मे उग्र समाज
दल का परित्याग किया। इसी समय नाजी
और मोरेविया अधिकार की नीति से अ
दियर ने ८ मास के लिए विशेष नियम द्वा
को नियंत्रित करने का अधिकार लोक-स
उद्योग शालाओं मे श्रमिकों का कार्यकाल
५० या ६० घंटे तक वढ़ा दिया गया। सेन
सैन्य संगठन की विशेष क्षमता दी गई।
पुनः राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ एवं लोकसभा
चन को स्थगित कर १६४२ तक विस्तृत
प्रकार सितम्बर १६४४ में जब द्वितीय मह
तो फ्रांस आर्थिक और सामरिक दृष्टि से पू

वैदेशिक नीति—१६१८ के रण-विरा
फ्रांसीय सेना ने जर्मनी से आल्सस् लोरेन
किया, परन्तु इन नवीन प्रदेशों में भाषा,
राजनैतिक अधिकारों ने एक जटिल समस्या

को शिक्षा में अनिवार्य कर दिया-जिससे जर्मन अधिवासियों के लिए शिक्षा के द्वार अवरुद्ध हो गये। फ्रांसीय करण की नीति को तीन चतुर्थांश जर्मन-निवासियो पर प्रयुक्त किया गया व अन्त में यह निर्णय हुआ कि प्रथम दो वर्ष स्कूलों में फ्रांसीय भाषा की शिक्षा के पश्चात् प्रतिसप्ताह जर्मनी की पढ़ाई का प्रबन्ध होगा व धर्म-प्रचार के लिए भी जर्मनी के प्रयोग की सम्मति दी गई। फ्रांसीय अधिकारियों के प्रवेश से लोरेन में रेल-कर्मचारियो ने हड़ताल की व मांग की कि रेल के कर्मचारियो और अधिकारियों को जर्मनी जानना चाहिये। फ्रांस ने इसे स्वीकार भी किया। धार्मिक संघर्ष भी लोरेन में अनेक वर्षों तक चला, क्योकि यहां की जनता अधिकांशतः कट्टर कैथोलिक थी। परन्तु प्रधानमन्त्री हैरियट ने स्कूलो में धर्म-शिक्षा को बन्द कर दिया और गिरिजाओं के ध्वंस के लिए अग्रणी हुआ। कैथोलिक स्कूलों के बालकों ने इसके विपरीत हड़ताल की व अन्त मे उनके दावों को स्वीकार किया गया। स्वायत्त शासन के अधिकार और आर्थिक स्वाधीनता के सम्बन्ध मे भी जर्मन और फ्रांस अधिवासियो में पारस्परिक संघर्ष हुए। स्वायत्त शासन के लिए ("होम-लीग") गृहसंघ का संगठन किया गया, परन्तु फ्रांसियों ने इसके नेताओं को बन्दी बना कर निर्वासित कर दिया। १९२९ मे इनके असन्तोष को दूर करने के लिए पैंकारे ने १० घंटे तक भाषण दिया और स्वीकार किया कि यद्यपि फ्रांस ने कुछ भूले की हैं, परन्तु भविष्य में ऐसा नहीं होगा। १९३३ के बाद जर्मनी में नाजी दल के अभ्युदय से जर्मन फ्रांस से मुक्ति पाने के लिए व्याकुल थे और अप्रत्यक्ष रूप से हिटलर की सहायता चाह रहे थे।

आदिष्ट सीरिया—कैमेरून, कांगो और टोगोलैण्ड के अतिरिक्त फ्रांस को निकट प्राच्य में आदिष्ट सीरिया प्रदेश भी

१५ वर्ष के लिए प्राप्त हुआ था। प्रशासन की सुविधा के लिए फ्रांसियों ने सीरिया को पांच विभिन्न प्रदेशों में बांटा था व प्रत्येक के विभिन्न विभिन्न नामों और नियम प्रणालियों का प्रवर्तन कर राष्ट्रीय—भावना के प्रतिरोध की प्रचेष्टा की थी। प्रकाशन पर प्रतिबन्ध, सामरिक नियम की घोषणा, न्यायालय में फ्रांसीय भाषा का प्रयोग, सीरिया—सैन्य का अपसारण, कागजी मुद्रा का प्रवर्त्तन आदि ने अवस्था को अत्यन्त गम्भीर बना दिया। यहां की अधिकांश मुसलमान जनता यह विश्वास करती थी कि फ्रांस अल्प-संख्यक ईसाइयों के साथ पक्ष-पात करता है। १६२५ में महाराज्यपाल सारायल ने असन्तुष्ट ड्रूस दल के नेताओं को डामस्कस से वार्तालाप के लिए आमंत्रित कर बन्दी बना लिया। परिणामतः ड्रूस जाति ने प्रत्यक्ष विद्रोह प्रारम्भ किया व फ्रांस ने डामस्कस के २४ विद्रोही नेताओं के शवों का प्रदर्शन किया। उत्तेजित जनता ने जब फ्रांसीय सेना पर आक्रमण किया तो सेना ने शहर छोड़ दिया व हवाई जहाजों से बम फेंक कर शहर को अंशतः ध्वस्त कर दिया। अन्त में सारायल को पदच्युत किया गया, परन्तु डामस्कस अधिवासियों पर २० लाख रुपिया दंड और तीन हजार बन्दूकों के समर्पण का दंड दिया गया। नवीन राज्यपाल हैनरी डी जोवैनेल ने ईसाई-निवासियों को अस्त्र शस्त्र वितरित किये। १६२६ में पुनः उपद्रव आरम्भ हुआ और डामस्कस पर पुनः बम-वर्षा की गई। इसी समय राष्ट्र संघ के स्थायी आदिष्ट आयोग ने सीरिया में फ्रांस की नीति की तीव्र निन्दा की। परिणामतः १६३० में फ्रांस ने एक नवीन गणतांत्रिक विधान दिया, परन्तु वैदेशिक सम्बन्ध को फ्रांस के नियंत्रण में रखा। इस विधान के अनुसार एक मुसलमान राष्ट्रपति (५ वर्ष के लिए) व लोक-सभा की सुविधा दी गई। १६३२ में प्रथम निर्वाचन हुआ एवं

आमिद अली सीरिया गणतंत्र का राष्ट्रपति बना। एक नवीन संधि के अनुसार फ्रांस ने २५ वर्ष पर्यन्त सीरिया का आर्थिक, सामरिक और वैदेशिक नियन्त्रण अपने हाथ में रखा। इस संधि को लोक-सभा ने अस्वीकार कर दिया और फ्रांसीय राज्यपाल मार्टेन ने लोकसभा को भग कर दिया। आन्दोलन पुनः चलता रहा।

१९३६ में फ्रांस और सीरिया ने पुनः संधि की-जिससे तीन वर्ष पश्चात् सीरिया को पूर्ण-स्वतन्त्र करने की स्वीकृति फ्रांस ने दी ; पर इस संधि का भी फ्रांस की लोकसभा ने अनुमोदन नहीं किया। सीरिया के विधान को रद्द कर फ्रांसीय अधिकारी ही द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ तक सीरिया के प्रशासन को चला रहा था।

विभिन्न संधियाँ—१९२० मे फ्रांस और बेल्जियम ने जर्मनी के विपरीत रक्षणात्मक सामरिक संधि की। दो वर्ष पश्चात् पोलैण्ड के साथ फ्रांस ने मैत्री स्थापित की—जिसमें पारस्परिक रक्षा का प्रबन्ध था। जनवरी १९२४ में फ्रांस और चैकोस्लोवाकिया ने दोनों राष्ट्रों की बाह्य शत्रु से रक्षा के लिए संधि की। जून १९२६ मे फ्रांस और रूमानिया व नवम्बर १९२७मे फ्रांस और जुगोस्लाविया ने समझौता किया। इस संधि के जाल द्वारा फ्रांस ने महायुद्ध के प्रथम दशक में ही भविष्य की सुरक्षा का पूर्ण आयोजन कर लिया था।

समीक्षा—प्रथम महायुद्ध के अनन्तर फ्रांस ने स्वयं को आर्थिक और सामरिक दृष्टि से थोड़े से समय में ही संगठित कर लिया। उद्योग और कृषि की उन्नति से फ्रांस आवश्यकीय सामग्री और खाद्य-विषयों में आत्म-निर्भर राष्ट्र था। उत्तराधिकारी के नियमों से—जिसके अनुसार पैतृक सम्पत्ति का उत्तराधिकारियों मे समान विभाजन होता था—समाज मे प्रायः

वर्ग-भेद नहीं था। साधारण उद्योगपतियों के विकास से राष्ट्र औद्योगिक दृष्टि से भी समृद्ध हो गया। दीवालिया का नियम इतना कठिन था कि इस प्रकार के उद्योगपति को समाज से वहिष्कृत कर दिया जाता था। राष्ट्र के नियंत्रण ने उद्योग का प्रसार किया—विशेषतः मोटर, रसायन व कपड़े आदि का। परिणामतः वेगारी का अवसान हुआ। फ्रांसीय वैंक के पुनःगठन से जनता के सचित धन का राष्ट्र के विकास में उपयोग हुआ। परन्तु यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि फ्रांसीय जनता के चरित्र में भी इस काल मे अत्यन्त परिवर्तन हुए। फ्रांस के निर्यात की सामग्री विशेषतः विलासिताओं की वस्तुएँ थीं। प्रसिद्ध अंग्रेजी साहित्यिक जार्ज मैरेडिथ ने एक वार सत्य ही कहा था—"फ्रांसीय जनता का चरित्र ही यूरोपीय राष्ट्रों में सबसे अधिक जटिल था"। फ्रांस के कृषक और दूकानदार मितव्ययी, बुद्धिमान, स्पष्टवादी और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के प्रेमी थे। मानसिक और आर्थिक निर्भरता उनका प्रधान लक्ष्य था। अल्प सम्पत्ति, सामान्य आय परन्तु आराम और विलासिता की सामग्रियां उन्हें प्रतिदिन आवश्यक थीं। आवश्यकीय सामग्री की पूर्ति होने पर दूसरों की इन्हें कोई चिन्ता नहीं थी। आलस्य, अतिव्ययिता, आत्म संयम का अभाव राष्ट्रीय जागरण की न्यूनता और आराम-प्रियता ही द्वितीय महायुद्ध में फ्रांस के पतन के प्रमुख कारण थे।

(ग) जर्मनी की प्रगति

(१९१४ से १९३९)

प्रथम महायुद्ध के परिणाम से सबसे आश्चर्यमय परिवर्तन यदि कहीं देखने को मिला तो वह जर्मनी में यहां पर क्रांतिद्वारा स्वैरतन्त्र का अवसान हुआ और उसका स्थान गणतन्त्र ने

लिया। भाराक्रान्त और निष्पेषित रूस निवासियों के लिए ज़ार को पदच्युत करना स्वाभाविक था। आस्ट्रिया-हंगेरी के द्वैत-शासन से युद्ध में पराजय के पश्चात् छिन्न भिन्न होना भी सहज था। परन्तु शक्तिशाली और प्रगतिशील होहैन जोलैरन-साम्राज्य, जो कि देशभक्त जर्मनियों के लिए गौरव की वस्तु था, उसका भी युद्ध के अनन्तर आशातीत प्रगति के साथ पतन हो गया।

स्वैरतन्त्र शासनः—आज हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि प्रथम महायुद्ध के पूर्व ही जनता स्वैरतन्त्र प्रणाली से संतुष्ट नहीं थी। प्रशासन में अनेक प्रकार के अप्रजातान्त्रिक अंग रहने से जनता मे समालोचना का उदय हुआ। प्रथमतः जर्मन साम्राज्य वास्तविक वैधानिक राष्ट्र नहीं था, क्योंकि यहां पर उत्तरदायी मन्त्रि-मंडल का अभाव था। हम देख चुके हैं कि प्रधान-मन्त्री कैजर द्वारा नियुक्त होता था और लोक-सभा का अविश्वास होने पर भी शासन चला सकता था। द्वितीयतः लोक-सभा के उच्च भवन बुन्देसरॉट् के सदस्य संघ के विभिन्न राजाओं द्वारा मनोनीत होते थे व जनता से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। इस भवन में प्रशिया-प्रतिनिधियों की इतनी प्रधानता थी कि ये भवन के एक प्रकार से सर्वाधिकारी थे। तृतीयतः लोकसभा के निम्न भवन राइकस्टाग में वर्तमान वैधानिक प्रणाली के सब अंग थे, पर प्रत्यक्ष राजनैतिक अधिकार नहीं था। यद्यपि सार्वजनिक मतदान द्वारा ये निर्वाचित होते थे, पर १९१४ में इसके सदस्य जनता के प्रतिनिधि नहीं थे। क्योंकि जर्मन-साम्राज्य की स्थापना के अनन्तर निर्वाचन क्षेत्र में कोई परिवर्तन नहीं किये गये थे। नवीन उद्योग केन्द्रों व नगरों के भी प्रतिनिधि नहीं थे, केवल ग्रामवासी मनोनीत सदस्यों का प्राधान्य था। अन्त में प्रशिया मे वर्ग-मत

प्रणाली द्वारा निर्वाचन होता था—इसका परिणाम यह हुआ कि १६०८ में यद्यपि तृतीय श्रेणी का प्राधान्य था फ़िर भी अल्पसंख्यक धनी विजयी हुए। (१)

जर्मनी के विभिन्न राजनैतिक दल शासन को गणतांत्रिक बनाने का प्रयत्न कर रहे थे। समाजवादी गणतन्त्र दल जर्मन साम्राज्य में सबसे अधिक प्रगतिशील था। १६१२ में इस दल ने ४० लाख मत प्राप्त किये थे। इसके उद्देश्य थे–महिलाओं के समानाधिकार, गुप्त मतदान प्रथा, वर्ग मत प्रणाली का अवसान और उत्तरदायी मन्त्रिमंडल। पूंजीपतियों का प्रतिनिधि सहिष्णु–दल निम्न भवन के आसनों का पुनर्विभाजन चाहता था। प्रगतिशील दल वैधानिक शासन–प्रणाली और असामरिक व नागरिक अधिकारों का प्राधान्य चाहता था। पादरी दल सामाजिक सुधार, प्रजातन्त्रवाद और निम्न भवन के विशेष अधिकारों का समर्थक था। समग्र राजनैतिक दल प्रथम युद्ध के प्रारम्भ होते ही एकत्रित होकर जर्मन—साम्राज्य की रक्षा में लग गये एवं कैजर ने विश्व को घोषणा की कि "जर्मनी में पृथक् पृथक् दल नहीं हैं—केवल जर्मनी है।"

युद्ध की प्रतिक्रिया—युद्ध की प्रगति के साथ साथ समाजवादी यह विश्वास करने लगे कि यह संग्राम रक्षात्मक न होकर साम्राज्यवादी है। १६१५ में सामाजवादी प्रजातन्त्र दल राष्ट्रीय ऋण के विषय में विभक्त हो गया। इस दल के बहुमत के नेता फ्रेडरिच ईबर्ट, फिलिप स्किडेमैन—युद्ध का समर्थन करते थे। अल्प–संख्यक कार्ल लैब्नेक्ट और हासी के नेतृत्त्व में–ऋण और युद्ध के विरोधी थे। १६१७ में विरोधी–दल ने स्वतन्त्र समाजवादी प्रजातन्त्र दल की स्थापना शान्ति–रक्षा के उद्देश्य से

१—इसी पुस्तक के ३६६ से ३६८ पृष्ठ देखिये।

की। जुलाई १९१७ में ही प्रधान मन्त्री वेथमैन हालविग ने पद-त्याग किया। उसके उत्तराधिकारी डाक्टर जार्ज माइकेलिश ने विरोधी-दल की मांगो को स्वीकृत नहीं किया। समसामयिक ऐतिहासिक कहते हैं—"रोटी, दूध, चीनी, मांस, मक्खन, चाय आदि का मूल्य इतना अधिक बढ़ गया था कि समग्र जर्मनी अर्धभुक्त था"। द्वितीय राजनैतिक संकट के परिणाम में तीन मास के पश्चात् माइकेलिश ने भी पद त्याग किया। बभेरिया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर काउण्ट हार्टलीन प्रधानमन्त्री नियुक्त हुआ व निर्वाचन-प्रणाली और शान्ति-स्थापन का आश्वासन जनता को दिया। रूस के साम्यवादी विद्रोह ने जनता में आशा का संचार किया और जर्मनी द्वारा इटली के पराजय ने भी विजय की प्रेरणा दी। पर प्राशासनिक सुधारों के अभाव में साम्यवादी प्रचार की वृद्धि हुई और अस्त्र शस्त्र निर्माणशालाओं की १९१८ में राजनैतिक उद्देश्य से एक आम हड़ताल श्रमिकों ने की। जर्मन प्रशासन ने शक्ति प्रयोग से इसको भंग किया एवं अक्टूबर १९१८ में जनता को संतुष्ट करने के लिए बैडेन के कुमार सहिष्णु मैक्स को कैजर ने प्रधान मन्त्री नियुक्त किया। दूरदर्शी मैक्स ने अपने मन्त्रिमण्डल में सहिष्णु, समाजवादी और पादरी वर्ग के प्रतिनिधियों को सम्मिलित कर जर्मन इतिहास मे सर्वप्रथम लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल को स्थापित किया। जनता को यह विश्वास था कि विधान के संशोधन से साम्राज्य-वंश ध्वंस से बच जायेगा। मैक्स ने उत्तरदायी मन्त्रि-मण्डल, शान्ति स्थापना के वार्तालाप, असामरिक अधिकार का प्राधान्य, प्राकाशनिक स्वतन्त्रता व राजनैतिक बन्दियो को मुक्ति प्रदान की। वेन के शब्दों में "प्रधानमन्त्री मैक्स ने जर्मन साम्राज्य में सर्वप्रथम वैधानिक शासन प्रणाली का प्रवर्तन कर स्वैरतंत्र का अवसान किया"। यह परिवर्तन वस्तुतः एक राज-

नैतिक क्रान्ति थी व मैक्स ने सत्य ही कहा था—"नवीन जर्मन प्रशासन जनता का प्रशासन है व जनता को ही अंतिम निर्णय के अधिकार हैं। कैजर केवल जर्मन एकता का प्रतीक है"।

स्वैरतन्त्र का पतन—कैजर विलियम द्वितीय की परिस्थिति अब अत्यन्त गम्भीर हो गई। समाजवादी व साम्यवादियों के प्रचार ने इसके विरुद्ध जनता को उभाड़ दिया। युक्तराष्ट्र के राष्ट्रपति विल्सन ने कहा कि "जर्मनी के स्वैरतंत्र के अंत व जर्मनी द्वारा आत्म समर्पण करने पर ही संधि की वार्ता हो सकती है।"

लोकसभा राइक-स्टाग में २३ अक्टूबर को स्वतंत्र समाजवादी हासी ने सर्वप्रथम कैजर की राज्यच्युति की मांग प्रस्तुत की। संवाद-पत्र भी होहैन-जोलैरन वंश के स्वेच्छावसान करने का प्रचार करने लगे। बहुसंख्यक समाजवादी-दल के नेता स्किडेमैन ने प्रधान मन्त्री मैक्स से अनुरोध किया कि वे कैजर को विल्सन के संतोप और शान्ति स्थापना के लिए राज्य-त्याग का परामर्श दें। परन्तु किंकर्तव्य-विमूढ़ कैजर ने कुमार मैक्स के अनुरोध को अस्वीकृत कर २६ अक्टूबर को राजधानी बर्लिन से सामरिक कार्यालय स्पा मे पलायन किया।

इसी समय (२८ अक्टूबर) कील के नौ-निर्माण केन्द्र मे सामरिक विद्रोह हुआ। नौ-सेनाधिकारी जब जर्मन जहाजों के आत्म-समर्पण की अफवाह सुन कर आत्म-बलिदान का आदेश देने लगे, तो समाजवादी ८० हजार नाविकों ने विद्रोह कर दिया। उनने कहा—"यदि अंग्रेजों ने हम पर आक्रमण किया, तो हम तट की रक्षा करेंगे, पर स्वयं आक्रमण कर आत्म-बलिदान नहीं करेंगे"। इस विद्रोह का प्रचार इतना बढ़ा कि विभिन्न स्थानों पर सैनिक समितियाँ निर्वाचित हुईं व लाल पताका लहराने लगीं। होहैनजोलैरन वंश का अवसान,

विद्रोही नेताओं की मुक्ति और सार्वजनिक मताधिकार ही इनकी मांगे थीं। नवम्बर में उत्तर जर्मनी के छोटे छोटे राज्यों में भी विद्रोह की आग भभक उठी और जनता "कैजर का पतन हो, गणतंत्र की स्थापना हो" ये नारे लगाने लगी। २२ छोटे छोटे राजाओं ने पद-त्याग किया और कैजर भी नवम्बर ६ को हालैण्ड भाग गया। बवेरिया के राजवंश का भी अवसान हो गया। मैक्स सर्वदा यही प्रयत्न कर रहा था कि राजा स्वेच्छा से पद-त्याग करदे, परन्तु इसने जब यह देखा कि ऐसा होना असम्भव है, तो समाजवादी नेता ईबर्ट के हाथ में शासन-भार देकर स्वयं पद-त्याग किया। जनप्रिय मोची ईबर्ट ने जनता के प्रतिनिधियों की समिति की स्थापना की एवं स्वाधीन समाजवादी हासी के साथ मिल कर जनता की शान्ति-संरक्षण नीति को ग्रहण किया। नवम्बर १० से २८ दिसम्बर पर्यन्त जर्मन गणतंत्र समाजवादी नियंत्रण में रहा। परन्तु साम्यवादी अपने पत्र "रैडफ्लैग" में राष्ट्रीय विधान निर्माण और गणतंत्र स्थापना का विरोध कर रहे थे। इस दल के नेता लैब्नेक्ट ने (स्पार्टकान्स पार्टी) अस्त्र शस्त्र के प्रयोग से आतंक की सृष्टि करने का आन्दोलन चलाया व समाजवादी दल को अधिकार च्युत करने का प्रयत्न किया। बर्लिन नगर में ६ जनवरी से १५ जनवरी तक प्रतिदिन संघर्ष होता रहा एवं १५ जनवरी को लैब्नेक्ट और रोसा को बंदी बना लिया गया व जनता द्वारा और अनेक साम्यवादी ध्वस्त कर दिये गये। १६ जनवरी १९१९ को विधान-सभा के सदस्यो का निर्वाचन प्रारम्भ हुआ।

विधान सभाः—इस आम चुनाव में साढ़े तीन करोड़ मतदाताओं में से तीन करोड़ ने आनुपातिक प्रतिनिधित्त्व के आधार पर मत दिये। प्रत्येक जर्मन नारी या पुरुष जिनकी आयु २० वर्ष से ऊपर थी, मत देने का अधिकार रखता था।

परिणामतः ४२१ सदस्यों में से समाजवादी प्रजातन्त्र दल को १६३, पादरियों को ८८, स्वतंत्र समाजवादियों को २२, जनता दल को २१, राष्ट्रवादी साहिष्णुदल को ४२, गणतन्त्रदल को ७५ व अवशिष्ट १० आसन चार अवशिष्ट दलों को बंट गये। जर्मन इतिहास में सर्व प्रथम ३६ महिला-सदस्याओं ने विधान सभा के आसन ग्रहण किये। समाजवादी प्रजातन्त्रदल के बहुमत होने के कारण इसने जर्मनी की शान्तिप्रिय, साहित्य-स्मृति पूर्ण वाइमार में उदार नीति के आधार पर ६ फरवरी को विधान सभा का आमन्त्रण किया। अशान्ति, अराजकता और उपद्रवों से बचने के लिए ही यह परिवर्तन किया गया। जन प्रतिनिधि समिति ने अस्थायी प्रशासन को अधिकार समर्पित किया—जिसमें सम्मिलित दलों के-समाजवादी, गणतांत्रिक और पादरी-प्रतिनिधि थे। इतिहास में इन्हे "वाइमार-सभा" कहा जाता है। ११ फर्वरी को विधान-सभा ने (२७७ पक्ष में, विपक्षमें १०२) बहुमत से ईबर्ट को वैधानिक राष्ट्रपति निर्वाचित किया। स्किडेमैन प्रधानमन्त्री बना और ब्रकडार्फ राण्टजाऊ ने विदेश मन्त्री व नास्के ने गृहमन्त्री का पद ग्रहण किया। विधान सभा-के समक्ष तीन महत्त्वपूर्ण कार्य थे—आंतरिक विद्रोह का अवसान, वैदेशिक शांति व स्थायी विधान का निर्माण।

आंतरिक शान्तिः—इसी समय म्यूनिश मे साम्यवादियों ने एक स्थायी प्रशासन स्थापित किया। समाजवादी नेता कूर्ट आइसनर की हत्या की गई, रेल्वे और खनिज श्रमिकों की आम हड़ताल हुई। दक्ष नास्के ने भूतपूर्व सैनिक अधिकारियों की सहायता से निर्दयता के साथ विद्रोहियों का दमन किया। १५ हजार साम्यवादियों की हत्या के पश्चात् आन्तरिक शान्ति की स्थापना हुई।

वैदेशिक शान्तिः—वैदेशिक शान्ति की समस्या अत्यन्त

कठिन थी। ७ मई को मित्रराष्ट्र द्वारा प्रस्तावित सन्धि-पत्र पर विधान-सभा ने विचार किया। ये शर्तें इतनी निन्दनीय थी कि प्रधान मन्त्री ने उनके प्रतिवाद के रूप में पदत्याग किया। नवीन प्रधानमन्त्री गस्तव बाऊर और विदेश-मन्त्री हार्मन मूलर ने मित्रराष्ट्रों की युद्ध की चुनौती से आतंकित होकर २३ जून (१९१९) को भरसालिस सन्धि स्वीकृत की (१)।

वाइमार का विधान- -वाइमार मे विधान-सभा ने क्रमागत अधिवेशनों के अनन्तर ३१ जुलाई १९१९ को एक नवीन विधान को स्वीकृत किया—जिसे ११ अगस्त से प्रयोग में लाया गया। इसके पक्ष में २६२ और विपक्ष में ७५ मत आये। इस विधान के अनुसार जर्मन राष्ट्र "राइक" को लोकतन्त्र के आधार पर गणतन्त्र घोषित किया। कृष्ण, श्वेत और रक्त के स्थान पर राष्ट्रीय पताका को पीत, लाल और कृष्ण वर्णमय बनाया गया। प्रत्येक छोटे छोटे राष्ट्रों में गणतन्त्र विधान का पालन अनिवार्य किया गया। जर्मनी का विधान युक्त राष्ट्र के अनुसार संघीय गणतन्त्र विधान था। इसमें १८७१ के विधान के अनुरूप प्रशिया के प्राधान्य और प्रभाव को मान्यता दी गई, यद्यपि प्रशिया—विरोधी सदस्यों ने उसे छिन्न भिन्न करने का प्रस्ताव किया था।

कार्यकारिणी सभा—-राष्ट्र की सर्वोच्च कार्यकारिणी शक्ति जर्मन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित राष्ट्रपति में निहित थी—जिसका निर्वाचन ७ वर्ष के लिए होता था व पुनर्निर्वाचन पर भी कोई प्रतिबन्ध नहीं था। अवधि से पूर्व ही सर्वजनमत से उसकी पदच्युति भी संभव थी, परन्तु इस मत ग्रहण से पूर्व

१—विस्तृत विवरण के लिए इसी पुस्तक का पेरिस शांति सम्मेलन ४६६-६८ पृष्ठ देखिये।

लोक-सभा के दो तृतीयांश सदस्यों द्वारा यह प्रस्ताव अनुमोदित होना चाहिये। यदि जनमत का फल राष्ट्रपति के अनुकूल हो तो उसे पुनर्निर्वाचित समझा जाता था और लोक-सभा को भंग कर दिया जाता था। फ्रांस के राष्ट्रपति और ब्रिटेन के सम्राट् की तरह जर्मन-राष्ट्रपति को भी विशेष अधिकार नहीं थे। इसके आदेश पालन करने से पूर्व प्रधानमन्त्री अथवा सम्बन्धित मन्त्री के हस्ताक्षरों की अपेक्षा रखते थे। प्रधान मन्त्री व अन्य मन्त्री राइकस्टाग के प्रति उत्तरदायी थे एवं अविश्वास के प्रस्ताव द्वारा उन्हें पदत्याग के लिए बाध्य किया जा सकता था।

लोकसभा के उच्च भवन "बुन्देसराट" के स्थान पर "राइक्स रैट" अथवा राष्ट्रीय परिषद् की स्थापना की गई-जिसमें विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। प्रत्येक राज्य का इस परिषद् में एक मत था, परन्तु कोई एक राज्य दो-पंचमांशों से अधिक आसन ग्रहण नहीं कर सकता था। वृहत् राज्यों में सात लाख अधिवासियों के लिए एक मत निर्दिष्ट था एवं विभिन्न राष्ट्रों के मन्त्री इसके सदस्य होते थे। संक्षेप में प्रशिया कभी भी इस परिषद् में प्राधान्य नहीं पा सकता था।

निम्न-भवन राइकस्टाग प्रत्यक्ष, समान, सार्वजनिक, गुप्त और आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर ४ वर्ष के लिए संगठित होता था। निम्न भवन को विधान निर्माण, आर्थिक नियंत्रण, मंत्रिमंडल के निर्वाचन व पदच्युति आदि के अधिकार थे। मंत्रिमंडल इसी के प्रति उत्तरदायी थे। १६२० के बैडन—प्रणाली के विशेष नियमों द्वारा समग्र जर्मनी को ३५ निर्वाचन—क्षेत्रों में विभाजित किया गया था। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र का एक सदस्य ६० हजार मत मिलने पर ही इसका सदस्य बन सकता था। प्रत्येक राजनैतिक दल प्रार्थियों की एक

साधारण-सूची मतदाताओं को देता था। मतदाताओं द्वारा वह समग्र सूची ही मान्य की जानी चाहिए, क्योंकि वे दल के सिद्धान्त पर संमति प्रकट करते हैं, व्यक्तिगत प्रतिनिधित्व पर नहीं। विधान—निर्माण के सम्बन्ध मे दोनों भवनो में संघर्ष होने पर राष्ट्रपति जनमत-ग्रहण से समस्या के समाधान का अधिकारी था। यदि मतदाताओं के पांच प्रतिशत और राइक-स्टाग का एक तृतीयांश किसी विधान का विरोध करे, तो जनमत-ग्रहण अनिवार्य था। संक्षेप में जर्मन गणतंत्र एक संघीय-विधान के होते हुए भी केन्द्री-भूत सिद्धान्त पर अवलम्बित था। केन्द्रीय प्रशासन विभिन्न विषयों मे अन्तर्गत राज्यों का नियमन करता था। केन्द्र में आर्थिक सुधार के लिए एक आर्थिक समिति थी और सब राज्यो मे उसकी शाखाएँ थीं। ३० सितम्बर १६१६को वाइमार-विधान-सभा भंग हो गई।

गणतन्त्र की रक्षा:—जर्मनी में गणतन्त्र की स्थापना जितनी सहज थी, वाम पन्थी और दक्षिण पन्थियों के विरोध से उसकी रक्षा करन उतना ही कठिन था। साम्यवादी गणतन्त्र की अपेक्षा श्रमिक अधिनायकवाद में विश्वास करते थे। हम देख चुके है कि किस प्रकार लैब्नेक्ट और रोसा की ध्वंसात्मक नीति का प्रसार रोका गया था।

राजसत्तावादी दक्षिण-पन्थी कैप, लुटविट्स के नेतृत्व में सामरिक शक्ति के प्रयोग से गणतन्त्र के ध्वंस के प्रयत्न मे था। इन दोनो ने १२ मार्च १६२० में भरसालिस सन्धि में आत्मसमर्पण नहीं करने वाली आठ हजार सेना लेकर बल-प्रयोग से बर्लिन पर अधिकार किया। कैप ने स्वयं को प्रधानमन्त्री और लुटविट्स को राष्ट्रीय रक्षा का अधिनायक घोषित किया। राष्ट्रपति ईबर्ट की राजधानी रक्षा के लिए नियुक्त दो हजार सेना ने ड्रेजडेन में पलायन किया और अन्त मे स्टुटगार्ट में

आश्रय लिया। फिर भी सामरिक–साम्राज्य की स्थापना का प्रयत्न सफल न हो सका। राजसत्तावादी नेताओं व भूतपूर्व सेना ने कैप का समर्थन नहीं किया। राष्ट्रपति ने जनता से–विशेषतः श्रमिकों से आवेदन किया–"आप असहयोग करें। गणतन्त्र की रक्षा के लिए विषमताओं और विभिन्नताओं का अन्त कर ट्राम, विद्युत, गैस, पानी, रेल, यातायात आदि सर्वत्र हड़ताल करो एवं जनता के आर्थिक जीवन को पंगु बना दो। श्रमिक वर्ग! कैजर के प्रत्यावर्तन के प्रतिरोध का यही एक मार्ग है। सामरिक अधिनायकवाद को कभी भी स्वीकृत न करें"। १४ मार्च की आम हड़ताल के परिणाम से राजसत्ता का परीक्षण विफल हुआ और कैप स्वीडेन में पलायन किया।

गणतन्त्र के शत्रु संसार के संक्रमणकाल का सुअवसर पाकर विभिन्न रूप से आक्रमण करने लगे। प्रतिक्रियावादी राजसत्ता दल ने क्षति पूर्ति की शर्तों, युद्ध के अभियुक्तों के दंड, असैनिकीकरण व निरस्त्रीकरण, भूमि की हानि आदि की तीव्र निन्दाएँ कीं। १९२१ में पादरियों के नेता एरजबर्गर, भूतपूर्व वित्त मन्त्री की—जो कि मित्रराष्ट्रों से संधि का समर्थन करता था—हत्या की गई, क्योंकि इसी ने भरसालिस संधि स्वीकृत करने के लिए जर्मनी को बाध्य किया था। इसी समय गणतंत्र के संरक्षण के लिए विशेष संकटकालीन नियम पास किये गये व जनता को नागरिक अधिकारों से वंचित किया गया। २४ जून १९२२ में विदेश मन्त्री और प्रसिद्ध उद्योगपति वाल्टर रैथेनाऊ को उग्र राष्ट्रवादियों ने मार दिया, क्योंकि वह एक यहूदी था और उसकी योग्यता उग्रदल के लिए असहनीय थी। एक वर्ष (१९२३ सितम्बर) के अनन्तर–जिस समय रूर में फ्रांसीय अधिकार के कारण जर्मनी में अव्यवस्था फैल रही थी–गस्ताव वान कॉर ने शासन को भंग करने के लिए सामरिक संचालन–

समिति की योजना तैयार की। इसी समय जर्मनी के नाजी दल के नेता लुडेन्डडार्फ एवं एडाल्फ हिटलर ने बर्लिन को हस्तगत करके लुडेन्डडार्फ के सामरिक अधिनायक में हिटलर को राष्ट्रपति घोषित करने की योजना बनाई। परन्तु हिटलर की योजना का कॉर की योजना से संघर्ष हो गया, परिणामतः आठ नवम्बर में म्युनिश के मद्य-भवन में पारस्परिक विरोध से गणतन्त्र के संकट का अवसान हो गया। प्रधान षड्‌यंत्रकारियों को बन्दी बनाया गया, परन्तु विचारकों की दया से उन्हे मुक्त कर दिया गया। डाक्टर डार्टन और हर मैठिस ने राइनलैण्ड मे ३० सितम्बर १६२३ को एक नवीन गणतंत्र स्थापित किया। पैलाटिनेट में ११ नवम्बर को स्वायत्त शासन घोषित किया गया, परन्तु यहाँ के राष्ट्रपति की हत्या व डार्टन और मैठिस के पारस्परिक विरोध से इसका अवसान हो गया। अन्त में समाजवादी दल व स्वतन्त्र समाजवादियों के समन्वय से संयुक्त समाजवादी दल की स्थापना हुई—जिससे गणतंत्र सुरक्षित हो गया और साम्यवादी प्रचार नष्ट हो गया।

आर्थिक संकट—जर्मनी का आर्थिक संकट स्वैरतन्त्र प्रशासन की एक महान भूल का परिणाम था। विजय की सुनिश्चित और शत्रुओ से क्षति पूर्ति की आशा से अदूरदर्शी कैजर ने जनता से प्रभूत ऋण ग्रहण किया था एवं लोकप्रिय बनने के लिए युद्ध व्यय की पूर्त्ति के उद्देश्य से कर-वृद्धि नहीं की थी। इसीलिए जर्मन-मुद्रा मार्क के मूल्य का ह्रास हुआ व कागजी मुद्रा का अधिक मात्रा में प्रचलन करना पड़ा। युद्ध के प्रारम्भ से पंच गुणित संख्या मे जर्मन मार्क का प्रचलन हुआ और उसका मूल्य अत्यन्त न्यून हुआ। जिन्होंने राष्ट्र को देश-भक्ति के निदर्शन और आर्थिक संरक्षण के उद्देश्य मे ऋण दिया था, वे अब अपनी महान् भूल का अनुभव करने लगे।

गणतन्त्र ने जर्मन साम्राज्य से मुद्रा-स्फीति व ह्रास को उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त किया। सार्वजनिक बेकारी, आर्थिक अव्यवस्था, मित्रराष्ट्र की क्षतिपूर्ति, खाद्य-सामग्री के मूल्यवृद्धि जनता द्वारा कर व ऋण देने की अस्वीकृति व आन्तरिक व्यवस्था के व्यय ने-एक महान् आर्थिक संकट की सृष्टि की। यह आश्चर्य का विषय है कि युद्ध कालीन मुनाफाखोरों पर ब्रिटेन की तरह विशेष कर लागू नहीं किया गया। मई १९२१ में एक जर्मन मार्क के बदले में ६० अमेरिकन डालर मिलता था और नवम्बर १९२२ से एक के विनियम मे ७ हजार मार्क मिलने लगे। फ्रांस ने जब रूर को हस्तगत किया तो (जनवरी १९२३) एक डालर के स्थान पर ५० हजार मार्क और जुलाई के अन्त मे एक लाख साठ हजार मार्क मिलने लगे। अंतिम दिन में इनकी मात्रा ग्यारह लाख तक पहुच गई। नवम्बर में कोलन शहर मे एक डालर के विनियम मे ४,०००,०००,०००,००० मार्क मिलने लगे। नोट छापने में भी इससे अधिक व्यय होता था। १९२३ मे केवल नोट प्रस्तुति के लिए ३० कागज के कारखाने, १३२ मुद्रणालय और १७८३ मुद्रण-यन्त्रों से द्रुतगति पर काम लिया जाता था, फिर भी मुद्राओं का अभाव पूर्ण नहीं हो पाया। परिणामतः धन ऋण देने वालों से कर्जदारों के पास आ पहुँचा। जर्मनी के मध्यमवर्ग का नाश हो गया, क्योंकि मुद्राओं के रहने पर भी इसमें क्रयशक्ति नहीं थी। संचित धन, बीमा, पेन्शन और संपत्ति का भी कुछ मूल्य नहीं रह गया था। क्षुधा से मृत्यु अवश्यंभावी हो गई। इतिहास में इसको "आर्थिक हत्याकांड" कहा गया है।

१५ अक्टूबर १९२३ में जर्मनी ने आर्थिक सुधार के लिए "रेन्टेन बैंक" की स्थापना की एवं प्रसिद्ध मैनेजर डाक्टर साच्ट को नवीन मुद्रा-प्रचलन के लिए विशेष अधिकारी नियुक्त

किया। इसने नोट—मुद्रणालय को बन्द किया, एक नवीन मार्क का प्रचलन किया और डालर के विनिमय में ४०२ मार्क निर्धारित किया। वित्तमन्त्री डाक्टर लूथर ने कर को अर्थ के रूप में वसूल किया। वेतन और अधिकारियो की संख्या प्रशासन के व्यय की कमी के लिए घटा दी व क्षति-पूर्ति देना भी बन्द कर दिया। इस नीति से मूल्य बढ़ने लगा, यद्यपि बेगारी अतिशय फैल गई। अक्टूबर १६२४ मे डावस योजना के अनुसार ८००,०००,००० स्वर्ण मार्क का अन्तर्राष्ट्रीय ऋण मिल जाने से आर्थिक संकट कुछ हलका हो गया और भविष्य में आशा का संचार हुआ। फ्रांस ने रूर को खाली कर दिया।

राजनीति (१६२४–१६३२) ४ मई १६२४ के राइकॅस्टाग के निर्वाचन में दो प्रमुख समस्याएँ थी—गणतंत्र की रक्षा और डावस-योजना की स्वीकृत। आर्थिक संकट ने जनता को प्रशासन के विरुद्ध मत देने के लिए प्रेरित किया, परन्तु समाजवादी प्रजातन्त्र पुनः विजयी हुआ। डावस—योजना मान्य की गई। २८ फर्वरी १६२५ मे राष्ट्रपति ईबर्ट की मृत्यु हुई। नवम्बर १६१८ से गणतन्त्र की घोषणा के पश्चात् जर्मन प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी देशभक्त ईबर्ट था—जिसने जर्मनी की रक्षा प्रभूत प्रयत्न किया था। एक साधारण श्रमिक के पुत्र होने से उपयुक्त शिक्षा का अभाव इसमें अवश्य था, परन्तु इसकी सहिष्णु नीति और उदार मत ने उग्र श्रमिक वर्ग को साम्यवाद से हठाकर गणतन्त्र का समर्थक बना दिया। १६२५ में सार्वजनिक निर्वाचन मे सेनापति वान हिण्डनबर्ग राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ। जर्मन राष्ट्रपति की निर्वाचन प्रणाली विभिन्न थी। विधान के नियमानुसार प्रार्थी के लिए मतदाओं का पूर्ण बहुमत प्राप्त करना आवश्यक था। यदि बहुमत प्राप्त न हो तो निर्वाचन पुनः होता था। मार्च १६२५ का प्रथम निर्वाचन

असफल था और द्वितीय निर्वाचन में राष्ट्रीय युद्ध के नेता हिण्डनवर्ग की विजय हुई। गणतन्त्रवादी इसे एक उग्र राज-सत्तावादी समझ कर इसकी नीति की तीव्र निन्दाएँ करने लगे यह स्मरण रखना चाहिए कि समाजवादी गणतन्त्र नेता मार्क्स और साम्यवादी थालमैन के पारस्परिक विरोध से ही हिण्डन-वर्ग की विजय हुई थी।

सामरिकवादी और राजसत्तावादी हिन्डनवर्ग ने वाइमार-विधान के पालन की प्रतिज्ञा ली। अधिनायकत्त्व को अमान्य करते हुए इसने शपथ ली कि "गणतत्रान्त्रिक, प्रजातान्त्रिक, शान्तिमय जर्मनी का नेता वनने का मैं प्रयत्न करूँगा"। इसने प्रतिक्रियावादी राजसत्तादल को गणतन्त्र के समर्थन के लिए वाध्य किया एवं अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक जनप्रिय था। १६२७ में राजसत्तावादी गणतन्त्रवादियों के साथ इन प्रश्नों पर एक मत हो गये कि होहैनजोलैरन वंश का कोई भी व्यक्ति जर्मनी पर शासन नहीं करेगा, गणतन्त्र ही जर्मनी का प्रशासन रहेगा, राष्ट्र संघ के प्रस्ताव को जर्मनी मानेगा एवं गणतन्त्र विधान के अनुयायियों को ही सेना में प्रविष्ट किया जायेगा जर्मन संवाद—पत्र ने लिखा कि "आज से जर्मनी में स्वैरतन्त्र का पुनस्थापन असम्भव हो गया"। इसी प्रकार १६२० से १६२८ तक राजसत्तावादियों की प्रचेष्टा असफल हो गई।

१६२८ से राइकॅ—स्टाग के निर्वाचन में प्रजातन्त्र समाज-वादियों को १३१ के स्थान पर १५२ आसन मिले एवं हार्मन मूलर प्रधान मन्त्री निर्वाचित हुआ।

आर्थिक पुनर्गठन—(१६२३ से १६२६) जर्मनी के आर्थिक पुनर्गठन का इतिहास उद्योग और वैज्ञानिक अन्वे-पणों से सम्बद्ध है। हम देख चुके हैं कि भरसालिस संधि की शर्तों ने यूरोप में जर्मनी के १३ प्रतिशत भूखंड, १२ प्रतिशत

जनसंख्या, ६५ प्रतिशत लोहा, ४५ प्रतिशत कोयला, ७२ प्रतिशत पीतल, ५७ प्रतिशत शीशा, १५ प्रतिशत कृषि उत्पन्न द्रव्य और १० प्रतिशत उद्योगशालाओं के द्रव्य की क्षति की थी। इतनी अधिक क्षति होने पर भी जर्मन जनता अदम्य साहस और आत्म—विश्वास के साथ आर्थिक पुनर्गठन की ओर बढ़ी। इसमें जर्मनी के अनेक सुविधाएँ थीं। प्रथम युद्ध में अधिक क्षति न होने के कारण पुनर्गठन की समस्या फ्रांस के समान महान् नहीं थी। द्वितीय संधिशर्तों द्वारा सामरिक और नौ-शक्ति के विस्तार को निषिद्ध हो जाने से पदच्युत सैनिक भी श्रमिक बन कर उद्योग शालाओं मे भर्ती हो गये। तृतीयतः आर्थिक संकट से त्रस्त मध्यमवर्ग भी जीविका निर्वाह के लिए श्रमिक के रूप में परिणत हो गया।

अल्पकाल मे ही जर्मनी के वार्षिक कोयले की उत्पत्ति ३२,०००,००० टन होने लगी व स्टील उद्योग भी अतिशय बढ़ा। वैदेशिक व्यापार के और औद्योगिक उत्पादन पुनः प्रथम युद्ध के पूर्व की अवस्था-रेल के निर्माण, व्यवसायिक जहाजो की वृद्धि-आदि पर पहुँचने लगा। २६ अगस्त १६२६ जर्मन नवीन वायुयान "ग्राफ जैपेलीन" ने १२ दिन मे समग्र विश्व का परिभ्रमण कर विश्वासियों को चमत्कृत किया। जर्मनी ने यूरोप के अन्यान्य राष्ट्रों से व्यवसायिक संधि की एवं अपने राष्ट्र से उत्पन्न सामग्री की रक्षा के लिए "संरक्षण नीति" का अवलंबन किया। जर्मनी के कोयला और लोहे के व्यवसायिकों ने आस्ट्रिया, जुगोस्लाविया, चैकोस्लोवाकिया में अपनी शाखायें स्थापित कीं। फ्रांस को छोड़ कर यूरोप का कोई भी राष्ट्र इतने अल्प-काल में इतने आश्चर्यजनक सुधार नहीं कर सका।

परन्तु यह आर्थिक पुनर्गठन अस्थाई और अवास्तविक था। उत्पादन-वृद्धि के साथ साथ सामग्री के विक्रय के लिए बाजार की आवश्यकता थी। इंग्लैण्ड, फ्रांस और युक्तराष्ट्र के साथ पुनः प्रतियोगिता प्रारम्भ हुई। साम्यवादी रूस के उत्थान से जर्मन-सामग्री के रूस में विक्रय की आशा करना दुराशा-मात्र थी। उद्योग मे बिजली और यन्त्रों के प्रधान्य से श्रमिकों में बेगारी फैल गई, वेतन घट गया और अन्तर्राष्ट्रीय ऋण भी नहीं मिल सका। इस परिस्थिति में समाजवादी प्रजातन्त्र-दल नियन्त्रण नहीं रख सका। अतः राष्ट्रीय समाजवादी दल का उत्थान सुनिश्चित हो गया।

हिटलर का उदय

जर्मनी के संकट के समाधान के लिए राष्ट्रीय समाजवादी दल—जिसे इतिहास मे "नाजी" कहा जाता है—देशभक्त और लोकप्रिय नेता हिटलर के अधिनायकत्त्व मे इस काल में संगठित हो रहा था। १६३० सितम्बर के निर्वाचन में यद्यपि २७ राजनैतिक दलों ने भाग लिया था, फिर भी साम्यवादी और राष्ट्रीय समाजवादियों ने ही लोक-सभा में सबसे अधिक आसन प्राप्त किये थे। समाजवादी प्रजातन्त्र दल की १४३, राष्ट्रीय सामाजवादी दल को १०७ और साम्यवादियो को ७७ आसन प्राप्त हुए थे। किस प्रकार राष्ट्रीय समाजवादी दल जर्मनी की लोक-सभा का महत्त्वपूर्ण दल बना—इसके अध्ययन का हिटलर के जीवन के साथ सम्बन्ध है।

२० अप्रैल १८८६ में उच्च आस्ट्रिया के एक सामान्य चुंगी अधिकारी के परिवार में इसका जन्म हुआ था। पिता की इच्छा के विरुद्ध इसने वियेना में चित्रांकन और स्थापत्य कला का अध्ययन किया। प्रवेशिका परीक्षा मे असफल हो कर यह

हिटलर (१८८९-१९४५)

एक साधारण चित्रों का काम करने लगा परन्तु आस्ट्रिया के प्रसिद्ध चित्रांकन-विद्यालय में इसे प्रवेश नहीं मिल सका। वियेना नगर में यह जब चित्र बनाने में व्यस्त था, तो यहूदी और साम्यवादियों से घृणा करने लगा था। १६१२ में जब यह म्युनिश नगर में एक सामान्य चित्रकार के रूप में जीवन-यापन कर रहा था, तो प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक नीशे के *"अवतारवाद"* से प्रभावित हुआ और चेम्बरलेन के यहूदी विरोधी लेख से परिचित हुआ। इस समय जर्मनी की आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं का इसने ध्यान पूर्वक अध्ययन किया। परिणामतः यह एक कट्टर जर्मन राष्ट्रीयवादी बन गया और प्रथम महायुद्ध में बभेरिया की सेना में एक साधारण सैनिक के रूप में प्रविष्ट हुआ। युद्ध के समय साहस और वीरता के लिए इसे "परमवीर-चक्र" मिला। घायल होकर जब यह जर्मनी मे लौटा, तो गणतांत्रिक विद्रोह ने इसे दुःखी किया। इसने लिखा है—"अपमान और असंमान की भावना मुझे असह्य हो गई एवं जो व्यक्ति इस विद्रोह के सचालक थे—उनसे मुझे घृणा हो गई। मैंने निर्णय किया कि मैं अवश्य एक राजनैतिक बनूँगा"।

हिटलर के कार्यक्रमः—१६१८ में हिटलर ने परिचित भूतपूर्व युवक सैनिक के साथ राजनैतिक संगठन के उद्देश्य से "राष्ट्रीय समाजवादी" दल (नाजी) की स्थापना की। हिटलर के सहायक गाटफ्रिड् फिडर ने १६२० में पंचविंशति-केन्द्र-विन्दुओंका एक कार्यक्रम प्रस्तुत किया-जिसका विशद वर्णन आज हम हिटलर की *"आत्मकथा"* में पाते हैं। इस कार्यक्रम मे राष्ट्रीय समाजवादी दल का प्रधान उद्देश्य घोषित किया गया था-तृतीय राइक अथवा नवीन "बृहत-जर्मन-राष्ट्र" की स्थापना करना-जिसमें समग्र जर्मन निवासी-आस्ट्रिया, नीदरलैण्ड, पोलैण्ड, चैकोस्लो-

वाकिया और आलसस् सम्मिलित हों । यहूदियों को विदेशी समझा गया व उन्हें नागरिक अधिकार से वंचित करने का निश्चय किया गया और शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की योजना प्रस्तुत की गई । इस कार्यक्रम ने भरसालिस संधि की तीव्र निन्दा की—जर्मन उपनिवेशों के पुनराधिकार का दावा किया एवं जर्मनी के पुनर्स्त्रीकरण का निर्णय किया । परन्तु "जर्मनी महायुद्ध के लिए दायी है"—इस सिद्धान्त और युद्ध की क्षतिपूर्ति को अमान्य किया। सार्वजनिक नियुक्ति, अत्यधिक-सूद का-अवसान, कृषि-सुधार, मुनाफाखोरी, वृद्धि के लिए पेन्शन, धार्मिक सहिष्णुता, आर्थिक पुनरुत्थान, उत्कोच, पक्षपात और भ्रष्टाचार का अवसान एवं केन्द्रीय शक्तिशाली प्रशासन का निर्माण इस कार्यक्रम की भिन्न भिन्न धाराएँ थी । संक्षेप में यहूदी-निर्यातन और साम्यवाद-विरोधी प्रचार इस कार्यक्रम के प्रमुख अंश थे । राष्ट्रीय समाजवादियों ने अपने दल को स्वस्तिक (卐) चिन्ह से सुशोभित किया ।

नाजी प्रचार:—हम देख चुके हैं कि लुडेन्डडार्फ के साथ १६२३ में किस प्रकार हिटलर ने जर्मन गणतंत्र के विरुद्ध असफल षड्यंत्र म्यूनिश के मद्यपान-भवन में किया था । इस अपराध से इसे वंदी बना कर पाँच वर्ष के कारावास का दंड दिया गया था, पर थोड़े ही समय के अनन्तर इसे मुक्त कर दिया गया। हिटलर की असाधारण वाग्मिता ने जर्मनी के प्रतिन्याय और अन्याय, सुख व दुःखों का स्पष्ट विश्लेषण कर जनता को आकर्षित कर लिया। इस समय मुसोलिनी की फासस्ट नीति और कार्यक्रमों ने भी हिटलर को प्रभावित किया । १६२५ से १६२६ तक हिटलरने अपने दल को संगठित किया और संघर्ष सेना विद्रोहियों से रक्षा के लिए (एस., ए.) एकत्रित की ।

नाजीवाद के प्रचार के लिए समग्र जर्मनी को छोटे छोटे प्रदेशों मे विभाजित कर प्रत्येक स्थान पर शिक्षित वक्ता व प्रचारक नियुक्त किये गये। १६२५ और २७ में हिटलर ने अपने उद्देश्य अपनी "*आत्मकथा*" द्वारा जनता तक पहुँचाये ।

१६२६ का आर्थिक सकट राष्ट्रीय समाजवादी दल व विशेषतः हिटलर के लिए एक स्वर्ण-सुयोग था। राष्ट्रीय समाजवादी युवक आन्दोलन ने जनता को आकृष्ट किया। उद्योगपति इन्हें आर्थिक सहायता करने लगे। सामन्त वर्ग और देश भक्त क्रमशः इस दल में सम्मिलित हुए। १६३० में मूलर के पदत्याग के पश्चात् ब्रूणिंग प्रधानमन्त्री निर्वाचित हुआ एवं राष्ट्रीय समाजवादियों ने ब्रूणिंग पर षड़यन्त्रकारी का अभियोग लगाया। परिणामतः १६३० का एक विशेष निर्वाचन हुआ— जिसमे नाजी दल को (१२ से) १०७ स्थान राइक-स्टाग में प्राप्त हुआ । दो वर्ष पर्यन्त ब्रूणिंग ने समाजवादियो के असहयोग होने पर भी शासन चलाया। नाजियों ने "जर्मनी उठो, नौकरी और रोटी लो, दासत्व की शृंखला तोड़ो" इत्यादि नारो से जनता को संगठित किया। १६३२ मे ब्रूणिंग ने राष्ट्रपति हिन्डनवर्ग की अवधि को बढ़ाने के लिए लोक-सभा के समक्ष प्रस्ताव रखा, परन्तु हिटलर ने इसका विरोध किया एवं मार्च १३ नवीन निर्वाचन की तारीख निश्चित हुई। राष्ट्रपति पद के लिए नाजियों ने हिटलर, गणतन्त्रवादियों ने हिण्डनबर्ग और साम्यवादियों ने थालमैन को प्रार्थी घोषित किया। निर्वाचन मे हिण्डनबर्ग को बहुमत से एक प्रतिशत कम मत परन्तु हिटलर से ७३ लाख अधिक मत मिले। अप्रेल के द्वितीय निर्वाचन में हिण्डनबर्ग पूर्णशः विजयी हुआ और ८५ वर्ष की आयु में राष्ट्रपति के कार्य को पुनः ग्रहण किया। राष्ट्रीय समाजवादी दल को सतुष्ट करने के लिए हिण्डनबर्ग ने ब्रूणिंग को पदच्युत किया एवं वान पैपेन

को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया। इस समय ६० लाख जर्मन बेकार थे एवं प्रभूत व्यय से आर्थिक अवस्था भी भयंकर हो गई थी। परन्तु पैपेन लोक-सभा में बहुमत प्राप्त नहीं कर सका। इसी समय प्रशिया में राष्ट्रीय समाजवादी प्रधानमन्त्री निर्वाचित हुआ था। इसी लिए ह्निण्डनबर्ग ने पुनः निर्वाचन का निश्चय किया एवं नवम्बर १६३२ मे राइकॅस्-टाग को भंग कर दिया। नवीन निर्वाचन में नाजियों ने लोकसभा में २३० आसन ग्रहण किये अर्थात् १६३० से १२३ आसन अधिक। राष्ट्रपति ने हिटलर को मंत्रिमंडल बनाने के लिए आमंत्रित किया परन्तु जब नाजी नेता तानाशाही अधिकारों का दावा करने लगे तो ह्निण्डनबर्ग स्लोकॅर को प्रधान मन्त्री नियुक्त किया। यह दो मास तक लोक-सभा के विरुद्ध प्रशासन का अधिकारी रहा, परन्तु जनवरी १६३३ में विवश होकर राष्ट्रपति ने इसे पदच्युत किया और हिटलर को प्रधान मन्त्री व पैपेन को उपप्रधानमन्त्री नियुक्त किया।

जर्मनी के "फुरर" हिटलर—यद्यपि हिटलर प्रधानमन्त्री नियुक्त हुआ, परन्तु मंत्रिमण्डल व लोक-सभा में नाजी अल्प-संख्यक थे। इसीलिए इसने ५ मार्च को नवीन निर्वाचन का निश्चय किया। निर्वाचन से पूर्व साम्यवादी, राज-सत्तावादी और समाजवादी प्रजा के दमन के लिए इसने विभिन्न नियम स्वीकार किये। पैपेन को प्रशिया का कमिश्नर नियुक्त किया गया एवं प्रशिया की लोक सभा के भी निर्वाचन की घोषणा की गई। इसी समय (२८ फर्वरी) बर्लिन का प्रसिद्ध राइक-स्टाग भवन एक आकस्मिक अग्निकांड में भस्म हो गया। हिटलर के अनुयायियों ने साम्यवादियों को इस अग्नि कांड का दोषी ठहराया। चुनाव से पूर्व शांति रखने के लिए राष्ट्रपति ने विधान की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की धाराओं को अल्पकाल तक रद्द कर दिया। प्रकाशनिक स्वाधीनता, सार्व-

जनिक सभाओं व गुप्त षड्यन्त्रों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। निर्वाचन का परिणाम राष्ट्रीय समाजवादियों के पक्ष में था। नवीन लोक-सभा के ६४७ आसनो में से राष्ट्रीय समाजवादियों ने २८८ सहिष्णु व राष्ट्रीयवादियों ने ५२ आसन ग्रहण किये। नाजी और राष्ट्रीयवादियो के संयुक्त दल ने लोक-सभा में बहुमत प्राप्त होने से मंत्रि-मंडल का निर्वाचन किया।

२३ मार्च १९२३ को वाइमार विधान की विशेष धाराओ को रद्द कर हिटलर को चार वर्ष के लिए सर्वसत्ताधिकारी बना दिया गया। लोक-सभा मे भाषण देते समय इसने घोषणा की कि "राष्ट्रीय महासंकट के समय संमुख है। इसी लिए भविष्य में लोक-सभा के अधिवेशन असंभव है। सदस्यों! आप युद्ध अथवा शान्ति का निश्चय करो"। सदस्यों ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया एवं अनिर्दिष्ट काल के लिए लोक-सभा भंग हो गई। यद्यपि नाजियों ने यह आश्वासन दिया था कि राष्ट्रपति के अधिकार व दोनों भवन ही विधान के प्रमुख अंग समझे जायेंगे। इसी प्रकार के परिवर्तन से नाजियों ने सर्वाधिकार प्राप्त किया और एक महान् क्रान्ति का युग आ गया।

नाजीवाद की सफलता के कारण:—नाजियो की प्रभुता के अनेक कारण थे। प्रथम महायुद्ध और शान्ति ने जर्मन जनता की शक्ति को निष्पेदित किया था एवं भरसालिस संधि की शर्तों को घृणात्मक और पराजय की कहानी समझा था। फ्रांस की विरोधिता रूर में संघष राइनलैण्ड और सार के अधिकार, क्षतिपूर्ति की समस्या, संरक्षण और निरस्त्रीकरण की नीति ने जर्मन जनता को विक्षुब्ध कर दिया था। ऐसी परिस्थिति में गणतन्त्रवादियो की संतोष नीति व अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ मे जमनी की अवहेलना गणतंत्रवादियों को जनता की दृष्टि में कायर सिद्ध कर दिया।

अनेक जर्मन प्रजातन्त्र वैधानिक प्रणाली से त्रस्त हो गये थे। निर्णय और पूर्णता के स्थान पर राजनीतिज्ञों ने उज्ज्वल भविष्य के आश्वासन, विश्वास और चमत्कृत भाषणों से क्षुधार्त जनता को प्रतारित किया। समय के साथ साथ अधिकांश जनता, जर्मनी की प्रतिष्ठा और संमान की रक्षा करने में समर्थ किसी महापुरुष को खोज रहे थे। हिटलर ने अपनी वाग्मिता से जनता को रोटी, नौकरी और जर्मनी के उत्थान की घोषणा से विश्वस्त कर दिया था। जर्मन-जनता अपने प्रभुत्त्व के पुनरुद्धार में आस्था रखने लगी।

नाजियों ने सैनिक संगठन करके जर्मन सभ्यता और संस्कृति का विश्व मे प्रचार कर एक वृहत् जर्मनी की कल्पना को जन्म दिया। वीर जर्मन जनता स्वयं सेना में प्रविष्ट हो गई एवं शक्ति-प्रयोग से कष्टों और दुखों को मिटाने के लिए अग्रसर हुई। नाजी नेताओं ने जनता की मनोवृत्ति का उचित विश्लेषण किया। उनके चमत्कृत प्रचार आन्दोलन, भाषण, गीत, वेषभूषा, ऐतिहासिक दृष्टान्त, जातीय शास्त्र, यहूदियों के वहिष्कार, पताका आदि व हिटलर के प्रगतिशील व्यक्तित्त्व ने जर्मन जनता को पूर्णरूप से मोहित कर लिया।

साम्यवादी दल को प्रगति, उनकी रक्तक्रान्ति का मार्ग और उनके सहयोग आन्दोलन ने पूंजीपतियों और उद्योग पतियों मे आतंक की सृष्टि की थी। हम देखचुके हैं कि गणतन्त्र के ध्वंस के लिए इस दल ने किस प्रकार षड्यन्त्र किये थे। धनि तथा संपत्तिशाली यह आशा करते थे कि नाजियों के उत्थान से साम्यवादियों का ध्वंश और उनकी संपत्ति का संरक्षण स्वतः हो जायेगा।

नाजीवाद आर्थिक योजना व साम्राज्य विस्तार को अत्यन्त महत्त्व पूर्ण स्थान देता था। वेकारी से त्रस्त होकर जनता रोटी

और नोकरी की आशा से हिटलर के पीछे लग गई। साम्राज्य स्थापन की कल्पना जर्मनी को समृद्ध करेगी, यह आशा अधिकांश जर्मनियों को थी। सक्षेप मे नाजी कार्यक्रम जर्मन जनता की आवश्यकताओ का ही पूरक नही था, अपितु जर्मनी की सामरिक व आर्थिक प्रतिष्ठा एवं राजनैतिक प्रभुता का भी विस्तारक था।

अधिनायक हिटलर ने राष्ट्र के राजनैतिक, आर्थिक और संस्कृतिक जीवन के समन्वय के लिए संपूर्णशक्ति को स्वयं में केन्द्रित कर "डर फुरर" की पदवी ग्रहण की—जिसका अर्थ हिटलर के नेतृत्त्व और समग्र राष्ट्र की एकता मे विश्वास था।

नाजी प्रशासन—सर्व प्रथम हिटलर ने राष्ट्रीय पताका को कृष्ण, लाल और पीत के स्थान पर श्वेत, लाल और कृष्ण किया व उसके मध्य मे स्वास्तिक को राष्ट्रीय चिन्ह के रूप में सम्मानित किया–यही पताका साम्राज्य के समय मे थी। लोकसत्ता का अवसान हो गया और उसके स्थान पर नाजियों की अधिनायकता में "तृतीय राइक" की स्थापना हुई। इस परिवर्तन को जनता मे प्रचारित करने के लिए जोशेफ गोयेव्लिस को जनशिक्षा व प्रचार-विभाग का मन्त्री नियुक्त किया गया। राष्ट्रीय सम्मान के पुनरुत्थान के लिए प्रकाशन, वेतार और चलचित्रों द्वारा जनता मे राष्ट्रीयता का संचार किया गया व क्रमशः राष्ट्रीय समाजवादी भावनाओं की ओर जनता को खींच लिया गया।

यहूदियों का बहिष्कार—१ अप्रैल १६३३ मे-जिस दिन नाजी अधिनायकवाद की स्थापना हुई-प्रशासन ने यहूदी दूकानदारों और व्यवसायियों का "बाइकाट" किया। यह भी प्रचार किया गया कि जिसकी धमनी मे जर्मन रक्त है, वही आर्य है और उसे ही केवल शिक्षा और न्याय-अधिकारी के पद प्राप्त

हैं। द्वितीय जनवरी १६३४ मे हिटलर की अधिनायक-स्थापना के वार्पिकोत्सव के दिन जर्मनी के विभिन्न राज्यों की लोक-सभाओं का अवसान कर उन्हें जर्मन-साम्राज्य के प्रदेशों के रूप में स्वीकार किया गया। १६३४ के प्रारम्भ में हिटलर ने युवक आन्दोलन, श्रमिकदल, प्रचार-विभाग, सघर्पसेना, विशेष पुलिस (गुप्तचर—विभाग) और राजनैतिक समितियों से परिवेष्टित होकर जर्मनी के भविष्य निर्णय के लिए नवीन योजना वनाई। इसी समय हिटलर के अधिनायक वाद से त्रस्त होकर आकांक्षी जर्मन संघर्प सेनानायक रोहम, ने भूतपूर्व प्रधान मन्त्री स्लीकर के साथ हिटलर के पतन के लिए गुप्त पड्यन्त्र किया। गुप्तचर-विभाग की सहायता से हिटलर ने पड्यन्त्र को क्रियान्वित करने से पूर्व ही पड्यन्त्रकारियों को वंदी कर लिया। म्यूनिस में रोहम की हत्या की गई, स्लीकर को वर्लिन में मार दिया गया। इसी प्रकार ३२ प्रसिद्ध जर्मन नागरिकों की-जिनमे भूतपूर्व प्रधानमन्त्री सीडैमैन भी था-सम्पति को जब्त कर उन्हे नागरिक अधिकारो से वंचित किया। सहस्रो युवकों को विना विचार केवल विद्रोह के संदेह में अनिर्दिष्ट काल के लिए वन्दी वनाया गया। जुलाई १६३४ मे राष्ट्र-रक्षा के निमित्त ७७ व्यक्तियों को फांसी दे दी गई। २ अगस्त को, राष्ट्रपति हिंडनवर्ग की मृत्यु हुई। सर्व-जन-मत से इसने स्वयं को ही राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री दोनों वना कर "साम्राज्य-अधिनायक" घोपित किया।

जर्मनी पूर्ण रूप से सर्वसत्तावादी राष्ट्र वन गया। फासिस्ट और नाजीवाद में विशेप अन्तर नहीं था। फासिस्टवाद की तरह सर्वसत्तावाद ने भी जनता को यह शिक्षा दी कि जनता राष्ट्र के लिए है, राष्ट्र जनता के लिए नहीं। राष्ट्र, विस्तार, सामरिकवाद और साम्राज्यवाद की भित्ति पर ही स्थापित है। इन दोनों

सिद्धान्तों ने ही प्रजातन्त्रवाद, साम्यवाद और शान्तिवाद का विरोध किया। जर्मन स्वयं को उच्च जाति समझते थे और अपने नैतिकगुण व सामरिक शक्ति को अपने पूर्वज आर्य-निवासियों की सम्पत्ति समझते थे। फासिस्टवाद अधिकतर नाटकीय समारोह था, परन्तु राष्ट्रीय समाजवाद गम्भीर आतंकवाद था।

आर्थिक समन्वय—आर्थिक दृष्टि से नाजीवाद के विभिन्न अंग थे। अत्यधिक सूद को नियन्त्रित किया गया व बेकारी को एक वर्ष मे ही ६० लाख से ४० लाख मात्र रख दिया गया। श्रमिको के कार्य-काल को प्रतिसप्ताह ४० घंटे सीमित किया गया व सहस्र "श्रमिक युवकों को श्रमिक-स्वयं-सेवक-संघ" में प्रविष्ट किया गया। इसके सदस्यों को आश्रय, खाद्य और वेतन मिलता था व इसके विनिमय में प्रशासन द्वारा आदिष्ट कार्य करना पड़ता था। १६३३ में श्रमिक संघ को भंग कर डाक्टर रावर्ट ले के नेतृत्व में धनी और गरीब, शिक्षित और अशिक्षित सभी को राष्ट्र के हित के लिए जर्मन श्रमिक दल मे संगठित किया। विशेष नियम द्वारा पूंजीपति और श्रमिकों के संघर्ष मिटाने के लिए पंचायतों की व्यवस्था की गई। व्यक्तिगत उन्नति से सामूहिक उन्नति को महत्त्व दिया गया। हड़ताल व तालाबंदी बंद की गई। राष्ट्रीय आर्थिक समिति के सदस्यों को ३२६ से घटा कर ६० किया गया एवं शासक चार वर्ष के लिए इनको केवल आर्थिक परामर्श के लिए नियुक्त करने लगे। जर्मनी को १२ भौगोलिक क्षेत्रो मे विभाजित किया गया व प्रत्येक २० पर एक केन्द्र के उद्योगपति को "नेता" और कर्मचारियों को "अनुयायी" कहा गया। हरेक केन्द्र में उद्योग को चलाने व योग्यता तथा उत्पादन की वृद्धि के लिए परामर्शदात्री समिति नियुक्त होती थी—जिसमे कुछ सदस्य उद्योगपति द्वारा नियुक्त व कुछ कर्मचारियों द्वारा निर्वाचित होते थे। प्रशासन ने

"श्रमिक-संरक्षकों" की नियुक्ति की एवं इन समितियों के गुप्त रूप से निरीक्षण, वेतन का निर्धारण और श्रमिक की पदच्युति का अधिकार अपने पास रखा। वैदेशिक व्यवसाय के लिए आर्थिक राष्ट्रीयवाद के सिद्धान्त का प्रयोग किया गया एवं जर्मनी एक आत्म-निर्भर राष्ट्र बन गया। आयात की न्यूनता और निर्यात की वृद्धि हुई। १६३६ में केवल १७ लाख बेकार रह गये व इनके समाधान के लिए भी चतुर्वर्षीय योजना की घोषणा की गई। न्यूरेम्बर्ग के राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन मे भाषण देते हुए हिटलर ने घोषणा की—"चार वर्ष में जर्मनी आवश्यक सामग्री की दृष्टि से पूर्ण आत्मनिर्भर हो जायेगा"। वित्तमन्त्री डाक्टर साच्ट इस योजना का निर्माता था एवं सेनापति गोयेरिंग इसके क्रियान्वयन का अधिकारी था। गोयेरिंग ने अस्त्र शस्त्र-निर्माण को प्राधान्य दिया व उद्योगपतियों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता मे हस्तक्षेप किया। १६३७ में राष्ट्रीय ऋण की वृद्धि होने से साच्ट ने गोयेरिंग की नीति के प्रतिवाद-स्वरूप पदत्याग किया एवं डाक्टर फक हिटलर का आर्थिक परामर्शदाता नियुक्त हुआ। कच्चे माल के अभाव की पूर्ति के लिए वैज्ञानिक उपायों से कृत्रिम तेल, रबर, सन, ईंधन आदि प्रस्तुत किये जाने लगे व खनियों से लोहे के निर्यात की योजना बनाई गई। पुनः सैनिकी-करण नीति और सार्वजनिक निर्माण ने बेकारी की समस्या का हल किया। द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ मे जर्मनी में केवल ३ लाख बेकार थे। १६३८ मे जर्मनी की केवल तीन आन्तरिक नीति थी-प्रथम चतुर्वर्षीय योजना की पूर्ति और व्यवसाय की वृद्धि, द्वितीय जर्मन सामरिक शक्ति की वृद्धि करना, तृतीय आस्ट्रिया को समग्र जर्मन आर्थिक प्रणाली मे विलीन करना। १६३६ में इन तीनों समस्याओं के हल के लिए जनता से ऋण लिया गया व कर की

घृद्धि की गई। उद्योगपतियो से ४० प्रतिशत कर लिया जाता था। इन आर्थिक प्रवन्धो से जर्मनी द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ में पूर्ण रूप से प्रस्तुत था।

कृषि का उत्थान---जर्मन के इतिहास अध्ययन से प्रतीत होता है कि १९२२ और ३३ में प्रशिया के जमींदार-वर्ग ब्रूणिग पैपेन और स्लीकर के प्रशासन के प्रमुख कारण थे। ये तीन प्रधान मन्त्री वृहत् जागीरो को छोटे छोटे टुकड़ो में बांटने के प्रयत्न में थे। हिटलर के अभ्युदय के साथ रिचार्ड डार् कृषि-मन्त्री नियुक्त हुआ। १९३३ अक्टूबर मे डर् ने एक अद्भुत उत्तराधिकारी पट्टा नियम प्रचलित किया-जिसके अनुसार प्रत्येक ३०९ एकड से न्यून भूखंड स्वामी की मृत्यु के पश्चात् वैधानिक उत्तराधिकारी को मिल सकता था। यह नवीन स्वामी अवशिष्ट उत्तराधिकारियों की शिक्षा और जीविका-निर्वाह की व्यवस्था के प्रति उत्तरदायी था। परन्तु इस भूखंड पर न ऋण लिया जा सकता था न इसका विक्रय ही किया जा सकता था। इस नीति से यह आशा थी कि एक कुलीन कृषक दल का निर्माण होगा, जो अपने को आर्य समझेगा व नाजियो का समर्थन करेगा। कृषिमन्त्री ने कृषि की उत्पत्ति, विक्रय व मूल्य पर नियंत्रण कर जमनी के इतिहास मे एक नवीन युग की सृष्टि की।

संस्कृति और शिक्षा-प्रबन्ध—नाजी सिद्धान्त को जनता मे फैलाने के लिए प्रचारमन्त्री गोयेबिल्स और नाजीदल के शिक्षा-निरीक्षक रोजनबर्ग के संचालन मे सार्वजनिक प्रदर्शन किया गया। इसका उद्देश्य विभिन्न सांस्कृतिक धाराओं और राष्ट्रीय भावनाओंका राष्ट्रीय समाजवादी दल के साथ समन्वय करना था। एक नाजी अधिकारीका कथन है-"यदि कोई नाजी से अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक समन्वय के सम्बन्ध में प्रश्न करे, तो

उसे विश्वासघातक समझा जायेगा"। शिक्षणालयों में युवकों को नाज़ी राष्ट्रीय सिद्धान्तों, आर्य सम्बन्धों, सामरिक भावनाओं, राजनैतिक चेतनाओं, स्वास्थ्य की उन्नति और जर्मनी के गौरवमय अतीत के इतिहास, हिटलर का जीवन चरित और रूढ़ियों का अध्ययन अनिवार्य कर दिया गया। जर्मन जाति का आधिपत्य, जनसंख्या की वृद्धि व साम्राज्यवाद के सिद्धान्त को नवीन रूप दिया गया।

न्याय-सुधार—जर्मनी के न्यायालयों का पुनर्गठन कर सामूहिक दृष्टि से व्यक्तिगत हिताहित की अवहेलनाकर जनता के कल्याण को प्रधानता दी गई। १९३४ के एक विशेष विधान द्वारा जनता-न्यायालय स्थापित किये गये—इनमें २ विचारपति और ३ साधारण नागरिक हिटलर द्वारा नियुक्त होते थे। ये अतिरिक्त न्यायालय केवल षड्यन्त्र और राष्ट्रद्रोह के मामलों पर विचार करते थे। यह राष्ट्रद्रोह इतना विस्तृत था कि एक निषिद्ध समाचार-पत्र का विवरण तक इसमें सम्मिलित कर लिया जाता था। इन न्यायालयों में अपराधी की रक्षा के लिए वकील की नियुक्ति विचारपति के आदेश से ही हो सकती थी व न इसके प्रतिकूल अपील ही की जा सकती थी। कटारी द्वारा शिरच्छेदन ही इस न्यायालय का सामान्य दंड था।

धार्मिक नियंत्रण—नाजियों ने केवल राजनैतिक और आर्थिक संस्थानों को ही नवीन रूप नहीं दिया, परन्तु प्रोटेस्टेण्ट और कैथोलिकों का भी नियंत्रण किया। १९३३ में जर्मनी में २९ प्रोटेस्टेण्ट गिरिजा थे। हिटलर के मत में राष्ट्र की एकता का प्रतीक ही गिरिजा होना चाहिए-जिसका सर्वोच्च पादरी "फुरर" द्वारा नियुक्त होगा। इस योजना के प्रतिरोध के लिए पादरियों ने समग्र गिरिजाओं का एक संघ डा० बोडेनरिंग के सभा-

पतित्व में स्थापित किया, परन्तु नाजी इस संशोधन से संतुष्ट न हो सके। हिटलर के विशेष आदेश द्वारा डा० मूलर को राष्ट्रीय पादरी नियुक्त किया गया एवं नवीन राजनैतिक प्रणाली को स्वीकृत करने के लिए प्रोटेस्टेण्ट गिरिजाओ को बाध्य किया गया।

इसी समय कैथोलिक गिरिजाओ से भी नाजी राष्ट्र का संघर्ष हुआ, क्योंकि जर्मन कैथोलिक और पोप तीन विभिन्न धार्मिक शर्तों के अनुसार—प्रशिया, बभेरिया और बैडेन—नियंत्रित होते थे। हिटलर चाहता था कि एक ही धार्मिक संधि से पोप का जर्मनी से साक्षात् सम्बन्ध हो। इसी लिए २० जुलाई १९३३ में पैपेन की सहायता से हिटलर ने पोप के साथ एक विशेष संधि स्वीकृत की। नाजी राजनीति में कैथोलिकों का भाग लेना निषिद्ध हो गया एवं धार्मिक अधिकारियो की नियुक्ति की शक्ति कैथोलिक समितियों को दी गई। कैथोलिक शिक्षणालय, युवक सघ और सांस्कृतिक-सभाओ की रक्षा की नाजियो ने प्रतिज्ञा की, यदि वे राजनैतिक आंदोलनों में सम्मिलित न हों। हिटलर ने घोषणा की कि आज से रोमन कैथोलिक विना शर्त नवीन राष्ट्रीय समाजवादी जर्मन का समर्थन करेंगे। परन्तु अल्पकाल पश्चात् धन अपहृत कर जर्मनी से बाहर ले जाने के अपराध में हिटलर ने अनेक पादरियो को कैद किया एवं पादरियों के प्रभाव से रक्षा करने के लिए बालक, बालिकाओ को हिटलर युवक संघ मे अनिवार्य-रूप से प्रविष्ट कर लिया गया। १९३७ में अधिकांश कैथोलिक स्कूल राष्ट्र के अधिकार मे आ गया। जब पोप ने संधि-भंग का आरोप लगाया, तो हिटलर ने उच्च-पदस्थ पादरियो को दुश्चरित्रता के आधार पर दंडित किया।

उग्र नाजी ईसाई—धर्म को छोड़ कर पुरातन मूर्तिपूजा की

पद्धति प्रारम्भ करने लगे। इस आन्दोलन का नेता प्रसिद्ध नाजी दार्शनिक रोजनवर्ग को १९३४ में हिटलर ने "राष्ट्रीय पुरस्कार" से विभूषित किया। इस नृशंस व आमूल परिवर्तन से प्रभावशाली विद्वान्, वैज्ञानिक, लेखक, प्रचारक और शिक्षक घबरा गये एवं स्थान स्थान पर आश्रय मांगने लगे। राष्ट्र संघ ने इन आश्रय प्रार्थियों के पुनस्स्थापन के लिए ३१ दिसम्बर १९३८में एक विशेष विभाग की स्थापना की और समग्र राष्ट्रों से उनके लिए चंदा इकट्ठा किया। १९३९ के प्रारम्भ में यह अनुमान किया जाता था कि केवल यहूदी ही डेढ़ लाख से अधिक मात्रा मे जर्मनी त्याग चुके थे। इस समस्या के समाधान से पहले ही द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया।

जनवरी १९३९ में एक विशेष नियम द्वारा १७ वर्ष से अधिक आयु के पुरुषों को "संघर्ष सेना"मे अनिवार्य रूप से भर्ती किया गया। इस अनिवार्य नियम से सामरिक शिक्षा इतनी प्रचुर मात्रा में हुई कि प्रत्येक जर्मन युद्ध के लिए तैयार हो गया। नौ-शक्ति की वृद्धि, व्यावसायिक व युद्ध जहाजों के निर्माण, वायुयान की वृद्धि, स्थल सेना के वैज्ञानिक सामरिक शिक्षण और हिटलर के ओजस्वी व प्रभावशाली भाषणों ने मिल कर १९३९के द्वितीय महायुद्ध की पृष्ठ भूमि पूर्ण रूप से प्रस्तुत की।

वैदेशिक नीति

प्रथमकाल (१९१९ से १९३२)—इस काल में जर्मन परराष्ट्रनीति का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्रसंघ में आसन ग्रहण करना था। सोवियट रूस से संधि स्थापना के सम्बन्ध में जर्मन राजनैतिकों में मतभेद था। १९२२ में जिनोवा के आर्थिक सम्मेलन में रूस और जर्मन प्रतिनिधियों ने रैपोलो की सन्धि पर हस्ताक्षर किये थे। चार वर्ष पश्चात् बर्लिन में निष्पक्षता

और मैत्री के द्वारा इन्हीं सिद्धान्तों की पुनरावृत्ति की गई थी। जर्मन नीति का प्राच्य-स्रोत भी इसी समय प्रतिहत हो गया और डा० स्ट्रेसमैन के नेतृत्व मे सहयोग की नीति प्रारम्भ हुई।

१८७८ में एक सामान्य व्यवसायी के घर में स्ट्रेसमैन का जन्म हुआ था। वर्लिन और लिप्जिक विश्वविद्यालयो ने राजनीति, विज्ञान, अर्थशास्त्र और दर्शन के अध्ययन के पश्चात् २३ वर्ष में ही "सैक्शन—उद्योग संघ" की इसने स्थापना की थी—जिसका उद्देश्य स्थानीय उद्योग का पुनर्गठन था। १९०७ में यह सर्वप्रथम लोकसभा में राष्ट्रीय उदारनैतिक दल की ओर से सदस्य निर्वाचित हुआ। १० वर्ष पश्चात् उद्योगपतियों की सहायता से इसने जर्मन जनता-दल की स्थापना की—जो कि गणतन्त्र को शांति, आंतरिक एकता और व्यवसाय की वृद्धि के लिए समर्थित करता था। १९१९ की वाईमार-विधान-सभा मे भरसालिस सन्धि के विपरीत इसने मत दिया था। अगस्त १९२३ में स्ट्रेसमैन—जिस समय फ्रांस रूस पर अधिकार कर रहा था—जर्मनी का प्रधान-मन्त्री बना। परन्तु आंतरिक अशान्ति से त्रस्त होकर इसने पदत्याग किया एवं उत्तराधिकारी वर्थ के मन्त्रि-मण्डल में अक्टूबर १९२९ तक विदेश-मन्त्री का पद-ग्रहण किया।

स्ट्रेसमैन की विदेशनीति के मूल-सिद्धान्त ये थे—फ्रांस के साथ मित्रता व राष्ट्र-संघ में जर्मनी का अन्य राष्ट्रों के समान स्तर पर प्रवेश। यह प्रतिभाशाली वक्ता और साधु व्यक्ति था। जनता ने इसमें अत्यन्त विश्वास किया एवं अल्पकाल में ही इसने चमत्कारपूर्ण सफलताएँ प्राप्त की। डावस-योजना, अन्तर्राष्ट्रीय ऋण, फ्रांस का रूर-परित्याग, वेल्जियम, फ्रांस और ब्रिटेन के साथ व्यासायिक सन्धि, (१९२६) 'लोकार्नो-सन्धि'

(१६२५) जर्मनी का राष्ट्रसंघ में प्रवेश इत्यादि इसकी सफलताएँ थीं—जिनका विशद्वर्णन हम इस काल के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में प्राप्त करेंगे।

१६२७ में मित्रसंघ ने जर्मनी के निरीक्षणार्थ नियुक्त आयोग को हटा लिया। १६२८ में स्ट्रेसमैन की प्रेरणा से जर्मनी ने केलाग सन्धि को स्वीकार किया एवं युद्ध की महत्ता का परित्याग कर दिया। १६२६ में यांग-योजना ने क्षतिपूर्ति को निर्दिष्ट किया व १६३० में राइनलैण्ड को मित्र सेना ने रिक्त कर दिया। स्ट्रेसमैन की मृत्यु के पश्चात् इसका मित्र और उत्तराधिकारी डाक्टर कार्टियस १६३१ पर्यन्त समझौता और सहकारिता की नीति का पालन करता रहा। १६३२ में पैपेन और स्लीकर ने क्षतिपूर्ति से परित्राण व जर्मनी को सशस्त्र करने के समानाधिकार की नीति का अवलम्बन किया—जिसे राष्ट्रसंघ ने विवशता के साथ स्वीकृत किया।

द्वितीय काल (१६३२ से १६३६)—हिटलर के उत्थान से जर्मनी के परराष्ट्र-विभाग के समक्ष अनेक समस्याएँ उपस्थित हुईं। आस्ट्रिया की संघलीनता, हृत उपनिवेशों का पुनराधिकार, प्रथम महायुद्ध के अपराध की अस्वीकृति, सामरिक शक्ति की वृद्धि, जर्मनी के पूर्व सीमान्त का निर्धारण, क्षतिपूर्ति का संशोधन व साम्राज्यवाद इसके प्रमुख कार्यक्रम थे। अक्टूबर १६३३ में जर्मनी ने घोषणा की कि वह दो वर्ष के पश्चात् राष्ट्रसंघ का परित्याग करेगा। जनवरी १६३४ में पोलैण्ड के साथ जर्मनी ने १० वर्ष के लिए एक रक्षणात्मक संधि कर पारस्परिक संघर्ष को अल्प कर दिया, परन्तु पोलैण्ड फ्रांस के साथ सामरिक मैत्री स्थापित करने के प्रयत्न में लगा—जिसने जर्मनी को आतंकित किया। जर्मनी पोलैण्ड के समुद्र-तट के भूखण्डों का दावा करने लगा—जिसका उल्लेख संधि में नहीं था। अल्प

काल में ही यह प्रतीत हुआ कि जर्मनी अधिक शक्तिशाली प्रतिवेशी द्वारा परिवेष्टित हो गया है। जर्मनी ने निरस्त्रीकरण के सिद्धान्त का त्याग किया, क्योंकि युक्तराष्ट्र जर्मनी के अस्त्रो पर प्रतिबन्ध रखने का पक्षपाती था। जमनी ने भरसालिस सन्धि (१६३५) को अस्वीकार किया। फ्रांस ने अनिवार्य सैन्य प्रवेश का नियम दो वर्ष तक के लिए पास किया। जर्मनी ने इसके प्रत्युत्तर में अनिवार्य सैनिक प्रवेश कर ५ लाख ५० हजार सेना संगठित की। जापान और इटली ने राष्ट्रसंघ को छोड़ दिया एवं जर्मनी के साथ मैत्री-स्थापित की। १६३६ मे राइन-लैण्ड को अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित किया व प्रथम महायुद्ध के अभियोग का खण्डन किया। १६३८ मे जर्मनी ने आस्ट्रिया को हस्तगत व १६३६ मे चैकोस्लोवाकिया को विलीन किया। लिथु-यानिया से मेमेल को अधिकृत किया। २३ अगस्त को जर्मनी और रूस ने १० वर्ष के लिए रक्षणात्मक संधि की। मुसोलिनी के साथ हिटलर ने सामरिक सहायता का समझौता (२२ मई) किया। ३१ अगस्त को जर्मनी ने पोलैण्ड, डाञ्जिग और समुद्र-तट के भूखण्डों को अधिकृत करने की चुनौती दी। प्रथम सित-म्बर को युद्ध की घोषणा करते हुए हिटलर ने कहा—"शक्ति द्वारा शक्ति का विलय ही जर्मनी का एक मात्र उपाय है, क्यों-कि इग्लैण्ड और फ्रांस, जर्मन और पोलैण्ड की समस्या के समाधान के विरोधी है"। ३ सितम्बर को इंग्लैण्ड और फ्रांस ने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की व द्वितीय महायुद्ध का प्रारम्भ हो गया।

समीक्षा-आर्थिक संकट, राजनैतिक अव्यवस्था और अशांति का सुयोग पा कर संकीर्ण राष्ट्रीयवादी नाजीवाद का उत्थान हुआ। नाजीवाद के विरोधियों को भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इसने अल्पकाल में ही राष्ट्रीय जीवन को समुन्नत, अभाव के

स्थान पर प्रचुर्य, अपमान के स्थान पर संमान, अव्यवस्था के स्थान पर शान्ति प्रदान कर विश्व मे जर्मनी की प्रतिष्ठा स्थापिता की । मरसालिस-संधि के अनन्तर जर्मनी की दयनीय अवस्था का परिवर्त्तन नाजीवाद् जैसे शक्ति प्रयोग और संकुचित देश-भक्ति मे विश्वास करने वाले सिद्धान्त ही से हो सकता था। अलौकिक प्रतिभा-सम्पन्न लोक-प्रिय नेता हिटलर के अधिनायकवाद ने जनता का संगठन, आर्थिक उन्नति, उद्योग का विकास, सामरिक शक्ति की वृद्धि व साम्राज्यवाद् के स्वप्न को प्रत्यक्ष कर जर्मनी मे नवीन पराक्रम का संचार किया।

पर यह सब पूर्णता द्वितीय महायुद्ध में धुरि-राष्ट्रों के पतन से विलीन हो गई। विश्लेषण से यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि यह क्षण-भंगुर आन्दोलन अस्पष्ट था और द्रुतगति से क्रियान्वित करने के कारण यह जनता के सहयोग की भित्ति पर दृढ़ नहीं हो सका। प्रो० स्वेन ने सत्य ही कहा है-"नाजीवाद् एक ऐसा सिद्धान्त है, जिसमे विभिन्न सिद्धान्तों का समन्वय है। एक सकटकालीन अवस्था के समाधान के लिए इसकी स्थापना हुई। हैगेल के राष्ट्रीयवाद, प्लेटो की कुलीन प्रशासन-प्रथा, नीशे की शक्ति-प्रयोग की भावना एवं वर्गशो के दर्शन के संमिश्रण से नाजीवाद आदर्शवाद् के रूप में परिणत हुआ था। परन्तु व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य, आत्मानुशासन और समानता की अवहेलना से यह आन्दोलन प्रगतिशील नहीं रह सका। राष्ट्र के उत्थान के लिए युद्ध ही को एक-मात्र साधन मानना अदूरदर्शिता और अज्ञान का परिचय था"। संक्षेप में इस आन्दोलन ने जनता के मन को आवेष्टित अवश्य किया, परन्तु अपनी अस्थायिता के कारण हिटलर के पतन के पश्चात् राष्ट्र का संरक्षण अंधकारमय हो गया। राष्ट्र का भविष्य इसने एक ही व्यक्ति पर आधारित कर दिया।

(घ)-साम्यवादी रूस

रूस संसार का एक विशाल राष्ट्र है-जिसका क्षेत्र-फल ८७६४ हजार वर्ग मील अर्थात् विश्व का एक षष्ठांश भूखंड और जन संख्या १८ करोड़ है। प्रथम महा-युद्ध पर्यन्त यहाँ पर प्रति हजार में १७ कुलीन, १२५ व्यवसायी और ८०० से अधिक कृषक थे। ऊपर हम बता चुके है कि शताब्दियो से सम्राट् के अत्याचार, अन्याय और निष्पेषण के प्रति जनता किस प्रकार संघर्ष कर रही थी। १९१७ में जागृत जनता ने अपनी दासत्व की शृंखलाओं को मुक्त किया, कुलीन और पूंजीपतियों को ध्वंस कर ऐसे शासन की स्थापना की-जहाँ उनके विश्वास में शांति और स्वतन्त्रता विराजमान है। इसके स्वातन्त्र्य-संग्राम का प्रथम अध्याय १९०५ में समाप्त हुआ। द्वितीय अध्याय १९०६ से १९१४ तक था-जिस समय निरंकुश जार ने शक्ति-प्रयोग द्वारा शासन का संचालन किया। यदि लोक सभा ड्यूमा इसके आर्थिक प्रस्तावो को अस्वीकृत कर देती थी तो जार के मन्त्री पूर्व कालीन नियमो के अनुसार शासन चलाते-रहते थे। कार्यकारिणी समिति सम्राट् ही के प्रति उत्तरदायी थी। किस प्रकार प्रथम महायुद्ध के समय जार की प्रभुता का ध्वंस हुआ-यह हम नीचे दे रहे है।

रूसीय क्रान्ति के अन्तर्निहित कारण:—

प्रजातन्त्रवाद का प्रभाव—१९ वीं शताब्दी के अन्त और २० शताब्दी के प्रारम्भ मे यूरोप के सभी राष्ट्रों मे राष्ट्रीयता और प्रजातन्त्रवाद का प्रचार हो रहा था। १९०५ में जारने आंशिक रूप से वैधानिक प्रशासन को स्वीकृत कर जनता को नवीन चैतन्य दिया था। यद्यपि विधान के अनुसार ड्यूमा की सम्मति

के विना कोई भी नियम स्वीकृत नहीं हो सकता था, फिर भी सम्राट् ने यह घोषणा की थी कि–"रूस के सम्राट् की शक्ति सर्वोच्च निरंकुश शक्ति है। उसके प्रभुत्व को शिरोधार्य करना चाहिए। केवल भय से नहीं, पर आत्मा की रक्षा के लिए भी, क्योंकि यह परमेश्वर की आज्ञा है"। प्रजातन्त्रवाद की मूल-नीति,सर्वजनमताधिकार, वैधानिक शासन-प्रणाली, जमींदारी उन्मूलन, समान सुयोग और सुविधाएँ थीं–जिनकी अवहेलना से विद्रोह का उदय हुआ। यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि जो जनता आंशिक रूप से स्वाधीन हो चुकी थी-उसने पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता प्राप्त करने की प्रचेष्टाएँ कीं।

कृषकों का असंतोष—रूस की ८० प्रतिशत से अधिक जनता कृषक थी। ज़ार अलैग्जेण्डर द्वितीय ने दासत्व-प्रथा का अवसान कर एक नवीन प्रकाश व स्वतन्त्रता अधिकांश जनता को दी थी, परन्तु सामन्तीय सुविधा व अत्याचारों से त्रस्त होकर कृषक व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के लिए व्याकुल हो गये। इनका कृषि-क्षेत्र इतना संकीर्ण था कि वे अपने परिवार का भरण-पोषण उससे नहीं कर सकते थे। आय का अधिकांश प्रत्यक्ष रूप से ग्राम्य, प्रदेश और राष्ट्रीय अधिकारी को देना होता था। नियत समय पर कर नहीं देने से भूमिका पुनर्विभाजन भी होता था। ग्राम्य-समिति के आदेश के विना न वे अपनी भूमि का त्याग ही कर सकते थे। जिस जिस प्रकार उनके कष्ट बढ़ने लगे-गुप्त रूप से ये कारखानों में प्रविष्ट होने लगे। ये क्रांति के सुयोग की प्रतीक्षा में थे।

विक्षुब्ध श्रमिक—औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम से रूस में नवीन नवीन उद्योगशालाओं का निर्माण हुआ, जिससे श्रमिकों की संख्या २५ लाख तक हो गई। श्रमिक संगठन पर

सम्राट् द्वारा प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इन्हें पूरा वेतन ने मिल पाया। सुधारवादी प्रेरणाओं से ये अत्यन्त प्रभावित होने लगे। १६०५ मे हम देख चुके हैं कि इन्होंने पेट्रोग्राड मे किस प्रकार हड़ताल और उपद्रव मचाये थे व १६१४ में रक्त क्रान्ति द्वारा अपने अधिकार की प्राप्ति के लिये व्याकुल हो गये थे। शिक्षा का भी यहाँ पर्याप्त मात्रा में प्रचार था। श्रमिक वर्ग अधिकतर ताड़ी पीते थे। ताडी के विक्रय पर भी राज्य का एकाधिपत्य था—जिस पर नवीन नवीन करों के प्रयोग ने श्रमिको में असंतोष को और भी बढ़ा दिया।

साम्यवादी प्रचार—निरंकुश सम्राट् देश-भक्ति की भावनाओ का दमन करना चाहता था—उसने इसके लिए गुप्तचर-विभाग व प्रकाशन पर प्रतिबन्ध स्थापित किया था। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप १९वीं शताब्दी से ही रूस में साम्यवाद, शून्यवाद व समाजवाद विशेषतः कार्ल मार्क्स के सिद्धान्त का प्रचार होने लगा। उद्भासित मध्यम वर्ग—जो कि पाश्चात्य शिक्षा-केन्द्रो से उच्च शिक्षा प्राप्त कर आया था—जनता को उपर्युक्त सिद्धान्तों से दीक्षित करने लगा। क्रोपोटकिन, लेनिन, ट्राट्स्की, करेन्स्की आदि लेखको ने अपने विचारों का जनता में प्रचार किया और भूमि को समग्र राष्ट्र की सम्पत्ति बनाने के लिए विप्लवी समाजवादी अथवा बोल्शेविक दल की स्थापना की। आन्तरिक अशान्ति का सुयोग पाकर इस प्रचार से जनता अतिशय प्रभावित हुई। नव शिक्षित रूसीय परिवर्तन और जार के ध्वंस के लिए युवक अधीर हो गये—समय आते ही इन्होने विद्रोह को क्रियान्वित करने मे कोई कमी न रखी।

रूस की पराजय—सबसे महत्वपूर्ण कारण प्रथम महायुद्ध मे जर्मनी द्वारा रूस की पराजय थी। केरेन्स्की ने सत्य

ही कहा था—"यदि रूस प्रथम महायुद्ध मे सम्मिलित नहीं होता' तो रूसीय क्रांति १९१५ के वसन्त के पूर्व में ही क्रियान्वित हो जाती"। युद्ध के प्रथम तीन वर्ष तक जार ने डेढ़ करोड़ सेना को संगठित किया था, परन्तु पोशाक, अस्त्र, शस्त्र, खाद्याभाव यातायात आदि की अव्यवस्था होने से युद्ध में रूस की पराजय हुई। परिणामतः सेना में असंतोष की वृद्धि हुई। जब सेना को यह विदित हुआ कि जार की दमन-नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, तो उसने भी विद्रोह कर दिया।

तात्कालिक कारण—अदूरदर्शी जार की तानाशाही क्रान्ति का तात्कालिक कारण था। दिसम्बर १९१६ में जार के परामर्शदाता दुष्ट योगी और जादूगर रास्पुटिन की हत्या होने पर भी राजा ने अपनी दमन नीति का परित्याग नहीं किया। महायुद्ध के परिणाम से खाद्याभाव इतनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था कि जनता "रोटी" "रोटी" चिल्लाने लगी। कैरेनिस्की के शब्दों में—"खाद्याभाव भी सैनिक असन्तोष का मूल कारण था। केवल जनवरी १९१७ में १२ लाख सेना ने पदत्याग किया"। फरवरी में पैट्रोग्राड मे एक लाख श्रमिकों की हड़ताल हुई। युद्ध में पराजय से, अभाव से व मूल्यवृद्धि से परिश्रान्त श्रमिकवर्ग विक्षोभ प्रदर्शित करने लगा। सेना ने इनके दमन के लिए अस्वीकृति दे दी। यदि जार दूरदर्शिता से श्रमिक-वर्ग की मांगो को मान्य कर लेता, तो सम्भवतः क्रांति नहीं होती, परन्तु किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर उसने ११ मार्च १९१७ में डूमा के सदस्यों को घर जाने की आज्ञा दी व श्रमिकों को हड़ताल रोक कर काम प्रारम्भ करने के लिए कहा। ये ही सब कारण थे—जिन्होंने सम्मिलित रूप से विद्रोह को सजीव कर दिया।

प्रथम रूसक्रांति—(मार्च १९१७)

लोक सभा डूमा के सदस्यों ने राजा की आज्ञा को अमान्य

कर विद्रोह के संचालन के लिए एक समिति का संगठन किया। इस समिति का नाम "पैट्रोग्राड की श्रमिक और सैनिक सोवियट" था—जिसमें उद्योगशालाओं और सेना के प्रतिनिधि संमिलित थे। इसने १४ मार्च को भवोव के नेतृत्व में अस्थायी प्रशासन की स्थापना की। इस समिति का सबसे उग्र सदस्य विप्लवी समाजवादी कैरेनिस्की था।

१५ मार्च को जार ने अस्थायी नवीन प्रशासन को स्वीकृत तो किया परन्तु अत्यन्त विलम्ब हो चुका था। श्रमिक-समिति ने जार के राज्य-त्याग का दावा किया एवं जार ने विवश होकर अपने भाई ग्रेण्ड ड्यूक माइकेल को प्रशासन का भार सँभला कर राज्य-त्याग किया। माइकेल ने-जब तक प्रत्यक्ष और सर्व जनमत द्वारा जनता सहमति प्रकट न करे-सम्राट् के पद को अस्वीकृत किया। इसके ६ दिन पश्चात् निकोलास और उसका परिवार पैट्रोग्राड में बन्दी हो गया और तीन शताब्दी के अनन्तर रोमानव-वंश का अन्त हो गया।

द्वितीय रूस क्रांति (नवम्बर, १९१७)

नवीन अस्थायी प्रशासन का लवोव अध्यक्ष, मिल्ली कांव विदेश-मन्त्री, कैरेनिस्की न्याय मन्त्री व गुचकाव युद्धमन्त्री था। यह स्मरण रखना चाहिए कि यह मंत्रिमंडल प्रधानतः पूंजीपति, सामन्तवर्ग व व्यवसायियों का प्रतिनिधि था। इसके उद्देश्य प्रजातन्त्र वैधानिक प्रशासन व्यवस्था, युद्ध को जारी रखना, व्यक्तिगत संपत्ति का संरक्षण, लोक-सभा द्वारा भूमि के प्रश्नों का समाधान और क्षति-पूर्ति थे। नवीन प्रशासन ने विविध नियम स्वीकार कर प्राकाशनिक स्वतन्त्रता और राजनैतिक व धार्मिक बंदियों को मुक्ति दी। श्रमिकों के संगठन को मान्यता दी। स्थानीय प्रशासन को पुनर्गठित किया गया। परंतु

साम्यवादी और उग्र श्रमिकवर्ग इस प्रशासन से संतुष्ट नहीं थे। उग्र श्रमिकवर्ग सम्पत्ति-प्रणाली मे आमूल परिवर्तन, खाद्याभाव का अपाकरण और शांति चाहता था। "भयानक युद्ध ने खाद्याभाव के संकट को बढ़ा दिया, यातायात को अव्यवस्थित कर दिया, अर्थ को शून्य किया और जनता में ध्वंसात्मक भावना का संचार किया"। इस समस्या के समाधान के लिए १४ मार्च को पैट्रोग्राड सोवियट ने प्रथम आदेश द्वारा सेना और श्रमिकों को अस्थायी प्रशासन के नियमों को अमान्य करने की सूचना दी। रूस के प्रत्येक नगर में सेना और नाविकों की सहायता से स्थानीय क्रान्तिकारी समितियों का संगठन किया गया। अप्रैल १९१७ मे ५०० प्रतिनिधियों की एक *अखिल सोवियट रूस कांग्रेस* महासभा को आमन्त्रित किया गया। कांग्रेस ने साम्राज्यवाद के अन्त, व बिना क्षति के अविलम्ब शान्ति-स्थापन नीति का प्रस्तावन किया व निश्चय किया कि यदि अस्थायी प्रशासन इन सिद्धान्तों को स्वीकार कर ले, तो उसे मान्यता दी जाए, अन्यथा नहीं। इस कांग्रेस मे सोवियटों की ३०० सदस्यों की एक केन्द्रीय कार्य-कारीणी की स्थापना हुई और जुलाई में कैरेन्स्की के अतिरिक्त सभी मन्त्रियों ने परिस्थिति की गम्भीरता के कारण पद-त्याग कर दिया। ऐसी परिस्थिति मे अस्थायी प्रशासन ने समाजवादी विद्रोहियों को अपने में मिला लिया। इसमें लुवोव प्रधानमन्त्री व कैरेन्स्की युद्ध-मन्त्री बना। १९ मई में इस नवीन प्रशासन ने एक नवीन परिपत्रक द्वारा शान्ति-स्थापन की नीति की घोषणा की। कैरेन्स्की ने आंतरिक अराजकता का अवसान कर शासन को दृढ़ करने का प्रभूत प्रयत्न किया, परन्तु बोल्शेविकवादियों ने लेनिन के नेतृत्व में अक्टूबर में सामरिक शक्ति का प्रयोग कर शासन-परिवर्तन का निर्णय किया। ६, ७ नवम्बर को पैट्रोग्राड पर शक्ति द्वारा अधिकार किया गया

मंत्रिमंडल के सदस्य बन्दी बना लिये गये, परन्तु कैरेनिस्की ने पलायन किया। इसी समय द्वितीय अखिल रूस सोवियट कांग्रेस ने इस कार्यक्रम का अनुमोदन किया। *लोक–प्रबन्धक परिषद्* के नाम से एक नवीन केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति में लेनिन प्रधानमन्त्री, ट्राट्स्की विदेश मन्त्री, रीकाव गृह–मन्त्री और स्टालिन जातीय–मन्त्री नियुक्त हुआ। उत्तेजित जनता ने विभिन्न प्रदेशो मे स्थानीय क्रान्तिकारी समितियों की स्थापना की।

नवीन मन्त्रिमंडल के कार्यक्रम में निम्न प्रमुख विषय थे—(१) जर्मनी से अविलंब संधि करना, (२) स्थानीय विद्रोह का दमन और पृथक्करण की भावनाओं को नष्ट करना, (३) साम्यवादी प्रशासन स्थापित करने के लिए श्रमिक अधिनायकवाद की अनिर्दिष्ट काल के लिए स्थापना (४) आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक संगठन का मूल परिवर्तन करना (५) सारे संसार में श्रमिक विद्रोह का विस्तार व परावर्तित सैनिकों व नागरिकों के भोजन और आश्रय की व्यवस्था करना था। २५ नवम्बर को सार्वजनिक मताधिकार के आधार पर प्रथम रूस निर्वाचन हुआ–जिसमे विप्लवी समाजवादियों ने बोल्शेविकों से द्विगुणित आसन ग्रहण किये। परास्त बोल्शेविक दल ने शक्ति–संचय के लिए जनवरी १६१८ तक के लिए अपने कार्यक्रम को स्थगित रखा।

१६१८ के प्रारंभ में पैट्रोग्राड में विधान–सभा का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। सहिष्णु समाजवादी विद्रोहियों ने श्रमिकों के अतिरिक्त सम्पूर्ण जनता के निरस्त्रीकरण के सम्बन्ध मे प्रस्तुत वोल्शेविक प्रस्ताव को अमान्य कर दिया। इसकी प्रतिक्रिया के रूप में बोल्शेविकों ने भवन त्याग किया व दूसरे दिन प्रातः सामरिक शक्ति के प्रयोग से विधान सभा पर "प्रतिक्रियावादी

पूंजीपति संस्थान" होने का आरोप लगा कर उसे भंग कर दिया व बोल्शेविक दल सर्वसत्ताधिकारी हो गया।

रूस में क्रान्ति की सफलता के कारण—(१) साम्यवादी विरोधी अव्यवस्थित, अनुशासन और राजनैतिक अनुभवहीन एवं आर्थिक दृष्टि से पूर्ण दुर्बल थे। साम्यवादी "शठे शाठ्यं समाचरेत्" की नीति को अपना कर श्रमिक-वर्ग को संघठित कर पूंजीवाद का तीव्र विरोध कर रहे थे। (२) अभाव, खाद्य, अर्थ, सामाजिक विभिन्नता आदियों से पेषित श्रमिक-वर्ग ने साम्यवाद को नवीन धर्म और आदर्श समझ कर अपने उत्थान के लिए क्रमागत संघर्ष किया था। श्रमिकों में बलिदान कष्ट-सहिष्णुता और आदर्शवाद की भावनायें उभरी हुई थी। (३) इसके अदम्य साहस और अक्लांत परिश्रम के अभाव मे यह क्रियान्वित नहीं हो सकता था। कृषकों और श्रमिक वर्ग का निकट सम्बन्ध था—जिसने इनकी सफलता को अत्यन्त सहज बना दिया। (४) साम्यवादी दल के योग्य नेता लेनिन ने विप्लव के आन्दोलन का कुशलता के साथ संचालन किया था। (५) सामाजिक समानता और आर्थिक एकता ने जनता को प्रोत्साहित किया। रूसीय क्रान्ति एक इस प्रकार की संकट-कालीन परिस्थिति में हुई-जिस समय स्वैरतन्त्रवादी जार साम्राज्यवादी रूस मे त्रस्त था एवं पूंजीपतियों के विभाजित होने से भी साम्यवाद की सफलता सुनिश्चित हो गई। विप्लव की घटनाओं के विवरण से पूर्व इसके नेता लेनिन और ट्राट्स्की का परिचय करा देना अनिवार्य है।

लेनिन—२२ अप्रेल १८७० में काजान प्रदेश (रूस) में लेनिन का जन्म ऊलिआनाव कुलीन परिवार में हुआ था। इसके भाई अलैग्जेण्डर को प्रगतिशील चिन्तनशक्ति और सिद्धान्तवादिता के अपराध में १८८७ में जार अलैग्जेण्डर

तृतीय की हत्या करने के संशय में फाँसी दी गई थी। काजान विश्वविद्यालय में अध्ययन करते समय लेनिन एक छात्रो की हड़ताल में भाग लेने के अभियोग में निष्कासित हुआ था। १८६१ में इसने पेट्रोग्राड विश्वविद्यालय से नियम व्यवसायी की उपाधि प्राप्त की। इसी समय उग्र समाजवादी क्रुप्सकाया के साथ इसका विवाह हुआ और कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों का अध्ययन कर इस सिद्धान्त पर पहुँचा कि समाजवाद ही रूस को मुक्ति दे सकता है। नियम व्यवसाय को छोड़ कर यह विप्लवियों की गुप्त समिति का सदस्य बन गया तथा साइ-बीरिया में षड्यन्त्रकारी होने के संदेह में तीन वर्ष के लिए निर्वासित किया गया। १६०३ में प्रजातंत्र समाजवादी दल के विभाजन का यही दायी था, इसीलिए आंशिक रूप से हम लेनिन को बोल्शेविक दल का जन्मदाता कह सकते हैं। इसके पश्चात् १६१७ तक लेनिल ने रूस का त्याग किया व स्थायी रूप से स्विट्जरलैण्ड मे रहने लगा। इस काल मे इसने फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया आदि का परिभ्रमण करके विप्लव का प्रचार किया व विभिन्न स्थानो मे गुप्त–समितियां स्थापित कीं। अल्पकाल के लिए १६०५ के विद्रोह के समय इसने पेट्रो-ग्राड में श्रमिकों को विद्रोह के लिए प्रोत्साहित किया। १६१७ में जिस समय अस्थायी प्रशासन ने राजनैतिक अपराधियों के पुनरावर्त्तन प्रतिबन्ध को हटा लिया था–जर्मन प्रशासन की सहायता से यह एक बन्द मोटर गाड़ी से रूस में आया। प्रत्यावर्त्तन के पश्चात् ७ नवम्बर को इसने अस्थायी प्रशासन को भंग कर श्रमिक अधिनायकवाद की स्थापना की। यूरोप का इतिहास एक संक्रमण-काल में था और रूस के इतिहास मे ही नहीं, संसार के इतिहास में इस समय लेनिन ने रचनात्मक प्रक्रिया द्वारा आमूल परिवर्तन किया।

आकृति में छोटा, शरीर में मस्त, छोटी दाढी, मस्तक की गंज आदि से यह एक साधारण व्यक्ति था, किन्तु मेधा और प्रतिभा में अलौकिक शक्ति-सम्पन्न था। इस कुशल अनुभवी नेता ने चमत्कृत वाग्मिता द्वारा जनता को मोहित किया। अभीष्ट की सिद्धि के लिए यह किसी भी मार्ग को अपनाने के लिए प्रस्तुत रहता था। व्यर्थ के वार्तालाप और कोलाहल में इसे विश्वास नहीं था। पूंजीपतियों के ध्वंस और विश्वक्रांति के परिणाम में साम्यवाद का स्थापन इसका मूल उद्देश्य था। हम देख चुके हैं कि किस प्रकार अक्टूबर में इसने समाजवादी विप्लवियों को परास्त कर श्रमजीवी अधिनायक-वाद की स्थापना की थी।

ट्राट्स्की—लेनिन के दक्ष सहायकों—जिनोविअव, बुखारिन, कैमेनेव, डैजरहिन्स्की, चीचरिन, रिकाव, स्टालिन—में ट्राट्स्की ही सब से गणनीय था। इस काल के बोल्शेविक दल का नेता लेनिन था और ट्राट्स्की इसका दक्षिण हस्त था। १८७६ में "ब्रान्स्टीन"—जिसको इसिहास मे ट्राट्स्की कहा जाता है—स्वेरसन प्रदेश में एक मध्यमवर्ग के यहूदी परिवार में उत्पन्न हुआ था। ओडेशा के विश्वविद्यालय में शिक्षा समाप्त कर इसने विद्रोही साहित्य का ध्यान-पूर्वक अध्ययन किया। १६ वर्ष की आयु मे विद्रोही होने के आरोप में इसे वन्दी बना लिया गया और यह साइबीरिया में निर्वासित हुआ। १६०२ में पलायन कर के पश्चिम यूरोप में लेनिन के साथ इसने मित्रता स्थापित की, यद्यपि यह ॐ मैन्सेविक समाजवाद का अधिक समर्थन करता था। १६०५ में ट्राट्स्की रूस में लौटा और पेट्रोग्राड

ॐ मैन्सेविक के सम्बन्ध में इसी पुस्तक का पृष्ठ ३६८ देखिये।

के विप्लवी आंदोलन में भाग लिया। परन्तु द्वितीय बार इसे बन्दी कर साइबीरिया में निष्कासित किया और पुनः वहां से पलायन किया। १६१६ में पेरिस में शांतिवादी आंदोलन का नेतृत्व करने के आरोप में इसे बहिष्कृत किया गया। मार्च १६१७ में जिस समय रूस में प्रथम क्रांति हुई तो यह अमेरिका से पेट्रोग्राड आया और लेनिन को सहायता कर के द्वितीय क्रान्ति को सफलता प्रदान की। संक्षेप में १६ से ३८ वर्ष (१८६८ से १६१७ तक) की आयु में यह चार वर्ष तक कैद में रहा, दो बार साइबीरिया में निर्वासित हुआ और १२ वर्ष तक विदेशों में जीवन बिताया। आकृति मे यह लेनिन से अधिक प्रभावशाली था। लंबी नाक, विशाल ललाट, तेज आँखे, नाटकीय शैली आदि इसे सुयोग संगठक व अनुशासन-प्रेमी प्रकट करती थीं। यह रूस की शक्तिशाली देशभक्त लाल-वाहिनी का निर्माता ही नहीं, अपितु एक कर्मठ साम्यवादी नेता था। ट्राट्स्की अपनी आत्मकथा मे लिखता है—"हमारे जीवन का अधिकांश समय और शताब्दी का एक तृतीयांश काल विप्लवी आन्दोलन में ही व्यतीत हुआ। यदि हमारा पुनर्जन्म हो, तो हम निस्संदेह उसी मार्ग का पुनः अनुकरण-करेंगे"।

रूस का विभाजन----इसी समय मार्च विद्रोह की प्रतिक्रिया—स्वरूप रूस की विभिन्न जातियो में स्वायत्त शासन आंदोलन प्रारम्भ हुआ। वोल्शेविको को आकस्मिक अधिकार प्राप्त होने से यह आन्दोलन पूर्ण हो गया। बाल्टिक समुद्र तट में फिनलैण्ड, लिथुयानिया और ऐस्थोनिया ने स्वाधीनता की घोषणा की। दक्षिण रूस मे यूक्रेन, माल्डेविया और बैसेरिविया में गणतन्त्र घोषित हुआ। कोकेशास मे संघीय गणतन्त्र स्थापित हुआ। साइबेरिया में राज्य संघ बना। यद्यपि २४ नवम्बर को लेनिन ने रूस के विभिन्न राष्ट्रों को आत्म-निर्णय

के लिए बाध्य किया था, परन्तु बोल्शेविक प्रशासन ने अपने नियन्त्रण की स्वीकृति के बिना उन्हें मान्यता नहीं दी।

प्रथम महायुद्ध का अवसान—महायुद्ध की घटनाओं में हम अध्यन कर चुके हैं कि किस प्रकार रूस ने (मार्च ३, १९१८) जर्मनी से ब्रेस्ट लिटाव्स्क की संधि की थी। इस संधि के पश्चात् युद्ध की परिसमप्ति हो गई। परिणामतः रूस की प्रचुर क्षति होते हुए भी शान्ति-स्थापित हुई और श्रमजीवियों को अधिनायकवाद के परीक्षण का सुयोग मिला।

आंतरिक अशान्ति—इस काल में बहुत से रूसीय व्यक्ति यह विश्वास करते थे कि बोल्शेविक-वाद अधिक दिन तक स्थायी नहीं रहेगा, परन्तु १९१७ से १९२० तक के क्रमागत गृह-युद्ध में बोल्शेविकों ने प्रतिक्रियावादी आन्दोलन को ध्वंस किया। इसके विरोधी मुख्य रूप से तीन प्रकार के थे। *प्रथम* समाजवादी सिद्धान्त से अनुप्राणित विभिन्न प्रतिक्रियावादी दल *द्वितीय* विरोधी दल में सहिष्णु गणतंत्रवादी, राजसत्तावादी, स्थानीय स्वशासन प्रेमी, संपत्तिहीन कुलीन और पादरीवर्ग थे। *तृतीय* में मित्रराष्ट्रों द्वारा सेना और अर्थ द्वारा साम्यवाद को ध्वंस करने के लिए प्रोत्साहित आंतरिक शत्रुओं का समुदाय था।

मित्रराष्ट्रों के रूस में हस्तक्षेप करने के विभिन्न कारण थे। प्रथमतः आर्चेंगल और व्लाडिवोस्टक में विराट् सामरिक साधन-जो कि रूस की सहायता के लिए मित्र-संघ द्वारा भेजे गये थे—उन्हें हस्तगत कर पूर्व सीमान्त को जर्मनी के विपरीत सुरक्षित रखना उनका मूल उद्देश्य था। विश्वास-घातक सोवियट प्रशासन को मित्रराष्ट्रों ने जर्मनी के साथ पृथक् संधि करने से क्षोभ की दृष्टि से देखना प्रारम्भ कर दिया था। इसी समय बोल्शेविको ने वैदेशिक ऋण को अमान्य किया, परि-

णामतः मित्रसेना ने रूस का अवरोध किया। अमेरिका की सेना ने ब्लाडिवोस्टक और आर्चंगल को अधिकृत किया और जब तुर्की ने शान्ति-स्थापन किया तो फ्रांस ने ओडेशा को और ब्रिटेन ने बाकू को हस्तगत किया। जापान ने साइबीरिया पर अधिकार करने का प्रयत्न किया। काकेशास, ऐस्थोनिया, लाटविया, लिथुयानिया और फिनलैण्ड की राष्ट्रीयवादी जनता ने इस अशान्ति का सुयोग पाकर बोल्शेविक रूस का विरोध प्रारम्भ किया। उत्तर में अस्थायी प्रशासन स्थापित हुआ एवं बोल्शेविकों के विपरीत सैन्य संगठन हुआ। साइबीरिया में नौ सेनानायक कल्चक के नेतृत्व में अखिल रूस प्रशासन स्थापित हुआ। दक्षिण में सेनापति डेनिकिन व, यूक्रेन और क्रीमिया में सेनापति पीटर वरेंगिल के नेतृत्व में स्वाधीन प्रशासन बना। निकोलाइ यूडेनिच उत्तर पश्चिम रूसीय प्रशासन के अधिनायक बने और फिनलैण्ड में सेनापति मैनेरहाईम ने स्वयं को सर्वाधिकारी घोषित किया।

राजनैतिक परिस्थिति इतनी गंभीर थी कि तात्कालिक प्रत्यक्ष-द्रष्टा की दृष्टि में बोल्शेविक का ध्वंस अनिवार्य हो गया था। क्योंकि अल्प-संख्यक "लाल सेना" अपर्याप्त साधनो के कारण विरोधियों के दमन मे असमर्थ थी। दो विशेष कारणो से भाग्य ने बोल्शेविकों का साथ दिया—प्रथम वैदेशिक सेना के आंतरिक समस्या में हस्तक्षेप करने से रूस जनता में देशभक्ति का जागरण हुआ। द्वितीय रूस के अधिकांश कृषक—जो कि अभी तक बोल्शेविको के आर्थिक सिद्धान्तों से परिचित नहीं थे-श्वेत-सेना के पुनस्स्थापन कार्यक्रम के विरोध में लग गये। इन्होंने बोल्शेविकों का समर्थन किया। कृषक भलीभांति जानते थे कि यदि सामन्त-प्रणाली पुनस्स्थापित हो, तो उन्हीं की क्षति

होगी। इसीलिए उन्होंने प्रतिक्रियावादी विद्रोहियों का ध्वंस प्रारंभ किया।

चैका—इस विपत्ति और संकट का शमन करने के लिए डजरझिन्स्की ने "चैका" विशेष सोवियट उच्च समिति का संगठन किया। विद्रोहियों को ध्वस्त करने के लिए गोली मारने व गिरफ्तार करने आदि का अधिकार इस समिति को दिया गया था। अगस्त १९१८ में लेनिन की हत्या के असफल प्रयत्न के पश्चात् चैका ने "*रक्तातंक*" की सृष्टि की–जिसने फ्रांस के आतंक के काल को पराभूत कर दिया। १९१८ के अवशिष्ट काल में कहा जाता है कि ६ हजार व्यक्तियों को गोली से उड़ा दिया गया था, हजारों को फांसी और लाखों को कैद किया गया था। यद्यपि इनमें से अधिकांश निर्दोष थे। लेनिन की यह उक्ति थी–"आतंक और संघर्ष के विना श्रमिक अधिनायकवाद की स्थापना असंभव है। आतक श्रम-जीवियों की शक्ति और साहस का निदर्शन है और ऐतिहासिक दृष्टि से न्यायपूर्ण है"। इसी समय (१६ जुलाई १९१८) जार निकोलास द्वितीय और उसके विपुल परिवार को गोली से उड़ा दिया गया। सार्वजनिक आंतरिक विरोध का अवसान हुआ।

सुशिक्षित व अनुशासित श्वेत-सेना को ध्वस्त करने के लिए ट्राट्स्की के नेतृत्व में श्रमजीवियों को सेना में प्रविष्ट कर "*लाल सेना*" को संगठित किया गया। सुयोग्य सेनानायक ट्राट्स्की ने एक लाख लाल सेना इकट्ठी कर विदेशियों के साथ क्रमागत संघर्ष किया। पाश्चात्य-जगत् के श्रमिकों ने रूस की श्रमजीवी सेना के साथ मित्रराष्ट्रों के संघर्ष की तीव्र निन्दाएँ कीं। परिणामतः मित्रराष्ट्रों ने–युक्त राष्ट्र, इटली और इंग्लैण्ड–सैनिक अवरोध को हटा लिया। यूडेनिच पराजित हुआ और ऐस्थोनिया ने फर्वरी में रूस के साथ दोर्पत की संधि की। इसी समय

नौ सेनानायक कोल्चक को गोली से मार दिया गया। जुलाई और अक्टूबर के बीच में लिथुआनिया, लाटविया, फिनलैण्ड और पोलैण्ड ने रूस के साथ सधि की। डेनिकिन ने तुर्की में पलायन किया। १९२१ मे रूस ने यूक्रेन, श्वेत रसिया और कोकेशिया के प्रदेशों में अधिकार किया। संक्षेप में १९२० में रसिया स्वशासित गणतन्त्र का एक सघ था। जार के विशाल साम्राज्य में से पोलैण्ड, बैसेरेबिया, फिनलैण्ड, लाट्विया, ऐस्थोनिया और लिथुआनिया रूस के हाथ से निकल चुके थे।

प्रशासन व्यवस्था—इस संकटकाल मे बोल्शेविकों ने रूस के राजनैतिक जीवन मे आमूल परिवर्तन किया था। १० मार्च सन् १९१८ को पंचम सोवियट कांग्रेस के अधिवेशन में *"समाजवादी संघात्मक सोवियट गणराज्य"* (रसियन सोशलिस्ट फैडरिल सोवियट रिपब्लिक्) के लिए एक शासन विधान प्रस्तुत किया गया। रसिया एक संघात्मक गणराज्य बना–जिसमें श्रमजीवियों को विशेष अधिकार दिये गये। १९१८ से १९२३ तक इस विधान मे नये प्रदेशों को संघलीन करने के उद्देश्य से महत्त्वपूर्ण संशोधन किये गये। १९२३ मे इसका नाम *"समाजवादी सोवियट प्रजातन्त्र संघ"* रखा गया व रूस शब्द का उन्मूलन किया गया (यूनियन आफ सोशलिस्ट सोवियट रिपब्लिक्)।

नवीन विधान—ससार में यह विधान नवीन और पूर्ण रूप से अद्वितीय था। साम्यवादी घोषणा-पत्र (दार्शनिक काल मार्क्स द्वारा रचित) इस विधान का मूल आधार था—जिसके अनुसार प्रत्येक समस्या राजनैतिक समस्या है और प्रत्येक श्रमिक राज्य का नौकर है। इसका उद्देश्य पूंजीवाद का पूर्णत: ध्वंस करना था एवं इसी लिए इस नवीन गणतन्त्र को "सोवियट श्रमिकों, कृषको, और सैनिक प्रतिनिधियों का

प्रजातन्त्र" कह कर पुकारा गया और अधिकार में रखा गया। बोल्शेविक नेताओं की दृष्टि मे समाजवाद एक दर्शन और प्रणाली था। दार्शनिक दृष्टि मे व्यक्तिगत सम्पत्ति का नाश कर, उत्पादन के साधन और वितरण शक्ति को राष्ट्रीयकरण द्वारा एक वर्गहीन समाज की स्थापना ही इसका लक्ष्य था। संगठित श्रमजीवी अधिनायक के नेतृत्व मे प्रथमतः राष्ट्रीय और अन्त में अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक विप्लव और क्रान्ति ही इसका ध्येय था। इस विधान के अनुसार १८ वर्ष से अधिक आयु वाले प्रत्येक व्यक्ति को मताधिकार था, परन्तु निम्नलिखित व्यक्ति उस अधिकार से वंचित थे—(१) राजकीय परिवार के सदस्य, (२) अपराधी व पागल, (३) जार द्वारा नियुक्त कोई भी कर्मचारी, गुप्तचर, पुलिस आदि, (४) पादरी, (५) दलाल व व्यक्तिगत व्यवसायी, (६) निज श्रम के अतिरिक्त अन्य उपायों से प्राप्त अर्थ का भोक्ता (७) व्यक्तिगत लाभ के लिए जो श्रमिकों को नियुक्त करते हैं। ये कुल मिलाकर २·५ प्रतिशत ही मतदान से वंचित थे।

स्थानीय प्रशासन—ग्राम और नगर सोवियटों के संघीय, प्रशासन के आधीन था। ग्राम में कृषक, शिक्षक व श्रमिक चिकित्सक मिलकर स्थानीय सोवियट के लिए प्रतिशत एक प्रतिनिधि (निवासियों) को चुनते थे। शहरों अथवा नगरों में पाठशाला, उद्योगशाला व श्रमिक-वर्ग एक हजार नागरिकों में एक प्रतिनिधि का निर्वाचन करते थे। मत-दान हाथ उठाकर किया जाता था। व्यवसाय अथवा जीविका-निर्वाह के अनुसार ही पृथक् पृथक् प्रतिनिधित्व की व्यवस्था थी।

स्थानीय प्रशासन और *अखिल रूस सोवियट कांग्रेस* के मध्य जिला और प्रादेशिक सोवियट के अप्रत्यक्ष प्रणाली द्वारा निर्वाचित सदस्यों का क्रमिक प्रतिनिधित्व होता था। नगर सोवियट २५

हजार मतदाताओं में एक एक प्रतिनिधि के हिसाब से व प्रादेशिक सोवियट भी एक लाख २५ हजार मतदाताओं के लिए एक प्रतिनिधि चुन कर अखिल कांग्रेस में भेजती थी। *अखिल रूस कांग्रेस* सर्वोच्च सत्ताधारी संस्था थी—जिसमें लगभग चार हजार सदस्य होते थे और वर्ष में एक बार इसका अधिवेशन होता था। यह कांग्रेस इतनी वृहत् थी कि-इसके द्वारा सिद्धांतो का निर्णय और प्रशासन की व्यवस्था असंभव थी। इसी लिए इसने प्रशासन-व्यवस्था के लिए केन्द्रीय *कार्यकारिणी समिति* जिसके ४०० सदस्य थे और जिसे सर्वोच्च शासन संचालन का पूर्ण अधिकार था—नियुक्त कर रखी थी। अखिल कांग्रेस के अभाव मे यही सर्वाधिकारी, निबन्धकारी, कार्यकारिणी और केन्द्रीय शक्तिथी। इसका अधिवेशन तीन मास में एक बार होता था-जब इसका अधिवेशन न हो सकता था, तो ४० सदस्यों की एक संचालन समिति "*प्रैसीडियम*" सब काम चलाती थी। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति "*लोक-प्रबन्धक परिषद्* (पीपुल्स कमीसार) एक मन्त्रि-मण्डल नियुक्त करती थी—जिस में १७ विभागों के १७ अध्यक्ष होते थे। इसके अतिरिक्त राजकीय योजना आयोग था—राष्ट्रपति भी इसका सदस्य था। संक्षेप मे अप्रत्यक्ष निर्वाचन से प्रैसीडियम और प्रबन्धक-परिषद् ये दोनो संस्थाएँ रूसीय प्रशासन का संचालन करती थी।

समाजवादी संघात्मक सोवियट गणराज्य में १६३६ में ११ स्वाधीन *उपराज्य* संमिलित थे—(१) महान् रसिया (जिसकी राजधानी मास्को) (२) श्वेत रूस (राजधानी मिन्स्क) (३) यूक्रेन (राजधानी कीयेव) (४) आर्मेनिया, (५) जार्जिया, (६) अजरबेजान, (७) तुर्कोमान, (८) उज्बेग, (६) ताजिक, (१०) खिरगिज, (११) काजाक। इन सब में रूस की जन संख्या

दो तृतीयांश और तीन चतुर्थांश भूखंड है। इन एकादश उप-राज्यों की प्रशासन व्यवस्था उपर्युक्त पद्धति पर ही चलती थी। प्रत्येक उपराज्य में संघीय सर्वोच्च न्यायालय की एक शाखा होती थी—ये सब मिल कर उपराज्य—न्याय-मण्डल कहलाते थे। उप राज्यों को शिक्षा, स्वास्थ्य, स्थानीय प्रशासन आदि के अधिकार थे, परन्तु संघीय प्रशासन इनके नियमों मे परिवर्तन भी कर सकता था। लोकसभा के दो भवन थे—प्रथम संघीय सोवियट, द्वितीय व्यवस्थापक-मण्डल अथवा राष्ट्रीय सोवियट। इन दोनों भवनों में उपराज्यों के प्रतिनिधि अखिल संघीय कांग्रेस द्वारा आनुपातिक जन-संख्या के अनुसार भेजे जाते थे। व्यवस्थापक-मण्डल में प्रत्यक्ष प्रणाली से चुने हुए (तीन लाख जन संख्या-पर एक) प्रतिनिधि होते थे। संघ में एक संघीय केन्द्रीय कार्य-कारिणी समिति और संघीय प्रबन्धक परिषद् भी थी।

१९३६ में *नागरिकों को मौलिक अधिकार* दिये गये–जिनमें काम लेने का अधिकार अर्थात् आर्थिक संकट व वेकारी का निवारण, विश्राम की सुविधा (अधिक से अधिक प्रतिदिन ७ घंटे का कार्यकाल) निःशुल्क चिकित्सा, अनिवार्य वीमा, वार्द्धक्य, अस्वास्थ और असामर्थ्य की स्थिति मे जीवन-यापन की व्यवस्था, निःशुल्क प्राथमिक अनिवार्य शिक्षा और निःशुल्क ही उच्च व्यावसायिक व कृषि-शिक्षा, शिक्षा का मातृ भाषा को माध्यम वनाना आदि (२) अधिकारों के उपभोग में लिंग विचार नहीं था। आत्मिक स्वतन्त्रता एवं धर्म-मठ राष्ट्र से पृथक् कर दिये गये। संक्षेप में सोवियट प्रशासन के चार प्रधान प्रतीक थे—प्रथम–रूस एक संघीय राष्ट्र–जिसमें केन्द्रीय प्रशासन को विशेष अधिकार प्राप्त थे। द्वितीय–प्रतिनिधित्व जीविका–निर्वाह के अनुसार था। तृतीय–१९३६ की अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली

ही प्रमुख थी। चतुर्थ-शक्ति का पृथक् करण नहीं था, अपितु सघीय केन्द्रीय कार्यकारिणी शक्ति ही सर्वोच्च नियामक थी।

साम्यवादी दल—रूस मे साम्यवादी दल का ही एकाधिपत्य था। कोई भी व्यक्ति जो मार्क्स और लेनिन के सिद्धांतों को स्वीकृत नहीं करता था व अनुशासन और दल के सिद्धान्तों में विश्वास नही रखता था, वह इस दल का सदस्य नहीं हो सकता था। यद्यपि प्रारम्भ में इनकी संख्या अत्यन्त अल्प थी, परन्तु १६३६ मे इसके २४ लाख सदस्य थे। लेनिन ने घोषणा की थी कि "साम्यवादी दल की केन्द्रीय शक्ति के अनुमोदन के बिना संघीय गणतन्त्र के किसी भी प्रश्न का समाधान नहीं हो सकता," अर्थात् प्रशासन-व्यवस्था की यही सर्वेसर्वा थी। इस दल में दो तृतीयांश नगर के श्रमिक और एक पंचमांश कृषक थे। दल का संगठन संघ के आधार पर था। दल के प्रचार के लिए छोटे छोटे कोष्ठक (सैल) उद्योगशालाओ, ग्राम, कार्यालय आदि सर्वत्र विस्तृत थे-जिनके प्रतिनिधि संघीय साम्यवादी कांग्रेस को और नौ सदस्यो की एक केन्द्रीय समिति "पोलिट् बुरो" कोभी चुनते थे। १६२४ तक लेनिन इस समिति का अध्यक्ष रहा व वर्तमान मे स्टालिन इसका प्रधान है। यही प्रशासन को नियन्त्रित करती थी। दल का अनुशासन इतना कठिन होता था कि प्रत्येक सदस्य को नेता की इच्छा पर स्वयं को समर्पित कर देना होता था। यदि कोई भी सदस्य आदेश की अवहेलना करता था (मदिरा, पान कार्य की शिथिलता, भ्रष्टाचार आदि) तो उसे दल से बहिष्कृत कर दिया जाता था। अनुमानत: १६३४ पर्यन्त २५ प्रतिशत सदस्यों को दंडित कर दल से निकाला गया था। प्रत्येक उद्योगशाला में एक लाल त्रिभुज अर्थात् एक समिति (जिसमें उद्योगशाला की नीति को निश्चित करने

के लिए प्रबंधक, उद्योगशाला और साम्यवादी दल के प्रतिनिधि सम्मिलित थे) होती थी। साम्यवादी दल केवल अपने मनोनीत प्रार्थियों को निर्वाचन में खड़ा कर सकता था, यही विरोधियों का दमन और लाल सेना का नियंत्रण करता था। सार्वजनिक सभा और प्रकाशन का प्रतिवन्ध भी यही लगाता था। विरोधियों के विचार के लिए यही एक अतिरिक्त न्यायालय की नियुक्ति करता था। संक्षेप में इसका उद्देश्य मार्क्स के दार्शनिक सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देना था—जैसे वर्गभेद का अवसान, परिश्रम के आधार पर ही राजनैतिक और सामाजिक अधिकार का निर्णय, पूंजीवाद का ध्वंस एवं उत्पादन का राष्ट्रीयकरण आदि आदि।

विप्लवी न्यायालय का "चेका" का—जिसके सम्बन्ध मे हम यह पहले ही अध्ययन कर चुके हैं—अवसान १९२२ में हुआ परन्तु १९२३ में अधिनायकवाद की स्थापना के लिए एक विशेष गुप्तचर विभाग (आग्पू) ५५ हजार दक्ष कर्मचारियों की व्यवस्था में खोला गया। इस विशेष शाखा को विरोधियों की वंदिता, निर्वासन और मृत्यु-दंड तक का अधिकार था। स्वयं स्टालिन ने यह कहा था कि "गोली मारना ही सामाजिक रक्षा का श्रेष्ठ उपाय है, एवं साम्यवादी दल एक वाद-विवाद की समिति नहीं है"। आग्पू के कार्यकलापों का विशेष परिचय हम आगे पायेंगे। श्रमिक वर्ग के लिए साम्यवादी दल वेतन आदि का निर्धारण करता था। १९३२ तक किसी भी साम्यवादी को १२५) रु० से अधिक वेतन नहीं मिलता था। १९३४ में इस अधिक वेतन नियंत्रण का अवसान किया गया व २५०) से अधिक वेतन भोगी कर्मचारियों पर आय-कर लगाया गया। अधिकारियों को निवास, यात्रा आदि की विशेष सुविधा है अर्थात् प्रायोगिक दृष्टि से यहां पर भी समानता पूर्ण नहीं है।

साम्यवादी परीक्षण (१९१७ से १९२१)

सोवियट प्रशासन में साम्यवादी दल के नेता ही सर्वोच्च अधिनायक थे। इस काम में लेनिन ही रूस का सर्वेसर्वा था। हम देख चुके है कि किस प्रकार लाल सेना को संगठित व विदेशियों को बहिष्कृत कर इसने संघीय प्रशासन की व्यवस्था की, परन्तु निर्बोध एवं अशिक्षित जनता के आर्थिक सुधार के लिए लेनिन ने व्यक्तिगत सम्पत्ति को जब्त किया, प्रजा के ऋण को अमान्य किया व उत्पादन तथा भूमि का राष्ट्रीय-करण किया। सर्वोच्च आर्थिक समिति की नियुक्ति की गई। जनता के खाद्य-संकट को दूर करने के लिए राशन कार्ड प्रवर्तित किये गये व जनता को सामाजिक प्रयोजनीयता की दृष्टि से चार विभिन्न वर्गों में विभाजित किया गया। सबसे अधिक शारीरिक श्रम करने वालों को प्रथम वर्ग में तथा चतुर्थ वर्ग में भिक्षुकों व अकर्मण्यों को स्थान दिया गया। इन्हे प्रथम वर्ग का एक चतुर्थांश खाद्य दिया गया। कृषकों से अपनी आवश्यकता से अधिक अन्न राष्ट्र ले लेता था व उसे जनता में बांट देता था। पूंजीपतियों के हीरे, जवाहरात आदि को जब्त कर उनके निवास-स्थानों का राष्ट्रीयकरण करके श्रमिकों को रहने के लिए दिये गये। विदेशी व्यवसाय एक मात्र राष्ट्र के अधिकार में आ गया। मुद्रा के स्थान पर सामग्री के विनिमय की प्रथा को प्रोत्साहित किया गया। धर्म-मठ की सम्पत्ति और शक्ति को सीमित किया गया व व्यक्तिगत शिक्षणालय बन्द कर दिये गये। विवाह और तलाक को वैधानिक रूप दिया गया। अनाथ बालकों को राष्ट्र के संरक्षण में ले लिया गया। महिलाओं को नागरिक अधिकारों में समानता दी गई।

इस परिवर्तन से श्रमिक वर्ग इतना उल्लसित हो गया कि

उसने शीघ्र ही अपने अधिकारों पर नियंत्रण कर लिया। परिणामतः कार्य काल न्यून और वेतन में वृद्धि हुई, अधिकांश के अयोग्य और अनुभव हीन होने से व्यावसायिक अव्यवस्था की भी सृष्टि हुई। ११?६ के बने हुए ६० प्रतिशत रेल्वे इञ्जिन पूर्णतः वेकार थे। उत्पादन शक्ति का ह्रास हुआ और मूल्य की वृद्धि से आर्थिक संकट का उदय हो गया। यद्यपि ६६ प्रतिशत रूसीय भूमि कृषिको के अधिकार में आ गई, परन्तु शस्य के विनिमय मे उन्हें पर्याप्त अर्थ और आवश्यकीय सामग्री नहीं मिल पाई। १६२०—२१ में अकाल पड़ा—कृषि के यन्त्रो का भी अभाव हुआ व दुर्भिक्ष मे ५० लाख व्यक्ति मारे गये। अमेरिका ने इस समय सहायता देकर रूसीय जनता का परित्राण किया। १६२१ मे श्रमिकों मे भी इतना असन्तोष फैला कि वे सोवियट प्रशासन के पतन की मांग करने लगे। क्रांस्डट के नाविकों ने विद्रोह कर दिया।

नवीन आर्थिक नीति—(१६२१ से १६२८)

इस संकट के उदय से लेनिन ने नीति-परिवर्तन की आवश्यकता का महत्व माना व साम्यवादी दल के दशम अधिवेशन (मार्च १६२१) में *नवीन आर्थिक नीति* का प्रवर्तन किया गया। साम्यवाद को आंशिक रूप से प्रयोग में लाने का निर्णय हुआ। न० आ० नी० के निम्न मुख्य कार्यक्रम थे—(१) कृषकों से खाद्य-संग्रह के स्थान पर निर्धारित कर शस्य व १६२४ मे अर्थ के रूप में लेने का निश्चय किया गया एवं यदि प्रयोजन और कर देने के पश्चात् भी उत्पत्ति अधिक हो, तो कृषकों को विक्रय का अधिकार दिया गया। (२) व्यक्तिगत खुचरे व्यवसाय को मान्यता दी गई, परन्तु राष्ट्र ने जनता की सुविधा के लिए क्रेताओं के सहकारी-भंडारों की स्थापना की।

(३) छोटी छोटी उद्योग शालाएँ–जिनमें २० से न्यून श्रमिक थे–राष्ट्र के नियंत्रण से मुक्त की गईं। (४) मुद्रा और राजकीय बैंक प्रणाली का पुनस्स्थापन किया गया। (५) अल्प–काल के लिए विदेशियो के मूल–धन को खनिज, यातायात, कृषि व निर्माण–योजना तथा यांत्रिक साधनो के संचय के उद्देश्य से आमन्त्रित किया गया। (६) श्रम और योग्यता के अनुसार वेतन का निर्धारण व खाद्य नीति का संशोधन किया गया। (७) वृहत् उद्योगशालाओं का उत्पादन और वितरण राष्ट्रीय संरक्षण मे ही रहा। (८) श्रमिक संघ की अनिवार्य सदस्यता को यथेष्ट कर दिया गया। (९) उद्योगो के उत्कर्ष और समन्वय के लिए राष्ट्र ही योजना बनाने का अधिकारी होगा।

१९२५ में भूमि को किराये पर दिया जा सकता था और कृषको को निर्दिष्ट श्रमिक–नियुक्ति की भी सुविधा दी गई थी। परिणामतः कृषको के तीन वर्ग हो गये–गरीब, मध्यवित्त और धनी। धनियों को रूस के इतिहास में "कुलाक्स" अथवा "मुष्टि" कहा जाता है। १९२८ में ३५ प्रतिशत दीन कृषको को कर–मुक्त किया गया। ५३ प्रतिशत मध्यवित्त पर सामान्य एवं १२ प्रतिशत कुलाक्स पर सबसे अधिक कर लगाये गये—जिससे वे पूंजीपति नहीं बन सके। एक करोड़ २० लाख एकड़ भूमि को १५० सामूहिक कृषि–संस्थानों के आधीन रखा गया, परन्तु १९२८ तक इससे कृषि में कोई विशेष उत्कर्ष नहीं हुआ।

औद्योगिक क्षेत्र मे उत्पादित द्रव्य पर राष्ट्र की ही प्रभुता रही, यद्यपि छोटे छोटे उद्योगो के लिए शताधिक निगमों को मान्यता दी गई। वेतन, निगम और श्रमिक–संघ की सम्मति से ही निर्णीत होता था, पर लाभ का अर्द्धांश राष्ट्र लेता था—जिसका एक दशमांश श्रमिकों के हित के लिए व्यय किया जाता था व अवशिष्टांश भविष्य के लिए सुरक्षित रखा जाता था।

राष्ट्र के उद्योग और व्यवसाय की सामूहिक उन्नति का यह प्रथम सोपान था।

स्टालिन का उदय—

सोवियट संघ का अधिनायक और साम्यवादी दल का अध्यक्ष लेनिन मई १९२२ में पक्षाघात के कारण शय्यासीन हुआ। २१ जनवरी १९२४ में इस महापुरुष की मृत्यु हो गई। इसके अनन्तर इसकी स्मृति मे पेट्रोग्राड का नाम "लेनिनग्राड" कर दिया गया व राजधानी मास्को मे एक विराट् स्तम्भ बनाया गया। इसकी मृत देह को तैल मे सुरक्षित रखा गया—जहां हजारों साम्यवादी स्मृति—दिवस को सम्मान प्रदर्शित करने के लिए प्रतिवर्ष जाते हैं।

लेनिन की मृत्यु के बाद ट्राट्स्की और स्टालिन में रूस के अधिनायक बनने का संघर्ष प्रारम्भ हुआ। हम देख चुके हैं कि १९१७ से १९२४ तक दोनों ही लेनिन के कृपा-पात्र थे और राष्ट्र की उन्नति में संलग्न थे। स्टालिन, कैमेनेव, जिनोवियव-ये तीनों ट्राट्स्की के विरोधी थे। स्टालिन ने १८७९ मे काकेशास प्रदेश के गोरी नगर में एक मोची के परिवार में जन्म लिया था। पौरोहित्य प्राप्त करने के अनन्तर मार्क्स सिद्धान्त में दीक्षित होने के अपराध से इसे पौरोहित्य से वंचित किया गया। बाल्यकाल में इसका नाम जुगसविले था। अल्पकाल पश्चात् यह समाजवादी प्रजातन्त्र दल का सदस्य हुआ। १९०० में १९१७ तक सम्राट् विरोधी आन्दोलन मे इसने प्रमुख भाग लिया। छः बार गिरफ्तार हुआ एवं १९०२ से १९१३ तक साइबीरिया में निर्वासित जीवन अतिवाहित किया। ५ बार इसने पलायन किया। परन्तु १९१३ में इसे पकड़ कर मेरु प्रदेश में निर्वासित किया गया। यह १९१७ की मार्च की क्रान्ति तक वहीं बन्दी था।

स्टालिन (१८७९)

मुक्ति के पश्चात् राजधानी में आकर इसने विप्लवी श्रमिको का संगठन व अर्थ-संग्रह किया। इसी समय इसने अपना नाम "स्टालिन" अर्थात् लोहा रखा। आकृति में ६ फीट लम्बा, कोयले के समान कृष्ण केश, श्वेत चर्म, उग्र स्वभाव, निर्भीक प्रकृति, निर्दयी चरित्र और असाधारण धूर्तता ने वैदेशिक युद्ध और गृह कलह में इसे सामरिक नायक बना दिया। १९१७ से १९२३ तक यह विभिन्न जातियों का मन्त्री और साम्यवादी दल का महामंत्री था।

१९२४ में ट्राट्स्की और स्टालिन में विभिन्न सिद्धान्तों के कारण मतभेद हुआ। ट्राट्स्की विश्वव्यापी विप्लव एवं धनिक कृषकों का समर्थन करता था और स्टालिन रूस की आर्थिक उन्नति को प्रमुख स्थान देता था, क्योंकि उसके मन्तव्य में पाश्चात्य समाज से पूंजीवाद का तत्काल उन्मूलन असंभव था। ट्राट्स्की कृषको को उद्भासित श्रमिकों के अधीन करना चाहता था व स्टालिन इसका विरोधी था। अन्त में स्टालिन औद्योगिक विकास के लिए वैदेशिक सहायता में विश्वास करता था और ट्राट्स्की इसे साम्यवाद के प्रति विश्वास-घात समझता था। साम्यवादी दल का महामन्त्री होने से ट्राट्स्की के अनुयायियों को धीरे धीरे इसने दल से निष्कासित किया और कैमेनेव और जिनोवियव की सहायता से ट्राट्स्की को इसने युद्ध व रक्षामन्त्री पद से पदच्युत किया। १९२५ में दल की कांग्रेस ने विरोधियों को ध्वंस करने के लिए विशेष क्षमता प्राप्त की और प्राव्दा-पत्रिका के सम्पादक बुखारिन ओगपू के संचालक 'डजेरहिन्स्की' व वोयव लोक प्रबन्धक परिषद् के अध्यक्ष रिकाव की सहायता से सहकर्मी कैमेनेव, जिनोवियव व ट्राट्स्की का १९२७ मे दल से बहिष्कार किया और १९२८ मे विशेष विचार द्वारा इन सबको साइबीरिया में निर्वासित किया। १९२९ में ट्राट्स्की

वादियों को वंदी बनाया गया और रिकाव और बुखारिन ने विद्रोह का दमन किया। १९३६ में जिनोवियव और कैमेनेव को स्टालिन की हत्या कर पूंजीवाद स्थापित करने के अभियोग से मृत्यु दण्ड दिया गया। ट्राट्स्की को भी वंदी बना कर विचार करने का निश्चय किया, परन्तु वह गुप्तरूप से मैक्सिको भाग गया। एक गुप्तघातक द्वारा ट्राट्स्की को वहाँ २१ अगस्त १९४० में मरा दिया गया।

पंचवर्षीय योजना—(१९२८ से १९३३) न०आ०नी० के परिवर्तन मे १९२८ में स्टालिन ने रूस के आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजना को प्रायोगिक रूप दिया। अर्थ-विशेषज्ञों ने रूस के उत्पादन को त्रिगुणित करने की योजना प्रस्तुत की थी। १९२९ में भूमि के समान करने के लिए ट्रैक्टर, रेल्वे, लोहा, तैल आदि की उद्योगशालाएं विदेशी विशेषज्ञो की सहायता से स्थापित की गई। जनता मे ऋण, कर और निगम का सहयोग लेकर आर्थिक साधनो को विकसित करने के उद्देश्य से सामूहिक कृषि और उद्योग संस्थान स्थापित किया। खाद्य-नियन्त्रण पुनः प्रारम्भ हुआ और उत्पादन की वृद्धि के लिए पुरस्कार घोषित किये गये। परिणाम इतना हुआ कि पांच वर्ष की योजना प्रायः दो ही वर्ष में क्रियान्वित हो गई। तुर्किस्तान साइबीरिया रेल्वे (११ सौ मील) १९३० में पूर्ण हुई, ९ लाख अश्व शक्ति द्वारा उत्पादित जल-विद्युत— "नीप्रोस्ट्राव" में प्रस्तुत की गई और प्रतिवर्ष १॥ लाख मोटरें तैयार होने लगी। प्रत्येक गृहस्थी "सामूहिक कृषि-सस्था" से संबध हो गया एवं छ करोड़ क्रेता "सहकारी-भंडारो"के सदस्य बन गये। संक्षेप में रूस ने समग्र विश्व को अपनी आर्थिक उन्नति से चमत्कृत कर दिया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना—

श्रमिकों की योग्यता का पूर्ण विकास करने के लिए १९३३ से ३८ तक के काल में द्वितीय पंचवर्षीय योजना का प्रयोग किया गया—जिसे इतिहास में "गास योजना" कहा जाता है। इस योजना का उद्देश्य "पूंजीपतियों का पूर्ण रूप से अवसान कर श्रमिक अधिनायक के नेतृत्त्व मे एक वर्गहीन समाज की सृष्टि करना था"। प्रथम योजना से इसमे यही विशेषता थी कि विदेशों से यांत्रिक और आर्थिक सहायता निषिद्ध कर इसने पूर्ण आर्थिक स्वावलंबन स्थापित किया। प्रथम योजना में उत्पादन का परिणाम प्रमुख था, तो द्वितीय मे उसके गुण और यातायात की उन्नति को प्रधानता दी गई। जहां जहां उद्योग-शालाएँ नहीं थीं—वहां भी उनकी स्थापना की गई। इस योजना से १९३८ मे औद्योगिक उत्पत्ति प्रथम महायुद्ध से अष्ट गुण बढ़ गई। धनी कृषकों का अवसान हुआ—वेतन की वृद्धि हुई, स्थानीय उद्योग शालाएँ विकसित हुईं, रहन सहन का स्तर ऊँचा उठा, निरक्षरता दूर हुई एवं अनिवार्य यांत्रिक शिक्षा का प्रवर्तन हुआ।

शिक्षा—लेनिन और स्टालिन साम्यवाद की स्थायिता जनता की सार्वजनिक शिक्षा मे ही निहित मानते थे। पूंजीपति द्वारा नियंत्रित शिक्षा-पद्धति का अवसान कर अनिवार्य सार्वजनिक निश्शुल्क शिक्षा १९२२ मे प्रारम्भ की गई, क्योंकि उस समय दो तृतीयांश पुरुष और सात अष्टमांश महिलाऐं निरक्षर थीं। मार्क्सवाद के प्रचार और साम्यवाद की दीक्षा के लिए नवीन शिक्षणालय स्थापित किये गये-जिनके तीन उद्देश्य थे। प्रथम जनता को उद्भासित करना, द्वितीय साम्यवादी प्रचार के लिए उद्यमी और परिश्रमी स्वयं-सेवकों का संगठन करना व

तृतीय यन्त्र विशेषज्ञ और निर्माताओं से राष्ट्र का विकास करना। गिरिजा के नियन्त्रण से शिक्षा को मुक्त किया गया, नवीन पाठ्य-पुस्तक एवं साम्यवादी शिक्षकों की नियुक्ति की गई। । १६३८ में तीन करोड़ तीस लाख बालक बालिकायें प्राथमिक और माध्यमिक व १० लाख उच्च शिक्षा पा रहे थे। द्वितीय महायुद्ध के समय ८१ प्रतिशत जनता शिक्षित थी। भाषा-हीन छोटी छोटी जातियों के लिए रोमन वर्णमाला से ४० अक्षर लेकर नवीन भाषा बनाई गई व विशेष नियम द्वारा प्रत्येक सप्तवर्षीय बालक के लिए स्कूल में प्रविष्ट होना अनिवार्य कर दिया गया।

धर्म—शिक्षा से धर्म का संशोधन अधिक उग्र और महत्त्व-पूर्ण था। साम्यवादी पादरियों के प्रभाव को नष्ट करने के लिए धर्म-मठ की सम्पत्ति को जब्त करने लगे, क्योंकि वे नास्तिक हैं, एवं कोई भी साम्यवादी धर्म में विश्वास नहीं करता। साम्य-वादी के शब्दों में कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट धर्म का अनुयायी व्यक्तिगत सम्पत्ति के सिद्धान्त पर विश्वास करता है-जिसका अर्थ दीन की धनी के आधीनता में दासता है। लेनिन के शब्दों में "धर्म एक आध्यात्मिक अत्याचार है एवं जनता के लिए एक नशीली निद्रा है"। आज सार्वजनिक भवनों में ये शब्द लिखा दिये गये हैं—"धर्म शिक्षा भ्रान्त ही नहीं, परन्तु समाज व राष्ट्र के लिए हानि-कारक भी है"। शिक्षा, विवाह समाधि, जन्म-मृत्यु इत्यादि के नियन्त्रण अधिकार से पादरियों को वंचित किया गया। १६२६ मे एक अतिरिक्त नियम संशोधन द्वारा नास्तिकता को छोड़ कर आध्यात्मिक सिद्धान्तों का प्रचार अमान्य किया गया, यद्यपि गिरिजा में जाने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। बड़ा दिन और ईसा जन्म दिवस विश्राम का दिन माना गया एवं धार्मिक अवकाशों के स्थान पर "लेनिन-दिवस"

मनाया जाने लगा। आज रूस में प्रमुख धर्म-मठ और गिरिजा केवल प्रदर्शनी-भवन व अद्भुतालय के रूप में परिणत हैं। १६१७ से १६३६ तक साम्यवादी रूस इस प्रकार नास्तिक बन गया।

वैदेशिक नीति (१६१७ से १६३६)

कोमिन्टार्न—साम्यवाद के चार प्रमुख क्रान्तिकारी सोपान थे—प्रथम वर्तमान प्रशासन का पूर्णशः अवसान, द्वितीय अस्थायी काल के लिए श्रमिक अधिनायकवाद की स्थापना, तृतीय सोवियट गणराज्य के आधार पर समग्र विश्वसंघ का निर्म्माण और अंत में सार्वजनिक साम्यवादी समाज की स्थापना। इस कार्यक्रम को क्रियान्वित करने के लिए मार्च १६१६ में मास्को में एक अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी संमेलन हुआ–जिसे इतिहास में "प्रथम साम्यवादी विश्व संगठन" अथवा "तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय कोमिन्टार्न" कहा जाता है। जिनोवियव की अध्यक्षता में इस कांग्रेस ने विश्व के विभिन्न राष्ट्रों में साम्यवादी शाखाएँ खोलने व प्रचार के लिए मुद्रण और अर्थ आदि की व्यवस्था का निर्णय किया। विश्वक्रांति की पूर्णशः तैयारी ही इसका लक्ष्य था। विश्व के वैधानिक राजसत्तावादी इससे आतंकित हो गये। द्वितीय महायुद्ध के समय सोवियट संघ की रक्षा और फासिस्टवाद का ध्वंस ही इस महासभा का प्रधान ध्येय था। १६१८ में—जिस समय रूस ने ८,०००,०००,०००, डालर वैदेशिक ऋण को अमान्य किया, तो यूरोप के प्रमुख राष्ट्रों ने रूस से कूटनीतिक सम्बन्ध विच्छिन्न कर लिया। विदेशियों ने साम्यवाद के ध्वंस के लिए किस प्रकार के असफल प्रयत्न किये—यह हम देख चुके हैं।

वैदेशिक मैत्री—१६२१ में इंग्लैण्ड ने रूस के साथ अस्थायी व्यावसायिक संधि की—जिसके द्वारा पारस्परिक दुष्प्र-

चार निषिद्ध कर दिया गया। १६२२ में रूस और जर्मनी ने रैपेलो की संधि पर हस्ताक्षर किये। जर्मनी ने साम्यवादी रूस को वैधानिक स्वीकृति दी और ऋण से मुक्त किया। १६२४ में मुसोलिनी ने सोवियट प्रशासन को मान्यता दी एवं कूटनीतिक सम्बन्ध पुनस्थापित किया। सोवियट संघ ने १६२५ में तुर्की के साथ व जर्मनी के साथ १६२६ में रक्षणात्मक संधि की। १६२७ मे फ्रांस और चीन में साम्यवादी प्रचार पर प्रतिबन्ध लगाया गया। १६३१ में रूस लैटविया और फारस का मित्र बना, कैलाग संधि मान्य की व जर्मनी को आर्थिक सहायता (ऋण के रूप में) दी।

१६३२ मे दीर्घकालीन वाद-विवाद के बाद फ्रांस ने सोवियट-संघ के साथ निष्पक्ष और रक्षात्मक संधि की। १६३३ में युक्त राष्ट्र के साथ रूस का कूटनीतिक सम्बन्ध पुनः प्रारम्भ हुआ। १६३४ मे रूस राष्ट्रसंघ का सदस्य बना और १६३५ मे फ्रांस और रूस ने जर्मनी के पुनरस्त्रीकरण से भीत होकर पाँच वर्ष के लिए पारस्परिक सहायता संधि कर पुरातन (१८६४) संधि की पुनस्थापना की। १६३८ मे-जिस समय जर्मनी चैकोस्लोवाकिया को हस्तगत कर रहा था-सोवियट संघ की परराष्ट्र-नीति का परिवर्त्तन हुआ। मई १६३६ में रूस के विदेश मन्त्री जो लिटविनव ने—यह ब्रिटेन और फ्रांस के साथ सामूहिक और सहयोग नीति का समर्थन करता था ने पदत्याग किया। इसके उत्तराधिकारी मोलोटाव ने जर्मनी के साथ २३ अगस्त १६३६ मे १० वर्ष के लिए रक्षणात्मक सन्धि स्वीकार की। इसके अनन्तर द्वितीय महायुद्ध का श्रीगणेश हो गया।

समीक्षा

महामति सिडनी और वैट्रिक "सोवियट साम्यवाद को नवीन सभ्यता कहते हैं" एवं उनकी प्रसिद्ध पुस्तक "सोवियट

साम्यवाद" में १९१७ के पश्चात् "रूस क्रान्ति को रूसीय जनता का पुनर्जन्म" कहा है। कोकार के साम्यवाद का उद्देश्य "जनता के लिए सांस्कृतिक और जीविका-निर्वाह की सुविधा को अल्प संख्यक राष्ट्रीयवादी देशभक्त जननायकों के हाथों में सुरक्षित रखना था"। परन्तु निष्पक्ष विश्लेषण से प्रतीत होता है कि इस सम्बन्ध मे समसामयिको के मत भी विभाजित हैं। ट्राट्सकी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "रिवोल्यूशन विट्रेड" मे स्पष्ट ही कहा है—"यद्यपि पूंजीवाद का अवसान किया गया है, पर यह केवल रूप-रेखा का ही परिवर्त्तन है, क्योंकि स्वैरतन्त्र के स्थान पर अनिर्दिष्ट काल के लिए श्रमिक अधिनायक-वाद स्थापित हो गया है"।

सर्व प्रथम, समालोचक सोवियट संघ को वर्ग और श्रेणी-हीन नहीं मानते। सत्य है कि पूँजीवाद के ध्वंस से उत्पादन तथा श्रम के साधनो पर से वैयक्तिक अधिकार को हटा कर सामूहिक अधिकार स्थापित हुआ है, परन्तु आज भी रूस के समाज में एक श्रेणी नहीं है। प्रशासन अधिकारी सबसे ऊँचे हैं-यांत्रिक विशेषज्ञ, निपुर्ण श्रमिक व कलाकार, धनी और सामूहिक व्यवसायी-ये क्रमशः निम्न हैं। इन सबने मिलकर एक नवीन वर्ग की सृष्टि की है-जिसकी आय व जीविका-निर्वाह पूर्ण विभिन्न है। सामाजिक असमानता असम्भव प्रतीत हुई है। संक्षेप में रहन सहन के स्तर और अर्थ के विभाजन में पुनः वही असमानता हो रही है। वस्तुतः निम्न श्रमिक वर्ग आज भी अपनी उन्हीं धारणाओं और आवश्यक-ताओं से मुक्त नहीं है। व्यक्तिगत सेवा के रूप में मनुष्य के द्वारा मनुष्य पर अधिकार करने की एक नवीन नीति का भी उदय हुआ है।

द्वितीयतः यद्यपि विनिमय और उत्पादन-प्रक्रिया में लाभ

के ध्येय का अंत हो गया है, परन्तु आर्थिक लाभ वितरण-प्रणाली में आज भी विद्यमान है। आय और सुविधा की विभिन्नता दीन वेतन-भोगी श्रमिक के हृदय में आंतरिक रूप से विरोध की भावनाओं का जागरण कर रही है। तृतीयतः १६३६ के विधान के जनता के मौलिक अधिकार—निर्वाचन, व्यक्तिगत, वाचिक और प्रकाशनिक स्वतन्त्रता—केवल कागजों मे ही सीमित है, उन्हें प्रायोगिक रूप नहीं दिया गया। साम्यवादी दल द्वारा अनुमोदित मनोनीत प्रार्थियों की सूची पर ही श्रमिकों को मत देना पड़ता है। वाचिक स्वतन्त्रता के प्रयोग होते हुये भी प्रतिक्रियावादी दलों पर आरोप लगा कर अभियुक्त और दण्डित किया है। वेव ने स्वीकार किया है कि "चिन्तन शक्ति के दमन ने मौलिक सामाजिक समस्या को गंभीर और संकीर्ण वना दिया। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को नष्ट करने के लिए राजनैतिक गुप्तचर-विभाग सर्वदा सचेष्ट है"।

तीस वर्ष के पश्चात् आज हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में उपर्युक्त न्यूनताओं के रहते हुए भी यह मानना ही पड़ेगा कि पाश्चात्य संस्थानों के विपरीत यह एक अभूतपूर्व और सफल परीक्षण है। यदि भविष्य में सोवियट प्रशासन समष्टिवाद का परित्याग करने के लिए वाध्य हो, तो पूंजीवाद का भी आमूल परिवर्तन अवश्यंभावी है। प्रगति की दृष्टि से वार्द्धक्य मे संरक्षण की व्यवस्था, निश्शुल्क चिकित्सा, वेकारी का अवसान, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा-प्रणाली इत्यादि ने सहस्र देशभक्त रूसीय युवकों के वलिदान के अनन्तर समग्र विश्व को एक नवीन प्रकाश दिखाया है। सोवियट परीक्षण की सफलता विश्व के अन्य राष्ट्रों मे भी स्वीकार करेंगे अथवा नहीं ?—यह भविष्य वतायेगा। यह प्रयोग चीन में सफल हो चुका है, तथा वर्मा, ईरान, भारत-

वर्ष, फ्रांस और जर्मनी के कियदंश, बुल्गेरिया, जुगोस्लाविया इत्यादि बल्कान-राज्यों में भी आंतरिक प्रगति कर रहा है ।

(ङ) प्रजातन्त्र अधिनायकवाद

नवीन तुर्की

१६१४ और १८ के युद्ध का अभूतपूर्व परिणाम तुर्की का पुनरुत्थान था। एक शताब्दी से तुर्की यूरोप मे एक पतनोन्मुख राष्ट्र समझा जाता था एवं यूरोपीय शक्ति-गोष्ठी के पारस्परिक्-विरोध से ही इसकी अखंडता सुरक्षित रही। १६१६ में जब यूनान ने स्मार्ना पर अधिकार किया और मित्रराष्ट्रों ने सेव्रेस से संधि (१६२०) पर हस्ताक्षर किये—तब जनता में जागरण प्रारम्भ हुआ। राजधानी कान्स्टेन्टिनोपल अल्पकाल के लिए अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण में चली गई, परन्तु इस संधि को राष्ट्र-वादी दल के नेता मुस्तफा कमाल पाशा ने अस्वीकार किया। सामरिक शक्ति द्वारा यूनान को पूर्ण रूप से पराजित कर विजयी तुर्की सेना ने मित्रराष्ट्रों से लउसाने की संधि (१६२३) द्वारा राजधानी की रक्षा की और हृत राज्यों पर पुनराधिकार किया *।

तुर्की की क्रान्ति—मुस्तफा कमाल के नेतृत्त्व में तुर्की का राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक संगठन "कमालवाद" द्वारा क्रियान्वित हुआ। कमालवाद के कार्यक्रम में छ सिद्धान्त थे—प्रथम गणतन्त्रवाद था—जिसके अनुसार राजसत्ता का अवसान हुआ और तुर्की को गणतन्त्र घोषित कर कमाल आतातुर्क को राष्ट्रपति चुना गया। द्वितीय था—राष्ट्रीयवाद—जिसके अनुसार

* पृष्ठ ४७२-३ में देखिये।

प्रत्येक नागरिक को तुर्कीय भाषा, शिक्षा और राष्ट्रीय आदर्शों को अपना आदर्श मानना पड़ा। तृतीय था:-लोकसत्तावाद-अर्थात् सार्वभौमिकता जनता ही मे अन्तर्हित थी। चतुर्थ था:-समष्टिवाद अर्थात् राष्ट्र की आर्थिक उन्नति के लिए व्यक्तिगत उद्योगों का-याता-यात, खनिज आदि नियंत्रण किया गया। औद्योगिक विकास के लिए रूई; ऊन, रेशम, लोहे आदि की उद्योगशालाएँ स्थापित की गईं। पंचम था—धर्म निरपेक्षता। खलीफा का पद—जो कि भौतिक व धार्मिक अधिकारी था-अवसान किया गया और राष्ट्र को पूर्ण रूप से धर्म-निरपेक्ष बना दिया गया। षष्ठ था:-क्रांतिवाद—जनता दल ने कार्यक्रम में क्रांतिवाद की व्याख्या करते हुए घोषणा की कि "राष्ट्र की प्रशासन व्यवस्था में पुरातन अंधविश्वास और क्रमिक विकास की नीति को यह दल पूर्ण रूप से अस्वीकृत करता है एवं प्रयोजनीय उपयोगी पाश्चात्त्य संस्थानों का अनुकरण किया जायेगा"। उद्भासित स्वैरतन्त्र की घोषणा द्वारा मुसलमानी टोपी, पगड़ी और पुरातन पोशाकों को वन्द कर दिया गया एवं पश्चात्त्य टोप को जनता व्यवहृत करने लगी। शुक्रवार के स्थान पर रविवार को अवकाश का दिन निर्णय किया गया। वहु-विवाह को बन्द और पर्दे की प्रथा को हटा कर महिलाओं को राजनैनिक और सामाजिक समानाधिकार दिये गये। १९३४ में १७ महिलाएँ लोक-सभा की सदस्याएँ थीं। अरबी के स्थान पर रोमन भाषा में लिखित नवीन तुर्की वर्णमाला को अनिवार्य कर दिया गया।

वैदेशिक नीति—कमाल आतातुर्क ने एक वार ब्रिटिश राजदूत से कहा था—"यदि हमारी आकस्मिक मृत्यु हो जाय, तो सहस्राधिक तुर्की जनता हमारे आसन को ग्रहण कर राष्ट्र का संरक्षण करेगी"। कमाल के संचालन में तुर्की राष्ट्र एक मात्र जनता दल द्वारा परिचालित होता था, परन्तु इटली, जर्मनी

और रूस से पूर्ण विभिन्न था। संस्कृति और सामाजिक कार्यक्रम व शिक्षा मे जनता को यहां अधिक स्वाधीनताएँ थीं। १९२३ में कमाल ने शक्ति-गोष्ठी को लउसाने संधि के एकांश को शान्तिपूर्ण वार्तालाप द्वारा संशोधित करने के लिए आवेदन किया एवं परिणाम मे वाष्फरस और दार्दानेलिस का असैनिकीकरण किया गया। १९३६ में मान्ट्रेक्स समझौते द्वारा तुर्की को उपर्युक्त स्थानो की रक्षा के लिए सामरिक अधिकार दिया गया व अन्तर्राष्ट्रीय आयोग को भंग कर दिया गया। युद्ध के समय तुर्की वाष्फरस प्रणाली को युद्ध-जहाजो के लिए बन्द करने की क्षमता रखता था। विंश वर्षीय संक्रमण-काल के शेष भाग में तुर्की और यूनान के सम्बन्ध दृढ़ हुए और ब्रिटेन ने तुर्की की मुस्लिम जाति के संगठन नीति का समर्थन कर १९३९ मे तुर्की के साथ रक्षणात्मक संधि स्थापित की।

आस्ट्रिया

१९१९ से १९३८ तक भरसालिस संधि के पश्चात् आस्ट्रिया ने कठोर परिश्रम से अपनी स्वाधीनता का संरक्षण किया। प्रारम्भ में गणतन्त्र आस्ट्रिया के विधान के अनुसार लोक-सभा के दो भवन थे एवं सार्वजनिक मतदान द्वारा लोक-सभा का निर्वाचन होता था। गणतन्त्र का राष्ट्रपति ४ वर्ष के लिए दोनों भवनो द्वारा चुना जाता था, ३५ वर्ष से अधिक कोई भी (राज वंश को छोड़ कर) नागरिक राष्ट्रपति पद का प्रार्थी हो सकता था। प्रसिद्ध नियमज्ञ डा० माइकेल हैनिश आस्ट्रिया का प्रथम राष्ट्रपति चुना गया। दिसम्बर १९२० में आस्ट्रिया ने राष्ट्र-संघ में आसन ग्रहण किया व अन्तर्राष्ट्रीय सहायता से आर्थिक सुधार की ओर बढ़ा। इस समय आस्ट्रिया के प्रधान मन्त्री इग्नेसियस सीपेल ईसाई समाजवादी और समाज-

वादी गणतन्त्र का नेता था—जो १६२२ से २४ और १६२६ से १६२६ तक प्रधान मन्त्री था।

आस्ट्रिया में दो प्रकार के दल थे—एक जर्मनी के संकीर्णवाद के अनुकरण पर प्रजातन्त्र और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का ध्वंस कर हैप्सबर्ग वंश के पुनस्स्थापन व जर्मनी से मैत्री करने के पक्ष में था। द्वितीय राष्ट्रीयवादी दल जर्मनी के नाजी दल का अनुकरण कर आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक सुधारों द्वारा आस्ट्रिया को जर्मन-साम्राज्य में विलीन करना चाहता था।

"आंशलस"/ अथवा जर्मन से सम्बद्ध होना—आस्ट्रिया की एक प्रमुख समस्या थी। १६२१ मे राष्ट्रसंघ ने जर्मनी के साथ आर्थिक आदि सम्बन्ध स्थापित करना निषिद्ध कर दिया। १६२८ में नवीन राष्ट्रपति हैनिश के उत्तराधिकारी मिकलास ने "आंशलस" समर्थको के दमन के लिए अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय मे इस समस्या को भेजा। १६३१ में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने निर्णय दिया कि १६४२ के अनन्तर आस्ट्रिया और जर्मनी की आर्थिक एकता संभव है। १६३२ में ४२,०००,०००, डालर का अन्तर्राष्ट्रीय ऋण आस्ट्रिया के आर्थिक सुधार के लिए दिया गया, ताकि यह जर्मनी से कोई आर्थिक सहायता न मॉगे।

इसी समय सीपेल ने पद-त्याग किया एवं ईसाई समाजवादी नेता डाल्फस प्रधान-मंत्री निर्वाचित हुआ। आंतरिक आंदोलन के शमन के लिए इसने राष्ट्रपति से विशेष अधिकार प्राप्त किये व १६३४ में एक नवीन विधान की आवश्यकता प्रस्तुत की। आगे आने वाले युग को "संमिलित-ईसाई-राष्ट्र"कहा गया। राष्ट्रीय समाजवादी दल और समाजवादी प्रजातन्त्र दल डाल्फस के अधिनायकवाद एवं दमन नीति से घृणा करता था। फर्वरी में समाजवादी नेताओ ने सार्वजनिक हड़ताल की घोषणा की व प्रशासन की सेनाओ ने इनके आन्दोलन को ध्वस्त कर

समाजवादी प्रजातन्त्र का बहिष्कार कर दिया। प्रशासन ने श्रमिक संघ को अपने नियंत्रण में ले लिया। जुलाई में राष्ट्रीय समाजवादी दल ने आकस्मिक राज्य-परिवर्तन के लिए वियेना में डाल्फस की हत्या की एवं आंतरिक गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। मुसोलिनी की धमकी से हिटलर ने हस्तक्षेप नही किया। न्याय-मन्त्री सुशीनीग प्रधान मन्त्री नियुक्त हुआ और चार वर्ष के कठोर श्रम के बाद आंतरिक शांति स्थापित हो सकी। सुशीनीग ने १६३८ में घोषणा की कि "आस्ट्रिया के भविष्य का निर्णय आस्ट्रिया निवासी ही करेंगे"। पर इसके अधिनायक-वाद के समर्थक अत्यन्त अल्प-संख्यक थे। छद्म-वेष मे नाजियों ने अस्ट्रिया में प्रवेश किया—समाजवादी तो अवसर की प्रतीक्षा ही मे थे। आर्थिक संकट बढ़ा हुआ था ही। सुशीनीग ने हिटलर के साथ सन्धि का विफल प्रयत्न किया। मार्च १६३८ में आस्ट्रिया के भविष्य-निर्णय के लिए उसने सर्वजनमत ग्रहण प्रारम्भ किया, परन्तु जनमत के परिणाम घोषित करने से पूर्व ही हिटलर ने प्रचुर जर्मन-सेना के साथ हस्तक्षेप किया। सुशीनीग बंदी हो गया और बल प्रयोग द्वारा आस्ट्रिया को जर्मनी के सामरिक अधिनायक के आधीन किया गया।

चैकोस्लोवाकिया

नवीन राष्ट्र चैकोस्लोवाकिया सामाजिक, आर्थिक, युद्ध-कालीन व्यय, जनता के अभाव-अभियोग व कृषि की अवनति आदि जटिल समस्याओं में जकड़ा हुआ था। भौगोलिक और जातिगत दृष्टि से यह एक अप्राकृतिक राष्ट्र था। चैक और स्लोवाक समग्र जनता में अल्पसंख्यक अधिवासी थे व इनकी आकांक्षा, अभिलाषा और भाषा एक होते हुए भी आचार विचार विभिन्न थे। पश्चिम प्रदेश बोहेमिया और मुरेविया

मे चैकों का प्राधान्य था और पूर्व प्रदेश में स्लोवाकों का बहुमत था। पश्चिम में अल्पमत जर्मन चैकों से घृणा करता था। पूर्व में अल्पसंख्यक हंगेरी स्लोवाको से अप्रसन्न थे। इसके अतिरिक्त टस्कन नगर मे पोल निवासियों की व पर्वतीय क्षेत्रों में रूथेनिया वासियों की प्रचुरता थी।

इन सब विषमताओं के होते हुए भी चैकोस्लोवाकिया को विधान (२६ फर्वरी १६२०) के अनुसार टामस मासारिक प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ। मासारिक केवल एक भाषाविद् ही नहीं, परन्तु "स्पिरीट आफ रसिया" का लेखक, दर्शन, धर्म, राजनीति और इतिहास का भी पारदर्शी था। संक्षेप में चैकोस्लोवाकिया के संक्रमण-काल में योग्य मासारिक १८ वर्ष तक केन्द्रीभूत प्रजातन्त्र प्रशासन का परिचालन कर समाजवादी और कैथोलिक, चैक और स्लोवाक जातियों के पारस्परिक विरोध को नष्ट करने में सफल हुआ। शिक्षा, सेना, यातायात, कृषि व आर्थिक सुधारो ने मासारिक को लोक-प्रिय बनाया एवं राष्ट्र को उत्थान की ओर अग्रसर किया।

१६३५ में मासारिक के विश्राम-ग्रहण करने के अनन्तर परराष्ट्र मन्त्री बैनेश राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ। यह भी दर्शन, नियम और अर्थशास्त्र का प्रसिद्ध विद्वान् था। दीर्घकालीन राजनैतिक अनुभवों के होते हुए भी बैनेश गणतन्त्र चैकोस्लोवाकिया की नाजीवाद से रक्षा नहीं कर सका। पश्चिम चैकोस्लोवाकिया के जर्मन अधिवासी नाजी प्रचार से उत्तेजित होकर राजनैतिक व सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन का दावा कर रहे थे। मार्च १६३८ में जब जर्मनी ने आस्ट्रिया को हस्तगत किया, तो उग्र नाजीवाद जनता ने चैक-प्रशासन के विपरीत आन्दोलन प्रारम्भ किया। सितम्बर में गम्भीर अन्तर्राष्ट्रीय संकट के पश्चात् इसका विभाजन किया गया। बोहेमिया और

मुरेविया जर्मनी को, टस्कन पोलैण्ड को और स्लोवाकिया के एकांश हंगेरी को मिले। एडवर्ड बैनेश ने अपमानित होकर विदेश पलायन किया। नवीन राष्ट्रपति डा० एमैन हाचा के समय स्लोवाक और रूथेनिया निवासियों को स्वायत्त-शासन दिया गया। जर्मनी के साथ निकट आर्थिक सम्बन्ध स्थापित हुए व भूतपूर्व कर्मचारियों को पदच्युत किया गया। मासारिक और बैनेश की प्रतिमाओं को भंग किया गया। चैकोस्लोवाकिया का प्रशासन आंशिक अधिनायक बन गया। मार्च १९३९ में अवशिष्ट चैक गणतंत्र को हिटलर ने हस्तगत किया एवं चैकोस्लावाकिया को एक "जर्मन-संरक्षित" राज्य घोषित किया गया। राष्ट्रपति हाचा को बोहेमिया और मुरेविया का संरक्षक नियुक्त किया गया। स्लोवाकिया जर्मनी के आधीन हो गया और पादरी टीसो को नवीन स्लोवाक का अधिनायक हिटलर ने नियुक्त किया। अवशिष्ट अंश हंगेरी ने अपने राज्य में मिला लिये। इस प्रकार त्रिआनन-संधि का अंत और १९३९ में चैकोस्लावाकिया यूरोप के मानचित्र से अदृश्य हो गया। प्रजातंत्र का स्थान अधिनायकता ने ग्रहण किया।

जुगोस्लाविया

जुगोस्लाविया में भी सांस्कृतिक और राजनैतिक आकांक्षाओं की विषमताओं ने आन्तरिक संकट की उत्पत्ति की। सर्ब लोग पिछड़े हुए थे, क्रोट्स कैथोलिक एवं प्रगतिशील थे। यद्यपि ये दोनो जातियां प्रथम महायुद्ध के पश्चात् स्थापित महान् जुगोस्लाविया के अंश थीं, फिर भी सर्ब जुगोस्लाविया के विस्तार और केन्द्रीभूत शासन के समर्थक थे, तो क्रोट्स संघीय राज्य और विकेन्द्रित प्रशासन के अनुयायी थे। १९१७ में कार्फू घोषणा-पत्र द्वारा इसको सर्ब, क्रोट और स्लोवेन्सों

का वैधानिक प्रजातन्त्र बना दिया गया। इन जातियों के पारस्परिक विरोध जून १६२८ मे चरम शिखर पर पहुँचे—जिस समय प्रधान मन्त्री राडिक की हत्या की गई। १६२६ में राजा अलैग्जेण्डर ने सामरिक शक्ति के प्रयोग से लोकसभा को भंग कर स्वयं को अधिनायक घोषित किया। विरोधियों का दमन व प्रकाशन पर प्रतिबंध लगा कर दो वर्ष तक इसने आन्तरिक शान्ति की सुरक्षा की। १६३१ में राजकीय अधिनायकवाद का अन्त हुआ और नवीन विधान की घोषणा की गई। वस्तुतः नवीन विधान मे राजा ही सर्वसत्ताधिकारी था—यही मुख्य समिति के अधिकतर सदस्यों को मनोनीत और प्रतिनिधि-भवन के निर्वाचन को नियंत्रित कर सकता था। राजा द्वारा समर्थित प्रार्थी ही निर्वाचन मे सफल हुए और अग्रिम तीन वर्ष तक सर्वों का ही प्रशासन में प्राधान्य रहा। परन्तु विक्षुब्ध क्रोट विश्वविद्यालयो के शिक्षको की हत्या करने लगे। ६ अक्टूबर १६३४ को राजा अलैग्जेण्डर प्रथम फ्रांस के भरसैलिस बन्दरगाह में मारा गया। इसके एकादश वर्षीय पुत्र पीटर द्वितीय ने प्रतिनिधि-समिति की सहायता से शान्ति और मैत्री के आधार पर प्रशासन चलाया। अगस्त १६३६ मे कुर्वाशिया को पूर्ण स्वायत्त शासन दिया गया।

रूमानिया (१६१६ से १६३६)

रूमानिया प्रजातन्त्र के आधार पर ट्रांसिल्वेनिया, बुकोविना और बैसारेबिया को राजनैतिक और प्राशासनिक एकता देने में व्यस्त था। विशेष जागीर दारी उन्मोचन नियम द्वारा १२ हजार जागीरदारों को वंचित कर उस भूमि को हजारों किसानों में बांट दिया। निर्वाचन, लोक सभा और मंत्रिमंडल आदि संपूर्ण अंगों मे पेशेदार राजनैतिकों का गुट्ट प्रधान होने लगा व प्रत्येक

स्थान पर लोकतन्त्र से अधिनायकता को महत्त्व दिया गया। राजा फार्डिनण्ड प्रथम (१९२७) की मृत्यु के पश्चात् पौत्र कुमार माइकेल प्रतिनिधि मंडल के निरीक्षण में राज्यासीन हुआ। १९३० में इसके पिता चार्ल्स द्वितीय (कैरोल) ने-जिसे दुश्चरित्र महिला हैलेन से सम्बद्ध होने के कारण सिंहासन से वंचित किया गया था-बल प्रयोग द्वारा बालक माइकेल को राज्यच्युत और स्वयं को राजा घोषित किया। अपने शिक्षक प्रोफेसर निकोला जार्गा की सहायता से इसने अधिनायकवाद के अवलंब पर शासन चलाया, यद्यपि प्रजातन्त्रवादी विधान चल ही रहा था। फासिस्टवाद ने इसी समय रूमानिया में प्रवेश किया और यहूदी विरोधी संगठन (आयरनगार्ड) नाजी आन्तरिक नीति का अनुकरण करने लगा। १९३४ में प्रधानमन्त्री टाटारेस्कु ने सैन्य संगठन किया और फ्रांस की सहायता से सामरिक शक्ति की वृद्धि की। वैदेशिक व्यवसाय की भी प्रभूत उन्नति हुई। १९३७ के निर्वाचन में यह पराजित हुआ एवं नाजी समर्थक व यहूदी विरोधी आक्टेविन गोगा प्रधान-मन्त्री बना। फर्वरी १९३८ में गोगा को पदच्युत कर कैराल ने पुनः अधिनायकवाद स्थापित किया। नाजियो ने आंतरिक षड्यन्त्र व उपद्रव प्रारंभ किया एवं जून १९३९ में कैरोल ने राष्ट्रीय पुनरुत्थान दल की स्थापना की। नवीन विधान के अनुसार जन-संख्या के एक दशमांश को ही मतदान का अधिकार दिया। महायुद्ध के प्रारंभ में आयरन-गार्ड के प्रचार से प्रधानमन्त्री कालिनेस्कु की हत्या हुई और कैरोल का जीवन बहुत मुश्किल से बच सका।

पोलैण्ड

१९१९ में पोलैण्ड को यूरोप के मानचित्र मे पुनः स्थापित किया गया। आंतरिक पुनर्गठन, आर्थिक, प्राशासनिक

और शैक्षणिक सुधारों व प्रजातन्त्र के प्रचार से पोलैण्ड बीसवीं शताब्दी में मध्य यूरोप के नवीन राष्ट्रों में सबसे अधिक प्रगतिशील, वृहत् और जन-संख्याशाली था। स्वाधीनता-प्रेमी होते हुए भी पोलैण्ड में विभिन्न राजनैतिक दल थे और आन्तरिक अशान्ति भी विद्यमान थी। १९२२ में गणतन्त्र पोलैण्ड का राष्ट्रपति नारुटोइक्स चुना गया। दो दिन के अनन्तर राष्ट्रपति की हत्या हुई व पोलैण्ड में एक आंतरिक अराजकता का समय चार वर्ष तक के लिए आ गया। १९२६ में सेनानायक जोशेफ पिल्सुडिस्की-जो प्रथम महायुद्ध में पोलैण्ड का नेता था—ने सामरिक शक्ति के प्रयोग से आवश्यक राज्य-परिवर्तन किया। मंत्रिमंडल को पदच्युत कर अधिनायकवाद की स्थापना की-परन्तु इसने स्वयं को सर्वाधिकारी न बना कर मोसिस्की को राष्ट्रपति और स्वयं को युद्ध-मन्त्री रखा। १९३० में इसने पद-त्याग किया। सेनाओं के समर्थन के कारण १९२८ से १९३५ तक पिल्सुडिस्की ने आठ मन्त्रिमण्डलों का नियंत्रण किया। इसकी मृत्यु के पश्चात (१९३५) नवीन संविधान प्रस्तुत किया गया-जिसके अनुसार लोक-सभा के अधिकारों को सीमित कर राष्ट्रपति के अधिकार बढ़ा दिये गये। नाजीवाद के प्रचार के दमन के लिए १९३७ में राष्ट्रपति मोसिस्की ने विशेष नियम पास किया। यहूदी-विरोधियों का दमन किया एवं "अनुशासित और वैधानिक प्रजातन्त्रवाद" की स्थापना की। पर एक वर्ष के पश्चात् पोलैण्ड पुनः स्वाधीन राष्ट्र के रूप में यूरोप के मानचित्र से अदृश्य हो गया।

लिथुयानिया

यहाँ पर भी राजनैतिक अशान्ति विद्यमान थी। १९२६ में सेनापति आन्टन स्मेटोना ने सामरिक शक्ति

द्वारा आकस्मिक राज्य परिवर्तन कर स्वयं को राष्ट्रपति घोषित किया। १९२८ में नवीन संविधान स्वीकृत कर स्मेटोना को वैधानिक अधिनायक बना दिया गया। लैटविया और एस्थोनिया में साम्यवादी और नाजी प्रचार के परिणाम से भी प्रजातन्त्रवाद का अवसान हुआ। १९३४ से ३६ तक एस्थोनिया में और १९३५ मे लैटविया में अधिनायकवाद स्थापित हुआ, परन्तु इन दोनों राज्यों में साम्यवादी प्रचार निषिद्ध हो गया।

आल्बेनिया

आल्बेनिया में एक संकीर्ण वादी फान नोली के-जिसने युक्तराष्ट्र से शिक्षा प्राप्त की थी—गणतन्त्र स्थापन के प्रयत्न को असफल कर एक युवक सेनानायक अहमद जोगू १९२५ में राष्ट्रपति बन गया। १९२८ मे इसने स्वयं को राजा जोगू प्रथम घोषित किया। १९३९ में इटली ने आल्बेनिया को अधिकृत कर जोगू का पतन और फासिस्ट प्रशासन का प्रवर्त्तन किया।

बुल्गेरिया

बुल्गेरिया में महायुद्ध के पश्चात् राजा बोरिश तृतीय के राज्यकाल में आन्तरिक अशान्ति और राजनैतिक आन्दोलन का प्राचुर्य दिखाई दिया। १९२३ मे योग्य, कृषि विकास के समर्थक, प्रधान मन्त्री स्टैम्बुलिस्की को पदच्युत कर मार दिया गया। अग्रिम तीन वर्ष के लिए प्रतिक्रियावादी मंत्रिमंडल ने उग्र आतंकवाद की सृष्टि की। १९२६ में प्रजातंत्र का पुनस्स्थापन हुआ, परन्तु अल्पकाल में ही समाजवादियों के दमन के लिए प्रशासन को तैयार होना पड़ा। परिणामतः मई १९३४ मे सामरिक अधिकारियों ने आकस्मिक राज्य परिवर्त्तन कर फासिस्ट अधिनायकवाद स्थापित किया। १९३५ में फासिस्ट शासन के एक वर्ष पश्चात् राजा बोरिश ने पुनः

अपना आधिपत्य विस्तृत किया और फासिस्ट दल का दमन किया। १६३८ में बुल्गेरिया-लोकसभा को आमन्त्रित किया गया, यद्यपि यह केवल परामर्श ही दे सकती थी। १६३६ में एक सामान्य आन्तरिक नाजी आन्दोलन का दमन किया गया।

हंगेरी

मध्य यूरोप के राष्ट्र समूहों मे हंगेरी महायुद्ध के अनन्तर सहिष्णु प्रजातंत्रवाद से सब से न्यून प्रभावित हुआ था। १६ नवम्बर १६१८ में हंगेरी एक लोकसत्तात्मक जनतंत्र घोपित हुआ एवं कैरोली राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ। कैरोली एकमगैर कुलीनवंश में उत्पन्न हुआ था एवं कृपकों के राजनैतिक अधिकार, जागीरदारी का पुनर्विभाजन, सार्वजनिक मतदान इत्यादि सुधारो ने कुलीनो के प्रति इसे विश्वास-घातक प्रमाणित किया था। ४ मास के पश्चात इसने पदत्याग किया और साम्य-वादी वेला कुन ने ६ मास तक रूस के अनुकरण पर हंगेरी की राजनीति का नियंत्रण किया। उद्योग का राष्ट्रीयकरण व व्यक्तिगत सम्पत्ति को जब्त कर सामरिक शक्ति द्वारा श्रमिक अधिनायकवाद स्थापित किया गया, परन्तु साम्यवादी परीक्षण असफल हुआ एवं रूमानिया वासियों ने बुडापेष्ट को अधिकृत कर हंगेरी को लूटा। तीन मास के अनन्तर रूमानियां ने हंगेरी का परित्याग किया और प्रतिक्रियावादी सेनापति होर्थी ने हंगेरी को राजतंत्र घोपित (मार्च १६२०) कर गणतन्त्र को भग कर दिया। राजा चार्ल्स चतुर्थ स्विट्जरलैण्ड में निर्वासित जीवन बिता रहा था व उसने राज्यत्याग नहीं किया था। यद्यपि प्रशासन नाम मात्र से वैधानिक राजतंत्र था, पर वस्तुतः प्रतिनिधि होर्थी ही सर्वाधिकारी था। १६२१ में दो बार राज्याधिकार करने के असफल प्रयत्न के पश्चत् चार्ल्स को बंदी कर मदीरा द्वीप में निर्वा-

सित किया गया। १ अप्रेल १६२२ मे ३५ वर्ष की आयु में उस की मृत्यु हुई। उसका उत्तराधिकारी अष्टमवर्षीय बालक कुमार आटो था। चैकोस्लोवाकिया, जुगोस्लाविया और रूमानियां ने त्रिशक्ति गुट की स्थापना कर आटो को राजा नहीं घोषित करने दिया व प्रतिनिधि प्रशासन ही चालू रखा। १६२१ से ३१ पर्यन्त दश वर्ष स्टीफैन बैथलेन प्रधान-मन्त्री रहा और उसने कुशलता के साथ शासन चलाया। १६२४ में बैथलेन के उद्योग से अन्तर्राष्ट्रीय सहायता हंगेरी को मिली। यद्यपि ट्रियानन की संधि द्वारा हंगेरी की दो तृतीयांश भूमि और तीन पंचमांश जनता की क्षति हुई थी, फिर भी कृषि-सुधार से प्रभूत उन्नति हुई। १६३१ में बैथलेन ने पदत्याग किया और उत्तराधिकारी कैरोली एक वर्ष तक प्रधान मन्त्री रहा। इसके पश्चात् सेनापति जूलियस गोयम्बोज ने ट्रियानन संधि के संशोधन का (१६३३) प्रयत्न किया। कुमार आटो के समर्थन मे जब राजसत्ता-विरोधी आंदोलन प्रारम्भ हुआ, तो सेनापति ने उसका दमन किया। १६३३-३४ में गोयम्बोज की मुसोलिनी और डाल्फस के साथ व्यक्तिगत मैत्री स्थापित हुई। १६३५ और १६३६ मे गोयम्बोज ने इटली और जर्मनी के साथ मैत्री की। अक्टूबर १६३६ में इसकी मृत्यु के पश्चात् कालमन दरानी प्रधान मन्त्री हुआ एवं राष्ट्रीय-एकता दल स्थापित किया। इसके विरोधी स्वाधीन कृषक दल एखार्डट के नेतृत्त्व में नाजीवाद के विरोध के लिए हैब्सबर्ग वंश को पुनस्स्थापित करना चाहते थे। प्रतिनिधि को विशेष नियम द्वारा विधान निर्माण का अधिकार दिया गया। १६३८ में आर्थिक उत्थान की पंचवर्षीय योजना की घोषणा करते हुए प्रधान-मन्त्री ने ट्रियानन संधि को अस्वीकृत कर पुनः अस्त्रीकरण की नीति को ग्रहण किया। संकीर्णवादी बेला इम्रेडी ने अतिरिक्त नियम द्वारा यहूदियों के २० प्रतिशत व्यावसायिक अधिकार को नियं-

त्रित किया (अब तक इनने ५० प्रतिशत अधिकृत कर रखा था)। फर्वरी १०३६ में इम्रेडी ने पद त्याग किया एवं उत्तराधिकारी टेलेकी ने यहूदियों का अधिकार १२ प्रतिशत तक ही सीमित कर दिया। यहूदी केवल यहूदियों को ही मत दे सकते थे एवं सिनेमा, नाटक घर आदि से इन्हे वंचित किया गया। मार्च १६३६ में जब जर्मन जैकोस्लोवाकिया को हस्तगत कर रहा था, तो हंगेरी ने कार्पैथो यूक्रेन क्षेत्र को अधिकृत किया। मई १६३६ में प्रधान मन्त्री ने वैदेशिक नियंत्रण से हंगेरी को स्वाधीन रखने की घोषणा की, राष्ट्रसंघ का त्याग किया, साम्यवादी विरोधी संधि की व रूस से कूटनीतिक सम्बन्ध विच्छिन्न कर दिया। इसके पश्चात् द्वितीय महा-युद्ध का श्रीगणेश हुआ।

यूनान

महायुद्ध के पश्चात् यूनान कभी राजसत्ता और कभी गणतन्त्र की ओर से गुजर रहा था। १६२० में राजा अलैग्जेण्डर पालतू बन्दर के काटने से मर गया। अलैग्जेण्डर के उत्तराधिकारी राजा जार्ज द्वितीय को दिसम्बर १६२३ में विधान-सभा ने निर्वासित किया। मार्च १६२५ में राज-वंश का अवसान कर सर्वजन मत से गणतन्त्र की घोषणा की, परन्तु यह परिवर्तन केवल नाम मात्र का ही हुआ। वस्तुतः क्या राजसत्ता और क्या गणतन्त्र दोनों ही प्रकारों से यूनान की अवस्था अराजकता-पूर्ण थी। प्रथम महायुद्ध से ही लोकप्रिय प्रधान-मन्त्री वैनिजलास यूनान का सर्वाधिकारी बना हुआ था। १६२३ के तुर्की के साथ लउसाने शान्ति सम्मेलन में स्मार्ना व पूर्व थ्रेस के परित्याग को स्वीकृत किया, एवं संबद्ध जनसंख्या के आदान-प्रदान का निश्चय किया। इतिहास में तुर्की से १२ लाख यूनानियों का अपने देश में परावर्त्तन होना एक अभूतपूर्व घटना थी। इससे तुर्की के साथ मित्रता स्थापित हुई और यूनान

व तुर्की ने १० वर्ष के लिए रचनात्मक संधि की। यूनान का प्रथम राष्ट्रपति कर्एँ डूरियट्मि निर्वाचित हुआ और वैनिजिलास पदत्याग कर क्रीट चला गया। १६२८ मे वैनिजिलास आंतरिक अव्यवस्था के कारण पुनः प्रधानमन्त्री निर्वाचित हुआ और चार वर्ष तक आर्थिक, समाजिक और शैक्षणिक प्रगति की ओर यूनान को ले गया। १६३३ मे राजनैतिक विरोधियो ने इस पर आक्रमण किया व उसे पदच्युत कर एक राजसत्तावादी को प्रधानमन्त्री निर्वाचित किया। १६३५ में वैनिजिलास ने जनता को उत्तेजित कर आंतरिक विद्रोह किया, परन्तु उसका निर्दयता के साथ दमन किया गया। यह आश्रय-प्रार्थी के रूप में पेरिस भाग गया और १६३६ मे वहीं पर इसकी मृत्यु हो गई। वैनिजिलास के पलायन के पश्चात् सामरिक शक्ति द्वारा राज-सत्ता का पुनस्थापन हुआ व राजा जार्ज द्वितीय ने सेनापति जान मैटाक्सास के नेतृत्त्व में अधिनायकवाद घोषित किया ।

पुर्त्तगाल

१६१० मे पुर्त्तगाल में नाम मात्र का जो गणतन्त्र स्थापित हुआ था—वह १६२६ तक पेशेवर राजनैतिक गुट बंदियो के रहते हुए भी चला। इस समय सेनापति एन्टोनियो कार्मोना ने प्रयोगिक अधिनायकवाद स्थापित कर रचनात्मक संगठन किया। १६२८ मे सामरिक शक्ति द्वारा इसने स्वयं को चार वप के लिए राष्ट्रपति घोषित किया और १६३२ की एक विशेष घोषणा द्वारा कार्य काल को ६ वर्ष के लिए बढ़ा दिया। १६३३ मे स्वयं ने संविधान निर्माण किया और पुनः सर्वजनमत द्वारा १६४० तक के लिए राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ। कार्मोना के प्रजातन्त्रात्मक अधिनायकवाद के काल मे राष्ट्रीय आर्थिक सुधार, प्रांशासनिक संशोधन, विरोधी प्रचार का दमन व श्रमिक

संगठन के विवादों को निपटाने के लिए अनिवार्य पंचायत का स्थापन किया गया।

स्पेन

प्रथम महायुद्ध के अनन्तर स्पेन एक वैधानिक राजसत्तावादी राष्ट्र था। यद्यपि अभिलाषी सैनिक अधिकारी व पेशवर राजनैतिक विद्रोही और प्रतिक्रियावादी जनता की सहायता से प्रशासन चला रहे थे। प्रथम महायुद्ध के परिणाम में मरक्को के उत्तरी अंश स्पेन को प्राप्त हुए, परन्तु देशभक्त मरक्को निवासी १० वर्ष तक स्पेन के साथ विरोध प्रदर्शन के लिए क्रमागत संघर्ष करते रहे। इस संघर्ष में यह अनुमान है कि स्पेन की एक लाख ३० हजार सेना व ८००,०००,००० डालर की क्षति हुई। स्पेन की सामरिक पराजय ने समाजवादी, अराजकवादी और साम्यवादियों को प्रोत्साहित किया। राजा आल्फन्सो त्रयोदश ने विवश होकर सितम्बर १६२३ मे प्रवीण सेनाधिकारी एवं कुलीन नेता प्रिमोडी-रीवेरा को अधिनायक घोषित किया। इसने ७ वर्ष के काल में विधान को भंग किया, प्रकाशन पर प्रतिवन्ध लगाया एवं अपनी फासिस्ट नीति का तीन शब्दों में—देश, राजा, धर्म—विश्लेषण किया। १६२७ में फ्रांसीय सहायता से मरक्को-विद्रोह का दमन किया व आर्थिक सुधार से सुसंस्थित राज्य स्थापित किया।

१६३० में रीवेरा ने पदत्याग किया व सेनापति वैरेनगुअर उसका उत्तराधिकारी हुआ। इसके काल मे जमोरा के नेतृत्त्व में गणतन्त्रवाद का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। लोकप्रिय जमोरा ने १६३१ में स्थानीय नगरपालिका-निर्वाचन में विजयी होकर राजा को राज्य-त्याग के लिए वाध्य किया। आतंकित राजा फ्रांस में भाग (१४ अप्रेल) गया एवं का पुरुपताका परिचय देकर वुरवुनवंश का ध्वंस किया। जमोरा ने स्पेन को गणतन्त्र

घोषित किया एवं स्वयं को अस्थायी प्रशासन का अध्यक्ष बना कर आठ वर्ष के अनन्तर प्रथम सार्वजनिक निर्वाचन का प्रबन्ध किया। २८ जून को नवीन निर्वाचन समाप्त हुआ व गणतान्त्रिकों को बहुमत मिला। नूतन संविधान प्रस्तुत किया गया और राष्ट्रपति का कार्य-काल ६ वर्ष नियत किया गया। लोक-सभा (कार्टेज) को चारवर्ष के लिए सार्वजनिक मताधिकार के आधार पर निर्वाचित करने का निर्णय हुआ। जमोरा गणतन्त्र स्पेन का प्रथम राष्ट्रपति और मनथेल अजाना प्रथम प्रधानमन्त्री चुना गया। कार्टेज ने सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिवर्तनो के लिए नवीन नवीन अधिनियमों का प्रयोग किया। गैलीशिया, कैटालोनिया प्रदेशो को स्वायत्त शासन दिया गया। १९३२ मे कट्टर ईसाइयों की संपत्ति और शिक्षणालयो को हस्तगत किया गया व कैथोलिकों को प्रशासन से आर्थिक सहायता देना निषिद्ध हो गया।

फ्रैंको:—१९३२ से १९३६ तक साम्यवादी, समाजवादी और उग्रदल ने मिलकर एक जनता-दल की स्थापना की व १९३६ के निर्वाचन में सहिष्णुवादी गणतन्त्र को पराजित किया। जमोरा पदच्युत हुआ और अजाना राष्ट्रपति चुना गया। इसी समय (१९ जुलाई १९३६) सेनापति फ्रैंसिसको फ्रैंको मरक्को छोड़कर स्पेन मे लौटा व वामपन्थियो के विरोध के लिए सेना-संगठित की। समग्र सेना का तीन चतुर्थांश और नौसेना का अर्द्धांश विद्रोह में फ्रैंको के समर्थन के लिए सम्मिलित हुआ। फ्रैंको ने सालामंका में अस्थायी राष्ट्रीय प्रशासन स्थापित कर स्वयं को सर्वाधिकारी घोषित किया। नाजी जर्मनी और फासिस्ट इटली ने फ्रैंको को आर्थिक और सामरिक सहायता दी। वैधानिक राजसत्तावादी व कैथोलिक जनता ने भी इसका समर्थन किया। जनता दल

के नेता कैबालेरो ने साम्यवादी रूस से सामरिक साधन व फ्रांस से स्वयं सेवकों तथा आन्तरिक सेना का संग्रह कर फ्रैंको का विरोध किया। इस प्रकार स्पेन में गृहयुद्ध (जून १९३६) प्रारम्भ हुआ। मई १९३७ में कैबालेरो का पतन हुआ और समाजवादी प्रधामन्त्री नेग्रिन ने संघर्ष को दृढ़ता के साथ जारी रखा। १९३८ में फ्रैंको ने गैलेशिया, वास्क बार्सीलोना को अधिकृत किया। १९३९ में समग्र कैटालोनिया फ्रैंको के अधिकार में आया और जनता-दल का विरोध समाप्त हो गया। राष्ट्रपति अजाना ने पदत्याग किया, प्रधानमन्त्री नेग्रिन ने फ्रांस में पलायन किया और राजधानी मेड्रिड में प्रविष्ट होकर फ्रैंको ने स्वयं को अधिनायक घोषित किया। अधिनायक फ्रैंको ने धुरि-राष्ट्र जर्मनी, इटली और जापान से मैत्री स्थापित की, तीनलाख पलायित शरणार्थियों का पुनस्स्थापन किया, पूंजीपतियों से आर्थिक ऋणसग्रह किया व सार्वजनिक निर्माण के लिए १८ से ५० साल तक के पुरुषों के लिए श्रम अनिवार्य कर दिया। विरोधियों का निर्दयता के साथ दमन किया। संक्षेप में स्पेन का राष्ट्रीय, आर्थिक और राजनैतिक प्रशासन फासिस्टवाद के आधार पर स्थापित हुआ।

समीक्षा—दक्षिण, पूर्व और पश्चिम यूरोप के विभिन्न राष्ट्रों में—बुल्गेरिया, रूमानिया, जुगोस्लाविया, आल्बेनिया, आस्ट्रिया, यूनान, चैकोस्लोवाकिया, पोलैण्ड, हंगरी, लिथुयानिया एस्थोनिया, स्पेन, लैटविया, पुर्त्तगाल—इस विंशवर्षीय संक्रमण काल में सर्वत्र अधिनायकवाद की विजय हुई। परन्तु यह अधिनायकवाद लोकसत्ता के आधार पर और सर्व-जनमत ग्रहण द्वारा स्थापित किया गया था। अपनी निर्दयता निरंकुशता और दमन की नीति के कारण यद्यपि यह निन्दनीय है, परन्तु राष्ट्र की दृढता के लिए इसने अनिवार्य

सामरिक शिक्षा, निश्शुल्क अनिवार्य शिक्षा, बेकारी का अवसान, सार्वजनिक निर्माण, आर्थिक सुधार, सामाजिक परिवर्त्तन, धार्मिक सहिष्णुता, शारीरिक उत्कर्ष आदि का प्रवर्त्तन किया। राष्ट्रीयता और देश-भक्ति ने अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच कर नवीन रूप धारण किया। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, प्राकाशनिक और वाचिक-स्वाधीनता का यहां नाम-मात्र भी नहीं रहा, परन्तु आर्थिक अभाव के अवसान से जनता को क्षणिक संतोष हुआ। संकीर्ण राष्ट्रवाद के प्रचार से चारों ओर हिंसा और द्वेष की भावनाओं का जागरण हुआ-जिसके परिणाम स्वरूप द्वितीय महायुद्ध की सृष्टि हुई।

———※———

१३—अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

(१९१९ से १९३९)

प्रथम महायुद्ध में अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करते समय दो उद्देश्य बताये थे—प्रथम "विश्व में लोकतंत्रवाद की स्थापना" और द्वितीय "अन्तर्राष्ट्रीय चिरंतन-शान्ति की व्यवस्था" करना था। पेरिस की शान्ति परिषद् के पश्चात् एक नवीन अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की व्यवस्था के लिए राष्ट्र-संघ की स्थापना की गई। विल्सन के चतुर्दश केन्द्र-विन्दुओं में हम राष्ट्र-संघ की स्थापना के उद्देश्यों का अध्ययन कर चुके हैं।

राष्ट्र-संघ

१८९९ और १९०७ के हेग शान्ति-सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष के समाधान के लिए प्रभूत प्रयत्न किये गये थे। महायुद्ध के अनन्तर राजनैतिक स्वाधीनता और राष्ट्रीय अखण्डता के समर्थन के लिए राष्ट्रसंघ की स्थापना अनिवार्य हो गई। विल्सन के शब्दों में "शान्ति व्यवस्था का यह एक प्रमुख अंग" था। भरसालिस संधि में जर्मनी ने राष्ट्रसंघ की स्थापना को मान्यता दी थी।

राष्ट्रसंघ के प्रतिश्रव—राष्ट्रसंघ के प्रतिश्रव में "अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के लिए प्रत्येक सम्मिलित सदस्य राष्ट्र ने यह स्वीकार किया कि वे युद्ध की घोषणा नहीं करेंगे और अतीत की प्रतिसंधि शर्तों को मान्यता देंगे"। "राष्ट्रसंघ के सदस्य यह स्वीकार करते हैं कि यदि पारस्परिक कोई संघर्ष

उत्पन्न हो तो वे अन्तर्राष्ट्रीय पंचायत द्वारा समस्या का समाधान करेंगे और इस निर्णय के तीन मास के मध्य तक युद्ध-घोषणा नहीं करेंगे। यदि वे प्रतिश्रव को अमान्य कर युद्ध करें, तो संघ के अन्य सदस्य उनसे आर्थिक और व्यावसायिक सम्बन्ध विच्छिन्न कर देंगे एवं पारस्परिक सामरिक सहयोग से संघ के प्रतिश्रव की रक्षा करेंगे"। राष्ट्रसंघ के विधान के अनुसार दो अन्तर्राष्ट्रीय भवन स्थापित किये गये—प्रथम, प्रतिनिधि-सभा—जिसमें संघ के सदस्य-राष्ट्रों के प्रतिनिधि रहेंगे व प्रत्येक सदस्य को एकमत रहेगा। किसी भी राष्ट्र के तीन से अधिक प्रतिनिधि नहीं रहेंगे। इसके अधिवेशन निष्पन्न स्विट्जरलैण्ड के जेनेवा नगर में होंगे। प्रतिनिधि भवन के दो-तृतीयांश मत द्वारा नवीन स्वाधीन राष्ट्र को राष्ट्रसंघ का सदस्य बनाया जा सकता है। इसके सिद्धान्तों में विश्वास रखने वाला कोई भी राष्ट्र संघ का सदस्य बनाया जा सकता है। कोई भी सदस्य राष्ट्र दो वर्ष की सूचना देकर संघ का त्याग कर सकता है। द्वितीय—एक विशेष कार्यकारिणी समिति—जिसके सदस्य विश्व के महान् राष्ट्रों द्वारा स्थायी रूप से मनोनीत होते थे। सर्वप्रथम इंग्लैण्ड, फ्रांस, इटली, जापान, और युक्तराष्ट्र को इसमे प्रतिनिधित्व दिया गया था। इसके अतिरिक्त इस विधान में जेनेवा में एक स्थायी सचिवालय की व्यवस्था थी—जो कि प्रतिनिधि सभा और कार्यकारिणी के प्रति उत्तरदायी था। एक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय और एक अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन का भी आयोजन किया गया। १६३४ में राष्ट्रसंघ के ६० सदस्य थे और द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ में केवल ४६ राष्ट्र रह गये थे। इस प्रतिश्रव को परिवर्त्तित करने के लिए मुख्य कार्यकारिणी समिति को सर्व सम्मति और प्रतिनिधि-भवन का बहुमत अपेक्षित था। राष्ट्रसंघ का व्यय प्रत्येक सदस्य

राष्ट्र में आनुपातिक रूप से विभाजित था। प्रतिनिधि भवन का प्रथम अधिवेशन विल्सन की अध्यक्षता मे १५ नवम्बर १६२० में प्रारम्भ हुआ था। संक्षेप में १६२० से १६३६ तक के विंश वर्षीय काल मे इसके कुल २५ अधिवेशन हुए थे। कार्यकारिणी समिति—जनवरी, मई और सितम्बर—वर्ष में तीन वार मिलती थी। उपर्युक्त समय में इसके कुल १०७ अधिवेशन हुए थे। राष्ट्रसंघ के प्रमुख कार्यक्रम निम्न लिखित थे—युद्ध-निवारण, शान्ति-व्यवस्था, पेरिस सन्धि का प्रयोग व मानवीय सहयोग।

१–युद्ध-निवारण—·शांति संरक्षण के लिए कोई भी सदस्य अन्तर्राष्ट्रीय गंभीर परिस्थिति और सम्बन्ध को प्रतिनिधि-भवन अथवा कार्यकारिणी समिति के समक्ष रख सकता था। परन्तु सशस्त्र विद्रोह और गृह-युद्ध संघ के अधिकार से बाहर थे। अवैधानिक युद्ध का निवारण यद्यपि राष्ट्र संघ के लिए असंभव था, परन्तु यह केवल नैतिक वाध्यता पर निर्भर था।

२–शान्ति व्यवस्था—शांति की व्यवस्था को क्रियात्मक करने के लिए १६२१ में हेग में एक स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना की। इसमें १५ विचारपति ६ वर्ष के लिए दोनों भवनों द्वारा नियुक्त होते थे। अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष और समस्याओं के समाधान का इन्हें अधिकार था। राष्ट्रसंघ विश्वास करता था कि गुप्त-सन्धि और गुटबन्दी प्रथम महायुद्ध की सृष्टि का प्रधान कारण था, इसीलिए सदस्यों के लिए प्रत्येक सन्धि का प्रकाशन अनिवार्य था। सचिवालय में भी इसकी सूचना देनी होती थी। प्रत्येक सदस्यों को यह मानना पड़ा कि वे कोई भी समझौता ऐसा नही करेंगे, जो प्रतिश्रव के विपरीत हो। प्रतिश्रव में यह भी मान्य किया गया था कि आवश्यकतानुसार पुरातन संधियों का संशोधन भी हो सकेगा व पुरातन

संधि के पालन से यदि अन्तर्राष्ट्रीय अशांति की आशंका हो, तो उसे शीघ्र परिवर्तन किया जायेगा। अस्त्र शस्त्र की प्रतियोगिता के निवारण के लिये सदस्यों ने यह स्वीकृत किया कि राष्ट्रीय अस्त्र शस्त्रों को आनुपातिक रूप से न्यून किया जायेगा एवं व्यक्तिगत उद्योग से इनका निर्माण नही करेंगे। इनको सीमित करने के लिए कार्यकारिणी ने विशेष योजना तैयार की थी।

३—पेरिस संधि का प्रयोग—भरसालिस संधि के अनुसार पूर्व प्रशिया, स्क्लेसविग, उच्च साइलीशिया के सर्वजनमत ग्रहण का निरीक्षण, उन्मुक्त नगर डांजिग की प्रशासन व्यवस्था, १५ वर्ष के लिए सार प्रदेश को अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण में लेना व उसके पश्चात् जनमत ग्रहण इसके प्रधान कर्तव्य थे। अल्पमत के अधिकार का संरक्षण, जर्मनी के आदिष्ट उपनिवेशों का नाममात्र से पर्यवेक्षण भी इसके कार्यक्रम में सम्मिलित था।

४—मानवीय सहयोग—पुरुष, महिला और बालक के लिए न्याय व परिस्थिति के आधार पर श्रम को नियमित किया गया। उपनिवेशों के अधिवासियों को समानाधिकार, वर्णभेद का अवसान, सदस्यों मे समान व्यावसायिक सुयोग और यातायात स्वतन्त्रता दी गई। अफीम, दासप्रथा, महिलाओं का विक्रय एवं अस्त्र शस्त्र का व्यापार सामान्य स्वार्थ के उद्देश्य से विशेष नियम द्वारा नियंत्रित किया गया। संक्रामक रोगों के निवारण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था और सेवा-समिति का संगठन संसार के दुखः को ध्वस्त करने के उद्देश्य से किया गया। अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन ने पूंजीपति और श्रमिक के सम्बन्ध को शान्तिपूर्ण करने के लिए समय समय पर विशेष सम्मेलनों का आयोजन किया। संक्षेप में शान्ति-पूर्ण सहयोग और सौमान्य सुरक्षा नवीन विश्व की प्रमुख योजना हुई।

संघ के कार्यकलाप

जनवरी १६२० में पेरिस में राष्ट्र-संघ का प्रथम अधिवेशन विल्सन के नेतृत्त्व मे हुआ व नवम्बर में प्रतिनिधि-सभा व कार्यकारिणी के अधिवेशन जेनेवा में हुए। इस समय संघ के ४२ सदस्य थे। हम यह पहले ही देख चुके हैं कि रूस, जर्मनी, इटली आदि ने इसमें योग-दान किया था व १६३५ मे संघ के ६२ सदस्य थे-२८ यूरोप, २१ अमेरिका, ८ एशिया, ३ अफ्रीका और २ आस्ट्रेलिया। युक्तराष्ट्र संघ में सम्मिलित नहीं हुआ था। १६२८ के निर्वाचन में राष्ट्रपति विल्सन के प्रजातन्त्र-दल की पराजय हुई और विजयी गणतन्त्र-दल मुख्य-समिति में अधिक आसन ग्रहण करने से राष्ट्रपति का साक्षात् विरोध करने लगा था। भरसालिस संधि को न्याय के स्थान पर प्रतिशोधात्मक संधि और युक्त राष्ट्र के स्वार्थ का ध्वंस कहा गया। १६१६ में जब विल्सन ने मुख्य-समिति के समक्ष राष्ट्र-संघ के प्रतिश्रव को प्रस्तुत किया, तो वह गणतन्त्र दल द्वारा ठुकरा दिया गया। पक्षाघात के कारण १६२० में विल्सन की मृत्यु हुई एवं नवीन गणतन्त्र दल का नेता हार्डिंग राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ। इसने १६२१ में घोषणा की—"विश्व नियंत्रण के अधिकारी व वर्तमान राष्ट्र संघ से गणतन्त्र मित्र राष्ट्र का कोई सम्बन्ध नहीं है"। १६२२ में जर्मनी, आस्ट्रिया और हंगेरी के साथ युक्तराष्ट्र ने पृथक् संधि की। परन्तु समय समय पर अन्तर्राष्ट्रीय आयोगों, समितियों और सम्मेलनों में अमेरिका के प्रतिनिधि योगदान करते थे। १६३४ में युक्तराष्ट्र राष्ट्र-संघ के श्रमिक संगठन का सदस्य बना। युक्तराष्ट्र के अतिरिक्त ६ वर्ष पर्यन्त जर्मनी व चौदह वर्ष पर्यन्त रूस भी इससे सम्बद्ध नहीं था। १६३३ में जर्मनी और जापान व १६३६ में इटली ने

राष्ट्र संघ का परित्याग किया था—उसके बाद महान शक्तियों में केवल तीन ही—इंग्लैण्ड, फ्रांस और रूस—इसके सदस्य रह गये थे।

यद्यपि युद्ध का निवारण करने में राष्ट्रसंघ असमर्थ था, फिर भी समग्र विश्व के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आंकड़ों का प्रकाशन, अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलनों का आवाहन व पारस्परिक विरोधो को अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में निर्णीत कर एक नवीन सहयोग की नीति का परिचालन इसने किया। युद्ध की व्यावृत्ति के लिए विभिन्न समितियाँ विभिन्न विवरण, विरोधी राष्ट्रों का पर्यवेक्षण व जांच करतीं थीं। १६२० में फिनलैण्ड और स्वीडेन के आलैण्ड द्वीप के प्रभुत्त्व-विरोध को संघ ने फिनलैण्ड के पक्ष में निर्णीत किया। १६२१ में पोलैण्ड और जर्मनी के सीमान्त को उच्च साइलीशिया के विभाजन से निर्दिष्ट किया गया एवं आर्थिक सम्बन्ध के विच्छेद की धमकी से सर्विया-सेना को आल्बेनिया-परित्याग के लिए बाध्य किया गया। १६२३ में इटली और यूनान के कार्फू द्वीप के अधिकार संघर्ष का समाधान किया गया। आस्ट्रिया और हंगेरी की आर्थिक सहायता की व्यवस्था की गई एवं तुर्की से आये हुए १० लाख यूनानी शरणार्थियों के यूनान में पुनस्स्थापन का प्रबन्ध किया गया। १६२५ में यूनान और बुल्गेरिया के सीमान्त-संघर्ष को यूनान को आर्थिक विच्छेद की धमकी देकर हल किया। १६२६ मे ब्राज़ील और स्पेन ने पारस्परिक विवाद के कारण संघ त्याग की प्रथम सूचना दी। केलाग और लोकार्नो संधि व यूरोपीय संयुक्त संघ की परिकल्पना का अध्ययन हम आगे करेंगे। १६३२ में कोलंबिया और पेरू का विवाद राष्ट्रसंघ ने निपटाया। यहां तक संघ एक सफल संघटन था, परन्तु असफलताएँ भी साधारण नहीं थी।

१६२३ मे पोलैल्ड और लिथुवानिया का संघर्ष राष्ट्र-सघ की एक कठिन समस्या थी । फ्रांसीश सहायता से पोलैण्ड ने भीलना पर अधिकार किया व इंग्लैण्ड और इटली ने भी इसका अनुमोदन किया। उसी वर्ष इटली ने प्रमुख इटलियों की यूनानियों द्वारा हत्या करने के अभियोग में राष्ट्र-संघ को सूचना दिये बिना ही यूनान से क्षतिपूर्ति और क्षमा का दावा किया और शक्ति-प्रयोग द्वारा यूनान के काफूं द्वीप पर अधिकार किया। दुर्बल यूनान ने राष्ट्रसंघ को आवेदन किया। इटली ने राष्ट्रसंघ के हस्तक्षेप को चेतावनी देते हुए कहा कि इस सम्बन्ध में कोई भी हस्तक्षेप इटली का अपमान होगा। अंत में ब्रिटेन और फ्रांस की मैत्री-पूर्ण मध्यस्ता से काफूं को छोड़ा गया। १६२६ में इंग्लैण्ड और तुर्की का संघर्ष आदिष्ट प्रदेश ईराक के मोसुल तैल-खनिज क्षेत्र को लेकर हुआ। यद्यपि संघ ने ब्रिटेन के अधिकार का समर्थन किया, परन्तु छोटे छोटे दुर्बल राष्ट्र संघ की इस महाराष्ट्रों के साथ पक्षपात नीति से असंतुष्ट थे। दूर प्राच्य मे राष्ट्रसंघ जापान के शक्ति प्रयोग द्वारा मंचूरिया-अधिकार एवं चीन के विरुद्ध सामरिक प्रभाव-विस्तार को अवरुद्ध नहीं कर सका। चीन के आवेदन पर संघ ने हस्तक्षेप किया, परन्तु कागजी विवरण के अनन्तर जापान ने राष्ट्र-संघ का परित्याग कर दिया। १६२८ में बोलेविया और पैराग्वुया के युद्ध का भी राष्ट्र-संघ प्रतिरोध नहीं कर सका। जब संघ ने हस्तक्षेप किया तो पैराग्वुया ने भी १६३४ मे संघ त्याग किया। १६३५ मे संघ इटली की इथियोपिया अथवा ऐबिसीनिया विजय को रोक नहीं सका व इटली ने संघ के सदस्यों द्वारा आर्थिक सम्बन्धों के विच्छिन्न कर देने से संघ को छोड़ दिया। किस प्रकार १६३३ की निरस्त्रीकरण समस्या में जर्मनी ने संघ को छोड़ा—इसका अध्ययन हम आगे करेंगे। १६२८ में

संघ इना दुर्बल हो गया था कि आस्ट्रिया का जर्मनी में विलय और चैकोस्लाविया के विभाजन मे हस्तक्षेप करने में पूर्णाशः असमर्थ हो गया। संक्षेप में शक्तिशाली राष्ट्रों की राजनैतिक समस्या के समाधान और साम्राज्यवादी नीति का नियंत्रण राष्ट्रसंघ के लिए असंभव था, क्यो कि इसके प्रमुख निर्माता ही परस्पर मे विरोध करते थे।

आदिष्ट प्रणाली—राष्ट्रसंघ के प्रतिश्रव में पराभूत राष्ट्र जर्मनी और तुर्की के उपनिवेशों में दुर्बल जातियों के संरक्षण के लिए संघ के तत्त्वावधान में आदिष्ट प्रणाली का प्रवर्त्तन किया। इन आदिष्ट प्रदेशो को तीन भागों में बांटा गया था-प्रथम श्रेणी के प्रदेशों में सीरिया, पैलेस्टीन इंग्लैण्ड को दिये गये। शेष उक्त स्थानो में यहूदियों के राष्ट्रीय निवास स्थान बनाने की आज्ञा दी गई। अरब के एक अंश मक्का और मदीना को स्वाधीन हैजाज राज्य घोषित किया गया। संघ का निर्णय था-"प्रथम श्रेणी के प्रदेशो पर आदिष्ट राष्ट्र तभी तक अधिकार रखेंगे-जब तक कि वे स्वावलंबी न हो जायेंगे"। द्वितीय श्रेणी के प्रदेशो में दास प्रथा का अवसान, गुप्त अस्त्र शस्त्र निर्माण का प्रतिबन्ध, सैन्य संगठन का अनधिकार व संघ के अन्य सदस्यों को समान व्यावसायिक सुविधाऐं करने का अदेश संघ ने आदिष्ट राष्ट्रों को दिया था। इस श्रेणी के जर्मन उपनिवेश पूर्व अफ्रीका इंग्लैण्ड को, कंगो पुर्त्तगाल को, पश्चिम अफ्रीका के कैमेरून और तोगोलैण्ड इंग्लैड और फ्रांस में विभाजित किये गये। तृतीय श्रेणी के प्रदेश दक्षिण पश्चिम अफ्रीका 'आदिष्ट राष्ट्र संयुक्तदल' दक्षिण अफ्रीका, एवं प्रशान्त महासागर के जर्मन द्वीप आस्ट्रेलिया न्यूजीलैण्ड और जापान को दिये गये। इस श्रेणी के अधि-वासियों को स्वायत्तशासन के अयोग्य समझ कर अनिर्दिष्ट

काल के लिए आदिष्ट राष्ट्रों को पूर्ण अधिकार दिये गये। राष्ट्रसंघ प्रतिवर्ष आदिष्ट शक्तियों से उपर्युक्त स्थानों का पूर्ण विवरण लेता था। परन्तु इनकी कार्यक्रमों की मित्रता के साथ समालोचना करने की ही इसे क्षमता थी, क्योंकि ये आदिष्ट प्रदेश गुप्त-संधियों द्वारा प्रथम महायुद्ध के समय ही निर्णीत हो चुके थे। राष्ट्रसंघ ने इनका विभाजन नहीं किया था, इसीलिए वह किसी को अधिकार-च्युति के लिए बाध्य भी नहीं कर सकता था।

(ख) क्षतिपूर्ति और आर्थिक संकट

प्रथम काल—(१९१९ से १९२३)

हम देख चुके हैं कि भरसालिस संधि में मित्रराष्ट्रों ने जर्मनी से १५ अरब रुपिया क्षतिपूर्ति के रूप में १ मई १९२१ पर्यन्त लेना निश्चित किया था। पूर्ण क्षतिपूर्ति का निर्णय एक विशेष आयोग पर छोड़ा गया था। जर्मनी ने १९२१ तक क्षतिपूर्ति को कोयला, पशु इत्यादि वस्तुओं के विनिमय के माध्यम से पूर्ण करने का वर्तालाप १९२० में प्रारम्भ किया था। स्पा-सम्मेलन में (जुलाई) जर्मन प्रधानमन्त्री और विदेशमन्त्री महायुद्ध के अनन्तर प्रथम बार मित्रसंघ के साथ समान रूप से सम्मिलित हुए और कोयले के विनियम से क्षति पूर्ण करने का निश्चय किया। फ्रांस को ५२, इंग्लैण्ड को २२, इटली को १० बेल्जियम को ८ प्रतिशत व शेष कोयला अन्य मित्रराष्ट्रों में विभाजित करने का निर्णय हुआ था। परन्तु नगद रुपिया लेना एक जटिल समस्या थी। मार्च १९२१ में जर्मनी द्वारा प्रथम क्षति-पूर्ति नहीं करने के कारण मित्रराष्ट्रों ने सलडाल्फ, ड्विसवर्ग रूरोठ आदि पर (पूर्व राइन में) अधिकार किया। २७ अप्रैल को एक विशेष संधि के अनुसार क्षति-पूर्ति आयोग ने जर्मनी

की ८० अरब क्षति के अंक का निर्धारण किया व इसे तीन श्रेणियों के शर्तनामों में बांटा गया। दो तृतीयांश ऋण को (५३ अरब) अनिर्दिष्ट काल के लिए स्थगित रखा गया। अवशिष्ट अंश (२७ अरब) जर्मनी से एक अरब तीस करोड़ रुपया प्रतिवर्ष व २० करोड़ निर्यात सामग्री के मूल्य के रूप में वसूल करने का निश्चय हुआ। जर्मनी ने इसे स्वीकार किया था एवं अगस्त में ६५ करोड़ रुपया चुका दिया था। यद्यपि तीन वर्ष तक के लिए यही अन्तिम नगद् रुपया था। १९२० के मध्य से ही जर्मनी में क्रमागत आर्थिक संकट हो रहा था एवं इस समय एक पौंड के विनिमय मे सहस्राधिक जर्मन मार्क प्राप्त हो रहा था। अर्थ-विशेषज्ञों ने बताया कि ऐसी परिस्थिति मे जर्मनी द्वारा नकद् क्षति-पूर्ति असम्भव है। जर्मनी ने दो वर्ष के लिए नगद भुगतान स्थगित रखने का अनुरोध किया-जिसका समर्थन इंग्लैण्ड ने किया। परन्तु फ्रांस की जनता ने इसे बहाना मान कर अस्वीकृत किया। फ्रांसीय प्रधानमन्त्री पेंकारे ने क्षति-पूर्ति को वसूल करने के लिए जर्मनी के उर्वर प्रदेश रूर-जहां जर्मनी का ८० प्रतिशत लोहा, कोयला व स्टील उत्पन्न होता है-पर अधिकार का प्रयत्न किया। दिसम्बर १९२२ में जर्मनी सामग्री देने में भी असमर्थ रहा। क्षति-पूर्ति आयोग ने जर्मनी पर स्वेच्छाकृत अवहेलना का आरोप लगाया एवं भरसालिस की संधि के अनुसार जर्मनी पर उचित कार्यवाही करने का परामर्श दिया। ११ जनवरी १९२३ को फ्रांस ने इसी संधि के अनुरूप रूर पर अधिकार किया-जर्मन प्रशासन ने शान्ति पूर्ण प्रतिरोध की नीति का अवलम्बन कर नगद् व सामग्री का भुगतान भी (जो थोड़ा दिया जा रहा था) बन्द कर दिया। इंग्लैण्ड ने फ्रांस के इस एकाकी अधिकार को संधि-भंग और निमित्त मात्र बताकर इसकी तीव्र निन्दाएँ कीं। रूर की अधिकृति से जर्मनी का

आर्थिक जीवन स्थिर हो गया एवं सेना रखने का फ्रांस को जो खर्च करना पड़ रहा था-वह भी रूर के कोयले आदि से पूर्ण नहीं उतर सका। जर्मनी पूर्ण दिवालिया हो गया। सितम्बर १९२३ में जर्मनी के नवीन प्रधान मन्त्री स्ट्रेसमैन ने प्रतिरोध के अवसान की घोषणा की, परन्तु संकट अत्यन्त गम्भीर था। युक्तराष्ट्र के प्रस्ताव से फ्रांस, वेल्जियम, इटली व ब्रिटिश ने एक विशेषज्ञों की समिति आर्थिक समस्या के समाधान के लिए युक्त-राष्ट्र के सेनापति डावस की अध्यक्षता मे नियुक्त की-जिसको इतिहास मे "डावस-योजना" कहा जाता है।

द्वितीय काल-(१९२४ से ३१)—फ्रांस की जनता वह समझ गई कि जर्मनी अब क्षति-पूर्ति देने में सर्वथा असमर्थ है और रूर का अधिकार इतना मँहगा है कि इससे कोई आ-र्थिक लाभ नहीं है। मई १९२४ में पेंकारे मन्त्रिमण्डल का पतन हुआ व नवीन निर्वाचन मे प्रधान मंत्री हैरियट ने रूर परित्याग की घोषणा की।

डावस-योजना—जनवरी १९१४ में जर्मन विदेश मन्त्री स्ट्रेसमैन, फ्रांसीय प्रधान मन्त्री हैरियट और इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री रेम्शे मेग्डोनाल्ड की सहायता से डावस-समिति ने तीन मास में ही अपनी योजना को प्रस्तुत कर दिया। डावस के मत में क्षतिपूर्ति एक प्रकार का ऋण है। इसे ऋण की दृष्टि से देखना चाहिए—दंड के रूप से नहीं। प्रतिवर्ष जर्मनी से इसकी वसूली के लिए निम्न प्रकारो का परामर्श दिया— (१) जर्मनी को आ-र्थिक-सार्वभौमता प्रदान करने के लिए रूर को रिक्त करना चाहिए। (२) जर्मनी में एक केन्द्रीय बैंक—जिसे ५० वर्ष तक कागजी-मुद्रा प्रवर्त्तन का अधिकार रहेगा—७ जर्मनी और ७ विदेशी विशेषज्ञों के तत्वावधान से क्षतिपूर्ति के कोष के लिए स्थापित किया जाये। (३) प्रथम वर्ष जर्मनी को एक अरब

ना होगा एवं धीरे धीरे चार वर्ष के बाद यह मात्रा
करोड़ प्रतिवर्ष तक पहुँच जायेगी। (४) जर्मनी के
ान के साथ साथ यह मात्रा बढ़ाई व विपरीत
ाई जा सकेगी। (५) अन्तर्राष्ट्रीय ऋण ८० करोड़
शीघ्र चुकाना चाहिए। (६) जर्मनी का उद्योग
र, रेल्वे का लाभ, मद्य, तम्बाकू, चीनी आदि का
ूर्ति के लिए सुरक्षित रहेगा।
योजना की अनेक विशेषताएँ थीं। प्रो०कार के शब्दों
जर्मन-क्षतिपूर्ति को इस योजना ने केवल निर्दिष्ट ही
अपितु एक ऐसे वातावरण की सृष्टि की—जिससे
र क्षति देना सम्भव हो गया—क्योंकि आर्थिक
। एवं क्षेत्र के हस्तान्तरण को इसने स्थगित कर
इसने ऋणदाताओं के ऋण वसूली की मात्रा का
व क्षतिपूर्ति की समस्या को राजनैतिक वाद-विवाद
एक सामान्य व्यापारिक ऋण बना दिया व अब
का हल आयोग पर नहीं, परन्तु क्षतिपूर्ति के विशेष
तिनिधि द्वारा ही करने का निर्णय दिया। इसमें
भी थी—यद्यपि इसने वार्षिक क्षति को नियत
र न इसने इसकी अवधि ही व न जर्मनी पर कितना
की मात्रा ही का निर्देश किया था। जर्मनी के
आर्थिक उन्नति के साथ साथ क्षति की मात्रा में वृद्धि
आशंका थी। अर्थ के संचय के लिए जर्मनी को
ही नहीं था, क्योंकि वह विदेशों को देना होता था।
परिणाम से अग्रिम पंचवर्षीय काल में जर्मनी ने
दि से विपुल ऋण लेकर उपर्युक्त ऋण का परि-
जिसके करण पुनः आर्थिक संकट का उदय हुआ।
मेलन में डावस-योजना को मान्यता दी गई व

जर्मनी ने भी इसे स्वीकृत किया। १९२४ से २८ तक के काल तक जर्मनी ने कुल ५ अरब से भी अधिक रुपया ऋण का चुकाया। १९२८ में राइनलैण्ड को खाली करने की समस्या के साथ साथ १९२१ की निर्दिष्ट (१५ अरब रुपये) क्षतिपूर्त्ति के संशोधन के लिए अमेरिका के अर्थ-विशेषज्ञ यंग की अध्यक्षता में ११ फरवरी १९२९ को पेरिस में पुनः सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। इतिहास मे यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन "यंग-योजना" के नाम से विख्यात है।

यंग-योजना—(१) इस योजना ने सम्पूर्ण क्षति-पूर्त्ति को तीन हजार चार सौ करोड़ जर्मन स्वर्ण मार्का निर्दिष्ट किया। (२) इस क्षति को ५८॥ वर्ष में पूर्ण करने की अवधि दी गई—१ सितम्बर १९२९ से मार्च प्रथम १९८८ तक—इसमें ५ प्रतिशत सूद भी सम्मिलित था। (३) १० वर्ष के लिए सामग्री के विनिमय द्वारा क्षति को पूर्ण करने की भी मान्यता दी गई। विशेष आर्थिक संकट व गंभीर समय में क्षतिपूर्ति को स्थगित रखने का भी निश्चय किया गया। (४) वार्षिक क्षति ऋण-दाताओं को प्रथम १७ वर्ष के लिए दो अरब देना निश्चय हुआ, अवशिष्ट २२ वर्ष में १ अरब ८० करोड़ रुपया वसूल करने की व्यवस्था की गई। संक्षेप में पुनः क्षतिपूर्ति और युद्धकालीन ऋण को सम्मिलित किया गया एवं प्रतिवर्ष के ७० करोड़ रुपयों में से ५२ करोड़ रुपया फ्रांस का अंश नियत किया गया। रेल्वे और औद्योगिक राजस्व के लेने के डावस-योजना के परामर्श को अमान्य किया गया व वैदेशिक हस्तक्षेप से जर्मनी को मुक्त किया गया। राइनलण्ड से मित्र सेना का अपसारण भी स्वीकृत हुआ। (५) जर्मनी के आर्थिक सुधार के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय बैंक की स्थापना का निश्चय हुआ—जो कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग एवं आर्थिक सम्बन्ध को बढ़ायेगी।

यंग-समिति के विवरण में कहा गया था कि "प्रस्तुत योजना डावस-योजना को पूर्ण करती है" । ऋण को एक तृतीयांश न्यून कर दिया गया एवं जर्मनी के ऋण को निर्धारित किया गया । २० जनवरी १९३० में विभिन्न राष्ट्रों ने इस योजना को मान्यता दी-विशेषतः फ्रांस जर्मनी, इंग्लैण्ड, बेल्जियम, इटली व जापान । जर्मन अर्थ मन्त्री डा० साचट ने यंग-योजना के प्रतिवाद में पदत्याग किया, परन्तु सर्वजनमत ग्रहण के अनन्तर-जर्मन निवासियों की सम्मति से इस योजना (१७ मई) को क्रियान्वित किया गया एवं जून मे मित्र सेना ने सम्पूर्ण रूप से जर्मनी को छोड़ दिया ।

तृतीयकाल (१९३१ से १९३३) सितम्बर १९३० के जर्मन लोकसभा के निर्वाचन में राष्ट्रीय समाजवादी दल के नेता हिटलर ने यंग-योजना का पूर्ण विरोध किया । इसी समय एक अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संकट का उदय हुआ । ब्रिटेन ने इसके परिणाम से उन्मुक्त व्यवसाय नीति का परित्याग व स्वर्ण-मुद्रा के प्रचलन को बन्द किया । इस संकट के विभिन्न कारण थे । प्रथमतः युक्तराष्ट्र ने विश्व के स्वर्ण को संचित कर लिया-इस स्वर्ण के कृत्रिम अभाव से आशातीत रूप से मूल्य का ह्रास होने लगा । द्वितीय आतंकित यूरोपीय राष्ट्रों ने स्वर्ण के निर्यात पर १९३१ मे अमेरिका चले जाने के भय से प्रतिबन्ध लगा दिया था । तृतीयतः १९१४ और १८ के युद्ध के भूतपूर्व आर्थिक ध्वंस ने व्यवसाय की स्वाभाविक गति को रुद्ध कर दिया था-जिसकी पूर्ति अबतक भी नहीं हो सकी । पुनस्स्थापन के अधिक व्यय, क्षतिपूर्ति के लिए सार्वजनिक निर्माण, कर की वृद्धि, सार्वजनिक सट्टे का प्रभाव आदि ने सर्वत्र ही बेकारी अभाव और आर्थिक संकट को जन्म दिया था । आन्तरिक उत्पादन की वृद्धि से मूल्य का अद्धाधिक आकस्मिक ह्रास हो

गया एवं अन्तर्राष्ट्रीय आंकड़ों के अनुसार इस समय पहले से तिगुनी बेकारी फैली हुई थी। इस विश्व व्यापी संकट के प्रभाव ने जर्मनी की स्थिति को भी अतिशय डांवाडोल बना दिया। आय से व्यय अधिक बढ़ गया एवं जर्मनी का निर्यात एक तृतीयांश न्यून हो गया। १९३२ के बजट में ६० करोड़ रुपयों का घाटा था। इस समस्या के हल के लिए एक ६४ राष्ट्रों का विश्व आर्थिक सम्मेलन का आवाहन लंदन में (१९३३) किया गया। इस सम्मेलन मे बेकारी, अभाव और दीवालिया पन को दूर करने के लिए स्वर्ण मुद्रा के स्थान पर विविध राज-मुद्राओं का परिचालन मूल्य की वृद्धि के लिए किया गया। व्यावसायिक उत्कर्ष के लिए संरक्षण नीति के स्थान पर उन्मुक्त व्यवसाय की नीति को अपनाया गया। संक्षेप में सम्मेलन में युक्त राष्ट्र के राज्य-सचिव का डिल्हन ने उग्र आर्थिक राष्ट्रीयता के विरोध मे "अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग" की नीति को ग्रहण करने के लिए प्रमुख राष्ट्रों से अनुरोध किया। यद्यपि इतिहास में इस सम्मेलन को पूर्ण असफल कहा गया है, परन्तु इसकी चार देन हैं। (१) अन्तर्राष्ट्रीय कर-समता, (२) आठ चांदी के धनी व संग्रहकर्ता प्रमुख राष्ट्रों द्वारा चारवर्ष के लिए चांदी के अवरोध की मूल्य वृद्धि के उद्देश्य से प्रतिज्ञा, (३) अन्तर्राष्ट्रीय और प्रत्येक राष्ट्रीय बैंकों का निकटतम सम्बन्ध, (४) अन्तर्राष्ट्रीय ऋणी व ऋणदाताओं में प्रत्यक्ष वार्तालाप द्वारा समझौते की व्यवस्था।

इस काल मे जर्मनी की अवस्था में आमूल परिवर्त्तन हुआ। आर्थिक संकट के उद्भव से युक्तराष्ट्र के राष्ट्रपति हूवर ने विश्व के आर्थिक सुधार के लिए एक वर्ष तक ऋण को स्थगित करने का अनुरोध किया (१ जुलाई १९३१ से ३० जून १९३२ तक के लिए) एवं स्थगित ऋण की पूर्ति के लिए १९३३ के आगे दश

समान मात्राएँ निर्धारित कीं। इस घोषणा द्वारा जर्मनी के दीवालियापन का सर्वत्र प्रचार होगया एवं जनता में एक प्रकार के चैतन्य का राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा के लिए उदय हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय बैंक ने ३ मास के लिए जर्मनी को आर्थिक सहायता दी और स्थगितकरण की सीमा को एक साल तक के लिए और भी बढा दिया गया। जर्मन मन्त्री ब्रूनिंग ने घोषणा की कि "इच्छा रहते हुए भी जर्मनी यंग-योजना द्वारा निर्दिष्ट क्षति को पूरा नही कर सकता"। १६ जून १६३२ में जर्मनी, बेल्जियम, फ्रांस, इटली और जापान के प्रतिनिधियों ने लउसाने के सम्मेलन में तीन अरब रुपये वसूल करने का निश्चय किया तथा यंग-योजना के निर्दिष्ट अंश को ६० प्रतिशत न्यून कर दिया गया। परन्तु इस समझौते को प्रत्येक राष्ट्र ने व्यक्तिगत समन्वय कह कर अस्वीकृत किया। यंग-योजना को ही व्यावहारिकता देने की शीघ्रता की गई। किस प्रकार हिटलर के उदय से इस ऋण को अमान्य किया गया—इसका अध्ययन इस जर्मनी के उत्थान में कर चुके हैं।

चतुर्थ काल—(१६२३ से १६३६) इस काल को हम आर्थिक पुनर्गठन का काल कह सकते हैं। समग्र विश्व, विशेषतः यूरोप में अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री और सहयोग नीति द्वारा मुद्रा का मूल्य बढ़ा, व्यापार की वृद्धि हुई, बेकारी दूर हुई, परन्तु आर्थिक राष्ट्रीयवाद के रूप मे एक नवीन धारा का उदय हुआ। इतिहास मे इसको "ओटार्की" अथवा राष्ट्रीय आर्थिक आत्म-निर्भरता का युग कहा जाता है। प्रथमतः प्रत्येक राष्ट्र ने आयात की मात्रा को नियत किया। द्वितीयतः कर की वृद्धि कर व्यावसायिक प्रतियोगिता को बंद किया। तृतीयतः आदान-प्रदान के नियमो का प्रचलन किया गया। चतुर्थतः प्रत्यक्ष वस्तु विनिमय से मुद्रा का प्रचलन न्यून हो गया। पंचमतः एक राष्ट्र

ने अन्य राष्ट्र की सोने, चांदी आदि के आयात निर्यात पर अनुमति-पत्र के बिना प्रतिबंध लगा दिया। अर्थात् वैदेशिक व्यवसाय प्रशासन के अधीन हो गया। परिणामतः अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय अचल और अटल हो गया। राजनैतिक क्षेत्र में सर्वाधिकारवाद के उत्थान से आर्थिक संघर्ष अनिवार्य हो गया। १९३६ में हिटलर ने चतुर्वर्षीय योजना में "मक्खन के स्थान पर बन्दूक" इस नारे को प्रमुख स्थान दिया एवं घोषणा की कि "शांति के समय आर्थिक सम्बन्धों के विच्छेद से जर्मनी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा एवं युद्ध के समय यदि तटावरोध भी किया गया, तो जर्मनी ३० वर्ष तक युद्ध कर सकता है"। जर्मनी पूर्ण-रूप से आत्म-निर्भर था। मुसोलिनी ने आर्थिक नीति को साम्राज्य-वाद की पृष्ठ-भूमि बताया था। सोवियट रूस नवीन औद्योगिक क्रान्ति और आर्थिक उत्कर्ष के मार्ग पर चल रहा था। आर्थिक राष्ट्रीयता ने ही द्वितीय महायुद्ध की रूपरेखा तैयार की।

ग—सुरक्षा—समस्या

यह भी राष्ट्र संघ का एक जटिल प्रश्न था। विजयी राष्ट्रों ने पराजित राष्ट्रों को नियन्त्रित कर इस सुरक्षा को भिन्न भिन्न रूप से ग्रहण किया। यह तो स्वीकृत करना ही पड़ेगा कि एक राष्ट्र की शक्ति-वृद्धि से दूसरे की सुरक्षा संदिग्ध हो जाती है। विजयी फ्रांस ने महायुद्ध के अनन्तर जर्मनी के विरुद्ध सुरक्षा के लिए २८ जून १९२९ को इंग्लैण्ड और युक्तराष्ट्र से पारस्परिक सहायता-संधि की। यद्यपि युक्तराष्ट्र की मुख्य-समिति ने इस संधि को अमान्य किया था। प्रस्तावित यह त्रिराष्ट्रीय गुट यूरोप में छोटे छोटे राष्ट्रों को संगठित होने का प्रेरक हुआ। १९२० में फ्रांस और बेल्जियम ने पारस्परिक सहयोग की गुप्त संधि की।

१६२१ में फ्रांस और पोलैण्ड की संकटकालीन पारस्परिक सहयोगात्मक संधि हुई। १६२२ मे इंग्लैण्ड और फ्रांस की १० वर्ष के लिए प्रत्यक्ष जर्मन आक्रमण के प्रतिरोध के उद्देश्य से संधि हुई। परन्तु निरस्त्रीकरण व क्षतिपूर्ति की समस्या ने इंग्लैण्ड और फ्रांस के समझौते को थोडे समय के लिए स्थगित कर दिया। १६२४ में फ्रांस ने चैकोस्लोवाकिया और १६२६-२७ मे रूमानिया व जुगोस्लाविया के साथ सुरक्षा संधि की। १६२०-२१ में चैकोस्लोवाकिया, जुगोस्लाविया और रूमानिया ने अपनी स्वाधानता और भूमि के संरक्षण के लिए "क्षुद्र-गुट" की स्थापना की। १६२२ में इसी में पोलैण्ड भी मिल गया एवं पारस्परिक सहयोग के लिए इनने समय समय पर सम्मेलन आमन्त्रण की व्यवस्था की।

फ्रांस के नवीन आधिपत्य-विस्तार के प्रयत्न ने सोवियट संघ और फासिस्ट इटली में आतंक का संचार किया। अप्रेल १६२२ मे ३४ राष्ट्र जिनोवा में आर्थिक समस्या के हल के लिए मिले। रूस और जर्मनी ने यहां रैपेलो की संधि पर हस्ताक्षर किये-जिसके अनुसार जर्मनी ने सोवियट प्रशासन को मान्यता दी, व्यावसायिक संबन्ध स्थापित किये व पारस्परिक ऋण के दावो को रद्द कर दिया। इस संधि का समाचार पाते ही जिनोवा का अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आतंकित व भंग हो गया। सोवियट १६२४ में जेनेवा में पुनः अन्तर्राष्ट्रीय संधि हुई-जो इतिहास में "जेनेवा-उपसंधि" के नाम से प्रसिद्ध है। राष्ट्र संघ के प्रतिश्रव में दो महान् दुर्बलताएँ थीं-प्रथम आक्रमण का विश्लेषण नहीं किया गया था व द्वितीय आक्रमणात्मक राष्ट्रो के दण्ड का कोई प्रकार लिखित नही था। इन त्रुटियों के संशोधन के लिए पारस्परिक सहयोग-संधि की गई-जिसके अनुसार आक्रमण को एक अन्तर्राष्ट्रीय अपराध घोषित किया गया व युद्ध के निवारण

के लिए प्रथमतः अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय अथवा किसी विशेष पंचायत-समिति द्वारा निर्णय की अनिवार्यता की गई। पंचायत समन्वय के समय सैन्य सगठन निषिद्ध किया गया। यदि कोई राष्ट्र संघर्ष का शान्ति-पूर्ण समझौता न चाहे, और पंचायत के निर्णय को अमान्य करे, तो उसे आक्रमणकारी राष्ट्र समझा जायेगा व उससे आर्थिक सम्बन्ध विच्छेद कर दिया जायगा। युद्ध का व्यय आक्रमणकारी राष्ट्र को ही वहन करना पडेगा, किन्तु उसकी भूमि पर अधिकार नहीं किया जायगा। अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में अस्त्र शस्त्र-प्रतियोगिता को घटा दिया जायेगा। इस उपसंधि की कोई भी शर्त तब तक क्रियान्वित नहीं होगी-जब तक कि अस्त्र शस्त्र संचय में आंशिक न्यूनता न हो। यद्यपि छोटे छोटे राष्ट्रों ने इसको स्वीकृत किया, परन्तु श्रमिक दल की पराजय व संकीर्णवाद की विजय से इंग्लैण्ड ने इस पर दो आपत्तियां कीं। प्रथमतः युक्तराष्ट्र-जो कि राष्ट्रसंघ में सम्मिलित नहीं है-से किसी भी राष्ट्र का संघर्ष होने से पंचायत का निर्णय किस प्रकार प्रयोग में आयेगा। द्वितीयतः इंग्लैण्ड को पुलिश के समान शांति के लिए विशेष निरीक्षण करना पडेगा। इसीलिए यह संधि केवल कागज तक ही सीमित रह गई।

१९२५ में डावस-योजना के परिणाम से फ्रांस और जर्मनी के पारस्परिक सम्बन्धों में प्रगति हुई। फ्रांस के प्रधानमन्त्री ब्रियाण्ड और जर्मनी के विदेशमन्त्री स्ट्रेसमैन ने इंग्लैण्ड के विदेशमन्त्री चेम्बरलैन के साथ मैत्री-स्थापना का वार्तालाप प्रारम्भ किया एवं स्विट्जरलैण्ड के लोकार्नो स्थान में ४ अक्टूबर संधि पर हस्ताक्षर किये? इसकी निम्न-शर्तें थी। (१) पारस्परिक सुरक्षा के लिए इंग्लैण्ड, जर्मन, फ्रांस, बेल्जियम और इटली ने सीमान्त की तात्कालिक स्थिति को मान्य किया। (२) जर्मनी,

बेल्जियम और फ्रांस ने एक दूसरे के विपरीत राष्ट्र-संघ की सम्मति के बिना युद्ध न करने की प्रतिज्ञा की। (३) पारस्परिक विवादों का कूटनीतिक वार्तालापों से शांति-पूर्ण पद्धति पर निर्णय किया जायेगा। (४) जर्मनी को राष्ट्र-संघ व समितियों में महान् शक्ति स्वीकृत कर समान आसन दिया गया। (५) इंग्लैण्ड और इटली ने प्रतिज्ञा की कि हस्ताक्षरित राष्ट्रों में तीन यदि संधि को भंग करें, तो ऊपर तीन को वे सामरिक सहायता देंगे।

ब्रियाण्ड के शब्दों में "यह संधि एक महत्त्वपूर्ण शांति-योजना थी, यद्यपि पारस्परिक विरोध व मनोमालिन्य समय समय पर होना स्वाभाविक है, परन्तु बन्दूक और तोपों के स्थान में मध्यस्थता, [illegible] युत, शान्ति और समझौता ही भविष्य में फ्रांस और जर्मनी के सम्बन्धों का संचालन करेगा"।

केलाग-ब्रियाण्ड संधि—(१९२८) अमेरिका के राज्य-सचिव मि० केलाग् ने ब्रियाण्ड के परामर्श से (जो कि अमेरिका के विद्वान् प्रोफ़ेसर शाटवेल्व से संकेतित हुआ) प्रस्तावित किया कि युद्ध के निषेध के लिए संसार के समग्र राष्ट्रों को यह घोषणा करनी चाहिए कि "युद्ध ही राष्ट्रीय उन्नति का एकमात्र अस्त्र है' हम अब इस नीति का परित्याग करते हैं। केलाग् ने निश्चित कथन था कि "केवल इस सिद्धान्त की स्वीकृति हो— इसका पालन राष्ट्र के विश्वास पर छोड़ना पड़ेगा"। असंतुष्ट ब्रियाण्ड ने युद्ध-प्रतिरोध की इस अपर्याप्त व्यवस्था का समर्थन किया। २७ अगस्त १९२८ को इसी के फलस्वरूप युद्ध निवारण के लिए १५ राष्ट्रों ने केलाग्-ब्रियाण्ड संधि पर हस्ताक्षर किये— इसकी प्रथम शर्त यह थी—"अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष और विवाद के निर्णय व राष्ट्रीय संघर्ष के समाधान के लिए युद्ध वांछनीय साधन नहीं है। (२) शान्तिपूर्ण वार्ता द्वारा प्रत्येक मनोमालिन्य

व कलह का निर्णय होगा। (३) यदि एक भी हस्ताक्षरित राष्ट्र इसे भंग करे, तो अन्य राष्ट्रीय रक्षा के लिए पूर्ण स्वतन्त्र होगा। चार वर्ष के काल मे ६२ राष्ट्रों ने इस संधि को माना था। इस प्रकार आक्रमणात्मक युद्ध का अवसान हो गया—यद्यपि रक्षात्मक युद्ध अब भी चल रहे थे।

१९३३ में इटली, फ्रांस, जर्मनी व इंग्लैण्ड ने अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, संधि-संशोधन तथा निरस्त्रीकरण के लिए रोम मे १० वर्ष की (जुलाई) संधि पर हस्ताक्षर किये। साम्यवादी रूस ने केलाग संधि को एक पूंजीवादी संस्थान समझ कर राष्ट्र के संरक्षण के लिए तुर्की, अफगानिस्तान, लिथुवानिया, फारस, ईरान व जर्मनी से रक्षणात्मक संधि की। जुलाई में लंदन समझौता द्वारा चैकोस्लोवाकिया पोलैण्ड आदि छोटे छोटे राष्ट्रों ने परस्पर सहयोग स्थापित किया—जिसकी शर्तें उपर्युक्त संधि के अनुसार रखी गईं।

निरस्त्रीकरण—प्रथम महायुद्ध के पश्चात् प्रमुख राष्ट्रों ने शान्ति-स्थापना के लिए स्वयं को पूर्ण निरस्त्र नहीं बनाया था। फ्रांस ने अपनी सेना का क्षणिक काल तीन वर्ष से १८ महीने ही रख दिया था एवं पेरिस की १९१९ की शान्ति-संधि द्वारा बुल्गेरिया, जर्मनी और आस्ट्रिया हंगेरी की सेना को अत्यन्त अल्प व अन्तर्राष्ट्रीय सामरिक प्रतियोगिता के प्रतिरोध के लिए जर्मनी के अस्त्र-शस्त्रों को सीमित कर दिया गया था।

वाशिंगटन नौ-सम्मेलन—१२ नवम्बर १९२१ में नौ-शक्ति को सीमित करने के लिए युक्तराष्ट्र, इंग्लैण्ड, जापान, फ्रांस और इटली का एक सम्मेलन वाशिंगटन में हुआ। १० वर्ष के लिए इसमें युद्ध-जहाज प्रस्तुत करने की मात्रा नियत की गई—इंग्लैण्ड ५, युक्तराष्ट्र ५, जापान ३, फ्रांस और इटली

१०६, ७। ये उपर्युक्त पंच शक्तियां ६ फरवरी १६२२ में एक विशेष नौ-शस्त्र-सीमित संधि द्वारा उपर्युक्त सिद्धान्त पर सहमत होगई और दशवर्ष के लिए जहाज निर्माण कार्य को संकीर्ण कर दिया गया।

जेनेवा सम्मेलन—१० फर्वरी १६२७ को युक्तराष्ट्र के राष्ट्रपति कुलीज ने इंग्लैण्ड, जापान, फ्रांस और इटली को जेनेवा में नौ-शक्ति संबन्धी वार्तालाप के लिए आमन्त्रित किया। इंग्लैण्ड और जापान ने इसको स्वीकार व फ्रांस और इटली ने इसे अस्वीकार किया। ३० जून १६२७ को यह त्रिशक्ति-संमेलन—जिसे इतिहास में "कुलीज-सम्मेलन" कहा जाता है—जेनेवा में हुआ—जिसने प्रत्येक राष्ट्र के क्रूइजार (जहाज) निर्माण की मात्रा को नियंत्रित करने का असफल प्रयत्न किया। इसके पश्चात् प्रत्येक दश हजार टन के १५ बड़े क्रूइजार बनाने का युक्त-राष्ट्र ने निश्चय किया एवं २१ जनवरी १६३० में लंदन नौ-सम्मेलन मे नौ शक्ति के आंशिक नियंत्रण के लिए एक सन्धि की एवं वाशिंगटन-सम्मेलन की प्रस्तावों की अवधि और भी पांच वर्ष तक के लिए बढ़ा दी गई। ३ फर्वरी १६३२ में राष्ट्र-संघ के तत्वावधान में एक साधारण निरस्त्रीकरण सम्मेलन हुआ—जिसमें विभिन्न राष्ट्रों के २३२ प्रतिनिधि सम्मिलित थे। संघ के द्वारा एक अन्तर्राष्ट्रीय सैनिक संघटन करने के एक फ्रांसीय प्रस्ताव का विरोध जर्मनी, इग्लैण्ड और अमेरिका ने किया, परिणामतः यह प्रयत्न असफल हुआ। यद्यपि यह संधि प्रत्येक राष्ट्र के सैनिक, साधन व सामरिक व्यय के निर्दिष्ट करने के लिए प्रस्तुत की गई थी, परन्तु अंत में फ्रांस और जर्मनी की विरोधिता से इस सम्मेलन में कोई भी प्रस्ताव स्वीकृत न हो सका। संघ ने १६२५ में भू-सेना को सीमित करने के लिए एक विशेषज्ञों की समिति को नियुक्त किया था, परन्तु सेना, पुलिस, संर-

यूरोप में पुनः एक सार्वजनिक आतंक और आत्म-शक्ति में अविश्वास का प्रारम्भ हुआ। राष्ट्र-संघ इस के समस्या के समाधान में पूर्णशः असफल हुआ। १९३१ में हम देख चुके हैं कि किस प्रकार दूर-प्राच्य मे जापान ने मंचूरिया पर अधिकार किया था और दो वर्ष पश्चात् "लीटन-समिति" के विवरण पर संघ ने जब मंचूरिया खाली करने का आदेश दिया तो जापान ने संघ त्याग किया। १९३६ में जापान ने जर्मनी के साथ साम्यवाद के विरुद्ध सिद्धान्तवादी संधि की। नवम्बर १९३७ में इटली इसमें मिला व रोम-बर्लिन-टोकियो मैत्री द्वारा "धुरि-राष्ट्र" की स्थापना हुई। जुलाई में जापान ने चीन पर आक्रमण किया एवं १९४५ तक राष्ट्रीयवादी चीन जापान के साथ क्रमागत युद्ध करता रहा।

२६ जनवरी १९३४ मे जर्मनी ने पोलैण्ड के साथ १० वर्ष के लिए रक्षणात्मक संधि की। फ्रांस के साथ पोलैण्ड का संबंध विच्छिन्न करने के उद्देश्य से जर्मनी ने भूमि का दावा नहीं किया, परन्तु दो वर्ष के पश्चात् पोलैण्ड को यह प्रतीत हुआ कि जर्मनी की नीति का पोलैण्ड पर प्रभुत्व स्थापना ही मूल उद्देश्य है, क्योंकि रूमानिया, आस्ट्रिया और चैकोस्लोवाकिया मे जर्मनी नाजीदल को संगठित कर क्रमशः अपना आधिपत्य जमा रहा था। १९३५ में फ्रांस ने जर्मनी को सार जिला लौटा दिया था। जर्मन ने आक्रमणात्मक नीति को अपनाया। इसी समय इटली ने ऐबीसिनिया को हस्तगत किया व राष्ट्र संघ के प्रमुख सदस्य आर्थिक अवरोध के अनन्तर भी इस समस्या को हल नहीं कर सके। अपने राज्य को छोड़ते समय ऐबीसीनिया के राजा ने कहा-"इतिहास और ईश्वर इस घटना को स्मरण करेंगे।" इसी प्रकार स्पेन में हम देख चुके हैं कि स्पेन के गृह-युद्ध में भी राष्ट्र-संघ निहस्तक्षेप की नीति का अवलम्बन कर शान्ति की

रक्षा में पूर्ण असमर्थ हुआ था। ३८ मास के गृह-युद्ध के अनन्तर स्पेन की राजधानी फ्रैंको के आधीन है। स्पेनीय गृह-युद्ध को चर्चिल ने "बारूद के भंडार के समक्ष एक चिनगारी कहा है"। हिटलर, आस्ट्रिया व हंगेरी को दखल करने के लिए पूर्ण तैयार हो गया था। मुसोलिनी के साथ साक्षात्कार कर इसने इटली की सामरिक सहायता प्राप्त की। १२ मार्च १९३८ को जर्मन-सेना ने आस्ट्रिया में प्रवेश किया व ९९ प्रतिशत जनता के मत से आस्ट्रिया जर्मनी में विलीन हो गया। इसके बाद हिटलर ने चैकोस्लोवाकिया के सूदेतान क्षेत्र को हस्तगत कर चैक-विरोधी प्रचार प्रारम्भ किया। परन्तु फ्रांस सोवियट संघ व ब्रिटेन, पोलैण्ड, रूमानिया व जुगोस्लाविया और चैकोस्लोवाकिया के संरक्षक थे, इसलिए इतने बड़े समूह के साथ संघर्ष करने को हिटलर तैयार न था। इसीलिए हिटलर ने मित्रता के मार्ग को श्रेय समझा।

म्यूनिश-समझौता—२८ सितम्बर १९३८ को इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री चैम्बरलैन ने चैक-मंत्रि परिषद् के वार्त्तालाप के पश्चात् म्यूनिश में हिटलर के साथ साक्षात्कार किया। इंग्लैण्ड और फ्रांस ने चैकोस्लोवाकिया को जर्मन आक्रमण के विपरीत रक्षा करने का आश्वासन दिया। दूरदर्शी हिटलर ने समय और परिस्थिति की गम्भीरता को देख कर इंग्लैण्ड के साथ समझौता कर लिया। इस समझौते पर इटली के मुसोलिनी, फ्रांस का दालादीयर, चेम्बरलैन और हिटलर ने हस्ताक्षर किये। इस संधि के अनुसार १ अक्टूबर से नौ दिन के मध्य जर्मनी को सूदेतान भूखंड को हस्तगत करने का अधिकार दिया गया, एक अन्तर्राष्ट्रीय आयोग अधिकृत प्रदेशों में जनमत ग्रहण और सीमान्त निर्धारण के लिए नियुक्त किया। अल्प-संख्यक पोलैण्ड और हंगेरी-निवासियों के संरक्षण की भी व्यवस्था की

गई व ब्रिटेन व फ्रांस ने चैकोस्लोवाकिया के आक्रमण के प्रतिरोध करने का पुनः आश्वासन दिया। इसके अतिरिक्त जर्मनी और इंग्लैण्ड ने स्थायी शान्ति के लिए पारस्परिक सहयोग की उपसंधि स्वीकृत की।

म्यूनिश समझौता चैक-राष्ट्रपति बैनेश के लिए मृत्यु-सन्देश था। उसने पद-त्याग किया और उत्तराधिकारी हाचा ने इस समझौते को मान्यता दी। इंग्लैण्ड मे प्रत्यावर्तन कर लोक-सभा के समक्ष भाषण देते हुए चेम्बरलन ने कहा—"इंग्लैण्ड को हिटलर के इस समझौते से चैकोस्लोवाकिया की रक्षा का श्रेय ही नहीं, अपितु शान्ति और सम्मान भी मिला है। हम विश्वास करते हैं कि हमारे जीवन मे यह समझौता स्थायी रहेगा"। ट्रूमैन के शब्दों में "यह समझौता हिटलर की आतंक-नीति की महान् विजय थी। यह संतुष्टीकरण नीति का चरम शिखर ही नहीं, परन्तु पाश्चात्त्य शक्ति के ध्वंस की एक सूचना थी, पोलैण्ड ने चैक के २ लाख ४० हजार व हंगेरी ने ५ हजार वर्ग मील क्षेत्र पर अधिकार किया। अन्तर्राष्ट्रीय-संरक्षण केवल कागज में ही लिपिबद्ध था। ६ दिसम्बर को फ्रांस और जर्मनी ने एक रक्षणात्मक संधि की—जिसके अनुसार जर्मनी यह विश्वास करने लगा कि पूर्व यूरोप मे फ्रांस हस्तक्षेप नहीं करेगा। त्रस्त इंग्लैण्ड यह मानने लगा कि साम्यवादी रूस और नाजीवादी जर्मनी में संघर्ष अवश्यम्भावी है। परन्तु म्यूनिश-समझौता ने फ्रांस और रूस का १९२५ का पारस्परिक सहयोग संधि का अवसान कर दिया व हिटलर को बल्कान, पोलैण्ड और डैन्यूब में आर्थिक प्रभुत्त्व स्थापित करने का अवसर दिया।

हिटलर यह विश्वास करने लगा कि पाश्चात्त्य राष्ट्रों को धमकी दे देकर दुर्बल कर दिया जायेगा और अन्त में सामरिक शक्ति मे उन्हे पराभूत कर देंगे। १४ मार्च १९३९ को हिटलर ने

चैक-राष्ट्रपति हाचा को बर्लिन आमन्त्रित कर के संरक्षण-राष्ट्र के रूप में चैक को स्वीकृत करने के पत्र पर हस्ताक्षर लेना चाहा, अन्यथा प्रातः ६ बजे से नाजी-सेना राजधानी प्राग को भस्म कर देगी। दुर्बल हाचा प्रतिवाद करते करते मूर्छित हो गया और आरोग्य के अनन्तर आक्रमण से केवल डेढ़ घंटा पूर्व उपर्युक्त पत्र पर उसने हस्ताक्षर कर दिये। १५ मार्च को प्रातः ६ बजे जर्मन-सेना ने प्राग को अधिकृत कर चैकोस्लोवाकिया को "संरक्षित-राष्ट्र" घोषित किया।

द्वितीय महायुद्ध की ओर—२१ मार्च को जर्मनी ने लिथुवानिया गणतन्त्र की राजधानी मेमेल को-जो कि १९२३ में संघ से प्राप्त हुई थी-अधिकृत कर जर्मनी मे विलीन किया। ७ अप्रैल १९३९ को इटली ने एक लाख सेना द्वारा बॅल्कान के क्षुद्र राष्ट्र एल्बेनिया को हस्तगत कर एड्रियाटिक समुद्र में प्रभुत्त्व-विस्तार किया। इसके तीन सप्ताह बाद इंग्लैण्ड ने सार्वजनिक अनिवार्य-सैनिक-शिक्षा का प्रवर्त्तन किया। दुर्बल पोलैण्ड को विदेशी संरक्षण का आश्वासन दिया, क्योंकि जर्मनी पोलैण्ड से डान्जिग और समुद्र-तट के क्षेत्रों का दावा कर रहा था। पोलैण्ड उसे अमान्य कर रहा था। नाजी आक्रमण और साम्यवादी प्रचार से त्रस्त पोलैण्ड ने आत्म-हत्या को ही श्रेयस्कर माना।

उपर्युक्त घटना फ्रांस और इंग्लैण्ड, लन्दन और पेरिस की संतुष्टीकरण नीति का परिणाम थी। २८ अप्रैल १९३९ मे हिटलर ने इंग्लैण्ड और जर्मनी के १९३५ के नौ समझौते को भंग किया व १९३४ की पोलैण्ड की रक्षणात्मक-संधि का अन्त किया। २२ मई को उसने इटली के साथ गुप्त मैत्री-संधि की एवं २३ अगस्त १९३९ को मास्को में जर्मन परराष्ट्रमन्त्री रिबेन्ट्रप और सोवियट विदेशमन्त्री मोलोटाव ने १० वर्ष के लिए रक्षात्मक तथा निष्पक्ष-संधि पर हस्ताक्षर किये। इस संधि

में यह शर्त भी थी कि यदि हस्ताक्षरितों में एक अन्य के साथ युद्ध करे, तो दूसरा निष्पक्ष रहेगा एवं पारस्परिक विरोध को मैत्री द्वारा निपटाया जायेगा। संक्षेप में बिस्मार्क की पुनर्बीमा संधि की पुनरावृत्ति हुई और जर्मनी दो सीमान्तों में आक्रमण की आशंका से मुक्त हो गया।

---*---

१४--द्वितीय महायुद्ध

लैंगशम के शब्दों में "१६१६ से १६३६ तक के काल को विंश-वर्षीय रणविराम का युग कहा जा सकता है"। यदि पेरिस की संधि जर्मनी को पूर्णशः निष्पेषित और ध्वस्त करने की नीति नहीं रखती, तो इस समय का कायापलट हो जाता एवं न द्वितीय महायुद्ध ही होता। भरसालिस संधि की न्यूनताओं ने सघर्ष की पृष्ठ-भूमि तैयार की। वस्तुतः शान्ति और स्थिरता मानव का स्वभाव नहीं है। उसकी प्रगतिशीलता के लिए संघर्षों का होना अनिवार्य है—इसी में उसका जीवन है। यही कारण है कि विश्व के इतिहास में शान्तिवाद अनेक प्रचेष्टाओं के करने पर स्थायी रूप से क्रियान्वित नहीं हो सका। अविश्वास, सन्देह हिंसा, विरोध एवं महत्त्वाकांक्षाओं के समन्वय से मानव संघर्ष की ओर उन्मुख होता है। द्वितीय महायुद्ध भी उसकी इन्हीं प्रवृत्तियों का प्रत्यक्ष निदर्शन है। संक्षेप में हम उसके कारणों का दो रूपों में वर्गीकरण कर सकते हैं—प्रथम-अन्तर्निहित कारण और द्वितीय तात्कालिक कारण।

(क) अंतर्निहित कारण

सिद्धान्तों का संघर्ष—फ्रांसीय विप्लव से ही प्रजातंत्रवाद और लोक-सत्ता का उद्भव हुआ था व यूरोप के प्रमुख राष्ट्र इंग्लैण्ड और फ्रांस ने इसे वैधानिक रूप दिया था। परन्तु प्रजातंत्र की न्यूनताओं ने समय समय पर प्रतिक्रिया के रूप में अधिनायकवाद का पुनरावाहन किया एवं शताब्दियों तक

इन दोनों में निरन्तर संघर्ष चलता रहा। सर्वसत्तावादी जर्मनी और फासिस्ट इटली अधिनायकवाद की उत्कृष्टता के प्रतीक थे। हिटलर ने अपनी आत्म-कथा मे लिखा है—"लोकसत्ता के सिद्धान्त—जिनमें वैधानिक शक्ति बहुमत को दी जाती है—व्यक्तिगत अधिकार को अस्वीकार कर योग्यता के स्थान पर समष्टि को ही प्राधान्य देते हैं। परिणामतः संगठित राजनैतिक दल का एकाधिकार स्थापित हो जाता है"। मुसोलिनी के शब्दों में "प्रजातंत्रवाद केवल अल्प-संख्यकों को निष्पेषित ही नही करता, अपितु सफल और स्वाधीनता प्रेमी नेता द्वारा संचालित होता है। प्रशासन-व्यवस्था में प्रजातन्त्रवाद सबसे अयोग्य, विवाद व दलबन्दी पूर्ण, अधिक व्ययशील, प्रगति का बाधक एवं इसीलिए असह्य है"।

राजनैतिक राष्ट्रीयवाद—प्रोफेसर टूवेन्बी के शब्दों में "राष्ट्रीयवाद मानव जाति का परम शत्रु है, क्योंकि विगत दो दशक के अनुभवों ने इसका दुरुपयोग किया है"। प्रथम महायुद्ध के काल तक गणतन्त्र, वैधानिक राजतन्त्र और स्वैरतन्त्र पारस्परिक मैत्री और सहयोगिता के आधार पर चल रहे थे। परन्तु साम्यवाद, नाजीवाद और फासिस्टवाद के उत्थान से द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् अपने अपने राष्ट्रो का हित अन्तर्राष्ट्रीय समस्या से अधिक महत्वपूर्ण माना जाने लगा। जनता को बेतार, संवाद-पत्र, भाषण, रेडियो, पुस्तक आदि के माध्यम से राष्ट्र नेता के अनुशासन पालन और आत्म-बलिदान की दीक्षा दी गई। परिणामतः अन्य प्रतिवेशी राष्ट्रों मे भी सामान्य सहानुभूति व्यक्त करने वाले व्यक्तियो के सहयोग से संकीर्ण राष्ट्रीयवाद का प्रवेश हुआ। किस प्रकार साम्यवाद, नाजीवाद और फासिस्टवाद से पारस्परिक संघर्ष चल रहा था—उसका विश्लेषण हम आंतरिक नीति में कर चुके हैं।

आर्थिक राष्ट्रीयवाद—आर्थिक आत्म-निर्भरता की नीति का अवलम्बन कर यूरोप के प्रमुख राष्ट्रों में कच्चे माल, खनिज पदार्थ, तैल आदि के लिए पारस्परिक प्रतियोगिता हो रही थी। संरक्षण-नीति, विदेशियों की सामग्री पर आयात कर की वृद्धि, अन्तर्राष्ट्रीय आदान-प्रदान का प्रतिबन्ध, युद्ध की प्रयोजनीय सामग्री का संग्रहण आदि ने नवीन व्यावसायिक प्रणाली को जन्म दिया। राजनैतिक स्वाधीनता के साथ साथ आर्थिक आत्म-निर्भरता ही इसका मूल लक्ष्य था। संतुलित व्यवसाय के सिद्धांत, आयात का निरुत्साहन व स्वर्ण-निर्यात के प्रतिबन्ध के कारण पारस्परिक प्रतियोगिता का उदय हुआ एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध विच्छिन्न होने लगा, क्योंकि प्रत्येक स्वयं को पूर्ण और सम्पन्न बनाने की प्रचेष्टा में था।

राष्ट्रसंघ की असफलता—राष्ट्रसंघ ने किस प्रकार सामूहिक संरक्षण सिद्धान्त को प्रायोगिकता प्रदान करने का प्रयत्न किया—इसकी चर्चा हम पूर्व अध्याय में कर चुके हैं। शान्ति-स्थापना में राष्ट्र संघ की असफलता के विभिन्न कारण थे। प्रथमतः संघ की सदस्यता प्रत्येक राष्ट्र के लिए अनिवार्य व सार्वजनिक नहीं थी। इसीलिए यह सीमित और दुर्बल रहा। सदस्य राष्ट्रों में भी बहुमत न देखकर केवल प्रमुख राष्ट्रों के संकेतों द्वारा ही इसकी नीति का निर्धारण होता था। द्वितीयतः, निर्हस्तक्षेप-करण-नीति संघ के लिए आत्म-घातक नीति थी। प्रमुख घटनाओं में अन्तिम संकट के समय संघ ने उदासीनता के साथ समाधान का प्रयत्न किया। तृतीयतः, सामरिक शक्ति-प्रयोग संरक्षण नीति का एक अंग था, परन्तु संघ के पास ऐसी कोई शक्ति नहीं थी। इसीलिए आक्रमणात्मक राष्ट्र को बल-प्रयोग से यह शान्त नहीं कर सका—जैसे चीन का मांचूरिया आक्रमण, इटली का ऐबीसीनिया अधिकार आदि। अधिनायकवाद

व अन्तर्राष्ट्रीय विरोध की मूल भित्ति आर्थिक राष्ट्रीयवाद को नियंत्रित व सीमित करने का अधिकार संघ के पास नहीं था। चतुर्थतः, अस्त्र-शस्त्र की प्रतियोगिता एवं निरस्त्रीकरण की नीति को व्यावहारिक रूप देने मे राष्ट्र संघ असमर्थ हुआ। पंचमतः इंग्लैण्ड और फ्रांस के पूर्ण सहयोग का अभाव, युक्त राष्ट्र का असहयोग, शान्तिवाद सिद्धान्त का कागजी प्रसार, सदस्यों में आंतरिक समन्वय का अभाव, पारस्परिक अविश्वास, सर्वसत्तावादी इटली और जर्मनी व जापान की साम्राज्य-विस्तार की नीति इन सब ने मिल कर सामूहिक रूप से राष्ट्र संघ को सफल न होने दिया। परिणामतः छोटे छोटे राष्ट्रो की स्वाधीनता—जैसे आस्ट्रिया, चैकोस्लोवाकिया, आल्बेनिया आदि छिन्न भिन्न होकर विलीन हो गई।

सामरिकवाद—अधिनायकवाद की सफलता के लिए इस युग में सामरिकवाद एक प्रकार का जादू था। ट्वेन्बी के शब्दों में "सामरिकवाद संसार की अतीत सभ्यताओं के ध्वंस का प्रमुख कारण था। यह सिद्धान्त छोटे छोटे राष्ट्रों को विलीन कर सभ्यता का विलय करता है"। नेपोलियन, कैजर, मुसोलिनी, हिटलर तथा हिरोहिटो (जापान का सम्राट्) ने शान्ति और राष्ट्र की रक्षा के लिए सामरिक शक्ति के संगठन को अनिवार्य सिद्ध किया। इनने राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए अधिकतर वैज्ञानिक अस्त्र शस्त्र प्रतियोगिता का श्रीगणेश किया। सार्वजनिक अनिवार्य सैनिक प्रवेश केवल रूस, जर्मनी और इटली के प्रशासन का ही प्रमुख कार्यक्रम नहीं, परन्तु शान्ति प्रेमी इंग्लैण्ड और सुरक्षा-प्रिय फ्रांस का भी अत्यन्त प्रिय था। वर्तमान शान्ति के ठेकेदार युक्त राष्ट्र ने भी अणुबम की शक्ति की वृद्धि को राष्ट्रीय सुरक्षा का माध्यम माना। सोवियट रूस भी इसी मे विश्वास रखता है। संक्षेप मे पांच हजार वर्ष के अनुभव यह बताते हैं

कि राजनैतिक, देश-भक्त और शान्ति-प्रेमियों ने सामरिकवाद को स्वेच्छा से ही आहृत कर अशांति का प्रस्तावन किया है।

साम्राज्यवाद—जर्मनी की प्रभूत क्षति और भरसालिस संधि द्वारा स्वीकृत साम्राज्य-ध्वंस ने उसे नवीन साम्राज्यवाद की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दी। साम्यवादी रूस ने पूंजी-पतियों से जनता को मुक्त करने के लिए इस नीति को ग्रहण किया। इटली ने साम्राज्यवाद को गौरव, प्रतिष्ठा और आर्थिक आत्म निर्भरता व उत्कर्ष का एक मात्र आधार माना। यूरोप में इस काल में जन संख्या की प्रभूत वृद्धि होने से प्रत्येक राष्ट्र ही जनता के स्थानान्तरण व वेकारी के निवारण के लिए उप-निवेश का आकांक्षी था। १६१८ के बाद इंग्लैण्ड मे प्रतिवर्ष एक लाख साठ हजार व्यक्ति उपनिवेशों में जाते थे, परन्तु १६३० में यह संख्या आधी रह गई। प्रथम महायुद्ध से पूर्व ५ लाख इटली विदेशों में निवास के लिए जाते थे, परन्तु इसके अनन्तर प्रत्येक राष्ट्र ने स्थानान्तरण प्रतिबन्ध लगा दिया। जर्मनी की भी जन संख्या की वृद्धि हुई एवं खाद्य—सामग्री व आर्थिक साधनों के लिए उपनिवेश की आवश्यकता हुई। साम्रा-ज्यवाद का यह विष इस प्रकार व्याप्त हो रहा था।

(ख)—तात्कालिक कारण

जर्मनी की प्रतिशोध-भावना—नाजी जर्मनी के नेता हिटलर ने भरसालिस संधि को जर्मन जाति के ध्वंस का संदेश घोषित किया किया एवं सर्वसत्ताधिकारी होने के साथ ही इसने उस संधि को पूर्ण रूप से ठुकरा देने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। परिणामतः इटली और जापान के साथ धुरी राष्ट्र की (त्रिराष्ट्रीय गुट) स्थापना कर मध्य यूरोप में इसने जर्मनी का विस्तार किया, यह हम ऊपर देख चुके हैं। त्रस्त जर्मन-जनता

में प्रतिशोध की भावना उभरी हुई थी। हिटलर युद्ध ही को प्रतिशोध लेने का अनिवार्य साधन मानता था। जर्मन-विरोधी राष्ट्रों के पारस्परिक असहयोग का सुयोग पा कर उसने अपनी शक्ति वृद्धि की व शत्रु की प्रस्तुति के पहले ही संघर्ष प्रारम्भ कर दिया। एक महान् जर्मनी का निर्माण कर प्रत्येक जर्मनी को उसमें सम्मिलित कर लेना हिटलर का कार्यक्रम था—जिसकी पूर्ति के लिए युद्ध सुनिश्चित था।

पोलैण्ड की समस्या—प्रथम भरसालिस संधि मे उन्मुक्त डाञ्जिग और समुद्र तट के भूखण्ड जर्मनी से लेकर पोलैण्ड को दिये गये थे—यह हम पढ़ चुके हैं। म्यूनिश-सधि के (२४ अक्टूबर १३९३८) बाद जर्मनी ने डाञ्जिग नगर-जहां ६० प्रतिशत जर्मनी रहते थे—के अधिकार का दावा किया तथा बर्लिन से डाञ्जिग तक एक विशेष रेल्वे लाइन निर्माण का प्रस्ताव किया। स्वयं को शक्तिशाली मानने वाले पोलैण्ड के नेताओं ने इसे अमान्य किया। चैकोस्लोवाकिया की अधिकृति के अनन्तर २६ मार्च १९३९ को जर्मनी ने अपने प्रस्ताव की पुनरावृत्ति की, परन्तु इग्लैण्ड के प्रोत्साहन से पोलैण्ड ने उसे भी ठुकरा दिया। पोलैण्ड की रक्षा करने वाला रूस ही एक मात्र राष्ट्र था, परन्तु पोल साम्यवाद से घृणा करते थे। इसी समय (५ मई) हिटलर ने घोषणा की कि "जर्मनी के धर्य की अब इति श्री हो चुकी है। डाञ्जिग और समुद्र तट के भूखंडों के अतिरिक्त जर्मनी को पोलैण्ड में साम्राज्य विस्तार की आकांक्षा नहीं है"। इंग्लैण्ड और फ्रांस यह विश्वास करता था कि डाञ्जिग के समाधान के लिए युद्ध वाञ्छनीय नहीं है। चेम्बरलेन और दालादियर नवीन नवीन संतुष्टी-करण नीतियों को अपना रहे थे। परन्तु हिटलर ने यह निश्चय कर लिया था

कि "पाश्चात्त्य राष्ट्रों से अन्तिम निर्णय करने का स्वर्ण सुयोग आगया है"।

१२ मई को उग्र जर्मन जनता ने डाञ्जिग शहर में पोलो की संपत्ति का ध्वंस एवं राष्ट्रीय-पताका का दाह किया। २० ता० को एक पोल आवकारी अधिकारी को कैल्थाफ में नाजियों ने मार दिया। उपजिलाधीश के भृत्यों ने इस आक्रमण के प्रतिरोध के लिए गोली चलाई—जिससे डाञ्जिग के निवासी ग्रुवनव नामक व्यक्ति की मृत्यु हो गई। प्रतिक्रिया के रूप में स्थानीय मुख्य समिति और प्रशासन में वाद-विवाद प्रारंभ हो गया। जून मास में इस सुअवसर को पाकर जर्मनी ने यहां अस्त्र-शस्त्र गुप्तरूप से भेजे। डाञ्जिग मुख्य-समिति के अध्यक्ष ग्रीजर ने पोलैण्ड के आवकारी अधिकारियों की संख्या घटाने का प्रस्ताव किया—पोलैण्ड ने इसे अमान्य कर दिया। जर्मन प्रचार मन्त्री डा० गोयेबिल्स ने डाञ्जिग की जर्मन जनता को उद्दीपन-पूर्ण भाषण से उत्तेजित किया। छद्मवेष में जर्मन मुष्टि-वाहिनी ने डाञ्जिग में प्रवेश किया और ३ जुलाई को जर्मन मकान मालिकों को आदेश दिया कि वे पोल किरायेदारों को निकाल दें। १८ जुलाई को १४ हजार सेना मोटरों में यहां पहुँची। इसके ५ दिन वाद सीमान्त में एक पोल आवकारी अधिकारी की हत्या की गई। पोलैण्ड ने डाञ्जिग को चुनौती दी कि ऐसे करने से उससे यथायथ प्रतिशोध लिया जायेगा। परिणामतः डाञ्जिग से पोलैण्ड ने आर्थिक सम्बन्ध विच्छिन्न कर लिया। ६ अगस्त को जर्मनी ने प्रत्यक्ष रूप से इसमें हस्तक्षेप किया। परन्तु पोलैण्ड ने धमकी देते हुए कहा—"यदि कोई भी अत्याचार व हस्तक्षेप किया जायेगा, तो उसे आक्रमणात्मक कहा जायेगा"। हिटलर ने इसके प्रत्युत्तर में २० अगस्त को पोल सीमान्त में सैन्य संचय किया व रूस के साथ मैत्री स्थापित की। चेम्बरलेन ने

व्यक्तिगत पत्र में हिटलर को पोलैण्ड की समस्या के शान्तिपूर्ण वार्तालाप द्वारा समाधान करने का विशेष अनुरोध किया। उत्तर में हिटलर ने लिखा—"जर्मनी को डाञ्जिंग की अत्यन्त आवश्यकता है तथा इस समस्या का समाधान निश्चित रूप से किया जायेगा"। समाधान के अनन्तर इंग्लैण्ड के साथ वार्त्तालाप करने का आश्वासन दिया। २६ अगस्त को हिटलर ने इंग्लैण्ड के राजदूत हैण्डरसन को एक पत्र दिया—जिसके अनुसार एक विशेष क्षमता प्राप्त पोलैण्ड के दूत को वार्तालाप के लिए उसे आमन्त्रित करने को कहा, परन्तु इंग्लैण्ड ने यह सूचना दी कि वे दूत भेजने का परामर्श पोल-प्रशासन को नहीं दे सकते। ब्रिटिश दूत जब यह उत्तर देने गया—तो जर्मन पर-राष्ट्र मन्त्री ने घोषणा की कि "पोल दूत के आने का समय अब निकल गया"। प्रथम सितम्बर १६३६ में युद्ध-घोषणा किये बिना ही जर्मन सेना पोलैण्ड पर आक्रमण करने लगी। मुसोलिनी ने शान्ति की शेष प्रचेष्टाएं की, इंग्लैण्ड और फ्रांस ने कूटनीतिक वार्तालाप से पूर्व ही जर्मनी की सेना को पोलैण्ड अपसारित करने की चुनौती दी। जर्मनी का कोई उत्तर नहीं आने से ३ सितम्बर मध्याह्न को ब्रिटेन और सायंकाल फ्रांस ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की। हिटलर ने ब्रिटिश राजदूत हैण्डरसन को इस समय कहा था—"हमारी आयु ५० वर्ष हो चुकी है और मैं इस समय युद्ध चाहता हूँ—जिससे कि ५५ व ६० साल के मध्य ही युद्ध-समाप्ति व जर्मन की विजय हो जाये। मैं इस नवीन विश्व की रचना को देखकर जा सकूंगा"। डाञ्जिंग में जर्मन निवासियों पर पोलैण्ड के अत्याचार राष्ट्रवादी जर्मनी के लिए असह्य थे, इसीलिए युद्ध का श्रीगणेश होगया।

(ग) युद्ध की घटनायें

पोलैण्ड को आक्रमण—१ सितम्बर शुक्रवार १६३६ को प्रातः चार बजे से जर्मन सेना द्रुत-गति से पोलैण्ड पर आक्रमण करने लगी। वायुयान, नौ-सेना और स्थल सेना ने नवीन जर्मन युद्ध-प्रणाली-जिसे "व्लिट्स-क्रिग"-अथवा वैद्युतिक युद्ध-कहा जाता है-से वैज्ञानिक युद्ध प्रारम्भ हो गया। दो सप्ताह में यद्यपि पोलवासियों ने साहस के साथ युद्ध किया, फिर भी नवीन प्रणाली से अपरिचित होने के कारण-पोलैण्ड गुब्बारे की तरह फट गया। जर्मन सेना द्वारा पश्चिम पोलैण्ड को हस्तगत करते समय सोवियट रूस की लाल सेना ने १७ सितम्बर को पूर्व पोलैण्ड पर अधिकार किया। पंचम विभाजन संधि (२८ सितंबर) से पोलैण्ड के पश्चिमांश जर्मनी मे लीन हो गये और यूक्रेन व वाइलो-रूसियन प्रदेश सोवियट द्वारा अधिकृत हो गये। परा भूत पोल प्रशासन ने लंदन मे आश्रय लिया।

डेन्मार्क व नार्वे का आक्रमण—फ्रांस और इंग्लैण्ड युद्ध के लिए पूर्ण रूप से अप्रस्तुत थे, यद्यपि फ्रांस ने विगत पांच वर्ष से ही फ्रांस की पूर्व सीमा को जर्मन आक्रमण से रक्षित रखने के लिए "म्याजिनो-रेखा" का निर्माण किया था व प्रत्युत्तर मे जर्मनी ने भी अपने पश्चिम सीमान्त की रक्षा के लिए "सिग्फ्रिड रेखा" बनवाई थी। फ्रांस पर आक्रमण के लिए हिटलर ने अप्रेल १६४० मे डेन्मार्क पर आक्रमण किया एवं राजधानी ओश्लो को अधिकृत करके नाजी नेता क्विस्लिंग के आधीन में एक नाजी प्रशासन स्थापित किया। इसके अनन्तर हिटलर ने नार्वे पर शत्रु के साथ सहयोग देन के अभियोग में ६ अप्रेल को आक्रमण किया व एक दिन में नार्वे और स्वीडेन दोनो पर ही अधिकार कर लिया। १० मई को जर्मनी नीदरलैण्ड की ओर

बढ़ा। पंचम वाहिनी (गुप्त-सेना) और छद्मवेषी जर्मन-पर्यटकों की सहायता से ५ दिन के युद्ध के बाद नीदरलैण्ड पर अधिकार किया। नीदरलैण्ड प्रशासन ने लंदन में आश्रय लिया। वेल्जियम की भी यही स्थिति हुई।

रूस की अग्रगति—नाजी जर्मनी की प्रगति से साम्यवादी रूस भी ईर्ष्या करने लगा था। इस सुयोग में इसने अपनी शक्ति वृद्धि के लिए पोलैण्ड के अर्द्धांश को लीन किया व ऐस्थोनिया, लैटविया और लिथुयानिया के प्रशासन को ध्वस्त कर रूस मुक्त कर लिया। इसके बाद फिनलैण्ड से दक्षिणी क्षेत्रों के अधिकार का दावा किया व अस्वीकार करने पर युद्ध घोषित कर दिया। क्षुद्र फिनलैण्ड की सेना निपुणता, साहस और योग्यता के साथ कई मासो तक युद्ध करती रही, परन्तु संख्या में अल्पता एवं साधनो की असीमता के कारण पराजित हो गई। फ्रांस और इंग्लैण्ड ने रूस की अन्यायपूर्ण नीति के लिए राष्ट्र संघ को दंडित करने का अनुरोध किया, परन्तु धूर्त रूस ने संघ-त्याग किया और फिनलैण्ड की भूमि को आत्म-लीन कर लिया। इसके अनन्तर हिटलर की सहायता से स्टालिन ने रूमानिया के एकांश को हस्तगत किया।

फ्रांस का पतन—१६४० के वसन्त काल मे हिटलर ने फ्रांस पर दुर्भेद्य आक्रमण किया। मित्र सेना के सेनानायक गमेलिन ने आक्रमण के प्रतिरोध के लिए पर्याप्त सेना और अस्त्र शस्त्रो से प्रयत्न किये, परन्तु जर्मन सेना ने १४ मई को सीडान को हस्तगत किया व उत्तर पश्चिम की ओर वेल्जियम और लोक्सेम्वर्ग से एक जर्मन सेना फ्रांस की राजधानी की ओर बढ़ी। फ्रांसीय प्रशासन ने आतंकित होकर मूल्यवान पत्र-जातो को भस्सीभूत किया। ३ लाख ३५ हजार ब्रिटिश सेना ने वन्दी होने की आशंका से डन्कार्क से इंग्लैण्ड में पलायन (३ जून)

किया, एवं फ्रांस ने गैमेलिन को पदच्युत कर वेगां की नियुक्ति की। ७ दिन बाद सौ मील विस्तृत सीमान्त पर क्रमागत युद्ध के अनन्तर वेगां ने विजय की आशा छोड़ दी। उप-प्रधान मन्त्री पेतां ने घोषणा की कि "सामरिक दृष्टि से प्रतिरोध व रक्षा असंभव है, अब सबका अन्त हो गया है"। १४ जून को जर्मनी के समक्ष पेरिस ने आत्म-समर्पण किया।

इसके एक सप्ताह बाद हिटलर ने पेरिस मे पदार्पण कर नेपोलियन के समाधि-स्थान का दर्शन किया। गणतन्त्र फ्रांसीय प्रशासन का अवसान हो गया व सेनानायक पेतां (प्रथम महा-युद्ध के भरदून के रक्षक) अस्थायी नवीन प्रशासन का नेता बना और जर्मनी के साथ रणविराम पर हस्ताक्षर किये—जिसके अनुसार फ्रांस को निरस्त्र व सैनिक हीन बना दिया गया। वंदी नाजियों को मुक्त किया गया तथा २० लाख फ्रांसीय सामरिक व असामरिक व्यक्तियो को जर्मनी ने वंदी कर लिया। लोरेन को जर्मनी में लीन किया गया और फ्रांस में स्थित जर्मन सेना के व्यय को देना स्वीकार किया। फ्रांसीय प्रशासन को वीची नगर के आस पास के क्षेत्र नाममात्र के लिए दिया गया। इतिहास में इसीलिए तत्कालीन फ्रांसीय शासन को "वीची प्रशासन" कहा जाता है।

इटली की युद्ध घोषणा—मुसोलिनी ने इस समय देखा कि फ्रांस का पतन हो रहा है, तो उसने भी साम्राज्य-विस्तार के लोभ से फ्रांस के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की व नाइश व फ्रांसीय दक्षिण समुद्र तट को इटली में विलीन किया। अगस्त १६४० में जर्मनी ने रूमानिया लिया, परन्तु रूस ने जर्मनी को धमकी दे कर इसके एकांश पर अधिकार किया व हिटलर ने दोब्रुद्जा, बुल्गेरिया और ट्रांसिल्वेनिया के अर्द्धांश हंगेरी को दिया। धुरी-राष्ट्र को सामरिक सहायता देने के लिए हिटलर ने बाध्य किया।

चर्चिल (१८७४)

इसी समय इटली सेना ने पूर्व अफ्रीका में ब्रिटिश सोमालिलैण्ड पर अधिकार किया एवं मिश्र और यूनान पर आक्रमण किया। मुसोलिनी ने यूनान मे सब से कठिन प्रतिरोध का सामना किया एवं इटलीय सेना को एल्बेनिया में यूनानियों ने पीछे हटा दिया। हिटलर ने अपने मित्र की सहायता करने के लिए बुल्गेरिया और जुगोस्लाविया मे प्रविष्ट होकर यूनान को विजय कर लिया।

इंगलैण्ड की विजय-योजना—हिटलर ने विजित राष्ट्रो को संगठित कर नेपोलियन के समान इंग्लैण्ड पर आक्रमण करने का निश्चय किया। १४ सितम्बर १९४० में भाषण देते हुए हिटलर ने कहा था—"इस युद्ध की परिसमाप्ति इंग्लैण्ड के पतन से ही होगी। समग्र यूरोप का—उत्तर मे नार्वे से लेकर दक्षिण में इटली तक, पूर्व में पोलैण्ड से लेकर पश्चिम मे फ्रांस और स्पेन तक—जर्मनी ही आज सर्वसत्ताधिकारी है। यह युद्ध एक सहस्र वर्ष के भविष्य के इतिहास को परिवर्तित कर अंतिम निर्णय पर पहुँचा देगा"। इंग्लैण्ड फ्रांस के पतन से दुर्बल नहीं हो गया था, अपितु अंत तक युद्ध करने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ था। यद्यपि हवाई जहाज उसके नगरो पर बम फेंक रहे थे, पनडुब्बियां जहाज डुबो रही थी, फिर भी उसने संधि-प्रस्ताव नहीं किया। प्रधान मन्त्री चेम्बरलेन ने पदत्याग किया व दूरदर्शी, अनुभवी, परिश्रमी व संकीर्णवादी नेता चर्चिल ने यूरोप के आश्रयप्रार्थी प्रशासनो व उपनिवेशो को संगठित कर रक्षणात्मक नीति का अवलम्बन किया। इंग्लैण्ड के विशाल उपनिवेशो ने-आस्ट्रेलियां न्यूजीलैण्ड, भारतवर्ष, दक्षिण अफ्रीका, कनाडा—अपने समस्त सामरिक साधनों से इंग्लैण्ड को सहायता दी। जून १९४० मे अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने ब्रिटेन को पूर्ण सहायता देने की घोषणा की व ५० वृहत् अमेरिकी जहाजो को सहायतार्थ भेजा। परन्तु इतने साधनो के रहते हुए भी एक वर्ष के काल

में जून '४० से जून' ४१ तक) ब्रिटेन कोई गणनीय सफलता प्राप्त नहीं कर सका। अफ्रीका में इटली के उपनिवेश सोमालिलैण्ड और इरीट्रिया को विजय किया एवं ऐबीसीनिया वा इथियोपिया को हस्तगत कर निर्वासित राजा हैलिसलासी को पुनस्स्थापित किया।

रूस-जर्मन-संघर्ष—दो वर्ष के पारस्परिक सहयोग और समन्वय के पश्चात् बॅल्कान की जटिल समस्या ने हिटलर और स्टालिन में मतभेद की सृष्टि की। जर्मनी का यूनान और जुगोस्लाविया अधिकार का तीव्र प्रतिवाद करते हुए रूस जर्मन सीमान्त में सेना एकत्रित करने लगा व १८१२ मे जिस प्रकार नेपोलियन व जार प्रथम मे संघर्ष प्रारम्भ हुआ था, उसी की पुनरावृत्ति हुई। साम्यवाद एवं नाजीवाद इन दोनो का संघर्ष २२ जून १९४१ को प्रारम्भ हुआ। हिटलर ने रूस पर इसी दिन युद्ध घोषित किया। इस युद्ध मे जर्मनी, रूमानिया, हंगेरी और फिनलैण्ड संघवद्ध हो कर अल्प-समय में ही रूस-विजय की आशा से विपुल सेना के साथ वढ़े। "रूस के ध्वंस से ही विश्व की विजयी होगी"—यही था हिटलर का वाक्य। प्रारम्भ में हिटलर लेनिनग्राड और सिवास्टोपोल पर अधिकार कर मास्को से केवल २५ मील दूर रह गया। रूस प्रशासन राजधानी त्याग कर काजान चला गया, परन्तु सम्भावना के अनुसार विजय शीघ्र न हो सकी।

जापान का अक्रमण—अप्रेल १९४१ में रूस और जापान ने एक संधि की—जिसके अनुसार जापान का मंचूरिया अधिकार एवं रूस का चीनीय मंगोलिया अधिकार मान्य किया गया। धुरीराष्ट्र की विजय से उत्साहित हो कर जापान चीन की ओर बढ़ा, व फ्रांसीय इंडोचीन और स्याम को हस्तगत किया। ७ दिसम्बर १९४१ को-जिस समय जापान का दूत वाशिंगटन में युक्तराष्ट्र से संधि की वार्तालाप कर रहा था, अकस्मात् सहस्राधिक जापानीय

जहाज अमेरिका के हवाई द्वीप पुंज के प्रधान केन्द्र पर्ल-हार्बर पर उतरे व ३० हजार जनता का ध्वंस किया। युक्त-राष्ट्र ने जापान के विरुद्ध युद्ध घोषणा की। इसके तीन दिन पश्चात् इटली और जर्मनी ने युक्त-राष्ट्र के विपरीत युद्ध घोषित किया। इस समय हिटलर ने घोषणा की "ईश्वर ने एक ऐतिहासिक प्रतिशोध का स्वर्ण सुयोग दिया। हमारे और रूजवेल्ट में विराट् व्यवधान है। हम जानते हैं कि दुष्ट यहूदी जर्मनी का ध्वंस चाहते हैं और हमारा धैर्य अब पराकाष्ठा पर पहुँच चुका है"। उसी दिन रोम, बर्लिन व टोकियों मे पारस्परिक सहयोग से इंग्लैंड और अमेरिका के विरुद्ध विजय तक युद्ध जारी रखने की संधि की गई, परन्तु जापान ने प्रशान्त महासागर में बोर्नियो, सुमात्रा, जावा, फिलिपिन, सिंगापुर, बर्मा, व थाइलैण्ड पर अल्प समय में ही अधिकार किया। कांग्रेस के राष्ट्रपति सुभाष चन्द्र बोस ने भी इसी समय भारत से (बन्दी अवस्था) पलायन किया और जापान व जर्मनी मे सामरिक शिक्षा प्राप्त कर एशिया में प्रवासी भारतवासियों को संगठित किया। उसने "आजाद हिन्द फौज" की स्थापना भारत को स्वतन्त्र बनाने की उद्देश्य से की। पर अदूरदर्शी जापान ने सुभाष बाबू को न पूर्ण सहयोग दिया व न स्वयं ने ही भारतवर्ष पर बर्मा की ओर से आक्रमण किया।

मित्रराष्ट्रों की विजय—इंग्लैण्ड की आकाश सेना ने १९४१ में बर्लिन पर आक्रमण किया एवं इसके एक वर्ष बाद जर्मनी के प्रमुख नगरों में क्रमशः रात्रि के अन्धकार मे जर्मनी के ध्वंस के लिए हजारों बम फेंके जाने लगे। नवम्बर १९४२ मे उत्तर अफ्रीका में युक्त राष्ट्र की सेना ने ब्रिटेन की सेना के साथ जर्मन व इटली सेना पर आक्रमण किया। १९४३ के प्रारम्भ में स्टालिन ग्राड के युद्ध में रूस ने जर्मनी को पराजित किया। इसी वर्ष के मध्य भाग में युक्त—राष्ट्र ने अफ्रीका से इटली व जर्मन सेना को

वितारित किया। इसके पश्चात् ब्रिटिश अमेरिका—सेना ने सिसली को अधिकृत किया व इटली के दक्षिण भाग में (जुलाई) प्रवेश किया। विवश होकर मुसोलिनी ने हिटलर से सहायता मांगी व प्रशासन से अधिनायकवाद के विरोधी १२ मन्त्रियों को पदच्युत किया—जिनमे उसका दामाद सियानो भी था। हिटलर ने भेरोना में मुसोलिनी से साक्षात् किया तथा इटली की रक्षा के लिए एक योजना प्रस्तुत की, परन्तु मित्र राष्ट्रों के आक्रमण से त्रस्त हो कर फासिस्ट दल की कार्य-कारिणी समिति ने १६ विपक्ष व ५ मतो के पक्ष में मुसोलिनी में अनास्था प्रकट की। २५ जुलाई को राजा विक्टर ईमानवल ने जर्मन रक्षा योजना को अस्वीकार किया, मुसोलिनी को पदच्युत किया व बन्दी करने की आज्ञा दी। सेनानायक बडोगलियो के नेतृत्त्व में नवीन मन्त्रिमण्डल की नियुक्ति की। बडोगलियो ने घोषणा की कि "जर्मन-सहायता से युद्ध को जारी रखा जाये", परन्तु मित्र-राष्ट्रों से गुप्त रूप से संधि का वार्तालाप प्रारम्भ किया। २८ जुलाई को २१ वर्ष के पश्चात् उल्लसित जनता के समर्थन से फासिस्ट दल को भंग किया गया। अन्त मे ३ सितम्बर १९४३ को इटली ने आत्म-समर्पण किया, पर जर्मन सेना ने इटली के उत्तरी प्रदेश को हस्तगत कर ७ दिन पश्चात् रोम पर अधिकार किया। प्रधानमन्त्री और राजा दक्षिण में भाग गये। १२ सित-म्बर को मुसोलिनी को कारागार से मुक्त किया गया व इटली के उत्तर में एक गणतान्त्रिक फासिस्ट राष्ट्र की स्थापना की जिसने राजा, बडोगलियो और राष्ट्रद्रोहियों को मृत्यु दंड देने की घोषणा की। १९४३ और ४४ के मध्य मे जर्मनी और मित्र राष्ट्रों का संघर्ष इटली मे चल ही रहा था। १३ अक्टूबर को बडोग-लियो ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषणा की व मित्र राष्ट्र की सहायता से युद्ध को जारी रखा। अप्रेल १९४४ में साम्यवा-

:यों व प्रजातन्त्रवादियो ने राजसत्ता का विरोध किया, परि- ामतः राजा ने अपने पुत्र अम्बर्टो के पक्ष में राज्यत्याग किया।

इधर उत्तर में मुसोलिनी ने अपने दामाद सियानो व अन्यान्य तपूर्व फासिस्ट कार्यकारिणी के विरोधी सदस्यो को फांसी दी, ःन्तु अप्रेल १९४५ में दक्षिण में बडोगलियो ने पदत्याग किया। ीन उत्तराधिकारी समाजवादी बोनोमी मित्रराष्ट्र की हायता से उत्तर की ओर अग्रसर हुआ। मुसोलिनी व उसकी त्नी क्लारापेटाकी २६-२७ अप्रेल को जब भाग रहे थे, तो क विरोधी आततायी ने दोनों को गोली से मार दिया। इसके ीन दिन बाद मिलान का पतन हो गया और मुसोलिनी दंपती शवो का प्रदर्शन किया गया।

हिटलर का पतन—जर्मनी केवल इटली मे ही मित्रराष्ट्रो पराजित नहीं हुआ था, अपितु समुद्र, आकाश और रूस के ाथ स्थलयुद्ध में भी पूर्णशः ध्वस्त हुआ था। १९४४ में हिटलर वार्षिकोत्सव में घोषणा की-"इस युद्ध मे यदि जर्मनी का पतन ।, तो सोवियट रूस के विरोध के लिए और कोई भी राष्ट्र नहीं हेगा"। समग्र जनता को विशेष नियम द्वारा सेना में प्रविष्ट कया। जून १९४४ में अमेरिका-सेना ने फ्रांस मे अवतरण कया एवं इसी समय रूस-सेना ने पूर्व की ओर से आस्ट्रिया ी राजधानी वियाना को लिया व रूमानिया व बुल्गेरिया को र्मन-दमन से मुक्त किया। पराभूत हिटलर ने घोषणा की कि सोवियट रूस प्रजातंत्रवादियो की सहायता से जर्मनी के ध्वंस ा प्रयत्न कर रहा है। जर्मन जनता, राष्ट्रद्रोहियो के षड्यन्त्र पराजित हो रही है, परन्तु जितने दिन तक हम जीवित रहेंगे- र्मनी का पतन असंभव है"। १९४४ के अंत तक जर्मन सेना ाहस के साथ युद्ध कर रही थी, यद्यपि समग्र फ्रांस, बेल्जियम, गेरी व लक्सेम्बर्ग मित्रसेना के अधिकार मे आगये थे।

जर्मनी का पतन—मार्च १९४५ में मित्रसेना पूर्व से, और रूस पश्चिम से जर्मनी की ओर बढ़े। जर्मन सेना पराभूत होने लगी। विवश होकर ३० अप्रैल को हिटलर और उसके प्रचार मन्त्री गोयेबिल्स ने आत्म-हत्या की, परन्तु इनमें हिटलर का शव आज तक भी नहीं मिला। मृत अथवा जीवित हिटलर इतिहास में अत्याचार, अन्याय, हिंसा, शक्ति, साहस, शौर्य संगठन व राष्ट्रीयता के प्रतीक के रूप में सदा अमर रहेगा और उसकी आत्मा जर्मन जनता को राष्ट्रीय जागरण के लिए अनुप्राणित करती रहेगी।

७ मई १९४५ में जर्मन सेना-नायक जाडल ने विना शर्त आत्म-समर्पण किया।

जापान का पतन—प्रशान्त महा—सागर में जापान से युक्त-राष्ट्र का क्रमागत संघर्ष चल रहा था। जापान का साम्राज्य अतिशय विस्तृत हो चुका था, इसीलिए वह उसे संभाल नहीं पा रहा था। १८ अक्टूबर १९४१ को प्रधान मन्त्री कोनोई ने पदत्याग किया एवं टोजो ने प्रधानमन्त्री होते हुए युद्ध और गृह-विभाग का भी काम सभाला। अमेरिका ने वृहत् वायुयानों द्वारा जापान पर आक्रमण प्रारम्भ किया व रक्षा की व्यवस्था में असमर्थ होकर १९ जुलाई १९५४ को टोजो ने पदत्याग किया। उत्तराधिकारी कुनियाकी कोइशो युद्ध को चलाता रहा। इसी समय रूस, अमेरिका और ब्रिटेन ने याल्टा के गुप्त सम्मेलन में जापान पर आक्रमण का निश्चय किया। २६ जुलाई को राष्ट्रपति ट्रूमैन, चर्चिल, स्टालिन और च्यांग काइ शेक-इन चारों ने विशेष सम्मेलन में जापान के सम्बन्ध में यह प्रस्ताव किया कि "जापान यदि ध्वंस से बचना चाहता है, तो विना शर्त आत्म-समर्पण कर दे"। इसको इतिहास में "काहिरो-घोषणा" कहा जाता है। जापान ने इसे अमान्य

किया व रूस ने जापान के विरुद्ध युद्ध घोषणा की। अगस्त, ६ व ६, १६४५ मे अमेरिका ने हिरोशिमा व नगासाकी पर परमाणु-वम फेंके, जिससे जापान की प्रभूत क्षति हुई। मित्र सेनानायक मैक-आर्थर के समक्ष १ सितम्बर को मिसौरी जहाज में जापान के विदेशमन्त्री सिगेमित्सू ने आत्म-समर्पण किया। जापान युक्त राष्ट्र के सामरिक शासनाधीन हो गया और भूतपूर्व मन्त्री कोनोई ने आत्महत्या की व टोजो बन्दी हो गया। विशाल जापान-साम्राज्य का ध्वंस हुआ। फार्मोसा और मंचूरिया चीन को, रूस को दक्षिण शाखालिन और कुरील द्वीप, फ्रांस को इंडोचीन, इंग्लैण्ड को युद्ध के पूर्व कालीन अधिकृत स्थान, अमेरिका को फिलिपाइन प्राप्त हुये। कोरिया की समस्या के समाधान के लिए ३८ रेखा-बिन्दु उत्तर के भूखंड रूस को दिये गये व दक्षिण भाग अमेरिका को। ६ सितम्बर १६४५ में कोरिया में उंग ह्यूंग के नेतृत्त्व मे एक अस्थायी गणतन्त्र की घोषणा की गई। पर अमेरिका के सामरिक अधिकारियों ने इसे अमान्य कर जापानी अधिकारियो की सहायता से सैनिक प्रशासन का प्रबन्ध किया। यह समस्या किस प्रकार जटिल बन गई—यह हम आगे देखेगे।

समीक्षा—स्थान के अभाव से युद्ध की घटनाओं का संक्षिप्त विवरण ही दिया गया है, क्योंकि अणुबम, परमाणुबम, रडार वायुयान, विषाक्त गैस, रासायनिक द्रव्य के व्यवहार इत्यादि के चमत्कार का उल्लेख इस संक्षिप्त ग्रन्थ मे संभव नहीं है। द्वितीय महायुद्ध एक अमानुषिक, बीभत्स, नृशस, और ध्वंसात्मक युद्ध था। युद्ध की समाप्ति के अनन्तर यूरोप में अनेक नवीन समस्याओ का उदय हुआ। पराभूत जर्मनी, इटली और जापान मे सैनिक प्रशासन की व्यवस्था, क्षुधार्तों के लिए खाद्य-प्रबन्ध, ध्वस्त प्रदेशो का पुनरस्थापन एवं संसार में स्थायी शांति

की व्यवस्था उस काल की प्रधान समस्याएँ थीं। यद्यपि हिटलर और मुसोलिनी की महत्त्वाकांक्षा के परिणाम और भरसालिस संधि की अपूर्णताओं ने द्वितीय महायुद्ध की सृष्टि की, परन्तु इन अधिनायकों के अवसान से ही विश्व में शान्ति स्थापना न हो सकी। चीन में गृहयुद्ध, पैलेस्टीन, भारतवर्ष, फ्रांसीय इंडोचीन, इंडोनेशिया, काश्मीर, कोरिया, मिश्र, ट्यूनीशिया में संघर्ष, उपद्रव और अराजकता फैल रही थी व आज भी विद्यमान है। मित्रराष्ट्रों में विरोध, रूस के साम्यवाद व पाश्चात्य प्रजातंत्र के संघर्ष ने किस प्रकार आज भी जर्मनी के साथ स्थायी संधि-स्थापना को असंभव कर दिया है—इसका अध्ययन हम आगे करेंगे।

घ—शांति-व्यवस्था

युक्तराष्ट्र के राष्ट्रपति रूजवैल्ट का १२ अप्रेल १६४५ मे देहान्त हो गया। उपराष्ट्रपति हैरी ट्रूमैन उसके उत्तराधिकारी हुये। जुलाई में एटली-चर्चिल, के स्थान पर-ब्रिटेन का प्रधानमंत्री निर्वाचित हुआ। ५ जून को फ्रांस, इंग्लैण्ड रूस व अमेरिका ने जर्मनी की सर्वसत्ताधिकारिता की घोषणा की एवं १६३७ में जर्मनी की जो सीमा थी, उसे स्वीकार कर चार प्रभाव क्षेत्रों में जर्मनी को विभक्त किया। इंग्लैण्ड, रूस और अमेरिका प्रत्येक को ४० हजार वर्ग मील प्राप्त हुआ एवं फ्रांस को २० हजार वर्गमील दिये गये। पाट्सडम के संमेलन में (१७ जुलाई से २ अगस्त) जर्मनी पर नियंत्रण करने के लिए विशेष निम्न व्यवस्था की गई—(१) नाजीदल और संस्थान का भंग करना, (२) पूर्ण रूप से असैनिकीकरण व निरस्त्रीकरण, (३) युद्ध सामग्री प्रस्तुत करने वाली उद्योगशालाओं का ध्वंस, (४) युद्ध के अभियोगियों की वन्दिता व उन पर विचार, (५) जर्मन

शिक्षा का नियन्त्रण, (६) स्थानीय स्वायत्त शासन की विकेन्द्रित सिद्धान्त के आधार पर व्यवस्था, (७) केन्द्र में सामरिक शक्ति द्वारा नियन्त्रण (उपर्युक्त राष्ट्रों का), (७) जर्मन यातायात अधिकार (८) क्षतिपूर्ति की कोई मात्रा निर्धारित नहीं की गई, परन्तु जैसे जैसे यह मिलेगी, उसी तरह राष्ट्र उतने ही प्रदेशो को मुक्त कर देंगे। क्षतिपूर्ति नगद या औद्योगिक सामग्री के रूप में भी दी जा सकती थी। (९) जर्मनी के नौ जहाजो को अमेरिका, रूस और इंग्लैण्ड ने क्षतिपूर्ति के लिए बांट लिया। (१०) आस्ट्रिया, पोलैण्ड, चैकोस्लोवाकिया आदि का पुनस्स्थापन किया गया व युक्त राष्ट्र के सिद्धान्तों को मान्यता दी गई। लंदन, मास्को, पेरिस आदि के विभिन्न विदेश-मन्त्रियो के सम्मेलन के अनन्तर पेरिस में २६ जुलाई से १५ अक्टूबर १९३६ तक २१ राष्ट्रों के १३८५ प्रतिनिधियों ने प्रतिदिन १४० मन कागज लिख कर फ्रेंच, इंग्लिश और रूसी भाषा में ५ प्रमुख संधियां प्रस्तुत की व १० फर्वरी १९४७ में इटली, हंगेरी, बुल्गेरिया, रूमानिया एवं फिनलैण्ड ने इन पर हस्ताक्षर किया।

इटली से सन्धि—इटली ने फ्रांस को टेण्डा, ब्रीगा, चावर्टन, माण्ट्सैनिस, थवोर व बेनार्ड प्रदेश दिये; जुगोस्लाविया को जारा, पेलागोसा, लागोस्टा एवं डाल्मेशिया के तट व इस्त्रीयन प्रायद्वीप दिया। ट्रीष्ट को युक्तराष्ट्र की सुरक्षा समिति के आधीन क्षेत्र घोषित किया गया, यूनान को रोड्स, डोडेकानीज द्वीप पुंज दिये; आल्बेनिया एवं इथियोपिया स्वाधीन हो गया तथा अफ्रीका के उपनिवेश-समूहो का परित्याग किया।

निरस्त्रीकरण—मित्रराष्ट्रो के समक्ष इटली ने सामरिक अस्त्रशस्त्रों का समर्पण किया एवं सेना की संख्या २ लाख ५० हजार नियत की गई। केवल दो युद्ध जहाज व विमान संख्या ३५० निर्धारित किये गये।

क्षतिपूर्ति—इटली को ४५ करोड़ रुपया क्षतिपूर्ति के रूप में रूस को, ५२ करोड़ रुपया जुगोस्लाविया को, ४६ करोड़ यूनान को, इथियोपिया को १० करोड़ व एल्बेनिया को सवा दो करोड़ रुपया सात वर्ष के मध्य देने का निर्णय किया गया।

बुल्गेरिया से सन्धि—बुल्गेरिया के सीमान्तों को १ जनवरी १९४१ के अनुसार पुनस्स्थापित किया गया, परन्तु रूमानियां से दक्षिण दोब्रुदूजा इसने प्राप्त किया। इसकी सेना ५५ हजार तक सीमित की गई। जल सेना व नौ सेना को साढ़े तीन हजार और विमान संख्या ९० तक निर्धारित की गई। २० करोड़ रुपया यूनान, १० करोड जुगोस्लाविया को आठ वर्ष में क्षतिपूर्ति के रूप में देने का निर्णय हुआ।

हंगेरीसे संधि--१ जनवरी १९३८ के समान सीमान्त निर्णीत किया गया। चैकोस्लोवाकिया और जुगोस्लाविया के अधिकृत प्रदेश छीन लिये गये एवं ट्रांसिल्वेनिया रूमानियां को दे दिया गया। तीन छोटे छोटे ग्राम ब्राटिग्लावा के निकट चैक-राष्ट्र को दिये गये। सैन्य संख्या ६५ हजार व विमान सख्या ९० निर्दिष्ट की गई। ९० करोड रुपया क्षतिपूर्ति रूस को, २२ करोड रुपया जुगोस्लाविया व २२ करोड चैकोस्लोवाकिया को आठ वर्ष में देने का निश्चय हुआ।

रूमानिया से सन्धि—१ जनवरी १९४१ के सीमान्त को मान्य किया गया— जिससे अनेक स्थान रूस को मिले व परिवर्तन मे ट्रांसिल्वेनिया इसे मिल गया। सेना को एक लाख २० हजार, विमान संख्या १५० तक सीमित की गई। क्षतिपूर्ति रूस को एक अरब पैंतीस करोड़ रुपया आठ वर्ष के मध्य में देना नियत हुआ।

फिनलैण्ड से सन्धि—पेटसामो, विपुरी, लैडोगा झील, रूस

को प्राप्त हुई व १ जनवरी १६४१ के सीमान्त का पुनस्स्थापन हुआ। सेना को चौतीस हजार चार सौ, नौ सेना चार हजार पांच सौ और विमान संख्या साठ तक सीमित की गई। एक अरब पैंतीस करोड़ रुपया क्षतिपूर्ति आठ वर्ष मे रूस को देने का निश्चय किया।

१० मार्च १६१७ में चतुर्मुख (चीन, अमेरिका, रूस, इंग्लैण्ड) राष्ट्रो के विदेश-मन्त्रियों का एक सम्मेलन जर्मनी और आष्ट्रिया की स्थायी सन्धि स्थापना के विषय मे हुआ, परन्तु प्रयत्न असफल था। १६४८ से ५२ तक आस्ट्रिया और जर्मनी की संन्धि के विषय में पेरिस, लंदन, अमेरिका व मास्को मे प्रतिवर्ष सम्मेलन होते है और प्रतिवर्ष ही समझौते का प्रयत्न रूस और अमेरिका के पारस्परिक विरोध पूर्ण रूप से असफल होता है। आज तक भी यह प्रयोग क्रियान्वित नही हो सका—जो कि संयुक्त राष्ट्रसंघ की असफलता का निदर्शन है।

जापान के साथ सन्धि—१६ दिसम्बर १६४५ में इंग्लैण्ड रूस और युक्तराष्ट्र के विदेश मन्त्रियो ने दूर-प्राच्य और जापान मे नियंत्रण रखने के लिए विशेष व्यवस्था की—जिसका नाम था—"दूरप्राच्य-जापान नियंत्रण-परिषद्"। आत्मसमर्पण के समय जापान ने जो जो शर्ते—निरस्त्री करण, असैनिकी करण आदि—स्वीकृत की थी, उनकी व्यावहारिकता टोकियो स्थित सर्वोच्च सेनानायक की अध्यक्षता मे होने लगी। इस परिषद् में मित्रराष्ट्र के सेनानायक, ब्रिटेन रूस और चीन के एक एक प्रतिनिधि थे। यह समिति दो सप्ताह मे एक बार अवश्य मिलेगी। जापान के विधान व शासन पर इसका पूर्ण अधिकार था। युद्ध के प्रति उत्तरदायी जापानीय अधिकारियो पर विचार हुआ—और उन्हे प्राणदण्ड दिया गया—प्रधान मंत्री तोगो उनमें उल्ले-

खनीय है। १६४५ से सितम्बर १६५१ जापान में यही प्रशासन चल रहा था।

४ सितम्बर १६५१ को ५२ राष्ट्रों ने जापान सन्धि शर्त को प्रस्तुत किया—जिससे जापान साम्राज्य पहले ३० लाख वर्ग-मील था, उसे एक लाख ३५ हजार ६ सौ मील तक सीमित कर दिया गया। ४६ राष्ट्रों ने सर्व सम्मति से इस सन्धि पर हस्ताक्षर किया। रूस, पोलैण्ड, चैकोस्लोवाकिया, भारतवर्ष और बर्मा इसमें सम्मिलित नहीं थे। (१) युद्धकालीन परिस्थिति का अवसान हुआ और जापानीय जनता की सार्वभौमता स्वीकृत की। (२) कोरिया, फार्मोसा पैस्काडोर्स, शाखालिन के एकांश, क्यूराइल द्वीप व प्रशान्त द्वीप पुंज का अधिकार जापान ने त्याग दिया। (३) जापान ने युक्त राष्ट्र की "न्यास-रक्षक-सभा" के आधीन में वंचित स्थानों के प्रशासन व संयुक्त राष्ट्र-संघ के सिद्धान्तों को मान्यता दी। (४) मित्रराष्ट्रों ने तीन मास के मध्य सैन्य अपसारण की प्रतिज्ञा की। (५) क्षतिपूर्ति के सम्बन्ध में यह निश्चय हुआ कि आर्थिक उत्थान के साथ पृथक् सन्धि द्वारा इसके अंकों का निश्चय होगा। (६) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा जापानी अभियुक्तों दिये गये दण्ड को मान्य किया गया। उसी दिन अमेरिका और जापान में पारस्परिक रक्षात्मक सन्धि हुई।

शान्ति व्यवस्था को क्रियान्वित करने का प्रमुख कार्यक्रम संयुक्त राष्ट्र-संघ है—जिसका विशद्-विवरण अग्रिम अध्याय में देखेंगे। ये सन्धियां उसी के प्रारूप हैं।

युद्ध के अभियोतियों को दण्ड—२ मई १६४५ मे राष्ट्रपति ट्रूमन प्रधान विचारपति जैक्शन की अध्यक्षता में जर्मनी के तेरह प्रमुख नेताओं को न्यूरेमबर्ग के एक विशेष न्यालय द्वारा विचार करने की व्यवस्था की। एक वर्ष पश्चात् १ अक्टूबर

४६) न्यायालय ने साच्ट, पपैन एवं फ्रिस्ट्स को निर्दोष निर्णय किया और तीन को आजन्म कारावास दिया और शेष को फांसी दिया। गोयेरिंग ने कारागार में आत्म हत्या किया। इस प्रकार शांति को भंग करने के लिए पराजित राष्ट्र के नेताओं को मित्र-राष्ट्रों ने मानवता के विरुद्ध अभियुक्त करके उचित दण्ड दिया।

१५—संयुक्त-राष्ट्र-संघ

प्रकृति का यह नियम है कि कोई भी राष्ट्र, जाति या प्राणी परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ साथ जब स्वयं भी परिवर्तित नहीं होता, तो उसका ध्वंस हो जाता है। अणुबम-युग की जनता और राजनैतिज्ञों ने राष्ट्र-संघ को एक नवीन प्रतीक, आकार और प्रकार दे कर १९३९ की असफलता के पश्चात् भी पुनर्जीवित किया। ६ जनवरी १९४१ में राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने चातुर्विध स्वाधीनताओं की घोषणा की (१)—प्रत्येक व्यक्ति और राष्ट्र को वाचिक और प्राकाशनिक स्वतन्त्रता हो। (२)—आर्थिक अभाव से सर्वथा मुक्ति हो। (३)—धार्मिक स्वाधीनता हो। (४)—सर्वविध आतंक से परित्राण हो। विश्व की चिरंतन शान्ति के ये ही मूल हैं। १४ अगस्त को चर्चिल और रूजवेल्ट ने *एटलांटिक—अधिकार—पत्र* की घोषणा की—जिसमें आत्म-निर्णय, स्वायन्त-शासन, व्यवसायिक समानता, नाजीवाद का ध्वंस, नौ नयन-स्वाधीनता, "सुरक्षा और शान्ति ही हमारा मूल ध्येय है—आक्रमण और साम्राज्य वृद्धि नहीं"—आदि धारणाएँ थीं। १ जनवरी १९४२ को इस सिद्धान्त को २६ राष्ट्रों ने स्वीकार किया व इसको क्रियात्मक के लिए धुरि राष्ट्र के ध्वंस का निश्चय किया। "संयुक्त राष्ट्र संघ" शब्द का इसी समय रूजवेल्ट ने व्यवहार किया था। संघ का अधिकार पत्र ५० राज्यों के प्रतिनिधियों ने (२५ अप्रेल से २६ जून १९४५ तक) "सान् फ्रांसिन्स्को के सम्मेलन" मे प्रस्तुत किया था। प्रतिनिधियों ने अगस्त १९४४ में *डाम्बर्टन ओक्स-सम्मेलन* में चीन, रूस,

इंग्लैण्ड और युक्त राष्ट्र के प्रतिनिधियों द्वारा निर्णीत मार्ग के आधार पर इसकी योजना तैयार की थी। २४ अक्टूबर १६४५ में ५१ राष्ट्रों ने अधिकार पत्र को मान्य किया एवं १० जनवरी १६४६ में इसकी साधारण समिति का प्रथम अधिवेशन वेस्ट-मिनिष्टर (इंग्लैण्ड) में हुआ।

(क)—संघ का अधिकार पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा संघर्ष का निवारण, संघ का प्रथम उद्देश्य था। सदस्य राष्ट्रों में मैत्री और सहयोग स्थापना दूसरा उद्देश्य था। समानता के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक समस्याओं का समाधान कर मानव को पूर्ण स्वाधीनता व मौलिक अधिकार देना संघ का तृतीय उद्देश्य है। उपर्युक्त उद्देश्यों को सफल बनाने के लिए संघ को एक केन्द्रीय-भूत बनाना इसका चतुर्थ उद्देश्य है।

सिद्धान्त—संघ में प्रत्येक सदस्य सार्वभौम समानता का अधिकारी है। सदस्य राष्ट्रों ने यह स्वीकार किया कि वे अन्तर्राष्ट्रीय वाद—विवादों का संघर्ष के बिना शान्ति द्वारा ही निर्णय करेंगे। यदि कोई राष्ट्र शान्ति भंग करेगा, तो उसका विरोध करेंगे व संघ उसका दमन करेगा। संघ यह प्रचेष्टा करेगा कि जो राष्ट्र इसमें सम्मिलित नहीं है—वे भी इन सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप दें। किसी राष्ट्र की अन्तरिक समस्या में हस्तक्षेप करने का अधिकार संघ का नहीं है। संघ ने निम्न भाषाओं चीनीया, इंग्लिश, फ्रेंच और रूसी को कार्यालयीय भाषा के रूप में मान्यता दी।

सदस्यता—संघ की सदस्यता प्रत्येक शान्ति प्रिय राष्ट्र के लिए थी—जो इसके सिद्धान्तों में श्रद्धा रखता हो और

संघ के लिए जो इसकी सदस्यता का पात्र है। जो राष्ट्र सान् फांसिस्को सम्मेलन में सम्मिलित थे—वे ही इसके संस्थापक सदस्य माने गये। यदि कोई भी सदस्य दुर्व्यवहार करे, तो सुरक्षा परिषद् के परामर्श पर उसकी सदस्यता स्थगित हो सकती है। आवश्यकता होने पर पूर्ण रूप से बहिष्कार भी किया जा सकता है। उसको पुनर्मान्यता भी यह परिषद् कर सकती है।

साधारण-समिति—संघ के ६ निम्न-लिखित अंग हैं। १—साधारण-समिति, २—सुरक्षा-परिषद्, ३—आर्थिक और सामाजिक समिति, ४—न्यास-रक्षा-समिति, ५—अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय, ६—संघीय सचिवालय। साधारण समिति ही संघ का प्रधान संस्थान है—जिसमे प्रत्येक राष्ट्र के ५ प्रतिनिधियो को मनोनीत कर भेजता है। परन्तु राष्ट्र का मत एक ही माना जाता है। महत्त्वपूर्ण प्रश्न—जैसे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा का परामर्श, सुरक्षा-परिषद् के अस्थायी सदस्यों का निर्वाचन, न्यास रक्षा-समिति के सदस्यों का निर्वाचन, नवीन सदस्यों का प्रवेश अथवा किसी सदस्य का बहिष्कार, अथवा आय व्यय का निर्णय आदि—उपस्थित सदस्यो के दो तृतीयांश मतो से निर्णीत होते हैं। साधारण-समिति का कार्यक्रम अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग स्थापन के साथ जटिल प्रश्नों एवं सुरक्षा परिषद् के परामर्शों पर विचार व विभिन्न अंगों के विवरण का अनुमोदन करना है। परन्तु सुरक्षा—परिषद् की समस्याओ मे यह हस्तक्षेप नहीं कर सकती है, गम्भीर प्रश्नों पर केवल वह इसकी दृष्टि आकर्षित कर सकती है। यह प्रतिवर्ष साधारणतः एक बार मिलती है व प्रत्येक वर्ष के लिए इसका अध्यक्ष चुना जाता है। किसी भी राष्ट्र के विरुद्ध यदि प्रस्ताव पास किया जाये, तो सदस्यों की सर्व सम्मति का प्रयोजन १९१९ के राष्ट्र संघ में था, परन्तु वर्तमान में दो तृतीयांश ही पर्याप्त है। साधारण समिति की ६

अतिरिक्त उपसमितियां हैं—राजनैतिक व सुरक्षा, वित्त व आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक, न्यास-रक्षक, प्राशासनिक और वैधानिक, सुरक्षा-परिषद् ।

सुरक्षा-परिषद्—संघ का सबसे अधिक प्रभावशाली अङ्ग सुरक्षा परिषद् है—जिसके ११ सदस्यो में स्थायी—चीन, फ्रांस, रूस, इंग्लैण्ड और अमेरिका है । अवशिष्ट ६ अस्थायी सदस्यों के दो वर्ष के लिए साधारण समिति चुनती है । पर एक ही सदस्य पुनः निर्वाचित नहीं हो सकता । वर्तमान मे अस्थायी सदस्य—ब्राजील · (१६५३) इक्वेडर (१६५२) भारतवर्ष (१६५२) नीदरलैण्ड (१६५३) तुर्की (१६५३) जुगोस्लाविया (१६५२ तक) हैं । संघ के उद्देश्यो और सिद्धान्तों को प्रायोगिक रूप देना, निरस्त्रीकरण की योजना तैयार करना, आक्रमणकारी राष्ट्र के विरुद्ध आर्थिक सम्बन्ध विच्छिन्न करना अथवा सामरिक शक्ति का प्रयोग करना, नवीन सदस्यों का अनुमोदन करना आदि इसके कार्यक्रम है । परन्तु मतदान के समय इसमे भी प्रत्येक सदस्य का एक मत है एवं सात मतों से ही साधारण समस्या का निर्णय होता है । संघर्ष के शान्तिपूर्ण समाधान के प्रश्न में सात में से ५ स्थायी सदस्यों का मत होना अनिवार्य है । कोई भी सदस्य—जो संघर्ष में सम्मिलित है—वह मतदान का अधिकारी नहीं है । संक्षेप मे स्थायी पंचमुख सदस्यो को सुरक्षा-परिषद् में निषेधाधिकार है । सुरक्षा-परिषद् के अधिवेशन प्रायः प्रति समय होता रहता है, इसीलिए संघ के प्रधान कार्यालय में सदस्यो का एक प्रतिनिधि प्रति-समय रहता है । संकट के समय विशिष्ट अतिरिक्त व्यक्तियो को भी विशेष आमन्त्रण द्वारा बुलाया जा सकता है । एक विशेष नियम द्वारा परिषद् को परामर्श देने के लिए एक सामरिक समिति अणुशक्ति समिति, अस्त्र-शस्त्र समिति—नियुक्त है ।

आर्थिक व सामाजिक—युद्ध के आर्थिक और सामाजिक कारणों के ध्वंस के लिए इस समिति में ३ वर्ष के लिए साधारण समिति द्वारा १८ सदस्य निर्वाचित होते हैं। अवसर प्राप्त सदस्य फिर से भी चुने जा सकते हैं। इसकी सम्मति साधारण बहुमत द्वारा होती है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य, खाद्य, कृषि, पुनस्स्थापन आदि विषयों का अध्ययन कर परामर्श देना व विवरण तैयार करना ही इसका कार्यक्रम है। इसकी ६ उप समिति हैं—यातायात समिति (१५ सदस्य), आर्थिक, नियुक्ति एवं उत्कर्ष समिति (१८ सदस्य), वित्त समिति (१५ सदस्य), अंक समिति (१५), जनसंख्या समिति (१२), सामाजिक समिति (१८), मानवीय अधिकार समिति (१८), महिला समिति (१५), मादक द्रव्य समिति (१५)। इसके अतिरिक्त यूरोप, एशिया एवं दूर-प्राच्य व दक्षिण अमेरिका के लिए तीन अतिरिक्त आर्थिक समितियां वर्तमान मे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय वित्त, खाद्य और कृषि विश्व स्वास्थ्य, व्यापार, विमान, शिक्षा, विज्ञान एवं सांस्कृतिक मुद्रा डाक और तार श्रम, शरणार्थी-पुनस्स्थापन, संकटापन्न बालक आदि के लिए भी विशेष उप समितियां हैं।

न्यास रक्षा समिति—अतीत के राष्ट्रसघ के आदिष्ट प्रदेशों को जो द्वितीय महायुद्ध के समय धुरी राष्ट्रों द्वारा अधिकृत थे—मुक्त कर प्रस्तुत समिति के आधीन किया गया। पराजित राष्ट्रों के उपनिवेश भी इसी के अधिकार में आगये। न्यास रक्षित प्रदेशों मे जनता को स्वायत्त शासन और स्वाधीन बनाने का क्रमशः प्रबन्ध करना, उसकी शिक्षा स्वास्थ्य, न्याय आदि की व्यवस्था और विशेष निरीक्षण द्वारा जनता के अभाव दूर करना इसका कार्यक्रम है। इसमे ५ सुरक्षा-परिषद् एवं इनमे प्रशासन व्यवस्थाकर्ता राष्ट्र और साधारण समिति द्वारा निर्वाचित कुछ

सदस्य होते हैं। वर्तमान में नाऊरु और न्यूगिनी (आस्ट्रेलिया), रुवाण्डा, उरुण्डी (बेल्जियम), कैमेरुन और तोगोलैण्ड के अर्द्धांश (फ्रांस), सोमालिलैण्ड (इटली) पश्चिम समोवा (न्यूजीलैण्ड), कैमेरुन व तोगोलैण्ड के अर्द्धांश, टंगानाइका (इंग्लैण्ड), प्रशान्त द्वीप पुंज व कैरोलाइन्स (अमेरिका) इसके आधीन है।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय–नीदरलैण्ड की राजधानी हैग में संघ का १५ न्यायाधीशों का उच्च न्यायालय है—जो कि ६ वर्ष के लिए साधारण समिति एवं सुरक्षा परिषद् द्वारा निर्वाचित होता है। परन्तु एक ही राष्ट्र से दो न्यायाधीश नहीं चुने जा सकते। किसी भी विधान विषयक समस्या में सुरक्षा परिषद् अथवा साधारण समिति को यह परामर्श दे सकता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय नियम भंग के अभियुक्तो को उचित दंड देता है। वर्तमान मे (भारतवर्ष के योग्य नियम विशेषज्ञ) श्री बी-एन् राव भी इसमे सम्मिलित है।

सचिवालय—संघ के सचिवालय के अधिकारियों को सुरक्षा-परिषद् के परामर्श से साधारण-समिति निर्वाचित करती है—जो प्रतिवर्ष का विवरण प्रस्तुत करते हैं। इसमें वर्तमान में २५०० कर्मचारी हैं और नार्वे के श्री ट्रिग्वेली ५ वर्ष के लिए १ फर्वरी १९४६ में प्रधान सचिव निर्वाचित हुए थे व १ नवम्बर १९५० में इनका कार्यकाल तीन वर्ष के लिए और भी बढ़ा दिया गया। योग्यता, निपुणता, साधुता और नैतिकता की विशेषता प्राप्त करने के लिए भौगोलिक दृष्टि से विभिन्न राष्ट्रों के कर्मचारी यहां नियुक्त किये जाते हैं। सचिवालय के मुख्य अंग कार्यकारिणी--कार्यालय के आठ विभाग हैं—प्रशासन, वित्त, प्रचार, न्यास-रक्षा, वैधानिक, सामाजिक, सुरक्षा-सम्मे-

लन। सचिवालय किसी भी राष्ट्र से अपने कर्तव्य के पालन के सम्बन्ध में सहायता व परामर्श नहीं ले सकता है।

(ख)—मानव के आधार भूत अधिकारों की घोषणा—

संघ की आर्थिक और सामाजिक समिति ने १६४६ में १८ सदस्यों की एक विशेष उप समिति को श्रीमती रूजवेल्ट की अध्यक्षता में आधार भूत अधिकारों की योजना बनाने का अधिकार दिया। उपाध्यक्ष चीन के डा० च्यांग, फ्रांस के प्रो० रेने कासिन आदि ने मिल कर इसका निर्माण किया। पेरिस में संघ की साधारण–समिति के अधिवेशन में (१० दिसम्बर १६४८) ५८ सदस्य राष्ट्रों में से ४८ की स्वीकृति से यह घोषणा पत्र अनुमोदित हुआ।

इसके अनुसार प्रत्येक मानव की समानता का दैव सिद्ध अधिकार ही स्वाधीनता, न्याय एवं विश्व-शान्ति का आधार है। इसकी अनेक धाराएँ है--जो मानव को राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक सामाजिक और नागरिक अधिकार प्रदान करती हैं। दासत्व, अन्याय, अत्याचर, दुर्दंड, नृशंस-वन्दिता, पत्र-व्यवहार व पारिवारिक जीवन में हस्तक्षेप आदि को अवैधानिक कर दिया गया। प्रत्येक व्यक्ति को स्वाधीनता, जीवन--रक्षा, आवागमन और आश्रय-प्रार्थिता की स्वतन्त्रता प्रदान की गई। वाचिक, संपत्ति, शिक्षा और बेकारी से मुक्ति के अधिकार दिये गये। इसकी सब से महत्त्व पूर्ण धारा यह थी कि प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र और समान अधिकारी है व सार्वजनिक शान्ति, नैतिक उन्नति के प्रति उत्तरदायी है। इसका अभिप्राय यह नहीं होना चाहिये कि इससे किसी विशेष राष्ट्र या व्यक्ति के विशेष अधिकारों का अवसान हो जाये।

यद्यपि इसमें अनेक प्रकार की त्रुटियां हैं, परन्तु उनको व्यावहारिक रूप देना कहां तक संभाव है, यह निर्णय भविष्य ही करेगा। विश्व की जनता के समर्थन और सहयोग से इसका क्रियान्वयन हो सकता है। श्रीमती रूजवेल्ट ने सत्य ही कहा था— "मानव के उद्देश्य और लक्ष्य को अब निर्दिष्ट किया गया है, इसी लिए हमारा विश्वास है कि भविष्य मे प्रत्येक व्यक्ति उद्यम और उत्साह से इसको प्रायोगिक रूप देगा"।

ग—संघ के कार्यक्रम

इन्डोनेशिया—प्रथम महायुद्ध के समय इन्डोनेशिया जापान के अधीन था एवं इन्डोनेशिया-प्रशासन लोकनायक सोयेकार्णो के नेतृत्व में चल रहा था। जापान के पतन के पश्चात् मित्रराष्ट्रों के सेनानायक माउन्ट बैटन ने इन्डोनेशिया पर अधिकार करने का प्रयत्न किया, पर जनता ने तीव्र प्रतिरोध किया। फरवरी १६४६ मे हालैण्ड (डच) प्रशासन ने घोषणा की कि द्वितीय महायुद्ध से पूर्व इन्डोनेशिया उसका उपनिवेश था, इसीलिए डच साम्राज्य संघ मे उसे स्वायत्त रूप से पुनस्स्थापित किया जायेगा। परन्तु गणतन्त्र के परिचालक सोयेकार्णो ने इसका विरोध किया व जब डच-सेना ने इन्डोनेशिया में अवतरण किया, तो उसमे युद्ध प्रारम्भ किया। प्रबल संघर्ष के पश्चात् दोनों में २५ मार्च १६४७ को ब्रिटिश मध्यस्थता से लिंगद्जाति-संधि हुई—जिसके अनुसार स्वाधीन इन्डोनेशिया—गणतन्त्र को संयुक्त इन्डोनेशिया राज्यसंघ का एक अंग बनाया गया—जिसका प्रयोग जनवरी १६४६ से होगा। परन्तु डच प्रशासन ने जुलाई १६४७ में दमन नीति प्रारम्भ की व भारतवर्ष और आस्ट्रेलिया ने सुरक्षा-परिषद् के समक्ष इस प्रश्न को प्रस्तुत किया। आस्ट्रेलिया, बेल्जियम और युक्तराष्ट्र की एक मैत्री—समिति को सुरक्षा

परिषद् ने जनवरी १९४८ में इन्डोनेशिया भेजा। परिणाम में "रानवील" जहाज में पुनः समझौता हुआ—जिसके अनुसार जावा, सुमात्रा और इन्डोनेशिया ने स्वतन्त्र होते हुए भी एक संयुक्त राज्य-संघ स्थापित करने का निश्चय किया। परन्तु दिसम्बर १९४८ में डच प्रशासन ने इस सन्धि की अवहेलना करके प्रादेशिक संघर्षों व गृह युद्धों का सुयोग पाकर दिसम्बर १९४८ में आक्रमण व राजधानी जोग जकार्ता को हस्तगत किया व गणतन्त्र के प्रमुख नेताओं को बन्दी बनाया। देशभक्तों ने संघर्ष जारी रखा व १९४९ में दिल्ली के "एशिया-सम्मेलन" में इन्डोनेशिया को सार्वभौम राष्ट्र माना गया। सुरक्षापरिषद् ने इस प्रस्ताव को मान्यता दी एवं आज इन्डोनेशिया राष्ट्रपति सोयेकार्णो के नेतृत्व में पूर्ण स्वतन्त्र है।

पैलेस्टीन—प्रथम महायुद्ध के अनन्तर पैलेस्टीन इंग्लैण्ड का आदिष्ट प्रदेश था। ३० वर्ष तक यहाँ के ब्रिटिश प्रशासन ने किस प्रकार अरब और यहूदी समस्या का समाधान किया, यह हम देख चुके हैं। द्वितीय महायुद्ध के बाद बहुसंख्यक यहूदी मातृ-भूमि में लौटने लगे एवं इतिहास में "यहूदीवाद" अन्दोलन प्रारम्भ हुआ। यहां के अरब अधिवासियों ने इसका तीव्र प्रतिवाद किया। २ अप्रैल १९४७ मे ब्रिटेन ने इस समस्या को साधारण समिति में प्रस्तुत किया एवं समिति ने एक उपसमिति को विशेष निरीक्षण के लिए भेजा। इसने १५०० पृष्ठ का एक विवरण प्रस्तुत कर तीन भागों में पैलेस्टीन के विभाजन-एक अरब राज्य, एक यहूदी राज्य और जेरूसालेम नगर अन्तर्राष्ट्रीय न्यास-रक्षा के आधीन का निर्णय किया। इस योजना का संघ ने समर्थन किया, परन्तु अपना प्रतिनिधि न होने के कारण अरब ने उसे अमान्य किया—वे इसे मुसलमान राज्य समझते थे। प्रस्ताव को प्रयोगिक रूप देने के लिए संघ ने सामरिक

अधिकारियों को भेजा, किन्तु दोनो दलो में (यहूदी व अरब) संघर्ष प्रारम्भ हो गया। मुसलमान राष्ट्रों ने—मिश्र, ईराक सीरिया आदि—सम्मिलित होकर अरबो को सहायता दी। १४ मई को यहूदियो ने इसको स्वाधीन राष्ट्र (दूसरा दल) के नाम से घोषित किया। इस समस्या के हल के लिए स्वीडैन के प्रतिनिधि काउण्ट बर्नाडोट को मध्यस्थ बना कर भेजा गया, परन्तु १ सितम्बर १६४८ में यहूदियो ने इसे मार दिया। संघ की सहायता से इसराइल दृढ बना और दोनो मे अस्थाई शांति स्थापित हो गई। वर्तमान मे इसराइल संघ का सदस्य है।

यूनान——जर्मन सेना से मुक्ति पा कर १६४५ मे यूनान की जनता दो दलों में विभक्त थी–साम्यवादी व राजसत्तावादी वा स्वैरतन्त्रवादी। राजसत्ता ने प्रमुख पादरी डामसकिन्स के नेतृत्त्व में स्वतन्त्र यूनान प्रशासन स्थापित किया व अपने अनुयायियों को "पोपुलिस्ट" कहने लगे। साम्यवादियो ने इनका तीव्र विरोध किया—जिससे १ मार्च को विधान सभा का निर्वाचन हुआ—जिसमें "पोपुलिस्ट" विजयी हुए व साल्दरिस प्रधानमन्त्री निर्वाचित हुआ। साम्यवादियो का बहिष्कार किया गया। भूत पूर्व राजा जार्ज यूनान लौट आया एवं सर्व जनमत ग्रहण से राजवंश के पुनस्स्थापन का निर्णय किया गया। यूक्रेन के प्रतिनिधि ने संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष यूनान की अशान्ति की व्याख्या की, क्यो कि इस समय ऐल्बेनिया, जुगोस्लाविया और बल्गेरिया यूनान की सीमा पर हस्तक्षेप कर रहे थे। जनवरी १६४७ में एक विशेष उपसमिति यूनान आई व, पोपुलिस्ट प्रशासन को अशान्ति के लिए दायी सिद्ध किया, क्यों कि उसने साम्यवादियो को बहिष्कृत किया था। अभी भी यह संघर्ष चल ही रहा है व एक विशेष वल्कान—समिति इसके समाधान में व्यस्त है।

जर्मन--समस्या—जर्मनी के चार भागों में १६४६ के मध्य मे तीन भाग (फ्रांस ब्रिटिश एवं अमेरिका--प्रदेशों का क्षेत्र-फल) सम्मिलित हो गये-जिसे मिलाकर पश्चिम जर्मन प्रशासन स्थापित किया गया। अप्रेल में एटलांटिक संधि के अनुसार जर्मनी ५ पुनर्गठन का निश्चय किया गया एवं ईसाई प्रजातन्त्र दल का नेता एडीनोरजन-मत से प्रधानमन्त्री निर्वाचित हुआ। पूर्व जर्मनी में रूस ने साम्यवादी प्रशासन विस्तृत किया एवं बर्लिन का अवरोध (१६४८) जर्मन एकता को रोकने के लिए प्रारम्भ किया। मई १६६६ मे इस अवरोध को रूस ने भंग किया और वर्तमान में जर्मनी पूर्णांशः विभाजित है। रूस उसे साम्यवादी बनाना चाहता है व पाश्चात्त्य शक्ति उसके विरुद्ध प्रजातन्त्र बनाने के यत्न में है।

काश्मीर—भारत--संघ में १६४६ में काश्मीर के सम्मिलित होने से पाकिस्तान ने इस पर गुप्त रूप से आक्रमण किये-जिसकी रक्षा के लिए भारत ने सेनाएँ भेजी। १ जनवरी १६४८ में भारतीय प्रतिनिधि ने सुरक्षा परिषद् के समक्ष इस प्रश्न को रखा। ३ वर्ष से अधिक संघीय प्रयत्नो के फल स्वरूप १ जनवरी १६५० में भारत और पाकिस्तान में युद्ध विराम संधि हो गई। काश्मीर के भविष्य निर्णय के लिए संयुक्त राष्ट्रीय प्रतिनिधि डा० फैंक ग्राहम के अधिनायकत्त्व में जनमत संग्रह व्यवस्था एवं विसैनिकीकरण के प्रश्न पर भारतीय तथा पाकिस्तानी प्रतिनिधियो से ११ सितम्बर १६५२ मे जेनेवा में सन्तोषजनक वार्तालाप समाप्त हुआ है।

इटलीय उपनिवेश—पुरातन इटलीय उपनिवेशों में संयुक्त राष्ट्र संघ के सहयोग से लीबिया को १६५२ में स्वतन्त्रता दी गई है। सीरिया, लेबानन, ईरान की तेल-समस्या आदि का भी शान्ति पूर्ण उपायों से समाधान किया गया है। परन्तु फ्रांसीय

उपनिवेश ट्यूनीशिया मे सीदी लामिन के नेतृत्त्व में स्वतन्त्रता के वर्त्तमान आन्दोलन को (जुलाई १९५२.) सुरक्षा परिषद् ने आन्तरिक समस्या समझ कर विचारार्थ नहीं लिया।

कोरिया—साम्यवादी रूस ने उत्तर कोरिया में १९४५-५० तक अपने अधिकार को विस्तृत कर समग्र कोरिया को एकत्रित करने के लिए प्रचार प्रारम्भ किया। अमेरिका ने दक्षिण कोरिया मे से सैन्य अपसारण (जून १९४९) कर प्रजातन्त्र प्रशासन, निष्पक्ष निर्वाचन द्वारा, स्थापित किया। रूस ने इसे अवैध घोषित किया व २५ जून १९५० में ३८ वी रेखांश को पार कर उत्तरी कोरिया पर आक्रमण कर दिया—जिससे शान्ति भंग हो गई। सुरक्षा परिषद् ने उत्तर कोरिया से सेना को पीछे हटने की मांग को व इस प्रस्ताव को उत्तर कोरिया द्वारा अमान्य करने पर युक्त राष्ट्र अपनी सेना को सुरक्षा-परिषद् की सम्मति (दो स्थायी सदस्य राष्ट्रों की अनुपस्थिति—रूस तथा चीन होने पर भी) से भेजा। रूस ने इसे पारस्परिक युद्ध मे अवैधानिक हस्तक्षेप एवं अधिकार—पत्र की अवहेलना घोषित की। आज भी कोरिया में रण-विराम का परस्पर बारम्बार असफल प्रय त्न हो रहा है। भारतवर्ष ने २८ जुलाई १९५२ को एक प्रतिनिधि रण-विराम के लिए गुप्त वार्तालाप करने को भेजा है।

आर्थिक व सामाजिक सहयोग—संघ ने विशेष शाखा-समितियों द्वारा अविकसित देशों को औद्योगिक सहायता प्रदान की है। खाद्य के उत्पादन और विभाजन की उन्नति की है व पिछड़े हुए राष्ट्रो में महिलाओं को राजनैतिक अधिकार दिये। पुनर्निर्माण और आर्थिक अभाव के लिए वांछित ऋण की पूर्ति की। अन्तर्राष्ट्रीय कोष स्थापित किया। सार्वदेशिक डाक व तार की व्यवस्था की। वायु और समुद्र मार्ग पर सुरक्षित यात्रा, विस्थापितो के लिए निकट पूर्वी देशों में सेवा-समितियाँ, अन्त-

राष्ट्रीय शरणार्थी संघ, अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की वृद्धि, आकस्मिक बालनिधि द्वारा लाखों अनाथ बालकों की रक्षा, संक्रामक रोगों का विनाश, सार्वभौम विश्वनियमों का निर्माण आदि के द्वारा सम्पूर्ण विश्व को एकता और समानता की सुविधाएँ दी।

समीक्षा—प्राचीन राष्ट्रसंघ से संयुक्त राष्ट्रसंघ की तुलना स्वाभाविक है। इन दोनों में अनेक अन्तर है—प्राचीन राष्ट्र सघ का प्रतिश्रव जर्मन-संधि का एक अंग था, परन्तु संयुक्तराष्ट्र संघ का अधिकार पत्र उस संधिपत्र से पूर्ण विभिन्न हैं। प्राचीन संघ ने आदिष्ट-प्रणाली का प्रवर्त्तन किया था, उसके स्थान पर वर्त्तमान संघ ने न्यास-रक्षा-प्रणाली को मान्यता देकर मूक और दलित जनता को स्वतन्त्रता की ओर ले जाने का दायित्त्व ग्रहण किया है। पारस्परिक विरोधिता से प्राचीन संघ दुर्बल था, पर आज का सघ आक्रमणकारी राष्ट्रों पर सामरिक शक्ति प्रयोग करने का भी अधिकार रखता है। प्राचीन संघ से प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को निषेधाधिकार था, परन्तु इसमें केवल ५ राष्ट्रों को ही यह अधिकार प्राप्त है। पूर्व संघ दूर की समस्याओं का केवल प्रस्तावों द्वारा समाधान करता था, पर आज प्रदर्शन, निरीक्षण, जांच, जनमत-ग्रहण आदि के द्वारा समस्या को पूर्ण स्फीत कर हल किया जाता है।

मानव का हृदय आज राष्ट्रसंघ के भविष्य के सम्बन्ध मे अनेक कल्पनायें करता है, क्योंकि शक्तिशाली राष्ट्रों में मतभेद होने के कारण कोई निर्णय नहीं हो रहा है— जैसे—अणुशक्ति पर नियंत्रण, निरस्त्रीकरण कार्यक्रम, सैनिक शक्ति को सुरक्षा-परिषद् के अधिकार में देना आदि। १६५० में सोवियट रूस व अन्य कई राष्ट्रों ने साधारण-समिति में सम्मिलित होने से अस्वीकार किया, क्योंकि उसमें चीन की राष्ट्रीय सरकार का प्रतिनिधि सदस्य है। आज भी जर्मनी और आस्ट्रिया से संधि नहीं

हो पाई है एवं ६० सदस्य राष्ट्रों में से-५३ एक ओर व ७ एक ओर के—दो गुट हैं। प्रथम अमेरिका गुट और दूसरा सोवियट गुट। दक्षिण अमेरिका के राष्ट्रों को २० मत होने से किसी भी प्रश्न में अमेरिका साधारण समिति में दो तृतीयांश बहुमत रखता है, परन्तु रूस इन प्रस्तावों को कोई मान्यता नही देता, इसीलिए व्यावहारिक रूप स्थगित हो जाता है। समस्या यह है कि युद्ध की विभीषिका से मानव जाति किस प्रकार परित्राण पा सकती है! इसका उत्तर १६४७ में २० राष्ट्रों के ४०० सदस्यों ने मन्ट्रेक्स में विश्व संघीय प्रशासन स्थापित करने की योजना पास कर दिया। साधारण-समिति को एक विश्व-लोक-सभा के रूप में परिणत करना चाहिए व प्रत्येक स्वाधीन राष्ट्र इसमें सम्मिलित होना चाहिए। प्रतिनिधित्व जनसंख्या के आनुपातिक स्वरूप के आधार पर हो। संक्षेप में संघ की असफलता के अनेक कारणों में एक कारण यह भी है कि इसके सदस्य राष्ट्रों द्वारा मनोनीत हैं—जनता द्वारा नहीं। फिर भी विश्व को इससे अनेक आशाएँ हैं।

—※—

१६—वर्तमान काल

द्वितीय महायुद्ध के अनन्तर आज यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि संसार में पुनः साम्यवाद और प्रजातन्त्रवाद का संघर्ष सुनिश्चित है। संसार का विभाजन सैद्धान्तिक दृष्टि से पुनः प्रारम्भ हो गया है। १७ मार्च १९४८ को फ्रांस, बेल्जियम, ब्रिटेन, इंग्लैण्ड और लक्सेम्बर्ग के प्रतिनिधियों ने पश्चिमी यूरोप के ५ राष्ट्रों का एक संघ स्थापित किया एवं पारस्परिक सहायता के लिए एक परामर्श समिति नियुक्त की। ४ अप्रैल १९४९ में अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ्रांस, कनाडा, बेल्जियम, हालैण्ड, डेन्मार्क, नार्वे, लक्सेम्बर्ग व पुर्त्तगाल ने सभ्यता, स्वाधीनता और राष्ट्र रक्षा के लिए *उत्तर-एटालांटिक-संधि* पर हस्ताक्षर किये—जिसके अनुसार यदि एक पर आक्रमण हुआ, तो उसे सब पर समझा जायेगा और सामूहिक रूप से शत्रु का ध्वंस किया जायेगा। ५ मई को पश्चिम यूरोप के प्रमुख राष्ट्रो ने यूरोपीय परामर्श समिति की स्थापना साम्यवाद-प्रगति को अवरुद्ध करने के लिए की। १ सितम्बर १९५१ को आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और अमेरिका ने प्रशान्त महासागर में पारस्परिक सुरक्षा एवं सहयोग से *"त्रिराष्ट्रीय-शान्ति-संधि"* के नाम से आक्रमण-कारी शत्रु के विरोध का निश्चय किया। ७ अगस्त १९५२ को इन तीनो राष्ट्रों का होनोलुलू में एक विशेष अधिवेशन हुआ—जिसमें सामरिक रक्षा समिति युक्त राष्ट्र के सेनापति रेडफोर्ड के नेतृत्त्व में नियुक्त की गई। आकस्मिक आक्रमण के लिए आज प्रशान्त सागर में पूर्ण सामरिक व्यवस्था है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि अमेरिका साम्यवाद के विरोध के लिए दूर-प्राच्य,

पश्चिम यूरोप और प्रशान्त महासागर में नवीन गुट निर्माण कर सचेष्ट है।

१९४५ से १९५२ तक के रूस के कार्यक्रमों पर विचार करते हुए अमेरिका की मुख्य समिति के सदस्य वैन्डेनबर्ग ने कहा है– "अमेरिका अणुबम और एटलांटिक संधि से साम्यवाद को ध्वस्त करना चाहता है व रूस—जो कि वर्तमान सभ्यता की सब से जटिल समस्या है। वह दूर-प्राच्य और पूर्व यूरोप में क्रमशः अपने प्रभाव को विस्तृत कर रहा है"। हम अध्ययन कर चुके हैं कि रूस ने समग्र विश्व में पूंजीवाद का ध्वंस कर साम्यवाद की स्थापना को अपना प्रधान लक्ष्य बनाया है। १९४६ से ५० तक के काल मे रूस ने आर्थिक और व्यावसायिक जीवन को व्यवस्थित करने के लिए नवीन पंचवर्षीय योजना को क्रियान्वित किया। पूंजीपति अमेरिका के आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए इसने अणुबम का आविष्कार किया और परमाणु शक्ति का औद्योगिक प्रयोग किया। २५ अक्टूबर १९४७ को इसने विश्व में विविध राष्ट्रों के साम्यवादी दल के पारस्परिक सहयोग, समन्वय, सहायता और साम्यवादी सिद्धान्तों के प्रचार के लिए "कमिनफार्म"(अन्तराष्ट्रीय साम्यवादी संस्थान)का पुनर्गठन किया एवं ट्राट्स्की के स्वप्न "अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्ति" के क्रियान्वयन का श्रीगणेश किया। इसी समय (जुलाई १९४७) मार्शल योजना द्वारा अमेरिका के राष्ट्रपति ट्रूमैन ने यूरोप के विभिन्न ध्वस्त राष्ट्रों को पुनस्स्थापित करने के लिए चार वर्ष में ७ अरब करोड़ रुपया व्यय करने का निश्चय किया व जून १९४८ के पश्चात् से अब तक ४ अरब करोड़ रुपया इस योजना में लगा दिया। रूस की दृष्टि में यह योजना साम्यवाद के विरुद्ध है—अतः जुगोस्लाविया, बुल्गेरिया, यूनान, कोरिया चीन, मलाया, बर्मा आदि स्थानों पर उसने प्रभाव-क्षेत्र

विस्तृत करना प्रारम्भ किया। २९ नवम्बर १९४५ में गणतन्त्र जुगोस्लाविया की स्थापना मार्शल टीटो के नेतृत्त्व में हुई। टीटो एक उग्र साम्यवादी, स्वाधीनता प्रिय देश-भक्त है। २८ जून १९४८ में अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी संस्थान ने टीटो-वाद की तीव्र निन्दा की, क्योंकि टीटो ने राष्ट्र की उन्नति को प्रमुखता दी व रूस के प्राधान्य की अवहेलना की। इससे मतभेद होते हुए भी हम जुगोस्लाविया को आज साम्यवादी राष्ट्र ही समझते हैं। अप्रैल में रूमानिया मे भी साम्यवादी सिद्धान्तों पर निर्मित नवीन शासन विधान सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ। अगस्त १९४७ को हंगेरी के नवीन विधान के अनुसार निर्वाचन मे साम्यवादी दल ने बहुमत प्राप्त किया। एल्बेनिया. १९४६ में होक्शा के नेतृत्त्व मे यद्यपि गणतन्त्र घोपित हुआ, फिर भी मेहमत सेहू की अध्यक्षता में आज वहां साम्यवादी प्रचार प्रारभ हो गया है। आस्ट्रिया में कार्ल रेनर के नेतृत्त्व में साम्यवाद की प्रगति हो रही है। यूनान मे सेनापति मार्क्स २४ सितम्बर १९४९से साम्यवादी प्रशासन स्थापित कर राजा पाल प्रथम का विरोध कर रहा है। पोलैण्ड की लोक सभा में साइरेनिक्वीस के नेतृत्त्व में साम्यवादी दल की प्रभुता स्थापित हुई है।

साम्यवादी चीन—हम अध्ययन कर चुके है कि चीन १९४५ तक जापान द्वारा क्रमशः ध्वस्त हो रहा था। जापान की पराजय के पश्चात् राष्ट्रीय चीन के नेता च्यांग ने अमेरिका की सहायता से (प्रतिवर्ष एक अरब रुपया) दक्षिणी चीन को संगठित कर १९४६ में एक विधान-सभा का आमन्त्रण किया। एक वर्ष बाद नवीन विधान में लोक सभा के तीन हजार सदस्य जनता के आधार-भूत अधिकार पर ६ वर्ष के लिए चुनने के नियम पास किये। अप्रैल १९४८ मे च्यांगकाइ-शेक बहुमत से राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ, परन्तु साम्यवादी प्रचार ने चीन उत्तर

चीन की जनता को आकर्षित किया। युद्ध के परिणाम से आर्थिक संकट, खाद्याभाव आदि ने साम्यवादी नेता माओ-त्सुंग के नेतृत्व में जनता को प्रेरणा दी व २३ अप्रैल १९४९ को चीन की राजधानी नानकिंग को हस्तगत किया। च्यांगकाइ-शेक और राष्ट्रीय प्रशासन ने फार्मोसा द्वीप में आश्रय लिया। साम्य-वादी प्रशासन ने १ अक्टूबर १९४९ को चीन को माओत्सुंग की अधिनायकता मे गणतन्त्र घोषित किया।

माओ ने चीन के हूनान प्रदेश के एक साधारण कृषक परिवार में जन्म लिया था। यूनान नार्मल स्कूल में शिक्षा समाप्त करने के अनन्तर च्यांग के सहायक के रूप में तत्कालीन चीनीय अधिनायक सन्-यात्-सेन के तत्त्वावधान मे इसने स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया। १९१७ की रूस क्रांति ने माओ को प्रभावित किया व इसने सर्व—प्रथम साम्यवादी घोषणा पत्र का अध्ययन किया। जिस समय च्यांग ने साम्यवादियों को अपने दल से बहिष्कृत किया—उस समय यह भी उनमें एक था(१९२६)। जापान जब चीन पर आक्रमण कर रहा था तो माओ साम्यवादी प्रचार कर जनता के संगठन में लगा(१९३२)। १९४५मे इसने उत्तर चीन को विजय कर राष्ट्रीयवादी चीन के विरुद्ध युद्ध घोषणा की व ५ वर्ष बाद यह पूर्ण सफल हो गया। भारतवष, रूस और इंग्लैण्ड ने इसके शासन को मान्यता दी, यद्यपि अमेरिका और जापान ने इसे स्वीकार नहीं किया और आज भी यह संयुक्त-राष्ट्र-संघ का सदस्य नहीं है। जुलाई १९५२ में भारतवर्ष में एक विशेष सांस्कृतिक शिष्टमण्डल प्रसिद्ध समा-जवादी नेता आचार्य नरेन्द्र देव के नेतृत्व मे भेजा। आचार्य का कथन है कि "चीन की शैक्षणिक प्रगति साम्यवादी प्रशासन के तत्त्वावधान में इतनी अधिक हुई है कि २६ दिन में दुर्बोध्य चीन भाषा को आप सीख सकते हैं और सर्वत्र सार्वजनिक शिक्षा

अनिवार्य है"। ४५ करोड़ चीन जनता यदि साम्यवादी प्रचार से ओतप्रोत हो गई तो ४० करोड़ भारतवासियों की स्थिति गंभीर हो जायेगी। क्यों कि नवम्बर १९५० के पश्चात् तिब्बत चीन के अधिकार मे आ गया है। लेनिन ने सत्य ही कहा था—"सोवियट गणतन्त्र साम्यवादी राष्ट्रों के साथ अधिक दिन मैत्री नहीं रख सकता, अंत मे या तो यह या वह—इन दोनो में एक दूसरे को विजय करेगा—भविष्य के संघर्ष से यह प्रतीत होता है कि अब इसके निर्णय का समय निकट आ गया है"।

नवीन साम्राज्यसंघ—जुलाई १९४५ की ·ब्रिटेन लोकसभा के निर्वाचन में श्रमिक नेता एटली प्रधान मन्त्री चुना गया। इसके प्रशासन काल (४५ से ५०) में औपनिवेशक स्वायत्त-शासन के आन्दोलन को प्रायोगिक रूप दिया गया। १५ अगस्त १९४७ को भारतवर्ष और पाकिस्तान को विभाजित कर स्वाधीनता दी गई। २६ जनवरी १९५० में भारत में नवीन गण-तन्त्र विधान स्वीकृत हुआ एवं यह सर्वप्रभुत्व-संपन्न-गणराज्य घोषित हुआ। नवम्बर ,१९४७ में लंका को भी स्वाधीनता दी गई। जनवरी १९४८ मे मलाया प्रायद्वीप के ९ राजसत्तावादी राज्यों का एक संघ स्थापित किया गया, परन्तु सिंगापुर को इस संघ से पूर्ण पृथक रखा गया। बर्मा को २४ सितम्बर १९४७ में सर्व-सम्मति से नवीन विधान प्रस्तुत करने के पश्चात् प्रधान मन्त्री थूयांग सांन के नेतृत्व में स्वाधीनता दी गई। पाकिस्तान अब भी विधान को प्रस्तुत न होने के कारण ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति उत्तरदायी है। ९ जनवरी १९५० मे साम्राज्य संघ के विदेश-मंत्रियों का एक सम्मेलन कोलम्बो में हुआ—लंका के प्रधान मन्त्री सेनानायक इसके अध्यक्ष थे। दक्षिण-पूर्वी एशिया का आर्थिक उत्कर्ष, साम्यवादी प्रचार का प्रतिरोध, जापान से स्थायी संधि, एशिया की रक्षा आदि प्रमुख समस्याओं पर इसने विचार

किया। मई १९५० को सिडनी में सात साम्राज्य संघ के सदस्य राष्ट्रों ने कोलम्बो संमेलन के प्रस्तावानुसार १० करोड़ रुपया आर्थिक सहायता तीन वर्ष में दक्षिण पूर्व एशिया को देने का निश्चय किया। इंग्लैण्ड के सार्वजनिक निर्वाचन में (१९५१) संकीर्णवादी नेता चर्चिल विजयी हुआ और आज भी वही इंग्लैण्ड का प्रधान-मन्त्री है।

६ फरवरी १९५२ को सम्राट् जार्ज षष्ठ का आकस्मिक देहावसान हो गया—उनकी पुत्री श्रीमती एलिजावेथ द्वितीय ८ फरवरी को ब्रिटिश साम्राज्य संघ की सम्राज्ञी घोषित की गई।

मिश्र—२६ जनवरी १९५२ को मिश्र ने १९३६ की इंग्लैण्ड संधि को भंग कर मिश्र और स्वेज नहर से ब्रिटिश सेना के अपसारण का अनुरोध किया। ब्रिटिश प्रशासन ने इसे अस्वीकृत कर विशेष सेना भेज कर स्वार्थ रक्षा की व्यवस्था की। प्रधान मंत्री वफ्द दल के प्रभावशाली राजनैतिक नेता नाहश पाशा को—जो कि सुदान के मिश्र में विलीनीकरण, संविधान के संशोधन और शाह के अधिकार को सीमित करने के पक्ष में था—शाह ने लोक-सभा में बहुमत होते हुए भी मार्च १९५२ में पदच्युत कर दिया एवं स्वतन्त्र दल के नेता अली मेहर पाशा को प्रधान मंत्री नियुक्त किया। २७ जुलाई को सेनापति नागिब जे के नेतृत्व में मिश्री सेना ने अलैक्जेण्ड्रिया स्थित शाही प्रासाद को घेर लिया एवं शाह फारूक को निम्नलिखित चुनौती दी:—(१) राज सिंहासन का त्याग, (२) ७ मास के शाहजादे अहमद फुआद द्वितीय को शाह बनाने की स्वीकृति, (३) सायंकाल ६ बजे से पूर्व मिश्र-त्याग। शाह ने आत्म-समर्पण कर दिया। इस सशस्त्र राजनैतिक परिवर्तन का उद्देश्य आंतरिक प्रशासन का शुद्धीकरण है। फारूख ने रक्षक होते हुए भी भक्षक की नीति का अवलंबन कर अंग्रेजों का पक्ष लिया था। मिश्र की घटना

से ब्रिटेन पर क्या प्रतिक्रिया होगी–यह भविष्य के गर्भ मे लीन है। ब्रिटेन ने विशेष सैनिक शक्ति भेज कर अपनी सतर्कता व्यक्त की है। ७ सितम्बर को नागिब प्रधान मन्त्री नियुक्त हुआ है। इस प्रकार लोक–सत्ता मिश्र में प्रगति पथ पर–बढ़ रही है।

आधुनिक जर्मनी—युद्धोत्तर कालीन जर्मनी किस प्रकार रूस एव अमेरिका के विवाद का केन्द्र बन गया इसका अध्ययन हम कर चुके हैं। पश्चिमी जर्मनी में अमेरिका से जर्मनी को पर्याप्त आर्थिक सहायता प्राप्त हुई। लगभग ४ अरब ३८ करोड़ आर्थिक व्यवस्था के सुधार के लिये, ६ करोड़ २१ लाख शिक्षा के लिये, और १ करोड़ ६७ लाख रुपया लोक-तंत्री संवाद पत्रो को दे दिया गया। संक्षेप में जर्मन शहरों का पुनः निर्माण, विस्थापितों की व्यवस्था आज भी जारी है। युद्ध के पूर्व से जर्मनी का उत्पादन वर्तमान में १४०% अधिक वृद्धि हुई है। १९५१ मे निर्यात लगभग १९ अरब ११ करोड़ रुपया से वढ़ गया है। धीरे-धीरे मित्र सेना का अधिकार होते हुये भी जर्मनी स्वतन्त्र–राष्ट्र का पद प्राप्त करने की दिशा मे अग्रसर हो रहा है।

फ्रांस—अक्टूबर १९४५ में फ्रांस की विधान परिषद् का निर्वाचन हुआ एवं नवीन विधान का निर्माण हुआ। परन्तु जनता द्वारा इसे स्वीकृत करने पर पुनः द्वितीय विधान परिषद् का निर्वाचन व विधान की रचना हुई। अक्टूबर १९४६ में सर्वसंमति से फ्रास को चतुर्थ गणतन्त्र घोषित किया गया, एवं शासन व्यवस्था के लिए लोक–सभा के दो भवन निर्दिष्ट किये गये। प्रथम सर्व साधारण द्वारा निर्वाचित राष्ट्रीय परिषद् और और द्वितीय गणतांत्रिक समिति। इसके सदस्य प्रांतीय व नागरिकों द्वारा निर्वाचित होता है। राष्ट्रपति ७ वर्ष के लिए दोनों भवनों के संमिलित अधिवेशन में चुना गया। १६ दिसम्बर १९४६ में साम्यवादी नेता ब्लम ने मंत्रिमण्डल चुना। फरवरी १९४७ में

आरियल राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ। दो मास बाद ब्लम ने पद त्याग किया। सूदान, क्वैय व रामादियर आदि प्रधान मंत्री बने। फ्रांस मे आज क्रमशः दो दो तीन मास में मंत्रिमंडल बदलते जा रहे है। अन्तनाई पीने वर्तमान प्रधान मत्री है।

जापान—जापान ने दीर्घकालीन मित्रराष्ट्र के सामरिक अधिकार के पश्चात् ८ सितम्बर १९५१ में सार्वभौम शक्ति प्राप्त की। प्रधान मन्त्री सिहेगेरू योसीडा जापान को पुनः संगठित कर प्रगति की ओर ले जा रहा है। २८ फरवरी १९५२ में जापान ने संयुक्तराष्ट्र को संधि द्वारा सामरिक केन्द्र स्थापन की विशेष सुविधा दी एवं अमेरिका के आदेशानुसार गणतांत्रिक चीन को मान्यता नहीं दी। दूरप्राच्य में फ्रांसीय उपनिवेश इंडोचीन में (वियथमन्न दल के नेता) होनियनमिन १९५० से स्वायत्त शासन के लिए चीन से सहायता प्राप्त कर फ्रांस से संघर्ष कर रहा है। फ्रांस इसके दमन में व्यस्त है। फ्रांस ने प्रतिक्रियावादी बाओदाई के नेतृत्व में शासन स्थापित किया है–अमेरिका और इंग्लैण्ड इसके समर्थक हैं। विरोधी होचिनमिनको रूस और चीन समर्थित ही नहीं, अपितु ये उसे आर्थिक सहायता दे रहे हैं। वियतमिन आन्दोलन इंडोचीन की जनता की स्वतन्त्रता का आन्दोलन है।

मन्तव्य—आज संसार में प्रजातंत्र, लोकसत्ता, साम्राज्यवाद और अधिनायकवाद का संघर्ष नहीं है, अपितु प्राच्य और पाश्चात्यों का संघर्ष है। सर्वत्र एक अभूतपूर्व चेतना, राष्ट्रीय जागरण और देश-भक्ति की शिखा प्रज्वलित हो रही है। आत्मनिर्भरता और आत्म-निर्णय मानव का मौलिक आधारभूत अधिकार स्वीकृत हुए हैं, परन्तु प्रमुख राष्ट्रों के पारस्परिक संघर्ष और प्रतिस्पर्धा ने अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और समन्वय को असंभवप्राय कर दिया है। विज्ञान के चमत्कार और उत्कर्ष ने

विक व उग्र शक्ति के सामरिक प्रयोग से जनता को त्रस्त कर रखा है। सुरक्षा-परिषद् निरस्त्रीकरण की नीति को व्यावहारिक रूप देने का प्रभूत प्रयास कर रही है, परन्तु शक्तिशाली राष्ट्रों के सहयोग के अभाव में उसकी असफलता मानव को भविष्य के सम्बन्ध में सचिन्त कर रही है।

विश्व आज एक अत्यन्त संक्रमणकाल से व्यतीत हो रहा है। साम्यवाद और पूंजीवाद का समन्वय एवं प्राच्य के शताब्दियों से परीक्षित प्रयोग ही आज की पारस्परिक प्रतियोगिता को मिटा सकते हैं। यदि विश्व वास्तविक शान्ति को प्रायोगिक रूप देखना चाहता है, तो उसे भारत के प्रधान मन्त्री पं० नेहरू के शान्ति, अहिंसा और सहयोग के उपदेश—जो महात्मा बुद्ध, महात्मा गांधी आदि अनेक महर्षियों द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं—शिरोधार्य करने होंगे। भारतवर्ष ने ही संसार को सर्व-प्रथम ज्ञान का प्रकाश दिखाया था—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।

आज भी यदि विश्व को सत्य मार्ग पर चलना है, तो उसे इन प्राच्य आदर्शों से प्रेरणा प्राप्त करनी होगी। नैतिक उत्थान को भौतिक चाकचक्य से अधिक महत्त्व देना होगा। ये ही आत्म-संयम, आत्मत्याग और नैतिक उच्चता की भावनायें हम में वास्तविक शान्ति और सहयोग का संचार कर हमें विश्वबन्धुत्त्व की भावनाओं को प्रत्यक्ष दिखा सकती हैं। यही शान्ति का मार्ग है और आज की विश्व-शान्ति के क्रियान्वयन का सर्वोत्तम माध्यम है।

तमसो मा ज्योतिर्गमय

इतिशम्

———*———

परिशिष्ट

(क) वंश–सूची

बुरवन वंश : हेनरी चतुर्थ (१५८९–१६१०)

- लुई चतुर्दश (१६४२–१७१५)
  - पौत्र
    - लुई पञ्चदश (१७१५–१७७४)
      - लुई डोफिन (मृ०१७६५)
        - लुई षोड्स (१७७४-१७९३)
          - लुई सप्तदश (मृ० १७९५)
        - लुई अष्टादश (१८१५-१८२४)
        - चार्ल्स दशम (१८२४-३०)
          - डक डी बेरी (हत्या १८२०)
            - डक डी बोर्डो—काम्टेडी चैम्बोर्ड
- फिलिप (१७०२)
  - पौत्र
    - लुई फिलिप (मृ०१७८५)
      - पौत्र
        - लुई फिलिप प्रथम (१८३०-४८)
          - डक डी पेरिस (मृ० १८९४)
            - डक डी ऑर्लियान्स (फिलिप सप्तम)

बोनापार्टी वंश

कार्लो बोनापार्टी वि० लेटिजिया रोमोलिनो

- जोशेफ, नेपल्स का राजा (१८०६-८), स्पेन का राजा (१८०८-१४), मृ० १८४४
- नेपोलियन प्रथम, फ्रांस का सम्राट, (१८०४-१५) मृ० १८२१
  - नेपोलियन द्वितीय, रोम का राजा (१८११-३२)
- लूसिये,
- ईलिसि,
- लुई नेपोलियन, हालैण्ड का राजा (१८०६-१०)
  - लुई नेपोलियन तृतीय, फ्रांस का सम्राट् (१८५२-७०) मृ० १८७३
    - युजिन नेपोलियन मृ० १८७६
- पलिन
- कैरोलिन, वि० मुराट, नेपल्स का राजा (१८०८-१५)
- जेरोम, वेस्टाफैलिया का राजा मृ० १८६०
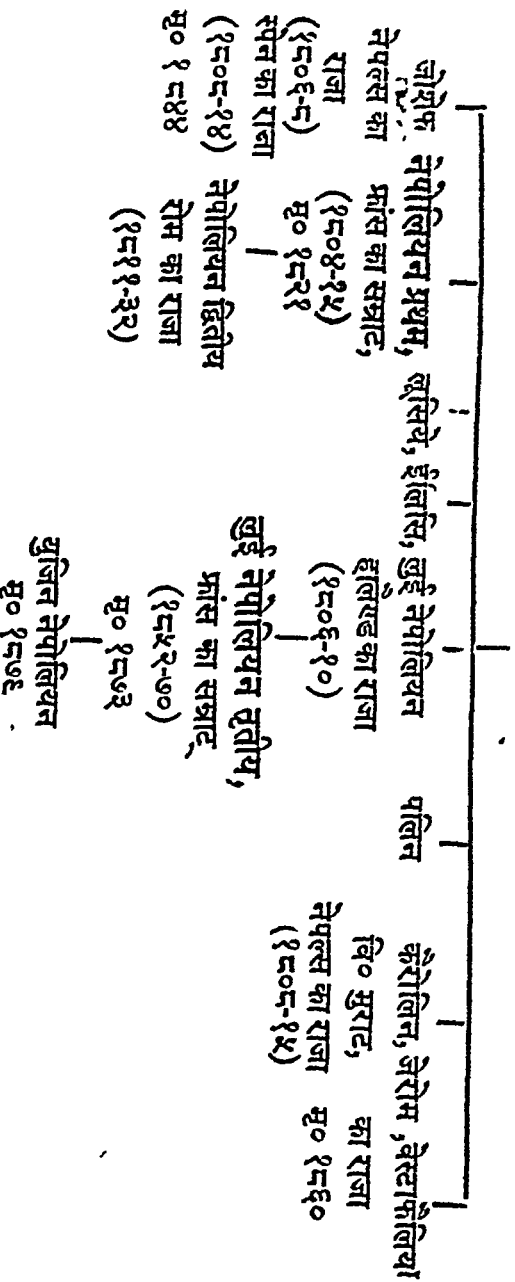
हैब्सबर्ग राज वंश

मेरिया थ्रेसा (हंगेरी की रानी, मृ० १७८६) + **फ्रांसिस प्रथम** (१७४५-६५)

- जोशेफ द्वितीय (१७६५-९०)
- कैरोलिन वि० नेपल्स का फार्डिनेण्ड
  - मेरिया थ्रेसा वि० फ्रांसिस द्वितीय १७९२-१८३५
    - फार्डिनेण्ड १८३५-४८ राज्य च्युत मृ० १८७५
    - फ्रांसिस
      - फ्रांसिस जोशेफ १८४८-१९१६
        - रूडल्फ मृ० १८८९
      - चार्ल्स लुईस
        - पौत्र चार्ल्स प्रथम (१९१६-१९)
      - मैक्सिमिलियन मेक्सिको का सम्राट १८६३ (फाँसी १८६७)
    - मेरिया-लुईसा वि० (१) नेपोलियन प्रथम (२) काउन्ट नीपर्ग
- लियोपोल्ड द्वितीय (१७९०-९२)
- मेरिया एन्टायनेट वि० लुई षोड़श फ्रांस का राजा (१७७४-९२) राज्य च्युत १७९२, फाँसी १७९३.

होहैनजोलैरन वंश : महान् फ्रेडरिक विलियम (१६४०-१६८८

फ्रेडरिक प्रथम (१६८८-१७१३)

फ्रेडरिक विलियम (१७१३-१७४०)

- महान फ्रेडरिक द्वितीय (१७४०-१७८६)
- पौत्र
  - फ्रेडरिक विलियम द्वितीय (१७८६-१७९७)
    - फ्रेडरिक विलियम तृतीय (१७९७-१८४०)
      - फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ (१८४०-१८६१)
      - विलियम प्रथम १८६१-१८८८)
        - सम्राट फ्रेडरिक तृतीय मृ० १८८८
          - सम्राट विलियम द्वितीय (१८८८-१९१८)

रोमानोव-वंश

महान् पीटर प्रथम
(१६८२-१७२५)

पौत्र पीटर तृतीय (मृ० १७६२)
वि० कैथराइन द्वितीय (१७६२-९६)

पाल (१७९६-१८०१)

- अलैग्जेण्डर प्रथम (१८०१-१८२५)
- निकोलास प्रथम (१८२५-१८५५)
    - अलैग्जेण्डर द्वितीय (१८५५-१८८१)
        - अलैग्जेण्डर तृतीय (१८८१-९४)
            - निकोलास द्वितीय (१८९४-१९१८)
    - कांस्टेन टाइन
        - पुत्री अल्गा वि० जार्ज, यूनान का राजा (१८६३-१९१३)

(ख) पाठ्योपयोगी पुस्तकों की सूची

(अंग्रेजी)

[स]ाधारण –
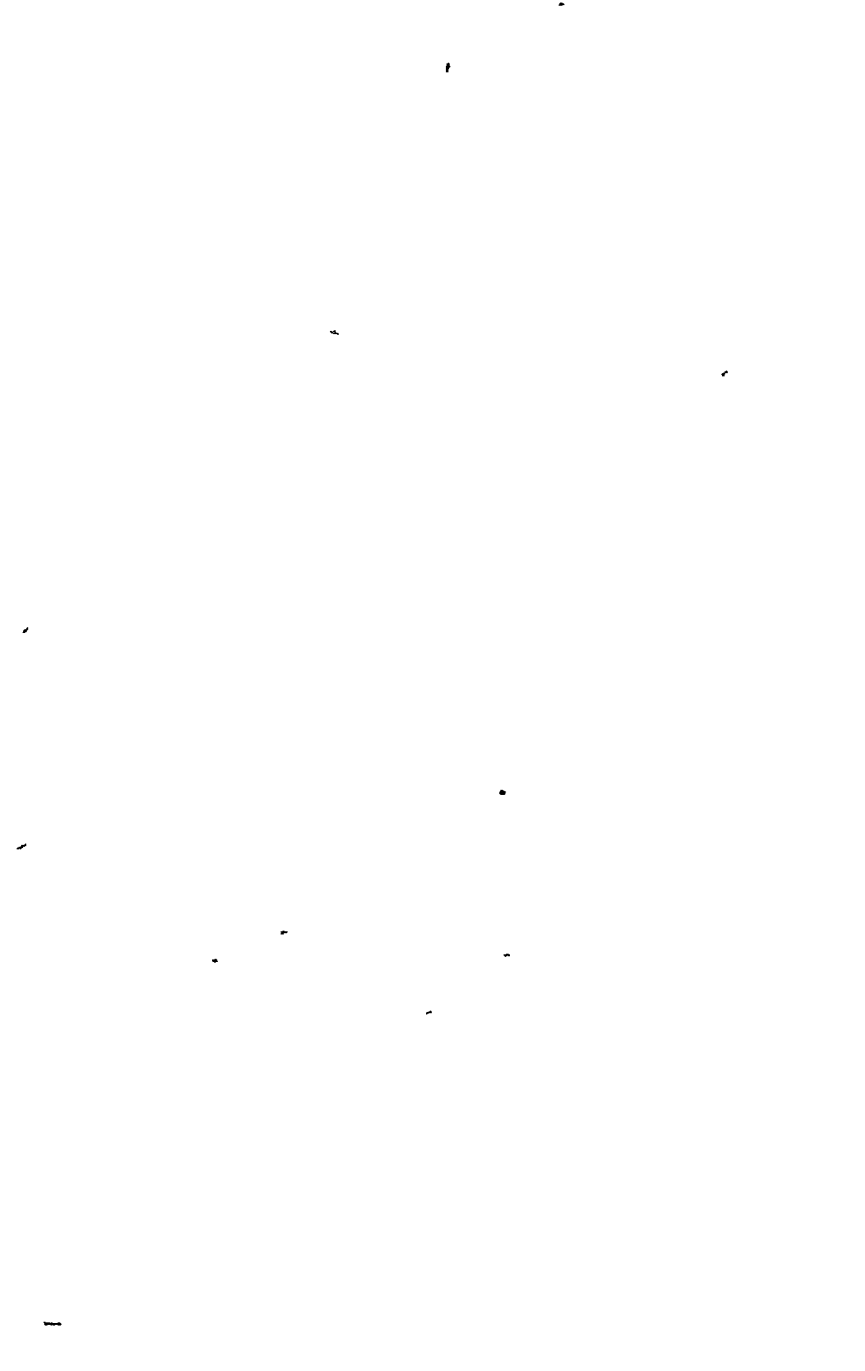
1. Alison Phillips, W. · *Modern Europe.*
2. Articles in the Encyclopoedia Britannica . *(14th Edition).*
3. Benns, F. Lee. : *Europe since 1914.*
4. Brown, W. E. & Coysh, A. W. : *The Map Approach to Modern History;* (1789-1914),(1914-1939).
5. *Cambridge Modern History vols ·VIII–XII.*
6. Carr E. H. · *International Relations :* (1919-39).
7. Fyffe, C. H. : *History of Modern Europe.*
8. Fisher H. A. L. . *A History of Europe.*

Gathorne-Hardy, G. M.· *A Short History of International Affairs* (1920-39).

Gooch, G. P. · *History of Modern Furope.* (1878-1919).

Grant and Temperley · *Enrope in the Nineteenth & Twentieth Centuries.*

Hans Kohn · *A History* of *Nationalism in the East,*(1929)

Hayes, Carlton J. H. *A Political & Cultural History of Modern Europe : 2 vls* (1939 Ed.)

Hayes, Moon & Wayland : *World·History* (1950 Ed.)

Hazen, C. D. : *Modern European History.*

" " *Europe since 1815.*

Hearnshaw · *Main Currents of European History.*

Jackson : *The Post-War World.*

Ketelbey, D. M· *A History of Modern Times.*

Langsam, W. C. . *The World Since 1914.*

21. Lipson, E. : *Europe in the XIXth & XXth Centuries* (1815-1939),
22. Marriott, J. A. R. : *A History of Modern Europe* (1815-1939)
23. Petrie, Charles. : *Diplomatic History* (1713-1933).
14. Rose, J. Holland. - *The Development of European Nations* (1922 Ed.)
25. Scheville · *History of Modern Europe.*
26. Schuman, F. L. : *International Politics.* (4th Ed.)
27. Schapiero : *Contemporary European History.*
28. Slosson . *Twentieth Century Europe.*
29. Swain " " "
30. Vinacke H. M. : *A History of the Far East.*

विशेष-विषय—

1. Stephens, H. Morse . The French Revolution.
2. Madelin, Louis : " " "
3. " " : Danton.
4. De Tocqueville. : L' Ancien Regime
5. Rose, J. Holland : Life of Napoleon.
6. Rosebury, Lord. : Napoleon : the Last Phase.
7. Fisher H. A. L. : Napoleon.
8. " " : Bonapartism.
9. Ward, A. W. : History of Germany.
10. Gooch, G. P. : Germany.
11. Webster, C. K. · The Congress of Vienna.
12. " " : The European Settlement 1815-25.
13. Metternich : Memoirs of Prince Metternich.
14. Bismarck, O. V. Reflections and Reminiscences.
15. Robertson, C. Grant : Bismarck.
16. Headlam, J. W. : Life of Bismarck.

17. Erich Eyck : Bismarck.
18. Ludwig, E. : Kaiser Wilhelm II.
19. Kaiser Wilhelm II. : Memoirs.
20. Bulow, V. : Imperial Germany.
21. Dawson; W. H. : The Evolution of Modern Germany.
22. Hilter · Mein Kampf (Eng. Trans. 1939.)
23 Heiden : A History of National Socialism.
24. Bolton-King. : History of Italian Unity.
25. Trevelyan, G. M. . Garibaldi and the Making of Italy.
26. Marriott, J. A. R. The Makers of Modern Italy.
27. Croce : History of Italy. (1871-1915).
28. Sarfatti . Mussoulini.
39. K. T. Shah · Evolution of Fascism.
30. Simpson, F. A. · Louis Napoleon and the Recovery of France.
31. De La Gorce, P. . Histoire du Second Empire.
32. Philip Guedalla : The Second Empire.
33. Marrioot, J. A. R. : The Eastern Questian.
34. Vernadsky, George : A History of Russia.
35. „ „ The Russian Revolution 1917-31,
36. Carr, E. H. · The Bolshevik Revolution.
37. Webb, S. and B : Soviet Communism · A New Civilisation ? 2 vols.
38. Trotsky, L. · The History of Russian Revolution. 3 v. 1932.
39. Stalin, J. · Leninism, 2 v., 1933.
40. History of the Communist Party of the Soviet Union (Bolsheviks), 1939.
41. T'ang Leang Li : The Foundations of Modern China, 1928.
42. Sun Yat-Sen : San Min Chu ? The Three Principles of the people, 1927.

43. Snow, E. · Red Star Over China, 1938.
44. Pollard, R. T. · Chinese Foreign Relations 1917-31.
45. Lansing, R : The Big Four 1921-
46. M. N. Roy : Russian Revolution.
47. Moon : Imperialism & World Politics.
48, Zimmern, A The League of Nations and the Rule of Law, 1918-35. Rev. ed 1939.
49. Liddel Hart, B. H. Europe in Arms 1937.
50. Bainville: J. · The French Republic, 1870-1935; 1939.
51. Kohn, H. : Nationalism and Imperialism in the Hither East, 1932.
52. Petrie, C. A. · Mussolini, 1931.
53. Mussolini; B. · My Autobiography. 1928.
54. ,, · Fascism : Doctrine & Institutions, 1938.
55. Schuman, F. L. : The Nazi Dictatorship.
56. Churchill; W. S. : While England Slept : A Survey of World, Affairs, 1932-36.
57. Chamberlain, N. : In Search of Peace.
58. Dallin, D. T. : Soviet Russia,s Foreign Policy, 1939-42.
59. Willkie, W. L. : One World, 1943.
60. Chester Wilmott : The struggle for Europe
61. Fay, S. B. : The Origins of the WorldWar.
62. Langsam, W. C. Documents & Readings in the History of Europe since 1918, 1939.
63. Churchill W. S. : The Second World War.
64. L : Dolivet, · The United Nations.
65. Ingrim, K. : Years of Crisis.

पारिभाषिक शब्द-सूची

अखंडता	Integrity.
अनिवार्य सैनिक प्रवेश	Conscription
अधिनायकता, तानाशाही	Dictatorship.
अराजकवाद	Anarchism; Nihilism.
अतिरिक्तार्ध	Surplus Value.
अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग	International Co-operation
अस्थायी प्रशासन	Provisional Government.
अन्तर्राष्ट्रीय पंचायत	International Arbitration.
अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक समिति	International Working Men's Association.
अधिकारी शासन	Bureaucracy.
अनुयोजनवादी	Annexionist.
असेनोकरण	Demilitarization.
अन्तर्राष्ट्रीय सदाचार	International Morality.
अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन	International Labour Organization.
आगम सघ	Customs Union; Zollverin
आधारभूत अधिकार	Fundamental Rights.
आक्रमणात्मक	Offensive.
आत्मनिर्णय	Self-Determination.
आतंकवाद	Terrorism.
आदर्श समाजवाद	Utopian Socialism.
आदिष्ट, आदेशप्राप्त	Mandated.
उग्र राजसत्तावादी	Ultra-Royalist.
उदार राजसत्तावादी	Liberal ,,

उद्भासित	Enlightened.
उपयोगितावाद	Utilitarianism
उग्र-परिवर्तनवादी	Radical
उन्मुक्तद्वार नीति	"Open Door Policy".
एकत्रीकरण	Unification
एकाधिकार	Monopoly
औद्योगिकक्रान्ति	Industrial Revolution.
करद—राज्य	Tributary.
कार्यकारिणी समिति-	Executive.
गुप्तविनाश	Sabotaga.
गणतंत्रवादी	Republican
चुनौती पत्र	Ultimatum,
चतुर्मुख सौहार्द	The Quadruple Alliance.
जनरक्षा-समिति	The Committee of Public Safety
जननिर्वाचित अधिकारी-वर्ग	Tribunate
ज्येष्ठाधिकार	Primogeniture.
तटावरोध	Blockade.
द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद	Dialectical Materialism.
द्वि-मैत्री	Dual Alliance.
धमकी	Intimidation.
धारा-सभा	Legislative Assembly.
धुरी राष्ट्र-	Axis Powers.
नवीन इटली	Young Italy.
नवीन तुर्की	,, Turkey.
नवीन चीन	New China.
निर्वाचन क्षेत्र	Constituency.

निषेधाधिकार	Veto.
नियम संग्रह	Code
निषिद्ध	Contraband.
निरस्त्रीकरण	Dis-armament.
नोनयननियम	Navigation Laws.
पवित्र मैत्री	Holy Alliance
पंचशतसमिति	Council of Five Hundred
पादरियों की मैत्री	Concordat.
पुनर्बीमा सन्धि	Re-insurance Treaty.
पीतातंक	Yellow Peril.
पूंजीवाद	Capitalism.
पूंजीवादी-वर्ग	Bourgeoisie.
प्रजातंत्रवाद,	Democracy.
प्रतिनिधिसभा	Diet.
प्रतिक्रियावादी	Reactionary.
प्रभावक्षेत्र	Spheres of Influence.
प्रतिश्रव	Covenant
प्राच्य-समस्या	Eastern Question.
फासिस्ट युवक आंदोलन	Fascist Youth Organization.
वाह्यसीमीयप्रभुता	Extra-Territorial Rights.
मनोनीत; नामजद	Nominated.
भौतिकवाद.	Materialism, Temporal.
मुख्यसमिति	Senate.
मूल्य के नियम	Theory of Value.
यथास्थिति	Status quo.
यथार्थ की पूजा	The Worship of Reason.
शक्तिगोष्ठी	The Concert of Powers.

रक्षात्मक	Defensive.
रणविराम	Truce, Armistice.
राज्यादेश	Edict.
राज्यसंघ	Confederacy
राष्ट्रीयता	Nationalism.
राज्यपरिषद्	Estate Geneıal, Council of States
राष्ट्रीय परिषद्	Constituent ssembly.
राष्ट्रीय संवाद्	The Convention or National Assembly.
राजसत्तावादी	Royalist.
राष्ट्रसंघ	League of Nation; Coalition.
राज्यसमाजवाद	State Socialism
राष्ट्र-ऋण	Public debt.
वर्ग-संघर्ष	Class-War.
वयस्क (अथवा पुरुष) मताधिकार	Manhood Suffr..ge
विकेन्द्रीकरण	Decentralization.
विधान-सभा	Legislative Assembly.
विप्लवी न्यायालय	The Revolutionary Tribunal.
विशिष्ट प्रतिनिधिमंडल	Representative on Mission.
विद्युत्वेगीय आक्रमण	Blitz Kierg
वैधानिक प्रशासन	Constitutional Government.
सहिष्णु	Liberal.
समाजवाद	Socialism.
समष्टिवाद	Collectivism
सामंत-समाजवाद	Guild Socialism.

स्वार्थत्यागी नियम	Self-denying Ordinance.
सर्व जर्मन एकीकरणवाद	Pan Germanism.
सशस्त्र-शांति	Armed Peace.
समाजवादी गणतंत्र दल	Social Democratic Party.
सर्वजनमतग्रहण	Plebiscite; Referendum.
सशस्त्र तटस्थीकरण	Armed neutrality.
सामान्य जन सुरक्षा समिति	The Committee of General Security.
सार्वजनिक मताधिकार	Universal Suffrage.
साम्यवाद	Commnnism.
साम्राज्यवाद	Imperialism.
सामन्त की सत्ता	Feudal Rights.
साधारणवर्ग	Third Estate.
सामाजिक-करण	Socialization.
संघसभा	Federal Assembly
संविधान	Constitution.
संदिग्ध दोषारोपण अभिनियम	Law of Suspects.
संचालन समिति	Directory.
संशोधन	Amendment.
संघीय विधान	Federal Constituti n.
संशोधनवाद	Revisionism.
संसारसंघ	World Federation.
संरक्षितराज्य	Pratectorate.
संरक्षण	Protection.
संरक्षण व्यापार-वाद	Protectionism.
सुरक्षा-परिषद्	Security Council.
सैन्य-भंजन	De-mobilization.
सैनिक एकत्रीकरण	Mobilization.

संयुक्तराष्ट्र संघ	U. N. O.
साम्राज्य संघ	Common Wealth.
सैनिक-वाद	Militarism.
सांस्कृतिक-युद्ध	Kultur Kampf.
स्वशासित जिला शासन	Commune.
स्थानान्तर	Immigration.
स्थानीय प्रशासन	Local Government.
शक्ति-संतुलन	Balance of Powers.
शान्तिवाद	Pacificism.
श्रमिकसंघ	Trade Union.
श्रमिक संघवाद	Syndicalism.
श्रमजोवी वर्ग	Proletariat.
,, अधिनायकवाद	Dictatorship of the Proletariat.
क्षतिपूर्ति	Reparation.
त्रिस्वैरतांत्रिक सौहार्द	Dreikaiserbund.
त्रिशक्तिगुट	Triple Entente
त्रिराष्ट्रीय मैत्री	Triple Alliance.

ग—शुद्धि—पत्र

अशुद्ध रूप	पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध रूप
स्वतन्त्रा	१	२	स्वतन्त्रता
हुए	८	७	हुए
विप्ल	१०	१७	विप्लव
निम्न वर्ग	२०	२५	साधारण वर्ग
कुलहीन वर्ग	२१	१	कुलीन वर्ग
वलात्कार	२१	२२	वल प्रयोग
(अ)	२६	२५	(आ.)
डिडेएट	२९	७	डिडेराट
५–क्विस्ने	२९	७	६–क्विस्ने
३–जीन जाक्विस	३१	२४	(इ) जीन जाक्विस
भविष्यवक्ता	३३	८	भविष्यद्वक्ता
फौवुअत	३८	३	फॉकुए
पाकुई विले ने	३९	१	टाकुइविले ने
ओविसाइज	४०	१७	एविसाइज्ञ
कान्टेडी	४२	३	काउन्ट डी०
प्रले	४६	१३	पहले
सामन्तय	५०	१९	सामन्तीय
आकरिमक	५६	२०	आकस्मिक
लामटीयन	५९	५	लामटाइन
पुराहित	६०	१६	पुरोहित
वधानिक	६४	१२	वैधानिक
प्रराजित	७५	२३	पराजित
आत्डक	८१	१८	आतंक
निश्वत	८२	१५	निश्चित
दान	८५	२५	दीन

स्वग	१००	१४	स्वर्ग
मानारों	१०१	४	मीनारों
डिवन्स	१०६	२०	डिकेन्स
१७५६	११६	१	१७६६
न ीं	१३२	२६	नहीं
रिणाम	१४३		परिणाम
यु ोप	१४४	१	यूरोप
तिल्लित	१५१	८	तिल्सित
चतुर्थ···रान्न	१५४	६	चतुर्थ की रानी
प्रायोद्वीप	१५४	११	प्रायद्वीप
पांडुापियों	१७७	१३	पांडुलिपियों
८१५	१८०	१	१८१५
१६१५	१८३	१७	१८१५
लमर्टाइन	२१६	४	
पामरटन	२२६	१३	पामरस्टन
नम	२३७	३	नवम
गैरीवल्टो	२६२	१६	गैरीवल्डी
वोग्निया	३५१	१४	वोस्निया
माक्स	३६१	४	मार्क्स
विमार्क	३६६	२१	विस्मार्क
शक्त	,,	२५	शक्ति
समथन	३६६	२५	समर्थन
लता	३७२	२६	लेता
मृत्य	,,	,,	मृत्यु
सम्रट	३७३	७	सम्राट
शक्ति-योग	३७४	६	शक्ति-प्रयोग
कैपरोवी	३७८	४	कैपरीवी

अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध
हिस्टरहेजी	३८७	५	इस्टरहेजी
रजदूत	४०५	२५	राजदूत
इ ंगलीशाचल	४२४	२४	इंग्लिश चैनल,
राम्पुटिन	४५५	१६	रास्पुटिन
कैरनिस्की	४५५	२१	कैरीनेस्की
समथ	४५७	३	समर्थ
मार्क्सको	४५७	१४	मास्को
फांच	४५८	१४	फाच
संति	४५६	६	संचित
चतुदश	४६१	८	चतुर्दश
जमनी	४६२	२३	जर्मनी
डी मलेरा	४७३	१६	डी भैलेरा
डा० डोलन	४७८	८	डेलन
लार्ड	४६०	११	लार्ड हैस्टिंग्स
१८६८	४६१	३	१८७८
वितृति	४६६	१०	विस्तृति
१८१६	५४०	२०	१६१६
डा० सैन	५४३	११	डा० सन्
लैटाविया	५४८	२३	लैटविया
नाति	५५३	१६	नीति
पेकारे	५६८	१८	पैंकारे
वार्थू	५७०	१४	बार्थू

अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध
शा	५६०	१४	वंश
रावर्ट ले	६०३	१४	रावर्ट ले
पचर्य	६१२	१	प्राचुर्य
१६२६ से १६३६	६३४	२	१६१६से १६३६
वैट्रिव	६४२	२६	वैट्रिक वेब
हार्डिंग	६६८	१६	हार्डिञ्ज
१६२३ से १६३६	६७६	१७	१६३३ से ३६
साटवेल्व	६८३	१६	सीटवेल
१०६,७	६८५	१	१'६७
प्रयन	७२७	१८	प्रयत्न
व्लम	७३६	२७	व्लम
होनियनमिन	७३७	१२	होचिनमिन